CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता

भट्टोत्पलविवृतिसहिता

हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

बृहत्संहिता

[प्रथमो भागः]

कुलपतेः प्रो.राममूर्तिशर्मणः प्रस्तावनया विभूषिता

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्यनागेन्द्रपाण्डेयः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ISBN : 81-7270-076-8 (Set)
ISBN : 81-7270-077-6 (Part-1)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्था. 9324 R
६५

R. ६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MUDT

5/1 9324
EYR

GAṄGĀNĀTHAJHĀ - GRANTHAMĀLĀ
[Vol. 20]

BṚHATSAṀHITĀ

[PART - ONE]

BY

ŚRĪ VARĀHAMIHIRĀCĀRYA

With the Commentary of

Bhaṭṭotpala

and

Hindi Commentary

BY

ĀCĀRYA NĀGENDRA PĀṆḌEYA

FOREWORD BY

PROF. RAM MURTI SHARMA
VICE - CHANCELLOR

EDITED BY

ĀCĀRYA NĀGENDRA PĀṆḌEYA
Reader. Jyotiṣa Department
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi

VARANASI
2002

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Research Publication Supervisor —
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-076-8 (Set)
ISBN : 81-7270-077-6 (Vol-1)

❐

Published by —
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

ACC 39336
B1337

❐

Available at —
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❐

First Edition, 500 Copies
Price : Rs. 500.00

❐

Printed by —
Anand Printing Press
C. 27/170-A, Jagatganj,
Varanasi-221 002

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला
[२०]

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता
भट्टोत्पलविवृतिसहिता
हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

R.६५

बृहत्संहिता

[प्रथमो भागः]

कुलपतेः प्रो० राममूर्तिशर्मणः प्रस्तावनया विभूषिता

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च
आचार्यनागेन्द्रपाण्डेयः
उपाचार्यः, ज्योतिषविभागे
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
वाराणसी

वाराणस्याम्

२०५८ तमे वैक्रमाब्दे १९२३ तमे शकाब्दे २००२ तमे ख्रैस्ताब्दे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षकः –

निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी।

ISBN : 81-7270-076-8 (Set)
ISBN : 81-7270-077-6 (Vol-1)

❐

प्रकाशकः –

डॉ०हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
निदेशकः, प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी-२२१ ००२

❐

प्राप्ति-स्थानम् –

विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१ ००२

❐

प्रथमं संस्करणम्, ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् – ५००.०० रूप्यकाणि

❐

मुद्रकः –

आनन्द प्रिंटिंग प्रेस
सी० २७/१७०-ए, जगतगंज,
वाराणसी–२२१ ००२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्तावना

आचार्य भट्टोत्पल की **'विवृति** एवं डॉ० नागेन्द्र पाण्डेय की **हिन्दी-व्याख्या** के साथ **'बृहत्संहिता'** के प्रथम भाग के उपबृंहित संस्करण पर प्रस्तावना लिखते हुए मुझे अतिशय हर्षानुभूति हो रही है। **वराहमिहिर** भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अप्रतिम आचार्य हुए हैं। इनका जन्म उज्जयिनी के निकट कायथा नामक ग्राम में सन् ५९५ में हुआ था। इन्होंने अपनी महीयसी लेखनी से 'बृहज्जातक', 'पञ्चसिद्धान्तिका', 'बृहत्संहिता', 'लघुजातक', 'विवाहपटल', 'योगयात्रा' तथा 'समयसंहिता' नामक कालजयी कृतियों का प्रणयन किया है। वराहमिहिराचार्य ने ज्योतिषशास्त्र को तीन शाखाओं में विभक्त करके उन पर अपनी लेखनी चलायी है। प्रथम को उन्होंने **'तन्त्र'** नाम से अभिहित किया है, जिसके अन्तर्गत सिद्धान्तज्योतिष तथा गणित-सम्बन्धी विचार हुए हैं। द्वितीय का नाम **'होरा'** रखा है, जो जन्मपत्र से सम्बद्ध है। तृतीय को **'संहिता'** नाम देते हुए उसके अन्तर्गत भौतिक फलित ज्योतिष को सम्मिलित किया है। **'बृहत्संहिता'** फलित ज्योतिष की बहुमान्य कृति है। ऐसी बहुमान्य कृति निश्चय ही ज्योतिर्विदों के लिए सदा विचारकेन्द्र बनी रही है।

ऐसे महनीय ग्रन्थ पर आचार्य भट्टोत्पल ने दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अपनी **'विवृति'** टीका लिखी है। इन्होंने वराहमिहिर के यात्रा, बृहज्जातक, लघुजातक तथा बृहत्संहिता नामक ग्रन्थों पर टीका-ग्रन्थ लिखे हैं। इस 'विवृति' के साथ मूलरूप से 'बृहत्संहिता' के दो संस्करण इस विश्वविद्यालय द्वारा पूर्व में प्रकाशित हुए हैं। प्रथम संस्करण का सम्पादन आचार्य श्री अवधबिहारी त्रिपाठी एवं द्वितीय संस्करण का सम्पादन आचार्य श्री कृष्णचन्द्र द्विवेदी ने किया है। ये दोनों संस्करण मूल 'बृहत्संहिता' एवं भट्टोत्पल की 'विवृति' के साथ प्रकाशित हुए हैं। भट्टोत्पल की 'विवृति' भी अपने आप में गम्भीर टीका-ग्रन्थ है।

आचार्य भट्टोत्पल की 'विवृति' के साथ **'बृहत्संहिता'** की हिन्दी-व्याख्या चिरकाल से अपेक्षित रही है। इस अपेक्षा की पूर्ति इस विश्वविद्यालय के ज्योतिष-विभाग के उपाचार्य एवं उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थान के अध्यक्ष **डॉ० नागेन्द्र**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाण्डेय ने की है। उनकी हिन्दी-व्याख्या निश्चय ही 'बृहत्संहिता' एवं उसकी 'विवृति' का मर्मोद्घाटन करेगी।

एतदर्थ स्व० **आचार्य श्री अवधबिहारी त्रिपाठी** एवं **आचार्य श्री कृष्णचन्द्र द्विवेदी** के प्रति हार्दिक आदराञ्जलि समर्पित करते हुए **डॉ० नागेन्द्र पाण्डेय** को साधुवाद प्रदान करता हूँ।

इस ग्रन्थ के सौष्ठवपूर्ण प्रकाशन में निरन्तर योगदान करने वाले प्रकाशन-संस्थान के निदेशक **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी,** ईक्ष्यशोधनप्रवीण **डॉ० हरिवंश कुमार पाण्डेय,** सहायक सम्पादक **डॉ० ददन उपाध्याय,** ईक्ष्यशोधक **श्री अशोक कुमार शुक्ल, श्री अतुल कुमार भाटिया,** प्रकाशन सहायक **श्री कन्हई सिंह कुशवाहा,** पाण्डुलिपि संग्राहक सहायक **श्री ओमप्रकाश वर्मा** तथा डॉटा इण्ट्री आपरेटर **श्री जितेन्द्र कुमार भाटिया** प्रभृति को शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए इस ग्रन्थ के मुद्रक आनन्द प्रिटिंग प्रेस के संचालक **श्री आनन्द पाण्डेय** को भी धन्यवाद प्रदान करता हूँ। साथ ही इस भाग के अग्रवरण सज्जा-कार श्रीजी कम्प्यूटर प्रिण्टर्स के संचालक **श्री अनूप कुमार नागर** को हार्दिक मङ्गलकामनाएँ प्रदान करता हूँ।

अन्ततः शताब्दियों से ज्योतिर्विदों के विचारबिन्दु का केन्द्र बनी हुई इस **'बृहत्संहिता'** को सान्नपूर्णा श्री भगवान् विश्वेश्वर के करकमलों में समर्पित करता हूँ।

रामभूर्ति शर्मा

वाराणसी
मार्गशीर्ष-पूर्णिमा,
वि० सं० २०५८

राममूर्ति शर्मा
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

उदयाचलतिलकाय प्रणतोऽस्मि विवस्वते ग्रहेशाय।
अम्बरचूडामणये दिग्वनिताकर्णपूराय।।
भास्वान् काश्यपगोत्रजोऽरुणरुचिर्यः सिंहराशीश्वरः
षट्त्रिस्थो दशशोभनो गुरुशशिभौमेषु मित्रं सदा।
शुक्रो मन्दरिपुः कलिङ्गजनितश्चाग्नीश्वरो दैवते
मध्ये वर्तुलपूर्वदिग्दिनकरः कुर्यात् सदा मङ्गलम्।।

आचार्य वराहमिहिर ज्योतिषशास्त्र के शिखर-पुरुष हैं। इनकी प्रशस्त कृतियाँ इस महापुरुष के विराट-व्यक्तित्व को निर्मल दर्पण के समान प्रतिबिम्बित करती हैं। ज्योतिष शास्त्र की जिस गहराई, विस्तार तथा चिन्तन और विश्लेषण की सुविशालता को आचार्य ने जितनी सरलता, सहजता एवं सारगर्भिता से प्रस्तुत किया है, उस पर सहसा विश्वास ही नहीं होता। यही प्रतिभान होता है कि वराहमिहिर के रूप में कोई अतिविशिष्ट-शक्ति-समलङ्कृत महामानव अथवा पूर्ण दैवी गुणों से समवेत सरस्वती का कोई वरदपुत्र इस भरत-भू पर ज्योतिषशास्त्र को महिमा-मण्डित करने के लिए ही अवतीर्ण हुआ था। त्रिस्कन्धाधिष्ठित ज्योतिषशास्त्र के अपरिमेय सागर के तट-स्कन्धत्रितय पर गगनचुम्बी स्तम्भ-निर्माता के रूप में इनको सर्वप्रथम स्मरण किया जाता है। वराहमिहिर के ग्रन्थ-ग्रन्थि के समग्र-समाधाता श्रीमान् उत्पल भट्ट तो इनके दैवी गुणों से इतने अभिभूत हैं कि इन्हें साक्षात् भगवान् सूर्य का अवतार ही मानते हैं –

"जिस त्रिस्कन्ध ज्योतिष को भगवान सूर्य ने प्रकट किया था, कलियुग में वह विलुप्त न हो जाय, इसी हेतु वराहमिहिर के व्याज से सूर्य ने स्वयं अवतीर्ण होकर इस शास्त्र की रचना की है।"[१]

"वराहमिहिर के महान् सागर में ज्योतिषशास्त्र की जो महार्ह रत्नराशियाँ भरी पड़ी हैं, उनको अर्थाकांक्षी जिज्ञासु-जनों को उपलब्ध कराने के निमित्त, मैं स्व-बुद्धि रूपी नौका से प्रयास कर रहा हूँ।"[२] और वस्तुतः वराहमिहिर की स्थापना ही ऐसी है कि उनकी श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध हो जाती है। ज्योतिषशास्त्र के स्कन्धत्रय पर पूर्णाधिकार प्राप्त ये एक मात्र

---

१. यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैः – इसी ग्रन्थ के पृ० सं० १
२. वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले – इसी ग्रन्थ के पृ० स० – १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्वान हैं। आचार्य-परम्परा में सिद्धान्तगणितज्योतिष के श्रेष्ठ विद्वानों में आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर (प्रथम एवं द्वितीय) लल्ल, कमलाकर आदि का नाम अग्रगण्य है। इसी प्रकार फलित ज्योतिष में पराशर, जैमिनी, सत्याचार्य, कल्याण वर्मा, वटेश्वर, यवनेश्वर, श्रीपति, नृहरि (जातकसार), नीलकंठ, बलभद्र (होरा रत्न) इत्यादि विद्वानों के नाम प्रशस्त हैं। परन्तु ज्योतिषगणित तथा फलित में सगान–गतिक आचार्यों का वराहमिहिर के अतिरिक्त अभाव ही देखा जाता है। संहितास्कन्ध का तो वराहमिहिर के पश्चात् किसी अन्य आचार्य ने स्पर्श तक नहीं किया है।

वराहमिहिर की मौलिकता

ज्योतिषशास्त्र आकाशीय पिण्डों के सतत् निरीक्षण, परीक्षण तथा गणितीय अङ्केक्षण पर आधारित है। वराहमिहिर के पूर्व पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, सौर और पैतामह नामक पाँच सिद्धान्त (ज्योतिष-सिद्धान्त) प्रचलित थे। आजकल जिस प्रकार की विभिन्न पञ्चाङ्ग-पद्धतियाँ चल रही हैं, और इनमें परस्पर श्रेष्ठतम होने का अहंकार परिव्याप्त है (भले ही इससे समाज में व्रत-पर्वादि की भिन्नता के कारण थूत्कार हो रहा हो), उसी प्रकार उस समय भी ये पाँच सिद्धान्त व्यवहृत हो रहे थे। आचार्य वराहमिहिर ने एक कर्तव्यनिष्ठ सुयोग्य वैज्ञानिक की भूमिका का निर्वहन करते हुए इन पाँचों का गणितीय अन्तर्वीक्षा के साथ ही आकाशीय दृक्-परीक्षण भी प्रस्तुत किया। अन्त में वर्षानुवर्षों के प्राप्त परिणामों के आधार पर यह उद्घोषित किया कि –

पौलिशति विस्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूर विभ्रष्टौ।।[1]

अर्थात् इन पञ्चसिद्धान्तों में पुलिशसिद्धान्त अत्यन्त स्पष्ट और विशुद्ध है। रोमकसिद्धान्त इसके कुछ सन्निकट है, सूर्य सिद्धान्त इनसे अत्यधिक स्पष्ट (विशुद्ध) है, शेष दो सिद्धान्त वशिष्ठ और पैतामह यथार्थ से अति दूर, परम अशुद्ध हैं। इस प्रकार की स्पष्टोक्ति वराहमिहिर के अतिरिक्त किसी भी आचार्य की श्रुति-गोचर नहीं होती हैं।

ये पूर्व आचार्यों का सम्मान पूर्वक स्मरण करते हुए उनकी तथ्यहीन प्रस्तुति की समालोचना भी दृढ़ता पूर्वक करने में पीछे नहीं हैं। राहु-केतु की शिर तथा धड़ की कल्पना, इनके ही कारण रविचन्द्र के ग्रहण का होना – इस का उल्लेख करते हुए भी अपना गणितीय मत स्पष्टता से उपस्थापित किया है। यथा –

[2]एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः।।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिका – १.४ २. बृहत्संहिता – ५.१३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नैन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात्।।

इसी प्रकार पूर्वाचार्यों के आधार पर फलादेश लिखते हुए स्वयं को पृथक् कर मात्र उनके प्रति श्रद्धा और सद्भाव का आश्रय लेते हैं –

[2]हीनातिरिक्तकाले फलमुक्त पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति।।

अर्थात् गणित से निर्धारित काल के पूर्व अथवा पश्चात् ग्रहण हो सकता है, ऐसा पूर्व के आचार्यों ने कहा है, परन्तु इसके विपरीत वराहमिहिर कहते हैं कि कुशल गणितज्ञ द्वारा निर्दिष्ट ग्रहण-काल कभी भी पूर्व वा पश्चात् (आगे-पीछे) हो ही नहीं सकता।

लोक-परम्परा में अन्ध विश्वासों पर कटाक्ष करते हुए वराहमिहिर ने स्पष्ट कहा है कि पाँच ग्रहों के योग से अथवा उत्पातादि अपशकुनों से ग्रहण का कोई सम्बन्ध नहीं है। ये उल्कापतन आदि उत्पात अथवा ग्रहों के योग विभिन्न कारणों से होते हैं, इनसे ग्रहण का कुछ लेना-देना नहीं है। जैसा कि –

[3]न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि।।
पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य संभवो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः।।

इस प्रकार से स्पष्ट कथन के लिए वराहमिहिर सदैव स्मरण किये जायेगें। भाग्य और पौरुष का स्थान जीवन में कितना प्रभावी है ? दोनों में किसका क्या महत्व है ? इस विषय का विवेचन करते हुए कहते हैं – [4]"कृषि की भाँति ही व्यक्ति का पौरुष है। जिस प्रकार कुशल कृषक उत्तम बीज, योग्य भूमि तथा समुचित काल में परिश्रम पूर्वक कृषि कर सुधान्य उत्पन्न करता है, उसी प्रकार व्यक्ति (अथवा राजा) समय, भूमि, उद्योग, मन्त्र (नीति) तथा उत्तम भृत्य के (पौरुष) द्वारा सफल होता है। इनमें से एक भी दूषित हो, तब छिद्र-युक्त पात्र में रखे हुए जल की भाँति सब कुछ नष्ट हो जाता है।"

इस तत्त्व-चिन्तन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि जीवन में कोई भी व्यक्ति केवल भाग्य, अथवा केवल पौरुष से सफल नहीं होता। ग्रह, नक्षत्र, तिथि, लग्न, राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश आदि के अनुकूल होने मात्र से भी सिद्धि नहीं होती है। यदि ऐसा होता तो तिथि-मुहूर्त का ज्ञाता ज्योतिषी स्वयं ही राजा बन जाता। जैसा कि कहा गया है–

---

१. तत्रैव – ५। ८।
२. तत्रैव – ५। २५।
३. तत्रैव – ५। १६–१७
४. योगयात्रा – १।४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]ग्रहर्क्षतिथ्युद्गमराशिहोरा – द्रेष्काणभागाद्यनुकूलमात्रम्।
भवेद् यियासोर्यदि सिद्धिहेतुः स्वयं भवेद् दैवविदेव राजा।।

पुनः कहते है कि मन्त्रप्रयोग, अभिषेक-कर्म, मणि-रत्न, शान्तिकर्म, हवन, उपवास, व्रत, देव-यज्ञ इत्यादि भी स्वयमेव कार्यसिद्धि के साधन नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो, याज्ञिक-पुरोहित ही स्वयं इन साधनों से राजा बन जाता। अर्थात् भाग्य का होना भी आवश्यक है। यथा–

[2] मन्त्राभिषेकमणिबन्धनशान्तिकर्म –
होमोपवाससुरयागजपादिमात्रम् ।
स्यात् सिद्धिहेतुरथ चेद् विजगीषतोऽरीन्
कस्मात्तदा नरपतिर्नभवेत्पुरोधाः।।

इसी प्रकार काल की महत्ता भी स्वीकृत की गई है। मनुष्य की इच्छा अथवा प्रयत्न से उसका अनुकूल समय नहीं आता है। जीवन में उन्नति का समय एक बार ही आता है। अपना अनुकूल समय नहीं है, तो प्रत्यक्ष प्राप्त अवसर भी हाथ से निकल जाता है और अनुकूल समय आने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ – अजगर के सामने भी उसका जब अनुकूल समय आता है तभी वह अपना आहार पाता है। जैसा कि –

[3]कालोऽभ्युपैति सकृदेव नरं कथंचित्
प्राप्नोति तन्न समयं खलु कालकांक्षी।
कालेन गोचरगताननपेक्ष्य भक्ष्यान्
मन्दक्रमोऽप्यजगरः समुपैति सिद्धिम्।।

दैवी शक्ति, मन्त्र-जप, शकुन, महूर्त, लग्न, नक्षत्रादि भी उसी की सहायता करते हैं, जो आचारवान्, शुद्ध तथा सात्विक होता है। इस सम्बन्ध में वराहमिहिर स्पष्ट कहते हैं कि ज्योतिषी और यजमान दोनों को सच्चरित्र तथा सात्विक होना चाहिए। ज्योतिषी का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है[4] – "उसे सत्यवादी, ईर्ष्या रहित, पवित्र, सात्विक, देवार्चन करने वाला तथा स्वयं व्रतोपवास का अनुष्ठाता होना चाहिए।।"

जिस प्रकार श्वेत-वस्त्र पर ही लाल, काला आदि रंग ठीक से चढ़ता है, उसी प्रकार सदाचार-सम्पन्न व्यक्ति को ही लग्न-तिथ्यादि सहायक होते हैं। अत एव अभीष्ट-सिद्धि के आकांक्षी व्यक्ति को मदिरा, परस्त्री, बाद्य, नृत्य, संगीत, जुआ, व्यर्थ-पापकर्म, व्यर्थ हिंसा, दिवाशयन, परनिन्दा – इन दश दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए। जैसा कि –

---

१. योगयात्रा – १। ५
२. तत्रैव – १। ६
३. तत्रैव – १। २१
४. बृहत्संहिता – २। १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]रक्तासिताद्या हि यथाम्बरस्य
वर्णाः सितस्यैव भवन्ति सम्यक्।
विलग्नतिथ्यादिगुणास्तथैव
विशुद्धदोषस्य भवन्ति यातुः।।
मद्याङ्गनावादितनृत्यगीता –
न्यक्षावृथाद्यामृगयाद्युनिद्रा ।
परोक्षनिन्देति च कामजानि
दशैव विन्द्याद् व्यसनानि पुंसाम्।।

इस प्रकार से वराहमिहिर ने उन मौलिक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है, जिनको सामान्य ग्रन्थकार प्रस्तुत नहीं कर पाते। ज्योतिषशास्त्र की सीमा और उसकी योग्यता का सम्यग् विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है।

वराहमिहिर की व्यथा

आचार्य वराहमिहिर सदाचार सम्पन्न, नैष्ठिक ब्राह्मण होने के साथ ही विद्वान् तथा प्रखर प्रवक्ता एवं विशिष्ट व्याख्याता थे। सूर्योपासना के आस्थावान् तो इस प्रकार थे कि अपने सभी ग्रन्थों का आरम्भ ही सूर्य-स्तुति से किया है। वैदिक संस्कृति की अजस्रधारा को अतिशय तीव्रगामी बनाने के लिए ही इनका जीवन ज्ञान-विज्ञान के अन्वेषण, विश्लेषण और विस्तार के लिए सर्वथा समर्पित था। ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में उनकी स्थापना आज भी अद्वितीय, अनुपमेय एवं निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ है।

बृहत्संहिता में दो श्लोक इस प्रकार से अपना भाव प्रकट करते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और तत्कालीन ब्राह्मण समाज ने उनको समुचित सम्मान नहीं दिया था। यह भी सत्य है कि सभी महान विचारकों तथा लेखकों को अपने काल में उपेक्षित रहना पड़ा और तत्कालिन समाज से संघर्ष करना पड़ा है। महाकवि भवभूति को कहना पड़ा कि "मेरी उपेक्षा करने वाले मुझे समझ नहीं पा रहें हैं, फिर भी अनन्तकाल और इस सुविस्तृत पृथ्वी पर कोई न कोई मेरा गुणग्राही कभी उत्पन्न हो ही जायेगा।"[2] महात्मा गोस्वामी तुलसीदास भी समाज की उपेक्षा से खिन्न होकर यह कहने को बाध्य हुए कि – "काहू के बेटा से बेटी न व्याहब, लेने को एक न देने को दोउ।" पण्डितराज जगन्नाथ की भी यही दशा थी और निर्गुणोपासक क्रान्तिकारी कवि कबीर दास की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी।

---

१. योगयात्रा – २। १–२।

२. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।। – मालतीमाधव की प्रस्तावना (भवभूति ७०० ई०)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथापि, वराहमिहिर की व्यथा इससे भिन्न थी। विद्वता की कोई चुनौती नहीं थी, वे अजेय थे। ज्योतिष की सर्वज्ञता प्रत्यक्ष प्रमाणित थी। राजज्योतिषी थे और प्रभावी रूप से प्रतिष्ठित थे। नवरत्नों में देदीप्यमान रत्न थे। पुनरपि, इनको जातिगत अपमान की वेदना थी, तभी तो कहना पड़ा कि "म्लेच्छ यवन भी शास्त्र को जान कर ऋषि-तुल्य पूजा के अधिकारी हैं, फिर दैवज्ञ-ब्राह्मण क्यों नहीं पूज्य हो सकते हैं" यथा –

[1]म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।।

ब्राह्मण की शुद्धता और श्रेष्ठता का विचार श्राद्ध-भोजन में विशेषतः किया जाता रहा है। कुछ पण्डितों ने सम्भवतः शाकद्वीपीय ब्राह्मण को श्राद्ध भोजन में सम्मिलित होने से निषेध कर रखा था। आज भी कुछ रूढ़िवादी ब्राह्मण किसी स्मृति-वाक्य अथवा पुराण वचन का उद्धरण देकर जो सर्वथा अप्रामाणिक एवं अव्यावहारिक है, का उल्लेख करते हैं। आचार्य वरामिहिर ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा कि "जो ब्राह्मण शास्त्र का मर्मज्ञ विद्वान हो और यथार्थतः शास्त्र का ज्ञाता हो, वही श्राद्ध में अग्रभुक् होना चाहिए, न कि वह जो केवल नाम मात्र का ब्राह्मण हो। "यथा –

[2]ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत् कृत्स्नं जानाति यो द्विजः।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः।।

आचार्य वराहमिहिर की इस मर्मान्तक पीड़ा को कोई भी विद्वान् समझ नहीं सका। इस श्लोक "म्लेच्छा हि यवनास्तेषु ...." की ऐतिहासिक दृष्टि से व्याख्या की गई और भारतीय ज्योतिषशास्त्र से यवनों के सम्बन्ध का विवेचन किया गया। वह व्याख्या भी समीचीन तथा समयोपयोगी है। राष्ट्रिय दृष्टि से इसका अत्यधिक महत्व है। यह प्रसंग मैंने इसलिए प्रस्तुत किया कि ज्ञान के क्षेत्र में रूढ़िवादिता, क्षेत्रीयता, उपजाति आदि के नाम पर कभी भी असहिष्णुता नहीं होनी चाहिए। भारतीय मनीषा ने कभी भी इस दोष को स्वीकार नहीं किया। उदाहरणार्थ 'ऐतरेय ब्राह्मण' के रचयिता 'इतरा' नामक शूद्रा के पुत्र थे, जिनको मन्त्रद्रष्टा ऋषि का स्थान प्राप्त है। साथ ही यह भी सत्य है कि अल्पज्ञ-जन सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाते और अपनी तथाकथित सुरक्षा के नाम पर असत्य का घरौंदा बना कर जीने का प्रयत्न करते हैं। तथापि, कालान्तर में सत्य ही सदा जीवित रहता है और आचार्य वराहमिहिर कालजयी होकर अमरत्व को प्राप्त करते हुए, आज भी पूजित एवं सम्मानित हो रहे हैं।

---

१. बृहत्संहिता – १।३०
२. तत्रैव – १।२९।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वराहमिहिर के सम्बन्ध में –

[१]इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में वराहमिहिर का उल्लेख करते हुए कहा गया है –

Varahmihira of the Gupta Age was a profound scholar of all the sciences and arts. From botony to Astronomy and from military science to civil Engineering. Their was also considerable devolopment of the medical sciences. According to contemporaries more than Eight Branches of medical sciences including surgery and Pediatrics. were practiced by the Physicians.

अर्थात् गुप्तकाल में वराहमिहिर कला एवं विद्वान के सभी क्षेत्रों के सुप्रतिष्ठित विद्वान थे। वनस्पति विज्ञान से खगोलशास्त्र तक तथा सैन्यविज्ञान से लोक–अभियन्त्रण तक इनकी पहुँच थी। उस काल में चिकित्साविज्ञान भी पूर्णतः विकसित अवस्था में था। समीक्षकों (व्याख्याताओं) के अनुसार चिकित्साविज्ञान की आठ शाखाएँ व्यवहृत थीं, जिनमें शल्य-क्रिया और बालरोग भी सम्मिलित थे।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र का उद्भव एवं विकास भारतीयों द्वारा ही हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने यह भ्रान्त धारणा फैलाई कि ग्रीक ज्योतिर्विदों का प्रभाव भारतीय ज्योतिष की शिक्षा पर पड़ी है। वेदों में ज्योतिष तथा गणित के विषय इतनी स्पष्टता के साथ उपस्थित हैं कि पाश्चात्यों के सभी तर्क निर्मूल सिद्ध हो जाते हैं। जिस प्रकार वैदिक ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति विश्व में सर्व-प्रथम एवं सर्वप्राचीन सिद्ध हो चुकी है, उसी प्रकार भारतीय-ज्योतिष की मौलिकता एवं प्राचीनता भी स्वयं सिद्ध है। इस विषय में स्वामी विवेकानन्द का यह कथन अवश्य ही ध्यातव्य है –

[२]"There may be, it is true some similarity between the Greek and Indian terms in astronomy and so forth, but the westerners have ignored the direct Sanskrit etymology and sougth for some far-fetched etymology from the Greek. That such shallow and biased learning has been manifested by many orientalists in the west is deplorable. From a single Sanskrit Sloka that reads", the Yavanas are Mlechchas; in them, this science is established; therefor, even they deserve worship like Rishis ....." in the west, they have gone so for as to declare that all Indian sciences are but echoes of the Greek; where as a true reading of the sloka may show that the Mlechcha disciples of the Aryans are herein praised in order to encourage them to a further study of the Aryan sciences.....".

---

१. The new Encyclopeadia Britanica (1988) voll. 18-15

२. बृहत्संहिता (अंग्रेजी अनुवाद) वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री १९४७ बैंगलोर, Introduction पृष्ठ ६.७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् "यह सत्य है कि खगोल विज्ञान में यूनानी और भारतीय शब्दों में कुछ समानताएँ हों या और भी कुछ, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने खगोलविज्ञान की व्युत्पत्ति सीधे संस्कृत से है, इस तथ्य की अवहेलना की है और एक कपोलकल्पित धारणा कि यह यूनान की व्युत्पत्ति है, इस पर बल दिया। प्राच्यवेत्ता कहे जाने वाले पाश्चात्यों द्वारा इस प्रकार के छिछले और भ्रान्तिपूर्ण विचार को व्यक्त करना, अत्यन्त शोचनीय (दुर्भाग्यपूर्ण) है। संस्कृत का एक श्लोक, जो पढ़ने में इस प्रकार है:– "यवन म्लेच्छ हैं, इनमें यह विज्ञान स्थापित है, इसी कारण (म्लेच्छ होते हुये भी) वे ऋषियों जैसी ही पात्रता रखते हैं" ...। इस आधार पर पाश्चात्यों ने यहाँ तक घोषित किया कि सभी भारतीय विज्ञान इनके (भारतीयों के) हैं किन्तु, इसमें यूनान की प्रतिध्वनि है। जब कि ठीक से श्लोक को पढ़ने पर यह दिखता है कि म्लेच्छ, जो आर्यों के विज्ञान का गहन अध्ययन करने के लिए उद्यत हुए, उनकी प्रशंसा की गई है और उन्हें एतदर्थ प्रोत्साहित किया गया है।"

उक्त कथन से स्वामी विवेकानन्द नें वराहमिहिर के उस श्लोक का वास्तविक भाव प्रकट किया है। पाश्चात्य विद्वानों की पक्षपातपूर्ण दृष्टि रही है, जिससे वे भारतीय उत्कर्ष को ठीक से नहीं देख सके। वस्तुतः वराहमिहिर का कार्य सम्पूर्ण विश्व के लिए उपादेय है, जिस पर पूरी मानवता गर्व कर सकती है।

विवृतिकार आचार्य भट्टोत्पल –

ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ 'खण्डखाद्य' की टीका में वरुण ने भट्टोत्पल को कश्मीरी बतलाया है। इनकी रचना-शैली तथा भाषा-प्रयोग से भी कश्मीरी होना ही सिद्ध होता है। बृहज्जातक की अपनी टीका का समय स्वयं भट्टोत्पल ने शकाब्द ८८८ लिखा है। इसी प्रकार बृहत्संहिता की विवृति का समय निरूपित करते हुए लिखते हैं –

फाल्गुनस्य द्वितीयायामसितस्य गुरोर्दिने।
वस्वष्टाष्टमिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया।।

इससे यही ज्ञात होता है कि **फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को गुरुवार के दिन शकाब्द** ८८८ में बृहत्संहिता की विवृति का निर्माण पूर्ण हुआ था। अतः इनका जन्म काल इसके पूर्व ही सुनिश्चित है। इनके विस्तृत कार्य एवं प्रौढ़ ज्ञान को देखते हुए उस समय इनकी अवस्था ५० वर्ष से न्यून नहीं कही जा सकती। इस प्रकार इनका जन्म काल शकाब्द ८३८, खिष्टाब्द ९१६ के आसन्न ही रहा होगा।

वराहमिहिर के प्रायः सभी ग्रन्थों की टीका भट्टोत्पल द्वारा की गई है। इनमें से योग-यात्रा, बृहज्जातक, लघुजातक और बृहत्संहिता पर की गई टीकाएँ उपलब्ध हैं। भट्टोत्पल नें अपनी टीका के महत्व को बतलाते हुए बृहत्संहिता के अन्त में लिखा है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्यप्रवरस्य बोधजलधेः पारं तितीर्षुर्जनो
व्यामुह्यन्नभिधेयरत्ननिचयैः काङ्क्षंस्तरीं भ्राम्यति।
इत्येवंविधमाकलय्य करुणामालम्ब्य भट्टोत्पल–
श्चक्रे तत्कृतिसंहिताविवरणं स्थैर्य प्लवं कीर्तये।।

तात्पर्य यह है कि "आचार्य वराहमिहिर की ज्ञानराशि समुद्र के गर्भ में स्थित रत्न के सदृश हैं। इस ज्ञानरत्न को सामान्य विधि से नहीं प्राप्त किया जा सकता। अत एव लोकोपकार के लिए सर्वसुलभ बनाने हेतु विवृति टीका की रचना की गई है" यहाँ पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि भट्टोत्पल, भटोत्पल अथवा उत्पल एक ही व्यक्ति की संज्ञा है।

आचार्य वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश की रचना 'षट् पञ्चाशिका' पर भी भटोत्पल की टीका है। ब्रह्मगुप्त की कृति 'खण्डनखाद्य' पर भी इनकी टीका है। इस प्रकार से टीकाकारों की श्रेष्ठ परम्परा में भट्टोत्पल का महनीय स्थान है। ज्योतिषशास्त्र के अब तक जो भी टीकाकार हुए हैं, उनके मध्य इनका सर्वश्रेष्ठ स्थान है। बृहत्संहिता की विवृति से तो इनका गंभीर अध्ययन, बहुज्ञता, व्याकरण एवं साहित्य का विपुल ज्ञान, ज्योतिष की मर्मज्ञता इत्यादि दुर्लभ-गुण स्पष्ट प्रमाणित हैं। कुछ स्थलों को देखकर तो प्रतीत होता है कि मूल ग्रन्थकार से भी आगे बढ़ कर विषय का प्रतिपादन किया गया है। बृहत्संहिता का प्रथम एवं द्वितीय अध्याय इसका स्पष्ट उदाहरण है। साथ ही उस समय के विद्यमान तथा उनके पूर्ववर्ती ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों का परिचय तो इनकी टीका से ही हो पाता है। अन्यथा हम बहुतों के विषय में आज कुछ भी नहीं जान पाते। कुछ स्थलों पर तो आठ-आठ टीकाकारों अथवा ग्रन्थकारों के उद्धरण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इनका सार्वभौम ज्ञान एवं प्रचुर परिश्रम इनकी विवृति से परिलक्षित होता है।

आचार्य भट्टोत्पल की मौलिक रचनाएँ –

प्राचीन ग्रन्थकारों के बहुत से ग्रन्थ आज लुप्तप्राय हैं। भट्टोत्पल का काल-खण्ड तथा उनके पश्चात् का समय भारतीय इतिहास में संघर्ष का रहा है। मुस्लिम आक्रमण-कारियों द्वारा अनेक शिक्षाकेन्द्रों एवं पुस्तकालयों को विनष्ट कर दिये जाने के फलस्वरूप हम अपने पूर्वजों के लाखों ग्रन्थों से वंचित हो गये हैं। कुछ ग्रन्थ तो काल की करालता और समाज की उदासीनता के कारण लुप्त हो गये। सम्भवतः ये ही कारण हैं कि भट्टोत्पल की रचनाओं के संकेत तो मिलते हैं, परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

आचार्य भट्टोत्पल गणित, फलित एवं संहिता ज्योतिष के मूर्धन्य विद्वान थे। इनके ग्रन्थ गणित ज्योतिष, पंचाङ्ग गणित तथा वास्तुशास्त्र एवं शकुन के सम्बन्ध में भी थे, ऐसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकेत मिलते हैं। बृहत्संहिता के प्रथम अध्याय में 'अस्मदीयवचनम्' कहकर जो सन्दर्भ दिया हुआ है उससे विदित होता है कि ज्योतिष गणित पर इनका स्वतन्त्र ग्रन्थ रहा होगा। इसी प्रकार ब्रह्मगुप्त कृत खण्डखाद्य की टीका में भी इनके अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। 'प्रश्नज्ञान' नामक प्रश्न विषयक एक ग्रन्थ ७२ आर्या छन्द में उपनिबद्ध है। अलबेरूनी के मतानुसार 'कर्णपात' नामक करणग्रन्थ भट्टोत्पल द्वारा निर्मित है। इनका 'श्रुधव' नामक ग्रन्थ शकुन विषय से सम्बन्धित है। बृहत्संहिता के वास्तुविद्याध्याय में (५२। ५७) भट्टोत्पल ने व्याख्या करते हुए लिखा है – ''तथा चास्मदीयवास्तुविद्यायाम्'', इससे ज्ञात होता है कि वास्तु शास्त्र पर इनका स्वतन्त्र ग्रन्थ रहा होगा।

भट्टोत्पल एक मौलिक चिन्तक और महान लेखक के रूप में स्मरण किये जाते रहेगें। इनका कार्य न केवल ज्योतिर्विदों के लिए अपितु खगोल विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में गवेषणा करने वाले समस्त अध्येताओं के लिए सर्वथा उपयोगी है। इनके कार्य पर हम भारतीयों को महान् गर्व है।

हिन्दी व्याख्या के सम्बन्ध में –

बृहत्संहिता के महत्व से सभी विद्वान् सुपरिचित हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन हेतु इसकी अनिवार्यता सम्पूर्ण भारतवर्ष में देखी जा सकती है। बृहत्संहिता के मूल श्लोकों के अनुवाद हिन्दी, अंग्रेजी एवं मराठी तथा बंगला आदि भाषाओं में वर्षों से उपलब्ध हैं किन्तु आचार्य भट्टोत्पल की बृहत्संहिता पर विरचित विवृति का पूर्ण अनुवाद अद्यावधि कहीं पर भी नहीं किया जा सका है। यद्यपि बृहत्संहिता के मूल पाठ का अनुवाद सभी अनुवादकों ने भट्टोत्पल की विवृति से सहायता प्राप्त कर ही किया है, तथापि विवृति का पूर्ण अनुवाद किसी के भी द्वारा नहीं हुआ।

विवृति का अनुवाद संभवत: विषय का विस्तार एवं प्राचीन ग्रन्थों के अप्रचलित शब्दों और क्लिष्ट प्रयोगों के कारण ही नहीं हुआ। इस क्लिष्टता का अनुभव मैंने इस ग्रन्थ के अनुवाद में प्राय: अनेक स्थलों पर किया है। बहुत से स्थलों पर विषय को स्पष्ट करने के लिए मुझे विशेष व्याख्या तथा टिप्पणी के रूप में व्याख्यायित करना पड़ा है। मुझे विश्वास है कि मेरे इस प्रयत्न से बृहत्संहिता के अध्येताओं को विशेष लाभ होगा। मूल ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रथम बार महामहोपाध्याय 'पं० सुधाकर द्विवेदी' द्वारा सम्पादित हुआ था, जो यूरोपदेशीय डॉ० कर्ण (Dr. H. Kern, १८६४ ई०) के अंग्रेजी संस्करण के उपरान्त हुआ। तत्पश्चात् यह ग्रन्थ इसी विश्वविद्यालय से संवत् २०२५ (१९६८ ई०) में तत्कालीन ज्योतिष विभागाध्यक्ष पं० अवधबिहारी त्रिपाठी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। पुन: यह ग्रन्थ संवत् २०५३ में इस विश्वविद्यालय द्वारा तत्कालीन ज्योतिष विभागाध्यक्ष डॉ. कृष्णचन्द्र द्विवेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो कि दो भागों में उपलब्ध है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद नहीं किया गया है। अतः बृहत्संहिता के मूल श्लोकों के साथ ही भट्टोत्पल की विवृति सहित इसका हिन्दी अनुवाद मैंने सर्वप्रथम इस रूप में प्रस्तुत किया है। संस्कृत भाषा के प्राचीन प्रायोगिक शब्दों में गुम्फित विषयों को आधुनिक सन्दर्भ में निरूपति करना कितना कठिन है, इससे सुविज्ञजन सम्यक्तया परिचित हैं। मेरा प्रयत्न रहा है कि मूल अर्थ को यथावत् रखते हुए सरलता से भाव-सम्प्रेषण हो सके। भावार्थ प्रकट करते समय भी मूल पाठ का ध्यान रखा गया है। यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित चार भागों में प्रकाशित होगा और हिन्दी के विद्वानों के लिए इसकी उपयोगिता में वृद्धि होगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

कृतज्ञता –

इस ग्रन्थ में अध्ययन काल से ही मेरी विशेष अभिरुचि रही है। मेरी अभिलाषा थी कि विवृति सहित इसका हिन्दी अनुवाद हो। यही इच्छा दृढ़ संकल्प के रूप में परिणत होकर आप सुधी–सज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत है । सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वर्तमान प्रकाशन – निदेशक डॉ. हरिश्चन्दमणि त्रिपाठी की सत्प्रेरणा एवं बहुमूल्य सुझाव से ही यह कार्य हुआ है। उनकी भी अभिलाषा थी कि यह महनीय ग्रन्थ हिन्दी भाषा में अनूदित होकर प्रकाशित हो। इस सत्प्रेरणा के लिये मैं इनको अपनी अतिशय कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय के प्रकाशनों को समुन्नत अवस्था में लाने का श्रेय निश्चित ही डॉ. हरिश्चन्द्रमणि जी को मिलना चाहिए। इनके ही कारण यहाँ का प्रकाशन विभाग न केवल इस विश्वविद्यालय में अपितु भारत के सभी विश्वविद्यालयों की तुलना में श्रेष्ठतम माना जाता है।

अन्त में इस ग्रन्थ के मुद्रक, प्रकाशक तथा अन्यान्य सहयोगी–बंधुओं को मेरी कृतज्ञता समर्पित है।

डॉ. नागेन्द्र पाण्डेय
उपाचार्य ज्योतिष विभाग, सम्पूर्णानन्द
संस्कृतविश्वविद्यालय एवं
अध्यक्ष उ.प्र. संस्कृत संस्थान लखनऊ

वसन्त पञ्चमी सं० २०५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दीव्याख्याकर्तुः परिचयः

महीतले लोकविशोकधाम,
विभारतं भारतवर्षमेतद्।
हर्षप्रकर्षं तनुते सुराणां
स्वभूतयेऽस्मै स्पृहयन्ति तेऽपि।। १।।
तदुत्तरं प्राज्यसमृद्धराज्यम्
औत्सर्गिकं जीवनिकायधाम।
विश्वस्यगोप्ता पुरूषोत्तमो यत्
स्वजन्मनाऽलङ्कृतवान् निकामम्।। २।।
वसन्ति यत्रागमवेदविद्या
विज्ञानपूताः क्रतुकर्मसिद्धाः।
वर्णाश्रमाचाररताः प्रसिद्धा
वादेषु वागीशसमा विदग्धाः।। ३।।
पारे सरय्वा विमले विशाले
कौबेर कूलेऽधिगतागमानाम्।
निवासभूमिः प्रथिता पृथिव्यां
सिवानाम्ना सुकृतार्थसीमा।। ४।।
मण्डलेऽस्मिन् सिवानाख्ये भाँटीग्रामः सुमेधसाम्।
रघुनाथपुरस्थाने निकटे तन्त्रवेदिनाम्।। ५।।
तत्रमुद्गलगोत्रीयाः शाकद्वीपोद्भवा द्विजाः।
सामवेदेषु निष्णाताः पुण्यार्कपुरवासिनः।। ६।।
वसन्तिशास्त्रकुशलास्तन्त्रागमविशारदाः ।
श्रौतस्मार्तक्रियादक्षा विबुधा बहुविश्रुताः।। ७।।
परमेशकृपापात्रं तेषु जातः सुधीवरः।
परमेश्वरपाण्डेयः पराम्बासेवने रतः।। ८।।
तस्मान्नन्दकुमारोऽभूद्धीमान् सुकृतिनां वरः ।
शिवपूजनपाण्डेयस्तत्पुत्रोऽभूद्विदांवरः ।। ९।।
अयं मे जनकः श्रीमान् माता वागीश्वरीमता।
ताभ्यां जातोऽस्मिनागेन्द्रपाण्डेयः सुध्युपासकः।। १०।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शराम्बरनखेशुभ्रे (२००५) वैक्रमेऽब्दे बुधे दिने।
आषाढस्य सिते पक्षे जातोऽहं प्रतिपत्तिथौ।। ११।।
वसुवेदाङ्कचन्द्राख्ये (१९४८) वत्सरेख्रिस्तसम्मते।
सप्तमे मासि वा जातो दिनाङ्केऽस्मिञ्चतुर्दशे।। १२।।
शैशवकालेऽतीतेऽध्ययनाय धोकरहामितोग्रामम्।
चम्पारण्यजनपदे रामनगरसन्निधौ संस्थम्।। १३।।
खरसाङ्कशशिन्यब्दे (१९६०) प्रथमां परीक्षां समुत्तीर्याहम्।
देवरियाऽन्तर्वर्तिन्युपहाटापत्तनं ग्रामम्।। १४।।
रामपुरं समवाप्तः स्वपितृव्य — देवतापाण्डेयानाम्।
तत् पुत्रश्रीगिरिजापण्डितसंरक्षणेऽध्येतुम्।। १५।।
एकषष्टिमितादब्दात् पञ्चषष्टिमितं सदा।
अधीयानः प्रयत्नेन मध्यमां तीर्णवानहम्।। १६।।
ततो वाराणसीमेत्य विश्वेश्वरप्रसादतः।
सिद्धान्तज्योतिषे शास्त्रे — आचार्यत्वमुपेयिवान्।। १७।।
ख्रिस्ताब्दे सप्तनितमे गुरुजनानुग्रहादहम्।
ततोऽनुसन्धानरतो ग्रन्थग्रन्थिविभेदनात्।। १८।।
सप्तसप्तति ख्रिस्ताब्दे विद्यावारिध्युपाधिभाक्।
अशीतितमख्रिस्ताब्देऽधीती फलितज्योतिषे।। १९।।
परीक्षायां च प्राप्ताङ्कैः सतीर्थ्यानतिशय्य तान्।
आचार्यत्वं समालेभे सस्वर्णपदकद्वयम्।। २०।।
'एम. ए.' च मास्टरोपाधिं संस्कृते लब्धवानहम्।
साहित्यं शब्दशास्त्रं च गुरूभ्योऽधीतवांस्तथा।। २१।।
सितम्बरस्य मासस्य — आद्वितीयदिनाङ्कतः।
रससप्ताङ्कचन्द्रेऽब्दे (२—९—१९७६ ई०) प्राध्यापकंपदेऽभवम्।। २२।।
सम्पूर्णानन्दसंस्कृत—विश्वविद्यालयेऽनिशम् ।
विभागे ज्योतिषे छात्रान् पाठयन्नुपलब्धवान्।। २३।।
उपाचार्यपदं तावन् निर्दिशामि गवेषकान्।
लिखामि विविधान् ग्रन्थान् पाठयामि प्रवच्मि च।। २४।।
सप्ताङ्कग्रहचन्द्राब्दात् ऐशवात् जूनमासतः (जून १९९७)
वर्षत्रितयपर्यन्तमुपाध्यक्ष्यमुपोढवान् ।। २५।।
''उत्तरप्रदेशसंस्कृत—संस्थानं'' तस्य यत्नतः।
संस्कृतस्य प्रचाराय स्थापितं लक्ष्मणेपुर।। २६।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम्प्रतं जूनमासस्य चर्तुदशदिनाङ्कतः।
द्विसहस्रतमादब्दात् (१४.६.२००० ई०)आध्यक्ष्यं निर्वहाम्यहम्।। २७।।

कृतज्ञता ज्ञापनम् —

येषामनुग्रहादेव ज्योतिः शास्त्रमधीतवान्।
काश्यां संख्यावतां मध्ये संख्या मेऽभूदनुत्तमा।। २८।।
वन्द्यास्तेगुरवोऽस्माकं विद्याबुद्धिप्रदायिनः।
वाक्सुमैस्तान् समभ्यर्च्य कार्तज्ञं ज्ञापयाम्यहम्।। २९।।
वन्दे श्रीकमलाकान्तं यशस्विनमहर्निशम्।
श्रीप्रेमजननीविद्यालयाचार्यं त्रिपाठिनम्।। ३०।।
श्रीनाथसंस्कृत — महाविद्यालयमहागुरून्।
श्रीनारायणशुक्लाख्यान् प्राचार्यान् नौमि सादरम्।। ३१।।
तत्रैव ज्योतिषाचार्यं विभागाध्यक्षमुत्तमम्।
बलराममुपाध्यायं सस्नेहं प्रणतोऽस्म्यहम्।। ३२।।
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य तान्
अध्यक्षान् ज्योतिषे शास्त्रे लब्धख्यातीन् यशस्विनः।। ३३।।
शोधनिर्देशकान् विद्यागुरूनवधविहारिणः।
स्वर्गतानपि हृद्देशे स्थितान् वन्दे त्रिपाठिनः।। ३४।।
प्राचीने शब्दशास्त्रे तं प्राध्यापकमनुत्तमम्।
तत्रैव चन्द्रबलिनं प्रणमामि द्विवेदिनम्।। ३५।।
काश्यां समागतस्यादौ साहाय्यं कृतवान् मम।
समेषां विदुषामेषामाधमर्ण्यं वहाम्यहम्।। ३६।।
कालेऽस्मिन् स्मरणीयतामुपगतो भ्राता सुदामा बुधः
ज्येष्ठो ज्येष्ठगुणैरूपस्कृततनुः सत्कर्म वर्मावृतः।
ख्यातः कृष्णसखेव शुद्धचरितो बद्धानुरागो मयि
स्वर्यातोऽपि सदैव नः स्मृतिपथं स्नेहादलं गाहते।। ३७।।
चिकित्साधिकारी द्वितीयोऽद्वितीयोऽगदङ्कारमध्ये स्वशास्त्रे प्रवीणः।
मयि स्नेहशीलः समाजस्य सेवारतो वन्द्यते मेऽग्रजः श्रीलमुन्ना।। ३८।।
सगर्भोत्तमा सौख्यसौभाग्ययुक्ता गृहस्थोचिते चारुकृत्येऽनुरक्ता।
मयि स्निग्धभावाऽग्रजा सन्मतिर्मेऽधुना वन्द्यते पार्वतीपार्वतीव।। ३९।।

कृतयः —

दिग्देशकालविज्ञानं प्रथमा रचना मम।
पञ्चस्वरा द्वितीयाऽस्ति, रेखागणितमुत्तमम्।। ४०।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीया रचना प्रोक्ता जिज्ञासूनां सुखावहा।
खगोलपरिभाषाख्या तुरीया कृतिरुत्तमा।। ४१।।
रचिता ज्योतिषशास्त्रे साहित्यसौन्दर्यमुत्तमं भाति।
विदुषामामोदार्थं बोधार्थं छात्रवर्गाणाम्।। ४२।।
बृहत्संहिता यत्र दैवज्ञविद्या ग्रहाणां गतिर्धूमकेतोः प्रभावः।
रवीन्दूपरागस्य लोके विपाकः तथा वास्तुभूगर्भविज्ञानसारः।। ४३।।
चिकित्सा पशूनां परीक्षा मणीनाम् अवेक्षा तरूणां तथा कामिनीनाम्।
महत्त्वं स्त्रियो अङ्गविद्या विशिष्टा शुभं पैङ्गलं वास्तुशास्त्रं मनोज्ञम्।। ४४।।
वराहमिहिराचार्यरचितेयं मनोहरा ।
भट्टोत्पलकृता तत्र विवृति राजतेतराम्।। ४५।।
जिज्ञासूनां प्रबोधाय तस्या व्याख्या कृता मया।
भाषायां सरला प्रौढा विपश्चिद्भिः समादृता।। ४६।।
लिखिता ज्योतिःशास्त्रे सन्तानविमर्शाद्या निबन्धाश्च।
संस्कृतगिरानिबद्धा दश भाषायां च राजन्ते।। ४७।।
शान्तस्वभावशुभशीलधनां कृतार्थां
कल्याणबुद्धिमनिशं गृहकर्मदक्षाम् ।
'कान्तिं' नितान्तकमनीयगुणां क्षणेऽस्मिन्
सम्भावयामि गृहिणीं मृदुभाषिणीं ताम् ।। ४८।।
बालेन्दुशेखरकृपालावसम्भृतश्रीः,
शुभ्रेन्दुशेखर इति प्रथिताभिधानः ।
पुत्रः प्रशस्तीधषणात् स्वगुरोश्चिकित्सा–
शास्त्रं समग्रमधिगच्छति तच्छ्रिये स्यात् ।। ४९।।
विद्यानिधेर्भगवतः कृपया प्रसूता,
श्रीपार्वती – पदसरोजपरागपूता ।
कन्या ऋचा श्रुतिगिरोऽर्थसमा गरिष्ठा,
विज्ञानबोधमधिगम्य भजेत् प्रतिष्ठाम् ।। ५०।।
ध्यातः सदा मुनिवरैः परिपूर्णरूपः,
यस्येन्दुना लसति शुभ्रजटाकलापः ।
तस्य प्रसादविभवाप्तकुशाग्रबुद्धिः
पूर्णेन्दुशेखर सुतो लभतां समृद्धिम् ।। ५१।।

◆

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृतभूमिका

वराहमिहिरस्तस्य बृहत्संहिता च

धन्योऽयं वराहमिहिरो यस्य ज्योति–प्रभा अद्यापि ज्योतिर्जगति न केवलं भारतेऽपि तु समग्रेऽपि विश्वे तथैव प्रभासते यथा सार्धसहस्रमिते पूर्वे वर्षे चमत्कृताऽऽसीत्। अप्रतिमस्यास्य महापण्डितस्य विद्वत्ता खगोलशास्त्रे, भौतिकज्योतिषशास्त्रे, फलितज्योतिषे, अन्यान्येषु च लौकिकोपयोगिविषयेषु यथा दृश्यते, तथा तु न ततः पूर्वं पश्चाच्च वा। अस्य कवित्वशक्तिः, वैज्ञानिकं च खगोलीयज्ञानं, भारतीयशास्त्राणां परिशीलनं, विषयानुकूलभावोप–स्थापने दक्षता, लेखकीयसिद्धता च अपूर्वा एव विद्यते। विश्वविश्रुतस्यास्य वराहमिहिरस्य देश–काल–कृतिविषये ऐतिहासिकदृष्ट्यात्र विचारः करिष्यते, सहैव तस्य रचनासु भारतीयसंस्कृतेः परिचयोऽपि प्रदास्यते।

जन्मस्थानम्–

वराहमिहिरः स्वकृतौ बृहज्जातके स्वकीयं परिचयमेवं दत्तवान् यथा –

''आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्
होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार''॥ १॥

अनेन ज्ञायते यदस्य जनक आदित्यदास आसीत्। अवन्तिकायाः (उज्जयिन्याः) समीपे कापित्थके ग्रामे चास्य निवास आसीत्। स्वपितृचरणैरेव सम्यक्तया शास्त्रज्ञानं प्राप्त। वराहमिहिरस्य ग्रन्थानां सुप्रसिद्धो विवृत्तिकारः (टीकाकारः) महान् विद्वान् भट्टोत्पलो बृहत्संहितायाः प्रथमश्लोकस्यावतरणे अत्रैवम्– ''तदयमप्यावन्तिकाचार्यमगधद्विजवराह– मिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसाद. .....तत्प्रधानं सूर्यमादावेव प्रणनाम''। एतेन अस्य मगधद्विजत्वं सिद्ध्यति। यथात्र विषये महामहोपाध्यायसुधाकरद्विवेदी गणकतरङ्गिण्याम्–''अयं मगद्विजोऽर्थात् सूर्योपासको ब्राह्मणः न हि जीविकार्थं मगधादुज्जयिनीं गतस्य वराहस्य मगधद्विजत्वमसम्भवम्। मगधे स्वगेहे निजपितुः सम्यग् ज्योतिषमधीत्याऽऽर्यभटादिसिद्धान्तं चावगम्य स्वप्रसिद्ध्यर्थं धनार्जनार्थं च देशाटनं कुर्वता वराहेण काम्पिल्लके सूर्यदेवाराधनेन वरप्रसादमासाद्य परम्परया विक्रम– नरपतिविभूषितां लब्धकान्तिकामवन्तिकामवाप्य तत्र वसतिः कृता''।

अत्रेदं ज्ञातव्यं यद् वराहमिहिरः सूर्योपासकोऽभवत्। तस्य सर्वेष्वेव ग्रन्थेषु भगवतः सूर्यस्यैव स्तुतिर्विद्यते। तस्य सूर्योपासकत्वं विज्ञायैव भट्टोत्पलेन लिखितं स्वमङ्गलाचरणप्रसङ्गे–

''यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषं
तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधाद्
इत्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते''॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् साक्षात् सूर्यस्यैव अवतारभूतोऽयं वराहमिहिर आसीत्। निश्चितमेव सूर्योपासका भारतीयसंस्कृतेरबिच्छिन्नाङ्गभूता मगद्विजाः प्रामुख्येन मगधक्षेत्रे निवसन्नासन्। विषयेऽस्मिन् भविष्यपुराणे एका कथाऽस्ति। सूर्योपासनाद्वारा कुष्ठव्याधिव्याधितस्य शाम्बस्य नैरुज्याय शाकद्वीपादानीता विप्रा इमे शाकद्वीपीयाभिधामिताः। पुनः शाम्बस्य कुष्ठशमनानन्तरं गरुडेन नीयमाना जरासन्धेन प्रार्थिता राजगृहे बिहारप्रदेशैकदेशे गरुडादवतीर्य केनापि प्रयोजनेन न्यवात्सुरित्येतत् सर्वं शाम्बपुराणादवगम्यते। पटना-गया-जनपदेषु एतेषां संख्या भूयसी वर्ततेऽद्यापि। अनेनैव कारणेन बिहारप्रदेशे, उत्तरप्रदेशस्य च पूर्वस्मिन् भागे सूर्यषष्ठीव्रत-परम्परा प्रसिद्धिं प्रापत्। एवमेव शाकद्वीपीयद्विजानां शनैः शनैर्भारते प्रसारे जाते सूर्योपासनायाः प्रचण्डः प्रतापः पराकाष्ठामध्यगच्छत्।

सूर्योपासका एते मगद्विजा जीवनयात्रानिर्वाहाय सकलमपि भारतं स्वनिवासेन समलमकार्षुः। अल्पीयसापि संख्यया एते सम्पूर्णे भारते निवसन्ति। मग—मागध—भोजक—शाकद्वीपीय—ब्राह्मणत्वेन जातिरपि तेषां प्रसिद्धा।

क्वास्ति शाकद्वीपः ?

आधुनिकैतिहासकाराणां मतेन शकानां मूलनिवासो एशियामध्यक्षेत्रे आसीत्। चीनदेशस्य ''यूपी''—आतङ्कवादिना ते तत्र निर्वासिता वैक्ट्रियामिश्र—ईरान—काबुल—प्रदेशेषु गताः। सीस्तान—सिन्धुप्रदेशस्य भागाश्च शकद्वीपनाम्ना बोध्यन्ते। उत्तरभारते तेषां विस्तृतं साम्राज्यमासीत्। पंजाब—मथुरा उज्जैन—गुजरात—राज्येषु ३०० वर्षाणि यावत्तेषां राज्यामासीत्। शकसंवत्सरस्य प्रचलनं (७८ ई०) तेषां महत्वं सकलेऽपि भारते प्रत्याख्यापयति[१]।

अत्रेदं ध्यातव्यं यद् विष्णुपुराणाधारिते सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्यो भुवनकोशवर्णन—प्रसङ्गे जम्बुद्वीपस्य दक्षिणे भागे शाकद्वीपस्य स्थितिं निर्धारयति स्म[२]। तथैव आचार्यः श्रीपतिरपि स्वकीये सिद्धान्तशेखरे प्रतिपादितवान्, भूगोलवर्णनप्रसङ्गे[३]। एवं प्रकारेण आधुनिकानां मतानि भारतीयेतिहासशास्त्रविरुद्धानि सन्दिग्धानि च सन्तीति निश्चप्रचम्। पुनश्च, वैदिककालत एव सूर्योपासनायाः सुमहत् प्रतिष्ठा दृश्यते। यथा ऋग्वेदे— **''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च''** (१। ११५। १)।

सूर्यतापीयोपनिषदपि स्पष्टमुद्घोषयति—

''एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष च भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिदेवात्मा सर्वदेवमयो रविः''।। (१। ६)

वाल्मीकिरामायणेऽपि रावणं विजेतुं दिव्यां शक्तिमर्जितुकामाय भगवते रामचन्द्राय सूर्योपासनामुपदिशन् महर्षिर्मैत्रावरुणिः सर्वदेवमयस्य दिनमणेर्माहात्म्यं महता संरम्भेणावादीत्—

---

१. हमारा इतिहास और नागरिक जीवन, भाग—१, उ० प्र० शासन, पृ० ६७।

२. श्लोकः.२५;

३. अध्यायः १५, श्लोकः—३३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः"॥

महाभारते पाण्डवानां वनगमनकाले तेषां शत्रुपराजयोपायवर्णने भगवान् श्रीकृष्णः सूर्यस्य त्रिमूर्त्तित्वं व्याजहार–

"प्रातःकाले भवेद् ब्रह्मा मध्याह्ने तु महेश्वरः।
सायंकाले भवेद् विष्णुस्त्रिमूर्त्तिश्च दिवाकरः॥

(म० भा०, आदिपर्वणि)

एवं बहुविधानि तथ्यानि भारतीयसंस्कृतौ भगवतः सूर्यस्योपासनाया अनिवार्यतां महत्त्वं च विनिर्दिशन्ति। अतो नूनमेव सर्वेऽपि सूर्योपासका मगद्विजाः, मागधाः, शाकद्वीपीया वा सर्वशुद्धा भारतीया एव। प्रायो मूढधिय एव अज्ञानवशाद् मगद्विजान् अभारतीयं कथयन्ति। वराहमिहिरविषयेऽपि अज्ञानाधारिता एवंविधा चर्चा यत् क्रियते, तत्तु निन्दनीया। बृहत्संहितायाः सम्पादनावसरे तत्र "अवतारिकायां" (भूमिकायां) श्रीपण्डित-अवधबिहारी-त्रिपाठिमहोदयानां[1] कथनम्– "भट्टोत्पलस्याप्याचार्यजन्मविषये कदाचिदज्ञानं भवेत्, आचार्यस्य पूर्वजा मगधदेशादागत्य उज्जयिन्यां कृतनिवासा भवेयुः, येन भट्टोत्पलेन मगद्विज इति विशेषणं प्रयुक्तम्। परमाचार्यस्य मगधद्विजत्वेऽभिमानो नासीत्। तेनास्य मगद्विजत्वं विवादास्पदमेव"[2] इति तु न यथार्थतां भजति, अपि तु कश्चन पूर्वाग्रह एव। यतो वराहमिहिरेण कस्यापि द्विजत्वविशेषस्य कुत्रापि चर्चा स्वयं न कृता। अत एव अप्रतिमविद्वत्तापरिपूर्णस्य आचार्यभट्टोत्पलमतस्य निरसने किं कारणमौचित्यपूर्णम् ? नैव। विषयेऽस्मिन् मम हिन्दी-भूमिकायां "वराहमिहिरस्य व्यथा" भृशमवलोकनीया।

वराहमिहिरेण प्रतिमाप्रतिष्ठापनाध्याये वर्णितं यत् केन सम्प्रदायेन कस्य देवविशेषस्य प्रतिमां प्रतिष्ठाप्य पूजनं कार्यम्। तत्र सुस्पष्टमुक्तं यत् सूर्यस्य पूजनं मगैः कर्त्तव्यम्। वस्तुतस्तु प्रामाणिकरूपेण वराहमिहिर एव सर्वप्रथमं मगानां सूर्योपासकत्वं साम्प्रदायिकत्वन सूचितवान्, इत्यत्र नास्ति भ्रमः। यथात्र द्रष्टव्यम् –

विष्णोर्भागवतान् मगाश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्
मातॄणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रान् विदुर्ब्राह्मणः।
शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदु–
यैर्यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया॥

(बृ० सं० ५९। १९)

सन्दर्भेणानेन वराहमिहिरस्य मगत्वं प्रति गौरवम्, तेषां पूजापद्धतीनां सुविस्तृतं ज्ञानं

---

१. एते मे गुरव आसन्। एतेषां निर्देशनेऽहं "ज्योतिषशास्त्रे दिग्देशकालज्ञानम्" इत्यस्मिन् विषये १९७७ खृष्टाब्दे शोधकार्यं कृतवान्। एते विशिष्टविद्वासः संपूर्णानन्द संस्कृत-विश्वविद्यालये ज्योतिषविभागाध्यक्षाश्चासन्।

२. सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयद्वारा प्रकाशितम्, प्रथमसंस्करणम् १९६८ ई०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चात्र द्योतते। यतो हि– यद्येवं न, तदाल्पसङ्ख्यावतां मगानामुल्लेखस्यात्र किमौचित्यम् ? नूनमेव तस्यात्मसम्बन्ध एवात्र कारणम्।

एवमत्र मगद्विजानां स्थानं त्वद्यापि पटना–गयादिक्षेत्रे प्रसिद्धम्; परन्तु शाकद्वीपस्य सुनिश्चितं स्थानं कुत्र भविष्यतीति प्रश्नः सम्यगुत्तरमपेक्षते।

यदि जनश्रुतिरपि विचारणीया स्यात्तदा तस्य जन्मविषय एका कथा मया डॉ० राजकिशोरत्रिपाठिना[१] या श्रुता, सा त्वेवं विद्यते–वराहमिहिरस्य पिता महान् गणितज्ञो ज्योतिर्विच्चासीत्। वराहमिहिरस्य प्रसवकाले तेन धात्री निर्देशिता यज्जाते प्रसवे तत्क्षणमेव लघुकन्दुकमेकं प्रसूतिगृहाद् बहिद्वरि प्रक्षेपणीयम्, सः स्वपञ्चाङ्गादिकं साधयित्वा स्वासने प्रतीक्षमाणोऽभवत्। धात्र्या तु जाते जातके तथैव कृतम्, किन्तु प्रसूतेर्विशेषवेदनां दृष्ट्वा तस्या उपचार एव दत्तावधाना सा न ज्ञातवती यत् प्रसवसमयसङ्केतात्मकः कन्दुको बहिर्न गत्वा द्वारे चतुष्काष्ठेऽवरुद्धोऽस्ति। किञ्चित् कालान्तरे यदा प्रसूतिः स्वाभाविकीं स्थितिं प्राप्तवती तदा धात्री सप्रसन्ना प्रसूतिकक्षतो बहिर्गमनकाले द्वारपार्श्वेऽवरुद्धं कन्दुकं ददर्श। पुनश्च स्वामिभयात् तत्पश्चात् कन्दुकं बहिः प्रक्षिप्तवान्, यथा पूर्वं निर्देशिताऽऽसीत्। पिता च कन्दुकदर्शनकालिकलग्नादिकं साधयित्वा, जातकस्य जन्मकुण्डल्यां "परजात–योगं" (जारजं) ज्ञात्वा अत्यधिकं खेदमनुभूय तत्क्षणमेव गृहं त्यक्तवान्। परेण पुरुषेण जातः बालकः परजातो भवति ।

पिता तु सुदूरे देशान्तरे गत्वा क्वापि स्वबुद्धिविद्याबलप्रभावाद् राज्याश्रयं (मन्ये अवन्तिकायां) प्राप्तवान्। इतस्तु, वराहमिहिरो बाल्यकाले स्वपितुर्विषये इदं श्रुतवान् यत् सः तस्य जन्मदिवसादेव न जाने कथं कुत्र च गतवान्। बालो वराहमिहिरः स्वाध्ययनकाले गृहात् प्राचीनजीर्णकुण्डलीं तत्र परजातयोगं च दृष्ट्वा, मात्रा धात्र्या च स्वजन्मकालिकं वृत्तान्तं पूर्णं ज्ञात्वा पुनश्च नवीनां स्वकीयां जन्मकुण्डलीं निर्माय पितुर्गृहत्यागस्य कारणं ज्ञातवान्। तत्पश्चादेव तस्य मनसि पितुरन्वेषणस्य चिन्ता जाता। तस्मिन् समये अवन्तिका एव पण्डितानां शीर्षभूमिरासीत्। तत्र गत्वा स ज्ञातवान् यदत्र राज्यज्योतिषी एव अस्मज्जनकः। अप्रकटरूपेण वराहमिहिरेण कस्यापि उल्कापातस्य कालनिर्धारणविषये शास्त्रार्थे पित्रा विरुद्धमतमुद्घोषितम्। राजसभायां समुत्पन्ने विवादेऽस्मिन् राज्ञा निर्णीतं यद् यस्य निर्धारिते काले उल्कापतनं भविष्यति, स एव विजयी स्यात्। प्राप्ते काले, वराहमिहिरोद्घोषिते समय एव उल्कापातमभवत्, न तु पितुः काले। राज्ञाऽयं युवको खगोलगणितज्ञो बहुसम्मानितः, परन्तु स्वगणनायामसफलो वृद्धदैवज्ञस्तस्य पिता रहस्यमपृच्छद् यन्मम गणनायां कुत्र अशुद्धिरासीत्, कथं च त्वया सफला गणना कृता ? युवा वराहमिहिरेणोक्तं यत्तथैव भूचलनवशादन्तरमविचार्यैव भवता गणना कृता, यथा स्वात्मजस्य जन्मकाले पूर्णतथ्यमज्ञात्वैव परजातयोगं निश्चित्य गृहान्निस्सरणं कृतम्। ततः सकलं वृत्तान्तं ज्ञात्वा सानन्दं तौ अवन्तिकायां वसन्तौ आस्तामिति।

---

१. प्राध्यापकचरः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथेयं मगधादुज्जयिन्यां गमनस्य तस्य समर्थनं करोति। पूर्वोत्तरप्रदेशे, दक्षिणपश्चिमे बिहारप्रदेशे चेमां कथां ग्रामीणाः पण्डिताः प्रायशः कथयन्ति।

अनेन तस्य जनको गुरुर्नासीदित्यपि तथ्यमसन्दिग्धतां भजते[1]। आर्यभटस्य समकालिकतया मन्ये, भूचलनस्य ज्ञानमपि वराहमिहिरस्यासीत्।

कालः — स्वमुखेन स्वकीये कालविषये वराहेण न किमप्युक्तम्। पञ्चसिद्धान्तिकानामके स्वग्रन्थे रोमकसिद्धान्तानुसारेण अहर्गणं गणयता वराहेण सप्ताश्विवेदमितशकादहर्गणः। साधितः, यथा—

सप्ताश्विवेदसङ्ख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये॥ (१। ८)

प्रायः करणग्रन्थेषु वर्तमानकालादेवाहर्गणः साध्यते। अतो ४२७ शकाब्दे वराहस्य एतद्ग्रन्थनिर्माणकाले स्थितिः सिद्ध्यति; परन्तु तस्मिन् समये वराहमिहिरस्य वयोऽष्टादशवर्षसमं सुधारकद्विवेदिना[2], पञ्चदशवर्षसमं बालकृष्णदीक्षितेन[3] यत् कल्पितं तत्तु वराहमिहिरस्य विशदं ज्ञानं दृष्ट्वा न रोचते। अतः ४०० शकाब्दे तस्य जन्मकालो मन्तव्यः, यथा २७ वर्षीयः कोऽपि पूर्णवयस्को गम्भीररचनां कर्तुं शक्नोति। अल्बीरुनी (ALBIRUNI) नाम्नापि विदुषा पञ्चसिद्धान्तिकायाः समयः ४२७ शकाब्दस्यैव स्वीकृतः। एतेन वराहमिहिरस्य जन्मसमयः ४०० शकाब्दो (४७८ ख्रैस्ताब्दः) मन्तव्य इति मदीयं मतम्।

विक्रमादित्यकाले तस्य स्थितिः

ज्योतिर्विदाभरणकारेण कालिदासेन तत्र ग्रन्थे विक्रमादित्यस्य नवरत्नपण्डितेषु वराह—मिहिरस्योल्लेखो विहितः। यथा —

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु—वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

अनेनात्र वराहमिहिरो विक्रमादित्यस्य राज्ये आसीदिति सिद्ध्यति। परं च बालकृष्णदीक्षितेन कस्याप्यन्यस्य वराहमिहिरस्य कल्पना कृता, परन्तु नास्त्येवम्। चन्द्रगुप्तद्वितीय एवं विक्रमादित्य मन्यते स्म न तु द्वितीयो वराहमिहिरः।

अत्रैतिहासिकदृष्ट्या किञ्चिद् विचार्यते। चन्द्रगुप्तद्वितीयो यस्य समयः आधुनिकेतिहासकारैः ३७५-४१५ खृष्टाब्दः स्वीक्रियते, विक्रमादित्यस्योपाधिरासीत्तस्य। अस्याप्ययं समय अनुमानित एव। आधुनिकेतिहासपुस्तकेषु वराहमिहिरः, आर्यभटश्च तस्य चन्द्रगुप्तद्वितीयस्य राजसभायामासीदिति स्वीक्रियते। परञ्चात्र पञ्चसिद्धान्तिकोक्ताहर्गणकाले ५०५ खृष्टाब्दस्यासन्ने वराहमिहिरस्य स्थितिः सन्दिग्धतामुत्पादयति। परमत्र प्रबलप्रमाणोऽस्ति, देहलीस्थो लौहस्तम्भो मेहरावली-ग्रामे। तत्रैव कुतुबमीनारोऽपि अत्युच्चो विद्यते, यत्र सप्तविंशतिद्वाराणि कथ्यन्ते। अस्य लौहस्तम्भस्य समयोऽपि चन्द्रगुप्तद्वितीयस्यैव मन्यते। लौहस्तम्भे "चन्द्र"नामकस्य

१. जनकं गुरुं च प्रणम्यादौ—इत्यस्य समर्थनमपि जायते, प० सि० १। १।

२. गणकतरङ्गिणी, पृ० १३; ३. भारतीय ज्योतिष, पृ० २९३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्यापि समुल्लेखोऽस्ति, यस्तु चन्द्रगुप्तद्वितीय एव भवितुमर्हति। कुतुबमीनारोऽपि ग्रहाणां वेधकरणार्थमेव वराहेण निर्मित आसीदित्यपि केचन विद्वांसो मन्यन्ते। तस्य स्थानस्य मिहरौली-संज्ञाऽपि वराहमिहिरस्य किमपि सम्बन्धस्य सङ्केतं करोति।

एभिः प्रमाणैरेवमत्र स्वीकर्तुं शक्यते यत् पञ्चसिद्धान्तिकायां समागतात् ५०५ खृष्टाब्दसमयात् पूर्वं पञ्चमशताब्द्या मध्यकाले तस्य जन्माऽभवत्। इदमितिहासकारैर्भृशं विचारणीयमस्ति तथ्यम्। चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यस्यापि कालस्तु सप्तमशताब्द्याः पूर्वं स्वीकरणेन तस्य काले वराहमिहिरस्य स्थितिरसन्दिग्धतां भजति।

कृतयः —

वराहमिहिरस्य ग्रन्था निम्नलिखिता इति विद्वांसः स्वीकुर्वन्ति, तद्यथा —

१. पञ्चसिद्धान्तिका, २. बृहज्जातकः, ३. लघुजातकः, ४. योगयात्रा, ५. विवाहपटलः, ६. बृहत्संहिता, ७. समास-संहिता, ८. जातकार्णवः, ९. विवाहखण्डः १०. ढिकनीकयात्रा, ११. ग्रहणमण्डलफलम्, १२. पञ्चपक्षी, १३. दिक्कीनीयात्रा।

एषु पञ्चसिद्धान्तिका, योगयात्रा, बृहज्जातकम्, बृहत्संहिता — एते ग्रन्थाः प्रमुखाः सन्ति। खगोलशास्त्रे नवोन्मेषकारकस्यास्य पञ्चसिद्धान्तिकाग्रन्थस्य महत्त्वपूर्णं स्थानमस्ति। ग्रन्थोऽयं १८८९ खिष्टाब्दे डॉ० थीबो तथा म० म० सुधाकरद्विवेदिमहोदयानाम् आङ्ग्ल-संस्कृतानुवादेन सह प्रकाशितोऽभवत्। बृहज्जातकस्तु फलितज्योतिषविषयक आधारस्तम्भभूतोऽस्ति। बृहत्संहिता वस्तुतो भारतीयशास्त्रस्य ज्ञानकोष एवास्ति।

बृहत्संहितायां भारतीयज्ञानविज्ञानस्य, संस्कृतेः, सभ्यतायाः, आचार-व्यवहारस्य च सर्वे विषया एकत्रैव सङ्घटिता दृश्यन्ते।

श्रीसुधाकरद्विवेदिसम्पादिते बृहसंहिताग्रन्थे १०६ अध्यायाः सन्ति। तत्र प्रारम्भे वराहमिहिरः स्वग्रन्थस्य महत्त्वं प्रतिपादयन् प्रदर्शितवान् यत् प्राचीनैर्महर्षिभिः शास्त्रनिर्माणे यत् कौशलमुपस्थापितं ततो नास्ति कियदपि न्यूनं मदीयं प्रणयनम्। इयं बृहत्संहिता तु ज्योतिषशास्त्रस्य निरवशेषेणोपपादनायैव विद्यते। तदानीन्तने काले सभ्या नागरिकाः कथमासन्नित्यस्य निदर्शनं तु सांवत्सरस्य लक्षणेन ज्ञातुं शक्यते। यथा — "सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयकः समः सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरण-नखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटमुत्तमाङ्गो वपुष्मानगम्भीरोदात्तघोषः"[1]। अनेन सभ्यतमस्य कस्यापि समाजस्य नागरिकाणां सर्व एव समुन्नतगुणाः प्रदर्शिताः सन्ति।

खगोलशास्त्रस्य तात्कालिकीं स्थितिमुपवर्णयन् ग्रहनक्षत्राणां भूमेश्चाधिकृत्य खगोलीयगणिता निर्दिष्टाः सन्ति। यथा— "भूभगणभ्रमणसंस्थानाक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छाया-नाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः"।

अत्र खगोलज्ञानां कृते एतेषां विषयाणां पूर्णज्ञानस्यापेक्षा कृताऽस्ति। खगोलज्ञानं विना समाजे कालस्य निर्धारणं नैव कर्तुं युज्यते, इत्युक्त्वाऽस्य शास्त्रस्य महत्त्वं प्रदर्शितम्। यथा—

---

१. बृ० सं० २।१ ;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि"॥

भारतीयज्ञानपरम्परायां कस्यापि क्षेत्रविशेषस्य कृते, जातिविशेषस्य च कृते भेदो नासीत्, ये केऽपि जना ज्ञानयुक्ता अभवन् तेषां समादरो भारतीयसंस्कृतेर्वैशिष्ट्यमिति वराहमिहिरेण स्पष्टं विवेचितम्। यथाऽस्मिन् श्लोके दृश्यते–

"म्लेच्छा हि यवानास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः"[१]॥

अत्र भारतीयज्ञानविज्ञानस्य सूक्ष्मं तत्त्वं दृश्यते यथा–कस्य ग्रहस्य प्रभावेण के के देशाः प्रभाविता भवन्ति, वस्तूनि च प्रभातानि जायन्त इति विवेचितम्, वास्तुविद्या-भूगर्भादिविज्ञानम्, प्रतिमागवाश्वपुरुषलक्षणानि वैज्ञानिकरीत्या वर्णितानि सन्ति[२]।

भारतीयसमाजे तस्मिन् समये स्त्रीणां महत्त्वं तासां प्रति सहभावनायाः वर्णनप्रसङ्गे वराहमिहिरः सिद्धकविरेव प्रतिभाति। यथा द्रष्टव्यानि कानिचित्पद्यानि–

"रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गम्॥
ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्याश्च पृष्ठतः।
अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः॥
आ ब्रह्मकीटान्तमिदं निबद्धं पुंस्त्रीप्रयोगेण जगत्समस्तम्।
व्रीडाऽत्र का यत्र चतुर्मुखत्वमीशोऽपि लोभाद् गमितो युवत्याः॥

(स्त्रीप्रशंसाध्यायः– ७३/२)

भौतिकज्योतिषविषयस्योपस्थापनं त्वाधुनिकानां वैज्ञानिकानां कृतेऽतीवविचारणीयमस्ति। दकार्गलाध्याये जलप्राप्तिविवेचने भूगर्भे प्राप्तस्य शिलाखण्डस्य भेदनं कर्तुं शक्यते, इति बहु विवेचितम्। यथात्र–

"नैम्बं पत्रं च नालं तिलानां
सापामार्गं तिन्दुकं स्याद् गुडूची।
गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां
षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिद्यतेऽश्मा"[३]॥

एवमेव लौहशस्त्राणां काठिन्यं कथं भेवद् येन प्रस्तरेण लौहेन च तस्य भेदनं खण्डनं वा न स्यादित्यस्यैकः प्रयोगो द्रष्टव्यः। यथा–

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत्।
सम्यक् शितं चात्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम्॥

(बृ० सं० ५३। ११७)

१. बृ० सं० २।१
२. तत्रैव – २।१४।
३. बृ० सं० ५३/११५, दर्कागलः ;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पशुपालनम्–

गोलक्षणाध्याये गोलक्षणं, वृषभलक्षणं, शुनो लक्षणं, कुक्कुटलक्षणं, छागलक्षणं, अश्वलक्षणं, हस्तिलक्षणं च स्थाप्य निरूपितवान् यद् मानवानां कृते कथं ते पशवः कल्याणाय भवन्ति। इदमपि तद्वर्णनेन ज्ञायते यत् शुनोऽपि तदानीं गृहस्वामिरक्षार्थं पाल्यते स्म, यथात्र–

पादाः पञ्च नखास्त्रयोऽग्रचरणः षड्भिर्नखैर्दक्षिण–
स्ताम्रौष्ठाग्रनसो मृगेश्वरगतिर्जिघ्रन् भुवं याति च।
लाङ्गूलं ससटं दृगृक्षसदृशी कर्णौ च लम्बौ मृदू
यस्य स्यात् स करोति पोष्टुरचिरात् पुष्टां श्रियं श्वः गृहे[1]।।

कुक्कुटस्य कुक्कुटाण्डस्य च यथाद्य भारते भक्षणं क्रियते, छागाश्च भोजनाङ्गभूता दृश्यन्ते, तत्तु वैदेशिकानां भारते शासनोपरान्त एव प्रथा जाता। वराहमिहिरस्य काले तु तेषां पालनं मङ्गलकामनया पूजनार्थे चासीत्। यथा द्रष्टव्यम्–

कुक्कुटस्त्वृजुतनूरुहाङ्गुलिस्ताम्रवक्त्रनखचूलिकः सितः।
रौति सुस्वरमुषात्यये च यो वृद्धिदः स नृपराष्ट्वाजिनाम् ।।
वर्णैः प्रशस्तैर्मणिभिः प्रयुक्ता मुण्डाश्च ये ताम्रविलोचनाश्च ।
ते पूजिता वेश्मनि मानवानां सौख्यानि कुर्वन्ति यशः श्रियं च[2] ।।

पशूनामौषधयः, तेषां रोगाः, निदानं च वर्णितमत्र। शकुनाध्याये तु तेषां पशुपक्षिणां कियदङ्गचेष्टया किं किं शुभाशुभं फलं भविष्यत् काले भवतीति विवेचितम्। शृङ्गारप्रसाधने विविधगन्धानां विचारो निर्माणविधिश्चापि विवेचितोऽस्ति। रत्नानां विविधता, तेषां महत्त्व, धारणे लाभ इत्यादि सरलप्रकारेण प्रतिपादितोऽस्ति।

जीवने सम्पन्नता–

केन प्रकारेण ताम्बूलं चर्वणीयम्, ताम्बूलेन को लाभ इत्यस्य अपूर्वं वर्णनमत्रास्ति, यथा–

कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगन्धितां च।
ऊर्जं करोति कफजाँश्च निहिन्ति रोगाँ
स्ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति।। (७६। ३५)
पत्राधिकं निशिहितं सफलं दिवा च
प्रोक्तान्यथाकरणमस्य विडम्बनैव।
कंकोलपूगलवलीफलपारिजाते–
रामोदितं मदमुदा मुदितं करोति।। (७६। ३७)

वृक्षायुर्वेदाध्याये तु वृक्षाणां संवर्धनं कथं भवेत्, तेषां फलानां वृद्धिः कथं स्यादित्यादि

---

१. तत्रैव– ६१। १। २. तत्रैव – ६४।११।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विवेचितम्। तेषां रोपणं कथं कर्तव्यम्, जाते रोगे कथं तेषां विशोधनं भवेदित्यपि विचारितमस्ति। यदि फलानि रोगग्रस्तानि, विनष्टानि भवन्ति तदात्र चिकित्सा एवं क्रियते–

फलनाशे कुलोत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये।। (५४। १६)

उपसंहारः–

एवमत्र सुस्पष्टं यद् वराहमिहिरः खगोलशास्त्रस्य फलितज्योतिषस्य च महान् विद्वानासीत् तथा तस्य ज्ञानमेकाङ्गी नासीत्। अयं हि यान्त्रिकज्ञानं, कृषिविज्ञानं, चिकित्साशास्त्रं, धातुशिल्पकलाज्ञानं भौगोलिकञ्च स्थितिविज्ञानं, रसायनं, रत्नज्ञानं, वास्तुशास्त्रं, वायुवृष्टिविज्ञानं, धर्मशास्त्रं, नीतिशास्त्रं, काव्यशास्त्रं, पशुपक्षिवृक्षादिज्ञानं सम्पूर्णरूपेण विवेचितवान्। एकेनैव विदुषानेन सर्वेषां विषयाणां गम्भीरोपपादनं साङ्गोपाङ्गरूपेण, विश्वकोषनिर्मात्रा वराहमिहिराचार्येणैव भारते कृतं दृश्यते।

न केवलोऽयं पूर्वप्राप्तज्ञानस्य परम्परायाश्च यथातथ्यं वर्णनमकरोत्, अपि तु गुणदोषानुरूपेण सम्परीक्ष्य समालोचनमपि निर्भीकतया स्वतर्कयुक्तप्रमाणेनोपस्थापितवान्। वयं सर्वे भारतीय अस्य वराहमिहिरस्य विद्याया नतशिरसा सश्रद्धयानुमोदनपूर्वकं महान् गौरवस्यानुभवं कुर्म, इति शम्।

नागेन्द्र पाण्डेयः
उपाचार्यो ज्योतिषविभागे
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये वाराणस्याम्
तथा च अध्यक्ष उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य, लखनऊ,
वसन्तपञ्चमी, वि० सं० २०५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

(प्रथमसंस्करणस्य)

मिहिरभक्तोऽवन्तिमिहिरो वराहमिहिरो महीयते कर्ता बृहत्संहिताया ज्योतिर्विद्धितायाः। जनको[1] मिहिर (= आदित्य–) दासो गुरुश्चापि। समधिगतमिहिरवरप्रसादेन वराहमिहिरेण वन्दितो मिहिरो ग्रन्थादौ हार्द्या। यद्यपीदमीयो गुरुर्भिन्नो जनकादिति ज्ञायते पञ्चसिद्धान्तिकाया मङ्गलश्लोकेन,[2] तथापि तत्र 'येनास्मिन् नः कृतो बोधः' इत्येकवचनान्तताऽलं द्वयोरैक्यप्रतिपादनाय। वाराहीसंहितेत्यभिधानान्तरं बृहत्संहितायाः।

द्वादशोत्तरचतुश्शतसंख्याके शाके समजनि जनिरस्य लब्धवर्णस्येत्यनुमानम्। यद्यपि न कृता संख्यावंता तेन स्वकीयसमयचर्चा विशदा, यथापि पञ्चसिद्धान्तिकाख्ये करणग्रन्थे निजे समाश्रुतो गणितारम्भाब्दः सप्तविंशत्युत्तरचतुश्शते (४२७) शाके। एवं खलु प्रसिद्ध्यत्येतदीया जनिस्ततः पूर्वम्। तेन बृहज्जातक-बृहद्यात्रा-बृहद्विवाहपटलयात्रेति ग्रन्थत्रयरचना बृहत्संहितातः प्राक् कृतेति स्वयमेवोक्तं बृहत्संहितायाम् (१, १०)। बृहत्संहिता नूनं प्रौढरचनेति संश्रवे पञ्चदशवर्षदेशीयो न प्रभवेत् कर्तुं स ताम् इत्यतोऽपि प्राक् पञ्चाब्दा निर्धारयितुं शक्यन्ते।

नभोगतपिण्डानि प्रभावयन्ति मानवभाग्यमिति शक्यते वक्तुं तद्भाग्यम्। भारते वर्षे सुपुरातनोऽयं विश्वासः। केचन विश्वासमिमं 'बेबिलोन' इत्याख्यदेशात् संप्राप्तं मन्वते। ब्राह्मणग्रन्थेषु सूत्रग्रन्थेषु च नक्षत्रविचारो लभ्यते। पुरोहितवद् भूपः फलितज्योतिर्विदं समाश्रयेदिति धर्मसूत्रेषु विधिः। मागधानां पुरोहितानुचरवर्गाणां फलितज्योतिर्विदां च गणना कौटलीयार्थशास्त्रे नानवद्या। शुभाशुभलक्षणैर्भाविकथनाय, सैन्योत्साहाय, रिपुत्रासाय चापेक्ष्यते फलितज्योतिर्विद् भूपैः। तदुक्तं बृहत्संहितायाम्–

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि।। १.८।
नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते।। १.११।

अभूवन् फलितज्योतिषविषयका बहवो ग्रन्थाः प्रागिति नास्ति संशीतिलेशः। पाणिनी-याष्टाध्याय्या महत्त्वेन पूर्ववर्तिव्याकरणग्रन्थलोपवद् वराहमिहिरकृतबृहत्संहिताया महिम्ना प्रायः समे सुपुरातना ज्योतिर्विषयका ग्रन्थास्तिरोहिताः। वराहमिहिरो गर्गासितदेवलवृद्धगर्ग-

---

१. तदुक्तमुपसंहाराध्याये बृहज्जातकस्य तेनैव –
आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः। ९।

२. दिनकरवसिष्ठपूर्वान् विविधमुनीन् भावतः प्रणम्यादौ।
जनकं गुरुं च शास्त्रे येनास्मिन् नः कृतो बोधः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नारदपराशरादीन् पूर्ववर्तिनो ग्रन्थकारान् स्मरति स्वकीये ग्रन्थे। एतेषां ग्रन्थकाराणां ग्रन्थखण्डितांशा लभ्यन्ते। तत्र वृद्धगर्गसंहितायाः गार्गीसंहिताया वा खण्डितांशा आधिक्यतो दृश्यन्ते। ग्रन्थोऽयं ग्रीसदेशीयानां भारतशासनोल्लेखाय सुप्रसिद्धः। खैस्ताब्दात् पूर्वं प्रथमशताब्द्यामुपलभ्यते स्म ग्रन्थरत्नमिदमित्यत्र नास्ति किमपि गमकम्। म्लेच्छयवनेषु फलितज्योतिषशास्त्रं सम्यक् स्थितिमिति ते पूज्यन्त ऋषिवत् पुनः किं वक्तव्यं दैवविद्-द्विजस्यार्हणाविषय इति भावार्थकं कथनमस्मिन् ग्रन्थे विद्यते। वराहमिहिरेणा-पीदृशमेवोक्तं [१] तच्चास्माद् ग्रन्थाद् गृहीतमिति फलितज्योतिषाध्ययनार्थं तद्विदेशगमनकल्पना भ्रान्त्यनिर्लिप्ता, तद्ग्रन्थवर्णितविषयाणां ग्रन्थानां तद्ग्रन्थरचनातः प्रागेव विनिर्मितत्वात्। पूर्वाचार्यग्रन्थालोडनपूर्वकं कृतेयं कृतिः समासत इति प्रतिजानीते स बृहत्संहितायाम् –

आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः ।। १.५।।
भूयो वराहमिहिरस्य न युक्तमेतत्
कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः ।
तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदमुक्तफलानुगीति–
र्यद्बर्हिचित्रकमिति प्रथितं वराङ्गम् ।। ४६.२।।

आर्यभटेन गोलपादे भूभ्रमणसिद्धान्तः प्रत्यपादि सर्वतः प्राक् "अनुलोमगतिर्नौस्थः" इति। ब्रह्मसिद्धान्ते (११ अध्याये) ब्रह्मगुप्तेन प्रत्यादेशि सः 'प्राणेनैति कलां भूर्यदि" इति। एवमेव वराहमिहिरेण चन्द्रग्रहणादिविषये प्रदर्शिता स्वोपज्ञता। 'भूच्छायां स्वग्रहणे' (५। ८) इति प्रतिपादयता तेन चन्द्रग्रहणकारणं भूच्छायेति प्रदर्शितम्। संपूर्णः श्लोकश्चेत्थम्–

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात्।।

धीमत्तल्लजो वराहमिहिरः स्वसिद्धान्तस्थापनात् प्राक् प्रचलितपूर्वं 'राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणम्' इति सिद्धान्तं निराकृत्य तस्मिन् काले स्वपाण्डित्यं प्रदर्शितवान् सडिण्डिमघोषम्। तत्कृतं खण्डनमवश्यमध्येयम् –

यदि मूर्तो भविचारो शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः ।
भगणार्द्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियताचारः ।। ५.४।।
अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य ।
पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ।। ५.५।।
अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति ।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्द्धम् ।। ५.६।।

---

१. म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।। २। १४।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथोदिते चन्द्रे।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्यते।। ५.७।

रात्रौ भूच्छायाराहित्येन चन्द्रग्रहणाभावे इत्याशङ्कापि निराकृता तेनेत्थम्–"यथा वृक्षस्य दीर्घचया स्वच्छाया खल्वेकपार्श्वे भवति तद्वद् निशि निशि दिनेशस्य भूमेरावरणवशाज्ज्ञेया तच्छायेति। प्रतिमासं चन्द्रग्रहणं कुतो नेति शङ्कापि समाहिता (५।१०)। एवं सत्यपि वराहमिहिरेण 'चन्द्रग्रहणकारणं भूच्छाया' इति ज्ञानं पूर्वाचार्येभ्य उपगतमित्यूरीकृतम्–

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।
राहुकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः।। ५.१३।

वराहमिहिरो ज्योतिषशास्त्रं त्रिधा विभजते – १. सिद्धान्तज्योतिषं गणितीयाधारश्च। तन्त्रेति नामान्तरम्। २. होरा जन्मपत्रादिकं संबध्नाति। भट्टोत्पलाचार्येण 'होरायाम् = जातके' इति प्रतिपादितं बृहत्संहितायाः (१। ६) टीकायाम्। इदमभिधानं सुस्पष्टं ग्रीकभाषीयम्। ३. संहिता भौतिकफलितज्योतिषं संबध्नाति। यत्र ग्रन्थे कार्त्स्न्येन ज्योतिषशास्त्रवर्णनं सा संहिता (१। ९)। होरा-गणित-संहितेति समुदितं त्रिस्कन्धज्योतिषशास्त्रम्।

इयं बृहत्संहिता वराहमिहिरप्रणीतग्रन्थेषु मूर्द्धन्यमणिरिव शोभते। तेषु समेष्वियं महिष्ठा। वाराही संहितेत्यभिधानान्तरमस्याः। इह ग्रन्थे महानुभावोऽयं ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशतीति न्यायेन बहुविधं भूगोलच्छन्दःकाव्यादीनां कोशं संनिवेशितवान् फलितज्योतिष-शास्त्रवर्णनपरोऽपि। ग्रन्थस्यास्यानुवाद आरब्यभाषामयोऽलबरूनीमहाशयेन संपादितोऽभि-व्यनक्ति ग्रन्थमहिमानं सहस्राब्दीतः पूर्वमितः। सांवत्सरेण विदुषा तेन छन्दसि भाषायां च पूर्णतः प्रदर्शितं वैदुष्यम्। तद्रचनायां यत्र क्वापि साधीयो हि कवित्वयोग्यतासंस्पर्शो विद्वन्मनोहारी। प्रस्तूयते किमपि निदर्शनम्। तत्र विभाव्यतां सौष्ठवं सुधीभिः –

अगस्त्यस्य मुनेः प्राधान्यद्वारेण समुद्रशोभामुपवर्णयितुमाह –

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः।
पतन्मुक्ताभिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा।। १२.१।

भगवतागस्त्यमुनिना पूर्वं जलापहरणेन तत्क्षणमेव सागरो रम्यो विहितः। जलाभावात् तत्रत्याः पर्वता रत्नादिसमलङ्कृतमूर्धानो देवानधरीचक्रुरिवेत्याकूतम्।

शरद्वर्णनचमत्कृतिरतुला। नदीनां प्रत्यहं जलाल्पत्वात् पुलिनानि भवन्ति व्यक्तानि। तानि च हंसैः सेव्यन्ते। पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकः (लोहितवर्णाः पक्षिविशेषाः) सस्वनहंस पङ्क्तिः शरत् ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती योषेव शोभत इत्युत्प्रेक्षते ग्रन्थकारः–

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत् सहासा।। १२.८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यच्च–

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा।। १२.९।
इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम्।। १२.१०।

भूमेः शोभावर्णनम् –

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने।। १२.११।

भुजङ्गप्रयातच्छन्दोनिबद्धं मेघवर्णनमिदम् –

तडिद्धैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः।
विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः।। २४.१७।

द्रुतविलम्बितच्छन्दोनिबद्धं चैतत्–

सशिखिचातकदर्दुरनिःस्वनै –
र्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः।
खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः
सलिलदाः सलिलौघमुचः क्षितौ।। २४.१९।

पीताम्बरवेष्टितशरीरस्य भगवतो नन्दनन्दनस्य कान्तिं चोरयतां मेघानां वर्णनम्–

सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थिताना–
मिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम्।
वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य
कान्तिं हरेश्चोरयतां यदा वा।। २४.१८।

इह पेपीय्यतां याथातथ्येन काव्यमाधुर्यम् –

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधरा–
भधाराधरोज्झितपयःपरिपूर्णवप्रा ।
श्रीमत्सरोरुहताम्बुताडागकीर्णा
योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी।। १९.१६।
क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्ष–
मुद्घुष्टनैकजयशब्दविरावितांशम् ।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां
गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढ्याम्।। १९, १७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पेपीयते मधु मधौ सह कामनीभि–
र्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न–
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः॥ १९.१८।

बृहत्संहिताया भौगोलिकं महत्त्वम्

एवं तावद् ग्रन्थस्यास्य सुविशङ्के विषयवस्तुसीमा। फलितज्योतिषमाहात्म्यवर्णनान्तरं निरूप्यन्ते ग्रन्थकारेण दिवाकरगतिप्रभावाः, चन्द्रगतपरिवर्तनानि ग्रहैः सार्धं च तत्संयोगा ग्रहणानि च। तदनन्तरं विभिन्ननक्षत्राणां प्रभावो मानवभाग्ये केन रूपेण जायत इति समुपवर्णितम्। चतुर्दशेऽध्याये भारतीयभूगोलस्वरूपं तात्कालिकं प्रसङ्गतः समुपस्थापितमिति महते ज्ञानाय तद्विदाम्।

ज्योतिषशास्त्रप्रतिपादनपरेऽस्मिन् ग्रन्थे भूगोलकोशरत्नानि पूर्वस्मिन् खण्डे प्रायशः सर्वत्र विकीर्णानि। तत्र स्मृता देशा जना जनपदाश्च बाहुल्येन न श्रूयन्ते। तेषां केचन प्रस्तूयन्ते –

सुह्मजनाः (५, ३७)। अपरान्ता जनाः (३, ४०; ९, १५), अपरान्तका वा (५, ७०; १४, २०)। सिंहपुरकाः (३, ४२), कुकुराः (५, ७१; १४, ४), कोटिवर्षाः (९, ११), शूलिकाः (९, १५; २१; १०, ७; १४, ८; २३; १६, ३४) प्रत्यन्ताः (५, ३१; ९, १७; २१; १०, ६) = गह्वरवासिनः। चारुदेवयः (९, १८) = चारुदेवी, नदी तत्तटनिवासिनः। जाङ्गलाः (९, २९) – जाङ्गलम् = स्वल्पोदकस्थानम्, तत्र ये निवसन्ति ते। पारतः (१४, २१), पारता जनाः (१०, ७; १३, ९; १६, ४; १२; २१), पारतरा जना वा (१०, ५) = पर्थियनजनाः। आवगाणाः (११, ६१; १६, ३७)। माण्डव्याः (१४, २; २२; २७)। उज्जिहानाः (१४, २)। असिकाः (११, ५६)। देविका (११, ३५) = एतन्नामिका नदी। नीपाः (१४, २)। गौरग्रीवाः (१४, ३)। उद्देहिकाः (१४, ३)। पाण्डुगुडाः (१४, ३)। पुरिकाः (१४, १०)। तालिकटाः (१४, ११)। सौरिकीर्णाः (१४, ११)। फणिकाराः (१४, १२) आवर्त्तकाः (१४, १२)। पिशिकाः (१४, १४)। कार्मणेयकाः (१४, १५)। ऋषिका जनाः (१४, १५)। मरुचीपट्टनम् (१४, १५)–तु० मछलीपट्टन इति। चेर्यार्यकाः (१४, १५), तु० (पाण्ड्य)–चेरी। बलदेवपट्टनम् (१४, १५)। अरवाः (१४, १७) = अरबदेशीयाः। नारीमुखाः (१४, १७)। मार्गराः (१४, १८)। कर्णप्रावेयाः (१४, १८)। चञ्चूकाः (१४, १८)। शान्तिकाः (१४, २०)। वोक्काणाः (१४, २०; १६, ३४)। तारक्षितिः (१४, २१)। हलडाः (१४, २२)। फल्गुलुकाः (१४, २३)। गुलुहाः (१४, २३)। मरुकुच्चाः (१४, २३)। वसातयः (१४, २५; १७, १९)। वाटधानाः (१४, २६; १६, २१)। शरधानाः (१४, २६)। पुष्कलावताः (१४, २६)। कैलावताः (१४, २६)। कण्ठधानाः (१४, २६)। कच्छाराः (१४, २७)। माणहलाः (१४, २७)। कोहलाः (१४, २७)। डामराः (१४, ३०)। कुनटाः (१४, ३०)। गोलाङ्गूलाः (१६, ३)। पाराः (१६, १०) भासापराः (१६, ११)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समन्त्रिषिकाः (१६, ११)–प्रभृतयः। एवमेव नदीपर्वतनामान्यपि संदृब्धानि तत्र। कस्य ग्रहस्य प्रभावेण के के देशा जनपदा वा प्रभाविताः, वस्तूनि वा प्रभावितानि जायन्त इत्यनूनकं चित्रमुपस्थापितम्। ग्रहगतयो युद्धनिर्णायिकाः, स्वामिग्रहस्य कारणेन संवत्सरस्य शुभाशुभं संपद्यते फलम्। इन्द्रध्वजोत्सवस्य कवित्वपूर्णं वर्णनं द्वाचत्वारिंशदध्याये विलोकनीयम्। वास्तुविद्या–भूगर्भादिविद्या–प्रासाद–प्रतिमा–गवाश्व–पुरुषलक्षणानि (५२–६७) वर्णितानि। स्त्रीप्रशंसाध्यायः (७३) सुभाषितसंग्रहार्हः। यथा–

रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गम् ॥ ७३.२।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्याश्च पृष्ठतः।
अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥ ७३.८।
आब्रह्मकीटान्तमिदं निबद्धं
पुंस्त्रीप्रयोगेण जगत् समस्तम्।
व्रीडात्र का यत्र चतुर्मुखत्व–
मीशोऽपि लोभाद् गमितो युवत्याः ॥ ७३.२०।
यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ॥ ६९.२३।

एतदनन्तरमेकस्मिन् प्रकरणेऽन्तःपुरजीवनवर्णना। तत्र खलु कामसूत्रार्थशास्त्रसादृश्यं दृग्गोचरायते। ततः परं शय्या आस्तरणानि च कथं भवेयुरिति। रत्नानां वर्णनम् (७९–८२) अध्यायेषु। दीपकदन्तधावनवर्णनोत्तरं शाकुनप्रकरणमेकादशाध्यायेषु। विवाहपटलाद्यनन्तरं शास्त्रानुक्रमणीं विरचय्य समापितो ग्रन्थो ग्रन्थकारेण।

प्रयुक्तानि च्छन्दांसि

बृहत्संहितायामुपयोजितानि च्छन्दांसि षष्टिसंख्याकानि साहित्यनदीष्णानामप्याश्चर्याय कल्पन्ते। भट्टोत्पलेन टीकाकृता व्याख्यातानि तानि ग्रहगोचराध्याये नयनगोचरीभवन्ति। ग्रन्थस्यास्योत्तरार्द्धे छन्दोनामसूची विलोकनीया। विन्ध्यादिवर्णनप्रसङ्गे गद्यमपि विद्योतते ग्रन्थकृताम्। एवं तावद् गद्यपद्योभयनिबद्धोऽयं ग्रन्थः।

बृहत्संहिताया भाषा

इह ग्रन्थे प्रयुक्ता संस्कृतभाषा वैलक्षण्यमावहति। शब्दानामर्थविकासः, अन्याभ्यो भाषाभ्यश्च शब्दादानमपि ग्रन्थस्यास्य वैशिष्ट्यम्। पञ्चसिद्धान्तिकायां यत्र संप्रवेशशब्दप्रयोगस्तत्र बृहत्संहितायां संप्रयोगशब्दः (द्र० ३९ पृ०)। द्वितीयाध्यास्य द्वितीये श्लोके आर्याशब्दो मातृवाचकः। संस्कृतभाषायामार्येति शब्दो नास्ति मातृवाचकः। महाभारते (३, १२, ८७) प्राकृतभाषायां च स दृश्यते पूज्यस्त्रीवाचको न तु मातृवाचकः (द्र० पिशलकृतस्य प्राकृतप्राकृतस्प्राखेन इत्यभिधम्य ग्रन्थस्य १०६; १४३; १४५ कण्डिकाः)। नाटकेषु श्वश्रूवाचकोऽपि। द्वितीयेऽध्याये (६६ पृ०) अनूकशब्दः प्राग्जन्मवाचकः। अथर्ववेदे (४, १४, ८; ९, १३, २१), शतपथब्राह्मणे (३, ८, ३, २७) ऐतरेयब्राह्मणे (७, १) चानूकशब्दार्थः सास्ना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मूत्रवस्तिर्वा 'अनूकं मूत्रवस्तिः स्यात् सास्नेत्येके च' इति। कात्यायनश्रौत्रसूत्रे (१६, ७, २२–२४) कशेरुकेति तदर्थः। सुश्रुते "व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिका नराः स्मृताः" इत्यत्रानूकशब्दः शीलार्थकः। अमरकोशे, अभिधानरत्नमालायाम् (५, ४३), वैजयन्त्याम् (२५०, ५), शाश्वतकोशे (६७३) चानूकशब्दः कुलशीलोभयार्थकः। मेदिनीकोश एवैकलः– 'अनूकं तु कुले शीले पुंसि स्याद् गतजन्मनि' इत्यभ्यधात् पुंस्यनूकशब्दं गतजन्मार्थकम्। राघवकृतनानार्थमञ्जर्या– मप्ययमर्थोऽवाप्यत इत्याप्टेमहाशयोऽनवलोकितमेदिनीकोशः। एवं सत्यपि बृहत्संहिता– गतानूकशब्दो न पुंसि–

"आश्रयभावालोकननिर्याणगत्यनूकानि" (२ अ०, ४ श्लोकानन्तरं गद्यम्)

एतदनन्तरवर्तिनि गद्ये 'गणयाग'–शब्दो द्रष्टव्यः। तदर्थस्तु गुह्यकपूजनम् इति। निषेकशब्दार्थो गर्भाधानम्। निष्ठाप्रत्ययान्तस्य निपूर्वकस्य सिच् धातोरर्थस्तु प्रक्षेपणात्मकः–

जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये। २, ५।

२, ५ श्लोकानन्तरं गद्ये 'मृगचक्रम्' 'श्वचक्रम्' इत्यादिशब्दगतचक्रपदार्थश्चेष्टितमिति। वातचक्रम् इत्यत्र चक्रशब्दार्थो लक्षणम् इति। अत्रैव नीराजनशब्दः। तदर्थस्तु–नीरेण जलेन मन्त्रपूतेनाजनम् = क्षेपणं स्पर्शनमिति। पुष्यस्नानार्थे घृतकम्बलशब्दः। नृपमुकुटार्थे पट्टशब्दः– पट्टपरीक्षा। चारोदयाः प्रशस्ताः (६, १२) इत्यत्र चारशब्दार्थोऽवस्थितिरिति।

सत्यपि भाषाप्रयोगनैपुण्ये वराहमिहिरेण पादपूर्त्यर्थमङ्गीकृताः कतिचन शब्दाः। अथ– शब्दः स्वार्थे (४, २४; ८, १९; १० ११), अथ–शब्दः पादपूरणे (४, २५; ५, ७४; ८, २६)।

ग्रन्थकारेण सन्नन्तप्रयोगः–विभक्षयिषु–(१९, १) इति, यङ्न्तप्रयोगाः–पेपीयते, जेगीयते, बोभुज्यत इति, यङ्लुक्प्रयोगाश्च–नरिनर्ति (१३, २) इति कृताः। तद्धितान्प्रयोगाणां तु भूयस्त्वम्।

इह होराजामित्रत्रिकोणकेन्द्रादयो ग्रीकभाषायाः शब्दाः सुस्पष्टाः। एतेषां संस्कृतीकरण– प्रयत्नो रोचकः। होरा–पणफर–आपोक्लिम–हिबुक–त्रिकोण–जामित्र–मेषूरण–क्रिय–तावुरि– जितुम–लेय–पाथोन–जुक–कौर्प्य–तौक्षिक–आकोकेरो–हृद्रोगेत्यसि–प्रभृतिशब्दाः सन्ति। क्रान्तिवृत्तम् (राशिचक्रम्) इत्यादयः शब्दा अनुवादमूलकाः। बृहत्संहितायां तु पञ्चषा एव ते शब्दा गृहीताः। बृहज्जातके तु प्रायः सर्वे प्रयुक्ताः।

संक्षेपतो वराहमिहिरज्ञानस्यानन्त्यविषये नास्ति द्वापरत्वम्। तट्टीकाकारो भट्टोत्पलमहा– भागोऽप्यसामर्थ्यं व्यक्तीकरोति बृहत्संहितागतविषयवस्तुतत्त्वव्याख्याने "केवलमक्षराणां व्याख्या क्रियते न चास्माकं तथाविधं प्रावीण्यम्" (७६, ४) इति।

विवृतिटीकाकारो भट्टोत्पलः

सुप्रसिद्धोऽयं टीकाकारः कश्मीराभिजनः। खण्डखाद्यटीकाकारेण वरुणेन तु सुस्पष्टमेतस्य कश्मीरीयता साधिता। खण्डखाद्यटीकया सप्तषष्ट्युत्तरपञ्चदशशतशाकीयेन पञ्चाङ्गकौतुकेन च ज्ञायते यद् भट्टोत्पलस्य टीका लब्धप्रचारा कश्मीरेषु। बृहज्जातकटीकायां ८८८ मिते शाके प्रणीतायामनेन तत्प्रणयनकालः ८८८ मितः शाको दर्शितः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे।
वस्वष्टाष्ट ८८८ मिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया।।

बृहत्संहिताटीकाकालोऽपीत्थमेव लिखितस्तेन–

फाल्गुनस्य द्वितीयायामसितस्य गुरोर्दिने।
वस्वष्टाष्टमिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया।।

अनेन वराहमिहिरस्य यात्राबृहज्जातकलघुजातकबृहत्संहितेति ग्रन्थेषु टीकिता टीका। बृहत्संहितान्ते स्वकीयटीकागौरवं तेन स्वयं वर्णितम् –

आचार्यप्रवरस्य बोधजलधेः पारं तितीर्षुर्जनो
व्यामुह्यन्नभिधेयरत्ननिचयैः काङ्क्षंस्तरीं भ्राम्यति।
इत्येवंविधमाकलय्य करुणामालम्ब्य भट्टोत्पलश्चक्रे
तत्कृतिसंहिताविवरणं स्थैर्यं प्लवं कीर्तये।।

वस्तुतः सुपुरातने काले संहिताशाखाविविधविषयज्ञानं भारते वर्षे कियदभूत् ? तज्ज्ञानसंवर्धनं च क्रमशः केन प्रकारेण जातम् ? इत्याद्यैतिह्यबोधनार्थं बृहत्संहिताया उत्पलटीकाऽनन्योपायः। भट्टोत्पलः प्राचीनग्रन्थशोधकस्तद्वाचनं च सुविस्तृतमिति ज्ञायते तट्टीकया बृहत्संहितायाः। वराहमिहिरलिखिता विषया आधिक्यतः प्राचीनग्रन्थेभ्य गृहीता इति तत्र टीकायां दर्शितं पदे पदे तेन। क्वचित् क्वचिच्च तेन तद्ग्रन्थनामान्यपि समुट्टङ्कितानि। प्रसङ्गतश्च प्रायः सर्वत्र तत्तद्विषयकप्राचीनसंहिताकृतामुद्धृतानि वचनानि। क्वचित्त्वेकस्मिन्नेव विषयेऽष्टाधिकप्राचीनसंहिताकृतां वचनोल्लेखः। सर्वास्ताः संहितास्तदा सुलभा अभूवन्निति सुस्पष्टं विज्ञायते भट्टोत्पलटीकायां तदुद्धरणैः। महामतिना तेन संहिताजातकयोस्तदन्तर्भेदविषये चानेकपौरुषग्रन्थकारनामानि तद्वचनानि च सादरं गृहीतानि टीकायाम्।

भट्टोत्पलेन ब्रह्मगुप्तकृतखण्डखाद्यटीकापि कृतेति ज्ञायते बृहत्संहिताटीकावचनेन– ''खण्डखाद्यकरणेऽस्मदीयवचनम्'' इत्यनेन। वराहमिहिरपुत्रस्य पृथुयशसः 'षट्पञ्चाशिका' इति जातकग्रन्थेऽपि लिखिता टीका भट्टोत्पलेन। तस्या एका प्रतिः पूनाकालेजसंग्रहे (सं० ३५५, सन् १८८२–८३) विद्यते। यात्राग्रन्थटीका नोपलभ्यते संप्रति। खण्डखाद्यटीका भूर्जपत्रलिखितैतदीया कश्मीरेषूपलब्धा साम्प्रतं डेक्कनकालेजसंग्रहे विद्यते।

भट्टोत्पलकृता मौलिका ग्रन्थाः

अनेन महाभागेन टीकातिरिक्ताः स्वतन्त्रा ग्रन्था अपि लिखिता इति प्रथमाध्याये 'अस्मदीयवचनम्' इत्युक्त्वार्यानिर्देशेन ज्ञायते । गणितस्कन्धमधिकृत्य स्वतन्त्रग्रन्थरचनाऽनुमीयते। खण्डखाद्यटीकागतमपि शक्नोति भवितुमुक्तवचनम्। द्विसप्तत्यार्यामितः प्रश्नज्ञाननामकः प्रश्नग्रन्थ एतदीयः। अलबेरुनीमहाशयमतानुसारेण 'राहुन्नाकरणम्' इति 'करणपातः' चेति करणग्रन्थद्वयमप्येतदीयम्। बृहन्मानसग्रन्थटीका टीकिताऽनेन। एकेनैव ग्रन्थकारेण रचितस्य करणद्वयस्यासंभवः। उक्तग्रन्थद्वयस्याभिधेयमपि वैचित्र्यमावहतीतीह बेरुनीमहाशयस्य स्यात् कोऽपि भ्रमः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भट्टोत्पलविरचितः श्रूधव' इत्यभिधोऽप्येको ग्रन्थ इति तन्मतम्। इहापि नाम्नि विद्यते काचित् त्रुटिः। तेनास्य ग्रन्थस्य कालादिमानविषये लिखितम्। श्रूधवेत्यभिधाः सन्त्यन्येऽपि ग्रन्था इति तद्व्याहारः। दत्तेन श्रूधवविषयकेण मनाक् परिचयेन ज्ञायते यद् शकुनसंबद्धौ प्रश्नसंबद्धौ वा भवेतां तौ ग्रन्थाविति। भट्टोत्पलकृतो वास्तुविद्याग्रन्थोऽपीत्यवगम्यते तट्टीकया बृहत्संहितायाः — ''तथा चास्मदीयवास्तुविद्यायाम्'' (५२, ५७) इति।

भट्टोत्पलीया देशभाषा

बृहत्संहितायाष्टीकायां भट्टोत्पलविरचितायां देशभाषीयाः सन्ति प्रयुक्ताः केचन शब्दाः। तेषामध्ययनेन भट्टोत्पलस्य जनिभूः पार्यते निश्चेतुम्। प्रस्तूयन्ते तथाविधा इह कतिचन शब्दाः—

१. जानुकपिच्छे चतुरङ्गुले च चतुरङ्गुलप्रमाणे कार्ये ये च लोके 'एक्कलके' इति प्रसिद्धे (५७, १७)।

२. मृदङ्गो वादित्रो मण्डलेति प्रसिद्धः (६७, ९५)।

३. क्ष्वेडः सुखशब्दः शोडनिकेति प्रसिद्धा (८५, ३९)।

४. भृङ्गारवद् विरुवति वाशति। भृङ्गारो दांदानी दमनी (८७, ६) इति भृङ्गारो भृङ्गारी वा झिल्लिकेति मे मतम्, वराहमिहिरेणापि 'निशि द्व्यङ्गुलशरीरा' इति स्वीकृतत्वात्।

बहोः कालादनुपलब्धं ग्रन्थरत्नमिदं दुर्लभग्रन्थपुनर्मुद्रणयोजनायां केन्द्रीयशिक्षा—मन्त्रणालयस्य साहाय्येन तत्त्वविदां जिज्ञासूनामुपकारततये साम्प्रतं प्राकाश्यं नीयते। तदर्थं केन्द्रीयशिक्षामन्त्रिमहोदयेभ्यः प्रभूतान् धन्यवादान् समर्पयामि। दुर्लभेयं संहिता वाराणसेयसंस्कृत—विश्वविद्यालयीयानुसन्धानविभागेन विद्वद्धिताय शोभनतरं प्रकाश्यमानाऽधुना सुलभा संजातेति महतः प्रमोदस्यावसरः — इति निवेदयते।

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी
सावित्री जयन्ती
सं० २०२५
दि० २७.५.१९६८

बलदेव उपाध्यायः
अनुसन्धानसंचालकः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

अवतारिका

(प्रथमसंस्करणस्य)

श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीता काऽपि ज्योतिर्निबन्धना बृहत्संहिता नाम श्रीभट्टोत्पलरचितेन विवरणेन समन्विता द्वितीयवारं प्रकाश्यते । गणित–संहिता–होराभिधानैस्त्रिभिः स्कन्धैराचिताकृतेः किल महतो ज्योतिश्शास्त्रस्य कोऽप्यन्यतमः स्कन्धो भवति संहिता।

गणित–संहिता–होरेति शाखाभिर्विस्तृतस्याऽस्य ज्योतिश्शास्त्रस्य स्वरूपवर्णनमनेकैरा–चार्यैर्विस्तरतः कृतमस्ति । तत्रैकैकस्कन्धस्य स्वरूपावबोधकं लक्षणं संक्षेपेण निर्दिश्यते । तत्र प्रथमं गणितस्कन्धस्य लक्षणं भास्कराचार्यकृते सिद्धान्तशिरोमणौ मध्यमाधिकारे –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमा–
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।। (श्लो० ६)

संहितास्कन्धस्य लक्षणं बृहत्संहितायां प्रथमाध्याये ९ श्लोके –

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।

अग्रे द्वितीयाध्याये "यत्रैते संहितापदार्थाः" इति १७ सूत्राग्रे १८ सूत्रे "दिनकरादीनां ग्रहाणां चाराः" इत्यादिना विस्तरत उक्तं तत्रैवालोक्यम्।

स्कन्धत्रये सर्वापेक्षया विस्तृतो जातकस्कन्धः। तत्संक्षिप्तं प्रयोजनं सारावलीग्रन्थारम्भे श्रीकल्याणवर्मणोक्तम्–

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

वस्तुतो होरास्कन्धो जातकं प्रश्नो मुहूर्तो निमित्तमिति चतुर्भिरङ्गैरुपबृंहितोऽस्ति। अस्य विस्तृतवर्णनं बृहत्संहिताया द्वितीयाध्यायस्य १४ सूत्रे द्रष्टव्यम्।

स्वरूपावलोकनात् स्पष्टं यत् सर्वेषां स्कन्धानां संहितास्कन्धेऽन्तर्भावः। अत एव श्रीवराहमिहिराचार्येण संहितास्कन्धलक्षणनिरूपणे च "तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता" इत्युक्तम्। तथा बृहत्संहिताद्वितीयाध्यस्य १६ सूत्रे "संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति" इत्यपि तस्य पोषकमेव। तस्मादाचार्यमते संहितास्कन्धः सर्वापेक्षया महान्। अत एवानेनाचार्येण स्वकृतिष्वियमन्तिमा कृती रचितेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणं करणे मयोक्ताः।
होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम्।।
(बृ० सं० १ अ० १० श्लो०)

इत्यनेन प्रतीयते। अतोऽस्य स्कन्धस्य महद्वैशिष्ट्यम्।

अस्य चैवंविधस्य ज्योतिर्निबन्धस्य निबन्धा श्रीवराहमिहिराचार्यः। अस्य जन्मादिविषये स्वकृतंबृहज्जातकस्य २६ अध्यायारम्भे –

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्
होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार।। १।।

इत्ययं श्लोकः। तत्र "कापित्थके" इत्यत्र भिन्न–भिन्नपुस्तकेषु भिन्नो भिन्नः पाठः समुपलभ्यते।

के० साम्बशिवशास्त्रिसम्पादिते होराशास्त्रे "कापिष्ठिलः" इति पाठः। अस्य श्रीरुद्रकृतम् "कापिष्ठिलः कपिष्ठिलगोत्रजात इत्यनेनाभिजन्म सूचितम्" इति व्याख्यानं वर्तते। रुद्रकृतव्याख्यानस्य चतुश्शताब्द्याः प्राचीनत्वं श्री–के० साम्बशिवशास्त्रिणा स्वकृतहोराशास्त्रावतारिकायां साधितमस्ति।

मोहमय्यां खेमराजश्रीकृष्णसमुद्रणालये मुद्रिते भट्टोत्पलकृतव्याख्यासहिते बृहज्जातके "कापित्थके" इति पाठो वर्तते। अस्य भट्टोत्पलकृतं व्याख्यानं यथा–

"कापित्थाख्ये ग्रामे योऽसौ भगवान् सविता सूर्यस्तस्माल्लब्धः प्राप्तो वरः प्रसादो येन।"

गणकतरङ्गिण्यां श्रीसुधाकरद्विवेदिभिः "काम्पिल्लके" इति पाठः संगृहीतः। एवञ्चास्य विवरणे कालपीनगरे" इत्यर्थः स्वीकृतः।

शङ्करबालकृष्णकृते भारतीज्यौतिषेऽपि "कापित्थके" इति पाठः संदृश्यते। अस्य मते कापित्थको ग्रामविशेष आसीत्।

प्राचीन–ग्रीक–भौगोलिक–एरियान इत्यनेन "क्याम्बिस्थली" इति शब्दप्रयोगमङ्गीकृत्य तत्स्थानं च पञ्जाबप्रान्तान्तर्गतकुरुक्षेत्रस्य मध्यगतमस्तीति निश्चितम्। वर्तमानकाले तस्य नाम "कइथल" इति वर्तते।

कपिष्ठिलस्येदं कापिष्ठिलम्, वा कपिष्ठलस्येदं कापिष्ठलमिति गोत्ररपरकः शब्दः। (स्कान्दे नागरखण्डे १०८।२२)

इत्येवं कापित्थके, काम्पिल्लके, कापिष्ठिल इति विभिन्नपाठाः समुपलभ्यन्ते। तत्र कापित्थके, काम्पिल्लके इति पाठाभ्यां स्थानविशेषस्य संकेतः। इदं स्थानं कुत्र इति केनापि टीकाकारेण न स्पष्टीकृतम्। यत्तु "प्राचीन–ग्रीक–भौगोलिक–एरियान" इत्येन यस्य स्थानस्य संकेतः कृतः स त्वरुचिकरः। वराहमिहिरस्य तत्र गत्वा सूर्योपासना असंभाविनी। यतो हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मिन् ग्रामे अञ्जनामन्दिरं प्रसिद्धमस्ति, न तु सूर्यमन्दिरम्। एवं केवलं सूर्योपासनार्थमेव तत्र गमनं न महत्त्वमावहति, विशिष्टतीर्थस्थानाभावात्। यद्युक्तशब्देन स्थानमेवाभीष्टं तदा तत्स्थानमुज्जयिनीसमीप एव भवितुमर्हति। एवञ्चोक्तशब्दो गोत्रपरको गृह्यते, तदा विवाद एव नास्ति। प्राचीनकाले स्वपरिचयप्रदानावसरे द्विजाः स्वगोत्रोच्चारपूर्वकं नाम गृह्णन्ति स्म। अतो वराहमिहिराचार्योक्तश्लोके कापिष्ठिल इति पाठो गोत्रपरिचायकः साधु प्रतिभाति। स्कन्धपुराणे नागरखण्डे १०८।२२ अस्य गोत्रस्य प्रसङ्गः समायाति। अतो मद्दृष्ट्या कापिष्ठिल इति गोत्रबोधकः पूर्वटीकाकारस्वीकृतः पाठः समुचितः।

जन्मस्थानम्

आचार्येण स्वजन्मस्थानविषये किमपि नोक्तम्। बृहज्जातकोपसंहाराध्यायस्थे "आदित्यदासतनय" इत्यादिश्लोके 'आवन्तिक' इति विशेषणं वर्तते। तेन बहवो विद्वांसोऽस्य जन्मभूमिः 'उज्जयिनी' इति वदन्ति। परम् 'आवन्तिक' विशेषणस्य तत्र जातस्तथा च सोऽस्य देश इति व्युत्पत्त्या उज्जयिन्युद्भव इत्येवार्थं कर्तुं न शक्यते। अतोऽस्य जन्मस्थान-विषये विवाद एव वर्तते। भट्टोत्पलेन बृहत्संहिताया आरम्भश्लोकावतरणिकायाम् "तदयमप्या-वन्तिकाचार्यमगधद्विजवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो" इत्युक्तम्। एतदन्यच्च दृष्ट्वा म० म० श्रीसुधाकरद्विवेदेन गणकतरङ्गिण्यां वराहमिहिरवृत्तालोचने जन्मभूमिविषयेऽनेकमतान्युपन्यस्तानि। मम मते तु 'आवन्तिकः' इति विशेषणोपादानादनेनोज्जयिन्यस्य जन्मभूमिरासीत्। यथाऽऽर्यभटोक्ते—

ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान् नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्॥

इत्यस्मिन् पद्ये 'कुसुमपुरे' इति शब्दप्रयोगेणार्यभटस्य जन्मभूरपि कुसुमपुरमेव विद्वद्भिः स्वीकृतम्। तथैव वराहमिहिरस्यापि जन्मभूरुज्जयिनी भवेत्। केवलमत्र भट्टोत्पल-कृतमगधशब्दप्रयोगो भ्रान्तिमुत्पादयति। वराहमिहिरात् पादोनपञ्चशतकासन्नकालादनन्तरं जातस्य भट्टोत्पलस्याप्याचार्यजन्मविषये कदाचिदज्ञानं भवेत् आचार्यस्य पूर्वजा मगधदेशादागत्य उज्जयिन्यां कृतनिवासा भवेयुः, येन भट्टोत्पलेन मगधद्विज इति विशेषणं प्रयुक्तम्। परमाचार्यस्य मगधद्विजत्वेऽभिमानो नासीत्। तेनास्य मगधद्विजत्वं विवादास्पदमेव।

जन्मकालः

जन्मकालनिर्णयेऽपि विदुषां विवाद एव। यतो हि पञ्चसिद्धान्तिकायां गणितारम्भार्थं ४२७ शको गृहीतः। तद्वाक्यं यथा —

सप्ताश्विवेदसङ्ख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये॥

(प० सि० १ अ० ८ श्लो०)

एवञ्चास्य मृत्युविषये प्रचलितमामराजोक्तम् "नवाधिकपञ्चशतसङ्ख्यशाके वराह-मिहिराचार्यो दिवं गतः" इतीदं वाक्यम्। पुनश्च सिद्धान्तिकायामार्यभट्टोल्लेखादार्यभटादनन्तरं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५०९ शकात् प्रागेवास्य जन्मादिकालः। तदर्थं विशेषविवेचनं भारतीयज्यौतिष–गणकतर–ङ्गिण्यादिग्रन्थेष्वलोक्यम्। इतिहासकारैः ४१२ शकासन्नकालोऽस्य निर्धारितः। स युक्तियुक्तः प्रतिभाति।

जनको गुरुश्च

अस्य जनक आदित्यदासः। स एव गुरुरप्यासीदित्याचार्योक्तपरिचयश्लोकेन स्पष्टम्। पितुरन्योऽपि गुरुरासीदिति–

दिनकरवशिष्ठपूर्वान् विविधमुनीन् भावतः प्रणम्यादौ।
जनकं गुरुञ्च शास्त्रे येनास्मिन् नः कृतो बोधः।।

(प० सि० १ अ० १ आर्या०)

अनेन पद्येन प्रतीयते।

ग्रन्थाः

१. पञ्चसिद्धान्तिका, २. बृहज्जातकः, ३. लघुजातकः, ४. योगयात्रा ५. विवाहपटलः, ६. बृहत्संहिता, ७. समाससंहिता, ८. जातकार्णवः, ९. विवाहखण्डः, १०. ढिकनिकयात्रा, ११. ग्रहणमण्डलफलम्, १२. पञ्चपक्षी, १३. दिक्किनीयात्रा। श्रीशङ्करबालकृष्णदीक्षितेन 'भारतीयज्यौतिषे' वराहस्य "पञ्चसिद्धान्तिका" एव करणग्रन्थ इति यन्मतमुपन्यस्तम्, तज्जातकार्णवदर्शनेनापास्तं भवति। वराहस्य पञ्चसिद्धान्तिकातिरिक्तः करणग्रन्थो जातकार्णवो नेपालदेशीयकाठमाण्डूस्थवीरपुस्तकालये वर्तते।

रुद्रकृतविवरणोपेतं होराशास्त्रमेव बृहज्जातकम्। अस्य प्रचारो विशेषतया वर्तते। फलवेत्तार एनं सादरं स्वीकुर्वन्ति। बृहज्जातकस्य लघुस्वरूपं लघुजातकम्।

यात्राविचारप्रमुखो योगयात्राग्रन्थो मुद्रितो लभ्यते। राज्ञां यात्राविषये विस्तरतो विचारोऽ–स्मिन् ग्रन्थे वर्तते।

विवाहपटलो वराहप्रणीतः प्रसिद्धः। यथा नाम तथा वस्तुनिर्देशोऽस्मिन् पुस्तके वर्तते। परमेतन्नामको ग्रन्थोऽपराचार्येण पीताम्बरेण प्रणीत इति वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयीय–सरस्वतीभवनपुस्तकालये वर्तत इति तद्धस्तलिखितपुस्तकानां सूचीदर्शनेन प्रतीयते। विवाह–खण्डेति वराहप्रणीतं पुस्तकं नेपालदेशीयकाठमाण्डूनगरे वीरपुस्तकालये वर्तते। परमस्या–रम्भोपक्रमदर्शनेन वराहप्रणीतत्वे संदेहो जायते। पुस्तकारम्भो यथा –

"ॐ नमः सूर्याय

विशुद्धनक्षत्रविलग्नमार्याः प्राहुस्तदैवेष्टफलं यतोऽतः।
निगद्यतेऽनेकविधा मयादौ तावद्भशुद्धिः शुभकर्ममुख्या।।
बहुवाचालतां लग्नप्रविष्टां चागमाम्बुधेः।
शिष्यश्रीबालदेवस्य भालदेवमलीलिखेत्।।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र प्रथमश्लोकानन्तरं यत्पद्यार्धं गद्यं वा तद्विचारणीयं वर्तते। अस्यैव ग्रन्थस्यान्तिमं वाक्यम्–

समावर्तनकर्माणि प्रशस्यन्ते द्विजातिषु।
वृषलग्ने शुभे दृष्टे विप्राणां पदकर्मणि।।

इति बटुकेशविधिः समाप्तः।

१०. ढिकनिकयात्रापुस्तकं नेपालदेशीयकाठमाण्डूनगरे नेपालराष्ट्रियपुस्तकालये वर्तते। मुहूर्तविषयकं पुस्तकमेतत्।

११. पञ्चपक्षी–एतत्पुस्तकमपि नेपाले काठमाण्डूनगरे राष्ट्रियपुस्तकालये तथा वाराणसेय–संस्कृत विश्वविद्यालयीयसरस्वतीभवने वर्तते। परं तत्र मङ्गलाचरणमेतत् –

''ॐ परमात्मने नमः

अभिगम्य महादेवं सर्वशास्त्रविशारदम्।
भविष्यदर्थबोधाय पञ्चपक्षी प्रकाश्यते।।
अनेन शास्त्रसारेण लोके कालत्रयं प्रति।
बलाबलानि दृश्यन्ते सर्वकार्येषु निश्चितम्।।

तथा चान्तिमं वाक्यम् –

ग्रन्थास्तावद्विराजन्ते यावन्नोदेति भास्वती।
पञ्चपक्षिस्तूदिते तु न ग्रन्था न च भास्वती।

इति पञ्चपक्षी साकुलं समाप्तम्।''

अत्राद्यन्तश्लोकदर्शनेन पुस्तकमेतद्वराहमिहिरकृतं नास्तीति प्रतीयते। मङ्गलाचरणे यथा सर्वग्रन्थारम्भे सूर्यवन्दना वर्तते, तथाऽत्र नास्ति। एवञ्चान्तिमं पद्यं यद्यप्यशुद्धम्, तथापि तत्र भास्वतीग्रन्थस्य प्रशंसा वर्तते। भास्वतीकर्ता शतानन्दः १०२१ शके भास्वती–करणं वराहमिहिरस्वीकृतसूर्यसिद्धान्तसम्मतं व्यलिखत्। तेन पञ्चपक्षिपुस्तकं १०२१ शककालादनन्तरं जातमिति प्रतीयते। पुस्तकमेतद्वारहविषये भ्रान्तिमुत्पादयति। यथा कालिदासा बहवो जातास्तथैव वराहा अपि बहवः संजाता इति वितर्कावसरः समुदेति। यथा प्रसिद्ध–कालिदासेन विशिष्टं काव्यं रचितम्, तथैव प्रसिद्धेन वराहमिहिरेण प्रसिद्धाः पञ्चसिद्धान्ति–कादयो ग्रन्था निबद्धाः। अन्यानि लघुपुस्तकानि केनचिदन्येन वराहेण ग्रथितानीत्यनुमितिर्जायते।

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयीयसरस्वतीभवनेऽस्यानेकाः प्रतयः सन्ति। तत्र मङ्गलाचरणं तथाऽन्तिमं पद्यं भिन्नं भिन्नमस्ति। तद्यथा प्रारम्भे –

''नमस्कृत्य महादेवं गुरुं शास्त्रं विशारदम्।
भविष्यदर्थबोधाय वक्ष्येऽहं पञ्चपक्षिणम्।।

अन्ते–

वाराहमिहिरेणोक्तं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
स्वशंसात्कठिनं भित्वा स्वायासेन स्वशक्तितः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यपुस्तकस्य प्रारम्भे –

नमस्कृत्य हरिं देवं सर्वशास्त्रविशारदम्।
भविष्यदर्थबोधाय वक्ष्यन्ते पञ्चपक्षिणः।।

अन्ते –

.....

अन्यत्र च प्रारम्भे –

प्रणम्य श्रीमहादेवं सर्वशास्त्रविशारदम्।
भविष्यदर्थबोधाय पप्रच्छुर्मुनयो मुदा।।
तेषां वचनमाकर्ण्य निजगाद महेश्वरः।

अन्ते –

इति मुनिगणसंतोषार्थं श्रीशिवविरचितं पञ्चपक्षिशकुनं समाप्तम्।''

इत्येवमेतत्पुस्तकं वराहमिहिराचार्यविषयेऽनेकशः संशयमुत्पादयति। एतदर्थमनुसन्धातारो विचारयन्तु।

१२. ग्रहणमण्डलफलम्। एकपत्रात्मकं लघुपुस्तकं वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य सरस्वतीभवने वर्तते।

तत्र प्रारम्भे –

''भूकम्पश्चाति निर्घातोल्कापातो भवेद्यदि।
ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य धूमकेतोश्च दर्शनम्।।

अन्ते –

आग्नेयं चाष्टभिर्मासैर्वायव्यं च त्रिमासिकम्।
वारुणं मासमेकेन माहेन्द्रं सप्तमासिकम्।।

इति वाराहमिहिरकृते ग्रहणमण्डलफलम्।''

अस्य भाषादृष्ट्या पुस्तकमेतदाचार्यप्रणीतमस्ति न वेति संशयो जायते।

१३. दिक्किनीयात्रा–इदं पुस्तकं नेपाले वीरपुस्तकालये वर्तते। तत्राद्यन्तस्थलानि अशुद्धानि सन्ति। यात्राविषयको ग्रन्थः। ढिकनिकयात्रापुस्तकतो भिन्नं पुस्तकमेतत्।

बृहत्संहिता समाससंहितेति संहिताद्वयस्योल्लेख इतिहासविद्भिः कृतो दृश्यते। परं समाससंहिता मुद्रिताऽमुद्रिता वा न दृष्टिपथं समायाता। इतिवृत्तविदां मतं यत्समाससंहिता बृहज्जातकस्य लघुजातकमिव बृहत्संहिताया लघुस्वरूपं भवेदिति। बृहत्संहिता अनेकस्थलात् मुद्रितोपलभ्यते। तद्यथा –

१. श्रीभट्टकर्ण (डॉ० कर्ण) परिशोधिता तत्कृताङ्गलानुवादसहिता च कलिकातानगरे प्रकाशिता।

२. म० म० श्रीसुधाकरद्विवेदद्वारा संपादिता भट्टोत्पलकृतविवृतिसहिता काश्यां प्रकाशिता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. मोहमयीस्थ (बॉम्बे) खेमराजश्रीकृष्णदासमुद्रणालयतो हिन्दीभाषासहिता प्रकाशिता वर्तते।

४. वी० सुब्रह्मण्यशास्त्रिकृताङ्गलभाषानुवादसहिता बेङ्गलोरनगरतः प्रकाशिता।

५. रत्नागिरेर्जगन्मित्रमुद्रणालये मराठीभाषानुवादालङ्कृतमूलपाठयुक्ता मुद्रिता आसीदिति 'भारतीयज्यौतिष' ग्रन्थाद् ज्ञायते।

६. अस्या अन्तिमं संस्करणं काशिकचौखम्भासिरीजमुद्रणालयात् हिन्दीभाषानुवाद–सहितमधुनोपलभ्यते।

इत्येवं बृहत्संहिताया भट्टोत्पलेन या टीका कृता तदतिरिक्ता अन्या काचित्प्राचीना टीका नोपलभ्यते।

महत्सौभाग्यस्यावसरो यद्भट्टोत्पल्लटीकासमलङ्कृताया बृहत्संहिताया वाराणसेयसंस्कृत–विश्वविद्यालयतः पुनः प्रकाशनं जायमानं वर्तते।

बृहत्संहिता

अयं ग्रन्थः १०६ अध्यायात्मको वर्तते। इयं संख्या श्रीसुधाकरद्विवेदीसम्पादिते ग्रन्थे। कस्मिंश्चित्पुस्तके १०७ अध्यायाः सन्ति। तत्र वी० सुब्रह्मण्यशास्त्रिणां मत आचार्यप्रणीताः १०० अध्याया एव सन्ति। अन्ये सप्त अध्यायाः प्रक्षिप्ताः सन्ति।

एषां मते (१) वातचक्रम्, (२) रजोलक्षणम् (३) अङ्गविद्या, (४) पिटकाध्यायः, (५) विवाहपटलः, (६) नक्षत्रजातकम् (७) शास्त्रानुक्रमणी इत्येतेऽध्याया आचार्यप्रणीता न सन्ति। परमेषामाचार्यप्रणयनाभावे किमपि सबलं कारणं नो दर्शितम्।

प्रभावः

वराहमिहिराचार्यकाले संहितापदार्था विशेषतो लोके प्रचलिता आसन्। आचार्येण स्वयं बृहत्संहितायाः प्रथमाध्यायस्य द्वितीयश्लोके–

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम्।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम्।।

इत्युक्तम्। अत इयं बृहत्संहिता पूर्वप्रचलितविषयानेव सारल्येन संक्षेपेण च प्रकटयति। अस्याः प्राक्काले गर्गसंहिता, काश्यपसंहिता, नारदसंहितेत्यादिसंहिता आर्षा आसन्। यासां मध्ये बह्वीनां संहितानां तत्र तत्र प्रमाणान्युत्पलेन संगृहीतानि। एवमाचार्येण तत्तत्संहिता–कारमुनेरुल्लेखो मूले कृतो दृश्यते। प्राचीना गर्गसंहिता–मनुसंहिताद्याः १८ संहिता आसन्। अतोऽस्याः संहितायाः प्रणयने प्राक्तनीनां संहितानां प्रभावोऽत्रावलोक्यते।

एकमपरमपि पुस्तकं दृष्टिपथं समागतं शार्दूलकर्णावदानमिति। एतद्भगवतो बुद्धस्य मातङ्गदारिकां प्रत्युपदेशसूत्ररूपमस्ति। अस्य पुस्तकस्य चीनीतिब्बत्यादिभाषास्वप्यनुवादः सञ्जातः। चीनीभाषायामनुवाद ई० १७० समये जात इति सुजितकुमारमुखोपाध्यायसम्पादित शार्दूलकर्णावदानस्य भूमिकादर्शनेन प्रतीयते। अत एतत्पुस्तकं बृहत्संहितारचनातः पूर्वरचना वर्तते। अस्मिन् भूकम्पनिर्देशः, तिलकाध्यायः, नक्षत्रजन्मगुणः, उत्पातचक्रनिर्देशः, पिटका–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्यायः, स्वप्नाध्यायः, मासपरीक्षा, खञ्जरीटकज्ञानम्, शिवारुतम्, पाणिलेखा, वायसरुतम्। द्वारलक्षणम्, वस्त्राध्यायः, लुङ्गाध्यायः, धूमिकाध्यायः, इत्यादयो संहितापदार्था अन्ये च विभिन्नविषयाः समुपवर्णिता अवलोक्यन्ते।

काश्यपसंहितायां तु बृहत्संहितायां वर्णिताः प्रायः सर्वे विषयाः सन्निवेशिताः सन्ति। इत्येवं बृहत्संहितायां संहितापदार्थानां विकसितस्वरूपं कालक्रमागतमिति स्पष्टमेव। तत्र आचार्यस्य प्रागल्भ्याल्लेखनशैलीप्रौढ्या च सिद्धान्तेषु भास्कराचार्यस्येव, एवञ्च करणग्रन्थकारेषु गणेशदैवज्ञस्येव प्रतिभावैशिष्ट्याल्लोके यशः प्रसृतम्।

आचार्यस्य कालिदासकाव्येन वा कालिदासकविना सह विशिष्टसम्बन्ध आसीदिति वी० सुब्रह्मण्यशास्त्रिणा बृहत्संहितायाः स्वकृताङ्गलानुवादभूमिकायामङ्गीकृतम्। एतदर्थं कालिदासप्रयुक्तसूक्तीनामुल्लेख आचार्येण बृहत्संहितायां विहित इति काश्चिदुक्तय उद्ध्रियन्ते –

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति (अ० ७०–२३)।

प्रायः शरीराकारानुवर्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति (अ० २–२)।

ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः (अ० ७३–५)।

यस्मिन् मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा (अ० ७४–३)।

इत्यादयः प्रसङ्गाः सन्ति। अतो बहूनामिदं मतं यत्कालिदासवराहमिहिरौ समकालिकौ स्तः। तदर्थम्:–

धन्वतरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु–
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इति ज्योतिर्विदाभरणोक्तं पद्यमपि कौतुकमुत्पादयति। भवतु नामैतत्। पद्यानां लालित्य–दृष्ट्या आचार्यस्य पद्यबन्धः कालिदासं स्मारयत्येव।

विषयोपन्यासो वैदग्ध्यपूर्णः क्रमिकश्च। भाषा च सरला प्रासादिकी च। संहितालक्षणानुसारं सर्वे संहिताविषया अत्र साकल्येनावलोक्यन्ते। अर्थाद्ये लक्षणगुणास्ते सर्वेऽत्र संकलिताः सन्ति। अतोऽस्या लोके महानादरः परिलक्ष्यते।

अत्र संहितायां केचनाध्याया अन्यप्राचीनग्रन्थेभ्यः संगृहीता इति केषाञ्चिद्विदुषां मतम्। यथा दकार्गलाध्यायो मनुसंहितातः संगृहीतः।

एवञ्चात्र संहितायां ये सैद्धान्तिका विषया निबद्धास्ते स्वयं परीक्षिता न सन्तीति प्रतीयते। यथा "आसन्मघासु मुनयः" इत्यादिपद्ये सप्तर्षीणामाकाशे स्थितिर्वर्णिता। तस्याः स्थितेः स्वग्रन्थरचनाकाले स्वयं परीक्षणं कृतञ्चेत्तदा साधूपकृतं भवेत्। यतो हि सप्तर्षीणां गतिविषये स्थितिविषये चाधुना गणितेन पूर्ववर्णितस्थितौ संदेहो जायते। एवमेवागस्त्यचारोऽपि परम्पराविधिनैव वर्णितः। अतोऽयमाचार्यो गणितादिविषयान् क्रियारूपेण न परीक्षितवानिति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्तत्स्थलनिरीक्षणेन प्रतीयते। आचार्यस्य बृहत्संहितानन्तरं तादृशसंहिताग्रन्थो न प्रादुर्भूतः। श्रीवल्लालसेनविरचितोऽद्भुतसागरस्तथारूपः, तथापि सा प्रतिष्ठा तस्य नास्ति।

एतत्तु सत्यमेव यज्जातकशास्त्रस्य परम्पराप्रवर्तकोऽयमेव प्रथम आचार्यः। आर्षग्रन्था लभ्यन्ते, परमाचार्यप्रणीता जातकग्रन्थास्तु वराहमिहिरस्य प्राथम्यं लभन्ते। तदनन्तरमस्याः शाखाया विस्तारः समजनि। एतदपि वक्तुमुचितं यद् वराहमिहिरादन्यः कोऽप्याचार्यस्त्रिस्कन्धज्योतिर्विद्याकुशलो ग्रन्थप्रणेता नासीत्। अतोऽस्य ज्यौतिषशास्त्रस्य आचार्येषु प्रामुख्यमस्ति।

बृहत्संहिताया हस्तलिखिताः प्रतयो देशस्य सर्वसंस्कृतशास्त्रीयपुस्तकालयेषु वर्तन्ते इत्येतदस्या वैशिष्ट्यं लोकप्रियत्वञ्च द्योतयति। एका प्रतिर्नेपाले काठमाण्डूनगरे वीरपुस्तकालये वर्तते। तस्या लिपिकालविषये "संवत् ६५८ श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तिथौ स्वातीनक्षत्रे बृहस्पतिवासरे लिखितं सम्पूर्णम्। श्रीभक्तपत्तने श्रीश्रीजयप्राणमल्लदेवस्य स्वभुज्यराज्ये लिखितमिदं शास्त्रं वराहसंहिता दैवज्ञजयकीर्त्तराजेन स्वार्थमिति शुभमस्तु।" इयं शब्दावलिराश्चर्यमुत्पादयति। संतव् ६५८ काले नेपालेऽस्याः प्रतिलिपिः संजाता। तदाऽस्या अस्मद्देशात्तद्देशे प्रचारार्थं कालोऽपेक्षते। तदर्थं यदि १०० वर्षाणि संरक्ष्यन्ते तदाऽपि पूर्वनिर्दिष्टो जन्मकालः संभावनाकोटिमारोहति।

अस्याः पुनः प्रकाशनेन ज्योतिर्विद्याजिज्ञासूनां लोकस्य च महानुपकारो भविष्यति।

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
वाराणसी
वसन्तपञ्चमी
संवत् २०२४
दि० २२.१.६८

विदुषामाश्रवः
अवधविहारी त्रिपाठी
ज्योतिषविभागाध्यक्षः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

PREFACE

[1] Varahamihira's admirable production, the Brihat Samhita, has long been studied and appreciated as a complete system of natural astrology and is still considered as most elaborate and scientific in its treatment.

Dr. Kern's edition of 1864 first introduced it to the Sanskrit scholars of Europe, who have held it in high esteem.

[2]Bhattotpala's Vivritti is familiar to every student of Varhamihira as the most elaborate and helpful commentary. But manuscripts of this work are so generally imperfect and incorrect that the task of editing them is by no means easy.[3]

Dr. G. Thibaut, Ph. D., (Principal, Muir Central College, Allahabad, and Superintendent, Sanskrit Studies, N. W. P. and Oudh,) collected six manuscripts of this commentary.

---

1. See for his life, "Lives of Hindu Astronomers" compiled by me, p. II.

2. See "Lives of Hindu Astronomers," p. 21.

3. "The commentary on the Brihat Samhita would be well worthy of being separately edited; unhappily, it is rather bulky, containing the substance of somewhat more than twenty thousand Slokas, and a stiil greater barrier to such an undertaking is offered by the horrible state of all codices." (Preface to the Brihat Samhita, edited by Dr. H. Kern, p. 62)

"I am sorry to say that the copies of Utpala's commentary are in such a condition that I have often been obliged to recur to conjectures, most of them, however, being obvious. The uncertainty about the true reading materially affects the translation; and the want of any explanation on the part of Utpala does so in a no less degree. At the same time, I am of opinion, the greater or less degree of correctness of the extracts by no means renders them less important for the purpose of comparing them with the complete works ascribed to the renowned Indian Mathematicians and Astronomers"

(On some fragments of Aryabhata, by Dr. H. Kern printed in the Journal of the Royal Asiatic Society, p. 4).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

The first—copied from Rakhan Lal's MS. from Muttra, purchased by P. Dhundhiraja Sastri, late Librarian, Sanskrit College, Benares. The second—a fragment up to Utpala-Lakshana, bought by Dr. G. Thibaut through me. The third—purchased by me for the Sanskrit College Library. The fourth—belonging to Pt. Vamanacharya of Benares, borrowed by me for Dr. G. Thibaut. The fifth—purchased by Dr. G. Thibaut for the Sanskrit College Library in Allahabad. The sixth—an incomplete and useless copy supplied by Pt. Vindhyesvari Prasada Dvivedi Librarian, Sanskrti College, Benares.

All these copies were found to be full of mistakes, and Dr. G. Thibaut asked me to make out the correct original reading by comparing them all with one another.

I accordingly availed myself of another copy belonging to Krishna Joshi, one of my pupils and diligently applied myself to the work, the first fifty-one chapters of which are now laid before the pudlic.

I have taken care to add important differences in reading as foot notes; and although emending to the best of my powers I am still doubtful as to the prose quotations from Parasara, where the names of countries & c. occur; therefore suggestions in regard to these will be thankfully accepted. Out of the 7 MSS. I have made use of the first five and the seventh are denoted by "प्र" "अ" "क" "ग" "घ" and "व" respectively; and the 6th being too replete with errors, no notice has been taken of it.

Further I have added an index to help the readers to refer the quotations from different authors.

Other particulars regarding the present edition will be given in an appendix at the end of the work.

In conclusion, I shall consider my labour amply, rewarded if this edition is deemed acceptable to the public to whom I venture to present it.

SUDHAKARA DVIVEDI.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

भूमिका

जयति सहितशेषोऽशेषलीलाविशेषो
जनकवचनधीरः सत्यसङ्कल्पवीरः।
सकलनिजजनानां शर्मदः सज्जनानां
दशरथनृपबालः कोशलेन्द्रो नृपालः॥

अस्तीयं भारतवर्षे त्रिस्कन्धज्योतिर्विद्यावेदिनां मध्ये गुरुपरम्परातः प्रथिता सद्गणक–गणप्रशंसिता सकलसंहितालक्षणोपेता विविधविधानभूषिता प्रशस्तपुरुषादिलक्षणमण्डिता [1]वराह–मिहिरकृता बृहत्संहिता नाम। यूरपदेशेऽपीयं डाक्टरकर्ण (Dr. H. Kern) मुद्रणकालात् (सन् १८६४ ई०) विशेषतो यूरपदेशीयसंस्कृतविद्याविनोदिनां विदुषां प्रसिद्धा जाता। अथैतस्याः संहितायाः प्राचीनाचार्यवचननिचयनिचिता चतुरविद्वज्जनमनोविनोददायिनां सदर्थविचारचातुरी–प्रपञ्चसहायिनी सद्भारते भारते चिरात् प्रसिद्धा [2]भट्टोत्पलविरचिता संहिताविवृतिनाम्नी टीका च। चिरकालाल्लेखकाध्यापकाध्येतृदोषैरतीव दुर्दशामापन्ना सम्प्रति सेयं विवृतिर्नष्टभ्रष्टा स्पष्टकष्टदायिभिर्दुष्टविवर्णपाठपरम्परासमुदायैः।

अथैतस्याष्टीकायाः श्रीडाक्टरथिबो (Dr. G. Thibaut, Ph. D., Principal, Muir Central College, Allahabad.) महाशयैः काशिकराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशाला–सरस्वतीभवने स्थापनार्थं श्रीढुण्ढिराजशास्त्रिद्वारा सम्पादितं मथुरानगरीयश्रीराखनलालपुस्तकस्य प्रत्यन्तरमेकं मत्साहाय्येन निजार्थं क्रीतमुत्पातलक्षणाध्यायस्य ५७ श्लोकपर्यन्तं द्वितीयं विद्यामन्दिरे स्थापनार्थं मत्क्रीतं, तृतीयं मदुद्योगेनानीतं श्रीमत्पण्डितवरवामनाचार्यस्य पुस्तकं चतुर्थं तत्रैव पुस्तकालये स्थापनार्थं प्रयागे क्रीतं, पञ्चमं सम्प्रति पुस्तकालयाध्यक्षश्री–पण्डितविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदिना दत्तं खण्डितमनुपयुक्तं, षष्ठं च पुस्तकं सङ्गृह्यैतेषु सर्वेषूप–लब्धपुस्तकेषु च प्रतिपङ्क्त्यशुद्धसमुदायं संवीक्ष्य तच्छोधनं च दुरवगममवगम्य संशोधनार्थं मह्यं तानि समर्पितानि। मयाऽत्मच्छात्रश्रीकृष्णजोशीतो लब्धं खण्डितं पञ्चाशदध्यायपर्यन्तमपरं सप्तमं पुस्तकं च समासाद्य बहुनाऽऽयासेन तेभ्यो विवर्णान् स्खलितान् पाठान् संशोध्य पाठशालाध्यक्षश्रीवेनिस् (A. Venis, M.A., Principal, Sanskrit College, Benares.)

---

१. वराहमिहिरविषये द्रष्टव्या मद्विरचिता गणकतरङ्गिणी, पृ० ११।

२. भट्टोत्पलविषये द्रष्टव्या मन्निर्मिता गणकतरङ्गिणी, पृ० २१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाशयानुकम्पया विजयनगरसंस्कृतसीरिजनाम्नि प्रबन्धे मुद्रापितुमारब्धेयं विवृतिर्यस्याश्चाय-माद्यत एकपञ्चाशदध्यायात्मकः पूर्वभागोऽद्य प्रकाश्यते। एतस्या एकस्यैवाध्यायस्य संशोधने यावान् परिश्रमस्तद्दशमांशेनैव श्रमेण सुखेन मया समग्रबृहत्संहिताया नूत्ना सुटीका कर्तुं शक्यते–इति सर्वं सदसद्विवेकिनां सहृदयानां विदुषामग्रे ह्युपलब्धप्राचीनपुस्तकस्थदुष्टभ्रष्ट-पाठानां तथा मच्छोधितपाठानां चावलोकनेन स्फुटमेवेत्यात्मप्रशंसाप्रयासेनालमिति। अत्र बहूपयुक्तानि प्राचीनानां बहूनि वचनानि प्राचीनमतसूचकानि सन्ति, येषु यावच्छक्यमुपलब्धग्रन्थान्तराद्यवलोकनेन पाठभेदादिनिश्चयश्च टिप्पण्यां प्रदर्शितः। अत्र यद्यपि बहुनायासेन सावधानतया च सर्वाणि पदानि संशोधितानि, तथापि गद्यरूपपराशरवचनेषु यत्र देशादिनामानि सन्ति तत्रास्ति नामान्तरसंशयोऽतो निष्पक्षपातधिया प्राचीनकृतिकीर्त्तिस्थापनशीलैः सुधीभिस्तान्यन्यानि च भृशं विचिन्त्य संशोधनीयानीति तान् सुजनान् विनीतो मुहुरर्थये।

अत्र प्रथमं पुस्तकं 'प्र' संज्ञकम् द्वितीयम् 'अ' तृतीयं 'क' चतुर्थं 'ग' पञ्चमं 'घ' सप्तमं 'व' संज्ञकं' च प्रकल्पितम्। षष्ठं चातीव भ्रष्टमवलोक्य नादृतम्। एतानि सर्वाणि पुस्तकानि प्राय एकमातृकाणि तेन सर्वत्रानुपयुक्तपाठान्तराणि विहाय स्थलविशेषे क्वचिदेव समुचितपाठान्तरं मया न्यासि। एवमत्र यत्र यत्र येषां येषामाचार्याणां ग्रन्थान्तराणां वा वचनानि तेषां सुखेनावगमाय ग्रन्थादौ तत्सूचीपत्रं च निवेशितम्। अन्ये ग्रन्थस्थविशेषा ग्रन्थान्ते प्रकाशिता भविष्यन्ति।

भट्टोत्पलः प्लवमकल्पयदर्थिनां यं
श्रीमद्वराहमिहिरोदित–तोयराशौ ।
स्वार्थाप्तये विवृतिरूपमपूर्वमज्ञा–
श्चक्रुर्विवर्णमकलं बहुधाऽत्र यं च॥ १॥

तं विप्लवं प्लवमवेक्ष्य विवर्णशीर्णं
ते शिल्पकर्मनिपुणाश्च कलाप्रवीणाः।
तद्भग्नभागपरिसंस्करणाय मह्य–
माज्ञां ददुः सपदि यूरपदेशविज्ञाः॥ २॥

तद्भग्नभागमखिलं परिशोध्य सम्यग्
वर्णं विभूष्य विधिवच्च पवित्रवर्णैः।
सोऽयं प्लवो निजकरेण सुधाकरेण
नूत्नीकृतः सुकृतिभिः सकलो विलोक्यः॥ ३॥

अत्र प्राचीनवाचां खचरसमुचिताचारचारप्रचार–
चञ्चच्चारुप्रपञ्चार्चिततुरगकरिश्वादिलक्ष्माङ्कितानाम् ।
सन्दोहे नेत्रदोषादखिलविधिकृतां वर्णसंयोजनाद्वा
बुद्धिभ्रान्त्या खिलत्वं गणकगणवरास्तच्च संशोधयन्तु॥ ४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति मुहुः शिरसा सुरसंहिता–
गणितजातकभेदविदो विदः।
बहुविधान् नयतोऽर्थयते सुधीः
सदुपकारकरोऽत्र सुधाकरः।। ५।।

सुधाकरद्विवेदी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

The following is a brief analysis of the important subjects contained in Bhattotpala's commentary, in their respective order, which require special attention of the learned public for discussion and consideration as regards subject matter and historical interest and research :—

Page.	*Line.*	**CHAPTER I**
5	31	In the commentary of stanza 2, "हस्तिवैद्यककारो वीरसोमः" Who was this Virasoma and what is his work ?
11-13	.....	In the commentary of stanza 7. A quotation from Kapilâchârya (कपिलाचार्य), which differs from the known (साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी). Vâchaspati Misra ascribes it to be that of Isvara Krisna (see footnote). Hence a question arises, Was Bhattotpala older than Vâchaspati Misra ? — a matter worth investigation.
14	30	Quotation from Kanâda.
17	1	Quotations from पुराणलौकायतिकमीमांसक.
22-34	.....	Birth of nine planets.
		CHAPTER II
		The whole chapter is very remarkable, for it contains a good many quotations from different authors, regarding the periodical revolutions (भगण) etc.; and more specially the following :—
44	19-25	Here the table for measuring time (काल) differs from those known in Surya Siddhanta and Siddhanta Siromani.
48	2	Here 7 digit is indicated by air (पवन). See footnote.
65	6-7	A quotation from Bhattotpala's own unknown work.
		CHAPTER III.
151-152	.....	In the commentary of stanza 3. The method for Calculating the value of precession (अयनांश) by observation and Bhattotpala shows 7^0 to be the value of the precession (अयनांश) of his time.
155	18-26	Five different names of the Sun's motion by Parasara.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Page	*Line*	
		CHAPTER IV.
179	18-19	The quotation is not found in the known Surya Siddhanta (See foot-note.)
		CHAPTER V.
209	1-2	From what Purana is it quoted ?
211	3-4	Who was Virabhadra and what is his work ?
217	10-14	Quotation not found in the known Suryasiddhanta.
227	12-29	This stanza is not in the published Panchasiddhantika, it should be supplied after the 5th stanza, page 40 of it. (see foot-note.)
230	6-19	Quotation and foot-note.
		CHAPTER VII.
315	1-2	Who was Nandî or Nandi and what is his work ?
		CHAPTER XII.
381	23-24	See foot-note, for the quotation from ब्रह्मगुप्त ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

अत्र सविवृतिबृहत्संहितायामुपयोगिनः पदार्था ये च विद्यानुरागिभिरितिहासतत्त्वविद्भिर्विद्वद्भिरवश्यं दर्शनीया विचारणीयाश्च

१ अध्याये

५ पृष्ठे, २ श्लोकटीकायाम् "हस्तिवैद्यककारो वीरसोमः" कोऽयं वीरसोमः के च तन्निर्मिता ग्रन्था इति विचारणीयाः ।

११-१३ पृष्ठेषु ७ श्लोकटीकायाम्-"तथा च कपिलाचार्यः" इति प्रभृति "तत्पूर्विका वृत्तिरिति" इत्यन्तं भट्टोत्पलेन यानि कपिलाचार्यवचनानि लिखितानि तानि सम्प्रति साङ्ख्यतत्त्वकौमुद्यां वाचस्पतिमिश्रमतेनेश्वरकृष्णनिर्मितानीति सर्वं तत्र टिप्पण्यामस्माभिः प्रदर्शितम् । प्रसिद्धां साङ्ख्यतत्त्वकौमुदीं विहाय कपिलाचार्यवचनोपन्यासेन किं भट्टोत्पलो वाचस्पतिमिश्रतः प्राचीन इति बुद्धिमद्भिर्भृशं चिन्त्यम् ।

१४ पृष्ठे, कणादवचनानि च चिन्त्यानि ।

१७ पृष्ठे, पुराणलौकायतिकमीमांसकवचनानि च विचारयोग्यानि ।

२२-३४ पृ० ग्रहाणामुत्पत्तिर्दर्शनार्हा।

२ अध्याये

अयमध्यायः सम्पूर्णो दर्शनार्हः । अत्र बहूनां प्राचीनगणितिकानां भगणादिसंबन्धीनि वचनानि सन्ति । तत्रापि विशेषतः-

४४ पृ० १९-२५ पङ्क्त्योः पराशरमतेन कालपरिभाषा । इयं च सम्प्रति प्रसिद्धसूर्य-सिद्धान्तसिद्धान्तशिरोमणिस्थकालपरिभाषातो भिन्नैव ।

४८ पृ० २ पं० पवनशब्देन सप्तसंख्या सम्प्रत्यप्रसिद्धा तत्रस्था मट्टिप्पणी च विलोक्या ।

६५ पृ० ६-७ पं० भट्टोत्पलेन कस्मिन् निजे ग्रन्थे-इदं वचनं लिखितम्-इति तद्ग्रन्थोऽन्वेषाणीयः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३ अध्याये

१५१-१५२ पृ० ३ श्लोकटीयाम्–अयनांशज्ञानयुक्तिः स्वसमयानुसारिणः सप्तायन-भागाश्च दर्शनार्हाः ।

१५५ पृ० १८-२६ पं० पराशरतन्त्रोक्ताऽर्कस्य पञ्चधा गतिरपि विलक्षणा ।

४ अध्याये

१७९ पृ० १८-१९ पं० सूर्यसिद्धान्तवचनानि सम्प्रति प्रसिद्धसूर्यसिद्धान्ते नोपलभ्यन्ते, तदर्थं मत्कृता तत्रैव टिप्पणी च विलोक्या ।

५ अध्याये

२०९ पृ० १-२ पं० कस्य पुराणस्येदं वचनम् ?

२११ पृ० ३-४ पं० कोऽयं वीरभद्रस्तत्कृतो ग्रन्थश्च कः ?

२१७ पृ० १०-१४ पं० सूर्यसिद्धान्तवचने ।

२२७ पृ० १२-२९ पङ्क्त्योर्यद्वचनं तत्पञ्चसिद्धान्तिकायाः २० पृ० पञ्चमश्लोकान्तरश्लोकः समुचितः । तत्र पञ्चसिद्धान्तिकायां त्रुटिरस्ति । द्रष्टव्या टिप्पणी ।

२३० पृ० ६-१९ वचनानि तत्रस्था मत्कृता टिप्पणी च विलोक्या ।

६ अध्याये

न कश्चिद्विशेषः ।

७ अध्याये

३१५ पृ० १-२ पं० कोऽयं नन्दी वा नन्दिस्तत्कृताश्च के ग्रन्थाः ।

८ अध्याये

न कश्चिद्विशेषः ।

९ अध्याये

३८१ पृ० २३-२४, पं० ब्रह्मगुप्तवचनोपरि मत्कृता टिप्पणी विलोक्या ।

१०-१२ अध्यायेषु

न कश्चिद्विशेषः।

◆

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीभट्टोत्पलकृतविवृतिसहितबृहत्संहिताया
हिन्दीव्याख्योपेतायाः
प्रथमभागस्थितानामध्यायानामनुक्रमणिका

क्रमांकः	अध्यायः	पृष्ठाङ्कः
१.	उपनयनाध्यायः	१-३५
२.	सांवत्सरसूत्राध्यायः	३६-१५०
३.	आदित्यचाराध्यायः	१५०-१७८
४.	चन्द्रचाराध्यायः	१७८-२०८
५.	राहुचाराध्यायः	११०-१५४
६.	भौमचाराध्यायः	१५४-२९८
७.	बुधचाराध्यायः	२९८-३१५
८.	बृहस्पतिचाराध्यायः	३१६-३६०
९.	शुक्रचाराध्यायः	३६१-३९७
१०.	शनैश्चरचाराध्यायः	३९३-४१३
११.	केतुचाराध्यायः	४१३-४६२
१२.	अगस्त्यचाराध्यायः	४६२-४८०

◆

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ॥

बृहत्संहिता

वराहमिहिरकृता

भट्टोत्पलकृतविवृतिसहिता[1]

हिन्दीव्याख्यासमलङ्कृता

अथ प्रथमोऽध्यायः

हिन्दीव्याख्याकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

नत्वा शास्त्र-गुरून् वराहमिहिर-प्रोक्तां बृहत्संहिताम्,
श्रीभट्टोत्पलधीविलासविवृति—व्याख्यां प्रकर्षोज्ज्वलाम्।
सूर्योपासनलब्धबुद्धि—विभवो नागेन्द्रपाण्डेय-विद्,
ग्रन्थग्रन्थिविभेदनाय सुधियां व्याख्याति हिन्द्यां मुदे॥

संस्कृतव्याख्याकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

ब्रह्माजशङ्कररवीन्दुकुजज्ञजीवशुक्रार्कपुत्रगणनाथगुरून् प्रणम्य।
यः संग्रहोऽर्कवरलाभविवृद्धबुद्धेरावन्तिकस्य तमहं विवृणोमि कृत्स्नम् ॥ १॥

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, गणेश एवं गुरुजनों को प्रणामकर भगवान् सूर्य के वरदान से प्राप्त उन्नत बुद्धिवाले अवन्तिवासी (उज्जैन निवासी श्री वराहमिहिर) का जो संग्रह (संहिता) ग्रन्थ है, उसका मैं (भट्टोत्पल) सम्पूर्ण रूप से विवेचन कर रहा हूँ ॥१॥

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषं-
तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-
दित्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते ॥ २॥

जिस ज्यौतिष-शास्त्र का भगवान सूर्य ने विस्तृत तीन स्कन्धों में निर्माण

---

१. इयमेव विवृतिर्लोके भट्टोत्पलकृतटीकेति व्यवह्रियते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया, उस ज्यौतिषशास्त्र के उच्छेदन के भय से पुनः कलियुग में भूतलपर अवतरित होकर वराहमिहिर के ब्याज से लघु रूप में सम्पूर्ण ज्यौतिषशास्त्र को प्रतिपादित किया। इस प्रकार जिसे तत्त्वज्ञानी, महर्षि कहते हैं, उस भगवान् सूर्य के लिए नमस्कार है ॥२॥

वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले
ग्रहर्क्षगणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले।
भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धास्ततः
करोमि विवृतिप्लवं निजधियाऽहमत्रोत्पलः॥३॥

वराहमिहिररूपी सागर में बहुविध जलराशि से आकुल ग्रह-नक्षत्र समूह रूपी जलवाले, प्रचुर योगरूपी देदीप्यमान रत्नोंवाले ग्रन्थार्णव में स्वल्पबुद्धियुक्त अर्थाभिलाषी, यतः चतुर्दिक भ्रमण करते रहते हैं, अतः मैं (आचार्य) भट्टोत्पल अपनी मति के अनुरूप विवृति (व्याख्या) रूपी नौका को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

तात्पर्य यह है कि वराहमिहिर की यह कृति एक विशाल सागर के समान है, जिसमें विविध प्रकार के विशिष्ट अध्याय हैं तथा ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्धित पूर्ण विवेचन है और अनेक प्रकार के योगों का विद्वत्तापूर्वक उपस्थापन किया गया है, जिसके अर्थों को जानने में प्रायः जिज्ञासु जन को कठिनाई का अनुभव होता है, अतः सुगमतापूर्वक अर्थ-बोध कराने के उद्देश्य से मैं अपनी व्याख्या (विवृति) प्रस्तुत कर रहा हूँ। सागर में विराजमान विविध बहुमूल्य रत्नों के इच्छुक व्यक्तियों के लिए जिस प्रकार नौका सहायक होती है, उसी प्रकार यह मेरी व्याख्या भी सहायक है ॥३॥

कानीह शास्त्रे संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते— वाच्यवाचकलक्षणः संबन्धः। वाच्योऽर्थो वाचकः शब्दः। अथवोपायोपेयलक्षणः संबन्धः। उपायस्त्विदं शास्त्रमुपेयं ज्ञानम्। अथवा आब्रह्मादिविनिःसृतं वेदाङ्गमिति संबन्धः। अनेन शास्त्रेण च यद् ग्रहनक्षत्रोत्थानां शुभाशुभानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां फलज्ञानं तदभिधेयम्। जगतः शुभाशुभकथनं प्रयोजनं सम्यग्ज्ञानान्मोक्षावाप्तिरिति च प्रयोजनम्। किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते— श्रोतॄणां संबन्धाभिधेयप्रयोजनकथनाच्छास्त्रविषये श्रद्धा जायत इति। तथा चोक्तमत्रार्थे :—

इस शास्त्र में सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन कौन-कौन हैं ? यह कहा जा रहा है :— वाच्य-वाचकलक्षण ही सम्बन्ध है। वाच्य अर्थ और वाचक शब्द होता है। अथवा उपाय और उपेयलक्षण-सम्बन्ध है। उपाय यह प्रस्तुत शास्त्र है और उपेय है ज्ञान। अथवा ब्रह्मा से आरम्भ कर विनिर्गत वेदाङ्ग यह सम्बन्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस शास्त्र के द्वारा ग्रह-नक्षत्रों से उप्पन्न जो शुभाऽशुभ तथा दिव्यान्तरिक्ष-भौमादि उत्पातों के फल का ज्ञान है, वह अभिधेय है। संसार के शुभाऽशुभ फलों का कथन प्रयोजन है, तथा सम्यक् ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति यह प्रयोजन है। इन कथनों से क्या होता है ? यह प्रस्तुत किया जा रहा है :- श्रोताओं के लिए सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन के कथन से शास्त्र के विषय में श्रद्धा उत्पन्न होती है। जैसा कि इस सम्बन्ध में कहा गया है :-

सिद्धिः श्रोतृप्रभृतीनां संबन्धकथनाद्यतः।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु संबन्धः पूर्वमुच्यते॥
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित्।
यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत्॥
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते॥

यतः सम्बन्ध-कथन के कारण ही श्रोता, अध्येता, आदि को सिद्धि प्राप्त होती है, इस कारण ही सभी शास्त्रों में सम्बन्ध का ही पूर्वकथन होता है।

किसी के द्वारा यह प्रश्न करने पर कि इस ग्रन्थ में अभिधेय क्या है ? इस प्रश्न का उसको उत्तर न दिया जाय सके तो वह प्रयत्न निष्फल ही होता है।

सभी शात्रों का अथवा किसी भी कार्य का जब तक प्रयोजन न कहा जाय तब तक उसे कौन ग्रहण करेगा !

तस्मात् संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि वक्तव्यानि। कस्याऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकार इत्युच्यते द्विजस्यैव यतस्तेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च। कानि तान्यङ्गानी-त्युच्यते :-

इसलिए संबन्ध, अभिधेय और प्रयोजन को अवश्य कहना चाहिए। इस प्रकृत शास्त्र में किसका अधिकार है ? यह कहा जा रहा है:- द्विज को ही यह अधिकार है, क्योंकि उसके द्वारा ही षडङ्ग वेदों का अध्ययन और ज्ञान किया जाता है। कौन से वे षडङ्ग हैं ? उसे कहते हैं :-

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः।
छन्दसां लक्षणं चैव षडङ्गो वेद उच्यते॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द इनको वेद का षडंग कहा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सतामयमाचारो यच्छास्त्रप्रारम्भेष्वभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति। तदयमप्यावन्तिकाचार्यमगधद्विजवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिःशास्त्रसंग्रहकृद् गणितस्कन्धहोरास्कन्धौ संक्षिप्तौ कृत्वा संहितास्कन्धं संक्षिप्तं चिकीर्षुरशेषविघ्नोपशान्तये भगवन्तं तत्प्रधानं सूर्यमादावेव प्रणनाम। –

सज्जनों की यह आचार-परम्परा है कि शास्त्र के प्रारम्भ में अभीष्ट देवता को नमस्कार करते हैं। आवन्तिकाचार्य, मगध-द्विज, भगवान् सूर्य का वर और प्रसाद प्राप्त करनेवाले, आचार्य वराहमिहिर ज्योतिषशास्त्रसंग्रह के कर्ता गणित-स्कन्ध और होरा-स्कन्ध को संक्षिप्त (निबद्ध) करने के पश्चात् संहिता-स्कन्ध को संक्षिप्त (निबद्ध) करने की इच्छा से यहाँ पर ये भी सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने के लिए प्रधान देवता भगवान् सूर्य को ग्रन्थारम्भ में प्रणाम करते हैं :–

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥ १ ॥

संसार को उत्पन्न करनेवाले, विश्वात्मा, आकाश के सहज आभूषण, द्रवित स्वर्ण के तुल्य चमकते हुए हजार किरणों की माला से सुशोभित, भगवान सूर्य सर्वोत्कृष्ट रूप में विराजमान हैं ॥ १ ॥

भगवान् सविता श्रीसूर्यो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कीदृशः। जगतः प्रसूतिः। प्रसूयते उत्पद्यतेऽस्माज्जगदिति जगतः प्रसूतिः। यतस्तद्वशाद् वृष्टेः सम्भवस्ततोऽन्नं ततः प्रजा इति। तथा च भगवान्मनुः –

भगवान सूर्य सर्वोत्कर्ष से वर्तमान हैं। वह कैसे हैं? वह जगत् के जन्मदाता है। क्योंकि जिससे संसार उत्पन्न होता है, उसे "जगतः प्रसूतिः" कहते हैं। उसके प्रभाव से ही वृष्टि होती है, उससे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। ऐसा ही भगवान् मनु ने भी कहा है :–

अग्नौ[1] हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥ इति ॥

उचित विधि से अग्नि में की गयी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है।

विश्वात्मा विश्वस्य जङ्गमस्य स्थावररूपस्य चात्मा प्राणरूपेण हृदयान्तरस्थितः। तथा च श्रुतिः –

---

१. मनुस्मृतौ द्वितीयाध्यायस्य ७६ श्लोकोऽयम्। तत्र "आग्नौ प्रस्ताहुतिः" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति।

विश्वात्मा=विश्व की, अर्थात् स्थावर और जंगम जीवों की आत्मा, प्राणरूप से हृदय के मध्य स्थित है। जैसा कि श्रुति-वाक्य है :-

"सूर्य संसार के चराऽचर की आत्मा है।"

जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य सूर्य एवात्मा। सहजभूषणं नभसः। नभस आकाशस्य सहजभूषणमकृत्रिममलङ्करणम्। यतो दृश्याकाशभागस्थेऽर्के सुतरां तस्य विराजनात् सहजं भूषणम्। द्रुतकनकसदृशेति। द्रुतं गलितं कनकं सुवर्णं द्रुतकनकस्य सदृशास्तत्तुल्या दशशत संख्या ये मयूखाः किरणास्तेषां या माला प्रचयस्तयार्चितो व्याप्त इति। एवमिष्टदेवतासङ्कीर्तनात् कायवाङ्मनोभिः प्राधान्याद्धर्मः, धर्मेण चाधर्मनिवृत्तिः, तन्निवृत्तौ विघ्नोपशमस्तदुपशमादविघ्नेन शास्त्रपरिसमाप्तिरिति॥१॥

जगतः=जङ्गम का, तस्थुषः=स्थावर का, सूर्य ही आत्मा है। नभसः=आकाश का, सहजभूषणम्= अकृत्रिम अलंकार है। क्योंकि आकाश के दृश्य-भाग में सूर्य के होने पर निश्चित ही उसका वह स्वाभाविक आभूषण होता है। द्रुतं=गलित, द्रवित, कनकं=स्वर्ण, द्रवित स्वर्ण के तुल्य चमकती हुई हजारों संख्यावाली किरणों की जो माला, उससे अर्चित अर्थात् परिव्याप्त। इस प्रकार इष्ट देवता के संकीर्तन (स्मरण) से शरीर, वाणी और मन की प्रधानता (शुद्धभाव) के कारण धर्म, धर्म से अधर्म की समाप्ति, अधर्म-क्षय से विघ्नों का विनाश, पुनः विघ्न-विनाश से निर्विघ्न शास्त्र की परिसमाप्ति होती है॥१॥

नन्वन्येषु ज्योतिःशास्त्रेषु सत्सु किमिदं प्रारब्धमिति पौनरुक्त्यपरिहारार्थमाह :-

ज्योतिष-शास्त्र में अन्य ग्रन्थों के होते हुए भी यह ग्रन्थ क्यों प्रारम्भ किया गया, इस पुनरुक्ति-दोष का परिहार करते हुए कहते हैं :-

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम्।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम्॥२॥

आद्य मुनि ब्रह्मा द्वारा विरचित इस सत् शास्त्र का पूर्ण अवलोकन कर अर्थ-सहित विचार के उपरान्त न अधिक विस्तृत और न अधिक लघु ग्रन्थ का स्पष्ट प्रतिपादन करने हेतु मैं प्रवृत्त हुआ हूँ॥२॥

मननाद् ज्ञानान्मुनिः। प्रथमश्चासौ मुनिश्च प्रथममुनिर्ब्रह्मा तेन यत्कथितमुक्तमवितथं सत्यरूपं विस्तरग्रन्थमतिविस्तीर्णशास्त्रं तस्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थमभिधेयमवलोक्य विचार्याहं नातिलघ्वीभिः स्वल्पाभिर्न चातिविपुलाभिर्विस्तीर्णाभी रचनाभिर्वाच्यपदसन्निवेशैर्मध्यरचनाभिः स्पष्टं स्फुटतरमभिधातुं वक्तुं समुद्यतः प्रवृत्त इति। यतः संक्षिप्तस्य ग्रन्थस्य ग्रहणधारणे सुखम्। तथा च हस्तिवैद्यककारो वीरसोमः-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासोक्तस्य शास्त्रस्य सुखं ग्रहणधारणे ॥ इति ॥ २॥

मननात् = मनन करने से मुनि होता है। प्रथम जो मुनि, वह प्रथम मुनि ब्रह्मा हैं, उनके द्वारा जो कहा गया अवितथ अर्थात् सत्य रूप विस्तृत ग्रन्थ विस्तीर्ण शास्त्र है, उस विस्तृत शास्त्र के अर्थ (अभिधेय) को देखकर, विचार कर, मैं न तो अधिक लघु (स्वल्प) और न तो अधिक विपुल (विस्तीर्ण) रचना के द्वारा वाच्य पद के सन्निवेश से मध्य रचना के द्वारा स्फुट अभिधान (कथन) के लिए उद्यत अर्थात् प्रवृत्त हुआ हूँ। क्योंकि संक्षिप्त ग्रन्थ के ग्रहण और धारण में सुख होता है। जैसाकि हस्तिवैद्यक के कर्ता वीरसोम ने कहा है :–

समासोक्तिपरक (संक्षिप्त) शास्त्र के ग्रहण और धारण करने में सुख होता है ॥२॥

अधुना मुनिविरचितस्य स्वरचितस्य च शास्त्रस्य साम्यमाह :–

अब ब्रह्मा द्वारा विरचित शास्त्र और अपने इस शास्त्र की तुलना करते हुए साम्यता का प्रतिपादन करते हैं :–

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम्।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ ३॥

ब्रह्मादि मुनियों द्वारा विरचित जो प्राचीन शास्त्र है, वही श्रेष्ठ है, न कि मनुष्यों द्वारा बनाया हुआ, इस अवधारणा में अवैदिक रचना के अतिरिक्त अक्षर-भेद के होने पर भी समानार्थक कथन में कौन सी विशेषता है ? ॥ ३॥

इदं यच्छास्त्रं मुनिभिर्ब्रह्मादिभिर्विरचितं निबद्धं तत्साधु श्रेष्ठमिति। इतिशब्दो निश्चयार्थे। मुनीनामतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षादविशिष्टमाविर्भूतप्रकाशत्वात्। यतस्तच्चिरन्तनं मुनिभिः प्रागेव विरचितं तेन साधु न मनुजग्रथितं मनुष्यरचितत्वान्न साधु साम्प्रतं रचितत्वान्न शोभनमिति। एवमाशङ्क्याह– तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रक इति। तुल्ये सदृशेऽर्थेऽभिधेयेऽक्षराणां वर्णानां भेदादन्यत्वात्। तत्रामन्त्रक इति मन्त्रवर्जिते का विशेषोक्तिः किं विशेषवचनम्। एतदुक्तं भवति– मुनिकृतान्येव शास्त्राणि दृष्ट्वा तदर्थ एव नात्यल्पैर्नातिबहुभिः पदसन्निवेशैरुच्यत इत्यक्षराणां मात्राभेदो नार्थानाम्। मन्त्रार्थो वेदार्थोऽन्यैः शब्दैस्तदर्थप्रतिपादकैर्निबद्धो वेदवत्कार्यकरो न भवतीत्यत उक्तममन्त्रक इति ॥ ३॥

जो यह शास्त्र है, ब्रह्मादि मुनियों द्वारा विरचित है, वही श्रेष्ठ है। 'इति' शब्द यहाँ निश्चयार्थक है। मुनियों के भूत और भविष्य के ज्ञान, प्रत्यक्षादि विशिष्ट ज्ञान-प्रकाश से आगे होते हैं। यतः वह चिरन्तन अर्थात् मुनियों के द्वारा पूर्व में विरचित होने के कारण श्रेष्ठ है, न कि मनुष्यों द्वारा विरचित, मानव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरचित होने के कारण, अर्थात् आधुनिक रचना होने से वह श्रेष्ठ नहीं है। इस प्रकार की आशङ्का करते हुए वेद-मन्त्र रहित, अक्षर-भेद से समानार्थ पद कहा जाता है। तुल्य = सदृश, अर्थ = अभिधेय, अक्षर = वर्ण, भेद = अन्य। वहाँ अमन्त्रक अर्थात् मन्त्र-रहित विषयों में क्या विशेष कथन है ? इस कथन का यह अभिप्राय है कि– मुनियों द्वारा विरचित शास्त्रों को देखकर ही उन्हीं अर्थों को न अति लघु न तो बहुत विस्तृत पदरचना द्वारा कहा गया है, इस प्रकार अक्षरों की मात्राओं में भेद है न कि अर्थों में। मन्त्रार्थ = वेदार्थ, अन्य शब्द = समानर्थक प्रतिपादक, शब्दों द्वारा विरचित पद वेदमन्त्रवत् कार्य करनेवाला (प्रभावी) नहीं होता है, इस लिए अमन्त्रक कहा गया है ॥३॥

अधुना मुनिकृतानां महत्त्वं च स्वशास्त्रस्य चाल्पत्वं प्रदर्शयितुमाह :–

अब मुनिविरचित शास्त्र का महत्त्व और स्वकीय शास्त्र के अल्पत्व का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं :–

क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति पितामहप्रोक्ते।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदि[1]व्यकृतेः ॥४॥

पितामह (ब्रह्मसिद्धान्त) के कथनानुसार "क्षितितनयदिवसवार" अर्थात् भूमिपुत्र (भौम) वार शुभकारक नहीं होता है। इसी को यदि कुज-दिन (भौमवार) अनिष्ट कारक होता है, यह कहा जाय तो, इन दोनों कथनों में मनुष्य और ऋषि के नाते क्या विशेषता है ? अर्थात् दोनों कथन समानार्थी होने से समान ही हैं ॥४॥

क्षितितनयस्याङ्गारकस्य दिवसः वारः। दिवसो वारो दिवसवारः। पितामहप्रोक्ते कमलजकथिते शास्त्रे न शुभकृदित्युक्तिः। न शुभं फलं करोतीति न शुभकृत्। भौमवारः सर्वकर्मणामशुभकृदिति कमलजकथिते शास्त्र-उक्तिः। मदीये पुनः कुजदिनमनष्टिम्। कुशब्देन भूरित्युच्यते ततो जातः कुजस्तस्य दिनं वारस्तच्चानिष्टमशोभनं सर्वकर्मणामित्युक्तिः। तस्मान्नृकृतेर्मनुष्यरचितस्य शास्त्रस्य दिव्यकृतेर्देवरचितस्यार्थस्यात्रास्मिन्नर्थे को विशेषः किमन्तरमिति भवन्त एव विचारयन्तु। अनेनर्षिकृतानां महत्त्वं स्वशास्त्रस्य संक्षिप्तत्वं प्रकाशितं भवतीति। अथवा नृदिव्यकृते इति पाठे नृकृते दिव्यकृतेऽत्रास्मिन् शास्त्रे को विशेष इति ॥४॥

क्षितितनय = भौम, दिवस = वार, दिन में विद्यामान वार = दिवसवार, पितामहप्रोक्त = ब्रह्मा द्वारा कथित शास्त्र में "न शुभकृत्" यह कहा गया है।

---

१. नृदिव्यकृते इति पाठान्तरम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् शुभ-फल नहीं करता है। भौमवार सभी कर्मों का अशुभकारक होता है, इस प्रकार ब्रह्मोक्त शास्त्र का कथन है। मेरे शास्त्र में "कुजदिन-अनिष्ट" कहा गया है। 'कु' शब्द से 'भू' शब्द कहा जाता है, उससे उत्पन्न 'कुज' जिसका दिन अर्थात् भौमवार अनिष्टकारी, सभी कर्मों में अशुभ है, यह कथन है। इससे मनुष्य-रचित शास्त्र का और दिव्यकृत् शास्त्र का यहाँ पर अर्थ में कौन-सी विशेषता है। अर्थात् क्या अन्तर है ? इसका आप लोग ही विचार करें। इसके द्वारा महर्षिकृत् शास्त्र का महत्त्व और स्वकीय शास्त्र का संक्षिप्तत्व प्रकट होता है। अथवा "नृदिव्यकृत" इस पाठ में नृकृत् और दिव्यकृत् शास्त्र में यहाँ पर कौन-सी विशेषता है ॥४॥

एवं स्वग्रन्थकरणे निर्दोषतां संस्थाप्य सकलमुनिनिबद्धशास्त्रसंग्रहकरणहेतुं दर्शयितुमाह :–

इस प्रकार स्वकीय ग्रन्थ में निर्दोषता को स्थापित कर सभी मुनियों द्वारा निर्मित शास्त्रों के संग्रह के कारणों को प्रदर्शित करते हुए कह रहे हैं :–

आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः।
क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः॥५॥

ब्रह्मादि मुनियों द्वारा विरचित सुविस्तृत शास्त्रों का क्रमपूर्वक अवलोकन कर उसे संक्षिप्त रूप में करने के लिए ही मेरा उत्साह हुआ है ? ॥५॥

ब्रह्मादिभ्यो यद्विनिःसृतं निर्गतं ग्रन्थविस्तरं विस्तीर्णशास्त्रं तच्चालोक्य दृष्ट्वा। अथवा तस्माद् 'ग्रन्थविस्तरादालक्ष्य क्रमशः क्रमेण समासतः संक्षेपेणैतच्छास्त्रं क्रियमाणम्। एवशब्दो निश्चयार्थे। मुनिभिः पारम्पर्येण संक्षिप्तीकृतमहमपि संक्षिप्तीकरोम्यतोऽस्माद्धेतोर्मोत्साहः शृङ्गार इति। तथा च भगवान् गर्गः –

ब्रह्मादि के द्वारा जो निर्गत विस्तृत शास्त्र हैं, उनको देखकर, अथवा उन ग्रन्थों के विस्तार को देखकर क्रमशः संक्षिप्त में यह शास्त्र किया जा रहा है। 'एव' शब्द निश्चयार्थक है। मुनियों के द्वारा परम्परा से संक्षिप्त किया गया है, इसी कारण इसको संक्षिप्त करने का मेरा उत्साह हुआ है। जैसाकि भगवानगर्ग ने कहा है :–

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम्।
वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम्॥
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधनम्।
वेदानामुत्तमं शास्त्रं त्रैलोक्यहितकारकम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत्तश्चान्यानृषीन् प्राप्तं पारम्पर्येण पुष्कलम्।
तैस्तदा स्रष्टृभिर्भूयो ग्रन्थैः स्वैः स्वैरुदाहृतम् ॥इति॥५॥

वेदाङ्ग ज्योतिष जो परमब्रह्म, यज्ञार्थ सहायक, द्विजातियों के लिए नेत्र-सदृश है, उसका निर्माण स्वयं ब्रह्मा के द्वारा किया गया है। ब्रह्मा के द्वारा ही यह मुझे प्राप्त हुआ है। यह क्रिया और काल का प्रसाधक वेदों का उत्तम शास्त्र है, त्रिलोक का हित करनेवाला है। यह 'शास्त्र' मुझसे अन्य ऋषियों को प्राप्त हुआ, जो परम्परा से बढ़ता गया और उन ऋषियों के द्वारा अपने-अपने ग्रन्थों के माध्यम से प्रचुर रूप में अभिव्यक्त किया गया ॥५॥

अस्मिन् शास्त्रे जगतः शुभाशुभकथनं तात्पर्यं तस्य च जगतः कुत उत्पत्तिरस्त्येतत्प्रदर्शयितुमाह :—

इस शास्त्र में संसार के शुभाशुभ-कथन के अभिप्राय से उस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसको प्रदर्शित करते हुए कहते हैं :—

आसीत्तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्धैमे।
स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ॥६॥

यह जगत् पहले तमोमय था, फिर वहाँ जल और जल में स्वर्णिम तेजस्वी अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसके दो भाग-स्वर्गलोक और भूलोक बने, जिसमें विश्वकर्ता, सूर्य और चन्द्रमा रूपी नेत्रोंवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥६॥

किलशब्दोऽत्रागमप्रदर्शनार्थः। इदं जगत्किल तम आसीत्। अन्धकारमभूत् तस्मिंस्तमस्यपां मध्ये हैमे सौवर्णेऽण्डे तेजसे तेजोमये स्वर्भूशकले यस्याण्डस्यैकं शकलमेकं खण्डं स्वर्गो द्वितीयं भूः। तथाभूते ब्रह्मा पितामहोऽभवद् जज्ञे। कीदृशो ब्रह्मा। अर्कशशिनयनः। अर्क आदित्यः शशी चन्द्रः। एतौ नयने नेत्रे यस्य स विश्वकृद्विश्वस्रष्टा। एतदुक्तं भवति— तमोभूतेऽस्मिन् जगति भगवानव्यक्तः प्रजासिसृक्षुरादावपः ससर्ज, तासु च वीर्यमुदसृजत्। ततस्तदण्डं सौवर्णं सहस्रांशुसन्निभमभवत्, तस्मिन्नभ्यन्तरे ब्रह्मा जज्ञे, ततः स भगवांस्तत्र परिवत्सरमुषित्वा स्वयमेव ध्यानात्तदण्डं द्विधाऽकरोत्। ताभ्यां शकलाभ्यामेकं स्वर्गो द्वितीयं भूरिति निर्ममे। स ब्रह्मा सोमसूर्यनेत्रः सर्वलोकपितामहो विश्वकृदिति स्मृतिकाराः। तथा च भगवान्मनुः—

यहाँ पर 'किल' शब्द आगम अर्थ को प्रदर्शित करने के लिए है। यह संसार पूर्व में तमोमय था। उस अन्धकार में जल के मध्य में स्वर्णाण्ड हुआ, उस तेजोमय अण्ड के दो भाग स्वर्ग और भुमि के रूप में प्रकट हुए। जिस अण्ड का एक खण्ड 'स्वर्ग' और दूसरा 'भू' कहा जाता है। ऐसा होने पर फिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा कैसे थे ? रवि-चन्द्र नेत्रोंवाले। अर्क = सूर्य, शशि = चन्द्र, ये दोनों नेत्र हैं जिनके, वह विश्वकर्ता ब्रह्मा हैं। तात्पर्य यह है कि अन्धकारमय इस संसार में अव्यक्त भगवान ने प्रजा-सृजन की इच्छा से सर्वप्रथम जल उत्पन्न किया, उनमें वीर्य का प्रक्षेप किया। उससे वह स्वर्ण-अण्ड सूर्य-किरणों के समान उत्पन्न हुआ, उसके मध्य में ब्रह्मा उत्पन्न हुए, फिर वह भगवान ब्रह्मा वहाँ पर पूर्ण एक वर्ष (परिवत्सर) रह कर स्वयं ही ध्यान से उस अण्ड को दो खण्ड में विभक्त कर दिये। उन दो खण्डों में से एक को स्वर्ग और दूसरे को भूलोक के रूप में बनाये। वह ब्रह्मा रवि-चन्द्र नेत्रोंवाले सभी लोकों के पितामह और विश्वस्रष्टा हैं, ऐसा स्मृतिकार कहते हैं। जैसाकि भगवान मनु ने कहा है :–

[1]आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तं व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥
सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥
तदण्डमभवद् हैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥ इति॥ ६॥

---

१. मनुस्मृतौ प्रथमाध्यायस्यैते ५-१३ श्लोकाः। तत्राष्टमश्लोके "बीजमवासृजत्" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह संसार तम में लीन, अज्ञेय, चिन्ह-रहित, प्रमाणादि तर्कों से हीन, अविज्ञेय तथा सर्वत्र सोये हुए के समान था।

तब स्वयम्भू, अव्यक्त, अपरिमित, सामर्थ्यशाली, और अन्धकार को दूर करने वाले भगवान, आकाशादि महाभूतों को व्यक्त करते हुए प्रकट हुए।

जो भगवान नेत्रादि इन्द्रयों से अग्राह्य तथा योगादि से ग्राह्य, सूक्ष्मस्वरूप, अव्यक्त, नित्य, सब प्राणियों की आत्मा और अचिन्त्य हैं, वे ही परमात्मा स्वयं प्रकट हुए।

उस परमात्मा ने स्वशरीर से अनेकविध प्रजा की सृष्टि-कामना से ध्यानकर सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की और उसमें शक्तिरूपी बीजों को छोड़ा।

वह बीज सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाशवाला, सुवर्ण के समान शुद्ध अण्डे के रूप में हो गया, उसमें सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

जल को 'नारा' कहते है, क्योंकि वह नर (रूप परमात्मा) की संतान है। वह नारा (जल) परमात्मा का प्रथम आश्रय है, इस कारण परमात्मा नारायण कहे जाते हैं।

वह जो अत्यन्त प्रसिद्ध सब का कारण है, नित्य है, सत् तथा असत् स्वरूप है, उससे उत्पन्न पुरुष लोक में ब्रह्मा कहा जाता है।

ब्रह्मा ने उस अण्डे में अपना एक परिवत्सर वर्ष (३१ खर्व, १० अर्व, ४० करोड़, मानव वर्ष) तक निवास कर अपने ध्यान के द्वारा उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये।

उस अण्डे के उन दो टुकड़ों में से उन्होंने स्वर्ग तथा भूमि की रचना की और बीच में आकाश, आठ दिशाओं तथा जल का नित्य आश्रय सागर की सृष्टि की ॥६॥

अत्रैव पक्षान्तराण्याह :—

इस विषय में अन्य मत कहते हैं :—

कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य।
कालं कारणमेके स्वभावमपरे परे जगुः कर्म ॥७॥

विश्व की उत्पत्ति के विषय में सांख्याचार्य कपिलमुनि ने प्रधान को कणाद ने द्रव्यादिक पदार्थों को, कोई काल को, अन्य ने प्रकृति को और मीमांसकों ने कर्म को कारण माना है ॥७॥

कपिलः सांख्याचार्यो जगतः कारणं प्रधानमाह कथयति। सत्त्वरजस्तमसां त्रयाणां गुणानां सुखदुःखमोहलक्षणानां प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थानां साम्यावस्था प्रधानमुच्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधानमव्यक्तं प्रकृतिरिति पर्यायाः। प्रकृतेर्महान् भवति। महान् बुद्धिरध्यवसाय इति पर्यायाः। तस्या बुद्धेः सत्त्वाधिकाया धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति धर्माः। तस्या एव तमोऽधिकाया अधर्मोऽज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यमित्यधर्माः। अध्यवसायः निश्चयः। यथा पुरुष एवायं गौरेवायमश्व एवायमिति। ततो महत्तत्त्वादहङ्कारो भवति। अभिमान इत्यर्थः। यथाहं कुलजोऽहं सुरूपोऽहमीश्वर इत्यादि। अहङ्कारात् षोडशको गणो भवति। तद्यथा– [1]एकादशकरणानि सत्त्वाधिकादहङ्कारात्। तानि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि। श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिकेति। पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। वाक्पाणिपादपायूपस्थं चेति। एकादशं मनस्तच्च सङ्कल्पात्मकम्। सङ्कल्पोऽभिलाषः स्पृहेति पर्यायाः। तमोऽधिकादहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि भवन्ति। तद्यथा– शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। एभ्यः पञ्चभ्यः पञ्च महाभूतानि भवन्ति आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि। तेभ्यः शरीरिणां शरीराणि। यतः पंञ्चमहाभूतमयानि शरीराणि। एवं प्रधानं चिद्रूपस्य पुरुषस्य विश्वं भोगार्थं मोक्षार्थं च सृजति। भुक्तभोगस्य वैराग्योत्पादनं मोक्षावाप्तिरिति। तथा च [2]कपिलाचार्यः :–

सांख्याचार्य कपिल ने जगत् के कारण को कहा है। सत्त्व, रज, तम; इन तीन गुणों का; सुख, दुःख, मोह लक्षणों का; प्रकाश, प्रवृत्ति, नियमन अर्थों का साम्यभाव ही प्रधान कहा जाता है। प्रधान, अव्यक्त और प्रकृति ये पर्यायवाची हैं। प्रकृति से महान् होता है। महान्, बुद्धि और अध्यसाय ये पर्यायवाची हैं। उस सत्त्वप्रधान बुद्धि के धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये धर्म हैं। तमःप्रधान बुद्धि के अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य ये अधर्म हैं। यह पुरुष है, यह गौ ही है, इस प्रकार की निश्चयात्मक बुद्धि को अध्यवसाय कहा जाता है। उस महान् तत्त्व से अहंकार अर्थात् अभिमान होता है। जैसाकि– मैं कुल में उत्पन्न हूँ, सुरूप हूँ, ईश्वर हूँ, इत्यादि। अहंकार सोलह प्रकार का होता है। जैसाकि– सत्त्वप्रधान अहंकार से ११ इन्द्रियाँ। इनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ श्रवण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका हैं। तथा मुख, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय– ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ग्यारहवाँ मन है, जो संकल्पात्मक होता है। संकल्प, अभिलाषा और स्पृहा इनके पर्याय हैं। तमःप्रधान अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। जो कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन नामों से जानी जाती हैं। इन पाँच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इन्हीं पाँच

१. करणं साधनतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपीति-अमरः। अतोऽत्र करणशब्देनेन्द्रियं गृह्यते।
२. सांख्यतत्त्वकौमुद्यामीश्वरकृष्णस्यैताः कारिकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्त्वों से प्राणियों के शरीर बनते हैं, क्योंकि शरीर पञ्चमहाभूतात्मक है। इस तरह यह प्रधान तत्त्व चिन्मय-पुरुष के उपभोग और मोक्ष के लिए इस विश्व का सृजन करता है। भोगे हुए भोगों के प्रति वैराग्य का उत्पादन ही मोक्ष-प्राप्ति है। जैसाकि आचार्य कपिल ने कहा है :-

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥
अध्यवसायो[1] धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥
अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
ऐन्द्रियमेका[2]दशकं तन्मात्रपञ्चकश्चैव॥
सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्॥
बुद्धीन्द्रियाणि कर्णत्व[3]क्चक्षूरसननासिकाख्यानि।
वाक्पाणिपा[4]दपायूपस्थं कर्मेन्द्रियाण्याह॥
सङ्क[5]ल्पकमत्र मनस्तच्चेन्द्रियमुभयथा समाख्यातम्।
अन्तस्त्रिकालविषयं तस्मादुभयप्रचारं तत्॥
रूपा[6]दिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दा[7]स्तु पञ्चानाम्॥
स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च॥
युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्ति क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः॥इति॥

---

१. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यामध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यमिति पाठः।
२. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यामेकादशकश्च गण इति पाठः।
३. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यां चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्त्वगाख्यानीति पाठः।
४. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यां वाक्यपाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुरिति पाठस्तत्र च छन्दोभंगः।
५. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यामस्याः कारिकायाः स्थाने "उभयात्मकमत्र मनःसङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्। गुणपरिणामविशेषान्नात्वं बाह्यभेदाश्च" इतीयं कारिकाऽस्ति।
६. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यां शब्दादिषु-इति पाठः।
७. सम्प्रति सांख्यतत्त्वकौमुद्यां नन्दाश्चेति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृति से महत्तत्त्व, उस महत्तत्त्व से अहंकार, तथा अहंकार से इन्द्रियादि १६ गण और इन गणों के पाँच तन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है। अध्यवसाय (बुद्धि) के चार सात्विक रूप – धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य होते हैं। इसी बुद्धि के तामसिक चार रूप – अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य हैं। अभिमान ही अहंकार है, इससे दो प्रकार की सृष्टि होती है – जिसमें प्रथम एकादश-इन्द्रियाँ और दूसरी पाँच तन्मात्राएँ हैं। सत्त्वगुणप्रधान अहंकार से एकादश इन्द्रियाँ तथा तमोगुणप्रधान अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। रजोगुण प्रधान अहंकार के द्वारा दोनों प्रकार की सृष्टियाँ होती हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, और नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मुख, हस्त, पाद, गुदा और लिंग ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मन का गुण संकल्प होता है। वह कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय दोनों ही कहा गया है। त्रिकालजन्य सभी विषयों में स्थित होने के कारण वह दोनों प्रकार की इन्द्रियों में संयुक्त है। रूपादि पाँच गुणों में पाँच ज्ञानेन्द्रियों का प्रत्यक्षीकरण ही वृत्ति (व्यापार) होता है। पंचकर्मेन्द्रियों के क्रमशः वचन, आदान, भ्रमण, उत्सर्ग (मल त्याग) और आनन्द लेना ये पाँच व्यापार होते हैं। मन, बुद्धि, अहंकार इन तीनों के अपने लक्षण के अनुसार ही कार्य-व्यापार होते हैं, जो असामान्य अर्थात् विशेष माने गये हैं। प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान; ये पाँच वायु की वृत्तियाँ साधारण व्यापार के रूप में होती हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियाँ; इन चारों का व्यापार (कार्य) घटनानुसार एक ही साथ अथवा क्रमशः होता है। इसी प्रकार अदृष्ट पदार्थों के विषय में भी वाह्य इन्द्रियों को छोड़कर मन, बुद्धि, अहंकार; इन तीन अन्तःकरणों के व्यापार भी एक साथ अथवा क्रमशः घटित होते हैं।

द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्येति। कणभुक् कणादोऽस्य विश्वस्य द्रव्यादीन् पदार्थान् कारणमाह। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्याः षट्पदार्थाः। तत्र द्रव्यं नवविधम्। तद्यथा – आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि पञ्च महाभूतानि। आत्मा मनः कालो दिक् चेति। तथा च तद्वाक्यम् :–

आचार्य कणाद ने द्रव्य आदि पदार्थों को इस विश्व का कारण माना है। द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय नामक छः पदार्थ हैं। यहाँ द्रव्य नौ प्रकार के होते हैं, जैसे आकाश, वायु, आग्नि, जल, पृथ्वी ये पंच महाभूत, और आत्मा, मन, काल तथा दिक्। जैसा कि कथन है:–

खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः। इति।

आकाशादि, आत्मा, मन, काल तथा दिशाएँ, ये नौ द्रव्य होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्रव्याश्रिताश्चतुर्विंशतिर्गुणाः। के ते? उच्यन्ते। तत्रात्मगुणा नव विशेषगुणाः। तद्यथा– बुद्धिरिच्छा सुखं दुःखं प्रयत्नः संस्कारः पुण्यं पापं द्वेषश्चेति। तथा चः–

द्रव्य के आश्रय से २४ गुण होते हैं। वे कौन हैं? उन्हें कहा जा रहा है:– आत्मा के नौ विशेष गुण हैं, जैसे– बुद्धि, इच्छा, सुख, दुःख, प्रयत्न, संस्कार, पुण्य, पाप और द्वेष। इसी प्रकार मूल वाक्य में भी इन नौ गुणों को कहा गया है।

बुद्धिच्छासुखदुःखप्रयत्नसंस्कारपुण्यपापानि।
द्वेषश्चेति।

नवामी गुणास्त्वनित्याः सुखदुःखादिभुजां कदाचिद् भवन्ति कदाचिन्न भवन्ति। एते विशेषगुणाः। महाभूतानां खादीनां पञ्च यथाक्रमं शब्दादयो गुणाः समाश्रिताः। तथा संख्या परिमाणं पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे स्नेहो द्रवत्वं गुरुत्वं च। एते चतुर्विंशतिर्गुणाः। पञ्चविधं कर्म। उत्क्षेपणमधिक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनं चेति। सामान्यं जातिः। सा च द्विविधा परमपरं च। सामान्यं परं सत्ताख्यं महाविषयत्वात्। यतो द्रव्यादयस्त्रयः पदार्थाः सत्तया व्याप्ताः। अपरं[1]द्रव्यगुणकर्मत्वादि। नित्यद्रव्यवृत्तय उक्ता विशेषाः। नित्यानि द्रव्याण्यात्माकाशपरमाणुप्रभृतीनि। अपृथक्सिद्धानामाधाराधेयभावः संबन्धः समवाय इति। एतेषां षण्णां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसस्य मोक्षस्य हेतुः। साधर्म्यं सादृश्यं वैधर्म्यं वैलक्षण्यं भेदो विशेष इति साम्यवैधर्म्यज्ञानमवबोधो निःश्रेयसस्य मोक्षस्य हेतुः। एवमेते द्व्यणुकादिक्रमेण कार्यं निवर्तयन्ति। चतुर्विधाः परमाणवः क्षितिजलाग्निवायूनाम्। द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकमारभ्यते त्रिभिः परमाणुभिस्त्र्यणुकमारभ्यत इति क्रमेण स्थूलकार्यस्य द्रव्यस्योत्पत्तिः। एवं जगत्सम्भवः।

ये नौ गुण सुख, दुःख आदि के अनुभव-कर्ता को कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं, अतः अनित्य हैं और इन्हें विशेष गुण कहा जाता है। आकाशादि पंचमहाभूतों में क्रमानुसार शब्दादि गुण आश्रित होते हैं। इस प्रकार संख्या, परिमाण, पृथकता, संयोग, विभाग,परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रव्यत्व, गुरुत्व; ये चौबीस गुण होते हैं। उत्क्षेपण, अधिकक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, और गमन; ये पाँच कर्म होते हैं। सामान्य जाति है, वह पर और अपर भेद से दो प्रकार की होती है। महाविषयत्व के कारण सत्ता को परसामान्य कहा जाता है, क्योंकि द्रव्यादि तीनों पदार्थ सत्ता से ही व्याप्त रहते हैं। द्रव्य, गुण, कर्मादि अपरसामान्य हैं। नित्य द्रव्यवृत्तियाँ विशेष कही गयी हैं। आत्मा, आकाश,

---

१. द्रव्यत्वगुणत्त्वकर्मत्त्वादीति नैयायिकसम्मतः पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परमाणु आदि नित्य द्रव्य हैं। अपृथक् रूप से सिद्ध पदार्थों का आधाराधेयभाव सम्बन्ध समवाय कहलाता है। इन छः पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा प्राप्त तत्त्वज्ञान निःश्रेयस मोक्ष का कारण होता है। साधर्म्य अर्थात् सदृश, वैधर्म्य अर्थात् वैलक्षण्य; ये भेदविशेष हैं, इस प्रकार साधर्म्य और वैधर्म्य ज्ञान के द्वारा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष का कारण है। इस प्रकार ये द्वयणुक आदि निर्माण-क्रम से कार्य करते हैं। क्षिति, जल, अग्नि और वायु इनके चार प्रकार के परमाणु होते हैं। दो परमाणुओं से द्वयणुक तथा तीन परमाणुओं से त्र्यणुक का आरम्भ होता है और इसी क्रम से स्थूल कार्य के द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार संसार की उत्पत्ति यहाँ स्वीकृत है।

कालं कारणमेक इति च। केऽपि कालकारणिकाः पौराणिकाः कालं कारणामाहुरुक्तवन्तः। कालस्य लक्षणम् :–

कुछ पौराणिक मत से काल ही जगत् का कारणभूत है। काल का लक्षण निम्नलिखित है :–

नित्यमेकं विभुं द्रव्यं परिमाणं क्रियावताम्।
व्यापारव्यतिरेकेण कालमेके प्रचक्षते॥
आदित्यग्रहतारादिपरिस्पन्दमथापरे ।
भिन्नमावृत्तिभेदेन कालं कालविदो विदुः॥इति।

नित्य, एक, विभु, द्रव्य, परिमाण आदि कार्यों के व्यापारभेद से काल ही एक कारण है। सूर्यादिग्रह-नक्षत्रों का स्पन्दन तथा उनके विविध आवर्तन को ही कालज्ञजन काल कहते हैं।

एवं जगतः कालः कारणं कालः प्रजाःसृजति स एव संहरति। तथा च तद्वाक्यम् :–

इस प्रकार से काल ही जगत् का कारण है, जो कि प्रजा की उत्पत्ति और संहार का कारक है। जैसा कि कहा गया है :–

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥इति।

काल ही प्राणियों का सृजन करता है और वही उसका संहार करता है। सुप्तावस्था में भी जागृत रहनेवाला यह काल दुर्लङ्घ्य है।

यथा कालेन बलिरिन्द्रः कृतः कालेन ततो निवर्तितः काल एव पुनरेवं कर्तेति।

जिस प्रकार से काल द्वारा ही इन्द्र बली किया गया, पुनः वह प्रत्यावर्तित कर दिया गया, काल इसी प्रकार सब का कर्ता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वभावमपर इति। अपरे अन्ये लौकायतिकाः स्वभावं जगतः कारणमाहुः। स्वभावादेव जगद्विचित्रमुत्पद्यते स्वभावतो विलयं याति। तथा च तद्वाक्यम् :–

लौकायतमत (नास्तिक मत) से स्वभाव प्रकृति ही जगत् का कारण है। प्रकृति से ही यह विचित्र जगत् उत्पन्न होकर फिर स्वाभाविक रूप से विसर्जित हो जाता है। जैसाकि कहा गया है :–

कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च।
माधुर्यमिक्षोः कटुतां च निम्बे स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तम् ॥ इति।

काँटों में तीक्ष्णता (नुकीलापन), पशु-पक्षियों की विचित्रता, गन्ने में मधुरता, निंबवृक्ष में कटुता आदि गुणाधान कौन करता है? यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से (प्राकृतिक) होती है।

परे जगुः कर्मेति। परे अन्ये मीमांसका जगतः कर्म कारणं जगुरुक्तवन्तः। शुभाशुभकर्म प्राणिनां पुण्यापुण्यरूपं जगतः कारणं शुभेन कर्मणा शुभफलभोगी जायते अशुभेन विपरीतमिति। तथा च :–

अन्य मीमांसक विद्वान् जगत् का कारण 'कर्म' मानते हैं। शुभाशुभकर्म ही जीवों के पुण्यापुण्य रूप में संसार का कारण है। शुभकर्म से शुभफलभोगी और अशुभकर्म से अशुभफलभोगी होता है। जैसाकि कहा गया :–

पूर्वजन्मार्जितं यच्च कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
तदेव सर्वजन्तूनां सृष्टिसंहारकारणम् ॥ इति॥ ७॥

पूर्वजन्मार्जित जो शुभाशुभकर्म होते है, वे ही सभी प्राणियों के सृजन और संहार के कारण है ॥७॥

एवमनेकजन्मकारणेषूक्तेषु किं जगत्कारणं निश्चितमित्यत्र निषेधमाह :–

इस प्रकार विविध जन्मों के कारण के होने से क्या संसार का कारण निरूपित हो गया? इस विषय में निषेध करते हुए कहते हैं :–

तदलमतिविस्तरेण प्रसङ्गवादार्थनिर्णयोऽतिमहान्।
ज्योतिः शास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयोऽत्र मया ॥ ८॥

इस विषय में और अधिक विस्तृत विचार करने से अपने को रोकता हूँ, क्योंकि प्रसंगवश जगत्कारण के विषय में अनेक दर्शनों का विचार यहाँ प्रस्तुत किया गया। इसका यथार्थ विवेचन अधिक विस्तार की अपेक्षा रखता है। इस ग्रन्थ में मुझे ज्यौतिषशास्त्र के अंगों के निर्णय को ही प्रस्तुत करना चाहिए ॥८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलमिति वारणपक्षहेतुर्दृष्टान्तैर्दर्शनान्तराणि निवर्त्य कारणनिश्चयः। स चेह प्रस्तुतः, कुतो जगदुत्पत्तिरिति। प्रसङ्गादतिविस्तरेण वादः प्रसङ्गवादः, प्रसङ्गवादे अतिमहानतीवार्थस्य निर्णयो विचारो य आरब्धस्तस्यालं भवतु। अनेनास्माकं न किञ्चित् प्रयोजनम्। यतो मया एतस्मिन् शास्त्रे ज्योतिःशास्त्राङ्गानां निर्णयो वक्तव्यः। ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रं ग्रहनक्षत्रयोगेन जगतः शुभाशुभसम्भवात्। ज्योतिःशास्त्रे यान्यङ्गानि गणितहोराशाखाख्यानि तेषां निर्णयो निश्चयो वक्तव्यः कथनीयः। यद्यपि गणितहोरास्कन्धौ प्रागेवोक्तौ तथाप्यत्राङ्गत्वेनोदाहृतौ। पुरुषलक्षणादौ जातकं समागमादिषु गणितमिति। अथवा तदुक्तस्यात्र फलकथनं क्रियत इति॥८॥

यहाँ 'अलम्' शब्द से निवारण पक्ष अभीष्ट है। दृष्टान्तों से विविध दर्शन शास्त्रों के आधार पर ही जगत् के कारण का निश्चय होता है। संसार की उत्पत्ति कहाँ से प्रारम्भ हुई, यह मैने प्रस्तुत किया है। प्रसंग से अतिविस्तृत वाद ही प्रसंगवाद है। प्रसंगवाद में अत्यन्त महान् (गम्भीर) अर्थ का निर्णय प्रारम्भ किया गया, वह अब स्थगित किया जाता है। क्योंकि इससे कोई मेरा प्रयोजन नहीं है, कारण मेरे द्वारा इस शास्त्र में ज्योतिषशास्त्र के अंगों का ही विवेचन किया जाना चाहिए। ग्रह, नक्षत्र आदि ही ज्योति हैं, उनको अधिकृत कर निर्मित शास्त्र ही ज्योतिषशास्त्र है। ग्रह, नक्षत्रों के योग से ही संसार का शुभाशुभफल उत्पन्न होता है। ज्योतिषशास्त्र में गणित, होरा, संहिता नामक जो शाखाएँ हैं, उनका निश्चय यहाँ पर कथनीय है। यद्यपि गणित और होरास्कन्ध पहले ही कहे जा चुके हैं, तथापि यहां पर अंग के रूप में उदाहृत हैं। पुरुष-लक्षणादि में जातक-स्कन्ध तथा समागमादि में गणित-शाखा का विवेचन हुआ है। अथवा उन पूर्वोक्त विषयों का यहाँ पर फल-कथन किया जाता है॥८॥

अथ ज्योतिषशास्त्रस्वरूपं तत्र संज्ञान्तराण्याह :—

ज्योतिष शास्त्र का स्वरूप और उसके नामान्तर को कहते हैं :—

ज्योतिः शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः॥९॥

ज्योतिषशास्त्र के अनेक भेद और विषय हैं, जो तीन स्कन्धों में प्रतिष्ठित है। इस ज्योतिष के सम्पूर्ण कथन को मुनियों ने संहिता नाम से तथा ग्रहों के गति-साधक गणित को तन्त्र (गणितस्कन्ध) संज्ञा से और अपर अंग होरा नाम से तृतीय–स्कन्ध कहा है॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्योतिःशास्त्रं कीदृशम्। अनेकभेदविषयम्। भेदो विशेषः। अनेको बहुप्रकारो भेदोऽनेकभेदः। अनेकभेदो विषयो यस्य तद्भिद्यतेऽस्मादिति भेदः। यथा श्वेतवर्णयोगात् कृष्णो वर्णो भिद्यते। एवं बहुप्रकारो भेदः स्कन्धत्रयमध्यनिर्दिष्टस्तस्य विषयं गोचरं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं स्कन्धत्रयेण गणितहोराशाखाख्येनाधिष्ठितं व्याप्तम्। तत्कार्त्स्न्योपनयस्येति। तस्य ज्योतिःशास्त्रस्य कार्त्स्न्येन निरवशेषेणोपनयः कथनं यस्मिन् शास्त्रे तच्छास्त्रं संहितेति मुनिभिर्गर्गादिभिर्नाम सङ्कीर्त्यते कथ्यते। तथा च भगवान् गर्गः–

ज्योतिषशास्त्र कैसा है ? विषयों के अनेक भेदोंवाला। भेद यहाँ विशेष है। अनेक प्रकार के भेद को अनेक भेद कहते हैं, अर्थात् बहुविध भेद-विषय हों जिसके, उनका भेदन इससे किया जाता है– यह भेद है, जैसाकि श्वेतवर्ण के संयोग से कृष्णवर्ण का भेद हो जाता है। इसी प्रकार बहुत से भेद तीन स्कन्धों के मध्य कहे गये हैं, इसका विषय गोचर तीनों स्कन्धों में व्याप्त है। यह शास्त्र गणित-होरा शाखाओं के नाम से विख्यात है। उस ज्योतिषशास्त्र का संपूर्ण (कार्त्स्न्य) कथन (उपनयन) जिस शास्त्र में होता है– उसे संहिता कहते हैं। जैसाकि भगवानगर्ग ने कहा है :–

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः॥

गणित, जातक और (ज्योतिष की अन्य) शाखा को जो द्विज श्रेष्ठ जानता है, उसे त्रिस्कन्धज्ञ कहा जाता है, और वह संहिता का पारंगत विद्वान् होता है।

स्कन्धेऽस्मिन्निति। अस्मिन् ज्योतिःशास्त्रे ग्रहाणामादित्यादीनां या गतिर्गमनं प्रतिराशौ सञ्चरणं सा येन ज्ञायते तद् गणितं तस्य च तन्त्रमिति संज्ञा। असौ गणितस्कन्धस्तन्त्राभिधानः। होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथित इति। प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चीयते सा होरा। अन्यो द्वितीयोऽङ्गविनिश्चयः। होराख्यः कथित इति। होरास्कन्धो द्वितीयः। स्कन्धस्तृतीयोऽपर इति। अपरस्तृतीयोऽयं स्कन्धो वक्ष्यमाणः शाखाख्य इति॥९॥

इस ज्योतिषशास्त्र में सूर्यादि ग्रहों की गति, जो प्रत्येक राशियों में संचरित होते हैं, वह जिससे ज्ञात हो– उसकी गणित वा तन्त्र संज्ञा है। यह गणित स्कन्ध तन्त्रसंज्ञक है। अन्य अंग होरा का निर्णय (परिभाषा) इस प्रकार है– प्रतिष्ठा, यात्रा विवाहादि के लग्न और ग्रहों के अनुसार शुभाशुभ–फल को जिसके द्वारा निश्चय किया जाता है– वह होरास्कन्ध है। इस प्रकार (ज्योतिष का) होरा द्वितीयस्कन्ध है। अन्य यह तृतीयस्कन्ध (शाखा) यहाँ पर विवेच्य है॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ स्कन्धत्रयविभागमाह :–

तीनों स्कन्धों के विभागों को कहते हैं :–

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः।
होरागतं विस्तरशश्च जन्म यात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥ १०॥

तारा-ग्रहों के वक्र, अनुवक्र, अस्त, उदयादि विषयों को मैने करण-ग्रन्थ में कहा है। जन्म, यात्रा और वैवाहिक विषयों के साथ ही होरास्कन्ध के विस्तृत विषयों का पहले ही मैने व्याख्यान कर दिया है ॥१०॥

ताराग्रहा भौमादयस्तेषां वक्रं प्रतीपगमनम्। यथा भौमादिको ग्रहो मेषस्थो मीनं याति स प्रतीपगतित्वाद्वक्रित इत्युच्यते। अनुवक्रं स्पष्टगतित्वम्। वक्रां गतिं त्यक्त्वा पुनः स्पष्टां गतिमाश्रितोऽनुवक्रित इत्युच्यते। अस्तमयस्तेषामेव ग्रहाणां सूर्यवशेन भवति। यः कश्चिच्चन्द्रादिको ग्रहः सूर्यसमीपवर्ती भवति स च रविकरनिकराभिभूतो गगने लोकानामालोकं नायाति तदास्तमित इत्युच्यते। तथा च स एव ग्रह आदित्यमण्डलाद्विप्रकृष्टो यदा भवति तदा नभसि दृश्यते स चोदित इत्युच्यते। एवं वक्राऽनुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणाम्। आदिग्रहणात् परस्परं ग्रहाणां युद्धं चन्द्रेण नक्षत्रैश्च सह समागमो ज्ञेयः। एतदप्युपलक्षणार्थम्। मध्यगतिस्तिथिनक्षत्रच्छेदः स्फुटगतिस्त्रिप्रश्नश्चन्द्रार्कग्रहणे उदयास्तमयौ शृङ्गोन्नतिः समागमस्ताराग्रहसंयोग इत्येते मया करणे पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्ताः कथिताः सर्व एव। तथा होरागतं विस्तरशश्च जन्मेति। विस्तरशो विस्तरेण प्रदर्शनेन जन्म जातकं होरागतं होराशास्त्रसंबन्धं यात्राविवाहैः सह पूर्वमादावेवोक्तं कथितम्। एतदुक्तं भवति– बृहज्जातकं बृहद्यात्रा बृहद्विवाहपटलं च मयादावेव विरचितमिति ॥ १०॥

भौमादिग्रहों को ताराग्रह और उनके प्रतीपगमन को वक्र कहते हैं। जैसे– भौमादि ग्रह यदि मेषस्थ होकर पुनः मीन पर आ जाय तो, इस प्रतीप (प्रत्यावर्तित) गति को वक्रित कहा जाता है। स्पष्टगति (सीधी गति) को कहते हैं। अर्थात् वक्रता के पश्चात् जब मार्गी होता है तो वही प्रतीपगति है। सूर्य के (सान्निध्यवश) कारण वही ग्रह अस्त होते हैं। जो भी चन्द्रादि ग्रह सूर्य-सामीप्य से उसकी किरणों द्वारा अभिभूत होकर आकाश में लोगों को दृष्ट नहीं होते हैं, तब उसे अस्त मानते हैं। वही ग्रह जब सूर्यमण्डल से पृथक् होकर आकाश में दृष्ट होने लगें, तब उसे उदित कहते हैं। इस प्रकार "वक्रानुवक्र" आदि कहा गया। "आदि" पद से ग्रहों का परस्पर युद्ध, चन्द्रमा और नक्षत्रों के साथ युति समझना चाहिए। यह भी उपलक्षणात्मक (विभिन्न लक्षणों वाला) है। मध्यम गति, तिथि-नक्षत्र गणित, स्पष्टगति, त्रिप्रश्न, रवि-चन्द्र ग्रहण, उदयास्त, शृङ्गोन्नति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समागम, तारा-ग्रह-संयोग; ये विषय करणग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका में मेरे द्वारा कहे गये हैं। जन्म-जातक, होराशास्त्रसम्बन्धी विषय यात्रा-विवाह के प्रकरण में पहले ही विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है। तात्पर्य यह है कि– बृहज्जातक, बृहद्यात्रा, और बृहद्विवाहपटल नामक ग्रन्थ इस विषय में पूर्व ही लिखे जा चुके हैं ॥१०॥

अथात्र वक्ष्यमाणे स्कन्धेऽनुपयोगिकं त्यक्त्वा यत्सारं तद्वक्ष्यामीत्येतदाह–

वक्ष्यमाण स्कन्ध में भी अनुपयोगी विषयों को छोड़कर जो सारभूत विषय हैं, उसके सम्बन्ध में कहूँगा :–

प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान्
स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च।
सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं,
भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥११॥

प्रश्न-प्रतिप्रश्न के कथाप्रसंग, ग्रहोत्पत्ति-वार्ता आदि विषय बहुत कम उपयोगी होते हैं। अतः मैं निरर्थक विषयों को छोड़कर, जो सारयुक्त तत्त्व है, उसे सम्पूर्ण अर्थों के साथ विवृत करुँगा ॥११॥

प्रश्नो यथा। हिमवदादौ स्थितो गर्गादिको मुनिः शिष्येण क्रौष्टुकिपूर्वेण पृष्टः भगवन्! ज्योतिःशास्त्रं ज्ञातुमिच्छामि किं स्वरूपं केनोत्पादितं किं तेन करणमित्यादि। प्रतिप्रश्नो यथा। गर्गादिको मुनिः शिष्यवचनं श्रुत्वाह यत्त्वयाऽहं पृष्टस्तत्ते वक्ष्यामीति। तथा च प्रश्नः –

प्रश्न के विषय में कहते हैं – हिमालयादि पर स्थित गर्गादि मुनियों से क्रौष्टुकि प्रभृति शिष्य पूछते हैं– हे भगवन! ज्योतिषशास्त्र को मैं जानना चाहता हूँ, इसका स्वरूप क्या है ? इसे कौन उत्पन्न किया और इससे क्या होता है ? इत्यादि। अब प्रतिप्रश्न बतलाते हैं – गर्गादि मुनि शिष्यों के इस प्रश्न को सुनकर कहते हैं कि; जो तुमने पूछा, उसको मैं कहूँगा। जैसा कि प्रश्न है :–

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानातीर्थसमाश्रिते॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराजिते ।
सिद्धगन्धर्वसङ्कीर्णे देवर्षिगणसेविते॥
हुताग्निहोत्रमासीनमाश्रमे देवदर्शनम्।
वृद्धगर्गं द्विजश्रेष्ठं मुनिभिः परिवारितम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिगम्य समीपस्थो विनयात् संश्रितव्रतः।
क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ प्रश्नं लोकानुकम्पया॥
भगवन् मुनिशार्दूल सर्वज्ञानविशारद।
ज्यौतिषं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि नः॥
ज्यौतिषं ज्ञानमुत्पन्नं कथमेतदनुत्तमम्।
केन वा पूर्वमिवोक्तमृषिणा दैवतेन वा॥
किमस्य कारणं लोके परिज्ञानाच्च किं फलम्।
नामतश्चानुपूर्वेण ब्रूहि मे मुनिसत्तम॥

अनेक प्रकार के धातुओं से चित्रित, विविध लता-वृक्षों से युक्त, विविध तीर्थ (नदियों) से युक्त, हंस-बतख-क्रौंच-चक्रवाक आदि पक्षियों से सुशोभित, सिद्ध-गन्धर्वों से व्याप्त और देवर्षि-गण से सेवित रमणीय हिमालय पर स्थित आश्रम में मुनियों सहित, देवतुल्य दर्शन वाले, जिसने अग्निहोत्रकर्म सम्पादित कर लिया है, जिसने– ऐसे द्विजश्रेष्ठ वृद्ध-गर्ग ऋषि के समीप जाकर, व्रतधारी क्रौष्टुकि ने विनम्रता-पूर्वक लोककल्याणार्थ प्रश्न किया। हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वज्ञानी! मैं ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान चाहता हूँ, मेरी इसमें अधिक जिज्ञासा है। यह श्रेष्ठ ज्योतिषशास्त्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? पूर्व में यह ऋषि वा देवता से कहा गया ? लोक में इसके प्रचलन का कारण क्या है, तथा इसके ज्ञान का क्या फल है ? हे श्रेष्ठ मुनि! क्रमपूर्वक सभी का नाम-सहित (इस शास्त्र के सम्बन्ध में) बतलाने की कृपा करें।

इति मुनिप्रश्नः। तथा च प्रतिप्रश्नः–

इस प्रकार मुनि का प्रश्न हुआ। अब प्रतिप्रश्न कहते हैं–

एवमुक्तस्तु मुनिना वृद्धगर्गो महातपाः।
प्रोवाच तानृषीन्सर्वान्क्रौष्टुकिप्रमुखस्थितान्॥
श्रूयतां स्वर्ग्यमायुष्यं धर्म्यं पुण्यं यशस्करम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं द्विजानां पावनं परम्॥
कालज्ञानमिदं पुण्यमाद्यं हि ज्ञानमुत्तमम्।
सिसृक्षुणा पुरा वेदानेतत्सृष्टं स्वयम्भुवा॥
वेदाङ्गमाद्यं वेदानां क्रियाणां च प्रसाधकम्।
ज्योतिर्ज्ञानं द्विजेन्द्राणामतो वेद्यं विदुर्बुधाः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।
ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेत्ति स तु वेत्ति परां गतिम्॥
चन्द्रेनक्षत्रताराणां ग्रहाणां भास्करस्य च।
ज्योतिषामपि यज्ज्योतिर्ज्योतिषामपि पावनम्॥
तद्भावभाविनं युक्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
तस्मात्पूर्वमधीयीत ज्योतिर्ज्ञानं द्विजोत्तमः॥
धर्मसूत्रं ततः पश्चाद्यज्ञकर्मविधिक्रियाम्।
यज्ञाश्चायुष्यहोमाश्च चूडोपनयनादि च॥
साम्राज्यं पौर्णमास्यं च पितृदैवततर्पणम्।
सर्वारम्भाश्च जगतो लोके च विविधाः क्रियाः॥
न ज्योतिषं विना तासां प्रवृत्तिरुपलभ्यते।
आप्यायनं च देवानां यज्ञाः प्रोक्ताः क्रियाश्रयाः॥
यज्ञार्थमपि च प्रोक्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
न ते च सम्प्रवर्तन्ते कालाज्ञानात् कथञ्चन॥
यज्ञक्रिया अहोरात्रं क्रियाश्चान्या जगद्धिताः।
तस्मात् पुण्यं समं वेदैर्यज्ञचक्षुः सनातनम्॥
स्वर्ग्यमध्येयमव्यग्रैर्ब्राह्मणैः शंसितव्रतैः।
ततः कालप्रसिद्ध्यर्थं राशयः पूर्वमीरिताः॥
अहोरात्रविभागश्च तिथीनां च क्रियाविधिः।
सोमसूर्यविलग्नानामृक्षाणां चापि निश्चयः॥
आदानयोगभोगाश्च विसर्गाश्चार्कसोमयोः।
दिनर्तुपक्षमासानां चन्द्रार्काणां विनिश्चयः॥
कर्मोपभोगमानानां लेख्यप्रश्नविधिस्तथा।
एवमाद्याः[1] समस्ताश्च क्रिया ज्यौतिषसंश्रिताः॥ इति।

मुनियों द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जाने पर महातपस्वी वृद्धगर्ग ने क्रौष्टुकि आदि प्रमुख ऋषियों से कहा :– सुनो! स्वर्ग, आयु, पुण्य, धर्म और यश को देनेवाला, ज्ञान-विज्ञान से युक्त, द्विजों के लिए परम पवित्र, कालज्ञान कराने वाला, प्रथम-शास्त्र, पुण्य-साधक यह श्रेष्ठ ज्ञान है। वेदों की रचना की

१. एवमासां बहुविधा इति अ० पुस्तके पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इच्छावाले भगवान ब्रह्मा के द्वारा यह प्रथम विरचित हुआ। वेदों का यह प्रथम अंग, वेदांगशास्त्र रूप ज्योतिष-ज्ञान सभी-क्रियाओं का प्रसाधक होने के कारण श्रेष्ठ-द्विजों द्वारा यह ज्ञातव्य है, ऐसा विद्वानों का कथन है। ज्योतिष शास्त्र में सभी लोगों का शुभाशुभ फल कहा गया है। इस ज्योतिष का ज्ञाता परमगति (ब्रह्मज्ञान) का ज्ञाता होता है। चन्द्रमा-नक्षत्र-सूर्यादि ग्रहों सहित सभी-प्रकाशों का जो प्रकाश है। ऐसा ज्योतिष शास्त्र परम पावन है। इस भाव से भावित (ज्ञानयुक्त) को ही देवता ब्राह्मण कहते हैं। इसलिए श्रेष्ठ द्विज सर्वप्रथम इस ज्योतिषशात्र का अध्ययन करें। इसके बाद धर्मशास्त्र, पश्चात् यज्ञ-कर्मो की क्रिया-विधि, तथा क्रमशः यज्ञ, आयुष्य, मन्त्र, होम, चूडाकर्म, उपनयनादि संस्कार, साम्राज्य, पौर्णमास्य, देव-पितृ-तर्पण, संसार के सभी कार्यो का आरम्भ (मुहूर्त्त) तथा लोक में प्रचलित विविध क्रियाओं का अध्ययन करें, क्योंकि ज्योतिष-ज्ञान के बिना इन क्रियाओं का प्रणयन सम्भव नहीं। देवताओं का आश्रय यज्ञ कहा गया है, ब्रह्माजी ने स्वयं वेदों को यज्ञार्थ ही कहा है, और यज्ञों का कालज्ञान के बिना कथमपि प्रवर्तन नहीं हो सकता। यज्ञ-क्रियाएँ तथा दिन-रात होनेवाले अन्य लोक-कल्याण के कार्य इस शास्त्र के द्वारा ही होते हैं। इसलिए स्वयं वेदों के द्वारा इसे पुण्य, यज्ञ-चक्षु और सनातन कहा गया है। व्रत-निष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा निश्चल भाव से स्वर्गदायक इस शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। अतएव पूर्व में काल-साधक राशियों का कथन किया गया। दिन-रात्रि का विभाग, तिथियों की कर्तव्यता, रवि-चन्द्र, लग्न और नक्षत्रों का निर्णय, आदान (प्रारम्भ समय), योग एवं उनका भोगमान, रवि-चन्द्र का अवसान समय, दिन, ऋतु, पक्ष, मास, रवि-चन्द्र का काल-निर्णय, कर्मानुसार फलोपभोग काल का मान, परिलेख और प्रश्न-विधि इत्यादि समस्त क्रियाएँ ज्योतिषशास्त्र पर ही आश्रित हैं।

एवमादिकाः प्रतिप्रश्नाः।

इस प्रकार से प्रति-प्रश्न होते हैं।

तथान्यान् कथाप्रसङ्गानिति। आख्यायिका कथा तत्र प्रसङ्गः प्रसक्तिः।

कथा-प्रसंग का अर्थ आख्यायिका और प्रसक्ति है।

यथा भगवता पराशरेण पुष्करस्थाने कथा कृता। पुरा खलु सुरासुराणां महति महायुद्धे विग्रहे विपरीतविग्रहे भार्गवप्रयुक्ताभिचारोपहतवीर्यप्रभावाः सुराः शत्रुविक्रमोपहततेजसः स्वयम्भुवं शरणमभिजग्मुः। शुक्र एव वो गतिरित्यादिष्टाः सुराः शुक्रमभिसमेत्याऽऽनतास्ते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवाः पवित्रैर्मन्त्रैराद्यैरभिष्टुतवन्तः। सर्वरत्नधनधान्याधिपत्यं यज्ञभागं चास्मै दत्त्वा पैतामहा ऋषयो देवताश्च वरमभियाचयाम्बभूवुः। अनेकविधप्रयुक्तस्याद्यधर्मस्य परन्तपस्य यथा न स्यान्नाशस्तथा भगवान्नो विधत्ताम्। यथा च नो बृहस्पतिरुपाध्यायस्तथा भगवानपि भवत्विति। शुक्रः परमपीत्युक्त्वा देवान् शान्तिस्वस्त्ययनादिभिः पुनस्तेजसाभिवरयामास। नहि वेदमन्त्रकर्मणां यथावत्प्रयुक्तानां किञ्चिदप्यसाध्यं पश्यामस्तेषां शुद्धाशुद्धमन्त्राचार्यप्रतिग्रहीतृदेशकालकरण-द्रव्यसाधनसामग्र्यम्। इतरथा हि मिथ्या[1] हीनमन्त्रप्रयोगा यजमानस्यैवाभिचाराय भवन्ति। पुरा खलु सुराधिपत्यमाजिहीर्षुरतिप्रवृद्धवीर्योत्सेकाद्वृत्रः पुरन्दरमभिचचार। अथैनं[2] कर्मविधि-समाप्ताविन्द्रशत्रुवृद्धिवचनसुरापराधिनमिन्द्र एव शत्रुमभिवृद्धो वृत्रमभिजघान। एवमनियत-कर्मारम्भाः शतशः सुरा विलयं जग्मुः। अतो विधिहीनकर्मारम्भादनारम्भ एव श्रेयान्। तत्राऽ-भिचारकर्माऽथर्ववेदमन्त्रोपदिष्टैरुपकल्पयेदित्यादि।

जैसा कि भगवान पराशर ने पुष्कर क्षेत्र में कथा-वाचन इस प्रकार किया – पहले देवासुर संग्राम में शुक्राचार्य द्वारा प्रयुक्त अभिचार-क्रिया से देवगण हतवीर्य हो गये और शत्रुओं की शक्ति से पराजित होकर स्वयंभू ब्रह्मा के पास पहुँचे। (ब्रह्मा ने) देवताओं को आदेश दिया कि शुक्र ही हमारे सहायक हो सकते हैं। देवगण ने शुक्राचार्य के पास जाकर विनम्रता पूर्वक पवित्र मन्त्रों से उनका स्तवन किया। उन्हें सभी रत्नों तथा धन-धान्यों का स्वामित्व देकर और यज्ञ-भाग प्रदान कर, पितामह, ऋषि और देवतागण वर की याचना किये। हे भगवन्! अनेक विधियों से प्रतिपादित आद्य (सनातन) धर्म, जो शत्रुविनाशक है, उसका जिस प्रकार से विनाश न हो, वैसा आप हमारे लिये करें। जिस प्रकार हमारे लिए बृहस्पति उपाध्याय (गुरु) हैं, उसी प्रकार आप भी गुरु-पद स्वीकार करें। शुक्राचार्य ने "यह पर्याप्त है" – ऐसा कह कर शान्तिमन्त्र, स्वस्त्ययन आदि के द्वारा देवताओं को पुनः तेजोयुक्त कर दिया। विधिवत् प्रयुक्त वेदमन्त्रों के अनुष्ठान से कुछ भी असाध्य नहीं देखता हूँ। प्रयोक्ता को शुद्धाशुद्ध-मन्त्र, आचार्य, प्रतिग्रहीता, देश, काल, करण, द्रव्य, साधन और सामग्री का ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा मिथ्या तथा हीन-मन्त्रों का प्रयोग यजमान के लिए ही विनाशकारक होता है। प्राचीन काल में इन्द्रपद हरण करने की इच्छा से, समुन्नत पराक्रमवाला वृत्रासुर ने इन्द्र को पदच्युत करने के लिए अभिचार प्रयोग किया। इस अभिचार-कर्म-विधि के समाप्त होने पर (इन्द्र-शत्रु-वृद्धि) इस वचनवाले (मन्त्र) के उच्चारण से उसके शत्रु

---

१. मिथ्याहोममन्त्रप्रयोगा इति अ० पु० पाठः।

२. अथैनं श्रेष्ठकर्मेति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्द्र की ही वृद्धि हुई और उस अशुद्ध उच्चारण ने वृत्रासुर का वध कर दिया! इस प्रकार अनियमित कर्म के अनुष्ठान से सैकड़ों देवताओं का विनाश हुआ। इसलिए विधिहीन कर्मानुष्ठान न करना ही उत्तम है। अभिचार-कर्मो का अथर्ववेद के मन्त्रानुसार ही अनुष्ठान करना चाहिए।

एवमादिकाः प्रश्नाः प्रतिप्रश्नाः कथाप्रसङ्गाः स्वल्पोपयोगाः प्रायो न कुत्रचिदुपयुज्यन्ते। आचार्येण यद्यपि रोहिणीयोगादिष्वीषत्कथाप्रसङ्गः प्रदर्शितस्तथापि न दोषः। यत आचार्येण सहृदयहृदयाह्लादकं शास्त्रं कृतं तावन्मात्रेण तेषां चित्तरञ्जनं भवति।

इस प्रकार के प्रश्न, प्रतिप्रश्न और कथा-प्रसंगादि का स्वल्प उपयोग भी प्रायः कहीं उपयुक्त नहीं होता। यद्यपि आचार्य वराहमिहिर के द्वारा रोहिणी-योगादि प्रकरण में किंचित् कथा-प्रसंग प्रदर्शित किया गया है, तथापि वहाँ कोई दोष नहीं है। क्योंकि आचार्य ने सहृदयों के हृदय के लिए आनन्ददायक शास्त्र का निर्माण किया है, और उन प्रसंगों से उनका मनोरञ्जन होता है।

तथा ग्रहसम्भवांश्चेति। ग्रहाणामादित्यादीनां सम्भवा उत्पत्तयः। कुतः सूर्यादय उत्पन्ना इति। तथा च भगवान् पराशरः—

और उसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के प्रादुर्भाव आदि का वर्णन भी उचित नहीं है। ये सूर्यादि ग्रह कैसे उत्पन्न हुए इस विषय में भगवान् पराशर कहते हैं :—

हिमवति हिमावदातेऽवनिधरवरशिखरविपरिवर्तितमिव विवस्वन्तं भगवन्तं पराशर-मभिसङ्गम्य विनयावनतः कौशिकोऽभ्युवाच। भगवन्! सर्वात्मा कालगतिविधाता सूर्यस्तस्य चरितमभिशुश्रूषामहे। द्वादश च श्रूयन्ते। एक एव तपन् दृश्यते। शीतोष्णवर्षाभ्रानिलानां कथमस्मात् प्रादुर्भावः। कथं चर्त्तवस्तन्मानमनुवर्तते। मार्गप्रमाणवर्णसंस्थानादि शुभाशुभ-फलमखिलमभिव्याहर्तुमर्हसीति।

पर्वतश्रेष्ठ हिमालय के शिखर पर स्थित अपने तेज से भ्रमणशील सूर्य की तरह भगवान् पराशर के समीप जाकर विनम्रतापूर्वक झुक कर कौशिक मुनि ने पूछा :— भगवन्! सर्वात्मा, काल की गति के विधायक सूर्य हैं, उनके चरित्र (परिचय) को मैं श्रवण करना चाहता हूँ। वे बारह सुने जाते है, परन्तु एक ही प्रकाशित दृश्य होते हैं। शीत, उष्ण, वर्षा, बादल और वायु इनकी सूर्य से उत्पत्ति कैसे होती है? किस प्रकार ऋतुएँ और उनका समय प्रवर्तित होता है? भ्रमणपथ का मान, वर्ण और स्थानादि का तथा शुभाशुभ फल आदि सम्पूर्ण आख्यान का उपदेश करने की कृपा करें।

तमुवाच भगवान् पराशरः :—पुरा खल्वपरिमितशक्तिप्रभाप्रभाववीर्यायुरारोग्यसुखैश्वर्यधर्म-सत्त्वशुद्धतेजसः पुरुषा बभूवुः। तेषां क्रमादपचीयमानसत्त्वानामुपचीयमानरजस्तमस्कानां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोभः प्रादुरभवत्। लोभात् परिग्रहं परिग्रहाद् गौरवं गौरवादालस्यमालस्यात्तेजोऽन्तर्दधे। अथ भगवान् परमर्षिरचिन्त्यःपुरुषो नारायणः स्ववेद्यमाद्यमात्मानं द्वादशधा कश्यपाददितेर्जनयामास। येनानन्तं पुनर्जगदभवत्। यान् द्वादशादित्यानाचक्षते। इन्द्रो विष्णुर्विवस्वान्मित्रोंऽशुमान् धाता त्वष्टा पूषा वरुणोऽर्यमा भगः सवितेति। अथ सवितारं पितामहोऽतितुष्टाव वराहं चैनं वरयाञ्चकार। यथा द्वादशादित्येभ्यस्त्वामुपस्थास्यमीति। मत्तो योगस्तेजो रुद्रात् स्वयमग्नीषोमौ वायुरमृतं मर्त्यं चेति। चन्द्रस्य[1] पराशरमुनिना सम्भवो नोक्तः।

भगवान् पराशर ने उस कौशिक मुनि को बतलाया :– प्राचीन काल में अपरिमित शक्ति-तेज से युक्त, बल, आयु, नैरुज्य, सुख, ऐश्वर्य, धर्म, सत्त्व के साथ पवित्र तेजस्वी पुरुष होते थे। उन लोगों के क्रमशः सत्त्वगुण के क्षीण होने और रजोगुण तथा तमोगुण की वृद्धि से लोभ उत्पन्न हुआ। लोभ से परिग्रह, (संग्रह) परिग्रह से गौरव (गुरुता का अभिमान), गौरव से आलस्य और आलस्य से तेज समाप्त हो गया। तत्पश्चात् भगवान् परम-ऋषि, अचिन्त्य-पुरुष नारायण स्वयंवेद्य अपने को बारह भागों में विभक्त कर कश्यप ऋषि से अदिति के पुत्र रूप में उत्पन्न किये। इससे अनन्त संसार पुनः उत्पन्न हुआ। जिन्हें बारह आदित्य कहते हैं, वे क्रमशः– इन्द्र, विष्णु, विवस्वान्, मित्र, अंशुमान्, धाता, पूषा, त्वष्टा, वरुण, अर्यमा, भग और सविता हैं। अनन्तर ब्रह्मा ने अति प्रसन्न होकर वरणीय इस सविता को वर प्रदान किया कि "द्वादश सूर्यों के निमित्त तुम्हारी ही पूजा होगी। मुझ से योग, रूद्र से तेज तथा अग्नि, सोम, वायु, अमृत और मृत्यु (यम) से साक्षात् प्राप्त होंगे।" पराशर मुनि ने चन्द्रमा की उत्पत्ति को नहीं कहा है।

[**टिप्पणी**– भास्कराचार्य ने सि० शि० में कहा है, "विष्णु, शिव और ब्रह्मा द्वारा वर-प्राप्ति को सुनकर पुत्रकामनावाले अत्रि-ऋषि के अतिशय आनन्द के कारण नेत्रों से निर्गत अश्रु-विन्दुओं को ब्रह्मा ने ग्रह के रूप में आकाश में स्थापित किया। स्मृति-पुराणों से यह कथा प्राप्त हुई है।" इस प्रकार चन्द्रोत्पत्ति की कथा वहाँ वर्णित है।]

राहोर्यथा :– अथ भगवन्तमनिलबलसमीरितप्रोद्धतहुतवहप्रभाभासुरमवितथदर्शनमुदासीनमाश्रमस्थमभिसंक्रम्य कौशिको विनयात् पराशरमुवाच। भगवन्! सकलभुवनविलयोद्भव-

---

१. भास्कराचार्यस्तु सिद्धान्तशिरोमणिशृङ्गोन्नत्यधिकारस्य ८-९ श्लोकयोरुपपत्तौ –"अत्र हरिहरविरञ्चिवरलाभश्रवणसहर्षपुत्रकामात्रिनेत्रविगलितजलबिन्दुरयमिन्दुः पितामहेन ग्रहत्व आकाशे निवेशित इति श्रूयते स्मृतिषु पुराणेषु" इति चन्द्रोत्पत्तिकारणं विलिखति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थितिविकरणौ कथमुपरज्येते सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति को वा ग्रहो ग्रहणप्रयोजनं फलं वा किमस्य ग्रहणे नियतमनियतं चेति।

राहु की उत्पत्ति-कथाः – वायुवेग से प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखातुल्य तेज से आभासित पुण्यदर्शनवाले, परम उदासीन, अपने आश्रम में विराजमान, पराशर ऋषि के समीप जाकर विनम्रता पूर्वक कौशिक मुनि ने पूछा :– हे भगवन्! समस्त लोकों के सृजन, स्थिति और विलय के कर्त्ता रवि-चन्द्र, किस कारण से ग्रस्त होते हैं और उन्हें कौन ग्रहण करता है? ग्रहण का प्रयोजन, इसका फल नियत अथवा अनियत क्या होता है?

तमुवाच भगवान् पराशरः– पुरा पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिरकालयाञ्चाकोपाद्दारुणं यमकालान्तकोपमं सुतमदात्। यं राहुरित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्गरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधाद्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजयमर्कचन्द्र-सम्भक्षणं च वरमभिवरयामास। ततो भगवानमरगुरुः स्वयम्भूः प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्त-स्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वाऽन्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहुः। ततो हरिरिरिविमथनं चक्रमुपरि परिक्षिप्यास्य शिरश्छित्त्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं कुर्वन् जगतः शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसीति।

भगवान् पराशर ने उस (कौशिक) को बतलाया :– प्राचीन समय की बात है, सिंहिका नामक स्त्री ने इन्द्र के पितर कश्यप मुनि से असमय ही पुत्राभिलाषा को प्रकट किया। असमय याचना के कारण क्रोधित मुनि ने उसको कालान्तक यम के समान उग्र पुत्र प्रदान किया। उत्पन्न होते ही अदिति-पुत्रों (देवों) के साथ युद्ध करता हुए स्वयं पराजित होकर उसने क्रोध से हिमाद्रि पर दस हजार वर्षो तक अति घोर एवं दिव्य तपस्या किया। उसने ब्रह्मा से स्वर्गारोहण, अमरता, देवों पर विजय, और रवि-चन्द्र को भक्षण करने का वर माँगा। देवाधिदेव ब्रह्मा ने हँसते हुए उससे कहा :– "तुम वर का अतिक्रमण कर रहे हो, सूर्य और चन्द्रमा को पचाने में असमर्थ रहोगे, किन्तु शेष तुम्हारी याचना पूर्ण हो।"– यह कहकर ब्रह्मा अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् राहु, रवि-चन्द्र दोनों को पीड़ित करने लगा। इसके बाद शीघ्रता से शत्रु-संहार करनेवाले चक्र को भगवान् विष्णु ने उसके ऊपर प्रक्षिप्त किया, और उसका शिरश्छेद करते हुए कहा – "ब्रह्मा का वचन सभी सत्य हो, अपने अपने युग के पर्वो में ग्रहण करते हुए संसार के शुभाशुभ फलों के तुम कर्त्ता रहोगे।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भौमस्य यथा :– अथ भगवान् जगदादिसर्ग एव प्राक् प्रजापतिः सिसृक्षयेश्वरः करेण क्रोधात् स्वतेजसोऽभिनिष्यन्दमग्निं तेजस एव जुहाव। अथ तदग्नितोऽवनिमुपसृतमुर्व्यग्निसर्वतेजोभिः सम्भृतमुदतिष्ठद्यं प्रजापतिं प्राजापत्यं भौममिति मन्यन्ते। स स्वयम्भुवो नियोगादृक्षचक्रमनुचरन्नशेषग्रहसामान्यचाराद्वक्रानुवक्राभ्यां चराचरं जगद्विशिष्टाविशिष्टेन[1] कर्मणा युनक्तीति।

मंगल की उत्पत्ति कथा :– संसार की प्रथम सृष्टि स्वरूप भगवान् प्रजापति ने सृष्टि की इच्छा से स्व-क्रोधोत्पन्न तेज से निर्गत अग्नि का अपने हाथों द्वारा तेज में ही आधान किया। उस अग्नि से पृथ्वी पर फैले हुए अग्नि और सम्पूर्ण तेजःपुञ्ज के द्वारा सम्भृत (पिण्डाकृति) प्रादुर्भूत हुआ, जिसको प्रजापति से उत्पन्न होने के कारण "प्राजापत्य-भौम" के रूप में मान्य करते हैं। वह ब्रह्मा के निर्देश से नक्षत्र-चक्र (खगोल) में विचरण करता हुआ सामान्यतया सभी ग्रहों के समान ही वक्री एवं मार्गी आदि गति से चराचर-जगत् को विशिष्ट एवं अविशिष्ट (साधारण एवं प्रमुख) कर्मो के द्वारा नियोजित करता है।

बुधस्य यथा– प्रागसुरसुरसन्निपातेऽसुरगुरुमाययाभिमुह्यन्तः सुराः स्वयम्भुवमभिसङ्गम्योचुः। भगवन्निद्राभिभूताः स्मः। स्वपतां नो द्विषद्विघातहेतुमभिध्यायस्वेति। स्वयम्भुवा ग्रहपतिरपां तेजः सोमोऽभिध्यायोक्तः। सुतस्ते त्रिभुवनोद्भावनविलयनगोषायनप्रजापतिर्भविता। सकलविबुधगणान् बुधोऽभिरक्षते। ततो जगदभिगुप्त्यर्थं गतिवर्णचारमार्गास्तमनोदयप्रवासैर्जगतः शुभाशुभकरो भवतीति।

बुध की कथा इस प्रकार है :– प्राचीन काल में सुरासुरों के परस्पर युद्ध में असुर-गुरु की माया से विमोहित होकर देवगण ब्रह्मा के पास उपस्थित होकर बोले :– "हे भगवन्! हम लोग निद्रा से अभिभूत हो गये हैं। निद्रावस्था को प्राप्त हमें उपाय बतलायें।" ब्रह्मा ने ग्रहपति, जलीय तेजवाले, सोम (चन्द्र) को निर्दिष्ट कर कहा :– तुम्हारा पुत्र त्रिलोक की उत्पत्ति, संहार और पालन करने वाला प्रजापति होगा। सभी देवगणों की बुध रक्षा करता है। तत्पश्चात् संसार की रक्षा के लिए गति, वर्ण, संचार, मार्गी, अस्त और उदय के साथ अर्थात् विविध गतियों के द्वारा बुध भ्रमण करता हुआ संसार के शुभाशुभ फलों का कारक होता है।

बृहस्पतेर्यथा :– अथामरवरगुरुमधिकृत्य गुरुर्भगवान् पराशरः शिष्येणाभिनन्दितः सुरगुरुचरितमखिलमभिप्रणम्य गुरुमेवोवाच। आदिसर्ग एव पितामहोऽङ्गिरसं मनसाभिजज्ञे। अङ्गिरसोऽभिमुखाद् ब्रह्मधामैव त्रिभुवनगोप्ता प्रजापतिर्भगवान् बृहस्पतिरजायत। तमुत्पन्नमात्रमेव

---

१. भूतग्राममिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स त्रैलोक्याधिपतिः[1] पिनाकभृत् सुरवरगुप्त्यर्थं वराहं वरयामास। पितामहमिव त्वां प्रजाप्रभावर्द्धिसिद्धियोगज्ञानमन्त्रब्रह्मकर्माण्युपस्थास्यन्ति। गुरुरपि च सुराणां जगति शुभाशुभकारी त्वमेव भवितेति।

बृहस्पति की उत्पत्ति कथा :—भगवान् पराशर ने अपने शिष्यों से अभिनन्दित होकर अपने गुरु को प्रणाम कर देवगुरु से सम्बन्धित उनके चरित्र को बतलाया। सृष्टि के आदि में ही ब्रह्मा ने अङ्गिरा को मन से उत्पन्न किया। अङ्गिरा से ब्रह्मा के समान तेजस्वी त्रिभुवनरक्षक प्रजापालक भगवान् बृहस्पति उत्पन्न हुए। इनके उत्पन्न होते ही त्रिलोक-नायक भगवान् शंकर ने इन्द्र की रक्षा हेतु वरदान के योग्य उनको वर-प्रदान किया। ब्रह्मा की तरह ही तुमको प्रभा, प्रभाव, ऋद्धि, सिद्धि, योग-ज्ञान, मन्त्र और ब्रह्म-कर्म सब प्राप्त हो जायेंगे। देवताओं के गुरु होते हुए भी तुम्हीं संसार में शुभ और अशुभ करनेवाले होगे।

शुक्रस्य यथा :— प्राग्भगवन्तममलतपसमनेकर्षिगणपरिवृतमशक्तदृशमपगतसंशयमुपेत्य संशयात् कौशिकः पराशरं विनयादवोचत्। भगवन्! दितिसुतगुरुचरितमिति यदग्रे भगवानुवाच तत्संशयो[2] नः कथममरवरवपुषस्तस्यायत्ताः प्रजाभावाभावास्तमुवाच भगवान् पराशरः। प्रागादिसर्गे च भगवतस्त्रिलोचनस्य शम्भो रोरूयमाणस्य पितामहो भव इति यन्नामाकरोत्तस्यापो मूर्तिः सा भृगुकन्यका यस्यामुशना यं शुक्रं जनयामास स पुराऽयुतवर्षकेण कणधूम्रव्रतेन त्रिभुवनगुरुं पिनाकिनमाराध्य सकलधनपतित्वममरवरवपुः प्रज्ञाप्रभावतपः श्रुततेजोऽधिकत्वमसुरगुरुत्वमर्कवर्षनिग्रहं प्रजापतित्वं च लेभे। तस्य भगवतश्चरित-मुदयास्तमयर्क्षमार्गवर्णवीथीमण्डलैरुपदिशन्तीति।

शुक्र की उत्पति कथा इस प्रकार है :— पुराकाल में निष्कलुष तपस्वी अनेक ऋषिगणों से घिरे हुए दुर्लभदर्शनवाले निःशंक भगवान् पराशर के पास कौशिक मुनि ने विनम्रतापूर्वक स्वमनोगत संशय के सम्बन्ध में कहा :— भगवन्! दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के चरित को जो आपने आगे कहा, उसमें हमारा संशय है कि किस प्रकार देवेन्द्र के ऊपर उसका प्रभाव पड़ा तथा संतति का अभाव कैसे हुआ? भगवान पराशर ने कहा— "सृष्टि के प्रारम्भ में त्रिलोचन भगवान् शंकर के रुदन करने पर पितामह हो जाओ", ऐसी जो संज्ञा प्राप्त हुई, उसकी मूर्ति जलमयी बनी। वह भृगु कन्या हुई, जिसमें उशना ने शुक्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वह शुक्र पहले दश हजार वर्षो तक कण-धूम्रव्रत के द्वारा त्रिभुवन-गुरु शंकर की आराधना

---

१. सदसदधिपतिरिति अ० क० पु० पाठः।

२. तस्मात्संशय इति तत्संशय एवमत्र विग्रहः कार्यः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर सम्पूर्ण धन का स्वामित्व, श्रेष्ठ अमर शरीर, प्रज्ञा-प्रभावयुक्त तप, श्रुतियों का तेजोधिकत्व, असुर-गुरुत्व, रवि-वर्ष का नियन्त्रण और प्रजापतित्व को प्राप्त कर लिया। उस भगवान् शुक्र का चरित उनके उदय, अस्त, नक्षत्र-भ्रमण, वर्ण, कक्षामण्डल आदि के द्वारा उपदिष्ट करते हैं।

सौरस्य यथा :– अथ भगवतः पुरा आदियुग एवातिभासुरमभितपतो विवस्वतस्तेजसाऽभिव्यथ्यमानेषु भूतेषु स्वयं स्वयम्भूर्भगवन्तं विवस्वन्तमुवाच। अलमतितेजसा। न देवदेवा अपि तत्तेजसः परमं बलमतिसोढुं समर्थाः! किमङ्ग पुनः प्रजाः। प्रजापतिनेत्यादिष्टो रविरतितेजोनिवारणादतिक्रुद्धः स्वभावात् क्रोधमेवापत्यं जनयामास यं शनैश्चरमित्याचक्षत इति।

शनि की उत्पत्ति कथा :– आदि युग में ही भगवान् सूर्य के अभितप्त तेज के द्वारा सभी प्राणियों के व्यथित हो जाने पर स्वयं ब्रह्मा ने भगवान् सूर्य से कहा :– इस अधिक तेज को रोके। देवाधिदेव भी उस परम शक्तिशाली तेज को सहन करने में समर्थ नहीं है, फिर प्रजा का क्या कहना! ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार आदेश पाकर सूर्य ने अतिशय तेज के निवारण से अति क्रुद्ध होकर अपने भावनानुसार क्रोध को ही सन्तान रूप में उत्पन्न किया, जिसको शनैश्चर नाम से कहा गया।

अगस्त्यस्य यथा :– अथ भगवन्तममितयशसं पराशरं कौशिकोऽभ्युवाच। भगवन्! याम्यायां दिशि ज्योतिष्मद्ग्रहरूपमुदितमालक्ष्यते नक्षत्रग्रहमार्गव्युत्क्रान्तचरितं न वेद्मि। किं तत्किमर्थं वा प्राचीं दिशमपहाय दक्षिणेन प्रावृट्कालान्तोदितं शरत्कालान्तोदितं वा कतिपयाहान्यदृश्यं भवति। तन्नो भगवन्! वक्तुमर्हसीत्येवमुक्तो भगवानुवाच :– श्रुतपूर्वस्ते पृथिव्यां मेरुमन्दरातिरिक्तप्रभावः शैलराड् विन्ध्यो नाम। स स्ववीर्यबलसमुच्छ्रायविशेषमन्विष्यमाणो दिव्यं वर्षसहस्रमुग्रं तपस्तेपे। स पितामहादहन्यहनीषुपातप्रमाणमुच्छ्रायेण वर्द्धस्वेतीप्सितं वरं लेभे। तस्यातिवृद्ध्या दिवसकर आवृतस्तेनान्धमिव जगदभवत्। ततो देवर्षिगन्धर्वोरगयक्षरक्षांसि पितामहमभिजग्मुः। भगवन्! विन्ध्यवृद्धया जगदवसीदत इत्यूचुः। ततः स्वयम्भुवा अगस्त्यनामा महर्षिरनेकवर्षसहस्रसम्भृततया ध्यात उक्तश्च। त्वमेकः शक्तो विन्ध्यातिवृद्धिनिवर्तनं कर्तुं कृते चास्मिन् कर्मणि नभसि विराजिष्यसे। दर्शनादेव ते जगति सर्वविघ्नविनाशो भविष्यति। एवमस्त्विति कृत्वा महर्षिरगमद्विन्ध्यसकाशम्। उवाचैनमनन्तरं मे प्रयच्छ तीर्थयात्रां करिष्यामि। अनागते च मयि त्वया न वर्द्धितव्यम्। इत्येवमुपश्रुत्य

---

१. विष इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तपःप्रभावविस्तरस्याभिज्ञो महर्षेर्विन्ध्याचलश्चलच्छिखरपादो भयविषादविक्लवमतिरुवाच। भगवन्! बृहदसङ्कीर्णमविषममनेकतरुगणोदकमेकदेशमार्गमायोजयिष्यामि येन[1] भगवान् यास्यतीत्येवमुक्तो महर्षिश्चुकोप। क्रोधरक्तान्तनेत्रोऽवदत्। ममाज्ञाक्षोभात् कदाचित् सर्वथैव न भविष्यसीति। ततः शैलस्तत्प्रभावभयभीतः स्वभावमुपगतोऽनागते भगवति न वृद्धिं यास्यामीति। ततो महर्षिर्दक्षिणां दिशमगमत्। स एषोऽगस्त्यः शैलवृद्धिव्याघातनिमित्तं न प्रत्येति दक्षिणस्यामुदेति तस्यामेवास्तं गच्छतीति।

अगस्त्य की उत्पत्ति-कथा :—अनन्त कीर्तिशाली भगवान् पराशर से कौशिक मुनि ने कहा— हे भगवन्! दक्षिण दिशा में प्रकाशमान ग्रह-स्वरूप का उदय देखा जाता है, नक्षत्र-ग्रहों के मार्ग से पृथक् उस (प्रकाश-पिण्ड) का आख्यान मैं नहीं जानता हूँ। किस कारण वह पूर्व दिशा को त्यागकर दक्षिण-दिशा में वर्षान्त काल अथवा शरदऋतु के अन्त में उदित होकर कुछ दिनों तक अदृश्य रहता है। हे भगवन्! हम लोगों को उस विषय में बतलायें। ऐसा पूछने पर भगवान् पराशर ने कहा :—

पृथ्वी पर मेरु एवं मन्दराचल पर्वतों से अधिक प्रभावशाली विन्ध्य नामक पर्वतराज है। अपनी शक्ति, बल, ऊँचाई, को अतिविशेष प्राप्त करने की इच्छा से उसने एक हजार दिव्य वर्ष तक घोर तप किया। वह ब्रह्मा द्वारा प्रतिदिन शर-पात के प्रमाण से अर्थात् किसी योद्धा द्वारा फेके गये बाण की दूरी के तुल्य बढ़ोगे— इस प्रकार का अभीष्ट वरदान प्राप्त कर लिया। उसके अतिशय वृद्धि के कारण सूर्य ढक गया और संसार अन्धकारावृत हो गया। तत्पश्चात् देवर्षि, गन्धर्व, नाग, यक्ष और राक्षसगण ब्रह्मा जी के पास गये और बोले :— "भगवन्! विन्ध्यपर्वत की वृद्धि से संसार संकटापन्न है" तत्पश्चात् ब्रह्मा ने अनेक सहस्र वर्षो तक पुण्य-संचय के कारण ध्यानरत अगस्त्य नामक महर्षि से कहा :— "एक तुम्हीं विन्ध्यपर्वत की वृद्धि को रोकने में समर्थ हो", इस कार्य को कर लेने पर आकाश में विराजमान हो जाओगे। तुम्हारे दर्शन से ही संसार में सभी विघ्नों का विनाश होगा। महर्षि अगस्त्य "एवमस्तु" कह कर विन्ध्याचल के पास गये और उन्होंने उससे कहा :— "तुम मुझे (झुककर) मार्ग प्रदान करो, मैं तीर्थयात्रा के लिए जाऊँगा। मेरे वापस नहीं आने तक तुम्हें बढ़ना नहीं चाहिए।" इस प्रकार सुनकर महर्षि अगस्त्य के महान् तपस्या के प्रभाव को समझनेवाला विन्ध्याचल पर्वत चंचल शिखर-पादवाला, भय और विषाद से अति व्याकुल होकर बोला :—

---

१. तेनेति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"भगवन्.! अत्यन्त विशाल, विस्तृत, समतल, विविध वृक्षों की छाया तथा जलसहित एक तरफ से जानेयोग्य मार्ग की मैं व्यवस्था करूँगा, जिससे आप जा सकेंगे।" ऐसा कहे जाने पर महर्षि क्रोधित हो गये और क्रोध से रक्तनेत्र होकर बोले – मेरी आज्ञा कि अवमानना से कदाचित् पूर्णरूप से तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। तत्पश्चात् उनके प्रभाव से विन्ध्याचल भयभीत होकर सहज रूप में आ गया और बोला – "आपके न आने तक वृद्धि को प्राप्त नहीं करूँगा।" इसके बाद महर्षि दक्षिणदिशा को चले गये। वहाँ से यह अगस्त्य विन्ध्याचल की वृद्धि को रोके रखने के लिए वापस नहीं आते हैं। वहीं दक्षिण में ही वह उदित होते और उसी दिशा में वह अस्त होते हैं।

केतोः केतुचारोक्ता एवोत्पत्तिः। तथा च भगवान् गर्गः :–

केतु की उत्पत्ति कथा :– केतुचार अध्याय में ही उसकी उत्पत्ति कही गयी है। जैसाकि भगवान् गर्ग ने कहा है :–

जातस्तूशनसः शुक्रः सूर्यपुत्रः शनैश्चरः।
पुत्रः सोमस्य तु बुधो भूमेरङ्गारकः स्मृतः॥
पुत्रमङ्गिरसः प्राहुर्बृहद्वाक्यं बृहस्पतिम्।
राहुः स्वर्भानुपुत्रः स्यात् पुत्रः केतुर्विभावसोः॥
मनसा ब्रह्मणा ख्यातावुभौ सोमदिवाकरौ। इति।

उशना से शुक्र उत्पन्न हुए, सूर्य के पुत्र शनि हुए, चन्द्रमा के पुत्र बुध तथा भू-पुत्र भौम कहे जाते हैं। अङ्गिरा के पुत्र बृहद्वाक् बृहस्पति कहे गये है। स्वरभानु का पुत्र राहु एवं विभावसु का पुत्र केतु हुआ। सूर्य और चन्द्रमा ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए, यह प्रसिद्ध है।

ग्रहसम्भवानेतानपि स्वल्पोपयोगान् सन्त्यज्य त्यक्त्वा। तथा अन्यान्यपि फल्गून्यसाराणि यान्ययुक्तिमद्भिर्गणितगोलवाह्यैर्विरुद्धान्यभिहितानि। यथा भुवनप्रविभागे भूमेर्महाप्रमाणत्वं दर्पणोदराकारतां च कथयन्ति। मेरोश्च महाप्रमाणं वृत्तत्वं तत्पृष्ठासक्तो ध्रुवश्च ग्रहनक्षत्राणि चावलम्बमानानि।

इन सभी ग्रहोत्पत्तियों का स्वल्प उपयोग होने के कारण इन्हें छोड़कर तथा अन्य भी सारहीन – जिनकी गणित-गोल के द्वारा युक्ति नहीं मिलती, जैसा कि भुवनप्रकरण में भूमि का महान् प्रमाण, दर्पणोदर के सामान समतल आकार कहा गया है, मेरु का महाप्रमाण-वृत्तत्व, उसके पृष्ठगत ध्रुव तथा ग्रह-नक्षत्रों का अवलम्बन आदि प्रकरण हैं, इन सभी का त्याग कर हम सारभूत तत्त्व कहेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च भगवान् पराशरः—

सप्तषष्टिसहस्राण्यशीतियोजनकोट्यो भूर्यत्पृथिवीमण्डलं परमस्मादगम्यं तमः। तन्मध्ये हिरण्मयो मेरुश्चतुरशीतियोजनसहस्रोच्छितः षोडश चाधस्तात् त्रिगुणविस्तारायामो यं स्वर्गमाचक्षते। तन्मध्येनार्कचन्द्रौ ज्योतिश्चक्रं च पर्येति। तथा चः—

जैसाकि भगवान् पराशर ने कहा है :—

भू, जिसको भूमण्डल कहते हैं वह ८० करोड़, ६७ हजार योजन है। अनन्तर इसके दुर्गम अन्धकार है। उसके मध्य में सुवर्णमय मेरु है, जो ८६ हजार योजन उन्नत है। उससे १६ भाग नीचे त्रिगुणित विस्तार एवं आयाम (चौड़ाई) वाला स्वर्ग है। उसके मध्य भाग से रवि-चन्द्र तथा नक्षत्र-मण्डल भ्रमण करता है। जैसा कि :—

मेरोरर्धविभागे सूर्यश्चन्द्रो द्वितीयके त्वटते।
ग्रहनक्षत्रतारकासहितौ द्वौ कृतैककालविभागौ॥

मेरु के दूसरे आधे भाग में रवि-चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा सहित भ्रमण करते हैं। वे दोनों एक-एक कर काल का विभाजन (दिन-रात) करते हैं।

इति गोलकशास्त्रे निश्चयः। तस्य छायां निशामिच्छन्ति कुशलाः। एवमादिकं बहुप्रकारमस्माकं गोलज्ञानेन सिद्ध्यति। तथा चः—

ऐसा गोलशास्त्र का विनिश्चय है। इसकी छाया को कुशल (गणितज्ञ) रात्रि मानते हैं। इस प्रकार के हमारे विविध विषय गोल-ज्ञान के द्वारा सिद्ध होते हैं। जैसाकि :—

मेरोरर्धप्रमाणेन सूर्यस्य गतिरुच्यते।
भगणस्याथ पञ्चाशदादित्यादुपरि स्थिता[1]॥
भगणात् सप्तषष्टिस्तु सोमस्य गतिरुच्यते।
अध्यर्धं तु गतेः सोमाद्भार्गवस्य गतिः स्मृता॥
बृहस्पतिर्बुधश्चैव प्राजापत्यः शनैश्चरः।
केतवश्च ग्रहाः सर्वे ज्ञेयाः सोमसमा गतौ॥
निमेषान्तरमात्रेण योजनानां शतं शतम्।
पर्येति भगवानर्को भावयन् भूतभावनः॥
अन्ते निम्नोन्नता मध्ये कूर्मपृ[2]ष्ठोपमा मही।
त्रिगुणाद् भूपरीणाहादष्टभागो दिगन्तरम्॥

---

१. स्मृता इति अ० क० पु० पाठः।
२. पृष्ठस्थितेति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरु के आधे मान से सूर्य की गति कही जाती है। रवि से ५० अधिक भगण (नक्षत्र-मण्डल) की स्थिति है। भगण से ६७ पर सोम की गति कही गयी है। सोम से आधे पर शुक्र की गति बतलायी गयी है। गुरु, बुध, प्रजापति, शनि और केतु इन सब की गति सोम के समान ही जाननी चाहिए।

एक निमेषकाल में १००-१०० योजन की गति के अनुसार भगवान् सूर्य लोक-कल्याण करते हुआ भ्रमण करते हैं। पृथ्वी का दोनों प्रान्त (ध्रुवभाग) निम्न (चिपटा) और मध्य भाग कूर्म-पृष्ठ की भाँति उन्नत है। भूपरिधि का त्रिगुणित अष्टम भाग (३/८) पर दिगन्तर (एक दिशा से दूसरी दिशा का अन्तर) होता है।

एवमादिकानि वाक्यानि निरुपपत्तिकानि गोलविरुद्धान्यसाराणि सन्त्यज्य यत्सारभूतं श्रेष्ठं लोकप्र'त्यक्षजननं भूतार्थं सत्यार्थं दृष्टप्रत्ययं सकलैः समग्रैः परिपूर्णैरर्थैरनाकाङ्क्षैः प्रवक्ष्ये कथयिष्य इति ॥ ११॥

इस प्रकार के अनेक कथन, उपपत्ति– रहित (गणितीय सत्य से परे), गोलीय नियमों के विरुद्ध, तथा सार-हीन हैं– उनका परित्याग कर (इस ग्रन्थ में) जो श्रेष्ठ, प्रत्यक्ष-सिद्ध लोक-कल्याणार्थ विषय हैं, उन सभी का मैं व्याख्यान करुँगा ॥११॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शास्त्रोपनयनाम्प्रथमोध्यायः ॥ १॥

इति श्री भट्टोत्पल-विरचित संहिताविवृतिमें शास्त्रोपनयन
नामक प्रथम अध्याय ॥१॥

---

१. लोके प्रत्ययजननमिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ द्वितीयोध्यायः

एवं स्वशास्त्रस्य स्वरूपप्रदर्शनिनोत्कर्षं प्रदर्श्याधुना कीदृग् ज्योतिःशास्त्रेऽधिकारीत्यतोऽधिकारिस्वरूपं प्रदर्शयितुमाह :–

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः

इस प्रकार अपने शास्त्र (ग्रन्थ) का स्वरूप-प्रदर्शनपूर्वक उसके उत्कर्ष का प्रदर्शन कर, अब ज्योतिषशास्त्र में अधिकारी कैसा होना चाहिए ? इसके प्रतिपादन हेतु अधिकारी के स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए कहते हैं :–

अथात इत्ययं समुदायः। अथातोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः कथयिष्यामः। अथवाऽथशब्दो मङ्गलार्थः। अतोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं विविधैरर्थैराशास्त्रपरिसमाप्तेर्व्याख्यास्यामः कथयिष्यामः। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सरः। सूत्र्यते अर्थो येन तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थः।

'अथातः' यह शब्द समुदायवाचक है। अथातः– इस शास्त्र के उपनयन के बाद, सांवत्सरसूत्र की व्याख्या करेंगे। अथवा 'अथ' शब्द मंगलार्थक है। अतः इस शास्त्र के उपनयन-कथन के पश्चात्, शास्त्र की समाप्ति पर्यन्त अनेक प्रकार के अर्थों के साथ सांवत्सरसूत्र की व्याख्या हम करेंगे। सांवत्सर का ज्ञाता सांवत्सरिक है, जिससे अर्थ सूत्रित (परस्पर गुम्फित) होते हैं :– वह सूत्र है, इस प्रकार सांवत्सर-सूत्र की व्युत्पत्ति हुई। उसको कहते हैं : –

तच्चाह :–

तत्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयकः समः सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः। प्रायः शरीराकारानुवर्त्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति।

सांवत्सर (दैवज्ञ) सुकुलीन, दर्शनीय, सुन्दरवेशवाला, सत्यवक्ता, अनिन्दक और कुत्सारहित राग द्वेष से तटस्थ, सुघटित-मांसल शरीर की सन्धिवाला, पूर्णाङ्ग सहित हाथ-चरण-नख-नयन-अधरोष्ठ-दन्त-कर्ण-ललाट-भौंह-शिर आदि अङ्गों से सुन्दर शरीरवाला दर्शनीय, रूपवान्, गम्भीर एवं उदात्त ध्वनिवाला – इन लक्षणों से युक्त होता है। प्रायः शरीर की आकृति के अनुसार ही गुण और दोष पाये जाते हैं।

तत्र सांवत्सर इति। तत्र तस्मिन् ज्योतिःशास्त्रे सांवत्सरो दैवज्ञः कीदृशः। संवत्सरो वर्षं तत्र शुभाशुभज्ञानार्थं यः कृतो ग्रन्थः स सांवत्सरस्तमधीते वेद वा यः सोऽपि सांवत्सरः। स चाभिजातः कुलीनः सांवत्सरकुलप्रसूत इति केचित्। यदि तत्कुलेऽपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातो वक्ष्यमाणगुणलक्षणयुक्तो न भवति तत्किं तेन। तस्मात् सांवत्सरकुले निरवद्ये जातेनाऽन्यस्मिन् प्रधानकुले वा सांवत्सरकुलाच्च येन विद्या सागमा अधीता सोऽत्राभिजातो विवक्षितः। प्रियदर्शनो दृश्यमानः सुखजनको विनीतवेष उद्भटो वेषः शरीरालङ्करणं यस्य। आचार्येणान्यत्राप्युक्तम्– "सांवत्सरस्तस्य विनीतवेषः" इति।

इस ज्योतिष शास्त्र में सांवत्सर दैवज्ञ कैसा हो ? संवत्सर = वर्ष, इसके शुभाशुभ ज्ञान हेतु जो विरचित ग्रन्थ, वह सांवत्सर है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करनेवाला वा ज्ञाता सांवत्सर कहलाता है। वह अभिजात, कुलीन अथवा सांवत्सर कुल में उत्पन्न हो, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। यदि इस कुल में उत्पन्न भी कथित गुण-लक्षणों वाला न हो तो उसके जन्ममात्र से क्या होगा ? अतएव निर्दोष सांवत्सर-कुल में अथवा किसी अन्य प्रधान कुल में अथवा सांवत्सर कुल से जिसने वेदादि धर्मशास्त्र सहित विद्या का अध्ययन किया हो– वह यहाँ पर 'अभिजात' पद से ग्राह्य है। प्रियदर्शन– जिसको देखने पर सुख (प्रसन्नता) उत्पन्न हो। विनीतवेष– शरीर के परिधान, अलंकरण जिसके उत्कृष्ट हों। आचार्य ने अन्य स्थलों पर भी कहा है :– सांवत्सर "विनीतवेषवाला" होता है।

सत्यवाक् अवितथभाषी। अनसूयकः अनिन्दकः। गुणेषु दोषाविष्करणमसूया। असूया कुत्सा। न असूयकोऽनसूयकः। समो रागद्वेषरहितः। शत्रौ मित्रे च तुल्यस्नेह इत्यर्थः। सुसंहतोपचितगात्रसन्धिः सुसंहता अतिसंलग्ना उपचिता मांसला गात्रेषु बाहुहस्तोरुजानुगुल्फपादेषु सन्धयो यस्य। अविकलोऽव्यङ्गः परिपूर्णावयवः। चारुकरचरण-नखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गः। करौ हस्तौ। चरणौ पादौ। नखाः कररुहाः। नयने चक्षुषी। चिबुकमधराधोभागः। दशना दन्ताः। श्रवणौ कर्णौ। ललाटं मुखपृष्ठभागः। भ्रुवौ नयनोपरि रोमलेखे। उत्तमाङ्गं शिरः। एतानि चारूणि दर्शनीयानि यस्य। प्रशस्तलक्षणयुक्तानीत्यर्थः। वपुष्मान् वपुः शरीरं शोभनं विद्यते यस्य। रूपवानित्यर्थः। गम्भीरोदात्तघोषः गम्भीरः सानुनाद उदात्त उद्भटो घोषः शब्दो यस्य। मेघमृदङ्गसमध्वनिरित्यर्थः। हि यस्मादर्थे। प्रायो बाहुल्येन शरीराकारानुवर्तिनः। शरीरस्याकारः शरीराकारस्तमनुवर्तन्ते शरीराकारानुवर्तिनः। के ते गुणा दोषाश्च भवन्ति। शरीरस्य सादृश्यं गुणा दोषाश्चानुवर्तन्ते। निर्दोषं शरीरं गुणा अनुवर्तन्ते। सदोषं शरीरं दोषाश्चानुवर्तन्त इति। तथा चोक्तम् :–

सत्यवाक् = यथार्थ वक्ता। अनसूयक = पर-निन्दा-रहित। गुणों में दोष को ढूँढ़ना ही असूया है, असूया अर्थात् कुत्सा (निन्दा), अतः निन्दारहित ही अनसूयक है। सम = राग-द्वेष-रहित अर्थात् शत्रु और मित्र में समान भाव रखनेवाला। सुसंहित = अति संलग्न, सुसंश्लिष्ट उपचित = मांसल, गात्र =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हाथ, उरु, जानु, गुल्फ (टखना) चरण, इनकी सन्धियाँ सुघटित होने को सुसंहतोपचितगात्रसन्धि कहते हैं। अविकल = अवक्र, परिपूर्णअंगोंवाला। सुन्दर कर-चरण-नख-नयन चिबुक-दशन-श्रवण-ललाट-भ्रू आदि अङ्गोंवाला। कर = हाथ, चरण = पैर, नख = नाखून, नयन = आँख, चिबुक = अधरोष्ठ अधोभाग, दशन = दाँत, श्रवण = कान, ललाट, भ्रू = भौंह, उत्तमांग = शिर– ये सभी जिसके चारु, दर्शनीय हों अर्थात् श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हों। वपुष्मान् अर्थात् वपु-शरीर यह जिसके शोभन हों, रूपवान् हों। गम्भीरोदात्त घोष, गम्भीर = मेघ, मृदङ्ग के समान ध्वनि, उदात्त = उच्च स्वर, इससे युक्त अर्थात् मेघ-मृदंग के तुल्य ध्वनिवाला। हि-निश्चयार्थक। प्रायः = अधिकतर, शरीर के आकारानुसार, अर्थात् शरीर की आकृति जैसी होती है, उसके ही अनुरूप। वे कौन हैं ? गुण और दोष होते हैं ? शरीर के तुल्य ही गुण और दोष होते हैं। दोष-रहित शरीर में गुण आश्रय लेते हैं और दोष-युक्त शरीर में दोष आश्रय लेते हैं। जैसा कि कहा गया है :–

"यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति" इति।

अथ गुणानाह :–

"जहाँ पर सुन्दर आकृति होती है, वहीं पर गुण होते हैं।"

अब गुणों का लक्षण बतलाते हैं :–

तत्र गुणाः– शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभावः पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवित्तेति।

पवित्र, चतुर, निर्भीक वक्ता, उत्तमवाणीवाला, प्रतिभाशाली, देश-काल के व्यवहार का ज्ञाता, निर्मल चित्तवाला, सभी में निर्भीक, सहपाठियों में अपराजेय, कुशल, व्यसनरहित शान्ति-पुष्टि-अभिचार-स्नान-विद्या का ज्ञाता, देवपूजन-व्रत-उपवास में संलग्न, स्वतन्त्र रूप से आश्चर्यपूर्वक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला, दैविक घटनाओं के अतिरिक्त विषयों में प्रश्न करने पर ही उत्तर देने वाला तथा ग्रह-गणित-संहिता-शास्त्र, जातक-शास्त्र के ग्रन्थों और अर्थों का ज्ञान रखने वाला (गुणवान् कहा जाता है)।

तत्र गुणा इति। तत्र तस्मिन् सांवत्सरे शरीरे वा गुणाः। के ते ? तद्यथा शुचिः शास्त्रोक्तशौचानुष्ठाता परस्वदेवधनाद्यलुब्धश्च। दक्षश्चतुरः शीघ्रकारी। प्रगल्भः सभायां वक्तुं शक्तः। वाग्मी प्रशस्ता शास्त्रार्थानुसारिणी वाग्यस्य। प्रतिभानवान् प्रतिभा एव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिभानम्, तद्विद्यते यस्यासौ प्रतिभानवान्। पृष्टः सन् पौर्वापर्येण शास्त्रं स्मृत्वोत्तरं ददातीत्यर्थः। देशकालवित् देशवित्सर्वदेशेषु व्यवहारज्ञः। मध्यदेशादिष्वार्यदेशेषु यच्चेष्टितं तज्जानाति। कालस्वरूपज्ञः पूर्वाह्णमध्याह्नाऽपराह्णादिषु कालेषु धर्मवर्षशीतसाधारणकालेषु चेदं क्रियते इदं न क्रियत इति जानाति। अथवा देशमानूपजाङ्गलमरुभूमीत्यादिकं हस्त्यश्वखरोष्ट्रनावादिषु मनुष्यगम्यं जानाति। कालं यात्रादाविदं योग्यमिदमयोग्यमिति जानाति। अथवा देशविद्यथा— कश्मीरादिषु हिमप्रधानेषु बहुव्रीहिसम्भवं दृष्ट्वोत्पातं न वक्ति मध्यदेशादौ वक्ति। कालविद्यथा :—

सांवत्सर में अर्थात् उसके शरीर में कौन-कौन से गुण होने चाहिए, इसको बतलाते हैं। शुचि = शास्त्रोक्त शौचकर्म का कर्ता और परकीय धन तथा देव-सम्पत्ति आदि में लोभ-रहित। दक्ष = चतुर, शीघ्र कार्य करनेवाला। प्रगल्भ = सभा में समर्थ वक्ता। वाग्मी = प्रशस्त, शास्त्रानुकूल जिसकी वाणी हो। प्रतिभानवान् = प्रतिभा ही प्रतिभान है, वह जिसमें हो वह प्रतिभानवान् है। प्रश्न किये जाने पर पूर्वापर विचारयुक्त, शास्त्रों के अनुकूल उत्तर देता हो। देशकालवित्, देशवित् = सभी देशों के व्यवहार का ज्ञाता। मध्यादि देशों (प्रदेश) में और आर्य देशों में जो व्यवहार होता है, उसका ज्ञाता हो। काल के स्वरूप का ज्ञाता अर्थात् प्रातः, दोपहर और सायं आदि समयों में तथा ग्रीष्म, वर्षा, शीत और सामान्य कालों में क्या करना एवं क्या नहीं करना चाहिए ? यह जानता हो। अथवा देश का तात्पर्य अनूप (जलीय), जंगली-मरुस्थल आदि भूमि को और हाथी, घोड़ा, गर्दभ, ऊँट तथा नौका आदि द्वारा मनुष्य के गमनागमन को जानता हो। काल का तात्पर्य यात्रादि के समय-योग्यायोग्य का ज्ञाता हो। देशवित का अर्थ कश्मीर आदि हिमप्रधान प्रदेशों में धान की उत्पत्ति देखकर उत्पात नहीं कहता हो, मध्य प्रदेशों में कहता हो। कालज्ञ के विषय में कहा गया है :—

चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः॥ इति।

स्त्रियों में विचित्र प्रकार की गर्भोत्पत्ति तथा गाय, बकरी, घोड़ा, मृगादि पशुओं और पत्र-अंकुर-लताओं में विकार होना शिशिर ऋतु में शुभ होते हैं।

सात्त्विको निर्मलचित्तः। भयहर्षशोकादिभिरनभिभवनीयः। न पर्षद्भीरुः। परिषदि सभायामभीरुस्त्यक्तभयः। सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः। सह सार्द्धमध्ययनं पठनं कृतं यैस्ते सहाध्यायिनस्तैः सहाध्यायिभिः समानतन्त्रैरनभिभवनीयो ज्ञेयः। कुशलः शिक्षित इङ्गितज्ञः। अव्यसनी गीतवाद्यनृत्यस्त्रीद्यूतनिद्रादिषु व्यसनेष्वसक्तः। शान्तिकपौष्टिकाभि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारस्नानविद्याभिज्ञः। उत्पातप्रतीकारार्थं वेदोक्तमन्त्रपाठविनियोगानुष्ठाता शान्तिकविद्याभिज्ञः। आयुर्धनादिष्वधिकरणं पौष्टिकविद्या तदभिज्ञः। कृत्यावेतालोत्थापनमारणोच्चाटनविद्वेषण-वशीकरणस्तम्भनचालनादिकमभिचारविद्या तदभिज्ञः। स्नानविद्यासु नित्यनैमित्तिककाम्य-क्रियाङ्गास्वभिज्ञः। पुष्यस्नानादिषु वेत्ता। आभिमुख्येन जानातीत्यभिज्ञः। विबुधार्चनव्रतोपवा-सनिरतः। विबुधा देवास्तेषामर्चनं पूजा आवाहनस्नानमाल्यानुलेपनधूपोपहारवाद्य-गेयनृत्यस्तोत्रपाठादिका तस्यामभिज्ञः। व्रतानि कृच्छ्रपराकचान्द्रायणप्रभृतीनि। उपवासः अभोजनम्। यथा– एकादश्यां न भुञ्जीतेत्यादि, एतेषु निरतः सक्तः। स्वतन्त्राश्चर्यो-त्पादितप्रभावः। स्वतन्त्रं ग्रहगणितं तत्रार्कचन्द्रग्रहणग्रहसमागमयुद्धानामनागताभिधायकत्वा-द्यन्त्राणां कूर्ममयूरचापशङ्खघण्टापुरुषादीनां काष्ठादिविरचितानां स्वयमेव कालव्यञ्ज-कत्वाद्यदाश्चर्यं कुतूहलं तेनोत्पादितो जनित आत्मनः प्रभाव उत्कर्षो येन। पृष्टाभिधायी परिपृष्टस्यार्थस्याभिधायको वक्ता। नापृष्टस्य किन्त्वन्यत्र देवात्ययात्। दिव्यान्तरिक्षभौमेषूत्पा-तेषु यद्भाव्यशुभं स दैवात्ययस्तन्निवारणाय शान्त्यादिकमपृष्टेनाप्यभिधातव्यं वक्तव्यम्। ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवित्ता। ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्तिकायां संहितायां फलग्रन्थे होरायां जातकादौ ग्रन्थार्थवित्ता ग्रन्थज्ञोऽर्थज्ञश्च। सूत्रार्थपाठकस्तदर्थविदित्यर्थः॥

सात्त्विक = निर्मल चित्तका, भय-हर्ष-शोकादि से अप्रभावित रहने वाला। न पर्षद्भीरुः=परिषद्, सभा में, निर्भय, भय छोड़कर खड़ा होनेवाला। सहाध्यायि-भिरनभिभवनीयः = एक साथ अध्ययन किया जाय जिनके साथ, वे सहाध्यायी हैं– उन सहपाठियों द्वारा समान शास्त्र में अपराजेय को जानना चाहिए। कुशल = शिक्षित, संकेत (लक्षण) का ज्ञाता। अव्यसनी अर्थात् गीत-वाद्य-नृत्य-स्त्री-जुआ-दिवानिद्रा इत्यादि व्यसनों में आसक्ति-रहित हो। शान्तिक पौष्टिक स्नान-अभिचार विद्या का ज्ञाता। उत्पातों की शान्ति के निमित्त वैदिक मन्त्रों का पाठ, विनियोगादि अनुष्ठान-कर्मों का ज्ञाता "शान्तिकविद्याभिज्ञ" कहा जाता है। कृत्या (दैविक-विच्छेद), वेताल-उठाना, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि कर्म को अभिचार कहा जाता है– इस विद्या का ज्ञाता हो। स्नानविद्याओं में अर्थात् नित्य-नैमित्तिक-काम्य क्रियाओं के सभी अङ्गों का ज्ञाता, प्रधानतया पुष्य-स्नानादि-कर्म का ज्ञाता हो। देवपूजन, व्रत-उपवास आदि को स्वयं करनेवाला। विबुध अर्थात् देवता, का अर्चन पूजन अर्थात् आवाहन-स्नान-माला-चन्दन-धूप-उपहार (दक्षिणा), वाद्य-गेय-नृत्य-स्तोत्रपाठ आदि कर्मों का ज्ञाता हो। कृच्छ्र (एक दिन का व्रत), पराक (पापनाशक), चान्द्रायण आदि को व्रत कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोजन न करने को उपवास कहते हैं, जैसा कि– "एकादशी में भोजन न करें" इस प्रकार के व्रतों को करनेवाला हो। स्वतन्त्र क्रियाओं से आश्चर्योत्पादक प्रभावयुक्त हो। स्वतन्त्र अर्थात् ग्रह-गणित, जिसमें रविचन्द्र का ग्रहण, ग्रहयोग, ग्रहयुद्धादि जो अभी हुए न हों– उनका ज्ञान करानेवाले यन्त्रों का, कूर्म-मयूर-चाप-शंख-घंटा पुरुषादि काष्ठविरचित यन्त्रादि का निर्माता, स्वयं काल की घोषणा कर आश्चर्य, कौतुहल उत्पन्न कराने के कारण अपने प्रभाव का उत्कर्ष करनेवाला हो। पृष्टाभिधायी का अर्थ है– पूछे हुए प्रश्न के उत्तर को कहनेवाला। दैविक आपदाओं से भिन्न, बिना पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न देने वाला। दिव्य-अन्तरिक्ष-भौमादि उत्पात् में होनेवाले अशुभ फल को दैवात्यय कहते हैं, इनके निवारणार्थ शान्तिकर उपायों का बिना पूछे ही उत्तर देना चाहिए। ग्रह-गणित, संहिता द्वारा शास्त्रों के प्रतिपाद्य अर्थों का ज्ञाता हो। ग्रहगणित में, पञ्च-सिद्धान्तिका में, फलित-ग्रन्थं में, होरा-जातकादि ग्रन्थों का तथा उनके अर्थों का ज्ञाता हो अर्थात् सूत्रों का सार्थक पाठ और उनके वास्तविक अर्थ का ज्ञाता हो।

अथान्यल्लक्षणमाह :–

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता।

अब दूसरा लक्षण कहते हैं :–

सांवत्सर ग्रह-गणित में पौलिश-रोमक-वाशिष्ठ-सौर-पैतामह इन पाँच सिद्धान्तों में, युग-वर्ष-अयन-ऋतु-मास-पक्ष-अहोरात्र-याम-मुहूर्त-नाडी-प्राण-त्रुटि तथा त्रुटि आदि के अंगोंसहित काल का और राशि भगणादि क्षेत्र का ज्ञाता हो।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्ता भवन्ति। के ते ? पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहाः, पुलिशसिद्धान्तः, रोमकसिद्धान्तः, वासिष्ठसिद्धान्तः, सूर्यसिद्धान्तः, ब्रह्मसिद्धान्त इति। एतेषु सिद्धान्तेषु पञ्चसु वेत्ताऽभिज्ञः। युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडी-प्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवस्य कालस्य वेत्ता। युगानां कृतत्रेताद्वापरकलीनां प्रमाणज्ञः। यथैतावद्भिः सौरैर्वर्षैः कृतयुगं भवति, एतावद्भिस्त्रेता, एतावद्भिर्द्वापरम्, एतावद्भिः कलिरिति। तद्यथा :– खखखदन्ताब्ध्यः कलियुगपरिमाणं तदेव द्विगुणं द्वापरप्रमाणं त्रिगुणं त्रेताप्रमाणं चतुर्गुणं कृतयुगप्रमाणं भवति। एतैः सर्वैरेकीकृत्य चतुर्युगप्रमाणं भवति। तथा च[1] ब्रह्मसिद्धान्ते :–

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस ग्रह-गणित में पाँच सिद्धान्त होते हैं, वे कौन है ? पौलिशसिद्धान्त, रोमकसिद्धान्त, वाशिष्ठसिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मसिद्धान्त ही पंच सिद्धान्त हैं। इन पाँच सिद्धान्तों में निष्णात हो। युगवर्षायनादि का तात्पर्य है :– सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। इन युगों के प्रमाण का ज्ञाता। जैसा कि इतने सौर वर्षों का कलियुग इत्यादि का प्रमाण कहते हैं। जैसाकि ४३२००० वर्ष कलियुग का मान है, इसका दोगुना द्वापर का प्रमाण, तीनगुना त्रेता का प्रमाण और चारगुना सत्ययुग का प्रमाण होता है। इन सभी प्रमाणों को जोड़कर चतुर्युग का मान होता है। ब्रह्मसिद्धान्त में इस प्रकार कहा गया है :–

खचतुष्टयरदवेदा ४३२०००० रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
सन्ध्यासन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादीनि॥
युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति॥

४३२०००० सौर वर्ष का चतुर्युग होता है। सत्ययुगादि चार युग पृथक्-पृथक् संध्या और संध्यांश के साथ होते हैं। इस चतुर्युग का दशवाँ भाग चतुर्गुणित सत्ययुग, त्रिगुणित, त्रेता, द्विगुणित द्वापर और एकगुणित करने पर कलियुग का मान होता है :–

तथा च पुलिशसिद्धान्ते दिव्येन मानेन पठ्यन्ते :–
अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात् कृतादीनाम्।
अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुगं तदेकत्वम्॥ इति।

पुलिश सिद्धान्त में दिव्यमान के द्वारा इस प्रकार पाठ है :–

४८, इसका चतुर्थांश (१२) घटाते जाने से क्रमशः ३६, २४, १२ इस संख्या को १०० से गुणा कर देने पर क्रमशः सत्ययुगादि का मान दिव्य वर्षों में होता है।

तद्यथा :– ४८००। ३६००। २४००। १२००। एते दिव्येन मानेनातः षष्टिसमधिकशतत्रयेण गुणिता जाताः १७२८००० कृतम्। १२९६००० त्रेता। ८६४००० द्वापरम्। ४३२००० कलिः। एवं युगानां वेत्ता।

यतः ४८००, ३६००, १२०० ये दिव्य मान हैं, अतः इनको ३६० से गुणा करने पर क्रमशः १७,२८००० सत्ययुग, १२९६००० त्रेता, ८६४०००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वापर, ४३२००० कलियुग के सौर मान हुए– सांवत्सर इस प्रकार के युगों का ज्ञाता हो।

यावता कालेनार्को द्वादशराशिकं भचक्रं मेषादिमीनान्तं भुङ्क्ते, तद्वर्षं तेन सौरवर्षप्रमाणेन युगसंख्यानम्। एवं रविराशिभोगो मासः। द्वादशभिर्मासैर्वर्षमिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते :– "नृवत्सरोऽर्काब्दः" इति।

जितने समय में सूर्य मेषादि से मीन तक द्वादश राशि-चक्र, भचक्र का भोग करता है, वह सौर वर्ष है, उस सौर वर्ष के मान से युगों की गणना की जाती है। इस प्रकार रवि के एक राशि के भाग को मास कहते हैं, १२ मास का एक वर्ष होता है। ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है कि "सूर्याब्द ही मानव वर्ष" है।

अयने दक्षिणोत्तरे षड्भिः सूर्यमासैरुत्तरमयनं षड्भिर्दक्षिणमिति। तत्र मकरादि-राशिषट्कस्थेऽर्क उत्तरमयनं कर्क्यादिराशिषट्कस्थे दक्षिणमिति।

दक्षिण और उत्तर दो अयन होते हैं, छः सूर्य मास का उत्तर अयन और छः सूर्य मास का दक्षिण अयन है। यहाँ पर सूर्य मकरादि छः राशि में उत्तर अयन में, तथा कर्कादि छः राशि में दक्षिण अयन में स्थित रहता है।

ऋतवः षड् भवन्ति शिशिरादयः। ते च मासद्वयात्मकाः। तद्यथा– मकरकुम्भस्थेऽर्के शिशिरः। मीनमेषस्थे वसन्तः। वृषमिथुनस्थे ग्रीष्मः। कर्कटसिंहस्थे वर्षाः। कन्यातुलास्थे शरत्। वृश्चिकधन्विस्थिते हेमन्त इति। तथा चाचार्यः–

शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं। वे दो, दो मास की हैं। जैसे– सूर्य के मकर और कुम्भ राशि में रहने पर शिशिर। सूर्य के मीन और मेष राशि में रहने पर वसन्त, सूर्य के वृष और मिथुन राशि में रहने पर ग्रीष्म, सूर्य के कर्क-सिंह राशि में रहने पर वर्षा, सूर्य के कन्या-तुला राशि में रहने पर शरत्, सूर्य के वृश्चिक-धनु में रहने पर हेमन्त ऋतु होती है। जैसा कि आचार्य ने कहा है :–

उदयगयनं [1]मकरादावृतवः शिशिरादयश्च सूर्यवशात्।
द्विभवनकालसमाना दक्षिणमयनं च कर्कटकात्॥ इति।

सूर्य की राशि मकर से उत्तरायण, कर्क से दक्षिणायन और मकरादि दो-दो राशियों में शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

द्वौ द्वौ राशी मकरादृतवः षट् सूर्यगतिवशाद्योज्याः।
शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरदः सहेमन्ताः॥ इति।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ३ अध्यायस्य २५ श्लोकः।

२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी प्रकार ब्रह्मसिद्धान्त में भी कहा गया है :–

मकरादि दो-दो सूर्य-राशियों में क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत् और हेमन्त ये छः ऋतुएँ समझनी चाहिए।

मासश्चैत्रादिकः। स च रविराशिभोगस्त्रिंशद्दिनात्मकः। पक्षो मासार्धं पञ्चदश दिनानि। अहोरात्रं षष्टिर्घटिकाः। यामोऽहोरात्राष्टमभागः। दिनस्य चतुर्थभागो रात्रेश्च। मुहूर्तोऽह्नः पञ्चदशांशः, रात्रेश्च पञ्चदशभागः। नाडी घटिकाऽहोरात्रषष्ट्यंशः। विनाडी विघटिका घटिकाषष्ट्यंशः। प्राणः श्वासनिर्गमप्रवेशौ। त्रुटिश्चक्षुर्निमेषद्वयम्। त्रुट्याद्यवयवस्तदर्धम्। आदिग्रहणात् त्रुटिचतुर्थभागमपि। एवमादिकस्य वेत्ता।

चैत्रादि को मास कहते हैं। यह रवि के एक राशि का भोग काल ३० दिन का है। मास का आधा १५ दिन का एक पक्ष है। ६० घटी (२४ घण्टे) का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र के अष्ट भाग (३ घण्टे) को याम कहते हैं, जो दिन में ४ और रात्रि में ४ होता है। दिन का पन्द्रहवाँ भाग मुहूर्त और रात्रि में भी इसी प्रकार प्रन्द्रहवां भाग मुहूर्त होता है। घटी अथवा नाड़ी अहोरात्र के साठवें भाग (२४ मिनट) का नाम है। घटी के साठवें भाग को विनाड़ी अथवा विघटिका (पल = २४ सेकेण्ड) कहते हैं। श्वास के निर्गम और प्रवेश काल की संज्ञा प्राण है। नेत्र के दो बार पलक झपकने के समय का नाम त्रुटि है। इसके आधे मान को त्रुट्यादि-अवयव कहते हैं। 'आदि' पद से त्रुटि के चतुर्थ भाग को समझना चाहिए। इस प्रकार के कालविषयक ज्ञान को जाननेवाला सांवत्सर हो।

तथा च भगवान् पराशरः :– यावता कालेन विकृतमक्षरमुच्चार्यते स निमेषः। निमेषद्वयं त्रुटिः। त्रुटिद्वयं लवः। लवद्वयं क्षणः। दश क्षणाः काष्ठा। दश काष्ठाः कला। दश कला नाडिका। नाडिकाद्वयं मुहूर्तः। त्रिंशन्मुहूर्ता दिनमिति। एवं कालस्य वेत्ता। तथा क्षेत्रस्य वेत्ता। तत्र कालक्षेत्रयोः साम्यम्। तद्यथा– काले षट् प्राणा विघटिका। विघटिकानां षष्ट्या घटिका। घटिकानां षष्ट्या दिनम्। दिनानां त्रिंशता मासः। मासैर्द्वादशभिर्वर्षं भवति। अथ क्षेत्रे। षष्ट्या तत्पराणां विलिप्ता भवति। विलिप्तानां षष्ट्या लिप्ता। लिप्तानां षष्ट्या भागः। भागानां त्रिंशता राशिः। राशिद्वादशकं भगण इति।

जैसाकि भगवान् पराशर ने कहा है :– जितने समय में एक विकृत अक्षर का उच्चारण हो, उसे निमेष कहते हैं। दो निमेष की एक त्रुटि, दो त्रुटियों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक लव, दो लव का एक क्षण, दश क्षणों की एक काष्ठा, दश काष्ठा की एक कला, दश कला की एक नाड़ी, दो नाड़ी का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक दिन होता है। इस प्रकार के काल का ज्ञाता सांवत्सर हो। काल और क्षेत्र के मानकों में साम्यता है, जैसा कि काल मान में – ६ प्राण = १ विघटिका, ६० विघटिका = १ घटी, ६० घटी = १ दिन (अहोरात्र), ३० दिन = १ मास, १२ मास = १ वर्ष होता है। क्षेत्र के मानकों में ६० तत्पर = १ विलिप्ता, ६० विलिप्ता = १ लिप्ता, ६० लिप्ता = १ भाग (अंश), ३० भाग (अंश) = १ राशि, १२ राशि = १ भगण होता है।

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

प्राणैर्विनाडिका षड्भिर्घटिकैका विनाडिकाषष्ट्या।
घटिकाषष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता मासः॥
मासा द्वादश वर्षं विकलालिप्तांशराशिभगणान्तः।
क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन॥

ब्रह्मसिद्धान्त में इस प्रकार कहा गया है :–

६ प्राण = विनाड़ी, ६० विनाड़ी = १ घटी, ६० घटी = दिन, ३० दिन = मास, १२ मास = वर्ष, इसी प्रकार क्षेत्रों के विभाग-विकला, लिप्ता, अंश, राशि और भगण ये सभी काल के विनाड़िकादि भाग के समान ही होते हैं।

तथा च पौलिशे :–

षट् प्राणास्तु विनाडी तत्षष्ट्या नाडिका दिनं षष्ट्या।
एतासां तत्त्रिंशन्मासस्तैर्द्वादशभिरब्दः॥
षष्ट्या तु तत्पराणां विकला तत्षष्टिरपि कला तासाम्।
षष्ट्यांशस्ते त्रिंशद्राशिस्ते द्वादश भचक्रम्॥

पौलिश-सिद्धान्त में भी कहा गया है :–

६ प्राण = विनाड़ी, ६० विनाड़ी = नाड़ी, ६० नाड़ी = दिन, ३० दिन = मास, १२ मास = वर्ष। ६० तत्पर = विकला, ६० विकला = कला, ६० कला = अंश, ३० अंश = राशि, १२ राशि = भगण होता है।

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा चार्यभटः—

वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत् स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवसः षष्टिश्च विनाडिका नाडी॥
गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः।
एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात्॥

वैसे ही आर्यभट्ट ने भी कहा है :—

वर्ष = १२ मास, मास = ३० दिन, ६० नाड़ी = दिन, ६० विनाड़ी = नाड़ी, ६० गुरु अक्षर (दीर्घ वर्ण) = नाक्षत्र विनाड़ी = ६ प्राण, इस प्रकार ये काल के विभाग हैं, क्षेत्र के विभाग भी भगणादिक्रम से इसी प्रकार होते हैं।

अन्यदप्याह।:—

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।

और भी कहा गया है :—

सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र, इन चार प्रकार के कालमानों को तथा अधिमास और क्षयमास की उत्पत्ति के कारणों के ज्ञाता को सांवत्सर होना चाहिए।

चतुर्णां च मानानामिति। त्रिंशद्भागपरिकल्पनया यावता कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते तत्सौरं दिनम्। तत्त्रिंशता मासः। एवं राशिभोगेन संक्रान्त्यवधिर्यो मास एतत्सौरं मानम्। सर्वेषां ग्रहनक्षत्राणां स्वोदयात् पुनः स्वोदयं यावत्तत्सावनं दिनम्। तत्त्रिंशता मास इति। एवं सावनं मानम्। नाक्षत्रं मानं चन्द्रनक्षत्रभोगः। यावता कालेन नक्षत्रमेकं चन्द्रमा भुङ्क्ते तन्नाक्षत्रं दिनम्। तत्र च दिनानां सप्तविंशत्या मासो भवति। एवं नाक्षत्रं मानम्। अमावास्यान्तात् प्रतिपत्प्रभृत्यर्काच्चन्द्रः प्रतिदिनमग्रगो भूत्वा प्रतिपदाद्यान् पञ्चदश तिथीन् निर्वर्तयति यावत्पौर्णमास्यन्तम्। तथा च कृष्णपक्षप्रतिपत्प्रभृत्यर्कसमीपं क्रमेण गत्वा अमावास्यान्तं निर्वर्तयतीति चान्द्रं मानम्। एवं तिथिरेव चन्द्रदिनम्। त्रिंशत्तिथयो मास इति।

चार मानों के सम्बन्ध में कहते हैं। तीस अंश की परिकल्पना से रवि एक अंश का भोग जितने समय में करता है, वह एक सौर दिन है। तीस सौर-दिन का मास होता है। संक्रान्ति से संक्रान्ति तक एक राशि की भोगावधि को मास कहते हैं, यह सौरमान है। सभी ग्रह-नक्षत्रों का अपने एक उदय से दूसरे उदयपर्यन्त काल उनका अपना-अपना सावन-दिन होता है। तीस सावन दिन का मास होता है, यह सावन मान हुआ। चन्द्र नक्षत्र का भोग, नाक्षत्रमान है। चन्द्रमा जितने समय में एक नक्षत्र का भोग करता है, वह नाक्षत्र दिन है। इसके २७ दिनों का एक मास होता है, यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाक्षत्रमान है। अमावस्या के अन्त से प्रतिदिन चन्द्रमा सूर्य से आगे होता हुआ प्रतिपदादि पन्द्रह तिथियों को पूर्णिमा तक पूर्ण करता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर क्रमशः सूर्य के निकट जाता हुआ अमावस्या के अन्त में पहुँचता है, इस प्रकार यह चान्द्र मान है। तिथि ही चन्द्र दिन है, तथा ३० तिथियों का एक मास होता है।

तथा च पुलिशसिद्धान्ते :–

सावनमकृतं चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य।
सौरं भूदिनराशिं शशिभगणदिनानि नाक्षत्रम्॥

पुलिशसिद्धान्त में भी वैसे ही कहा गया है :–

सावन-मान स्वयं सिद्ध है, रवि चन्द्र के युति-काल को (३० से गुणा कर) दिन बना लेने पर चान्द्रदिन होता है। सावनदिन पुलिशाचार्य के मत से सौर मान है तथा चन्द्र भगणादि का मान नाक्षत्र होता है।

सावनमकृतं स्वयमेव सिद्धं यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्त एव सौरमानेनाब्दाः। यदस्माकं सौरमानं तत्पुलिशाचार्यसावनम्। तत्र चतुर्युगाब्दाः ४३२००००। एत एव द्वादशहताः सावनमासाः ५१८४००००। एतावत्यश्चतुर्युगेणार्कसंक्रान्तयः। एतास्त्रिंशद्गुणाः सावनमानदिनानि १५५५२००००० । एतावतश्चतुर्युगेणार्को भागान् भुङ्क्ते, तत्र यावता कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते स सावनमानदिवसः [1]सिद्धः–

सावन "अकृत' अर्थात् स्वयंसिद्ध होता है क्योंकि चतुर्युग में जितने रवि भगण होते हैं, वे ही सौर मान से वर्ष हैं। हम लोगों का जो सौर मान है, उसको आचार्यपुलिश ने सावन दिन कहा है। चतुर्युग में ४३२०००० वर्ष होते हैं, इसको १२ से गुणित करने पर ५१८४०००० सावन मास हुए। चतुर्युग में इतनी ही रवि संक्रान्तियाँ होती हैं, जिनको ३० से गुणा करने पर सावन दिन १५५५२००००० हुए। चतुर्युग में सूर्य इतने ही अंशों को भोगता है। इस प्रकार जितने समय में सूर्य एक अंश का भोग करता है, वह सावनमान दिवस सिद्ध हुआ।

चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्येति। तद्यथा :–

परिवर्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते।

---

१. आवहः, प्रवहः, उद्वहः, संवहः, सुवहः, परिवहः, परावह इति सप्तपवना ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धाः। अतः प्राचीनैः पवनशब्देन सप्तसंख्या गृह्यते, परन्तु सम्प्रति भास्कराचार्यादिभिः शरीरस्थान् पञ्चप्राणानवगम्य पवनशब्देन पञ्चसंख्या गृह्यते। यथा सिद्धान्तशिरोमणिगणिताध्याये भग्रहयुत्यधिकारे द्वितीयश्लोके "पवनोत्कृतयः" इत्यत्र पवनशब्देन पञ्चसंख्या विवक्षितेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति रविभगणाः ४३२००००।

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियैश्चन्द्रः।

इति चन्द्रभगणाः ५७७५३३३६। अर्कचन्द्रभगणानामन्तरम् ५३४३३३३६।

एतान् सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य त्रिंशता सङ्गुण्य दिनरूपा भवन्ति। ते च दिनीकृत्य जाताः १६०३००००८० चतुर्युगेणैतावन्तश्चान्द्रेण मानेन दिवसा भवन्ति। यदेव चान्द्रं मानं सैव तिथिः।

सूर्येन्दु-समागम काल को दिनात्मक बनाकर चान्द्रमान के सम्बन्ध में विचार करते हैं। जैसा कि – ४३२×१००००=४३२००००, वर्ष एक युग में रविभोग करता है। इस प्रकार युग में इतने ही रवि भगण होते हैं। युग में चन्द्र – भगण – ५७७५३३३६, होते हैं। रवि-चन्द्र भगणों का अन्तर = ५३४३३३३६ हुआ। इस रवि-चन्द्र-समागम-मान को ३० से गुणा करने पर दिनात्मक होगा। अतः चतुर्युग में चान्द्रदिन का मान = १६०३००००८० होता है, जो चन्द्रमा का दिन है, वही तिथि है।

सौरं भूदिनराशिमिति। भूदिनराशिश्चतुर्युगभगणाः। तस्यानयनमहर्गणविधिनैव। तच्च प्रदर्श्यते। सावनमासानामेतेषां ५१८४०००० चतुर्युगाधिमासका उच्यन्ते :–

अधिमासकाः षडग्निनिकदहनच्छिद्रशररूपाः।

न्यासः १५९३३३६ एतान् संयोज्य जाताः ५३४३३३३६। एत एव रविचन्द्रसमागमा उत्पन्नाः। यत उक्तम् :–

भगणान्तरशेषं यत्समागमास्ते द्वयोर्ग्रहयोः॥ इति॥

सौर, भू दिन-राशि के विषय में कहते हैं। चतुर्युग के भगण भू-दिन हैं। इसका साधन अहर्गण की विधि से किया जाता है, जिसको प्रदर्शित किया जा रहा है। चतुर्युग के सावनमास – ५१८४०००० में अधिमास १५९३३३६ होते हैं। इन दोनों को जोड़कर ५३४३३३३६ हुए। ये ही रवि चन्द्र के युति – काल होते हैं। क्योंकि कहा गया है :–

अत एव त्रिंशता गुणिता जाता १६०३००००८०। एते चन्द्रमानदिवसा उत्पन्नाः। एतेषां चतुर्युगोनरात्राः के ते उच्यन्ते :–

इनको ३० से गुणा करने पर १६०३००००८० इतने चान्द्र दिन प्राप्त हुए। इनमें चतुर्युग के अन्तर्गत कितने क्षय दिन होते हैं। इसे बतला रहे हैं :–

तिथिलोपाः खवसुद्विकदस्राष्टकशून्यशरपक्षाः २५०८२२८०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतान् संशोध्य जातम् १५७७९१७८००। एष भूदिनराशिश्चतुर्युगाहर्गणः। तावन्तश्चतुर्युगेण दिवसाः सौरेण मानेन भवन्ति। अस्माकं सावनं तत्पुलिशाचार्यस्य सौरमानम्। अर्द्धरात्रादर्द्धरात्रं यावत्सौरेण मानेन दिनमुदयादुदयं वा।

चतुर्युग में २५०८२२८० क्षय दिन होते हैं। इनको घटाने से १५७७९१७८०० सावनदिन-संख्या, अर्थात् चतुर्युग के अहर्गण होते हैं। चतुर्युग के इतने दिन सौर-मान से होते हैं। हम लोगों का सावन मान ही पुलिश का सौरमान है। मध्यरात्रि से मध्यरात्रि पर्यन्त अथवा सूर्योदय से सूर्योदय पर्यन्त मान को सौर दिन कहा गया है।

शशिभगणदिनानि नाक्षत्रमिति। तत्र शशिभगणाः ५७७५३३३६। एते त्रिंशद्गुणिताः सन्तो दिनीकृताः १७३२६०००८०। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसाः। अत्र नक्षत्रभोगदिनं चन्द्रभगणत्रिंशद्भागो दिनम्। एवं यावता कालेन चन्द्रो द्वादश भागान् भुङ्क्ते तावता कालेन नाक्षत्रं दिनम्। भगवद्वसिष्ठादिभिश्चन्द्रनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रदिनमभिहितम्, किन्तु तैर्नक्षत्रमानैः सप्तविंशत्या दिनैर्मासोऽभिहितः। एवं पुलिशाचार्यस्य नाक्षत्रं मानं वसिष्ठादिभिः सह भिन्नम्। अस्य सर्वमानेषु त्रिंशद्दिनात्मको मास इति प्रतिज्ञा। पराशरादीनां यत्सौरं मानं तस्यानेन सावनमिति संज्ञा कृता सावनस्य सौर इति। अथैतानेव पठति :—

चन्द्रभगण का दिनात्मक मान चान्द्र-दिन होता है, इसको प्रतिपादित करते हैं :—

चन्द्रभगण ५७७५३३३६×३०=१७३२६०००८० = नाक्षत्र (चान्द्र) दिन, एक चतुर्युग में होते हैं। इस प्रकार जितने समय में चन्द्र, बारह अंशों का भोग करता है — वह नाक्षत्र-दिन है। भगवान् वशिष्ठादि के द्वारा चन्द्रमा के एक नक्षत्र के भोग-काल को नाक्षत्र-दिन कहा गया है, परन्तु इस नाक्षत्रदिन के अनुसार २७ दिनों का ही एक मास कहा गया है। इस प्रकार आचार्यपुलिश का नाक्षत्रमान वशिष्ठादि के कथन से भिन्न है। सभी मास ३० दिनों के ही होते हैं, ऐसी इनकी मान्यता है। पराशर इत्यादि का जो सौर-मान है, उसको इन्होंने सावन तथा सावन को सौर नाम से कहा है। अब इनका पाठ प्रस्तुत करते हैं :—

दस्रार्थबाणतिथयो लक्षहताः १५५५२००००० सावनेन ते दिवसाः।
वियदष्ट[1] खचतुष्कत्रिखषोडश १६०३०००००८० चन्द्रमानेन॥
वसुसप्तरूपनवमुनिनगतिथयः शतगुणाश्च १५७७९१७८०० सौरेण।
आर्क्षेण खाष्टखत्रयषड्दस्रगुणा[2]निलशशाङ्का १७३२६०००८०॥

---

१. वियदष्टाभचतुष्केति पाठे न छन्दोभङ्गदोषः।

२. अनिलः पवनः, तेन सप्तसंख्या विवक्षिता। ४७ पृष्ठस्य टिप्पणी विलोक्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ चन्द्रभगणाः सप्तविंशत्या गुणिता वसिष्ठादिमतेन नाक्षत्रं मानम् :—

पक्षसप्तखशून्याब्धिगुणगोऽर्थशरेन्दवः १५५९३४००७२।

चतुर्युगार्क्षाण्येतानि कथितानि पुरातनैः॥ इति।

१५५५२×१००००० = १५५५२००००० ये सावन दिन।

१६०३००००८० = चान्द्र दिन, १५७७९१७८०० = सौर दिन।

१७३२६०००८० = नाक्षत्र दिन, ये सभी एक चतुर्युग में होते हैं। वशिष्ठादि के अनुसार चन्द्रभगण सत्ताइस से गुणा कर नाक्षत्र दिन होता है :—

प्राचीन मुनियों द्वारा एक चतुर्युग में १५५९३४००७२, नाक्षत्र (आर्क्ष) दिन कहे गये हैं।

तथा च भट्टबलभद्रः—

रव्यंशभोगोऽहोरात्रः सौरश्चान्द्रमसस्तिथिः।

चन्द्रनक्षत्रभोगश्च नाक्षत्रः परिकीर्त्तितः॥

स्वसावनो ग्रहर्क्षाणामुदयादुदयावधिः।

नक्षत्रमाने मासः स्यात् सप्तविंशतिवासरैः॥

शेषमानेषु निर्दिष्टो मासस्त्रिंशद्दिनात्मकः।

इष्टाः सर्वेषु मानेषु समा द्वादशमासिकाः॥ इति।

जैसा कि भट्टबलभद्र ने कहा है :—

रवि के एकांश-भोग को सौर-दिन, तिथि-भोग काल को चान्द्र-दिन, चन्द्रमा के एक नक्षत्र-भोग अवधि को नाक्षत्र-दिन कहा गया है। ग्रह, नक्षत्रों के अपने एक उदय से दूसरे उदय तक के (दैनिक) कालमान को उनका सावन-दिन कहते हैं। सत्ताइस दिनों का नाक्षत्रमास होता है, शेष सब का तीस दिनों का मास है। सभी को वर्ष-मान बारह मासों का ही अभीष्ट है।

अन्यच्च नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यतो नक्षत्रपरिवर्त्ता नियता एव, एषामगतित्वात्। नक्षत्रपरिवर्तेभ्यो ग्रहभगणान् संशोध्य प्रत्येकस्य ग्रहस्य सावनं मानं भवति। यतो नक्षत्रग्रहौ यदैकत्र स्थितौ भवतस्तदा नक्षत्रमगतित्वात्तत्रैव तिष्ठति। ग्रहः स्वस्वगतिवशेन प्रतिदिनं नक्षत्रादग्रगो भूत्वोदयास्तमयौ करोति। भूम्यासन्नो दृष्टिपथं यातीति यावत्। तेन नाक्षत्रं मानं सावनसाधकम्। तथा च पुलिशसिद्धान्ते पठ्यन्ते नक्षत्रपरिवर्त्ताः—

अन्य मुख्य बात यह है कि नाक्षत्र-मान तो सावनमान का मूलभूत कारक है, क्यों कि नक्षत्रों में गति न होने के कारण उनका भ्रमण-काल निश्चित होता है। नक्षत्र-भ्रमणकाल में ग्रह भगणों का संशोधन कर के ही प्रत्येक ग्रह का सावन-दिन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान प्राप्त होता है। क्योंकि नक्षत्र और ग्रह जब एक साथ (एक बिन्दु पर) होते हैं, तब नक्षत्र-गति न होने के कारण स्थिर होकर उसी स्थान पर रहता है, जबकि ग्रह अपनी गति के कारण प्रतिदिन नक्षत्र से आगे चलता हुआ उदय एवं अस्त को प्राप्त होता है, तथा भूमि के सन्निकट होने से दृष्टिगत होता है। इस प्रकार नाक्षत्रमान सावनमान का साधक है। पुलिश-सिद्धान्त में नक्षत्र-परिभ्रमण इस प्रकार पठित है :–

खखाष्टमुनिरामाश्विनेत्राष्टशररात्रिपाः १५८२२३७८००।
भानां चतुर्युगेणैते परिवर्त्ताः प्रकीर्तिताः॥

एभ्यः सूर्यभगणान् संशोध्य जाताः सावनदिवसा इति १५७७९१७८००। तथा च ब्रह्म[1]सिद्धान्ते।

रविभगणोना भानां सावनदिवसाः कुदिवसा वा।

"चतुर्युग में नक्षत्रों का परिभ्रमण १५८२२३७८०० होता है।" इनमें से रवि भगण घटाने पर सावन दिन १५७७९१७८०० होते हैं। जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :– भ्रमण से रवि भगण घटाने पर सावन दिन या कुदिन होते हैं।

तथा च :–

नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥ इति॥

और भी कहा गया है :–

यतः नाक्षत्र-सावन दिनों से ही सूर्यादि ग्रहों के अपने सावनदिन होते हैं, इस लिए नाक्षत्र (आर्क्ष) मान अल्पज्ञों के लिए दुर्बोध है।

अधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः। अधिमासकसम्भवः सौरमासचान्द्रमासयोरन्तरात्। यथाऽहर्गणे क्रियमाणे पूर्वं सौरो वर्षगणो भवति। तस्मिन् मासीकृते वर्त्तमानवर्षगतमाससंयुक्ते त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य चान्द्रो मासगणो भवति। तेन सौरमासचान्द्रमासानामन्तरमधिमासकाः। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते :– "शशिमासाः सूर्यमासोना अधिमासाः" इति।

सांवत्सर को अधिमास और क्षयमास की उत्पत्ति का ज्ञाता होना चाहिए, इस सम्बन्ध में कहा जा रहा है :–

सौरमास और चान्द्रमास के अन्तर से ही अधिमास उत्पन्न होता है। जैसा कि अहर्गण के साधन में प्रथम सौरवर्ष आते हैं। इस सौरवर्ष को मास बनाकर उसमें वर्तमान वर्ष के गतमास जोड़कर पुनः इसमें त्रैराशिक द्वारा आनीत गताधिमास

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को जोड़ देने पर चान्द्रमास-समूह प्राप्त होता है। इससे चान्द्रमास और सौरमास का अन्तर, अधिमास का होना सिद्ध होता है। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है :– "चान्द्रमास में से सौरमास घटाने पर अधिमास होता है।"

अथावमसम्भवः प्रदर्श्यते :– शशिमानसावनमानयोरन्तरादवमोत्पत्तिः। चान्द्रं मानं यावत्सावनमानेन मीयते तावत्प्रतिवर्षं षड्दिनान्यधिकतराणि न पूर्यन्ते तान्येवोनरात्रवाच्यानि तिथीनां न्यूनताऽवमानि तत्र तिथ्यानयने कर्म। अर्कोनस्य चन्द्रस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य खयमस्वरै- ७२० र्भागे हृते भुक्ततिथयो लभ्यन्ते। शिष्टस्य षष्टिगुणस्य चन्द्रार्कस्फुटभुक्त्यन्तरं भागहारः। तच्च कदाचिन्न्यूनं कदाचिदधिकं भवति। तेन मध्यमभुक्त्योरन्तरेणोत्पत्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा :– अर्कमध्यमभुक्तिः ५९। चन्द्रमध्यमभुक्तिः ७९०। अनयोरन्तरं सप्तशतमेकत्रिंशदधिकम् ७३१। अत्र खयमस्वरान् ७२० विशोध्यैकादश ११ अवशिष्यन्ते, तान्यवमशब्दवाच्यानि। तानि चानुदिनं तिथिप्रमाणादधिकमग्रतोर्काच्चन्द्रो भूत्वा तिथिलोपं करोति तदेवावमरात्रसंज्ञम्। एवं शशिदिवसानां सावनदिवसानां चान्तरमवमानि। तथा च ब्राह्मे :–"शशिसावनदिवसान्तरमव- मानि" इति। एवमत्र ज्ञानं यथा :– सौरचान्द्रमानयोरन्तरमधिमासकः शशिसावनयोरन्तरमवमानि।

अब अवम (क्षयमास) की उत्पत्ति बतलाते हैं :– चान्द्रमान तथा सावनमान के अन्तर से क्षय-मान की उत्पत्ति होती है। चान्द्रमान सावनमान से जितना अल्प होता है, उससे प्रतिवर्ष छः दिनों की अधिकतर पूर्ति नहीं होती है – उनको ही ऊन-रात्रि कहा जाता है। तिथियों की न्यूनता ही अवम है, यह कर्म तिथि-साधन में किया जाता है। रविचन्द्रान्तरांश को कलात्मक बनाकर उसमें ७२० का भाग देने पर गत-तिथि प्राप्त होती है। शेष को ६० से गुणाकर रविचन्द्र के गत्यन्तर (चन्द्र-गति-रवि-गति) से भाग देते हैं। यह कभी कम और कभी अधिक होता है, अतः इनके मध्यम गत्यन्तर से उपपत्ति प्रदर्शित करते हैं। यथा– रवि की मध्यम गति = ५९। ० तथा चन्द्रमध्यमगति = ७९०। ० इन दोनों का अन्तर हुआ ७३१।०, इसमें से ७२० घटाने पर ११ बचता है, इसको ही "अवम" कहते हैं। यह प्रतिदिन तिथि के मान से अधिक होता हुआ सूर्य से आगे चन्द्र के होने से तिथि-क्षय करता है, यही "अवमरात्र" कहा जाता है। इस प्रकार चन्द्र-सावनदिन और रवि-सावनदिनों का यह अन्तर होता है, जैसा कि ब्राह्म-सिद्धान्त में :– "चन्द्रसावन दिवसान्तर अवम है" ऐसा कहा गया। इस प्रकार से रवि-चन्द्र भगणान्तर अधिमास तथा चान्द्र और सावन दिनों के अन्तर क्षय दिन होते हैं, इसका ज्ञान किया जाता है।

अत्र पुलिशाचार्यः :–

चान्द्रैः सावनवियुतैः प्रचयस्तैरपचयोऽर्कदिनहीनैः।

यहाँ पर पुलिशाचार्य ने इस प्रकार कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चान्द्रमान मे से सावन- मान घटाने पर प्रचय (अधिमास) तथा सौर-मान घटाने पर अपचय (क्षयमास) होता है ।

चतुर्युगचन्द्रदिवसानां सावनदिवसान् संशोध्य चतुर्युगाधिमासकदिवसा भवन्ति। तेषां त्रिंशता भागमपहृत्य चतुर्युगाधिमासकाः। तैरेव चन्द्रदिवसैरर्कसावनदिनहीनैर्यदवशिष्यते तावन्ति चतुर्युगेणापचयदिनानि भवन्ति। ऊनरात्रा इत्यर्थः। सावनमासस्य चन्द्रमानेन सहान्तरे कृते यदतिरिच्यते तदधिमासकाख्यः। चन्द्रमानात्सौरं यदूनं तदूनरात्राः। तद्यथा :— चतुर्युगे चन्द्रदिवसानामेतेषां १६०३०००००८० सावनमानाहानीमानि १५५५२००००० संशोध्य जातं ४७८०००००८० सावनमानादेतावन्ति चतुर्युगे चन्द्रदिनान्यतिरिच्यन्ते। एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तं १५९३३३३६ एतावन्तश्चतुर्युगेणाधिमासकाः। अथवा सावनदिनानां चन्द्रदिनानां च त्रिंशता भागमऽपहृत्य[1] मासाः कार्यास्तेषामन्तरेऽधिकमासकाः।

चतुर्युगीय चान्द्रदिवस से सावन दिनों को घटाकर चतुर्युगाधिमास होते हैं। इसमें ३० से भाग देने पर चतुर्युगाधिमास बनते हैं। इन्हीं चान्द्र दिनों से रवि-सावनदिन घटाने पर जो शेष बचता है, वही चतुर्युगीय अपचय दिन अर्थात् ऊनरात्र होता है। सावन दिन का चन्द्रमान से अन्तर करने पर जो शेष होता है, वह अधिमास संज्ञक है। चन्द्रमान से सौर मान जितना न्यून रहता है, वही ऊनरात्र है। जैसा कि चतुर्युगीय चन्द्रदिन = १६०३०००००८०, इनमें से सावन दिन – १५५५२००००० घटाने पर, ४७८०००००८० हुए, चतुर्युग में इतने चान्द्रदिन सावन दिनों से अधिक होते हैं। इनमें ३० से भाग देने पर लब्धि = १५९३३३३६, चतुर्युग में अधिमास हुए। अथवा सावनदिन और चान्द्रदिनों में ३० से भाग देकर मासात्मक बना लेने से इन मासात्मकों के अन्तर से अधिमास प्राप्त होता है।

अथोनरात्रार्थं चान्द्रमानदिवसानामेतेषां १६०३०००००८० सौरमानदिनान्येतानि १५७७९१७८०० संशोध्य जातं २५०८२२८० एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्राः। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिताः।

क्षयदिन (ऊनरात्र) ज्ञात करने के लिए चान्द्र दिवस = १६०३०००००८०, तथा सौरदिन = १५७७९१७८००, इन दोनों का अन्तर रूप (घटाने से) क्षयदिन = २५०८२२८०, इस प्रकार चतुर्युग में ऊनरात्र का मान प्रस्तुत किया गया है।

अथ संवत्सरस्य प्रदर्श्यते। तत्र सावनमानेन स्वानि संवत्सरदिनानि ३६०। अस्मिन्नेव सावनसंवत्सरे चन्द्रदिनानि ३७१ $\frac{२८००८०}{४३२००००}$ । एतेषामुत्पत्तिमग्रतः प्रदर्शयिष्यामः। अत्र

---

१. राशयः कार्या इति अ० पु० पाठः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सावनमानाहानीमानि ३६० संशोध्य जातं ११ $\frac{२८००८०}{४३२००००}$ । एतावन्ति दिनानि प्रतिसंवत्सरे प्रचयो भवति।

यहाँ अब संवत्सर (वर्ष) का मान प्रस्तुत है। सावनमान से अपने संवत्सर में ३६० दिन होते हैं, तथा इतने ही दिन में चान्द्र दिन ३७१+२८००८०÷४३२००००, होते हैं– जिनकी उपपत्ति आगे प्रदर्शित की जायेगी। इस चान्द्रमान में सावन दिन घटाने से ११+२८००८०÷४३२००००, हुआ। इतने दिनों की प्रतिवर्ष वृद्धि होती है।

अथ संवत्सरप्रचयदिनानि प्रकारान्तरेणानीयन्ते त्रैराशिकेन। न्यासः ४३२००००। ४७८०००८०।१। अतः फलं तदेव।

वार्षिक अधिमास दिनों का त्रैराशिक द्वारा आनयन प्रकारान्तर से किया जा रहा है। त्रैराशिक विधि (प्रमाण, इच्छा, फल) के द्वारा अंकों का न्यास, ४३२००००। ४७८०००८०।१। यहाँ पर फल वही प्राप्त होगा।

अथ कियता कालेनाधिमासकः पततीति त्रैराशिकेन प्रदर्श्यते। न्यासः– ११ $\frac{२८००८०}{४३२००००}$ ।३६०।३०। अत्राद्यो राशिः[1] सवर्णीकृतो जातः ४७८०००८०। यस्मादाद्यो राशिश्चतुर्युगाब्दैर्गुणितः सवर्णीभूतस्तस्मादन्त्योऽपि राशिश्चतुर्युगाब्दैरेवं गुणितो जातः १२९६००००० । अथ भागहारराशिरेषः ४७८०००८० । गुण्यराशिना षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितः १३२७७८ । एष भागहारराशिः । अथ भाज्यभाजकराशी जातौ १२९६००००० । १३२७७८ । एतौ पुनरपि द्वाभ्यामपवर्तितौ जातौ ६४८००००० । ६६३८९ । भाज्यस्य भाजकराशिना भागमपहृत्यावाप्तम् ९७६ $\frac{४३३६}{६६३८९}$। एतावद्भिः सावनदिवसैर्गतैरधिमासः[2] पतति। वर्षद्वयं मासाष्टकं षोडशदिवसा दर्शिताऽवशेषसहिताः। अनेन कालेन भवति। एतेषामेव दिवसानां प्रकारान्तरेणानयनं त्रैराशिकेन १५९३३३६ । १५५५२००००० । १।

---

1. ११ $\frac{२८००८०}{४३२००००}$ = ११ × $\frac{४३२००००+२८००८०}{४३२००००}$ = $\frac{४७५२००००+२८००८०}{४३२००००}$ = $\frac{४७८०००८०}{४३२००००}$

अयं चतुर्युगाब्दैर्गुणितो जातः ४७८०००८० । अयमेवाद्यः सवर्णीकृत इति भट्टोत्पलसंकेतः।

२. रधिमासको भवतीति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलम् ९७६ $\frac{१०४०६४}{१५९३३३६}$। अत्रावशेषच्छेदौ चतुर्विंशत्याऽपवर्तितौ जातौ ९७६ $\frac{४३३६}{६६३८९}$। एवमधिमासकोत्पत्तिः प्रदर्शिता।

अब कितने समय में अधिमास आता है, यह त्रैराशिक विधि से प्रस्तुत किया जा रहा है। न्यासः– ११+२८००८०/४३२०००० ।३६०/३० ।यहाँ प्रथम भिन्न राशि को तोड़ने से (सवर्ण करने पर) = ४७८०००८० । यतः प्रथम राशि को सवर्ण करने पर चतुर्युगाब्द से गुणा किया है, अतः अन्तिम राशि को भी चतुर्युगाब्द से गुणा करने पर = १२९६००००० । भागहार राशि =४७८०००८० । गुण्यराशि ३६० से अपवर्तित (भाजित) करने पर = १३२७७८, यह भागहार राशि हुई। इस प्रकार भाज्य-भाजक राशि क्रमशः १२९६००००० तथा १३२७७८, हुई ।इनको दो से अपवर्तित करने पर ६४८००००० तथा ६६३८९ हुए ।भाजकराशि से भाज्य राशि में भाग देने पर प्राप्त भजनफल = ९७६+४३३६/६६३८९ । इतने सावन दिनों के बीतने पर अधिमास आता है। अर्थात् २ वर्ष, ८ मास, १६ दिन शेष सहित रहने पर अधिमास आता है। इन दिनों का दूसरे प्रकार से त्रैराशिक द्वारा आनयन करते हैं, न्यासः– १५९३३३६ ।१५५५२००००० । १। फल= ९७६+१०४०६४/१५९३३३६ । यहाँ पर हर अंश को २४ से अपवर्तित करने पर = ४३३६/६६३८९, हुआ। इस प्रकार अधिमास की उत्पत्ति प्रदर्शित की गयी।

अथापचयाः प्रदर्श्यन्ते। तत्र चतुर्युगचन्द्रदिनानामेतेषां १६०३००००८०। सूर्यदिवसानेतान् १५७७९१७८०० संशोध्य जातम् २५०८२२८०। एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्राः। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिताः।

अब अपचय (क्षय) को प्रदर्शित किया जाता है। चतुर्युगीय चान्द्रदिन १६०३००००८० – १५७७९१७८०० सौरदिन = २५०८२२८०, चतुर्युग में क्षयदिन हुए।

अथ संवत्सरस्य प्रदर्श्यन्ते। तत्र वक्ष्यमाणविधिना चन्द्रसंवत्सरे सौरमानदिनानि ३५४ $\frac{१६३४३८८}{४४५२७७८}$। एतानि चन्द्रसंवत्सरस्वदिनेभ्यः ३६० संशोध्य जातम् ५ $\frac{२८१८३९०}{४४५२७७८}$। अत्रावमशेषच्छेदौ द्वाभ्यामपवर्तितौ। एतावन्तः संवत्सरेणोनरात्रा भवन्ति। एतेषां त्रैराशिकेन प्रकारान्तरेणानयनम्। न्यासः– १६०३००००८०। २५०८२२८०। ३६०। अत्राद्यो भागहारराशिर्गुणकारराशिना षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितो जातः ४४५२७७८। अनेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राशिना चतुर्युगोनरात्राणां भागमपहृत्यावाप्तम् ५ $\frac{२८१८३९०}{४४५२७७८}$ । एतावन्त ऊनरात्राः संवत्सरेण भवन्ति पूर्वानीतेषु संविदिता इति। अथ कतिभिर्दिवसैरूनरात्रपातो भवतीति तथा त्रैराशिकेन तत्प्रदर्श्यते। न्यासः– ५ $\frac{२८१८३९०}{४४५२७७८}$ । ३६० । १। अत्राद्यो राशिः सवर्णीकृतः २५०८२२८०। यस्मादनेन ४४५२७७८ राशिना गुणित आद्यो राशिः सवर्णीभूतस्तस्मादनेनैव राशिनान्त्यो राशिरेष १ गुणितो जातः ४४५२७७८। एष भाज्यो राशिः। अथास्य भाजकराशेः २५०८२२८० गुण्यराशिनानेन ३६० भागमपहृत्यावाप्तम् ६९६७३ । अनेन भाज्यस्याऽस्य राशेः ४४५२७७८ भागमपहृत्यावाप्तम् ६३ $\frac{६३२७९}{६९६७३}$। एतावद्भिश्चान्द्रमानदिवसैरूनरात्रः पतति। अस्यैवोनरात्रस्यानयने त्रैराशिकेनापरः प्रकारः। २५०८२२८० । १६ ००८० । १। अतः फलम् ६३। अत्रावशेषच्छेदौ षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितौ जातौ $\frac{६३२७९}{६९६७३}$। एतावन्त एव ऊनरात्रदिवसाः पूर्वानीतेषु संविदिता इति।

सम्प्रति संवत्सर के क्षयदिन प्रदर्शित किये जाते हैं। चन्द्रवर्ष में सौरदिन ३५४+१६३४३८८/४४५२७७८ होते हैं। इनको चान्द्रवर्षीय चन्द्रदिन ३६० में घटाने से ५+२८१८३९०/४४५२७७८, दिन शेष बचे। हर अंश को दो से अपवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार से एक वर्षान्तःपाती क्षयदिन बतलाये गये। प्रकारान्तर से इनका त्रैराशिक द्वारा आनयन किया जाता है। न्यास १६०३००००८० । २५०८२२८० । ३६० । यहाँ प्रथम भागहार राशि ३६० से अपवर्तित करने पर लब्धि = ४४५२७७८ हुई। इस लब्धराशि से चतुर्युगीय क्षयदिन संख्या से विभाजित करने पर लब्धि = ५+२८१८३९०/ ४४५२७७८, एक वर्ष में होने वाले क्षय-दिनों की यह संख्या प्राप्त हुई, जो कि पूर्वानीत के तुल्य है। अब कितने दिनों में क्षय दिन होते हैं, इसको त्रैराशिक से ज्ञात किया जा रहा है। न्यासः– ५+२८१८३९०/४४५२७७८ । ३६० । १। प्रथम राशि को सवर्ण करने पर २५०८२२८० हुआ। यतः यह प्रथमराशि ४४५२७७८ से गुणित कर सवर्ण की गयी है, अतः इसी राशि से अन्त्य १ गुणित करने पर ४४५२७७८ संख्या हुई, जो कि भाज्य-राशि है। भाजकराशि २५०८२२८०, गुण्यराशि ३६० से भाग देने पर ६९६७३ लब्धि हुई। इस राशि से भाज्यराशि ४४५२७७८ में भाग देने से प्राप्त राशि = ६३+६३२७९/६९६७३, इतने चान्द्रदिन में क्षयदिन (ऊनरात्र) आता है। इस क्षय-दिन को लाने के लिए त्रैराशिक द्वारा अन्य विधि प्रदर्शित करते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। न्यासः– २५०८२२८० ।१६०३००००८०।१। यहाँ पर पूर्णांक लब्धि = ६३। हर (अंश) को ३६० से अपवर्तित करने पर ६३२७९/६९६७३, हुआ। इस प्रकार इतने क्षयदिन पूर्वानीत के तुल्य प्राप्त हुए।

तथा[1] चाचार्यः –

युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रम्।
अवमविहीनं सावनमैन्दवमब्दान्वितं त्वार्क्षम्॥ इति।

एवमधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः॥ इति।

जैसा कि आचार्य ने कहा है :–

रवि के युग, वर्ष, मासादि के मान में अधिमास जोड़ने पर चान्द्रमान होता है। चान्द्रमान में अवम घटाने से सावन दिन होता है तथा चान्द्र वर्ष (चान्द्र भगण) ही नाक्षत्रमान होता है। इस प्रकार से प्रतिपादित अधिमास, अवमसम्भव का ज्ञाता सांवत्सर को होना चाहिए।

अन्यत् कीदृशो दैवविदित्याहः–

षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्।

सांवत्सर को और क्या-क्या जानना चाहिए ? इसे कहते हैं–

सांवत्सर को प्रभवादि साठ संवत्सरों तथा इनके अन्तर्गत होने वाले युग-वर्ष-मास-दिन-होरा के अधिपतियों के प्रारम्भकाल (प्रतिपत्ति) एवं समापनकाल (छेद) का ज्ञाता होना चाहिए।

षष्टिवर्षाणि षष्ट्यब्दः। स च पुनः पुनर्भवति। तस्य प्रतिपत्तिः प्रवर्तनं कस्मिन् काले षष्ट्यब्दस्य प्रारम्भो भविष्यति। एतच्च बृहस्पतिचारे वक्ष्यत्याचार्यः–

साठवर्षीय वर्ष-समूह को षष्ट्यब्द कहते हैं, जिसकी साठ-साठ वर्षों पर पुनरावृत्ति होती रहती है। किस समय उस षष्ट्यब्द का प्रारम्भ होगा ? इसे प्रवर्तन कहते हैं। इसको बृहस्पति-चाराध्याय में आचार्य कहेंगे।

आद्यं धनिष्ठांशमऽभिप्रवृत्तो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः॥ इति।

गुरु माघ मास में धनिष्ठा नक्षत्र का जब सर्वप्रथम उदय हुआ था, तभी से प्रभव नामक षष्ट्यब्द का प्रथम अब्द प्रारम्भ हुआ, जो कि लोककल्याणकारक होता है।

छेदस्तस्यैव षष्ट्यब्दस्य निवृत्तिः। तज्जानातीति छेदवित्। तन्मध्ये च तत्र द्वादशयुगानि भवन्ति।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १ अध्यायस्य १६ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस षष्ट्यब्द की निवृत्ति (पूर्ति) को छेद कहते हैं, जिसका ज्ञाता सांवत्सर को होना चाहिए। इस षष्ट्यब्द के अन्तर्गत १२ युग निम्नलिखित हैं :–

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः॥ इति।

विष्णु, गुरु, इन्द्र, अग्नि, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितृदेव, विश्वेदेव, सोम, इन्द्राग्नि, अश्वि, और सूर्य ये क्रमशः १२ युगों के स्वामी कहे गये हैं।

एतेषामाचार्यो बृहस्पतिचारे गणितविधानं वक्ष्यति। वयमपि तत्रैव व्याख्यास्यामः। एषामपि प्रतिपत्तिच्छेदवित्। अत्र च सावनमानेन वर्षपतिर्भवति। तत्र चानयनमाचार्येणोक्तम्।

बृहस्पति - चाराध्याय में आचार्य इनकी गणित-प्रक्रिया बतलायेंगे, वहीं पर हम भी इनकी व्याख्या करेंगे। इनके आरम्भ और पूर्ति का ज्ञाता दैवज्ञ को होना चाहिए। यहाँ पर वर्षपति सावनमास से होता है। उसके आनयन की विधि आचार्य ने कहा है।

तथाऽहर्गणा'नयनम् –

सप्ताश्विवेदसंख्यं शक्रकालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सोमदिवसाद्ये॥
मासीकृते समासे द्विष्ठे सप्ताहतेऽष्टयमपक्षैः २२८।
लब्धैर्युतोऽधिमासैस्त्रिंशद्घ्नस्तिथियुतोऽधःस्थः॥
रुद्रघ्नः समनुशरो ५१४ लब्धोनो गुणखसप्तभि ७०३र्द्युगणः।
रोमकसिद्धान्तेऽयं नातिचिरे पौलिशेऽप्येवम्॥ इति।

और अहर्गणानयन को भी जानना चाहिए :–

शक काल में ४२७ घटाने पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सोमवार रवि के अर्द्धास्तकाल में यवनपुर का समय होता है। इसे मास बनाकर दो जगह स्थापित करें। इसको ७ से गुणा कर २२८ से विभक्त कर लब्धि अधिमास को प्रथम स्थान पर जोड़ दें, पुनः उसे ३० से गुणा कर तिथि-संख्या को जोड़ें। इसको ११ से गुणा कर ५१४ से भाग दें। लब्धि को ७०३ में से घटा दें। इस प्रकार यह अहर्गण प्राप्त होता है। यह रोमक-सिद्धान्त की विधि है। पोलिश सिद्धान्त में भी इसी के आसन्न प्राप्त होता है।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १ अध्यायस्य ८-१०, १७-१९ श्लोकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतो वर्षाधिपानयनम् :–

मुनियमयमद्रि२२२७युक्ते युगणे शून्यद्विपञ्चयमभक्ते २५२०।
प्रतिराशि खर्तुदहनैर्लब्धं वर्षाणि यातानि॥
तानि प्रपन्नसहितान्यग्निगुणान्य'श्विवर्जितानि हरेत्।
सप्तभिरेवं शेषो वर्षाधिपतिः क्रमात् सूर्यात्॥

अब वर्षपति का आनयन बतलाते हैं।

अहर्गण में २२२७ जोड़कर २५२० से भाग देने पर प्राप्त राशि में ३६० से भाग देने पर गत वर्ष प्राप्त हो जाते हैं। शेष प्राप्त संख्या को ३६० में से घटाने पर जो दिनादि आये उसमें ७ से भाग देने पर शेष सूर्यादि क्रम से वर्षपति होते हैं।

तत्राहर्गणस्य षष्टिशतत्रयेण भागे हृते यच्छेषं तानि दिनानि प्रवृत्तस्याब्दपतेर्गतानि तान्येव षष्ट्यधिकाच्छतत्रयात् संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनान्येवाब्दपतिर्भविष्यति।

यहाँ पर अहर्गण में ३६० का भाग देने पर जो शेष होता है, वह प्रवृत्त वर्षपति का गत दिन है। इसको ३६० में से घटाकर जो शेष बचता है, उतने ही दिन वर्षपति होगा।

एवमब्दपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ। मासपतेरपि सावनेनैव मानेन प्रवृत्तिनिवृत्ती भवतः। तस्य चानयनमाचार्येण तत्रैवोक्तम्।

इस प्रकार के वर्षपति के प्रारम्भ और पूर्ति का ज्ञाता हो, उसे सांवत्सर होना चाहिए. मासपति की भी प्रवृत्ति तथा निवृत्ति सावन मान से ही होती है, जिसका आनयन आचार्य ने वहीं पर इस प्रकार कहा है :–

तथा च :–

त्रिंशद्भाक्ते मासाः प्रतिपत्सहिता द्विसंगुणा व्येकाः।
सप्तोद्धृतावशेषो मासाधिपतिस्तथैवार्कात्॥

जैसा कि–

अहर्गण में ३० का भाग देने से मास होता है। शेष उस मासपति के गत दिन हुए, प्रतिपदा से तिथि-मान को द्विगुणित कर उसमें से एक घटाकर सात से भाग देने पर शेष के तुल्य सूर्यादिक्रम से मासपति होते हैं।

तत्र त्रिंशता भागे हृते यदवशिष्यते तावन्त्येव दिनानि तस्य मासपतेः प्रवृत्तस्य गतानि। तानि च त्रिंशतः संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनानि स एव मासपतिर्भविष्यति। एवं

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायां न्यब्धिवर्जितानीति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मासाधिपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ जातौ। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :—

यहाँ पर ३० से भाग देने पर शेष उस मासपति के गत दिन हुए, इनको ३० में से घटाकर जो शेष बचता है, उतने ही दिन मासपति के होंगे। इस प्रकार के मासपति के प्रारम्भ और समापन का ज्ञाता सांवत्सर को होना चाहिए। ब्रह्म-सिद्धान्त में भी इस प्रकार से कहा गया है :—

षष्टिशतत्रयभक्तात् कल्पगताहर्गणात्फलं त्रिगुणम्।
सैकं सप्तविभक्तं सावनवर्षाधिपोऽर्कादिः॥
द्युगणात्त्रिंशद्भक्ताद्यल्लब्धं द्विगुणितं सरूपं तत्।
सप्तविभक्ते शेषः सावनमासाधिपोऽर्कादिः॥

कल्पगत अहर्गण में ३६० का भाग देकर लब्धि में ३ से गुणा कर १ जोड़कर ७ का भाग देने पर सूर्यादिक्रम से सावन वर्षपति होंगे। अहर्गण में ३० का भाग देकर लब्धि-फल को द्विगुणित कर उसमें एक जोड़ने के पश्चात् ७ से भाग देने पर शेष-तुल्य सूर्यादिक्रम से सावनमासपति होते हैं।

दिनपतिहोराधिपत्योराचार्याणां निश्चयो नास्ति। केषाञ्चिदौदयिको वारपतिः। अन्येषां माध्याह्निकोऽन्येषामास्तमयिकोऽन्येषामार्द्धरात्रिक इति।

दिनपति और होराधिपति के विषय में आचार्यों का निश्चित मत नहीं है। किसी के मत में उदयकालिक वारपति, अन्य के मध्याह्नकालिक, किसी अन्य के मत में आस्तकालिक और किसी दूसरे के मत में आर्धरात्रिकालिक कहा गया है।

तथा[2] चाचार्यः—

द्युगणाद्दिनवाराप्तिर्द्युगणोऽपि हि देशकालसंबन्धः।
लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये॥
रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहितः।
यवनानां निशि दशभिर्गतैर्मुहूर्तैश्च तद्गुरुणा॥
लङ्कार्द्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः।
भूयः स[3] एव चार्कोदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्॥
देशान्तरसंशुद्धिं कृत्वा चेन्न घटते तथा तस्मिन्।
कालस्यास्मिन् साम्यं तैरेवोक्तं यथा शास्त्रम्॥

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते-इत्यर्थः।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १५ अध्यायस्य १८-२९ श्लोकाः।
३. मन्त्रिर्मितगणकतरङ्गिण्यां वराहमिहिरवर्णनं विलोक्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्याह्नं भद्राश्वेष्वस्तमयं कुरुषु केतुमालानाम्।
कुरुतेऽर्द्धरात्रमुद्यन् भारतवर्षे युगपदर्कः॥
उदयो यो लङ्कायां योऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।
यमकोट्यां मध्याह्नं रोमकविषयेऽर्द्धरात्रं च॥
अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्काः ।
अयनर्त्वार्क्षगतिनिशाः समं प्रवृत्ता युगस्यादौ॥
अन्यद्रोमकविषयाद् देशान्तरमन्यदेव यवनपुरात्।
लङ्कार्द्धरात्रसमयादन्यत् सूर्योदयाच्चैव॥
सूर्यस्यार्द्धास्तमयात् प्रतिविषयं यदि दिनाधिपं ब्रूमः।
तत्रापि नाप्तवाक्यं न च युक्तिः काचिदप्यस्ति॥
सन्ध्या क्वचित्क्वचिदहः क्वचिन्निशा दिवसपतेः क्वचित्क्वचित्।
स्वल्पे स्वल्पे स्थाने व्याकुलमेवं दिनपतित्वम्॥
होरावार्त्ताप्येवं यस्माद्धोरा दिनाधिपस्याद्या।
तस्यापरिनिष्ठाने होराधिपतिः कथं भवति॥
अविदित्वैव[1] प्रायो दिनवारे जनपदः प्रवृत्तोऽयम्।
स्फुटतिथिविच्छेदसमं युक्तमिदं प्राहुराचार्याः॥ इति।

जैसा कि आचार्य ने कहा है :–

अहर्गण से दिन-वार की प्राप्ति होती है, यह अहर्गण भी देश-काल से सम्बन्धित होता है। लाटाचार्य ने यवनपुर में सूर्य के अर्द्धास्त काल में तथा सिंहाचार्य ने सूर्योदय कालिक लंका में अहर्गण कहा है। उनके गुरु ने यवनपुर में रात्रि के दस मुर्हूत पर कहा है। आर्यभट्ट ने लंका के अर्धरात्रि के समय दिनारम्भ कहा है, फिर वहीं लंका में सूर्योदयकालिक भी बतलाया है। देशान्तर-संस्कार का संशोधन कर, जहाँ पर जिस प्रकार से घटित न होता हो, उसकी साम्यता को उन्होंने कहा है कि भद्राश्व में कुरु में अस्तकाल तथा केतुमाल में अस्तकाल तथा भारतवर्ष में एक साथ अर्धरात्रि काल में प्रवृत्त होता है। जिस समय लंका में उदय होता है उस समय सिद्धपुर में सायंकाल, यमकोटि में मध्याह्न तथा रोमक में अर्द्धरात्रि होती है। युग के प्रारम्भ में अधिमास, क्षयमास, ग्रह, दिन, तिथि, मेषादि, रवि, चन्द्र, अयन, ऋतु, नक्षत्रगति, रात्रि ये सभी एक ही साथ प्रवृत्त हुए। रोमकनगर में देशान्तर भिन्न है तथा यवनपुर में भी भिन्न है। लंका के अर्द्धरात्रि-समय से भिन्न स्थान पर सूर्योदय से प्रवृत्ति

---

१. अविचार्य्यैवमिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। अर्धोदित सूर्य अथवा अर्द्धास्त सूर्य के पृथक् पृथक् विचार से यदि दिनाधिप कहे जाते हैं, तो भी न तो इस विषय में कोई प्रामाणिक आप्त-वाक्य है और न कोई तर्कसंगत युक्ति ही उपलब्ध है। दिनपति का निर्धारण यदि थोड़ी-थोड़ी दूरी केआधार पर किया जाय तो कहीं पर संन्ध्या, कहीं पर दिन, कहीं रात्रि आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के दिनपतियों के होने से दिनपतित्व ही अव्यवस्थित हो जायेगा। होरा के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बात है, क्योंकि दिनपति की आदि होरा ही होराधिप बनाती है। अतः दिनपति की अव्यवस्था के चलते होराधिपति कैसे व्यवस्थित हो सकता है ? प्रायः दिन वार की प्रवृत्ति का बिना विचार किये ही लोग इस प्रकार की धारणा में प्रवृत्त हो गये। आचार्यों ने स्पष्ट तिथि के प्रारम्भकाल और समापन काल का जो कथन किया है, वह सर्वथा युक्त हैं॥

एवं स्थिते सति दिनवार औदयिक इत्यस्माकं मतम्। यस्माद्भट्टब्रह्मगुप्तेनोक्तम् :–

इस स्थिति में दिवसारम्भ उदयकालिक ही मेरे मत से उपयुक्त है। ब्रह्मगुप्त-भट्ट का भी यही मत है :–

जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्ट्यादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्माद् दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात्॥

अन्धकारमयी इस सृष्टि के आरम्भ में सूर्यादि सभी ग्रहों की एक साथ ही प्रवृत्ति हुई थी, अतः सूर्योदय काल से ही दिवसारम्भ हुआ है॥

तत्र च विशेषः–

दिनवारादिः पश्चादुज्जयिनीदक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
देशान्तरघटिकाभिः प्राक् पश्चाद्भवति रव्युदयात्॥ इति।

यहाँ पर यह विशेष विचार है :–

उज्जयिनी की याम्योत्तररेखा (मध्यरेखा) कालिक सूर्योदय से पूर्व और पश्चिम प्रदेशों में पूर्व और पश्चात् क्रम से स्व-स्व देशान्तर-घटी-तुल्य अन्तर पर दिवसारम्भ होता है॥

दिनाधिपस्तु सावनेनैव मानेन भवति, किन्तु देशे-देशे स्वदेशान्तरघटिकाभिश्चरार्द्ध-कालयुक्ताभिर्वियुक्ताभिर्वा क्वचित्सूर्योदयाद्दिवागते काले क्वचित्सूर्योदयात्पूर्वं दिनप्रवृत्तिः।

दिवस-पति सावनमान से होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रदेशों में चर-खण्ड-युक्त देशान्तर घटी के ऋण अथवा धन होने के कारण कहीं पर सूर्योदय के पश्चात् और कहीं पर सूर्योदय के पूर्व ही दिवसारम्भ होता है।

तद्यथा :– उज्जयिनीयाम्योत्तररेखायाः प्रागूभागे स्वदेशान्तरघटिकाभिः सूर्योदयात्परतो वारप्रवृत्तिर्भवति। रेखापश्चिमभागे स्वदेशान्तरतुल्याभिर्घटिकाभी रात्रिशेषाभिर्वारप्रवृत्तिरिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं विषुवद्दिने चरदलाभावादन्यकाले चरदलं स्वधिया योज्यं यथासम्भवम्। तत्रायं प्रयोगः— स्वदेशमध्याह्नघटिकाः पञ्चदशभ्यो विशोध्यावशेषघटिकाभिस्ताभी रेखाप्राग्भागे मध्याह्नात् प्राग् वारादिः स्वदेशे नित्यं वक्तव्यः। रेखापश्चिमभागे मध्याह्नादूर्ध्वं तावतीभिरेव घटिकाभिरिति।

जैसा कि उज्जयिनी की याम्योन्तररेखा के पूर्व भाग में स्वदेशान्तर घटी-तुल्य सूर्योदयोपरान्त काल में दिन–प्रवृत्ति होती है। रेखा देश के पश्चिमभाग में स्वदेशान्तर घटीतुल्य काल के पूर्व रात्रिशेष काल (सूर्योदय से पूर्व काल) में दिन प्रवृत्ति होती है। विषुवद् दिन में चराभाव रहता है, उससे भिन्न दिनों में चरकाल का यथास्थिति-योग कर लेना चाहिए। इसका प्रत्यक्ष प्रयोग इस प्रकार होगा– स्वस्थानीय मध्याह्न घटी काल को १५ में से घटाकर शेष घटी काल के पूर्व ही पूर्व प्रदेश में सदैव दिन-प्रवृत्ति स्थायी रूप से स्वीकार करनी चाहिए। रेखा-देश से पश्चिम प्रदेशों में मध्याह्नकाल से जितने अधिक घटी-काल में होता है, तत्तुल्य काल पश्चात् दिन-प्रवृत्ति होगी।

तथा च भट्टबलभद्रः—

उज्जयिनीतस्तु गता या [1]रेखा दक्षिणेन लङ्कायाम्।
उत्तरतस्तु सुमेरोर्ज्ञेया देशान्तराख्या सा॥
स्वदेशरेखान्तरयोजनानां षष्ट्या हतानां स्फुटभूहतानाम्।
ज्ञेयः स लब्ध्या घटिकादिकालो देशान्तराख्यः सततं स्वदेशे॥
[2]चरार्द्धतत्कालयुतौ गतायां दिवा सुराहे दिनपादिवेला।
रेखादिभागे च परे निशायां कालेन शेषेण महेन्द्ररात्रौ॥
रेखादिभागे त्रिदिवेशरात्रौ कालान्तरोनश्चरखण्डशेषः।
काले नते तत्क्षणदावशेषे न्यूने चरार्द्धे तु दिवागते स्यात्॥
रेखापरार्द्धे तु कृतान्तराले चरार्द्धकालाभ्यधिके दिनस्य।
काले प्रयाते त्रिदशाह्नि वेला तदूनतायां क्षणदावशेषे॥

---

१. लेखेति अ० क० पु० पाठः।

२. रेखादिभागे प्राग्देशान्तरे, सुराहे सुरदिने उत्तरगोले चरदेशान्तरघटीयोगसमायां सूर्योदयाद्गतायामिष्टघटिकायां दिवा दिवसे वारप्रवृत्तिः। परे पश्चिमदेशान्तरे महेन्द्ररात्रौ सुरेशरजन्यां दक्षिणगोले तद्योगसमायां निशायां शेष घटिकायां वारप्रवृत्तिः। रेखापरार्द्धे पश्चिमदेशान्तरे त्रिदशाह्नि उत्तरगोले यद्देशान्तरचरार्द्धान्तरं कृतं तावति दिनस्य गते काले. वारप्रवृत्तिश्चेत्तद्देशान्तरतश्चरमानमधिकमूने तु क्षणदावशेषे रात्रिशेषे तावति काले वेला वारप्रवृत्तिरित्यर्थः। अन्यत् स्पष्टम्। सिद्धान्तशिरोमण्यादियुक्त्या वासना चास्यातिसुगमेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा कि भट्टबलभद्र ने कहा है :–

उज्जयिनी से दक्षिण लंका तक तथा उत्तर से सुमेरु तक गयी हुई रेखा देशान्तर-रेखा होती है। स्वदेश और रेखान्तर देश के अन्तर योजनमान को ६० से गुणा कर स्पष्ट भू-परिधि से भाग देकर जो लब्धि होगी, वह देशान्तर-घटिकादि काल है, जिसे स्वदेशी देशान्तर-घटी कहते हैं। पूर्व देशान्तर में उत्तम गुण होने पर चर-देशान्तर घटी के योग तुल्य काल के पश्चात् (सूर्योदय के बाद) वारप्रवृत्ति दिन में होती है। पश्चिम देशान्तर तथा दक्षिण गोल होने पर चर-घटी तथा देशान्तर-घटी के योग तुल्य समय से पूर्व ही रात्रि शेष घटी पर (सूर्योदय पूर्व) वार प्रवृत्ति होती है। पश्चिम देशान्तर तथा उत्तर गोल होने पर देशान्तर घटी और चरखण्ड का अन्तर तुल्यकाल के पश्चात् (सूर्योदय के बाद) वारप्रवृत्ति होगी। यदि देशान्तर से चरघटी का मान अधिक हो तो यह प्रक्रिया होगी, अन्यथा चर-मान के न्यून होने पर रात्रि-शेष में सूर्योदय से उतने ही कालपूर्व वारप्रवृत्ति होगी॥

एवं यस्मिन् काले वर्तमानस्य दिनपतेः प्रवृत्तिस्तस्मिन् कालेऽतीतस्य निवृत्तिरिति।

इसी प्रकार जिस समय वर्तमान दिनपति की प्रवृत्ति होती है, उसी क्षण गत दिनपति की निवृत्ति होती है।

एवं दिनपतेः [1]प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ।

अथ होराधिपत्यानयने तत्र यावतीनां घटीनां वारपतेरारम्भात्प्रभृति दिनगतानां रात्रिगतानां वा कालहोरा ज्ञातुमिष्यते ता घटिका अभीष्टकाले गता एकीकृत्य यावत्यो भवन्ति ता द्विगुणाः कार्याः। ततस्तासां पञ्चभिर्भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमो दिनपात्प्रभृतीष्टे काले होराधिपो भवति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदधः पञ्चभ्यो विशोधयेत्। ततो द्वाबप्यूर्ध्वाधःस्थितावङ्कावर्द्धीकृत्योर्ध्वस्थो वर्तमानहोरापतेर्गतः कालः। अधःस्थितो यस्तावत्कालः स एव होराधिपतिः। तथा च भट्टबलभद्रः–

इस प्रकार दिनपति के प्रारम्भ और समापन-काल का ज्ञान किया गया।

अब होरा-पति का ज्ञान प्रस्तुत है। वारपति के आरम्भ से दिनगत अथवा रात्रिगत जितने घटी पर काल-होरा का ज्ञान अभीष्ट हो, उतने घटी-काल को गत इष्टकाल में जोड़कर जितनी घटी होती हो, उसको द्विगुणीत कर दें, फिर इसको ५ से भाग देकर शेष अंक-तुल्य दिनपति से प्रारम्भ कर अभीष्ट काल में होराधिप होता है। ५ से भाग देने पर जो शेष हो, उसको ५ में से घटा दें। तत्पश्चात् ऊर्ध्वाधः स्थित दो अंकों को आधा करने पर ऊर्ध्व स्थित वर्तमान होरापति का गतकाल तथा अधः स्थित अंक होराधिपति का इष्टकाल होता है। जैसा कि भट्टबलभद्र ने कहा है :–

---

१. प्रवृत्तिरिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रारम्भकालाद्दिनपस्य याते काले यमघ्नेऽर्धहृते तु लब्धिः।
शराहता चन्द्रयुताद्रिभक्ता शेषस्तु होराधिपतिर्द्युपादेः॥

वारपति के प्रारम्भ से इष्टकाल में २ का गुणा कर ५ का भाग देने पर लब्ध-काल को ५ से गुणाकर १ जोड़कर ७ से भाग दें। शेष अंक-तुल्य दिनपति से गणना करने पर होराधिप होता है॥

तथा चास्मदीयवचनम्—

वारपतेरारम्भात्कालाद्द्विगुणाच्छरैर्हृताल्लब्धम् ।
पञ्चघ्नं रूपयुतं मुनिभक्तं वारपात् स होरेशः॥

जैसा कि— मेरा (भट्टोत्पल का) वचन है :—

वारपति के प्रारम्भ से गत इष्ट-काल को २ से गुणित कर ५ से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो, उसमें ५ से गुणाकर १ जोड़ दें, फिर उसमें ७ का भाग दें तो शेष संख्या के तुल्य वारेश के क्रम से होरापति होगा॥

तत्र होराधिपतेर्नाडिकाद्वयं सार्द्धभागं परिकल्प्य प्रवृत्तिनिवृत्त्योः परिकल्पना कार्या। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :—

यहाँ होराधिपति से प्रारम्भ कर ढाई घटी (१ घण्टा) की एक-एक होराधिपति की भोगावधि मान कर इनके आरम्भ और समापन-काल की कल्पना करनी चाहिए। जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :—

दिनगतघटिका द्विगुणाः पञ्चहृता वान्यमतमेतत्॥ इति।

दिनगत घटी (इष्टकाल-घटी) २ से गुणित और ५ से विभाजित करने पर होराधिपति प्राप्त होता है। यह भी अन्य आचार्यों का मत है।

तथा चाऽऽचार्यः[2] :—

सप्तोद्धृते दिनेशस्त्रिगुणो व्येको युतश्च होराभिः।
पञ्चघ्नः सप्तहृतो विज्ञेयः कालहोरेशः॥ इति।

जैसा कि— आचार्य ने कहा है :—

दिन-पति संख्या में ७ का भाग देकर, ३ से गुणाकर, गुणनफल में १ घटाकर गत काल (इष्ट-घटी) जोड़ने के पश्चात् ५ से गुणा और ७ से भाग देने पर, काल-होराधिप प्राप्त हो जाता है॥

अत्राऽहर्गणाद्यो दिनपतिस्ततोऽस्यानयनं कार्यम्। एवं वर्षाधिपादीनामयं गणनाक्रमः।

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इति।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १ अध्यायस्य २० श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्तमानवर्षाधिपाच्चतुर्थोऽन्यस्मिन् वर्षे भवति। मासाधिपाद् मासपतिस्तृतीयः। होराधिपाद्धोरापतिः षष्ठः। [1]दिनपतिर्निरन्तर इति।

यहाँ पर अहर्गणकालिक दिनपति होता है, अतः इसका आनयन उसी क्रम से करना चाहिए। इसी प्रकार वर्षपति का गणनाक्रम यही है। वर्तमान वर्षपति से चौथा ग्रह आगामी वर्षपति होता है। मासपति से तीसरा अग्रिम मास का मासपति होता है। होराधिपति से षष्ठ अग्रिम होरा का अधिपति होगा। दिनाधिपति निरन्तर एक क्रम से होता है॥

तथा चाऽऽचार्यः[2] कक्षाक्रममुक्त्वाऽऽह :–

मासाधिपा यथोर्ध्वं चन्द्रात् सौरादधश्च होरेशाः।
ऊर्ध्वक्रमेण दिनपाश्च पञ्चमा वर्षपाः स्पष्टाः॥ इति।

आचार्य ने भी कक्षाक्रम बतलाते हुए इस प्रकार कहा है :–

मासाधिप चन्द्र से ऊर्ध्व तथा होरेश रवि से अधः होता है। दिनपति भी ऊर्ध्व होता है और पञ्चम वर्षाधिप का होना भी स्पष्ट है॥

तथा च :–

[3]वर्षाधिपश्चतुर्थो मासाधिपतिस्तथा तृतीयोऽन्यः।
होराधिपश्च षष्ठो निरन्तरं दिवसनाथः स्यात्॥
एवं होराधिपतिप्रतिपत्तिच्छेदौ [4]ज्ञातौ॥

और भी कहा गया है :–

चतुर्थ वर्षाधिप, तृतीय मासाधिप, षष्ठ होराधिप तथा दिनपति निरन्तर क्रम से होते हैं॥ इस प्रकार से होराधिपति के प्रारम्भ और समापन का ज्ञाता सांवत्सर को होना चाहिए॥

अथान्यदप्याह :–

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः।

अन्य लक्षण भी आगे इस प्रकार कहे गये हैं :–

सौर-चान्द्रादि मानों के साम्य-वैषम्य का तथा इन मानों के कार्यानुसार योग्यता तथा अयोग्यता (कार्यानुरूप उपयोगिता) के प्रतिपादन (निर्देश) करने में दैवज्ञ को दक्ष होना चाहिए।

---

१. दिनाधिपतिरिति अ० क० पु० पाठः।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ४२ श्लोकः।
३. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १ अध्यायस्य २१ श्लोकः।
४. विज्ञातव्याविति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौरमानं रविराशिभोगः। अनया कल्पनया यावता कालेनार्को राशिद्वादशकं भचक्रं भुङ्क्ते तावान् कालो रविमानेन वर्षं भवति। द्वादश राशयो द्वादशमासा एव। एतच्च सौरं मानं सावनदिनानां पञ्चषष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति घटिकापञ्चदशकेन सार्द्धेनाधिकम्।

सूर्य के राशि-भोग-काल को सौरमान कहते हैं। इस परिकल्पना से रवि जितने समय में बारह राशियों का भोग करता है, उतने काल का एक सौरवर्ष होता है, बारह राशियाँ ही बारह मास होती हैं। यह सौरमान ३६५ दिन १५ १/२ घटी से कुछ अधिक सावन दिनों का होता है।

सावनं मानं स्वोदयात् स्वोदयं यावत् षष्ट्यधिकेन दिनशतत्रयेण भवति। नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रभोगः। तच्च कदाचित् षट्षष्टिघटिका भवन्ति कदाचिच्चतुष्पञ्चाशत्। अत्रापि मध्ये सञ्चरति।

सावनवर्ष का मान उदय से उदय पर्यन्त ३६० दिनों का होता है। चन्द्रमा के नक्षत्र भोग-काल को नाक्षत्रमान कहा जाता है। यह नाक्षत्रदिन कभी ६६ घटी का और कभी ५४ घटी का हो जाता है, इन दोनों के मध्य में ही तिथि-मान घटता बढ़ता रहता है।

चान्द्रं तिथिभोगः। तस्यापि नक्षत्रवदूनाधिकता। एतदसदृशत्वं मानानाम्।

तिथि भोग काल को चान्द्रमान कहते हैं, यह चान्द्रमान भी नाक्षत्रमान की तरह ही कभी अल्प और कभी अधिक होता रहता है, इस प्रकार से मानों की असमानता होती है।

सदृशत्वं चैककार्यकरणद्वारेण। तच्चैककार्यकरणं ग्रहगतिसाधनं नाम। तद्यथा :— प्रथमं तावन्नक्षत्रपरिवर्त्ता इष्टग्रहभगणोना यावत्क्रियन्ते तावदिष्टग्रहस्य सावनदिवसा भवन्ति। ते च नक्षत्रपरिवर्त्ताः सूर्यभगणोना भूदिनसंज्ञास्तावत् स्थाप्याः। तत्रेष्टकाले कल्पाद्या ये गता रविपरिवर्ताः सौरमानोत्पन्नास्ते च द्वादशगुणिता वर्त्तमानकाले चैत्रसिताद्यतीतमाससंयुक्ता रविमानेनैव मासा भवन्ति। ततस्तस्मिन् मासगणे त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य त्रिंशता संगुण्य वर्त्तमानमासगततिथीः संयोज्य चान्द्रो दिनगणो भवति। स च त्रैराशिकोपलब्धैस्तिथिलोपैर्विहीनः सावनोऽहर्गणो भवति। स चेष्टग्रहभगणगुणः सावनदिनहृतः फलं भगणादिको ग्रहः। स च स्फुटीकृतो जातकादावुपयुज्यत इति।

एकीकरण-प्रक्रिया को सदृशता अथवा समानता कहते हैं। एकीकरण-प्रक्रिया का अभिप्राय ग्रह-गति-साधन से है। जैसा कि नक्षत्र-भगण से अभीष्ट ग्रह-भगण घटाने पर जो शेष होता है, उतने ही उस अभीष्ठ ग्रह के सावन दिन होते हैं। ये नक्षत्र-भगण सूर्य से घटाये जाने पर शेष की भूदिन (सावन दिन) संज्ञा होती है। इष्ट समय में कल्पादि से गत रवि-भगण, जिन्हें सौर मान कहते हैं— उनको बारह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से गुणा कर उसमें वर्तमानकालिक चैत्र शुक्लादि गत-मास- संख्या को जोड़ देने से सौरमास होते हैं। इस मास-संख्या में त्रैराशिक विधि से प्राप्त गत अधिमास संख्या को जोड़कर ३० से गुणा कर उसमें वर्तमान मास की गत तिथि की संख्या जोड़ देने से चान्द्र दिन होते हैं। वह चान्द्र दिन त्रैराशिक से प्राप्त लुप्त तिथि-संख्या (क्षय-दिन) से घटा दिये जाने पर सावन-अहर्गण हो जाता है, और यह सावन-अर्हगण इष्ट ग्रह-भगण से गुणा कर, सावन-दिन-संख्या से भाग दिये जाने पर लब्धि भगणादिक ग्रह होता है। इस प्रकार से स्पष्ट किया गया ग्रह जातक-शास्त्रों के लिए उपयोगी होता है।

एवं सर्वमानानामेककार्यत्वं नाम सादृश्यम्।

अथवा पुलिशसिद्धान्तानुसारेण प्रदर्श्यते। तत्र सदृशत्वविज्ञाने सूत्रम् :–

युगवत्सरैः प्रयच्छति यदि मानचतुष्टयं किमेकेन।
यदवाप्तं ते दिवसा विज्ञेयाः सावनादीनाम्॥

इस प्रकार से सभी मानों के एकत्व अर्थात् एक काल में आनयन को सादृश्य कहते हैं। अथवा पुलिश-सिद्धान्त के अनुसार प्रस्तुत करते हैं, जहाँ पर सदृशत्व-विज्ञान का सूत्र इस प्रकार है :– युगाब्द-संख्या में यदि अभीष्ट सावनादि चारों प्रकार दिवस-मानों की (सावन, चान्द्र, नाक्षत्र, सौर) संख्या प्राप्त होगी।

युगवत्सरैर्यदि माने माने पठितदिवसा लभ्यन्ते तदैकस्मिन् संवत्सरे कियन्तः स्युरिति त्रैराशिके न्यासः :– ४३२०००० । १५५५२००००० । १ । अतः फलम् ३६० । एवं ज्ञातं यथा सावनमानवर्षे एतावद्भिः सावनमानदिवसैर्वर्षमिति।

युगीय वर्षों में पठित दिनों की संख्या प्राप्त होती है तो एक वर्ष में कितनी होगी। इसे त्रैराशिक द्वारा लाते हैं। (न्यासविधि में तीन अंकों का विन्यास होता है, जिसको क्रमशः प्रमाण, प्रमाणफल और इच्छा कहते हैं। प्रमाणफल और इच्छा का गुणा कर उसमें प्रमाण का भाग देने से इच्छा-फल अर्थात् अभीष्ट उत्तर प्राप्त होता है, यही त्रैराशिक विधि है) एक सावनवर्ष में सावन-दिनों की संख्या ज्ञात करने के लिए न्यासः– ४३२०००० । १५५५२००००० । १ । यहाँ पर द्वितीय और तृतीय के गुणनफल में प्रथम का भाग देने से लब्धिफल = ३६० दिन हुए। अतः एक सावनवर्ष में सावन-दिनों की संख्या ३६० ज्ञात हुई।

न्यासः ४३२०००० । १६०३००००८० । १ । अतः फलम् $३७१\frac{२८००८०}{४३२००००}$ **। सावनवर्षेणैतावन्तश्चान्द्रदिवसा भवन्ति।**

न्यासः ४२२०००० । १५७७९१७८०० । १ । फलम् $३६५\frac{१११७८००}{४३२००००}$ **। सावनवर्षेणैतावन्तः सौरमानदिवसा भवन्ति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यासः ४३२००००। १७३२६००८०।१। फलम् ४०१ $\frac{२८००८०}{४३२०००}$। सावनवर्षेणैतावन्तो [1]नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति॥

न्यासः ४३२००००। १५५९३४००७२।१। फलम् ३६० $\frac{४१४००७२}{४३२००००}$। सावनवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चान्द्रमानेन चातुर्युगदिवसानाम् १६०३००००८० एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५३४३३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण चान्द्रमानेन मासा भवन्ति। एतेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४४५२७७८। एतावन्ति चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन वर्षाणि भवन्ति। तत्र न्यासः ४४५२७७८। १६०३००००८०।१। फलम् ३६०। एतावन्तश्चान्द्र-मानवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

अतः एक सावनवर्ष में चान्द्रदिन के लिए न्यासः– ४३२०००० / १६०३०-०००८०।१।= ३७१ + २८००८०/४३२००००, चान्द्रदिन हुए।

एक सावनवर्ष में सौर दिनों की संख्या के लिए न्यासः– ४३२०००० / १५७७९१७८००/ १। फल = ३६५+१११७८००/४३२००००। एक सावन-वर्ष में नाक्षत्र-मान दिनों के लिए न्यासः– ४३२००००/१७३२६००८०/ १। फल = ४०१+२८००८०/४३२०००, नाक्षत्रमान दिन हुए। नाक्षत्रमान दिन पूर्व प्रतिपादित है, जिसको कल्प चान्द्र भगण × ३० = नाक्षत्रमान, इसको भट्टोत्पल ने स्थापित किया है।

एक सावनवर्ष में नक्षत्र -दिन = न्यासः– ४३२००००।१५५९३४००७२ /१। फल = ३६०+४१४००७२ / ४३२०००० = नक्षत्रदिन हुए। चतुर्युग के दिन-प्रमाण १६०३००००८०, में चान्द्रमान होते हैं, इनमें ३० का भाग देने से फल = ५३४३३३३६, इतने चतुर्युग में चान्द्रमान से मास होते हैं, इनमें बारह का भाग देने से फल = ४४५२७७८, इतने चतुर्युग में चान्द्र-मान से वर्ष होते हैं। चान्द्र-मान वर्ष में चान्द्र-मान दिवस के लिए न्यासः– ४४५२७७८/ १६०३००००८०/ १। लब्धि फल = ३६०, इतने चान्द्रमान वर्ष में चान्द्रमान दिन होते हैं।

न्यासः ४४५२७७८।१५५५२००००/१। फलम् ३४९ $\frac{११८०४०८}{४४५२७७८}$। चान्द्रवर्षेणैतावन्तः सावनमानदिवसा भवन्ति।

---

१. कल्पे त्रिंशद्गुणिता शशिभगणाः नाक्षत्रमानदिवसा इति पूर्वं प्रतिपादिता भट्टोत्पलेन (द्रष्टव्यं ४९ पृष्ठम्)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चान्द्र वर्ष में सावनमान दिन के लिए न्यासः– ४४५२७७८/ १५५५२००००/ १। लब्धिफल = ३४९+११८०४०८/ ४४५२७७८।

न्यासः ४४५२७७८/ १५७७९१७८००/१। फलम् ३५४ $\frac{१६३४३८८}{४४५२७७८}$ । एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण सौरदिवसा भवन्ति।

चान्द्रवर्ष में सौर दिनों के लिए न्यासः– ४४५२७७८। १५७७९१७८०० / १। लब्धि-फल सौर दिन = ३५४+११८०४०८/ ४४५२७७८।

न्यासः ४४५२७७८। १७३२६०००८०।१। फलम् ३८९ $\frac{४६९४३८}{४४५२७२८}$। एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८/ १५५९३४००७२।१। फलम् ३५० $\frac{८६७७७२}{४४५२७७८}$ एतावन्ति चान्द्रवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगसौरमानदिवसानामेतेषां १५७७९१७८०० त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५२५९७२६०। एतावन्तश्चतुर्युगेण सौरमानमासा भवन्ति। तेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४३८३१०५। एतेषां चतुर्युगेण वर्षाणि भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १५७७९१७८००।१। फलम् ३६०। एतावन्तः सौरेण वर्षेण सौरमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५।१५५५२००००।१। फलम् ३५४ $\frac{३५८०८३०}{४३८३१०५}$ । सौरवर्षेणैतावन्तः सावनमानदिवसा भवन्ति॥

न्यासः४३८३१०५।१६०३०००८०।१।फलम् ३६५ $\frac{३१६६७५५}{४३८३१०५}$ ।एतावन्तः सौरवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति॥

न्यासः४३८३१०५।१७३२६०००८०।१।फलम् ३९५ $\frac{१२७३६०५}{४३८३१०५}$ ।एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः४३८३१०५।१५५९३४००७२।१।फलम् ३५५ $\frac{३३३७७९७}{४३८३१०५}$ ।एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसाः१७३२६०००८०।एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासाः। एतेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४८१२७७८। एतावन्ति चतुर्युगनाक्षत्रमानवर्षाणि भवन्ति।

न्यासः४८१२७७८।१७३२६०००८०।१।फलम् ३६०।नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यासः ४८१२७७८। १६०३०००००८०।१। फलम ३३३ $\frac{३४५००६}{४८१२७७८}$ । नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति चान्द्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १५५५२००००००।१। फलम् ३२३ $\frac{६७२७०६}{४८१२७७८}$ । नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सावनमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १५७७९१७८००।१। फलम् ३२७ $\frac{४१३९३९४}{४८१२७७८}$ । नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सौरमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८।१५५९३४००७२।१।फलम् ३२४।नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

चान्द्रवर्ष में सौर दिनों के लिए न्यासः– ४४५२७७८।१५७७९१७८०० ।१। लब्धि-फल सौर दिन= ३५४+१६३४३८८/४४५२७७८ ।

चान्द्रवर्ष में नाक्षत्र-मान-दिन के लिए न्यासः– ४४५२७७८। १७३२६०००८०/१। लब्धिफल नाक्षत्र-मान दिन = ३८९+४६९४३८ / ४४५२७७८।

चान्द्रवर्ष में नाक्षत्रदिन के लिए न्यासः– ४४५२७७८/१५५९३४००७२ ।१। लब्धिफल नाक्षत्रदिन = ३५०+८६७७७२ / ४४५२७७८ ।

चतुर्युगी सौरमान-दिन १५७७९१७८० इनमें ३० का भाग देने पर लब्धि = ५२५९७२६००, इतने चतुर्युग में सौरमान से मास होते हैं। इनमें १२ का भाग देने से लब्धि = ४३८३१०५, इतने चतुर्युग में वर्ष होते हैं।

सौरवर्ष में सौरमान-दिवस के लिए न्यासः– ४३८३१०५/१५७७९१७८००/ १। लब्धिफल सौरमान-दिवस = ३५४+३५८०८३० / ४३८३१०५ ।

सौरवर्ष में चान्द्रमान-दिवस के लिए न्यासः– ४३८३१०५। १६०३०००००८०/१। लब्धिफल चान्द्रमान-दिवस = ३६५+३१६६७५५ / ४३८३१०५ ।

सौर वर्ष में नाक्षत्रमान दिन के लिए न्यासः– ४३८३१०५।१५५९३४००७२/ १। लब्धिफल नाक्षत्रदिन = ३५५+३३३७७९७ / ४३८३१०५ ।

चतुर्युग में नाक्षत्रमान-दिन १७३२६०००८ इनको ३० से विभाजित करने पर लब्धि = ५७७५३३३६, इतने चतुर्युग में नाक्षत्र-मान मास होते हैं। इनमें १२ से भाग देने पर लब्धि = ४८१२७७८, इतने चतुर्युग में नाक्षत्रमान-वर्ष होते हैं।

नाक्षत्रमान-वर्ष में नाक्षत्रमान-दिनों के लिए न्यासः– ४८१२७७८/ १७३२६०००८०/१। लब्धिफल = ३६० ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाक्षत्रमान-वर्ष में चान्द्रमान-दिन के लिए न्यासः– ४८१२७७८/१६०३००००८० /१। लब्धि फल चान्द्रमान- दिनों = ३३३+३४५००६/४८१२७७८।

नाक्षत्रमान वर्ष के द्वारा सावनमान-दिनों के लिए न्यासः– ४८/२७७८। १५५५२००००। लब्धिफल सावनमान-दिन ३२३+६७२७०६/४८१२७७८।

नाक्षत्रमान वर्ष में सौरमान दिनों के लिए न्यासः– ४८१२७७८/१५७७-९१७८००/१। लब्धिफल सौरमान-दिन = ३२७+४१३९३९४/४८१२७७८।

नाक्षत्रमान वर्ष में नाक्षत्रदिनों के लिए न्यासः– ४८१२७७८/१५५९-३४००७२/१। लब्धिफल नाक्षत्रदिन = ३२४।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्राणामेतेषां १५५९३००७२ सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमासाः पूर्वानीतेषु नाक्षत्रमासेषु संविदिताः। एतेषां तुल्यत्वाद्वर्षाणि तुल्यान्येव। वर्षाणां तुल्यत्वात्सर्वमानेषु त्रैराशिकमपि तुल्यम्। अत्र तात्पर्यार्थः– सौरमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव वर्षे चान्द्राणि त्रीणि शतानि एकसप्तत्यधिकानि किञ्चिदधिकदिनानि आयान्ति। तस्मिन्नेव [1]सावनदिनानि त्रीणि शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि सपादान्यायान्ति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानि चत्वारि शतान्येकाधिकानि किञ्चिदधिकान्यायान्ति।

चतुर्युग के नाक्षत्रदिन = १५५९३००७२, इसमें २७ का भाग देने पर लब्धि = ५७७५३३३६, इतने चतुर्युग में नाक्षत्र-मास पूर्वानीत नाक्षत्रमान-मास के समान हैं। इनकी समानता के कारण वर्ष भी समान होंगे और वर्ष- मान के समान होने से सभी मानों में त्रैराशिक विधि भी समान ही होगी। यहाँ पर अभिप्राय यह है कि सौरमान अपने मान से ३६० दिनों का होता है। इसी सौरवर्ष में चान्द्र दिन ३७१ दिनों से कुछ अधिक ही होता है। इसी में सावनदिन ३६५+१/४ दिन आते हैं तथा इसमें नाक्षत्रदिन ४०१ दिनों से कुछ अधिक ही आते हैं।

तथा चान्द्रमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां शतत्रयमेका[2]न्नपञ्चाशदधिकं सपादं भवति। तस्मिन्नेव सावनदिनानां शतत्रयं चतुष्पञ्चाशदधिकं सावशेषं भवति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानां शतत्रयमेकाभ्रनवत्यधिकं भवति।

चान्द्रमान अपने मान से ३६० दिनों का होता है, इसमें सौरदिन ३४९+१/४ दिन तथा इसी में सावनदिन = ३५४ दिन से अधिक और इसी में नाक्षत्रदिन ३८९ से कुछ अधिक होता है।

---

१. अत्र सर्वत्र सौरसावनपदेन वास्तवे एव सौरसावनमाने विज्ञेये, न पौलिशमतानुसारेण परस्परं विपरीतरूपे इति।

२. एकादिश्चैकस्य चादुक् (६।३।७६) इत्यनेन पाणिनिसूत्रेण एकेन न पञ्चाशत् एकान्नपञ्चाशदथदिकोनपञ्चाशत्। एवमन्यत्रपि बोध्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा सावनं वर्षं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां चतुष्पञ्चाशदधिकं शतत्रयमेकान्नपञ्चाशद्घटिकाधिकं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रं पञ्चषष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां त्रिचत्वारिंशद्घटिकाधिकं भवति। तस्मिन्नेव शतत्रयं पञ्चनवत्यधिकं दिनानां नाक्षत्रमानं भवति।

सावनवर्ष अपने मान से ३६० दिनों का होता है, इसमें सौरदिन ३५४ दिन ४९ घटी तथा इसमें चान्द्रदिन ३६५ दिन ४३ घटी और इसमें नाक्षत्रमान दिन ३९५ दिनों का होता है।

तथा नाक्षत्रं वर्षं स्वमानेन दिनानां षष्ट्यधिकं शतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रदिनानां शतत्रयं त्रयस्त्रिंशदधिकं भवति। तस्मिन्नेव शतत्रयं त्रयोविंशत्यधिकं दिनानां सौरं मानं भवति। तस्मिन्नेव सावनं दिनं दिनानां शतत्रयं सप्तविंशत्यधिकं भवति। एवं प्रत्येकं स्वमानेन षष्टिशतत्रयं दिनानां भवत्येव तत्सदृशत्वम्। एवं सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशत्वं च ज्ञातम्।

नाक्षत्रवर्ष अपने मान से ३६० दिनों का होता है, इसमें चान्द्रदिन ३३३ दिन एवं इसमें सौरमान-दिन ३२३ दिनों का तथा इसमें सावनदिन ३२७ दिनों का होता है। इस प्रकार प्रत्येक मान अपने मान से ३६० दिनों का समान ही होता है। इस प्रकार सौरादि मानों की तुल्यता और अतुल्यता का प्रतिपादन किया गया।

अथ योग्यायोग्यत्वं प्रतिपाद्यते :– सौरं मानं क्व योग्यं क्व वाऽयोग्यं तेन यन्निश्चीयते तदुच्यते :– तद्यथा – युगानि कृतयुगादीनि तथा वर्षाणि विषुवद्द्वयमयनद्वयमृतवो दिनप्रमाणं चेति। अत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा चान्द्रेण तिथयः करणान्यधिमासकोनरात्रामावस्यान्तं पौर्णमास्यन्तम्। तत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा सावनं यज्ञव्रतोपवासचिकित्सासूतकप्रायश्चित्तग्रहगतौ योग्यत्वं नान्यत्र। नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यद्वशात् क्रियते तत्तत्र योग्यं नान्यत्र।

अब योग्यता तथा अयोग्यता का प्रतिपादन किया जा रहा है। सौरमान कहाँ पर उचित और किस स्थान पर अनुचित होता है, इसका निश्चय करते हुए कहते हैं :– कृतयुगादि का मान, वर्ष, दोनों विषुवत् दिन, अयनद्वय, ऋतुएँ और दिन प्रमाण ये सौरमान से ही योग्य होते हैं, अन्यत्र नहीं। तथा चान्द्रमान से तिथि, करण, अधिमास, क्षयमास, अमान्त और पूर्णिमान्त, ये विचार योग्य होते हैं, अन्यत्र नहीं। सावनमान से यज्ञ, व्रत, उपवास, चिकित्सा, सूतक, प्रायश्चित और ग्रहगति, ये योग्य होते हैं, अन्यत्र नहीं। नाक्षत्रमान सावनमान का मूलभूत होने से तन्निमित्त कार्यों में योग्य और अन्यत्र अयोग्य होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :—

सौरेणाब्दा मासास्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसाः।
दिनमासाब्दपमध्या न तद्विनाऽर्केन्दुमानाभ्याम्॥
मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः।
चारैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारश्च लोकस्य॥
युगवर्षविषुवदयनर्त्वहर्निशावृद्धिहानयः सौरात्।
तिथिकरणाधिकमासोनरात्रपूर्वक्रियाश्चान्द्रात् ॥
यज्ञसवनप्रमाणग्रहगत्युपवाससूतकचिकित्साः ।
सावनमानाज्ज्ञेयाः प्रायश्चित्ताः क्रियाश्चान्याः॥
नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥ इति।

जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :—

सौरमान से वर्ष और मास तथा तिथियाँ चान्द्र-मान से और सावनमान से दिन एवं दिनपति, मासपति, वर्षपति आदि मान्य होते हैं। रवि-चन्द्र के मानों के बिना इनका आनयन संभव नहीं होता। सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन, ये चार प्रकार के मान होते हैं। इनके आधार पर पृथक्-पृथक् ग्रह-साधन कर लोक का व्यवहार चलता है। युग, वर्ष, विषुवत्, दिन, अयन, ऋतु, दिन-रात, की वृद्धि और हानि सौरमान से होती है। तिथि, करण, अधिमास, क्षयमास, चान्द्रमान से एवं यज्ञ, दिन-मान, ग्रह-गति, व्रत, सूतक, चिकित्सा आदि क्रियाएँ सावनमान से ग्राह्य होती हैं। प्रायश्चित आदि अन्य क्रियाएँ नक्षत्र-सावन दिन से होती हैं। सूर्यादि ग्रहों के स्वकीय सावनदिन जिस प्रकार ज्ञात होते हैं, उसी प्रकार नाक्षत्र-सावन दिन भी ज्ञातव्य हैं, इन सबका आनयन मूर्खों के लिए असाध्य होता है।

केचित्तु चन्द्रनक्षत्रभोगेण रूप[2]सत्राख्यो यो व्रतविशेषस्तत्रोपयोगित्वमाहुर्नाक्षत्रमानस्य।

कुछ लोग चन्द्रनक्षत्र के भोग से रूपसत्र नामक जो विशेष व्रत है, उसके लिए नाक्षत्रमान की उपयोगिता बतलाते हैं।

तथा च भगवान् गर्गः :—

सावनैन्दवसावित्रैर्दिनमाससमात्मकैः ।
व्यवहारो भसत्रेषु भमानेन प्रकीर्तितः॥ इति।

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।
२. गर्गत्रिरात्रब्राह्मणे रूपसम्पादको व्रतविशेषः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि भगवान् गर्ग ने कहा है :–

सावन-चान्द्र एवं सौरमान से दिन, मास तथा वर्ष का व्यवहार होता है, किन्तु नाक्षत्रयज्ञों में नाक्षत्रमान के द्वारा व्यवहार करना कहा गया है।

एवं सौरादीनां मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादने पटुः कुशलः॥

इस प्रकार सौरादि मानों के तुल्याऽतुल्यत्व और योग्यायाग्यत्व के प्रतिपादन करने में सांवत्सर को कुशल और दक्ष होना चाहिए।

अन्यदप्याह :–

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डलरेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः।

अन्य विशेषताएँ कहते हैं :–

सिद्धान्त-ग्रन्थों में परस्पर भेद होने पर भी अयन समाप्तिकाल में सममण्डलरेखा द्वारा प्राप्त अंशों का प्रत्यक्ष रूप से छायायन्त्र, जलयन्त्र द्वारा दृग्गणित की तुल्यता का प्रतिपादित करने में सांवत्सर को कुशल होना चाहिए।

सिद्धान्तभेदेऽपीति। सिद्धान्ताः पौलिशादयः, तेषां भेदः असादृश्यम्, तस्मिन्नपि प्रतिपादने कुशलः शक्तः। अतिगणितपटुत्वात्। यथा :– अमुकसिद्धान्तस्याऽमुकसिद्धान्तेन सह ग्रहाणामेतावदन्तरममुकेनापि सहैतावदन्तरमिति।

सिद्धान्त-भेद बतलाते हैं। पौलिशादि सिद्धान्तों का भेद अर्थात् असमानता के प्रतिपादन में सांवत्सर कुशल तथा समर्थ हो, अर्थात् गणित में अतिपटुता सम्पन्न हो। जैसाकि अमुक सिद्धान्त का अमुक सिद्धान्त के साथ ग्रहों का इतना अन्तर है और अन्य अमुक सिद्धान्त से इस प्रकार अन्तर हो रहा है।

एवं ग्रहणसमागमादीनामपि। तथा चाऽऽचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायामेव प्रदर्शितम्।

इसी प्रकार सांवत्सर को ग्रहण तथा युति आदि का भी विचार करने में सक्षम होना चाहिए, जैसाकि आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ में प्रदर्शित किया है।

तथा च :–

[1]खार्कघ्नेऽग्निहुताशनमपास्य रूपाग्निवसुहुताशकृतैः।
हृत्वा क्रमाद्दिनेशो मध्यः केन्द्रं सविंशांशम्॥ इति पौलिशे।

---

१. रेखेति पाठान्तरम्।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ३ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि :–

१२० में से ३३ घटाकर ४३८३१ से भाग देने पर २० अंश जोड़कर सूर्य का मध्य-केन्द्र प्राप्त होता है। यह पौलिश-सिद्धान्त का वचन है।

तथा च :–

[1]रोमकसूर्यो द्युगणात् खतिथिघ्नात्पञ्चकर्तुपरिहीणात्।
सप्ताष्टकसप्तकृतेन्द्रियोद्धृतात् मध्यमः सूर्यः॥

और भी आगे कहते हैं :–

रोमक सिद्धान्त से आगत सूर्य अहर्गण गुणित १५० गुणाकर ६५ घटाकर ११४७८७ से भाग देने पर मध्यम सूर्य होता है।

तथा :–

[2]द्युगणेऽर्कोऽष्टशतघ्ने विपक्षवेदाणविऽर्कसिद्धान्ते।
स्वरखाश्विद्विनवयमोद्धृते क्रमाद्दिनदलेऽवन्त्याम्॥ इत्यादि।

तथा और भी :–

अहर्गण गुणित १८०० में ४४ घटाकर २९२२०५ का भाग देने पर अवन्ति नगरी का मध्याह्नकालिक सूर्य होता है।

एवं सिद्धान्तत्रयेणार्कमानीयान्तरं बोद्धव्यमिति। तथायनयोर्दक्षिणोत्तरयोर्या निवृत्तिर्निवर्तनं तस्यामपि प्रतिपादने कुशलः। यथा – अमुकसिद्धान्तेऽर्कस्यैतावद्भिर्दिनैरेतावतीभिर्घटिकाभिरयनचलनमभुकसिद्धान्ते एतावतीभिर्दृष्ट्याऽमुकस्मिन् दिने एतावतीभिर्घटिकाभिश्च दृश्यते तत्प्रतिपादने च कुशलः। एतच्चाऽऽचार्येणैव [3]प्रतिपादितम्।

इस प्रकार तीनों सिद्धान्त ग्रन्थों से रवि का आनयनकर, इनके अन्तर का ज्ञान करना चाहिए। इसी प्रकार दक्षिणोत्तर अयनों के निवर्तनकाल के भी प्रतिपादन में कुशल होना चाहिए। जैसाकि अमुक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य इतने दिनों में इतनी घटियों में तथा अमुक सिद्धान्त के अनुसार इतने दिन और इतनी घटियों में दृश्य होता है, इसके प्रतिपादन में कुशल होना चाहिए। इस विषय का आचार्य ने भी प्रतिपादन किया है।

तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम् :–

[4]आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदाऽऽसीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ८ अध्यायस्य १ श्लोकः।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ९ अध्यायस्य १ श्लोकः।
३. प्रदर्शितमिति अ० क० पु० पाठः।
४. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ३ अध्यायस्य २१ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा कि पञ्चसिद्धान्तिका में कहा गया :–

आश्लेषा नक्षत्र के अर्धभाग से निवृत्त होने पर सूर्य अयन प्रारम्भ होता था, परन्तु वर्तमान काल में पुनर्वसु नक्षत्र से अयन का प्रारम्भ होता है।

तथा च वक्ष्यति :–

[1]आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥

आचार्य और भी कहते हैं :–

आश्लेषा के अर्धभाग से सूर्य का दक्षिण अयन और धनिष्ठादि से उत्तर अयन का प्रारम्भ निश्चित ही किसी समय होता था, तभी वह प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है। वर्तमान समय में सूर्य के अयन क्रमशः कर्कादि तथा मकरादि में होते हैं। इससे भिन्न विकृति कही जायेगी, क्योंकि प्रत्यक्ष परीक्षण से यही देखा जाता है।

तथा च दृष्टिवेधमाचार्य एव वक्ष्यति :–

प्रत्यक्ष दर्शन हेतु वेध-विधान आचार्य इस प्रकार कहते हैं :–

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमये सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति॥ इति।

सूर्य के उदयकाल में तथा अस्तकाल में दूरस्थ किसी वस्तु के वेध से अथवा एक बृहद् वृत्त में केन्द्रस्थ शङ्कु की छाया के प्रवेश एवं निर्गम बिन्दु के द्वारा वेध किया जाता है।

कथं प्रतिपादने कुशलः। प्रत्यक्षं दृश्यमानं पीठयन्त्रादिभिः कालयन्त्रैर्यथा लोकाः प्रतिपद्यन्ते। अपिशब्दः समुच्चये। तथा सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां च प्रतिपादने कुशलः। यथा स्वदेशसममण्डलाख्या लेखा विषुवल्लेखेत्यर्थः। तया योऽसौ ग्रहाणां सम्प्रयोगः सम्प्रवेशस्तत्र येऽभ्युदितांशका अभिमुखेनोद्गताः शेषा वांशकाः। स्वाहोरात्रवृत्ते ये दिनभागा दिनगतघटिकाः शेषघटिका वेत्यर्थः। यथास्मिन्निष्टदिने भगवतो भास्करस्य एतावतीभिर्दिनगतघटिकाभिः सममण्डलप्रवेशो भवति तावतीभिश्च शेषाभिः। तासां प्रतिपादने कुशलः।

सूर्यादि ग्रहों की गति के प्रतिपादन करने में किस प्रकार से सांवत्सर कुशल हो ? पीठयन्त्रादिकों से, कालयन्त्रों से जिस प्रकार लोक में विश्वास उत्पन्न हो, उस

---

१. बृहत्संहितायामादित्यचारस्य १-२ श्लोकौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार प्रत्यक्ष दृश्य होने वाला, सममण्डलरेखा के प्रयोगानुसार प्राप्त अंशों को प्रतिपादित करने में कुशल हो, जैसा कि स्वदेश सममण्डल से प्रसिद्ध रेखा विषुवत्-रेखा का तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए। इसके द्वारा जो ग्रहों का प्रवेशकालिक प्राप्त अंशादि उत्पन्न हों। अपने अहोरात्रवृत्त का जो दिन के भाग अर्थात् दिन की गत घटिकाओं और शेष घटिकाओं का तात्पर्य है। उदाहरणार्थ :– अभीष्ट दिन में भगवान् सूर्य का इतनी गत घटी में सममण्डल प्रवेश होगा तथा इतनी घटिकाएँ शेष रहेंगी, इनके प्रतिपादन में सांवत्सर कुशल हो।

अर्कस्य सममण्डलप्रवेशकाल आचार्येण तत्रोक्तः। तथा च :–

सममण्डल का प्रवेश काल आचार्य ने इस प्रकार कहा है :–

[1]इष्टोत्तरगोलापक्रमांशकज्यां खभास्कराभ्यस्ताम्।
हृत्त्वाक्षजीवया तच्चापादुदयेन तत्कालः॥
तस्मिन् दिनकृत् कुरुते सममण्डलसंश्रयं दिनाद्ये वा।
तावच्छेषे परतो न तुलादिषु विद्यते चैतत्॥

इष्ट उत्तरगोलीय क्रान्तिज्या को १२० से गुणाकर अक्षज्या से भाग देकर उसका अंशादि बनाने से जो काल प्राप्त हो, उसमें सूर्य सममण्डल-प्रवेश करता है। तुलादि में यह नहीं होता है।

मेषस्थः सूर्यः प्रथमेऽह्नि सममण्डलरेखायामेवोदितस्तस्यामेवास्तमयं याति, क्रान्त्यभावात्। ततः प्रतिदिनं यथा यथाऽर्कस्य क्रान्तिसम्भवो भवति, तथा तथा दिनगते काले सममण्डलप्रवेशो भवति। यावति दिनगते काले तावति दिनशेषेऽपि भवति। एवं यावत्कन्यान्तं तावद्भवति सममण्डलप्रवेशो राशिषट्केऽर्कस्य। तुलादिष्वेतन्न सम्भवति। एवं मेषादिराशिषट्के स्थितस्य सममण्डलप्रवेशो भवति, न तुलादिराशिषट्के स्थितस्य। तत्र प्रविष्टस्याभिज्ञानमिदम् :–

मेष राशिगत सूर्य प्रथम दिन सममण्डलरेखा में ही उदित और अस्त होता है, क्योंकि उस दिन क्रान्ति का अभाव रहता है। उसके बाद प्रतिदिन जैसे-जैसे सूर्य की क्रान्ति उत्पन्न होती है, उसी क्रम से दिन व्यतीत होने पर सममण्डल प्रवेश होता है। तुलादि छः राशियों में स्थित सूर्य का नहीं होता है। सममण्डल में प्रविष्ट सूर्य का लक्षण इस प्रकार है :–

[2]कृतदिग्ग्रहणे वृत्ते रेखां पूर्वापरां यदा छाया।
प्रविशति सम्यक् शङ्कोः सममण्डलगस्तदा सूर्यः॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ३२-३३ श्लोकौ।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ३८ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिग्ज्ञान के लिए निर्मित वृत्त में जब शंकु की छाया सम्यक् प्रकार से प्रविष्ट होती है, उस समय सूर्य का सममण्डल प्रवेश जानना चाहिए।

तत्र च काले शङ्क्वानयनम्–

[1]उत्तरगोलेऽर्कज्या काष्ठान्तगुणा ध्रुवज्यया भक्ता।
ताः शङ्कुलिप्तिकाख्यास्ताभिः सममण्डले छाया॥

सममण्डलप्रवेशकालिक शङ्कु का आनयन :–

उत्तर गोल में रविभुजज्या से गुणित परमक्रान्तिज्या में अक्षज्या का भाग देने पर प्राप्त फल शङ्कु कला होती है, उसी कलात्मक शङ्कु की छाया की सममण्डल प्रवेश कालिक छाया होती है।

सममण्डलज्ञस्य फलम्–

सममण्डललेखासम्प्रवेशवेलां करोति योऽर्कस्य।
तत्प्रत्ययं च जनयति जानाति स भास्करं सम्यक्॥

सममण्डल-प्रवेश काल के ज्ञान का फल :–

जो विद्वान् सूर्य के सममण्डलरेखा में प्रवेश के समय को जानता है तथा उसको प्रत्यक्ष प्रदर्शित कर लोगों में विश्वास उत्पन्न करता है, वह ही भगवान् सूर्य को सम्यक् प्रकार से जानता है।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते–

विषुवत्कर्णेन गुणा विषुवच्छायोद्धृतोत्तरा [3]क्रान्तिः।
यद्यूनाक्षज्याभ्यः शङ्कुः सममण्डलस्थेऽर्के॥

जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

उत्तराक्रान्तिज्या गुणित विषुवत् कर्ण में विषुवत् छाया का भाग देकर अक्षज्या घटाने पर सममण्डल प्रवेशकालिक सूर्य से शङ्कु का ज्ञान होता है।

एवमेतेषां सर्वेषां सिद्धान्तभेदादीनां छायया तात्कालिकया यन्त्रैश्च चक्रधनुस्तूर्यगोलयष्टिशङ्कुघटिकाकपालकर्तरीपीठैः कालपरिच्छेदकैस्तथा दृग्गणितसाम्येन दृष्टेर्गणितस्य च यत्साम्यं सादृश्यमेकरूपता तेन प्रतिपादने कुशलः शक्तः। गणितेनोपलभ्यच्छायां यन्त्रैर्दृष्ट्या समीकरोतीत्यर्थः॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ३५-३६ श्लोकौ। अर्कज्या रविभुजज्या। काष्ठान्तः परमक्रान्तिज्या। ध्रुवज्या पलांशज्येति बोध्यम्।

२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

३. क्रान्तिपदेन क्रान्तिज्या ग्राह्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार सांवत्सर इन सभी विविध सिद्धान्तों के भेदादि के अनुसार तात्कालिक छाया के द्वारा कालपरिमापक चक्र, धनु, तूर्य, गोल, यष्टि, शङ्कु, घटिका, कपाल, कर्तरि, पीठादि यन्त्रों के द्वारा, दृग्गणित का जिस प्रकार साम्य हो, उसके प्रतिपादन में समर्थ हो; अर्थात् गणितागत छायाकाल की यन्त्रवेध से समानता प्रदर्शित कर सके।

तथाऽन्यदप्याह –

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः।

और भी इस प्रकार कहा गया है :–

सांवत्सर को सूर्यादि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारण को जाननेवाला होना चाहिए।

सूर्यादय आदित्यादयो ग्रहाः। आदित्यचन्द्रभौमबुधजीवशुक्रसौराः। तेषां कः शीघ्री को मन्द इत्यस्मिन् कारणेऽभिज्ञः। तत्र च सर्वग्रहेभ्यश्चन्द्रमा शीघ्रस्ततो मन्दो बुधस्ततः शुक्रस्ततोऽर्कस्ततः कुजस्ततो गुरुस्ततः शनिरिति। तथा सर्वग्रहेभ्यो मन्दः शनैश्चरस्ततो गुरुः शीघ्रस्ततः शुक्रस्ततो बुधस्ततश्चन्द्रमा इति। यस्य तु भूमेरासन्नो भ्रमः सोऽन्यस्माच्छीघ्रः। यस्य दूरः स मन्दः। यस्य च महती भुक्तिः स शीघ्रो यस्याल्पा स मन्द इति। तथा चाऽऽचार्यः–

सांवत्सर सूर्यादि अर्थात् आदित्यादि ग्रह, जैसे सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि। इन ग्रहों में कौन शीघ्रगामी और कौन मन्दगामी हैं ? इसके कारणों का ज्ञाता हो। इसमें सभी ग्रहों में चन्द्रमा उससे मन्द बुध, उससे मन्द क्रमशः शुक्र, सूर्य, मङ्गल, गुरु, और तत्पश्चात् शनि होता है। इस प्रकार सभी ग्रहों में अधिक मन्द शनि तथा तत्पश्चात् क्रमशः गुरु, शुक्र, बुध और चन्द्रमा होते हैं। जिस ग्रह का भूमि के आसन्न भ्रमणपथ होता है, वह दूसरे की अपेक्षा शीघ्रगामी और जो ग्रह भूमि से दूर होता है वह मन्दगामी रहता है। जिसकी गति अधिक होती है, वह शीघ्र तथा जिसकी अल्प गति होती है, वह मन्द कहा जाता है। जैसाकि आचार्य ने कहा है :–

[1]चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः॥

चन्द्रमा से ऊपर बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और अन्त में नक्षत्रमण्डल क्रमशः स्थित हैं। सभी ग्रह अपने-अपने भ्रमणपथ में तुल्यगति से गमन करते हैं।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ३९ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

भगणस्याधःशनिगुरुभूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्राः।
कक्ष्याक्रमेण शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्त्या॥

इसी प्रकार ब्रह्मसिद्धान्त में भी कहा गया है–

नक्षत्रमण्डल के नीचे क्रमशः शनि, गुरु, भौम, सूर्य, शुक्र, बुध की कक्षाएँ हैं। ये इसी क्रम से गति कला के अनुसार क्रमशः शीघ्रगामी ग्रह हैं।

तथा चाऽऽचार्यभटः–

भानामधःशनैश्चरबृहस्पतिकुजार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
[2]तेषामधश्च भूमिर्मेढीभूता खमध्यस्था॥

जैसाकि आर्यभट्ट ने भी कहा है–

नक्षत्रों के नीचे क्रमशः शनि, गुरु, भौम, रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र तथा सबसे नीचे रवमध्य में स्थित भूमि है।

तत्र यस्य भूमिनिकटभ्रमः सोऽल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयत्यतः शीघ्रः। यस्य दूरे स महता कालेनातो मन्दः। यतो भूम्यासन्नस्याल्पो भ्रमस्तत्र च राशिभागा अल्पा एव भवन्ति। दूरस्थितस्य च महान् भ्रमस्तत्र च राशिभागा एव महान्तस्तेन चन्द्रमा. स्वल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयति महता कालेन सौरः। तथा चाऽऽचार्यः–

जिस ग्रह का भूमि के निकट भ्रमण होता है, वह अल्पकाल में भगण का भोग पूर्ण कर लेता है; अतः वह शीघ्रगामी होता है। जिसका भ्रमणपथ दूर होता है, वह अधिक काल में भगणपूर्ति करने के कारण मन्द ग्रह कहा जाता है। भूमि के आसन्न ग्रह का अल्प भ्रमण होने से राशि के भाग भी अल्प ही होते हैं। दूरस्थ ग्रह का भ्रमणपथ बृहत् होने के कारण उसके राशि-भाग भी दीर्घ होते हैं। इसी कारण चन्द्रमा अल्प काल में भगण का भोग कर लेता है, जबकि सूर्य अधिक काल में भगणपूर्ति करता है। जैसा कि आचार्य ने कहा है :–

[3]तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेम्यां महदेवं संस्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्॥
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलकाधःस्थः।
ऊर्ध्वस्थस्तुल्यजवोऽपि संस्थितस्तथा न महदर्कसुतः॥

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।
२. एषामिति अ० क० पु० पाठः।
* ३. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ५० श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैलिकचक्र (तेल निकालने का प्राचीन यन्त्र, कोल्हू) के समान मध्य का घेरा छोटा और बाहर का घेरा बड़ा होता है। इसी कारण चन्द्रमा शीघ्र ही स्वल्प काल में नक्षत्र मण्डल के अधः स्थित होता हुआ भगणपूर्ति करता है। जबकि उससे ऊपर स्थित शनि तुल्य गतिमान होता हुआ भी उतना शीघ्र भगणपूर्ति नहीं करता।

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पमल्पेन।
पूरयतीन्दुर्महता कालेन महाशनैश्चारी॥

इसी प्रकार ब्रह्मसिद्धान्त में भी कहा है–

लघु कक्षावाले ग्रह अल्पकाल में राश्यंश का भोग तथा बृहत् कक्षावाले अधिक काल में राश्यंश का भोग करते हैं। चन्द्रमा अल्पकाल में भगणपूर्ति करता है। जबकि शनि अधिक काल में भगण पूर्ति कर पाता है।

तथा चाऽऽर्यभटः :–

मण्डलमल्पमधःस्थात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्रः।
उपरिष्टात् सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी॥
अल्पे हि मण्डलेऽल्पा महति महान्तश्च राशयो ज्ञेयाः।
अंशाः कलास्तथैव विभागतुल्याः स्वकक्ष्यासु॥इति।

इसी प्रकार आर्यभट्ट ने भी कहा है :–

अधोभाग में लघु कक्षामण्डल होने के कारण चन्द्रमा अल्प समय में ही भगणपूर्ति करता है, जबकि सर्वोपरि होने के कारण शनि अधिक काल में भगणपूर्ति कर पाता है। लघु कक्षावृत्त में राश्यादि भाग छोटे होते हैं तथा बृहत् कक्षावृत्त में राश्यादि-भाग बृहत् होते हैं। इसी कारण स्व-स्व कक्षाओं में ग्रह राश्यंश कला के परिणाम से भ्रमण करते हैं।

तथा च याम्योत्तरादिगतिः। मेषादितः कन्यान्तं यावद्यो ग्रहो याति स उत्तरां गतिमाश्रितो भवति। तुलादितो मीनान्तं यावद्यो ग्रहो याति स दक्षिणां गतिमाश्रितो भवति। तथा चाऽऽचार्यभटः :–

अब याम्योत्तरादि गति का वर्णन करते हैं। मेषादि से कन्यान्त पर्यन्त जो ग्रह गमन करता है, वह उत्तर-गति का होता है। तुलादि से मीनान्त पर्यन्त जो भी ग्रह होता है, वह दक्षिण-गति प्राप्त करता है। जैसाकि आर्यभट्ट ने भी कहा है :–

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेषादेः कन्यान्तं समुदगयनमण्डलार्धमुपयातम् ।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥

मेषादि से कन्यान्त पर्यन्त उत्तरार्धमण्डल में गया हुआ ग्रह उत्तर गतिमान होता है । तुलादि से मीनान्त पर्यन्त शेष अर्धमण्डल अर्थात् दक्षिणायन में ग्रह गतिशील रहता है ।

एतत्सूर्यस्य दक्षिणोत्तरगतिकारणमुक्तम् । चन्द्रादिकस्तु पुनः सूर्यभ्रमणप्रदेशानुसारेण स्वभ्रमप्रदेशात् स्वविक्षेपवशेन दक्षिणेनोत्तरेण वा याति एतदुक्तं भवति – आदित्यस्य विक्षेपाभावात् क्रान्तिरेव स्वक्रान्तिः । चन्द्रादीनामर्कवत्क्रान्तिं कृत्वा तस्या [1]विक्षेपेण सहैकदिक्केन योगः कार्यो भिन्नादिक्केन वियोगः । एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति यस्य च क्रान्तिरुत्तरा स उत्तरां गतिमाश्रितो भवति, यस्य दक्षिणा स दक्षिणाम् । अथवा मकरादौ राशिषट्के स्थित उत्तरां गतिमाश्रितो भवति कर्कटादौ राशिषट्के दक्षिणाम् । यस्मादुत्तरायणस्थो ग्रहः प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति दक्षिणायनस्थो दक्षिणाम् । एवं ग्रहाणां याम्योत्तरा गतिः ।

यह सूर्य के दक्षिणोत्तर गति का कारण कहा गया है । चन्द्रादि ग्रहों का तो सूर्य के भ्रमण-प्रदेश के अनुसार ही अपने भ्रमण-क्षेत्र और स्वविक्षेप के अनुसार दक्षिणोत्तर-गमन होता है । इसका तात्पर्य यह है कि सूर्य के शराभाव होने से उसकी क्रान्ति भी स्व-क्रान्ति होती है । चन्द्रादि ग्रहों का सूर्य के सामन क्रान्ति लाकर उसके शर के साथ एक दिशा में होने से योग और भिन्न दिशा में होने से अन्तर किया जाता है । इस प्रकार क्रिया करने के पश्चात् स्व-क्रान्ति लाकर तदनुसार उत्तराक्रान्ति में उत्तर गति तथा दक्षिणा क्रान्ति में दक्षिण-गति का निर्धारण होता है । अथवा मकरादि छः राशियों में उत्तरागति और कर्कादि छः राशियों में दक्षिणागति होती है । इस प्रकार ग्रहों की याम्योत्तर गति का विचार करना चाहिए ।

अथ नीचोच्चा ग्रहाणां गतिः । तत्र स्वभ्रमणप्रदेशात् कदाचिद् ग्रह उपरि स्थितो भवति कदाचिदधःस्थः । यत्र मध्यमो ग्रहो भवति तत्कक्ष्यामण्डलम् । यत्र स्फुटग्रहो भवति तत्प्रतिमण्डलम् । अर्कचन्द्रौ मन्दप्रतिमण्डले भ्रमतः । ताराग्रहाः शीघ्रप्रतिमण्डले भ्रमन्ति । तत्र कक्ष्यामण्डलादुपरि स्थितो ग्रहो यदा भवति तदा द्रष्टुरतिदूरस्थो भवत्यतिदूरत्वात् स्वल्पबिम्बो दृश्यते स उच्चां गतिमाश्रितो भवति । यदा कक्ष्यामण्डलादधःस्थितो भवति तदा भूमेरासन्नत्वान्महान् प्रमाणो दृश्यते स नीचां गतिमाश्रितो भवति । तत्र च ग्रहे स्फुटीक्रियमाणेऽन्त्यकर्णः प्रथमे केन्द्रपदे भवति चतुर्थे वा तदा ग्रह उच्चां गतिमाश्रितो भवति ।

---

१. प्राचीनाः कदम्बसूत्रीयशरसंस्कारेणैव स्फुटां क्रान्तिमानयन्ति । तदर्थमेव भास्कराचार्यः सिद्धान्तशिरोमण्यु दयास्तदृक्कर्मवासनाधिकारयोर्विशेषं लिलेख ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ यदा द्वितीयतृतीयपदस्थो भवति तदा नीचां गतिमाश्रितोऽत एव त्रिज्यायां कोटिफलं धनमृणं वा क्रियते येन प्रतिमण्डलप्रापी स्फुटकर्णो भवति। तथा चाऽऽचार्यः—

ग्रहों की नीचोच्च गति का विवेचन करते हैं। ग्रह स्वभ्रमणप्रदेश से कभी ऊपर और कभी नीचे स्थित होता है। जहाँ पर मध्यम ग्रह होता है, वह कक्षामण्डल है। तथा जहाँ पर स्पष्ट ग्रह होता है, वह प्रतिमण्डल कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा मन्द-प्रतिमण्डल में भ्रमण करते हैं। तथा तारा-ग्रह शीघ्र-प्रतिमण्डल में भ्रमण करते हैं। कक्षामण्डल से ऊपर जब ग्रह स्थित होता है, तब दर्शक उसके अत्यन्त दूर होने के कारण ग्रहबिम्ब का स्वल्प बिम्ब देखता है, और ग्रह उच्चगत्याश्रित रहता है। जब कक्षामण्डल के अधोभाग में भूमि के आसन्न ग्रह होता है, तब दर्शक को वह बृहत् प्रमाण में दिखलायी देता है और वह नीचगत्याश्रित होता है। ग्रहस्पष्टीकरण करते समय जब अन्त्यकर्ण प्रथम अथवा चतुर्थपाद में होता है, तब ग्रह उच्चगति का होता हैं। जब द्वितीय और तृतीयपाद में होता है, तब ग्रह नीचगति का होता है। इसलिए त्रिज्या में कोटिफल धन अथवा ऋण किया जाता है, जिससे प्रतिमण्डल प्रान्तगत स्फुटकरण होता है। जैसाकि कि आचार्य ने कहा है :—

[1]शीघ्रान्मध्यविहीनाद्राशित्रितये गतैष्यदंशज्या।
भुजकोटी तत्परतः षड्भ्यः पतिते स एव विधिः॥

तीन राशि में शीघ्र-मध्य ग्रह घटाकर गतैष्य अंशज्या क्रमशः भुज-कोटि होती है। छः राशि में घटाने पर इसी प्रकार समझना चाहिए। स्वपरिधि से गुणाकर ३६० का भाग देने पर परिणामिक करने से कोटिफल प्राप्त होता है। जो कि मकरादि और कर्कादि में होने से क्रमशः धन और ऋण होता है।

स्वपरिधिगुणिते भाज्ये खर्तुगुणैस्ते विपरिणते तच्च।
कोटिफलं व्यासार्धे मृगकर्क्यादौ चयापचयः॥

तद्भुजकृतियोगपदैरिति।

भुज और कोटि के वर्गयोग का मूल लेने पर फल प्राप्त होता है।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते—

तद्गुणिते ज्ये भांशैर्हृते फले कोटिफलयुता त्रिज्या।
आद्यन्तयोर्विहीना पदयोर्द्वितृतीययोः कोटिः॥

तद्भुजफलकृतियोगान्मूलं कर्ण इति।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १७ अध्यायस्य ४-५ श्लोकौ।
२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवमादिषु कारणज्ञाने अभिज्ञः। अभि मुख्येन जानातीत्यभिज्ञः॥

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है–

परिधि गुणित ज्या में ३६० का भाग देकर जो फल आता है। उसे कोटिफल की त्रिज्या में जोड़ते हैं। इसका प्रथम और चतुर्थ पद में ऋण और द्वितीय, तृतीय पद में कोटि होती है। कोटि और भुजफल का वर्गयोगमूल लेने पर कर्ण होता है। इस प्रकार के कारणों के जानने में सांवत्सर को अभिज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए।

अन्यदप्याह–

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाणस्थिति-विमर्दवर्णादेशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा।

इसके आगे आचार्य ने और भी कहा है:–

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में ग्रहणादि, मोक्ष-काल, दिग्प्रमाण, स्थिति, विमर्द, वर्णादेश, अनागत-ग्रहसमागम तथा ग्रहयुद्धों का फलादेश करने वाला भी सांवत्सर को होना चाहिए।

सूर्याचन्द्रमसोरर्कशशिनोर्ग्रहणे उपरागे ग्रहणादि ग्रहणप्रारम्भं जानाति। एतावति स्वदिनगते काले ग्राह्यग्राहकबिम्बसम्पर्कः। तथा मोक्षकालं जानाति। एतावति गते काले मोक्षः। ग्राह्यमण्डलं [1]सकलं ग्राहकस्त्यजति। तथा कालं जानाति। प्रग्रहणमोक्षयोरन्तर एतावान कालः। तथा दिक्। अमुकस्यां दिशि प्रग्रहणममुकस्यां निमीलनममुकस्यां मध्यग्रहणममुकस्या-मुन्मीलनममुकस्यां मोक्ष इति। प्रमाणं यथा– खण्डग्रहण एतावद्बिम्बं छिन्नं भवति। मध्यग्रहण-कालिके तिथ्यन्ते स्फुटग्रग्रहणस्थित्यर्धं विशोध्य ग्रहणादिर्भवति, तत्रैव मोक्षकालिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। स्थित्यर्धद्वयस्य योगः स्थितिकालः। विमर्दो निमीलनोन्मील-नयोर्मध्यकालः। तावन्तं कालं ग्राह्यबिम्बं सकलं ग्राहकः संछाद्य तिष्ठति स विमर्दकालः। तथा वर्णो ग्रहणे ग्राहकगृहीतस्य बिम्बस्य। स धूम्रकृष्णताम्रकपिल इति। एतत्सर्वं गणितस्कन्धनिर्दिष्टम्। वलनविक्षेपवशेन परिलेखेन प्रग्रहणादीनां दिग्ज्ञानम्। मध्यग्रहणपरिलेखकरणात् प्रमाणज्ञानम्। निमीलिनोन्मीलनविमर्दार्द्धयोर्योगे विमर्दकालः। वर्णो यथा:–

सांवत्सर सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण में ग्रहण के प्रारम्भ को जानता हो। इतने इष्टदिन के गतकाल पर ग्राह्यग्राहक बिम्ब का सम्पर्क होगा (यह जानता हो)। मीक्षकाल को जानता हो, अर्थात् इतने गतकाल पर मोक्ष होगा, अर्थात् ग्राह्यमण्डल को ग्राहकग्रह सम्पूर्ण रूप से छोड़ देगा, इस प्रकार के काल को जानता हो। ग्रहण और मोक्ष के मध्य जो कालान्तर हो उसको भी जाने। इसी प्रकार दिग्ज्ञान का तात्पर्य है कि

---

१. समग्रमिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमुक दिशा में ग्रहण, अमुक दिशा में निमीलन, अमुक दिशा में मध्य ग्रह, अमुक दिशा में उन्मीलन और अमुक दिशा में मोक्ष होगा। प्रमाण का तात्पर्य है कि खण्डग्रहण में बिम्ब का जितना भाग छिन्न होता हो, मध्यग्रहणकालिक तिथ्यन्त में अस्फुट ग्रहण तिथ्यर्ध घटाकर ग्रहण का आदि होता है, और उसी में मोक्षकालिक स्फुट स्थित्यर्ध जोड़कर मोक्षकाल होता है। स्थित्यर्धद्वय का योग स्थितिकाल होता है। निमीलन और उन्मीलन के मध्यकाल को विमर्दकाल कहते हैं। विमर्दकाल का तात्पर्य है कि ग्राह्यबिम्ब को ग्राहकबिम्ब कब तक संछादित रखता है। वर्ण का तात्पर्य ग्रहण में ग्राहक द्वारा ग्रहण किया गया बिम्ब का वर्ण है। वह धूम्र, कृष्ण, ताम्र और कपिलादि होता है। यह सब गणितस्कन्ध में निर्दिष्ट किया गया है। वलन और विक्षेप के द्वारा परिलेख में ग्रहण का दिग्ज्ञान किया जाता है। मध्यग्रहण का परिलेख करने से प्रमाण का ज्ञान होता है। निमीलन, उन्मीलन और विमर्दार्ध के योग से विमर्दकाल प्राप्त होता है। वर्णों के विषय में इस प्रकार कहा गया है :–

आद्यन्तयोः स धूम्रः कृष्णः खण्डग्रहेऽर्धतोऽभ्यधिके।
ग्रासे स कृष्णताम्रः सर्वग्रहणे कपिलवर्णः॥इति।

ग्रहण के आदि और अन्त में धूम्र वर्ण, खण्डग्रहण में कृष्णवर्ण अर्धाधिक ग्रास होने पर कृष्ण तथा ताम्रवर्ण और सर्वग्रहण में कपिलवर्ण होता है।

एवमादिकानामादेशानामनागतानामेष्याणामादेष्टा कथयिता। तथा अनागतानां ग्रहसमागमानां ग्रहयुद्धानां चादेष्टा। समागमस्ताराग्रहाणां चन्द्रमसा सहैकराशिगतानां भवति। भौमादीनामेकराशिगतानां दक्षिणोत्तरसंस्थानवशेन युद्धं भवति।

सांवत्सर इस प्रकार के आदेशों का जो अनागत और भविष्य में होने वाले हैं, उनकी घोषणा करने वाला हो। अनागत ग्रहयुद्ध और ग्रहसमागम का आदेश करने वाला हो। समागम का तात्पर्य है ताराग्रहों का चन्द्रमा के साथ एक राशि में प्राप्त होना भौमादि ग्रहों का एक राशि में स्थित होने पर दक्षिणोत्तर स्थिति के कारण युद्ध होता है।

तत्र समागमे युद्धे चैतत्परिज्ञानम्। यथा– अमुको ग्रह उत्तरे। अमुको दक्षिणे भविष्यति। तयोश्चान्तरमेतावन्तो हस्ता एवमेतावन्त्यङ्गुलानि वा भेदः समागमो वा भविष्यतीति। एतदपि गणितसिद्धम्। ग्रहयोर्विक्षेपौ कृत्वा ततस्तयोर्विक्षेपयोरेकदिक्कयोरन्तरं कार्यं, भिन्नदिक्कयोर्योगः। ततस्तस्मादन्तराद्योगाद्वा ग्रहमानैक्यार्धं विशोधयेत्। यदि न शुद्ध्यति तदा भेदसमागमः। अधःस्थेन ऊर्ध्वस्थो ग्रहश्छाद्यते। अथ शुद्ध्यति तदा संशोध्य यदवशिष्यते तद्ग्रहान्तरं स्फुटं भवति। तच्च लिप्तारूपं तस्य षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं भागास्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एव हस्ताः शेषं चतुर्विंशत्यां सङ्गुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तान्यङ्गुलानि। तत्र यस्य दक्षिणो विक्षेपः स दक्षिणभागस्थो यस्योत्तरः स उत्तरविभागस्थः। द्वयोरेकदिक्कयोर्यस्याधिकः स तत्रस्थः। इतरोऽन्यत्र स्थितः। तत्र फलानि वक्ष्यत्याचार्यः। तथा चोक्तम् :–

समागम और युद्ध में इस प्रकार विचार किया जाता है, जैसाकि अमुक ग्रह उत्तर में और अमुक ग्रह दक्षिण में होगा। इन दोनों का अन्तर इतने हाथ तथा अङ्गुल होने पर ग्रह-भेद अथवा ग्रहसमागम होगा, यह भी गणित से सिद्ध होता है। ग्रहों का विक्षेप लाकर उन विक्षेपों का एक दिशा में अन्तर और भिन्न दिशा में योग करना चाहिए। तत्पश्चात् उस अन्तर अथवा योग से मानैक्यार्ध को घटा लें। यदि न घटे तो भेदसमागम होता है। अधःस्थग्रह ऊर्ध्वस्थग्रह को आच्छादित करता है। यदि घटाने पर घट जाता है, तो घटाने से शेषफल स्पष्ट ग्रहान्तर होता है। वह कलात्मक होता है। जिसमें ६० का भाग देने से प्राप्त अंशादि मान ही हस्तप्रमाण होते हैं। शेष को २४ से गुणाकर ६० का भाग देने पर अङ्गुलात्मक मान प्राप्त होता है। यहाँ पर जिसका दक्षिण विक्षेप होता है, वह दक्षिणविभागस्थ और जिसका उत्तर विक्षेप होता है वह उत्तरविभागस्थ होता है। दोनों ग्रहों के एक दिशा में होने पर जिसका अधिक मान होता है, वह उस दिशा का माना जाता है और दूसरा भिन्न दिशा का होता है। इसके फल को आचार्य ने इस प्रकार कहा है :–

[1]भागैः कराः परस्परमेषां युद्धं समागमः शशिना।
रविणास्तमय उदक्स्थो ग्रहो जयी दक्षिणे शुक्रः॥ इति।

एतेषामप्यनागतानामादेष्टा॥

अंश के तुल्य हस्त-प्रमाण होता है। चन्द्रमा के साथ परस्पर ग्रहों का युद्ध और समागम कहा जाता है। रवि से अस्तंगत उत्तर दिक्स्थित ग्रह विजयी होते हैं। दक्षिण दिशा का शुक्र विजयी होता है। इस प्रकार इन अनागत विषयों का भी आदेश करने वाला सांवत्सर को होना चाहिए।

अन्यदप्याह –

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः।

और भी आचार्य ने कहा है :–

प्रत्येक ग्रहों के भ्रमणपथ का योजनात्मक कक्षाप्रमाण प्रत्येक ग्रह का योजनात्मक अन्तर बतलाने में सांवत्सर को कुशल होना चाहिए।

---

१. भागैरंशैः करा हस्ता ज्ञेया इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकमेकं प्रत्येकं प्रत्येकस्य ग्रहस्य भ्रमणयोजनानि प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनानि तेषां परिच्छेदे परिच्छितौ विज्ञाने कुशलः शक्तः। यथा :– अमुको ग्रह एतावद्भिर्योजनैर्भूगोलदुपरि भ्रमति। ग्रहयोजनकर्णं जानातीत्यर्थः। तथा कक्ष्याप्रमाणपरिच्छेदकुशलः। अमुकस्य ग्रहस्यैतावन्ति कक्ष्यायोजनानि। मध्यमो ग्रहो यत्र भ्रमति तद्वृत्तपरिज्ञानमित्यर्थः।

सांवत्सर प्रत्येक ग्रह के ग्रह-भ्रमण-योजन को ज्ञात करने में कुशल हो, अर्थात् समर्थ हो। जैसाकि– अमुक ग्रह भूमण्डल के ऊपर इतने योजन की दूरी पर भ्रमण करता है, इस प्रकार के योजनकर्ण को जानता हो। कक्षाप्रमाण के ज्ञान में कुशल हो अर्थात् अमुक ग्रह का कक्षायोजन इतना होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मध्यमग्रह जिस वृत्त में भ्रमण करता है उस वृत्त का उसे परिज्ञान हो।

तच्च कक्ष्याकर्णपरिज्ञानं पुलिशादिषु पठ्यते तत आनीयास्माभिरिह प्रदर्श्यते। तत्र तावद्योजनप्रमाणज्ञानम् :–

कक्षा-कर्ण का परिज्ञान पुलिशादि ग्रन्थों में कहा गया है। वहाँ से सङ्गृहीत करके मेरे द्वारा यहाँ प्रदर्शित किया जा रहा है। वहाँ पर योजनक्रम इस प्रकार वर्णित है–

योजनमष्टौ क्रोशाः [1]क्रोशश्चत्वारि करसहस्राणि।
हस्तः शङ्कुद्वितयं द्वादशभिः सोऽङ्गुलैः शङ्कुः॥

अथ ग्रहाणां चतुर्युगाध्वयोजनप्रमाणम् :–

आठ क्रोश का एक योजन, चार हजार हाथ का एक क्रोश, दो शङ्कु का एक हाथ और १२ अंगुल का एक शङ्कु होता है। ग्रहों का चतुर्युग – अध्वयोजनप्रमाण इस प्रकार कहा गया है :–

युगमासाधिकमासाः सभमासा योजनीकृताः सोऽध्वा।
प्राग्यायिनां ग्रहाणां तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ताः॥

युगमास तथा युगाधिमास में युक्त भमास को योजनात्मक बनाने पर चतुर्युगअध्वयोजन प्रमाण होता है। इसमें ग्रहभगण का भाग देने पर ग्रहों की गुर्वाभिमुख गमन की कक्षा हो जाती है।

यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्ति सावनमानेन चतुर्युगवर्षाणि भवन्ति। तानि च :–
परिवर्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते ४३२००००।

---

१. भास्कराचार्यकृतलीलावत्यां तु – "हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्" इति क्रोशपरिभाषा। अतो भास्करक्रोशार्द्धं पुलिशक्रोशमानं तदष्टकं पुलिशयोजनमानं तु भास्करक्रोश-चतुष्टयेन योजनेन सममेव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतानि चतुर्युगवर्षाणि द्वादशगुणानि ५१८४०००० । एते सावनेन चतुर्युगमासाः । एत एव साधिमासकाः कर्तव्याः ।

अधिमासकाः षडग्निनिकदहनच्छिद्रशररूपाः १५९३३३६ ॥

एतैर्युक्ता जाताः ५३४३३३३६ । एते चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन मासा भवन्ति । एते भमाससहिताः कर्तव्याः । भमासाश्चात्राधिका ग्रहीतव्याः । चतुर्युगेण चान्द्रमासेभ्यो यावन्तोऽतिरिच्यन्त इति । तत्र चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिनानि ।

आर्क्षेण खाष्टखत्रय[1]रसयुग्मगुणानिलशशाङ्काः १७३२६०००८० ।

चतुर्युग में जितने रवि भगण होते हैं, उतने ही सावनमान से चतुर्युगीयवर्षमान होते हैं । और इनका मान ४३२ गुणित १०००० अर्थात् ४३२०००० युग में रवि के वर्षमान होते हैं । इस युगवर्षमान को १२ से गुणा करने पर सावनमान से ५१८४०००० युगमास होते हैं । इनको अधिमास सहित किया जाता है । अधिमासों की संख्या चतुर्युग में १५९३३३६ होती है । इनको जोड़ने पर चतुर्युग में चान्द्रमान से मासों की संख्या = ५३४३३३३६ होती है । इनको नाक्षत्रमास सहित करना चाहिए । नाक्षत्रमास यहाँ पर अधिक ग्रहण किया जाता है । अर्थात् चतुर्युगात्मक चान्द्रमास से जितना शेष होता है । चतुर्युग में नाक्षत्रदिनों का मान = १७३२६०००८० होता है ।

एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६ । एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासा भवन्ति । एत एव चन्द्रभगणाः । चन्द्रभगणेनैकेन नाक्षत्रमानमासो भवति । तस्मान्नाक्षत्रमानमासानां चन्द्रमासाः संशोध्याः । संशोध्य जाताः ४३२०००० । एतावन्तश्चतुर्युगेण चन्द्रमासेभ्यो नाक्षत्रमासा अतिरिच्यन्त इति । तस्मादेतान् भमासान् सूर्यमासाधिमाससंयोगेऽस्मिन् ५३४३३३३६ संयोज्य जाताः ५७७५३३३६ । एवं युगमासाधिकमासभमासयोगतश्चन्द्र-भगणा[2] उत्पन्नाः । तस्माद्वक्ष्यति :—

इस नाक्षत्रमानदिन में ३० का भाग देने पर लब्धफल ५७७५३३३६ = चतुर्युग में नाक्षत्रमास के मान होते हैं । ये ही चन्द्रभगण कहे जाते हैं । एक चन्द्रभगण के तुल्य नाक्षत्रमान के मास होते हैं । इस नाक्षत्रमानमास में चान्द्रमास घटाने पर ४३२०००० । इतने चतुर्युग में चान्द्रमास से नाक्षत्रमास अधिक होते हैं । अतएव इस भमास-संख्या में सूर्यमासाधिमास ५३४३३३३६ को जोड़कर प्राप्त योगफल = ५७७५३३३६ हुए । इस प्रकार युगमास, अधिकमास और नाक्षत्रमास के योग से

---

१. षड्दस्रगुणेति पाठान्तरम् । द्रष्टव्यं ५१ पृष्ठमस्य ग्रन्थस्य ।

२. अतोऽत्र – "युगमासाधिकमासाः सममासाः" इति पुलिशवाक्यव्याख्या भट्टोत्पलेन चन्द्रभगणा इति कृता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रभगणों की संख्या उत्पन्न हुई। इस लिए कहा गया है कि "रसदहनहुतवहानल" इत्यादि अर्थात् ५७७५३३३६ चन्द्रभगण होते हैं।

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै ५७७५३३३६ श्चन्द्रः।

अथैते चन्द्रभगणा योजनीकार्याः। कथमित्यत्रोच्यते :– चन्द्रकक्ष्यायां पञ्चदशभिर्योजनैरेकैका लिप्ता भवत्यतश्चन्द्रभगणानां लिप्ताः कृत्वा पञ्चदशभिर्गुणयित्वा योजनसंख्यात्वमाप्नुवन्ति। वक्ष्यति च :–

पञ्चदशहता योजनसंख्येति।

इन चन्द्रभगणों को योजनात्मक करना है। योजनात्मक कैसे किया जाता है ? इसको बतला रहे हैं :– चन्द्रकक्षा में १५ योजन की एक कला होती है। इसलिए चन्द्रभगणों को कलात्मक बनाकर १५ से गुणाकर योजनात्मक संख्या प्राप्त होती है। जैसाकि कहा गया है– "पञ्चदशहतायोजनसंख्या"।

तत्र युगमासाधिकमासभमासयोगोऽयं ५७७५३३३६ द्वादशहतो जातः ६९३०४००३२। एते चतुर्युगेण चन्द्रराशयः। एते त्रिंशद्गुणाः २०७९१२००९६०। एते चतुर्युगेण चन्द्रभागाः षष्ट्या गुणिताः १२४७४७२०५७६००। एताश्चतुर्युगेण चन्द्रलिप्ताः। एताः पञ्चदशहता जाताः १८७१२०८०८६४०००। एतावन्ति योजनानि प्रत्येकस्य ग्रहस्य चतुर्युगाध्वा।

आचार्यः पठिष्यति च :–

यहाँ पर युगमास, अधिकमास, नाक्षत्रमास का योग ५७७५३३३६, इसको १२ से गुणा करने पर ६९३०४००३२ होता है। चतुर्युग में इतनी चन्द्रराशियाँ हुई। इनको ३० से गुणा करने पर २०७९१२००९६०, इतने चतुर्युग में चन्द्रमा के अंशात्मक मान हुए, जिनको ६० से गुणित करने पर १२४७४७२०५७६००; ये चतुर्युग की चन्द्रकलाएँ प्राप्त होती हैं। इनको १५ से गुणा करने पर गुणनफल = १८७१२०८०८६४००० = प्रत्येक ग्रह का चतुर्युग में योजनात्मक अध्वप्रमाण का मान उपपन्न हुआ। आचार्य आगे कहते हैं :–

वेदरसाष्टवियद्वसुखरविनगाष्टेन्दवः सहस्रघ्नाः १८७१२०८०८६४०००।

एतावन्ति योजनान्येकेन ग्रहेण स्वकक्ष्यास्थेन पूर्वां दिशमाक्रमता चतुर्युगेण गन्तव्यानीति। तद्युक्तम् :– प्राग्यायिनां ग्रहाणामिति।

१८७१२०८०८६४×१००० = १८७१२०८०८६४००० अध्वप्रमाण होते हैं। ग्रहों के द्वारा स्वकक्षा में स्थित होकर पूर्वदिशा में भ्रमण करते हुए चतुर्युग में इतने ही योजनात्मकप्रमाण भ्रमण करने होते हैं। अतः पूर्वगामी ग्रहों के अध्वप्रमाण का कथन युक्तियुक्त ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ताः। अत्र तावदाकाशकक्ष्याप्रमाणं क्रियते। तत्र चतुर्युगाध्वयोजनानीमानि १८७१२०८०८६४०००। एतान्यष्टाधिकेन[1] चतुर्युगसहस्रेण कल्प इत्यष्टाधिकेन सहस्रेण गुणितानि जातानि १८८६१७७७५१०९१२०००। इयमाकाशकक्ष्या। अस्या अभ्यन्तरं सविता वितमस्कं करोति। एषा च पठ्यते :—

इसलिए कक्षामान को स्वभगण से भाग देते हैं। यहाँ पर आकाशकक्षा का प्रमाण प्रस्थापित किया जाता है। चतुर्युगीय अध्वयोजनमान १८७१२०८०८६४००० इनको अष्टाधिक सहस्रचतुर्युगात्म ककल्प के मान से गुणा करने पर १८८६१७७७५-१०९१२०००, ये आकाश के कक्षामान होते हैं। आकाशकक्षामान का तात्पर्य सूर्य की किरणों से नभोमण्डल का जितना प्रदेश प्रकाशित होता है, उसी प्रदेश को आकाशकक्षा के रूप में पठित किया गया है। इस आकाशकक्षा का मान १८८६१७७७५१०९१२००० आचार्यों ने निर्धारित किया है।

खत्रयसूर्यनवाम्बरचन्द्रवाणमहीधरसप्तमहीध्राः ।
चन्द्ररसाष्टकमङ्गलचन्द्रा मार्गमिदं नभसः प्रवदन्ति॥

अथ ग्रहभगणाः—

परिवर्त्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतै४३२००००र्भास्करो युगं भुङ्क्ते।
रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै५७७५३३३६ श्चन्द्रः॥
वेदाश्विवसुरसाङ्गलोचनदस्रै २२९६८२४ रवनिसूनुः।
अम्बरगगनवियन्मुनिगुणविवर[2]नगेन्दुभिः१७९३७०००शशिसुतश्च॥

इसके पश्चात् ग्रहभगण की संख्या बताते हैं :—

सूर्यभगण एक युग में = ४३२००००, चन्द्रभगण = ५७७५३३३६, भौमभगण = २२९६८२४, बुधभगण = १७९३७०००, गुरुभगण = ३६४२२०, शुक्रभगण = ७०२३३८८, शनिभगण = १४६५६४। बुध और शुक्र सूर्य के समतुल्य होते हैं। इनके भगणमान से कक्षामान में भाग देने पर स्व-स्वकक्षाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

आकाशलोचनेक्षणसमुद्रषट्कानलै ३६४२२० र्जीवः।
अष्टवसुहुतवहानलयमखनगै७०२३३८८र्भार्गवश्चापि॥
कृतरसशरर्त्तुमनुभिः१४६५६४सौरो बुधभार्गवौ दिवाकरवत्। इति।
एतैर्भागमपहृत्य यथाक्रमं कक्ष्याप्रमाणानि।

---

१. सम्प्रति प्रसिद्धसूर्यसिद्धान्तादिमतेन चतुर्युगसहस्रेण कल्प इति।
२. विवर-अन्तर-छिद्र-रन्ध्र-शब्दा एकपर्याया नवसंख्याद्योतकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा –

रविकक्ष्या खखार्थरूपाग्निगुणाब्धयः ४३३१५००

चन्द्रकक्ष्या शून्यखखजिनाग्नयः ३२४०००

भौमकक्ष्या मुन्यग्नि[1]नन्दषट्काब्धिरूपवसवः ८१३६९३७

बुधशीघ्रकक्ष्या भवरदाब्धिदिशः १०४३२११।

बृहस्पतिकक्ष्या वेदर्त्वगार्थमुनिविश्वार्थाः ५१३७५७६४

शुक्रशीघ्रकक्ष्या रदर्त्वब्धिषडङ्गाश्विनः २६६४६३२

सौरकक्ष्या गोऽग्न्यगशशिमुनिरसागार्काः १२७६७१७३९

रविकक्ष्या सवि[2]कला षष्ठिहता नक्षत्रकक्ष्या

ग्रहकक्षा का मान इस प्रकार है :–

सूर्यकक्षा प्रमाण = ४३३१५००, चन्द्रकक्षा प्रमाण = ३२४०००, भौमकक्षाप्रमाण = ८१३६९३७, बुधशीघ्रकक्षाप्रमाण = १०४३२११, गुरुकक्षाप्रमाण = ५१३७५७६४, शुक्रशीघ्रकक्षाप्रमाण = २६६४६३२, शनिकक्षाप्रमाण = १२७६७१७३९। रविकक्षा विकला सहित होती है। इसको ६० से गुणा करने पर नक्षत्र कक्षा का मान प्राप्त होता है।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते :–

अर्को भषष्ट्यंश इति।

सा च रविखखगोऽष्टनवतत्त्वानि २५९८९००१२

तथा च पुलिशाचार्यः–

आकाशशून्यतिथिगुणदहनसमुद्रै४३३१५००र्बुधार्कशुक्राणाम्।
इन्दोः सहस्रगुणितैः समुद्रनेत्राग्निभि३२४०००श्च स्यात्॥
भूसूनोर्मुनिरामच्छिद्रर्त्तुसमुद्रशशिवसुभिः ८१४६९३७।
रुद्रयमाग्निचतुष्कव्योमशशाङ्कै१०४३२११र्बुधोच्चस्य॥
जीवस्य वेदषट्कस्वरविषयनगाग्निशीतकिरणार्थैः५१३७५७६४।
शुक्रोच्चस्य यमानलषट्कसमुद्रर्त्तुरसदस्रैः २६६४६३२॥

---

१. नवेति क्ष० क० पु० पाठः।

२. सविकला विकलासहिता यतो गणितेन रविकक्षा सावयवा = $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{रविभगणा}}$ = ४३३१५००$\frac{२}{५}$ = ४३३१५००। २४ इति वास्तवा समायाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्रमणोऽर्कजस्य नवशिखिमुनीन्दुनगषट्कमुनिसूर्यैः१२७६७१७३९।
रविखवियन्नववसुनवविषयेक्षणयोजनै२५९८९००१२र्भकक्ष्यायाः॥

जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

नक्षत्र का षष्ट्यंश सूर्यकक्षा होती है, और इसका मान २५९८९००१२ कहा गया है।

इसी प्रकार आचार्यपुलिश का भी अभिमत है :–

बुध, रवि, शुक्रकक्षा = ४३३१५००। चन्द्रकक्षा = ३२४०००। भौमकक्षा = ८१४६९३७। बुधोच्चकक्षाप्रमाण = १०४३२११। गुरुकक्षा = ५१३७५७६४। शुक्रोच्चकक्षा = २६६४६३२। शनिकक्षा = १२७६७१७३९। भकक्षा = २५९८९००१२।

अथ कर्णानयनम्।

तत्रादौ तदुपयोगिनीनां चान्द्रीणां कलानामानयनमाह :–

अब कर्णानयन प्रस्तुत किया जाता है :–

सर्वप्रथम इसके लिए उपयोगी चान्द्रकलात्मक मान का आनयन बतलाते हैं: –

इष्टग्रहकक्ष्याभ्यो यल्लब्धं चन्द्रकक्ष्यया भक्त्वा।
ता मध्यमा ग्रहाणां सौरादीनां कलाश्चान्द्र्यः॥

इष्टग्रह के कक्षायोजनमान में चन्द्रकक्षायोजन से भाग देने पर प्राप्त कलात्मक फल उस ग्रह का मध्यम-चान्द्रकलामान होता है। यह विधि सूर्यादि सभी ग्रहों के लिए है।

इष्टग्रहकक्ष्यायोजनानां चन्द्रकक्ष्यायोजनैर्भागमपहृत्यावाप्तं लिप्तास्तस्यैव ग्रहस्य चान्द्र्यो भवन्ति। कक्ष्यामहत्त्वविवक्षया सौरादीनामिक्तक्तम्। सौरादीनां मध्यमग्रहाणां चान्द्र्यः कला भवन्ति। तत्र कर्मणो लाघवार्थं सर्वग्रहाणां भाज्यभाजकराशी चन्द्रकक्ष्यायोजनैरपवर्त्तनीयौ तत्र सर्वग्रहस्य भाज्यो राशिश्चन्द्रभगणा भवन्ति। भाजकराशिः स्वभगणा इति। तत्रैतत्कर्म जातम्। चन्द्रभगणानां यस्यैव ग्रहस्य संबन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कलाश्चान्द्र्यो [1]भवन्ति। एवं दर्शितविधिना सर्वग्रहाणामागताश्चान्द्र्यः कलाः लिख्यन्ते।

अभीष्ट ग्रह का कक्षा योजन चन्द्रकक्षा योजन से विभक्त कर प्राप्त कलात्मक मान उस ग्रह का चान्द्रमान होता है। कक्षा के महत्त्व को व्यक्त करने के लिए

---

१. लभ्यन्त इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्यादि ग्रहों का उल्लेख है। सूर्यादि मध्यम ग्रहों की चान्द्रकला होती है। यहाँ गणितकर्म के लाघव हेतु सभी ग्रहों की भाज्यभाजकराशि चन्द्रकक्षायोजन से अपवर्तित कर सभी ग्रहों की भाज्यभाजकराशि चन्द्रभगण कही गयी है। भाजकराशि स्व-स्वभगण है। यह गणितकर्म आगे उपपन्न किया जाता है। चन्द्रभगणों को जिस ग्रह से सम्बन्धित भगण से भाग दिया जाता है, भजनफल उसी ग्रह की चान्द्र कला होती है। इस प्रकार प्रदर्शित विधि के आधार पर सभी ग्रहों की चान्द्रकलाएँ निम्नलिखित हैं–

रवेः १३ $\frac{१५९३३३६}{४३२००००}$ ।

चन्द्रस्य १।

भौमस्य २५ $\frac{३३२७३६}{२२९६८२४}$ ।

बुधस्य ३ $\frac{३९४२३३६}{१७९३७०००}$ ।

जीवस्य १५८ $\frac{२०६५७६}{३६४२२०}$ ।

शुक्रस्य ८ $\frac{१५७४२३२}{७०२२३८८}$ ।

शनेः ३९४ $\frac{७१२०}{१४६५६४}$ ।

सूर्यचान्द्रकला = १३ $\frac{१५९३३३६}{४३२००००}$ ।

चन्द्रचान्द्रकला = १ ।

भौमचान्द्रकला = २५ $\frac{३३२७३६}{२२९६८२४}$ ।

बुधचान्द्रकला = ३ $\frac{३९४२३३६}{१७९३७०००}$ ।

गुरुचान्द्रकला = १५८ $\frac{२०६५७६}{३६४२२०}$ ।

शुक्रचान्द्रकला = ८ $\frac{१५७४२३२}{७०२२३८८}$ ।

शनिचान्द्रकला = ३९४ $\frac{७१२०}{१४६५६४}$ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(खकक्षायाः[1] ५८२१५३६२६८८)।

(नभकक्षा का = ५८२१५३६२६८८)।

अथ चान्द्रीभिः कलाभिर्ग्रहकक्ष्याकर्णानयनमाह :–

चान्द्रकलाओं से ग्रह कया के कर्णानयन को बतलाते हैं–

पञ्चदशहता योजनसङ्ख्या तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भः।
योजनकर्णोऽधः स्थाद्भूयोजनकर्णविधिना वा॥

चान्द्रकला १५ से गुणित करने पर योजन-संख्या हो जाती है। इसको अर्धव्यास अथवा योजनकर्ण कहते हैं। इसी को भूयोजनकर्ण कहा जाता है।

एताश्चान्द्र्यः कलाः पञ्चदशगुणिता योजनत्वं गच्छन्ति योजनभूताश्च क्रमेण लिख्यन्ते :–

ये चान्द्रकलाएँ १५ से गुणित होकर योजनात्मक ही जाती हैं। जिनका मान क्रमशः निम्नलिखित हैं :–

रवेः $२०० \frac{२३०००४०}{४३२००००}$ ।

चन्द्रस्य १५।

भौमस्य $३३७ \frac{३९७३६२}{२२९६८२४}$ ।

बुधस्य $४८ \frac{५३२४०४०}{१७९३७०००}$ ।

गुरोः $२३७८ \frac{१८४८८०}{३६४२२०}$ ।

शुक्रस्य $१२३ \frac{२५४६३१६}{७०२२३८८}$ ।

शनेः $५९१० \frac{१०६८००}{१४६५६४}$ ।

[2]**नक्षत्राणाम्** $१२०३१ \frac{२०४१२}{२१६००}$ ।

रवि कलायोजनमान = $२०० \frac{२३०००४०}{४३२००००}$ ।

चन्द्र कलायोजनमान = १५।

---

१. इदं न केष्वपि पुस्तकेषु वर्ततेऽस्माभिर्गणितेन निश्चित्य लिखितमावश्यकत्वात्।
२. षष्टिगुणितानि रविकलायोजनानि नक्षत्राणां कलायोजनानि भवन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भौम कलायोजनमान = $३३७\frac{३९७३६२}{२२९६८२४}$ ।

बुध कलायोजनमान = $४८\frac{५३२४०४०}{१७९३७०००}$ ।

गुरु कलायोजनमान = $२३७८\frac{१८४८८०}{३६४२२०}$ ।

शुक्र कलायोजनमान = $१२३\frac{२५४६३१६}{७०२२३८८}$ ।

शनि कलायोजनमान = $५९१०\frac{१०६८००}{१४६५६४}$ ।

नक्षत्रों का कलायोजनमान = $१२०३१\frac{२०४१२}{२१६००}$ ।

(खकक्षायाः ८७३२३०४४०३२०)।

एतानि प्रतिकक्ष्यं ग्रहाणां लिप्तायोजनानि।

तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भ इति।

(आकाश - कक्षा का कलायोजनमान = ८७३२३०४४०३२०)।

एतैः सर्वकक्ष्यायोजनैरर्द्धविष्कम्भो [1]व्यासार्द्धं $३४३७\frac{९६७}{१३०९}$ गुणितः प्रतिकक्ष्यं कर्णार्द्धयोजनानि भवन्ति। तत्र व्यासार्द्धं $३४३७\frac{९६७}{१३०९}$ पूर्वानीतैराकाशकक्ष्यालिप्तायोजनैरेतैः ८७३२३०४४०३२० गुणितं जाताः[2] ३००१९३८१०६५२४०६४। एतदाकाशकक्ष्याकर्णार्द्धम्। भूवृत्तयोजनाष्टशतीं खनित्वा यः प्रदेशो भवति तस्मात्प्रदेशादेतावत्सु योजनेष्वाकाशकक्ष्योपरि भवति। सर्वेषामेव कक्ष्याकर्णार्द्धानां तस्मादेव प्रदेशात् प्रवृत्तिर्ज्ञातव्या।

ग्रहों की कक्षा में उपर्युक्त कलायोजनमान लिखे गये हैं। इन कलायोजनमानों को व्यासार्द्ध के मान से गुणित करने पर कक्षाव्यासार्द्ध का मान होगा।

इन सभी कक्षायोजनों को व्यासार्धमान = ३४३७ $३४३७\frac{९६७}{१३०९}$ से गुणा करने

---

१. इदं २१६०० परिधेर्व्यासार्द्धम् ३९२७ : ६२५ :: २१६०० : $३४३७\frac{९६७}{१३०९}$ अनेनानुपातेन सिध्यति। भास्कराचार्येणापि परिधितो व्यासानयनार्थमयमेवानुपातः सूक्ष्मः प्रतिपादितः। (द्रष्टव्या मच्छोधिता भास्करलीलावती)।

२. अत्रान्ते $\frac{२२४}{१३०९}$ इदं शेषमायाति तदल्पत्वात् पुलिशेन त्यक्तमिति भाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर सभी कक्षाओं के अर्द्धकर्णयोजनमान प्राप्त होते हैं। इस व्यासार्धमान $३४३७\frac{९६७}{१३०९}$ और आकाशकक्षाकलायोजनमान ८७३२०००४४०३२० के मान से गुणा करने पर गुणनफल = ३००१९३८१०६५२४०६४, यह आकाशकक्षा का कर्णार्द्ध हुआ। भूवृत्तयोजन ८०० का छेदन कर जो प्रदेश होता है, उस स्थल से पूर्वसाधित आकाशकर्णार्द्ध पर आकाशकक्षा होती है। सभी कक्षाकर्णार्द्धों का उसी प्रदेश से प्रारम्भ जानना चाहिए।

एतत्पुलिशसिद्धान्ते पठ्यते :–

[1]कृतर्तुशून्यवेदाश्विपञ्चर्तुखनिशांकराः।

वस्वग्निरन्ध्रेन्दुखखगुणाः ३००१९३८१०६५२४०६४ कर्णार्द्धमाम्बरम्॥

अथ तदेव व्यासार्द्धं पूर्वानीतैर्नक्षत्रकक्ष्यालिप्तायोजनैरेतैः १२०३१ $\frac{२०४१२}{२१६००}$ गुण्यम्। तत्र गुण्यो राशिर्गुणकारश्च [2]सवर्णीकृतो नक्षत्रकक्ष्यां जाता रविखवियन्नववसुनवविषयेक्षण-योजनानीति २५९८९००१२।

पुलिशसिद्धान्त में इसी प्रकार का पाठ है, अर्थात् आकाशवर्णार्द्धमान ३००१९३८१०६५२४०६४ होता है।

वही व्यासार्धमान पूर्वानीत नक्षत्रकक्षायोजन १२०३१ $\frac{२०४१२}{२१६००}$ से गुणा करें। यहाँ पर गुण्य और गुणकराशि का सवर्ण करने पर नक्षत्रकक्षा का मान २५९८९००१२ होता है।

इयं नक्षत्रकक्ष्या व्यासार्द्धेन सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणनीया व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ खखषड्भूयम २१६०० हतेनानेन २८२७४४०० विभज्यते यस्मात् परस्परच्छेदवधो भागोपहारो भवति। तदर्थं गुणकारभागहारराश्योरनयोः ४५००००० । २८२७४४०० । [3]परस्परं वर्तने कृते जातम् ७२०० । अनेनाप्तं गुणकारम् ६२५ । अनेन नक्षत्रकक्ष्या गुणिता। एवं जाताः १६२४३१२५७५००।

---

१. सर्वेषु पुस्तकेषु "कृतं तु शून्यवेदाब्धिपञ्चशंखरविनिशाकराः वस्वनिरध्रेन्दुखखगुणाः कर्णार्द्धमाम्बराम्" इति भ्रष्टपाठस्तथैतत्पूर्वं सर्वं गणितं च भ्रष्टमतोऽस्माभिर्ग्रन्थस्थपुलिशसिद्धान्तीयवचनानुसारेण सर्वं गणितं विगणय्य महतायासेन निवेशितं तद्वशादिदं पौलिशवाक्यं च संशोध्य निवेशितम्।

२. कोऽपि सच्छेदो राशिः स्वत्तछेदेन गुणितः सवर्णीकृतो भवति। (द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य २९ पृष्ठम्)।

३. परस्परं वर्तनं मिथो भजनं महत्तमापवर्त्तनानयनवत्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह नक्षत्रकक्षा व्यासार्धमान से सवर्णित करके ४५००००० से गुणाकर व्यासार्धच्छेदन (हर) १३०९ और २१६०० का गुणाकर २८२७४४०० से भाग देते हैं, जिससे परस्पर हरसंख्या का गुणा भागात्मक हो सके। इसके लिए गुणक और हर-राशियों को ४५००००० और २८२७४४०० इन दो संख्याओं से अपवर्तन करने पर ७२०० होता है। इससे गुणक संख्या में भाग देने पर ६२५ हुआ। इस संख्या से नक्षत्रकक्षामान का गुणा करने पर गुणनफल = १६२४३१२५४५०० हुआ।

अथ छेदेनानेन ७२०० छिन्नाद्भागोपहाराल्लब्धेनानेन ३९२७ भागो हर्तव्यः। लब्धम् ४१३६२६८३। एतन्नक्षत्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

इस छेदन संख्या ७२०० से अपवर्तित हारसंख्या ३९२७ का भाग देने पर लब्धि = ४१३६२६८३, यह नक्षत्रकक्षा का कर्णार्द्ध हुआ।

अथ शनैश्चरकक्ष्यालिप्तायोजनानि ५९१० १०६८०० / १४६५६४ सवर्णीकृतानि ८६६३०००४० व्यासार्द्धेन च सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणितानि ३८९८३५०१८०००००० [1]सर्वग्रहाणां भाज्यो राशिः। अयं व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ गुणितैर्यस्यैव ग्रहसंबन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कक्ष्याकर्णार्द्धं लभ्यते तस्मात् सर्वग्रहाणां कक्ष्यालिप्तायोजनानि सवर्णीकृतान्ययमेव ८६६३०००४० राशिर्भवति।

शनिकक्षाकलायोजन = ५९१० १०६८०० / १४६५६४, इसको सवर्णित करने पर ८६६३०००४० तथा व्यासार्ध ४५००००० से गुणा करने पर गुणनफल ३८९८३५०१८०००००० , यह सभी ग्रहों की भाज्यराशि हुई। यह व्यासार्धच्छेदन संख्या १३०९ से गुणा करने पर जिस ग्रह से सम्बन्धित भगणसंख्या से विभाजित होती है, उसी ग्रह का कक्षाकर्णार्द्ध प्राप्त होता है। अतः सभी ग्रहों का कक्षाकलायोजन सवर्णित करने पर ८६६३०००४० यह संख्या होती है।

अस्य राशेः सर्वेषामेव सवर्णीकृतं व्यासार्द्धं गुणकारो ग्रहभगणहतो व्यासार्द्धच्छेदोऽयं

---

१. अत्रोपपत्तिः– शनिलिप्तायोजनानि = १५चंभ / शभ। शनिकर्णार्द्धं = १५ चंभ / शभ × ४५००००० / १३०९ = १५×चंभ× ४५००००० / १३०९×शभ। एवमिष्टग्रहलिप्तायोजनानि = १५चंभ / इगभ इष्टग्रहकर्णार्द्धम् = १५×चंभ× ४५००००० / १३०९×इगभ अतोऽत्र सर्वत्र भाज्यो राशिः स्थिर एव। स च १३०९ गुणितैर्यस्य ग्रहस्य भगणैर्ह्रियते तस्य कर्णार्द्धं लभ्यत इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३०९ भागोपहारः। १३०९ अनेन गुणिता भगणाः सर्वेषां लिख्यन्ते यस्मात्ते भागोपहारा भविष्यन्ति।

इस राशि से सभी ग्रहों का सवर्णीकृत व्यासार्द्ध गुणक और ग्रहभगण का गुणनफल व्यासार्ध का विभाजन करने पर १३०९ भाजकसंख्या होती है। सभी ग्रहों के भगण १३०९ से गुणित कर लिखे जाते हैं। इससे ये भाजक बन जाते हैं।

तद्यथा — रवेः ५३५४८८००००।

जैसा कि सूर्य का ५३५४८८००००।

चन्द्रमसो नोपयुज्यते तत्कक्षायाः सविकलायाः पञ्चदशयोजनानि यस्माल्लिप्ता।

चन्द्रमा के लिए यह प्रयुक्त नहीं होता है; क्योंकि उसकी विकला-सहित १५ योजन कला होती है।

भौमस्य ३००६५४२६१६।

बुधस्य २३४७९५३३०००।

गुरोः ४७६७६३९८०।

शुक्रस्य ९१९२३०५८९२।

सौरस्य १९१८५२२७६।

भौम का ३००६५४२६१६।

बुध का २३४७९५३३०००।

गुरु का ४७६७६३९८०।

शुक्र का ९१९२३०५८९२।

शनि का १९१८५२२७६।

अत्र भाज्यराशेरस्य सर्वग्रहाणाम् ३८९८३५०१८००००००० आदित्यभागोपहारेणानेन ५३५४८८००००० भागमपहृत्यावाप्तम् ६८९३७८। एतदादित्यकर्णार्द्धम्।

सभी ग्रहों की भाज्यराशि ३८९८३५०१८००००००० की सूर्यभाजकराशि ५३५४८८००००० से भाग देकर भजनफल = ६८९३७८, यह सूर्य का कर्णार्द्धमान सिद्ध हुआ।

व्यासार्द्धमेतत् ३४३७ $\frac{९६७}{१३०९}$। कक्ष्यालिप्तायोजनैः पञ्चदशभिर्गुणितम् ५१५६६। एतच्चन्द्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

यह व्यासार्धसंख्या ३४३७ $\frac{९६७}{१३०९}$ कक्षाकलायोजन १५ से गुणाकर गुणनफल = ५१५६६, यह चन्द्रकक्षा का कर्णार्द्ध प्राप्त हुआ।

एवं सर्वेषां भाज्यराशेः स्वभाजकेन भागमपहृत्यानीताः सर्व एव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा :– अर्ककर्णो वस्वागाग्निनन्दाष्टरसाः ६८९३७८।
चन्द्रकर्णः षडर्तुशरैकार्थाः ५१५६६।
भौमकर्णो नेत्रनेत्रर्त्त्वङ्गनन्दार्काः १२९६६२२।
बुधशीघ्रकर्णः शशिगुणखाङ्गाष्टयः १६६०३१।
बृहस्पतिकर्णो वस्वष्टषट्षण्मुनिरूपवसवः ८१७६६८८।
शुक्रशीघ्रकर्णो वस्वष्टखाब्धिनेत्राऽब्धयः ४२४०८८।
सौरकर्णो रूपाब्धिशरनन्दैकगुणनखाः २०३१९५४१।
नक्षत्रकर्णो रामाष्टर्त्त्वश्विरसविश्वेवेदाः ४१३६२६८३।

इस प्रकार सभी भाज्यराशियों का स्वभाजक राशि से भाग देकर सभी का मान प्राप्त किया जाता है। यथा :–

रविकर्ण = ६८९३७८।
चन्द्रकर्णः = ५१५६६।
भौमकर्ण = १२९६६२२।
बुधशीघ्रकर्णः = १६६०३१।
गुरुकर्ण = ८१७६६८८।
शुक्रशीघ्रकर्ण = ४२४०८८।
शनि कर्ण = २०३१९५४१।
नक्षत्रकर्ण = ४१३६२६८३।

तथा च पुलिशाचार्यः–

वसुमुनिगुणान्तराष्टकषट्कै ६८९३७८ र्दिननाथशुक्रसौम्यानाम्।
द्वादशदलषट्केन्द्रियशशाङ्कभूतै ५१५६६ रजनिकर्तुः॥
दस्राश्विषट्करसनवलोचनचन्द्रै १२९६६२२ र्धरणिसूनोः।
रूपत्रिशून्यषट्काष्टि १६६०३१ भिर्मितं तद्बुधोच्चस्य॥
अष्टवसुरसषण्मुनिशशाङ्कवसुभि ८१७६६८८ स्तु जीवस्य।
वसुवसुशून्याब्धिद्विकवेदै ४२४०८८ रपि भार्गवोच्चस्य॥
एकार्णवार्थनवशशिदहनखदस्रै २०३१९५४१ रविसुतस्य।
त्रिवसुरसद्विरसानलशशिवेदैर्ऋक्षकर्णार्द्धम् ४१३६२६८३। इति।

आचार्य पुलिश ने भी इन संख्याओं को इसी प्रकार से निर्धारित कर सूर्यादि ग्रहों के कर्ण का मान क्रमशः सूर्य = ६८९३७८, चन्द्रमा ५१५६६, भौम = १२९६६२२, बुधोच्च = १६६०३१, गुरु = ८१७६६८८, शुक्रोच्च = ४२४०८८, शनि = २०३१९५४१, नक्षत्रकर्ण = ४१३६२६८३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूयोजनकर्णविधिना वैतत्सूत्रखण्डकं प्रकारान्तरप्रदर्शनायातोन व्याख्यातम्।

भूयोजनकर्णविधि के द्वारा प्रकारान्तर अथवा प्रदर्शन द्वारा आयात इस सूत्र खण्ड की व्याख्या नहीं की गयी है।

एवं कर्णकक्ष्याप्रमाणेष्वभिज्ञः। तथा प्रतिविषयं प्रतिदेशं योजनपरिच्छेदकुशलः। परिच्छेदो ज्ञानम्। यथा :– इतः समुद्र एतावद्योजनसङ्ख्यस्तस्माद्देशादयं देश एतावन्ति योजनानि तत्र कुशलः शक्तः। तद्यथा :– अभीष्टदेशद्वयाक्षभागानामन्तरं कृत्वा यद्भवति तेन [1]स्वराश्विखशरान् ५०२७ सङ्गुण्य खर्त्वग्नि ३६० भिर्विभजेत्, लब्धमिष्टदेशयोरन्तरयोजनानि।

इस प्रकार सांवत्सर को से कक्षाकर्ण के प्रमाण का ज्ञाता होना चाहिए, तथा प्रत्येक देश के योजनपरिच्छेद में कुशल होना चाहिए। परिच्छेद का अर्थ ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ – यहाँ से समुद्र इतनी योजन संख्या पर है, अथवा उस देश से यह देश इतने योजन पर स्थित है, इस विषय को बतलाने में कुशल तथा समर्थ होना चाहिए। जैसे कि कल्पित दो इष्ट प्रदेशों का अक्षांशान्तर लाकर उस अन्तरांश को ५०२७ से गुणाकर ३६० से भाग देने पर लब्धिफल इष्ट दोनों प्रदेशों का योजनान्तर ज्ञात होता है।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

अक्षांशकुपरिधिबधान्मण्डलभागाप्तयोजनैर्विषुवति।
नतभागयोजनैः ख उपरि सूर्योऽन्यदनुपातात्॥

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

अक्षांश और भूपरिधि का गुणन कर योजनात्मकमान आता है, अथवा नतांशयोजन के द्वारा आकाशस्थित सूर्य की स्थिति से अनुपात के द्वारा ज्ञात करना चाहिए।

---

१. ५३ पृष्ठस्य २ पङ्क्तिस्थलेखेन "योजनाष्टशतीम्" इत्यनेन भूव्यासार्द्ध ८००

तत्परिधिश्च $\frac{२१६००\times ८००}{३४३७\frac{९६७}{१३०९}} = \frac{२१६००\times ८००}{\frac{४५००००}{१३०९}} = \frac{२१६००\times ८००\times १३०९}{४५००००} = \frac{२४\times ८\times १३०९}{५०}$

$= \frac{९६\times १३०९}{२५} = \frac{१२५६६४}{२५} = ५०२६\frac{१४}{२५} = ५०२७$ स्वल्पान्तरात्। तेन सर्वपुस्तकेष्वतिभ्रष्टः पाठोऽत्रास्माभिः शोधितः।

२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथवाक्षद्वयान्तरभागैस्त्रैराशिकेन योजनानयनम्। यद्येकेन[1] भागेन नवयोजनानि नवभागोनानि भवन्ति, तदाभीष्टभागैः किमिति लब्धं योजनानि। एतदेवाचार्यो "दृश्ये[2] चक्रस्यर्द्धे" इत्यादिना ग्रन्थेन वक्ष्यति। एवं प्रतिविषयं योजनपरिच्छेदकुशलः॥

अथवा अक्षांशद्वय के अन्तरांश के द्वारा त्रैराशिक विधि से योजनमान ज्ञात करें। यदि एक अंश से नौ योजन प्राप्त होते हैं, तो अभीष्ट अंश से इष्टयोजन प्राप्त होंगे। इसी विषय को आचार्य ने ब्रह्मसिद्धान्त में "दृश्ये चक्रस्यार्धे" सूत्र के द्वारा वर्णन किया है। इस प्रकार से प्रत्येक देशों का अन्तर-योजन-ज्ञान करने में सांवत्सर को कुशल कुशल होना चाहिए।

अथान्यदप्याह –

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः।

आचार्य ने और भी कहा है :–

सांवत्सर को भूभगण, भ्रमणसंस्थानादि, अक्ष, अवलम्बक, अहोरात्रव्यास, चरदलकाल, राशि-उदय, छाया, नाडी, करणादि क्षेत्रकाल के निष्पादन में कुशल ज्ञाता होना चाहिए।

भूभगणेति, भूमेः संस्थानाभिज्ञः। भूमेः संस्थानं जानाति।

भूभगण का अर्थ भूसंस्थान है। सांवत्सर को इस भू-संस्थान का ज्ञाता होना चाहिए।

यथा :– भूर्गोलकाकारा खमध्यस्थिता नक्षत्रपञ्जरमध्यगता च ध्रुवतारकद्वयप्रतिबद्धा तिष्ठति। अयस्कान्तद्वयाकृष्टोऽन्तरे लोहपिण्ड इव। स च भूगोलः समन्तात्तरुनगनगर-सरित्समुद्रादिभिर्व्याप्तः। तस्योपरि मध्यभागे मेरौ देवास्तले दैत्या इति। एवमियं भूर्गोलकाकारा खमध्यगा तिष्ठति।

यथा यह भूमि गोलाकारवाली आकाश के मध्य में स्थित नक्षत्रमण्डल के मध्यकेन्द्र में दोनों ध्रुवतारों से प्रतिबद्ध होकर स्थित है। जैसे दो लौह चुम्बकों के मध्य में स्थित किसी लौह-पिण्ड के समान स्थित है। और यह भूमि-गोल चारो तरफ से वृक्ष, पहाड़, नगर, नदी, समुद्रादि से परिव्याप्त है। इसके ऊपर मेरुपर्वत

---

१. वराहमिहिरमतेन भूपरिधिः = ३२०० नैनैकस्मिन्नंशे योजनानि = $\frac{३२००}{३६०} = \frac{८०}{९} =$ $= ९ - \frac{१}{९}$ (द्रष्टव्यो मच्छोधितपञ्चसिद्धान्तिकात्रयोदशाध्यायस्य १५ श्लोकः)।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य १४ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के मध्यभाग में देवगण और इसके अधोभाग में, अधस्तल पर दैत्यगण रहते हैं। इस प्रकार से यह पृथ्वी गोलाकृतिवाली आकाश के मध्य में स्थित है।

नन्विदमत्याश्चर्यमुच्यते यथा खस्थो भूगोल इति यावदल्पस्यापि मूर्तिमत्पदार्थस्याऽऽकाशे स्थितिर्न दृश्यते किमिति पुनर्महाप्रमाणायाः भुवो नगनगरद्वीपगजरथतुरङ्गाद्यनेकाश्चर्याकुलीकृतायाः। नैतद्योग्यं स्वरूपत्वात्। यथाऽग्निर्दहनात्मको वायुश्च प्रेरणात्मकः। उदकं च क्लेदनात्मकम्। न विषयेण कश्चित्प्रयोजकः। एवमियं भूर्धारणात्मिका न धारणा तस्मात् खेऽस्थिरा नेयं सर्वं धारयति। अथ पतत्येव तिष्ठतु का नः क्षतिरिति चेत् तदपि न। यतो लोष्टादयः शिशुभिरुपरि क्षिप्ता भुवमासादयन्तो दृश्यन्ते। मन्दं क्षितिः पतति चेद् मान्यमेवैतदतिगुरुत्वाद् भूमेः। अथावश्यं पतति तथापि क्व पततु। अध इत्याह :— किमिदमधो नाम ? प्रतियोगिसापेक्षश्चाधःशब्दः। यथा स च विशेषाणामपादानं चाधो भूरुपरि वियदेवमस्याः सर्वाधोभूताया भुवः किमधः। खमिति चेत्, तर्हि सर्वतो युगपत्प्रसङ्गः। तत्रोपरिपार्श्वपतने निरस्ते दृष्टिविरोधात्। अधश्च निरस्तमेव। अधःपतनाद्यदाधारविशेषः प्रकल्प्य इत्यभिप्रायेण तदपि न शक्यते वक्तुं तस्यापि मूर्त्तिमत्त्वादन्योऽन्यस्तस्याध इत्यनवस्थाप्रसङ्गः। अत्रोच्यते — स्वशक्त्याऽसौ तिष्ठति तत्राधम्यादेव स्वशक्तिः कथं भुवो न परिकल्प्यते। भूमेश्चावश्यं शक्तिः परिकल्पयितुं बुध्यते। अन्यथा सर्वतोऽपि परस्परमधोभावेन सत्त्वानामवस्थितिरेव न स्यात् समुद्रादीनां च। तस्मान्मूर्त्तिमदाधाररहितो विशिष्टशक्तियुक्तो भूगोलः खे तिष्ठतीत्युपपन्नम्। तथा चाऽऽचार्य एवाऽऽह :—

निश्चित ही यह अधिक आश्चर्यकारी वार्ता है, कि भूमण्डल शून्याकाश में स्थित है। क्योंकि लघु-आकार का भी कोई पदार्थ आकाश में स्थित नहीं दिखलायी पड़ता, फिर किस प्रकार अधिक विस्तारवाली यह भूमि पर्वत, नगर, द्वीप, गज, रथ, अश्वादि विविध पदार्थों से भरी हुई स्थित रह सकती है ? यह इसके स्वरूप को देखने से युक्तियुक्त नहीं लगता है। जिस प्रकार अग्नि दाहक, वायु प्रेरक और जल आर्द्रकारक होता है। विषयों द्वारा कोई द्रव्य प्रेरित नहीं होता। इस प्रकार यह भूमि धारणात्मिका है धारणा नहीं। अतः यह भूमि आकाश में स्थिर होकर सबको धारण नहीं करती है। अतः यह पतित हो जाये अथवा स्थिर रहे इससे कोई हानि नहीं होती, यह कथन भी उचित नहीं होगा। क्योंकि बालकों के द्वारा लोष्ठादि (ढेले) ऊपर आकाश में प्रक्षिप्त किये जाने के पश्चात् पुनः परावर्तित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यदि धीमी गति से पृथ्वी पर गिरती है तो इसका कारण पृथ्वी की अतिगुरुता ही है। यदि यह कहें कि यह पृथ्वी अवश्य गिरती है, तो कहाँ गिरे ? अगर कहें कि "अधः" नीचे गिरती है, तो यह अधः क्या है ? यह "अधः" शब्द भी प्रतियोगी-सापेक्ष है। जैसे कि विशेषतया अपादानभूत इस भूमि के ऊपर आकाश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है और सबसे नीचे रहने वाली इस पृथ्वी का अधोभाग क्या हो सकता है ? यदि आकाश को ही मानते हों तो सभी प्रकार से युगपत् गिरने का प्रसङ्ग उपस्थित होता है। यहाँ पर ऊपर और पार्श्वभाग में किसी चीज के गिरने का दृष्टि विरोध होने के कारण कल्पना निरस्त हो जाती है। अधःपतन तो निरस्त हो ही चुका है। नीचे गिरने का प्रथम आधार विशेष परिकल्पना कर इस अभिप्राय से भी विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसके भी मूर्तिमान होने के कारण एक के बाद दूसरे आधार की परिकल्पना से अनवस्था दोष उपस्थित होता है। अतः यही कहा जा सकता है कि स्व-शक्ति से ही स्थित रहा जा सकता है, तो प्रारम्भ में ही भूमि की स्व-शक्ति की परिकल्पना क्यों न कर ली जाये ? इस प्रकार भूमि की शक्ति की परिकल्पना सहजतया की जा सकती है। अन्यथा चतुर्दिक् परस्पर अधोऽधः भाव से प्राणियों का, समुद्रादि पदार्थों का सुस्थिर रहना ही बाधित होने लगेगा। इसलिए प्रत्यक्ष मूर्तिमान आधाररहित विशिष्ट-शक्तिसम्पन्न यह भूगोल शून्याकाश में अवस्थित है, यह बात सिद्ध होती है। जैसा कि आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है :–

[1]पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्तः स्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः॥
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिश्चितः सर्वः।
विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधःस्थिता दैत्याः॥
सलिलतटासन्नानामवाङ्मुखी दृश्यते यथा छाया।
तद्वद्गतिरसुराणां मन्यन्ते तेऽप्यधो विबुधान्॥
गगनमुपैति शिखिशिखा क्षिप्तमपि क्षितिमुपैति गुरु किंचित्।
यद्वदिह मानवानामसुराणां तद्वदेवाधः॥

पञ्चमहाभूतमय यह भूगोल नक्षत्रगणों के मध्य स्थित है। यह शून्याकाश में चुम्बकीय लौह से आकृष्यमान मध्यस्थित लौहपिण्ड की भाँति विद्यमान है। वृक्ष, पर्वत, नगर, बाग, नदी, समुद्रादि से आवृत है। देवों का निवास स्थल सुमेरु इसके मध्य में तथा अधोभाग में दैत्यों का निवास है। सलिल-तट पर स्थित व्यक्ति की छाया जिस प्रकार अधोमुखी दिखायी पड़ती है उसी प्रकार अधः स्थित असुरों की

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य १-४ श्लोकाः। तत्र ३ श्लोके "सलिलतटसङ्गतानाम्" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिति होती है। ये अपने अधोभाग में देवताओं को मानते हैं। अग्नि की शिखा ऊर्ध्वगामी होकर आकाश की ओर जाती है, और कोई भी गुरुपदार्थ प्रक्षिप्त होकर पुनः पृथ्वी पर वापस आ जाता है। उसी प्रकार मानव और असुर एक दूसरे के अधोभाग में स्थित रहते हैं।

तथा च पौलिशे :–

वृत्ता चक्रवदचला नभस्यपारे विनिर्मिता धात्रा।
पञ्चमहाभूतमयी तन्मध्ये मेरुरमराणाम्॥

जैसाकि पौलिशग्रन्थ में कहा गया है :–

यह पृथ्वी वृत्ताकारा, चक्र के समान आकाश के मध्य में ब्रह्मा द्वारा विनिर्मित है। पञ्चमहाभूतमयी इस पृथ्वी के मध्य में देवों का निवासस्थल मेरु पर्वत स्थित है।

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

शशिबुधसिताककुजगुरुशनिकक्ष्यावेष्टितो भकक्ष्यान्तः।
भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपातः॥

ब्रह्मसिद्धान्त में इसी प्रकार से कहा गया है :–

चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु, शनि की कक्षाओं से आवेष्टित नक्षत्रकक्षा के मध्य में स्थित यह भूगोल सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों से युक्त रहता है।

खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः।
खे भगणर्क्षाग्रस्थावुपर्यधश्च ध्रुवौ तेषाम्॥

आकाश में भूगोल स्थित है उसके ऊपर मेरुपर्वत पर देव तथा उसके तल में दैत्य रहते हैं। आकाश में नक्षत्रमण्डल के अग्रभाग में स्थित दोनों ध्रुव ऊपर और अधोभाग में अवस्थित हैं।

तथा चाऽऽर्यभटः–

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः॥
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः सभन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्विविधैः सत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः॥

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयः सर्वतो वृत्तः॥
स्वर्मेरुस्थलमध्ये नरको बडवामुखं च जलमध्ये।
असुरसुरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थिता नियताः॥

आचार्य आर्यभट्ट ने इस प्रकार कहा है–

नक्षत्रमण्डल के मध्य में ग्रहकक्षाओं से आवेष्टित खमध्य में विद्यमान मृत्तिका, जल, अग्नि और वायुमय यह भूगोल सर्वतः वृत्तमय है। जिस प्रकार कदम्ब-पुष्प अपने फूलों से चारों तरफ ग्रथित रहता है, उसी प्रकार विविध प्रकार के जलीय एवं स्थलीय जीवों से आवृत यह भूगोल है। मेरुपर्वत योजनमात्र प्रकाशशील हिमखण्डों से परिव्याप्त नन्दनवन के मध्य में रत्नों से भरा हुआ सर्वतः व्याप्त है। मध्य में स्थित मेरु को स्वमेरु तथा अधःनरक, वडवानल जल के मध्य स्थित है। सुर और असुर परस्पर एक दूसरे को अधोभाग में स्थित मानते हैं।

तथा च वसिष्ठसिद्धान्ते :–

जगदण्डखमध्यस्था महाभूतमयी क्षितिः।
भावाय सर्वसत्त्वानां वृत्तगोल इव स्थिता ॥इति।

एवं भूमेः संस्थानं जानाति।

इसी प्रकार वशिष्ठसिद्धान्त में भी कहा गया है :–

ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित पञ्चमहाभूतमयी यह भूमि सभी जीवों की आश्रयस्थली-वृत्ताकारा, गोलमयी स्थित है। इस प्रकार की भूमि के संस्थान को जाननेवाला सांवत्सर को होना चाहिए।

तथा च भगणस्य नक्षत्रचक्रस्य भ्रमणसंस्थानं च जानाति। यथा भपञ्जरो ध्रुवयोर्नियमितः प्रवहाऽनिलेन भ्राम्यमाणो लङ्कास्थानामुपरिष्टाद् भूलग्नो देवासुराणां परिभ्रमतीति च। देवानां प्रदक्षिणनो दैत्यानामप्रदक्षिणगोऽन्येषां भूस्थानामक्षवशादुन्नमति ध्रुव उत्तरेण नमति। तथा चाऽऽचार्यः–

इस प्रकार सांवत्सर भगणों का अर्थात् नक्षत्रचक्र का भ्रमणसंस्थान जानता हो। जैसाकि यह भचक्र दोनों ध्रुवों से नियमित प्रवहवायु से घुमाया जाता हुआ लंका-प्रदेश के ऊपर से चलता हुआ भूमण्डल पर स्थित देवासुरों के स्थान को परिव्याप्त कर भ्रमण करता है। देवों के दक्षिणभागगत और दैत्यों के वामभागगत तथा भूमिस्थ अन्य जीवों के अक्षांशवश ध्रुव के उत्तर दिशा में उन्नमन और नमन के साथ भ्रमण करता है। जैसा कि आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरोः[1] सममुपरि वियत्यक्षो व्योम्नि स्थितो ध्रुवोऽधोऽन्यः।
तत्र निबद्धो मरुता प्रवहेण भ्राम्यते भगणः॥

आकाश में मेरु के ऊपर ध्रुव का अक्ष स्थित है। इसी प्रकार अन्य ध्रुव अधोभाग में अवस्थित हैं। इन दोनों के मध्य निबद्ध नक्षत्रचक्र प्रवहवायु के द्वारा भ्रमण करता है। जैसा कि आचार्य आर्यभट्ट ने कहा है :-

यदुक्तमाचार्याऽऽर्यभटेन :-

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥ इति।

जैसाकि आचार्य आर्यभट्ट ने कहा है :-

जैसे जल में नौका पर स्थित व्यक्ति विपरीत गति में अचल पदार्थ को चलायमान देखता है। उसी प्रकार अचल नक्षत्र लङ्का के मध्य में गतिशील चलते हुए दिखलायी पड़ते हैं।

अत्रायं परिहारः-

[2]भ्रमति भ्रमस्थितेव स्थितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या न खात् पुनः स्वनिलयमुपेयुः॥

यहाँ पर यह परिहार पञ्चसिद्धान्तिका में वर्णित है :-

यह पृथ्वी भ्रमण करती है, यह एक पक्ष है; और भ्रमणशील भूमि स्थिर है; नक्षत्रगण स्थिर नहीं हैं यह दूसरा पक्ष है। यदि इस प्रकार यह पृथ्वी भ्रमणशील हो, तो आकाश में उड़ते हुए पक्षी अपने घोंसले में पुनः पहुँच ही नहीं सकते।

अन्यच्च भवेदभूमेरह्ना भ्रमरहंसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति॥
अर्हत्प्रोक्तेऽर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरोदयौ किल तौ।
यद्येवमर्कसूत्रात् किं ध्रुवसूत्रं भ्रमत्यह्ना॥

भूमिरहित अन्य स्थान पर भी दिन में अव्यवस्था हो जाती। सात ही भ्रमर, हंस, ध्वजादि प्रतिदिन पश्चिम दिशा की ओर प्रेरित होते रहते। यदि भूमि अल्पगा है तो वह कैसे भ्रमणचक्र पूर्ण कर लेती है ? जैनशास्त्र में वर्णित दो-दो सूर्य और चन्द्रमा का यदि एक के बाद दूसरे का उदय मान लिया जाये तो रविसूत्र से ध्रुवसूत्र भी क्या दिन में परिवर्तित हो जायेगा।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ५ श्लोकः।
२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ६-८ श्लोकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च पौलिशे :–

तस्योपरि ध्रुवः खे तद्बद्धं पवनरश्मिभिश्चक्रम् ।
पवनक्षिप्तं भानामुदयास्तमयं परिभ्रमति ॥

तथा चाऽऽचार्याऽऽर्यभटः–

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तम् ।
लङ्कासमपश्चिमगं भमण्डलं सग्रहं भ्रमति ॥

इसी प्रकार से पुलिशसिद्धान्त में कहा गया है :–

आकाश में स्थित ध्रुव के ऊपर वायुकिरणों से आबद्ध चक्रवत् प्रवहवायु से प्रेरित नक्षत्रों का उदयास्त होता हुआ परिभ्रमण होता है। ब्रह्मसिद्धान्त में भी इसी प्रकार कहा गया है :–

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

ध्रुवयोर्मध्ये सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम् ।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम् ॥
अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपञ्जरो ध्रुवो नमति ।
लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे ॥

एवं भगण-भ्रमः ।

ध्रुवों के मध्य में देवों के दक्षिणभाग में भ्रमण करता हुआ तथा भूतलस्थ असुरों के अपसव्य भाग में प्रवहवायु से प्रक्षिप्त होकर नक्षत्रचक्र भ्रमण करता है। अन्यत्र सभी दिशाओं में ध्रुव से नक्षत्रचक्र लङ्का में पूर्वापर गमन करता है, और ध्रुव लङ्का-क्षितिज में होता है । इस प्रकार नक्षत्रों का भ्रमण होता है।

संस्थानं तथा। नक्षत्रध्रुवकात् क्रान्तिज्यां कृत्वा तस्याश्चापभागाः कार्यास्तेषां विक्षेपेणैकदिक्केन सह योगो भिन्नदिक्केन सह वियोगः कार्यः। एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति भागरूपा। तावद्भिर्भागैर्विषुवल्लेखातो याम्येनोत्तरेण वा नक्षत्रयोगतारकः क्रान्तिवशेन संस्थितः। एवं भगणभ्रमणसंस्थानज्ञः। आदिग्रहणादर्कसंस्थानमन्यदेशानां भ्रमणव्यस्तत्वं च जानाति।

संस्थान के सम्बन्ध में बतलाते हैं। नक्षत्रध्रुव से क्रान्तिज्या लाकर उसका क्रान्त्यंश करें। उसके शर के एक दिशा में होने पर योग और भिन्न दिशा में होने पर अन्तर करें। इस प्रकार की क्रिया से स्वक्रान्ति अंशात्मक प्राप्त होती है। उतने अंशों पर विषुवत् रेखा से उत्तर अथवा दक्षिण योगनक्षत्र के तारे क्रान्ति के अनुसार स्थित

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते-इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहते हैं। इस प्रकार सांवत्सर को भगण एवं भ्रमण संस्थान का ज्ञाता होना चाहिए। आदि शब्द से रविसंस्थान तथा अन्य प्रदेशों के भ्रमण की व्यस्तता को भी जानना चाहिए।

एतच्चाऽऽचार्येणैवोक्तपूर्वम्। तथा च :–

इसे पञ्चसिद्धान्तिका में आचार्य ने इस प्रकार कहा है :–

प्रोद्य[1]तरविरमराणां भ्रमत्यजादौ कुवृत्तगः सव्यम्।
उपरिष्टाल्लङ्कायां प्रतिलोमश्चामरारीणाम्॥

रवि देवों के सव्यभाग में भूवृत्त स्थित लङ्का के ऊपर मेषादि राशियों में भ्रमण करता है। और यह दैत्यों के विपरीत भाग में भ्रमण करता है।

मिथुनान्ते च कुवृत्तादंशचतुर्विंशतिं विहायोच्चैः।
भ्रमति हि रविरमराणां समोपरिष्टात्तदाऽवन्त्याम्॥
नष्टच्छायाप्येवं छायोदक् तत्प्रभृत्युदक्स्थानाम्।
तद्वद्दक्षिणगानां मध्याह्ने दक्षिणा छाया॥
मेषवृषमिथुनसंस्थे दिनं रवौ कर्कटादिगे रात्रिः।
यैरुक्ता विबुधानां मेरुस्थानां नमस्तेभ्यः॥
येष्वेवोदङ्मेषाद्याति स्थानेषु संनिवृत्तोऽपि।
तेष्वेव कथं दृश्यः पुनर्न दृश्यश्च तत्रस्थः॥
दृश्ये चक्रस्यार्धे त्रयः खमध्यात्तु राशयस्तै[2] षाम्।
नवतिस्तानि च खण्डान्युदयात् परिकल्पनीयानि॥
एकैकांशो नवभिर्नवभागोनैश्च योजनैर्भवति।
सच दक्षिणोत्तराणां प्रत्यक्षः खेऽप्ययं मध्यात्॥
एवं च नवत्यंशैरष्टौ दृष्टानि योजनशतानि।
तत्रामाण्यादेशे मध्याह्ने द्रष्टुरुदयो यः॥
उज्जयिनी लङ्कायाः संनिहिता योत्तरेण समसूत्रे।
तन्मध्याह्नो युगपद्विषमो दिवसो विषुवतोऽन्यः॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १३ अध्यायस्य ९-३४ श्लोकाः। तत्र ११ श्लोके तद्दक्षिणदेशानाम्। १२ श्लोके दिवसोऽर्के। १५ श्लोके समदक्षिणोत्तराणाम्। १८ श्लोके तद्भ्रमति मेरुमध्यात्। १९ श्लोके योजनं गत्त्वा। २१ श्लोके उज्जयिनीतो विरमति पर्यस्तोऽयं भगणगोलः। २३ श्लोके त्रयाधिक्यं च चतुःशतमुदगवन्त्याः। २४ श्लोके चतुःशतीं साग्राम्। नोदयमिह यान्त्यलिमृगघटचापधराः कदाचिदपि-इति पाठः।

२. स्तेंऽशा इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योजनशतानि भूमेः परिमाणं षोडश द्विगुणितानि।
तापयति मेरुमध्याद्विषुवस्थोऽर्कः क्षितिं चैवम्॥
षडशीतिं पञ्चशतीं त्रिभागहीनं च योजनं मित्वा।
क्षितिमध्यमुदगवन्त्या लङ्कायां योजनाष्टशतीम्॥
प्रतिविषयमुदक्तुङ्गो हरिजाद्यावद्ध्रुवः खमध्यात्तु।
दिनकृदपि नमति विषुवति दक्षिणतस्तावदेवांशैः॥
त्रिशतीं त्रिसप्ततियुतां गत्वोदग्योजनत्रिभागं च।
उज्जयिनीतो विघटति पर्याप्तोऽयं भगणगोलः॥
षष्टिर्नाड्यस्तस्मिन् सकृदुदितो दृश्यते दिवसनाथः।
परतः परतो बहुतरमाषण्मासादिति सुमेरौ॥
योजनपञ्चनवांशान् त्र्यधिकां च चतुःशतीमुदगवन्त्याम्।
गत्वा न धनुर्मकरौ कदाचिदपि दर्शनं व्रजतः॥
तस्मादेव स्थानाद्द्व्यशीतियुक्तां चतुःशतीं गत्वा।
दृष्टिपथं नो यान्त्यलिमृगघटचापधराः कदाचित्॥

सूर्य मिथुन के अन्त में भूमण्डल के २४ अंश पर उच्चस्थान को छोड़कर देवों के सम्मुख भाग में अवन्तिनगर के ऊपर भ्रमण करता है। वहाँ से उत्तर रहनेवाले लोगों की उत्तर-छाया नष्ट होती है। उससे दक्षिण रहनेवालों की मध्याह्न कालिक छाया दक्षिणा होती है। सूर्य के मेष, वृष और मिथुन राशि में स्थित होने पर दिन होता है, और कर्कादि राशियों में देवों की रात्रि होती है, जो मेरु पर रहते हैं, इस प्रकार का कथन करनेवाले लोगों को नमस्कार है। मेष राशि से उत्तर में गमन करता हुआ फिर उन्हीं स्थानों में निर्वृत्त होकर दृश्य और अदृश्य कैसे हो जाता है ? दृश्य भूगोल चक्र के आधे भाग में तीन राशियाँ ९० अंश के क्रम से उदय हेतु कल्पना की जानी चाहिए। एक-एक अंश नवम भाग रहित ९ योजन का रहता है। यह दक्षिण और उत्तर भाग में स्थित आकाश के मध्य से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस प्रकार ९० अंशों में ८०० योजन प्रत्यक्ष दृष्ट है। इस प्रमाण से मध्याह्न में द्रष्टा के लिए उदय होता है। उज्जयिनी और लङ्का से गयी हुई याम्योत्तर– रेखा; में मध्याह्नकाल एक साथ होता है। परन्तु दिनमान विषम होता है। विषुवत वृत्त में इससे भिन्न स्थिति होती है। भूपरिमाण ३२०० योजन होती है। विषुवत् वृत्त स्थित सूर्य मेरु के मध्यभाग में होता है, और पृथ्वी को इसी मध्यभाग से ताप देता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवन्ती (उज्जैन) से ५००+८६+(११/३) = ५८६२/३ योजन उत्तर जाने पर भूमध्य-स्थल, मेरुस्थान है। यही मेरु-प्रदेश लङ्का से ८०० योजन उत्तर दिशा में स्थित है।

विशेष-टिप्पणी :–

[लङ्का से मेरुस्थान ९० अंश पर अर्थात् भूपरिधि के चतुर्थांश पर है। भूपरिधि का मान ३२०० योजन कहा गया है। अतः इसका चतुर्थांश ८०० योजन ही लंका से मेरुस्थान की दूरी युक्तिसंगत है। लंका से अवन्ती की दूरी २४ अंश है। अतः अवन्ती से मेरु का अन्तर ९०°-२४° = ६६° है। पुनः अनुपात करने पर कि, ३६० अंश में भू परिधि मिलती है, तो ६६ अंश में क्या होगी ? अवन्ती से मेरु का योजनात्मक अन्तर $= \frac{३२००\times ६६}{३६०} = ५८६\frac{२}{३}$ योजन सिद्ध हुआ]।

स्व-क्षितिजवृत्त (समस्थान) से उत्तर-ध्रुव जितना ऊपर होता है; विषुवद्रेखा में सूर्य उतना ही अंश खमध्य से दक्षिण नत रहता है। ३७३१/३ योजन अवन्ती से उत्तर दिशा में जाने पर, भगण-व्यवस्था अर्थात् सूर्योदय, सूर्यास्त, कुज्या, चरज्या इत्यादि की व्यवस्था बिगड़ जाती है, (भिन्न रूप में हो जाती है)। उस प्रदेश में (३७३१/३ योजन पर) ६० घटी एक-एक ही दिन सूर्य का उदय दृश्य होता है। इससे और उत्तर हम जितना आगे जायेंगे, क्रमशः सूर्योदय का मान बढ़ता हुआ छः मास तक का दिन हो जाता है।

विशेष टिप्पणी :– [६६ अंश अक्षांश पर अहोरात्रवृत्त क्षितिजवृत्त का एक स्थान पर स्पर्श मात्र करता है। वह स्थान अवन्ति (उज्जैन) से ३७३१/३ योजन पर होता है, जिसका आनयन अनुपात से किया गया है। जैसाकि उज्जैन का २४ अंश अक्षांश है, अतः ६६-२४=४२ अंश पर कितना योजन होगा ? यह ज्ञात करने के लिए अनुपात $= \frac{३२००\,\text{योजन}\times ४२\,\text{अंश}}{३६०\,\text{अंश}} = ३७३\frac{१}{३}$ योजनात्मक अन्तर प्राप्त हुआ]

अवन्ति से ४०३+५/९ योजन उत्तर दिशा में जाने पर धनु और मकर राशियाँ कभी भी दृश्य नहीं होती हैं। उसी उज्जयिनी से ४८२ योजन उत्तर जाने पर वृश्चिक, मकर, कुम्भ और धनुराशियाँ कभी दृश्य नहीं होती हैं।

षडशीतिं पञ्चशतीं त्र्यंशोनं योजनं च तत एव।
गत्वाऽन्त्यं चक्रार्द्धं नोदेत्यायं न यात्यस्तम्॥
लङ्कास्था भूलग्ना नभसो मध्यस्थितां च मेरुगताः।
ध्रुवतारामीक्षन्ते तदन्तरालेऽन्तरोपगताः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकृदुदितः षण्मासान् दृश्योऽर्को मेरुपृष्ठसंस्थानाम्।
मेषादिषु षट्सु चरन् परतो दृश्यः स दैत्यानाम्॥
मेषस्तेषां नित्यं लग्नं त्र्यंशश्च भूमिपुत्रस्य।
त्रिंशद्भागनवांशद्वादशभागाश्च तस्यैव॥
विषुवल्लेखाधस्ताल्लङ्का तस्यां समो भगणगोलः।
त्रिंशन्नाड्यो दिवसस्त्रिंशत्तस्यां सदा च निशा॥
सलिलेन समं कृत्वा तुङ्गं फलकं यथादिशं दृष्ट्या।
दक्षिणकोट्यां शङ्कुं फलकप्रमितं व्यवस्थाप्य॥
ऋजुशङ्कुबुध्नविन्यस्तलोचनो नामयेत्तथा शङ्कुम्।
भवति यथा शङ्क्वग्रं ध्रुवतारादृष्टिमध्यस्थम्॥
पतितेन भवति वेधो लङ्कायामूर्ध्वगेन तु सुमेरौ।
विनतेन चान्तराले फलकच्छेदार्धसूत्रसमे॥
तत्रावलम्बको यः सोऽक्षज्या तस्य शङ्कुविवरं यत्।
विषुवदवलम्बकोऽसौ याम्योत्तरदिक्प्रसिद्धिकरः॥
स्वप्रत्ययेन सन्तो विज्ञायैवं वदन्ति भूमध्यम्।
सकलमहीमानं वा रसमिव लवणाम्भसाल्पेन॥ इति॥

उज्जयिनी से ५८६ योजन + १-१/३= ५८६२/३ योजन उत्तर जाने पर अर्थात् मेरुप्रदेश में मेषादि छः राशियाँ अस्त नहीं होती तथा तुलादि छः राशियों का उदय नहीं होता है।

[टिप्पणी :– यतः मेरु का ९० अंश अक्षांश है, अतएव वहाँ पर मेषादि छः राशियों के अहोरात्रवृत्त क्षितिज के ऊपर और तुलादि छः राशियों के अहोरात्र-वृत्त क्षितिज के नीचे रहते हैं। इस प्रकार प्रथम चक्रार्द्ध सदा दृश्य तथा द्वितीय चक्रार्द्ध सर्वदा अदृश्य रहता है। उज्जयिनी से मेरु का अन्तर ६६ अंश है, जिसका योजनात्मक मान ५८६ २/३ योजन सिद्ध है।]

लंका से ध्रुवतारा उसके क्षितिज में संलग्न रहता है, जबकि मेरु-प्रदेश के खमध्य (९० अंश पर) में उत्तर ध्रुव होता है। (इस प्रकार दक्षिण ध्रुव मेरु के नीचे अधः खमध्य में रहता है)। लंका और मेरु के मध्यवाले क्षेत्रों में ध्रुवतारा अक्षांशवश खमध्य और क्षितिज के बीच ही दिखाई पड़ता है। मेरु-पृष्ठ पर स्थित लोगों को सूर्य मेषादि में उदित होकर छः मास तक दिखाई पड़ता है। तत्पश्चात् तुलादि छः राशियों में रवि के रहने पर दैत्यगण छः मास तक उसे उदित ही देखते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं (दैत्यगण का तात्पर्य कुमेरु पर दक्षिण ध्रुवप्रदेश में रहने वाले लोगों से है)। देवों का सदा मेष लग्न ही रहता है। इस प्रकार इनका लग्न, द्रेष्काण, त्रिंशांश, नवांश और द्वादशांश; ये सभी मंगल के ही होते हैं। आकाशस्थ विषुवत् वृत्त के नीचे (भूगोलीय विपुवत् रेखा पर) लंका है। भूमण्डल (नक्षत्र गोल) लंका के ऊपर सम तुल्य अर्थात् न तो दाएँ या न तो बाएँ रहता है। वहाँ सदा दिन मान एवं रात्रिमान ३०-३० घटी का होता है।

[टिप्पणी :– लंका में शून्य अक्षांश होने से क्रान्तिवृत्त नत अथवा उन्नत नहीं रहता। क्षितिजवृत्त ही वहाँ उन्मण्डल वृत्त होता है, जिससे चर-मान शून्य होता है। अतः दिन-रात्रि मान एक समान ३० घटी का ही रहता है।]

जलवत् समतल फलक (काष्ठ-फलक) स्थापित कर उसके दक्षिण भाग में शंकु स्थापित करें। उस सरल शंकु पर इस प्रकार दृष्टि लगायें, जिससे शंकु का अग्रभाग दृष्टि तथा ध्रुवतारा के सीध में हो जाये। लंका में शंकु का अग्रभाग भूतल के समानान्तर नीचे रहने पर ध्रुवतारा का वेध होगा, जब कि सुमेरु पर शंकु लम्बवत् ऊर्ध्वाधर रहेगा, क्योंकि वहाँ पर ध्रुव खमध्य में होता है। लंका और सुमेरु के मध्यवर्ती क्षेत्रों में क्षितिज तथा खमध्य से अवनत-शंकु से ही ध्रुव का वेध होगा। फलक के अर्ध-सूत्र, पूर्वापर सूत्र का अर्द्ध कारक याम्योत्तर सूत्र पर शंकु से किया गया अवलम्बक (लम्ब-सूत्र) ही अक्षज्यातुल्य होता है। याम्योत्तर रेखा तथा शंकु के अन्तर तुल्य, अक्षांश कोण की वह ज्या होती है। लम्ब और शंकु-मूल को गया हुआ सूत्र याम्योत्तर सूत्र होता है, जो कि सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अक्षांश अपने विश्वास के लिए परीक्षण कर ज्ञात करें। इसी क्रम से भूमध्य का मान अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी का अक्षांश एवं योजनात्मक मान ज्ञात किया जा सकता है, जिस प्रकार कि किसी लवण-युक्त पदार्थ के कुछ ही बूंदों के आस्वादन से सम्पूर्ण पदार्थ के रस का ज्ञान हो जाता है।

[टिप्पणी – फलक तथा शंकु के स्पष्ट ज्ञान हेतु क्षेत्र प्रस्तुत है :–

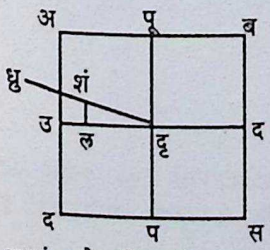

अ ब स द समतल फलक है। पू प पूर्वा पर रेखा तथा द उ दक्षिणोत्तर रेखा है। दृ = दृष्टि स्थान और शंकु-मूल है। ध्रु = ध्रुव तारा शंकु के अग्र सूत्र पर है। ध्रु दृ उ कोण अक्षांश है, जिसकी ज्या = अक्षज्या = शं ल होती है।]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवमादिग्रहणाज्ज्ञेयम्।

तथाक्षावलम्बाभिज्ञः। अक्षो ध्रुवोन्नतिः। एतावद्भिर्भागैः स्वदेशे हरिजादुच्छ्रितो ध्रुवो दृश्यते। अयवेष्टदिने कीदृशोऽक्षः। तत्र गणितविधिना स्वदेशाक्षभागानुत्पाद्य तेषु क्रान्तिभागानुत्तरान् शोधयेत्। दक्षिणान् क्षिपेत्। एवमिष्टदिनाक्षो[1] भवति। तथा चाऽऽचार्यः—

इस प्रकार से अक्षांश तथा लम्बांश का ज्ञाता सांवत्सर को होना चाहिए। क्षितिजवृत्त से ध्रुव की उन्नति को अक्षांश कहते हैं। जितने अंश पर स्वदेश में क्षितिज से ऊपर ध्रुव उन्नत दिखलायी पड़ता है, वही अक्षांश है। इष्ट दिन में अक्षांश कैसा होगा ? इसके लिए गणितविधि से अक्षांश का आनयन कर उसमें उत्तरक्रान्त्यंश को घटाकर अथवा दक्षिण क्रान्त्यंश को जोड़कर अभीष्ट दिन का अक्षांश होता है। जैसा कि आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है :—

विषुव[2]द्दिनसममध्यच्छायावर्गात्सवेदकृतरूपात्।
मूलेन शतं विनां विषुच्छायाहतं छिन्द्यात्॥

विषुवत् दिन की मध्याह्नकालिकी छाया के वर्ग में १४४ जोड़कर मूल लेने पर विषुवत् छाया गुणित १०० से भाग देने पर लब्धफल विषुवत्जीवा होती है। इसका चापात्मक करने पर अक्षांश आ जाता है। अथवा अभीष्ट दिन में मेषादि क्रान्तियाँ जोड़कर और तुलादि क्रान्ति घटाकर अक्षांश होता है।

लब्धं विषुवज्जीवा चापमतोऽक्षोऽथवैवमिष्टदिने।
मेषाद्यपक्रमयतस्तुलादिषु विवर्जितः स्वाक्षः॥

अवलम्बकः। यावद्भिर्भागैः स्वदेशसममण्डलरेखातो ध्रुव उत्तरेण नमति सोऽवलम्बकः, इष्टदिनावलम्बको वा, तत्राभीष्टाक्षभागा नवतेः संशोध्याः शेषा अवलम्बकांशा भवन्ति।

लम्बांश, स्वसममण्डल अर्थात् पूर्वापर वृत्त से जितने अंशों पर ध्रुव नमित रहता है, उसको लम्बांश कहते हैं। यह इष्ट दिन का लम्बांश अथवा अवलम्बक होता है। अभीष्ट अक्षांश को ९० अंश में से घटा देने पर लम्बांश होता है।

---

१. इष्टदिनाक्ष इष्टदिनैर्वैर्मध्यनतांशाः।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य २०-२१ श्लोकौ। तत्र २० श्लोके आदौ "विषुवद्दिनमध्याह्नच्छाया", अन्त्ये च "छिन्द्यम्", २१ श्लोके च "अथवा यथेष्टदिने" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा चाऽऽचार्यः—

[1]विषुवज्ज्यायामार्धवर्गविश्लेषमूलमवलम्बकः।

जैसाकि आचार्य ने कहा है—

विषुवज्ज्या तथा यामार्धाशंज्या का वर्गान्तर मूल लम्बांश होता है।

तथा :—

[2]चरखण्डकपक्षांशज्याघ्नमहर्व्यासमुद्धरेत्खजिनैः ।
द्विः कृत्वा तद्वर्गाक्रान्तिज्याकृतियुतान्मूलम् ॥
तेन विभजेत् स्थितज्यां व्यासार्द्धगुणामवाप्तमक्षज्या।
नवतेरक्षोनायाः क्रमशो ज्या लम्बको भवति ॥

पञ्चसिद्धान्तिका में और भी इस प्रकार है :—

चरज्या गुणित द्युज्या के भजनफल में २४० का भाग देकर दो स्थानों पर रखें, फिर उसके वर्ग तथा क्रान्तिज्या के वर्ग को जोड़कर मूल ग्रहण करें। उसमें स्थितज्या का भाग देकर, व्यासार्ध से गुणाकर, अक्षज्या का भाग देकर ९० अंश में अक्षांश को घटाकर लम्बज्या होती है।

अहर्व्यासो द्युव्यासः स्वाहोरात्रविष्कम्भः। ग्रहस्येष्टक्रान्तित्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणमित्यर्थः। तथा चाऽऽचार्यः—

अहोरात्रव्यास अर्थात् द्युव्यास अथवा अहर्व्यास सभी एक ही हैं। ग्रह का अभीष्टक्रान्ति और त्रिज्या का वर्गान्तरमूल द्विगुणित करने पर यही होता है। जैसाकि आचार्य ने कहा है :—

क्रान्ति[3]त्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणं दिनव्यासः ॥इति ॥

त्रिज्या और क्रान्तिज्या का वर्गान्तरमूल द्विगुणित करने पर अहोरात्रव्यास प्राप्त होता है।

चरदलकालः। राशीनां मेषादीनां चरखण्डकालः। स्वदेशनिरक्षदेशदिनरात्र्योरन्तरमित्यर्थः।

चरदलकाल का तात्पर्य है मेषादि राशियों का चरखण्डकाल। स्वदेश और निरक्षदेश के दिन और रात्रि का अन्तर भी चरखण्डकाल होता है।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य २३ श्लोकपूर्वार्द्धम्। तत्रान्ते "मूलभवो लम्बः" इति पाठः।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य २८-२७ श्लोकौ। तत्र २७ श्लोकस्योत्तरार्द्धे "भूजीवां कृत्वा तत्क्रान्तिज्याकृतियुतान्मूलम्" इति तथा २८ श्लोकस्य पूर्वार्द्धे "तेन विभजेत् क्षितिज्याम्" इति पाठः।

३. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य २३ श्लोकस्योत्तरार्द्धम्। तत्र "क्रान्तिज्यात्रिज्याकृत्यन्तरात्पदद्विदिनव्यासः" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]विंशतिरष्टिः सार्द्धपादोनाः सप्त चाजपूर्वाणाम्।
विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्चरविनाड्योऽर्द्धैः॥

२०, १६, ... क्रमशः मेषादि राशियों के लिए विषुवत् छाया से गुणा करने पर क्रम तथा व्युत्क्रम से चरखण्ड होता है।

एवं चरदलज्ञानम्।

एतैर्गणितविधिना स्फुटरवेरिष्टदिनचरदलसाधनं कार्यम्।
राश्युदया राशीनां मेषादीनां निरक्षदेशे स्वदेशेष्वेवोदयप्रमाणचषकाः॥

इस प्रकार से चरदल का ज्ञान किया जाता है।

इस गणितविधि से स्पष्टसूर्य के द्वारा इष्टदिन में चरखण्ड का आनयन करना चाहिए। मेषादि राशियों का राश्युदयमान निरक्षदेश में निश्चित है और स्वदेशीय उदयप्रमाण भिन्न-भिन्न ज्ञात किया जाता है। जैसा कि आचार्य ने कहा है :–

तथा चाऽऽचार्यः :–

वसुमुनिपक्षा[2] व्येकं शतत्रयं चिद्विकाग्नयश्चाङ्काः।
परतस्त एव वामाः षड्युक्रमात्ते तुलाद्यर्द्धे॥
चरदलकालक्षीणास्त्रयस्त्रयः संयुताः प्रतीपैस्तैः।
उदयर्क्षतुल्यकालेन यान्ति तत्सप्तमाश्चास्तम्॥

८,७,२ को ३०० में से घटाकर और २,३ इन अङ्कों को रखने से मेषादि क्षयराशियों का और उत्क्रम से तुलादि राशियों का मान होता है। चरखण्डकाल क्रमशः मेषादि तीन राशियों में जोड़कर पुनः क्रम से घटाकर स्वदेशीय होते हैं। उदयकालिक राशि से सप्तम राशि में ग्रह अस्त होते हैं।

छाया। स्वदेशे विषुवति[3] द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोरिष्टकाले वा। सलिलकृतसमायामवनौ विषुवद्दिवसमध्याह्ने द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोश्छाया विषुवती भवति इष्टदिने गणितविधिना सिद्ध्यति। तथा चाऽऽचार्यः–

छाया का तात्पर्य है विषुवत-दिन में द्वादशाङ्गुल शङ्कु की इष्टकालिक छाया। जल से समतल भूमि पर विषुवत् दिन के मध्याह्न में द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया ही विषुवती छाया होती है। यह अभीष्ट दिन में गणित क्रिया से सिद्ध होती है। जैसाकि आचार्य ने कहा है :–

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ३ अध्यायस्य पौलिशसिद्धान्ताख्यस्य १० श्लोकः।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ३०-३१ श्लोकौ। तत्र ३० श्लोके "त्रिद्विकाग्नयश्चाजात्" इति पाठः।

३. विषुवति विषुवद्दिन इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]अपमोनयुताक्षज्यां त्रिज्यातत्कृतिविशेषमूलेन।
छिन्द्याद्द्वादशगुणितां लब्धा माध्याह्निकी छाया॥

क्रान्तिज्या में अक्षज्या को जोड़ अथवा घटाकर प्राप्त फल की त्रिज्या के वर्ग का अन्तर, मूल ग्रहण कर भाग देने पर लब्धि में १२ का गुणा कर देने से मध्याह्नकाल की छाया प्राप्त होती है।

इष्टच्छायानयनम् :–

[2]तत्कालचरविनाडीद्विदशांशं द्विष्ठमजतुलाद्येषु।
षड्घ्नीभ्यो नाडीभ्यो जह्यात् संयोजयेच्चापि॥
तज्ज्या स्थितज्यया संयुता विसंयोजिताजतुलाद्येषु।
अविशोधनेन जीवा षड्घ्नीनामेव कर्तव्या॥
एवं कृत्वा हन्याद्द्युव्यासेनावलम्बघ्नेन।
छिन्द्यात् खखाष्टवस्वश्विभिः फलं शङ्कुलिप्ताख्यम्॥
तत्कृतिविनाकृतानां खखवेदसमुद्रशीतरश्मीनाम्।
पदमर्कघ्नं शङ्क्वङ्गुलाख्यलिप्तोद्धृतं छाया॥

इष्टकालिकछाया ज्ञात करने की विधि :–

तात्कालिक चरनाड़ी के द्वादशांश को दो स्थानों पर स्थापित करें। नाड़ी को षड्गुणित कर मेषादि और तुलादि राशियों में क्रमशः ऋण और धन करें। उसकी जीवा मेषादि और तुलादि राशियों में क्रमशः संयुत और वियुत करें। षड्गुणित राशि की जीवा बिना घटाये ही करें। इस प्रकार आनयन कर अहोरात्रव्यास तथा लम्बांश से गुणा करें और उसमें २८८०० से भाग दें, लब्धिफल शङ्कुकला होती है। उसका वर्ग १४४०० के मूल को १२ से गुणाकर शङ्कुलिप्ता से भाग देकर छाया ज्ञात की जाती है।

नाडीकरणम्। इष्टकाले शङ्कुच्छायां दृष्ट्वा कालानयनं छायातो जानाति कालाच्च छायानयनम्।

तथा चाऽऽचार्यः :–

नाड़ीकरण का तात्पर्य है– इष्टकाल में शङ्कु की छाया को देखकर काल का ज्ञान करना और काल के ज्ञान से छाया का ज्ञान करना। जैसा कि आचार्य ने कहा है–

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य २२ श्लोकः। तत्र "छिन्द्या द्वादशगुणिता लब्धा" इति पाठः।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ४१-४५ श्लोकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]षड्घ्नेऽथ स्वद्युमिते छिन्ने सद्वादशैर्विमाध्याह्नैः।
छायाङ्गुलैर्गतास्ता नाड्यः प्राक् पृष्ठतः शेषाः॥
छायाऽऽर्की नाडीभिर्दिनमानं षड्घ्नमुद्धरेत्तत्र।
लब्धं द्वादशहीनं मध्याह्नच्छायया सहितम्॥
सा विज्ञेया [2]छायेति च॥

दिनमानगुणित ६ को द्वादशगुणित मध्याह्नकालिक छाया का मान गत नाड़ी का मान होता है। रवि की छाया-नाड़ी से षड्गुणित दिनमान का भाग देने पर लब्धिफल को १२ में घटाकर मध्याह्न-छाया जोड़ने पर इष्ट छाया प्राप्त होती है।

तत्क्षेत्रं कालाज्जानाति क्षेत्राच्च कालम्।

इस प्रकार क्षेत्र से काल का ज्ञान और काल से क्षेत्र का ज्ञान होता है।

यथैतावतीनां दिनगतघटिकानां रात्रिगतानां वा किं लग्नं तस्य लग्नस्य कियत्यो राशिभागलिप्ता इति।

जैसाकिं इतने इष्टदिन के गत घटी-काल अथवा रात्रिगत घटी-काल में क्या लग्न है, और उस लग्न की कितनी राशि, अंश, कलाएँ व्यतीत हुईं ?

एतत्कालात् क्षेत्रं तथा चास्मदीयवचनम् :–

इस काल से क्षेत्रकथन और स्वाभिमत इस प्रकार है :–

तात्कालिकार्कराशेर्भोगकलास्तत्प्रमाणसङ्गुणिताः।
खखवसुशशिभिर्लब्धं विशोधयेत् प्रश्नचषकेभ्यः॥
संयोज्यं भुक्तमिते तत्परतः शोधयेत् स्वराश्युदयान्।
यावन्तः संशुद्धास्तावन्तो राशयः क्षेप्याः॥
सूर्ये शेषं विभजेदशुद्धचषकैः खरामसङ्गुणितम्।
लब्धं भागादि रवौ प्रक्षिप्य तथा कृते लग्नम्॥
रात्रिगते षड्भयुतादर्काद्दिनवत्प्रसाधयेल्लग्नम्।
दिनलग्ने यद्विहितं तद्विपरीतं निशाशेषे॥

तात्कालिक सूर्य की भोग-राशि कलाराशि-प्रमाण से गुणित कर १८०० से भाग देकर लब्धफल को इष्टकाल में से घटा दें। इसमें स्वराशि के उदयमान को

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ४ अध्यायस्य ४८-४९ श्लोकौ। तत्र ४८ श्लोकादौ "षड्घ्नेऽथवा द्युमाने" इति पाठः।

२. "सा विज्ञेया छाया वासिष्ठसमाससिद्धान्ते" इत्याचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायाम् २ अध्याये नक्षत्रादिच्छेदाख्ये १३ श्लोके कथितम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घटा लें। पुनः जितनी राशियाँ घट सकें उतनी घटायें। शेष को अशुद्ध राशि से भाग देकर ३० का गुणाकर लब्ध अंशादि मान को सूर्य में से घटा देने पर लग्न प्राप्त होता है। रात्रिकाल में इष्टकाल होने पर सूर्यराशि में ६ जोड़कर दिन के समान ही लग्न का साधन करें। दिवाकालिक लग्न के लिए जो क्रिया कही गयी है, उससे विपरीत रात्रि-शेष में क्रिया होती है।

एतत्कालात् क्षेत्रम्। क्षेत्राच्च कालम्। इष्टकाले तात्कालिकं लग्नं दृष्ट्वार्कं च इदं लग्नं कियतीनां घटिकानां दिनगतानां रात्रिगतानां रात्रिशेषाणां वा। एतज्जानाति लग्नार्कयोरन्तराद् घटिकानयनं करोति। तथा चास्मदीयवचनम् :—

यह काल-ज्ञान से क्षेत्र और क्षेत्र-ज्ञान से काल कहा गया। इष्टकाल में तात्कालिक सूर्य को देखकर लग्न अथवा लग्न को देखकर कितने गत दिन घटी अथवा रात्रिघटी वा रात्रि-शेषघटी से सूर्य का ज्ञान होता है, यह सब जो जानता है, लग्न और रवि के अन्तर से घटी का साधन करता है, वह दैवज्ञ है।

इस विषय में हमारे (आचार्य) का यह कथन इस प्रकार है :—

सूर्यादभुक्तभागैर्लग्नाद्भुक्तैः प्रसाधयेल्लब्धिम्।
तद्योगे राश्युदयान् तदन्तरस्थान् क्षिपेत्कालः॥

सूर्य के अभुक्तांश से और लग्न के भुक्तांश से लब्धिसाधन कर उनके योग में अन्तरवर्ती उदयराशियों में जोड़ दें।

तथा :—

ऊनो लब्धेः कालस्तमेव भक्त्वार्कराशिमानेन।
प्राग्वल्लब्धं सूर्ये दत्त्वा लग्नं भवेत्तदन्तरकम्॥
तद्राशिमानगुणितं खखाष्टरूपैर्विभाजितं कृत्वा।

लब्धं कालं विन्द्यादिति।

जैसा कि कहा गया है :—

लब्धकाल को सूर्य में से घटाकर राशिमान से भाग देकर जो लब्धि आये, उसे सूर्य में जोड़कर लग्न होता है। अन्तर को राशिमान से गुणाकर १८०० से भाग कर लब्धफल को काल जानना चाहिए।

एवं क्षेत्रकालकरणमेवमादिष्वभिज्ञ। इति।

इस प्रकार क्षेत्र-कालादि की क्रिया में सांवत्सर को निपुण होना चाहिए।

अथ तन्त्रज्ञस्य विशेषलक्षणमाह :—

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तन्त्रज्ञ का विशेष लक्षण बताते हैं :–

इत्थंभूतस्य शास्त्रस्य यो वक्ता प्रतिपादकः स तन्त्रज्ञो भवति गणितज्ञ इत्यर्थः।

विविध प्रकार के सम्प्रेरित प्रश्नभेदों से समन्वित सारगर्भित वाक्यों से युक्त, घर्षण, ताप तथा छेदन के द्वारा परिशुद्ध स्वर्ण की तरह शास्त्र का व्याख्यान करने वाला तन्त्रज्ञ होता है।

कीदृशस्य शास्त्रस्य निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य। यथा कनकं स्वर्णं स्वभावनिर्मलं भवति। तच्च निकषसन्तापाभनिवेशैरधिकतरं निर्मलं भवति। निकषं निर्घर्षणं पाषाणतले। सन्तापोऽग्नौ परितापनम्। अभिनिवेशो यन्त्रच्छेदनसङ्घट्टनमेतैः सुवर्णमधिकतरममलं भवति। शास्त्रस्य निकषं निर्घर्षणं भूयोभूयोऽन्वेषणम्। सन्तापश्चित्तपरितापश्चमत्कारस्तत्रैवैकाग्रता। अभिनिवेशो यत्नो व्यासक्तिः। एतैरमलीकृतस्य निःसन्देहभूतस्य कीदृशो वक्ता नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारः। नानाप्रकाराश्च ते चोद्याः, प्रश्नानां भेदाः प्रश्नभेदाः। अभिधेयस्यार्थस्य प्रतिपक्षोद्भवेनानुपपत्त्योपपादनं चोद्यम्। यथा केनचिच्चोद्यः कृतः। यथा यो दक्षिणस्यां दिशि कन्यास्थे सवितर्यतीवस्फुट-रूपस्तारको दृश्यते स ध्रुवः। उत्तरस्यां दिशि योऽतिसूक्ष्मरूपः सोऽगस्त्यः। तस्य गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा भूगोलमध्ये मेरुस्तत्र चाक्षभागानुवर्तिर्ध्रुवोन्नतिरेवाक्षोऽतो दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवो न दृश्यते यतस्तन्न भूगोलमध्यम्। अगस्त्य उत्तरस्यां न दृश्यते यतः स खमध्यात् स्वक्रान्त्या दक्षिणे गतो ध्रुवकविक्षेपवशात्। अनधिगतस्यार्थस्याधिगमतापवचनम्। प्रश्नो यथा :– नक्षत्रगणनया चित्रा प्रथमतः स्थिता तत्पश्चात् स्वाती कथं स्वाती पूर्वमुदयं याति पश्चाच्चित्रा। चित्रायामस्तमितायां पश्चात्स्वातिरस्तमेति। तस्या अपि गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा चित्रा दक्षिणविक्षिप्ता स्वातिरुत्तरतश्चित्राया अल्पमहःप्रमाणं स्वातेरतिमहत्। तेनैतत् सम्भवति। एवं नानाचोद्यप्रश्नभेदानामुपलब्धिर्नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिः। उपलब्धिरुपलम्भनं ज्ञानं वादिकृतप्रश्नानां परिहारः। तयोप्रलब्ध्या जनित उत्पन्नो वाक्सारो निश्चयो यस्य स तथाभूतः। अन्य एवं व्याचक्षते यथा :– नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्ध्या जनितो वाक्सारो यस्य कैर्निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्येति।

इस प्रकार के शास्त्र का प्रतिपादन करनेवाला जो वक्ता होता है, वही तन्त्रज्ञ अर्थात् गणितज्ञ होता है। किस प्रकार के शास्त्र से ? घर्षण, संताप एवं छेदन से निर्मल किये गये स्वर्ण की तरह। जिस प्रकार स्वर्ण स्वाभाविक निर्मल होता है, फिर भी वह घर्षण, संताप और छेदन के द्वारा अत्यधिक निर्मल हो जाता है। निकष पाषाणतल पर घर्षण को कहते हैं। अग्नि में तपाने को संताप कहा जाता है। अभिनिवेश का तात्पर्य यन्त्रच्छेदन सङ्घटन से है, जिसके द्वारा सुवर्ण अधिक निर्मल हो जाता है। शास्त्र के निकष-निर्घर्षण का अर्थ पुनः-पुनः शास्त्रान्वेषण से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। संताप का तात्पर्य चित्त का परिताप-चमत्कार से है, जिससे मानसिक एकाग्रता उत्पन्न होती है। अभिनिवेश का अर्थ प्रयत्न तथा लगन से है। इनसे निर्मल किये हुए का अर्थात् सन्देहरहित का तात्पर्य है, जो कि विविध प्रश्नों के भेदपूर्ण सार तथ्यों का निर्वचन करनेवाला हो। विविध प्रकार के वे प्रतिपाद्य होते हैं, प्रश्नों के भेद को प्रश्नभेद कहते हैं। अभिधेय अर्थ का तात्पर्य प्रतिपक्ष द्वारा उपस्थापित आपत्तियों का निराकरणपूर्वक कथन है। जैसाकि किसी के द्वारा प्रश्न (चोद्य) किया गया कि, जो कन्याराशि के सूर्य के होने पर दक्षिणदिशा में अतीव स्पष्ट तारा देखा जाता है। क्या वह ध्रुव है ? उत्तरदिशा में अत्यन्त सूक्ष्म दिखलायी पड़ने वाला तारा ही अगस्त्य है ? इस प्रश्न का गणितज्ञ के द्वारा गोलोपपत्ति के माध्यम से परिहार किया जाता है। जैसाकि– भूगोल के मध्य में मेरु स्थान है। वहाँ पर अक्षांश का अनुवर्ती ध्रुवोन्नति ही अक्षांश है, अतः दक्षिणदिशा में ध्रुव नहीं दिखलायी देता है, क्योंकि वह भूगोल के मध्य में नहीं होता है। अगस्त्य उत्तरदिशा में दृश्य नहीं होता, क्योंकि वह खमध्य से दक्षिणक्रान्तिगत विक्षेप के कारण दक्षिण में ही रहता है।

प्रश्न इस प्रकार होता है :-

नक्षत्रों की गणना में चित्रा का स्थान पहले है और स्वाती का बाद में, परन्तु उदय-क्षितिज में पहले स्वाती का उदय होता है, तत्पश्चात् चित्रा का, और अस्त के समय पहले चित्रा का अस्त होता है तत्पश्चात् स्वाती अस्त होती है, ऐसा क्यों ? इसका परिहार गोलोपपत्ति से गणितज्ञ के द्वारा दिया जाता है। जैसा कि चित्रा नक्षत्र दक्षिणविक्षेपवाला तथा स्वाती उत्तरविक्षेपवाला होता है। और चित्रा का दिनप्रमाण अल्प और स्वाती का दिनप्रमाण महत् होता है, इसी कारण नक्षत्रों की यह स्थिति सम्भव होती है। इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रश्नभेदों के ज्ञान को नानाचोद्यप्रश्न-भेदोपलब्धि कहते हैं। उपलब्धि शब्द का अर्थ उपलम्भन अर्थात् ज्ञान अर्थात् वादी द्वारा उपस्थापित प्रश्नों का समाधान है। इस ज्ञान से उत्पन्न वाक्सार अर्थात् निश्चयमत हो जाना। अन्य लोग इस प्रकार से इसको कहते हैं– विविध प्रकार से उपस्थापित प्रश्नभेदों की उपलब्धि से उत्पन्न वाक्सार, जिसके द्वारा घर्षण, संताप, छेदन से निर्मल सुवर्ण की तरह शास्त्र में निर्दोष ज्ञान हो।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा किं तदित्याह :–

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः।
निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ञेयः॥१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा कि महर्षि गर्ग के द्वारा कहा गया है :–

जो शास्त्रप्रतिपादित अर्थ को न जानता हो, और एक भी प्रश्न के पूछने पर उत्तर देने में समर्थ न हो तथा शिष्यों को स्पष्ट उपदेश न दे सकता हो, उसको शास्त्रों का अर्थज्ञ कैसे समझा जा सकता है ? ॥१॥

यो नरः प्रतिबद्धं शास्त्रोपनिबद्धमर्थं न गमयति न प्रतिपादयति सूत्राक्षराणां योऽर्थस्तं विहायाऽसारार्थं प्रतिपादयति। तथा हि :– केनचित् सन्देहव्युदासार्थं पृष्टः सन्नेकमपि प्रश्नं न वक्ति न कथयति। तथा च शिष्येभ्यश्छात्रेभ्यो न निगदति न पाठयति। स कथं केन प्रकारेण शास्त्रार्थविद् ग्रन्थसद्भावो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एतदुक्तं भवति। एवं विधः स मूर्ख इति ज्ञेयो न पण्डितः॥१॥

जो व्यक्ति प्रतिबद्ध अर्थात् शास्त्र के निबद्ध अर्थ को न तो जानता है और न प्रतिपादित करता है, सूत्र के वास्तविक अर्थ को छोड़कर सारहीन अर्थ का प्रतिपादन करता है, साथ ही किसी के द्वारा सन्देह निवारणार्थ पूछे गये एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं देता है और छात्रों को पढ़ाता भी नहीं है; ऐसा व्यक्ति शास्त्रार्थ का ज्ञाता किस प्रकार हो सकता है? इसका यह अभिप्राय है कि इस प्रकार का व्यक्ति साक्षात् मूर्ख ही होगा न कि पण्डित ॥१॥

अथ मूर्खोपहासार्थमाह :–

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम्॥२॥

मूर्खों के उपहास में कहते हैं :–

जो व्यक्ति ग्रन्थ के वास्तविक अर्थ से भिन्न अन्यथा अर्थ करता है और गणित-क्रिया को भी अन्यथा ही करता है, वह मूर्ख पितामह (पूर्वजों) के पास जाकर अपनी मृत आर्य कुलमाताओं की वेश्या की भाँति स्तुति करता है ॥२॥

यो नरो मनुष्योऽन्यथाऽन्येन प्रकारेण ग्रन्थसंस्थितोऽन्यथार्थं करोति। करणं गणितकर्म्म गुणकारभागहारादिकमन्यथास्थितमन्यथा करोति। यथा :–

ग्रन्थ में निबद्ध अर्थ को अन्यथा प्रकार से जो व्यक्त करता हो, करण अर्थात् गणितकर्म को गुणा, भाग आदि को अन्यथा प्रकार से करता हो, वह मूर्ख है। जैसा कि :–

दिन[1] करवसिष्ठपूर्वान् विबुधमुनीन् भावतः प्रणम्यादौ।
जनकं गुरुं च शास्त्रे येनास्मिन्नः कृतो बोधः॥इति।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाः प्रथमः श्लोकस्तत्र "विविधमुनीन्द्रान् प्रणम्य भक्त्यादौ" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रवि, वशिष्ठादि पूर्वाचार्यों को, देव-मुनियों को, और जिनके द्वारा हम लोगों को इस शास्त्र का ज्ञान कराया गया है, उन गुरुजनों तथा पूज्य पिता को सर्वप्रथम भावपूर्वक प्रणाम कर (ग्रन्थारम्भ करते हैं)।

अत्र व्याख्या :– दिनं सर्वत्र मानैर्यद्गण्यते। करौ हस्तौ। याभ्यां गणितकर्म क्रियते। वसिष्ठो धनधान्यतोऽर्थः प्रार्थयते। पूर्वा आद्यपुरुषाः। पितामहप्रभृतयो य एतान् दिनकरवसिष्ठपूर्वान्। विशेषेण बुधाः पण्डिता ये मुनयः ऋषयो ये तान्। तथा भावतो भा कान्तिर्विद्यते येषु ते भावन्तो द्वादशादित्यास्तानपि भावतः। यतस्तदालोकात् सर्वेषामेव कर्म्मणां प्रवृत्तिः आदौ प्रथमतः प्रणम्य नमस्कृत्य। तथा जनानां लोकानां कं शिरो जनकं कीदृशं गुरुं च गौरवयुक्तं सर्वाङ्गाप्राधान्यात्। येन केन नोऽस्माकमस्मिन् शास्त्रे बोधः कृत उत्पादितः। मूर्ध्ना विना सत्सु विद्यमानेष्ववयवेषु न किञ्चित् कर्तुं शक्यत इति।

इसका अन्यथा अर्थ उदाहृत करते हैं :–

दिन अर्थात् सर्वत्र जिसकी मानव द्वारा गणना की जाती है। कर अर्थात् हस्त, जिनके द्वारा गणित कर्म किया जाता है। वशिष्ठ अर्थात् धन-धान्य से अर्थ की प्रार्थना की जाती है। पूर्व अर्थात् आद्यपुरुष। पितामह प्रभृति इन दिनकरवशिष्ठादि आद्यपुरुषों को। विशेषतया जो बुध अर्थात् पण्डित हों, मुनि अर्थात् ऋषियों को। भावतः शब्द का अर्थ भा, कान्ति जिनमें हो वे द्वादशादित्य उन सबको। क्योंकि इनके प्रकाश से सभी कर्मों की प्रवृत्ति होती है। प्रथमतः इन सबको नमस्कार कर जनक अर्थात् लोकों का शिर, गुरु अर्थात् गौरवयुक्त, सभी अङ्गों में प्रधान होने के कारण। जिसके द्वारा हमारे इस शास्त्र में ज्ञान उत्पादित किया गया। शिर के बिना अन्य अङ्गों के होते हुए भी कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

तथा करणे। [1]द्युगणेऽहर्गणे, अष्टशतघ्ने अष्टौ च शतं चाष्टशतं तेन हते गुणिते। किं भूतेऽहर्गणे विपक्षा वेदार्णवाः प्रमाणं यस्य द्वाभ्यां हीना चतुश्चत्वारिंशदित्यर्थः। तथा तस्मिन् अर्कसिद्धान्ते। अर्का द्वादश। सिद्धाश्चतुर्विंशतिरन्तेऽवसाने यस्य। यथासङ्ख्यं स्वरखाश्विद्विनवयमाभ्यां क्रमादुद्धृते विभक्ते भगणादिविलिप्तान्तोऽर्को लभ्यते। एवमवन्त्यामुज्जयिन्यां दिनदले मध्याह्ने नान्यदेशेष्वित्यर्थः।

करण अर्थात् अहर्गण में १०८ गुणा करना। किस प्रकार के अहर्गण में से ४४ में २ ऋण किया जाता है, इस प्रकार के अर्कसिद्धान्त में अर्थात् अर्क =१२, सिद्ध=२४ जिसके अन्त में हों। संख्यानुसार २९२२०७ से क्रमशः भाग देने पर भगणादि विकलापर्यन्त सूर्य होता है। इस प्रकार का केवल उज्जयिनी में मध्याह्न-कालिक सूर्य होता है, अन्य प्रदेश में नहीं।

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ९ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोऽबुधो मूर्खः पितामहं पितुः पितरमुपागम्य तत्समीपं गत्वा वैशिकेन वैश्यात्वेन नखदशनक्षतसीत्कारादिभिर्गुणैरार्यां मातरं स्तौति श्लाघयति। मूर्खोपहासमेतत् ॥ २॥

ऐसा मूर्ख पितामह अर्थात् पिता के पितरों के पास जाकर वेश्याओं के समान नख-दन्त-क्षत-सीत्कारादि के द्वारा आर्या अर्थात् माताओं की स्तुति करता है। यह मूर्खों के लिए किया गया उपहास है।

अथ त्रिस्कन्धस्य वाक्प्रशंसार्थमाह :—

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या ॥ ३॥

त्रिस्कन्ध-ज्योतिष की प्रशंसा में कहते हैं :—

गणितशास्त्र में निष्णात, छायाजलयन्त्र के द्वारा लग्न का विनिश्चय करने वाले, जातकशास्त्र का सम्यक् ज्ञान रखने वाले के द्वारा फलादेश करने पर उसकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं होती है ॥ ३॥

तन्त्रे गणितस्कन्धे सुपरिज्ञाते सुष्ठु सवासनिके विदिते। तथा लग्ने तात्कालिके उदये छायायाः शङ्कोः संबन्धिन्या अम्बुयन्त्रेण घटिकादिकेन च संविदिते सम्यग्ज्ञाते। कालं ज्ञात्वा स्फुटतरे कृत इत्यर्थः।

तथा होरार्थे जातकार्थे सुरूढे सुस्थिरे सति। आदेष्टुरुपदेशकर्तुर्भारती वाग् वन्ध्या निष्फला न भवति। तस्य वाग् मुनेरिव सत्या भवतीत्यर्थः॥

गणितस्कन्ध में सुन्दर ज्ञान रखनेवाला अर्थात् उसका पूर्णज्ञाता, तात्कालिक उदयलग्न में शङ्कुसम्बन्धी छाया का, जलयन्त्र से घटिकादि का सम्यक् ज्ञान होने पर अर्थात् स्पष्ट कालज्ञान हो जाने पर तथा होराशास्त्र, जातकशास्त्र में सुस्थिर बुद्धि होने पर आदेश करने वाले दैवज्ञ की वाणी (भारती) वन्ध्या अर्थात् निष्फला नहीं होती है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विद्वान् दैवज्ञ की वाणी मुनियों की तरह सत्य होती है।

उक्तं चाऽऽचार्यविष्णुगुप्तेन। तथाऽऽह :—

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचि—
दासादयेदनिलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य,
गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ ४॥

जैसा कि आचार्य विष्णुगुप्त ने कहा है:—

यदि कोई व्यक्ति तैरता हुआ कदाचित् वायुवेग के कारण समुद्र के पार भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चला जाये, परन्तु इस कालपुरुषरूपी महासागर का ऋषियों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति कभी भी पार नहीं पा सकता है ॥४॥

अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। अर्णवस्य समुद्रस्य दुस्तरस्यापि पुरुषो मनुष्यः प्रतरन्नुल्लङ्घयन्ननिलवेगवशेन वायुरयहेतुना परं पारमासादयेत्प्राप्नुयात्। अस्य पुनः कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य कालरूपः पुरुषः स चाख्या नाम यस्यासौ कालपुरुषाख्यः, स च महार्णवस्तस्य ज्योतिःशास्त्रविस्तीर्णसमुद्रस्यानृषिरमुनिर्मनसा चित्तेनापि पारं नासादयेत्। अनेन ज्योतिःशास्त्राऽऽनन्त्यं प्रदर्शितं भवति॥

यहाँ पर अपि शब्द सम्भावना अर्थ में है। दुस्तर समुद्र का भी मनुष्य तैरता हुआ वायुवेगवश पार प्राप्तकर सकता है तथापि इस कालपुरुष संज्ञक महासागर का अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के विशाल सागर को मुनियों के अतिरिक्त कोई दूसरा मन से भी पार नहीं कर सकता। इसके द्वारा यहाँ पर ज्योतिषशास्त्र की अनन्तता को प्रदर्शित किया गया है।

अथ स्कन्धद्वये के भेदास्तदर्थमाह :—

होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजाति-चेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्ट-कवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनां च योगानां फलान्या-श्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तत्कालप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम्।

दोनों शास्त्रों के परस्पर भेद बताते हैं :—

होराशास्त्र में राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, बलाबल का परिग्रहण, ग्रहों की दिशा, स्थान, काल, चेष्टादि अनेक प्रकार से बलों का निर्धारण, प्रकृति, धातु, द्रव्य, जाति, चेष्टादि का परिग्रहण, गर्भाधान, जन्मकाल, आश्चर्योत्पादक विश्वसनीय फलादेश, शीघ्रमरण, आयुष्य-विचार, दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोगों का, और नाभसादियोगों का आश्रय, भाव का अवलोकन, मृत्यु, सद्गति, पूर्वजन्म आदि का तात्कालिक प्रश्नं, शुभाशुभलक्षण और विवाहादि कर्मों की क्रिया के विचार होते हैं।

होराशास्त्रे जातकशास्त्रे के भेदाः। अपिशब्दः सम्भावनायां चशब्दः प्रकारार्थे। न केवलं तन्त्रे वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्या उक्ताः। यावद्धोराशास्त्रेऽपि तथा भेदाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा :– राशिर्मेषादिकस्तस्य स्वरूपं [1]मत्स्यो घटीत्यादि स चाष्टादशशतलिप्तात्मकः। होरा तदर्द्धं तस्या [2]मार्तण्डेन्द्वोरिति लक्षणमुक्तम्। द्रेष्काणस्त्रिभागस्तस्य द्रेष्काणाः [3]प्रथमपञ्चनवाधिपानामिति लक्षणमुक्तम्। नवांशको नवभागस्तस्याजमृगेति[4] लक्षणमुक्तम्। द्वादशभागो द्वादशांशस्तस्य [5]भवनसमांशकेति लक्षणमुक्तम्। त्रिंशद्भागस्त्रिंशांशस्तस्य [6]कुजरविजेत्यादि लक्षणमुक्तम्। बलाबलपरिग्रहो राशीनामेव [7]होरास्वामिगुरुज्ञेत्यादिनोक्तः। तथा ग्रहाणामादित्यादीनां दिग्बलं [8]दिक्षु बुधाङ्गिरसाविति। स्थानबलं [9]स्वोच्चसुहृदिति। कालबलं [10]निशि शशिकुजसौरा इति। चेष्टाबलमुदगयने'' रविशीतमयूखाविति। एताभिर्दिक्स्थान-कालचेष्टाभिः। अनेकप्रकाराणां बहुविधानां बलानां वीर्याणां निर्धारणं विचारः। यथा चन्द्रसितौ क्षेत्र इति शुभग्रहदर्शनं नैसर्गिकबलमित्येवमादिकानाम्। प्रकृतिर्वात-पित्तश्लेष्मात्मकत्वम्। [12]मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिरित्यादि। धातुः वसासृङ्मांसमेदास्थिमज्जाशुक्राणि धातवस्ते चोक्ताः [13]स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगित्यादि। द्रव्यं ताम्रादि। ताम्रं स्यान्मणिहेम'[14] इत्याद्युक्तम्।

होराशास्त्र अर्थात् जातकशास्त्र के कितने भेद हैं ? अपि शब्द सम्भावना में तथा च शब्द प्रकारान्तर के लिए है। न केवल गणित शास्त्र में वक्रानुवक्र, उदयास्तादि कहे गये हैं, अपितु होराशास्त्र में भी ऐसे भेद होते हैं, जैसाकि मेषादि राशियाँ उनका स्वरूप मत्स्य और घटी इत्यादि होता है और वह १८०० कला का होता है। होरा उसका आधा होता है, उसका सूर्य-चन्द्र होरा के नाम से लक्षण कहा गया है। द्रेष्काण तृतीय भाग को कहते हैं। प्रथम, पञ्चम और नवम के स्वामी ग्रहों से इसका ज्ञान होता है। नवम भाग को नवांश कहते हैं, जिसके मेष, मकरादि लक्षण होते हैं। द्वादशांश द्वादशभागात्मक है, जिसको स्वगृह के समान अंश से जाना जाता है। राशियों के बलाबल का निर्धारण होराधिप आदि से कहा गया है। सूर्यादि ग्रहों का दिग्बल निर्धारित दिशाओं के अनुसार होता है। स्थानबल अपने उच्च और मित्र-ग्रह के अनुसार होता है। कालबल समय के अनुसार सुनिश्चित है, जैसा कि– ''रात्रि में चन्द्र, मङ्गल और शनि बली होते हैं''। चेष्टाबल अयन के अनुसार होते हैं, उदाहरणार्थ उत्तरायण में सूर्य और चन्द्रमा को बली माना गया है। इस प्रकार

---

१. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ५ श्लोकः। २. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ११ श्लोकः।
३. लघुजातके १ अध्यायस्य ७ श्लोकः। ४. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ६ श्लोकः।
५. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ६ श्लोकः। ६. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ७ श्लोकः।
७. बृहज्जातके १ अध्यायस्य १९ श्लोकः। ८. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १९ श्लोकः।
९. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १९ श्लोकः। १०. बृहज्जातके २ अध्यायस्य २१ श्लोकः।
११. बृहज्जातके २ अध्यायस्य २० श्लोकः। १२. बृहज्जातके २ अध्यायस्य ८ श्लोकः।
१३. बृहज्जातके २ अध्यायस्य ११ श्लोकः। १४. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १२ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से दिशा, स्थान, काल और चेष्टाओं के द्वारा बलाबल का निर्धारण किया जाता है। बहुविध बलों का विचार ही बलनिर्धारण कहा जाता है। जैसा कि चन्द्र-शुक्र क्षेत्र हैं, शुभग्रहों का दर्शन, नैसर्गिक बलों का ज्ञान। वात-पित्त-श्लेष्मा को प्रकृति कहते हैं। मधुपिङ्गल दृष्टि, चौकोर शरीर पित्त प्रकृति का होता है। वैसा असृक (रक्त), मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातुएँ होती हैं। जैसे "स्नायु, अस्थि, असृक्, त्वक्" इत्यादि कहे गये हैं। ताम्रादि को द्रव्य कहते हैं। जैसे– मणि, सुवर्ण इत्यादि कहे गये हैं। जाति, शब्द, विप्रादि के लिए है,

जातिर्ब्रह्मणादिर्विप्रादितः [1]शुक्रगुरू इत्युक्ता। चेष्टा विनियोगः। [2]राजानौ रविशीतगू इति। आदिग्रहणात् सत्वादिगुणत्रयं [3]चन्द्रार्कजीवा इति। कटुकादिरसषट्कं देवादिस्थानानि वस्त्राणि [4]देवाम्ब्वग्नीत्यादिनोक्तानि। एवमादिकः। परिग्रहः स्वामित्वम्। तथा निषेको गर्भाधानं यथास्तराशिर्मिथुनं[5] समेतीत्यादि। जन्मकालो गर्भमोक्षसभयः पितुर्जातः[6] परोक्षस्येत्यादिकः। तत्र च विस्मापनप्रत्ययादेशः। विस्मयजननानां प्रत्ययानां नालवेष्टितकोशवेष्टितानां द्वित्रादीनां भुजांघ्रिशिरसां जन्मकथनं तदीयस्य पितुश्च सन्निधानमसन्निधानं गर्भमोक्षलक्षणं द्वारदिक्परिज्ञानं गृहशय्यासूतिकासहजव्रणादिपरिज्ञानम्। सद्योमरणमरिष्टाध्यायः [7]सन्ध्यायामित्यादि। आयुर्दायो जीवितप्रमाणम्। [8]मययवनमणित्थमिति दशा। ग्रहाणामायुषं आधिपत्यम् [9]उदयरविशशाङ्केत्यादि। अन्तर्दशा मध्यवर्तिनो दशा [10]एकर्क्षगोऽर्द्धमिति। अष्टकवर्ग औत्पादिकानां फलानां परिज्ञानं स्वादर्क" इत्यादि। राजयोगाः प्राहुर्यवना[12] इति। चन्द्रयोगाः सुनफादुरुधुराख्याः। हित्वार्क[11] सुनफानफेति। द्विग्रहयोगाः। [14]तिग्मांशुर्जनयतीत्यादि। [13]तथैकस्थैश्चतुरादिभिरिति। नाभसयोगा नवदिग्वसव[15] इति। आदिग्रहणात् कर्माजीवाराशिशीलानि प्रकीर्णाध्याया-निष्टयोगाः। [17]अर्थाप्तिः पितृमातृपत्नीति कर्माजीवाः। वृत्ता[16] तामद्रृगिति राशिशीलानि। [18]स्वर्क्षतुङ्गेति प्रकीर्णकः। लग्नात् [19]पुत्रकलत्र इत्यनिष्टयोगाः। एतेषां फलानि तथा

---

१. बृहज्जातके २ अध्यायस्य ७ श्लोकः। २. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १ श्लोकः।
३. बृहज्जातके २ अध्यायस्य ७ श्लोकः। ४. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १२ श्लोकः।
५. बृहज्जातके ४ अध्यायस्य २ श्लोकः। ६. बृहज्जातके ५ अध्यायस्य १ श्लोकः।
७. बृहज्जातके ६ अध्यायस्य १ श्लोकः। ८. बृहज्जातके ७ अध्यायस्य १ श्लोकः।
९. बृहज्जातके ८ अध्यायस्य १ श्लोकः। १०. बृहज्जातके ८ अध्यायस्य ३ श्लोकः।
११. बृहज्जातके ९ अध्यायस्य १ श्लोकः। १२. बृहज्जातके ११ अध्यायस्य १ श्लोकः।
१३. बृहज्जातके १३ अध्यायस्य ३ श्लोकः। १४. बृहज्जातके १४ अध्यायस्य १४ श्लोकः।
१५. बृहज्जातके १५ अध्यायस्य १ श्लोकः। १६. बृहज्जातके १२ अध्यायस्य १ श्लोकः।
१७. बृहज्जातके १० अध्यायस्य १ श्लोकः। १८. बृहज्जातके १७ अध्यायस्य १ श्लोकः।
१९. बृहज्जातके २२ अध्यायस्य १ श्लोकः। २०. बृहज्जातके २३ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियाश्रयाध्यायः। कुसल[२१]मकुलमुख्य इत्यादि। भावाध्यायः [२२]शूरस्तब्धेति। अवलोकनं दृष्टिफलाध्यायः। चन्द्रे [२३]भूपबुधाविति। निर्याणं मरणनिमित्तं [२४]मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेनेति। गतिर्देवलोकादिः। [२५]गतिरपि रिपुरन्ध्रेत्यादि। अनूकं ग्रागूजन्म [२६]गुरुरुडुपतिशुक्राविति। तत्कालप्रश्ने पृच्छायां शुभाऽशुभानि। लग्नाश्रितानि निमित्तानि शुभाशुभफलसूचकानि। तथा चोक्तम् :—

जैसे – "शुक्रगुरु" विप्रवर्ण के कहे गये हैं। चेष्टा का तात्पर्य विशेष विनियोग से है, जैसे – राजानौ रविशीतगू राजा होते हैं। आदि शब्द के ग्रहण से सत्त्वादि त्रिगुणों को लेते हैं। जैसे :– "चन्द्रार्कजीवा" सत्त्व होते हैं। कटुकादि षड्रस, देवादि स्थान तथा देव, अम्बु,अग्नि इत्यादि देवाम्ब्वग्नीत्त्यादिना से कहे गये हैं। परिग्रह अर्थात् स्वामित्व, निषेक अर्थात् गर्भाधान जैसे अस्तराशि मिथुन का ग्रहण किया जाता है। जन्मकाल का तात्पर्य गर्भमुक्ति समय से है, जैसे पितृ-जात, परोक्षादि समय का ज्ञान करना। विसमापन का अर्थ विश्वासोत्पादक चमत्कारी कार्य से है। विस्मयोत्पादक आदेश का कथन – जैसे नाववेष्टित, कोषवेष्टित दो अथवा तीन हाथ, स्कन्ध, शिरयुक्त जातक के जन्म का कथन, उसके पिता से दूरत्व अथवा सामीप्य का कथन, गर्भमोक्ष का लक्षण, प्रसूति-द्वार का दिशाज्ञान, गृह, शय्या, सूतिका के व्रणादि का ज्ञान। सद्योमरण का अर्थ अरिष्ट ध्याय से है, जैसे सन्ध्या में जन्म का फल। आयुर्दाय का तात्पर्य जीवनकाल का निर्धारण, जैसे – मय, मणि, यवन आदि कहा गया है। ग्रहों के भोगमान, स्वामित्व को दशा कहते हैं। इसको उदयरविशशाङ्क इत्यादि के द्वारा बृहज्जातक में कहा गया है। मध्यवर्ती दशाकाल को अन्तर्दशा कहते हैं, जैसा कि बृहज्जातक में "एकर्क्षगोर्धम्" आदि कहा गया है। औत्पादिक फलों के ज्ञान को अष्टकवर्ग कहा जाता है। राजयोग यवनों ने कहा है। सुनफा, दुर्धरा आदि चन्द्रयोग होते हैं, जैसे बृहज्जातक में "हित्वार्कं सुनफानफेति" कहा गया है। द्विग्रहयोग अर्थात् ग्रह एक साथ जब किसी भाव में रहते हैं, जैसे – "तिग्मांशुर्जनयति और तथैकस्थे" इत्यादि बृहज्जातक में कहा गया है। नाभसयोग बृहज्जातक में "नवदिग्वसवः" इत्यादि से बतलाया गया है। आदि शब्द से कर्म, जीव, राशिशील आदि प्रकीर्णाध्याय एवं अनिष्टयोग से सम्बन्ध है। धनागम, पितृ, मातृ, पत्नी इत्यादि को कर्माजीव कहते हैं, वृत्ता तामदृग आदि राशिशील होते

---

२१. बृहज्जातके २१ अध्यायस्य १ श्लोकः। २२. बृहज्जातके २० अध्यायस्य १ श्लोकः।
२३. बृहज्जातके १९ अध्यायस्य १ श्लोकः। २४. बृहज्जातके २५ अध्यायस्य १ श्लोकः।
२५. बृहज्जातके २५ अध्यायस्य १५ श्लोकः। २६. बृहज्जातके २५ अध्यायस्य १४ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। स्वराशि, उच्चादि को प्रकीर्णक कहते हैं। लग्न से पुत्र, कलत्रादि अनिष्टयोग कहे गये हैं। इनके फलों को क्रियाश्रयाध्याय से जाना जाता है, जैसा बृहज्जातक में कुसलमकुलमुख्य इत्यादि कहा गया है। शूरस्तब्धादि से बृहज्जातक में भावाध्याय कहा गया है। दृष्टि फलाध्याय को अवलोकन कहते हैं, जैसा कि बृहज्जातक में "चन्द्रे भूपबुधौ" इत्यादि कहा गया है। मृत्यु के निमित्त को निर्याण कहते हैं, जैसे बृहज्जातक में "मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेन" आदि कहा गया है। देवादि लोकों को गति कहते हैं, जिसको वृहज्जातक में "गतिरणिपुरन्ध्रे" इत्यादि कहा गया है। अनूक का अर्थ पूर्वजन्म है, इसको बृहज्जातक में गुरु, चन्द्र, शुक्रादि क्रम से कहा गया है। प्रश्नकर्ता के तात्कालिक प्रश्न के आधार पर शुभाशुभ फल के कथन को प्रश्नविचार कहा जाता है। लग्न में स्थित ग्रहों के आधार पर शुभाशुभफलों का विवेचन किया जाता है। जैसा कि कहा गया है :-

अपृच्छतः पृच्छतो वा जिज्ञासोर्यस्य कस्यचित्।
होराकेन्द्रत्रिकोणेभ्यस्तस्य विन्द्याच्छुभाशुभम्॥

इत्यादि तत्कालप्रश्नः।

जिस किसी भी जिज्ञासु के पूछने पर अथवा न पूछे जाने पर भी होरा, केन्द्र और त्रिकोण आदि के अनुसार उसके शुभाशुभफल का विचार करना चाहिए। इस प्रकार की विधा को तात्कालिकप्रश्न कहते हैं।

विवाहादीनां च कर्मणां विवाहोपनयनचूडाकरणगृहप्रवेशानां करणं [1]अज्ञातेत्यादि विवाहपटलम्। तत्रैव सप्तैते शशियोगाः सौम्यैः सह सर्वकर्मसिद्धिकरा इत्याद्युपनयादीनामतिदेशः कृत इति॥

विवाहादिकर्म का तात्पर्य विवाह, उपनयन, चूडाकरण, गृहप्रवेश इत्यादि का कथन है, जैसा कि विवाहपटल में "अज्ञातेत्त्यादि" के माध्यम से बतलाया गया है। वहीं पर सात प्रकार के चन्द्रयोग शुभग्रहों के साथ होने पर सभी कार्यों में सिद्धिकारक होते हैं। इस प्रकार का आदेश किया गया है।

अथ यात्रायां के भेदा इत्याह :-

यात्रायां तु तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्त्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमङ्गलामङ्गल-

---

१. अज्ञातेत्यादि तथा सप्तैते शशियोगा इत्यादीनि वचनद्वयं वराहमिहिरकृतविवाहपटलाख्यस्याद्यावधि नोपलब्धमित्यनुमीयते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गोपलम्भोपायश्चेत्युक्तं चाचार्यैः।

यात्रा के कितने भेद होते हैं यह प्रस्तुत किया जाता है :–

यात्रा में तिथि, दिन, करण, नक्षत्र, मुहूर्त्त, लग्न, योग, अङ्गस्फुरण, स्वप्न, विजयस्नान, ग्रहयज्ञ, गणयज्ञ, अग्निस्फुरण, हाथी एवं घोड़े की चेष्टाएँ, सेनाप्रमुखों का व्यवहार एवं चेष्टाएँ, ग्रहयोगवश षड्गुण का ज्ञान, उपायों का ज्ञान, मङ्गल एवं अमङ्गलकारक शकुनज्ञान, सेना के निवेश हेतु शुभाशुभ भूमिज्ञान, अग्निवर्ण, मन्त्री, चर, दूत, आटविकों (वनवासियों) का समयोचित प्रयोग, शत्रु के दुर्ग को प्राप्त करने के उपाय, इनको आचार्यों ने सन्निहित किया है।

यात्रायां यज्ञेऽश्वमेधिकायां देवपुरुषाकारावन्यमतेनोक्तावतः सोऽध्यायो न गृहीतः। तिथयो नन्दादिकास्तासां शुभाशुभं [1]नन्दाभद्राजयेत्यादि। दिवसग्रहणेन वार उच्यते। उदगयने रोगेत्यादि तत्फलमुक्तम्। करणानि बवादीनि तेषां फलं गरवणिजेत्यादि। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि तेषां गमने फलं दिशि बहुलाद्या इत्यादि। मुहूर्त्तास्त्रिंशच्छिवादिकास्तेषां लक्षणं फलानि च शिवभुजगेति लक्षणं नक्षत्रफलवदिति फलानि। विलग्नं तात्कालिकं यात्रालग्नं द्विपदवशगाः सर्व इत्याद्युक्तम्। योगा योगाध्यायोक्ता देहः कोश इत्यादि। अथात्रैव पृच्छाकाले उक्ताः। तस्माद्वृषः कुसुमरत्नफलाग्रह इति। अथवा शुभाशुभफलयोगा जातके उदाहृता इति। यथा होरागतः स्वभवने यदि सूर्यपुत्र इति। तेषामपि फलानि तत्रैव। देहस्पन्दनलक्षणं दक्षिणपार्श्वं स्पन्दनमिति। स्वप्नं स्वप्नाध्याये दुकूलमुक्तामणिस्तदिति। विजयस्नानं विजिगीषोर्नृपस्य विजयार्थं स्नानं क्षीरिकतरुनगार्णवेत्यादि। ग्रहयज्ञो ग्रहाणां यागः। ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये इति। गणयागो गुह्यकपूजनं यात्रार्वाक्सप्ताहादिति। अग्निलिङ्गान्यग्निलक्षणानि होमकाले उच्छ्रायः स्वयमुज्ज्वलार्चिरिति। हस्तिनां गजानामिङ्गितं चेष्टितं दन्तमूलपरिणाहदीर्घतामित्यादि। अश्वानां तुरगाणां चेङ्गितं बलावकिरणेति। सेनाप्रवादः सैनिकानां प्रधानराजपुरुषाणां प्रवदनं व्याहरणं संग्रामे वयमभरद्विजप्रसादादित्यादि। चेष्टा उत्साहोऽनुत्साहो वा विद्विष्टप्रवरनरा इति। आदिग्रहणाद्वातमेघवृष्ट्यादीनां लक्षणानि। प्रोत्क्षिप्तेत्यादि वातलक्षणम्। पृथुघनमनुलोममित्यादि मेघलक्षणम्। सप्ताहान्तर्बलभयकरीत्यादि वृष्टिलक्षणम्। एवमन्येषामपि। तथा ग्रहाणां बलाबलवशात् षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसंश्रयाणां षण्णां गुणानां भावः षाड्गुण्यं तेषां ग्रहवशात् सिद्ध्यसिद्धी ज्ञातव्ये स्वर्क्षशदशापयोरित्याद्युक्ताः। उपायाश्चत्वारः सामदामभेददण्डाख्याः। तेषामपि सिद्ध्यसिद्धी साम्नः शुक्रबृहस्पती इत्याद्युक्ताः। मङ्गलामङ्गलानि

---

१. नन्दाभद्राजयेत्यादि-इत्यादि वचनानि वराहमिहिरकृतबृहद्यात्राख्य-ग्रन्थस्थानीत्यनुमीयते। बृहद्यात्रापुस्तकमस्माभिर्नोपलब्धमतस्तत्र कुत्रैतानि वचनानीति न ज्ञायते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धार्थकादर्शेत्यादिमङ्गलानि, कर्पासौषधादीनिन्यमङ्गलानि, प्रस्थानसमये शुभाशुभसूचकानि तथा शकुनमन्यजन्मान्तरकृतमिति। तथा सैन्यनिवेशभूमयः सैन्ये सेनायां निवेशार्थं शुभाऽशुभभूमयस्तासां लक्षणानि स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मेति शुद्धाः। नेष्टा विपर्ययगुणेत्यशुभाः। अशुभा अग्निवर्णा उपस्थाग्निकर्मणि शुभाशुभाः शुक्लेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरा इति। तथा अन्याश्रितान्यपि शुभाशुभनिमित्तानि सर्वाणि सन्ति। चरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः। प्रयोगः प्रयुञ्जनं कस्मिन् काले मन्त्री रिपोः सकाशं प्रयुज्यते। तथा च शत्रोर्वधाय सचिवं शुभदैवयुक्तमाज्ञापयेदिति। कस्मिन् काले चराणां गूढपुरुषाणां प्रयोगाः कस्मिन् काले दूतादेः। बुद्ध्वा शक्तिं स्वपरबलयोरित्यत्र प्रयोजनमुक्तम्। कस्मिन् काले आटविकादेर्बलस्य प्रयोगः। अर्कादाटविकमित्यादि प्रयोजनमुक्तम्। एतेषां यथाकालं प्रयोगाः। परदुर्गोपलम्भोपायः परस्य शत्रोर्दुर्गे उपलम्भनं लाभो ग्रहणमित्यर्थः। तत्रोपायो यथा लभ्यते दुर्गस्तस्य च केतूल्कार्कज इत्युपलम्भनमुक्तम्। इत्येवं प्रकारः। उक्तमाचार्यैः। किं तदित्याह :—

यात्रा में अश्वमेधादि यज्ञों में, देवपुरुषाकार अन्य मत के अनुसार कथन होने के कारण उस अध्याय का ग्रहण नहीं किया गया है। नन्दादि तिथियाँ होती हैं, जिसकी नन्दा, भद्रा, जया इत्यादि संज्ञा है। दिवस का तात्पर्य वार से है। उत्तरायण में रोगादि के द्वारा उसका फल कहा गया है। बव आदि करण होते हैं, जिनका फल गर, वणिज के आधार पर किया जाता है। अश्विनी आदि नक्षत्र होते हैं, गमन में उनका फल दिशाओं के अनुसार अतिलाभकारक के रूप में बतलाया गया है। शिव आदि ३० मुहूर्त होते हैं, उनका लक्षण और फल नक्षत्रों के फलानुसार शिव, भुजगादि के द्वारा कथित है। लग्न तात्कालिकयात्रा का लग्न होता है। जिसमें द्विस्वभावादि के अनुसार सभी का फल कहा गया है। योगाध्याय में कहे गये देह, कोष आदि योग होते हैं। यहीं पर प्रश्नकाल में इसका कथन है कि नृप, कुसुम, रत्न, फलादि का ग्रहण कर प्रश्न करें। अथवा जातकग्रन्थों में निर्दिष्ट शुभाशुभफलयोग को भी फलयोग कहते हैं। जैसाकि होरा में स्थित स्वगृही शनि का फल उक्त स्थल पर किया गया है। देहस्पन्दनलक्षण शरीर के दक्षिणभाग के स्फुरण को कहते हैं। स्वप्नाध्याय में वस्त्र, मुक्ता, मणि आदि के द्वारा स्वप्न का विचार किया गया है। विजयाभिलाषी राजा की विजयकामना हेतु दुग्ध, वृक्ष, पर्वत, समुद्रादि पदार्थों से किये जाने वाले स्नान को विजयस्नान कहते हैं। ग्रहों का यज्ञ ग्रहयज्ञ होता है। ग्रहयज्ञ आगे कहा जायेगा। गुप्तपूजन को गणयाग कहते हैं, जो यात्रा के सप्ताह में किया जाता है। अग्नि के लक्षण का तात्पर्य हवनकाल में स्वयं प्रकाशित अग्निज्वाला की ऊँचाई से है। हाथियों की चेष्टाएँ उनके दन्तमूल, परिणाह, दीर्घता आदि से है। अश्वों की चेष्टा को उलावकिरण कहते हैं। सेनाप्रवाद का तात्पर्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सैनिकों, प्रधान राजपुरुषों का युद्ध में इस प्रकार का व्यवहार और विश्वास करने से है कि हम देवों और विप्रों से पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त कर चुके हैं। उत्साह अथवा अनुत्साह; जो शत्रु अथवा श्रेष्ठजनों से प्राप्त होता है, इसको भी चेष्टा कहते हैं। आदि शब्द के ग्रहण से वायु, मेघ, वर्षा आदि का लक्षण समझना चाहिए। उत्क्षेपणादि वायु का लक्षण है। पृथु, घन, अनुलोमादि मेघ का लक्षण है। सप्ताह के अन्तर्गत सेना को भय देनेवाली वर्षा, यह वृष्टिलक्षण है। इसी प्रकार अन्य भी समझना चाहिए।

ग्रहों के बलाबल के अनुसार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव एवं संश्रयण इन छः गुणों व भावों को षड्गुण कहते हैं। ग्रहानुसार इनकी सिद्धि और असिद्धि ज्ञातव्य है, जो स्वनक्षत्र, दशाधिपों के अनुसार विचारणीय होती है। साम, दाम, दण्ड, भेदसंज्ञक चार उपाय होते हैं। इनकी भी सफलता और निष्फलता शुक्र, वृहस्पति आदि की नीतियों से होती है। मङ्गल एवं अमङ्गलकारी के विचार-क्रम में शुद्ध (साधु), आदर्श (दर्पण) आदि मङ्गलकारी तथा कपास, औषधि आदि अशुभ माने गये हैं। यात्रा के समय शुभ तथा अशुभसूचक एवं शकुन जन्मान्तरकृत होते हैं। सेना के निवेश-हेतु शुभाशुभ भूमि का लक्षण स्निग्ध, स्थिर, सुरभि, गुल्मादि के रूप में शुभ माने गये हैं। इससे विपरीत गुणवाले अशुभ माने गये हैं। अग्निवर्ण का तात्पर्य अग्निकर्म में शुक्ल, कमल तथा स्वर्णिम प्रकाशवाली अग्नि-ज्योतियों की शुभता से है। ये सभी ज्योतियाँ अन्याश्रित होने पर भी शुभाशुभ की अवबोधक होती हैं। चर, दूत, आटविक (वनवासी) जनों का यथासमय प्रयोग करना चाहिए। जैसे– किस समय शत्रु के पास मन्त्री को प्रयाण करना चाहिए ? और किस समय शत्रुबध के लिए प्रबल ग्रहवाले मन्त्री को आज्ञा प्रदान की जानी चाहिए ? किस समय गुप्तचरों का तथा दूतों का प्रयोग होना चाहिए ? इन सभी विषयों का विचारकर अपने और शत्रु के बल का विचार करते हुए विनियोजन करना चाहिए ? किस समय विचार करते हुए विनियोजन करना चाहिए ? किस समय आटविकों (वनवासियों) का प्रयोग करना चाहिए ? यह विचार विशेषतया सूर्य से किया जाता है। उचित समय में इनका प्रयोग होता है। शत्रु के दुर्ग को प्राप्त करने के उपाय को परदुर्गोपलम्भ कहा जाता है। उपलम्भन हेतु केतु, उल्का और शनि का विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध में विचार करते हुए आचार्यों का कथन है:–

जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये।
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संसार में सर्वत्र व्याप्त रहने की तरह, बुद्धि में चित्रमय अङ्कित होने के समान, हृदय में सुस्थिर सदृश, भगण सहित शास्त्र जिसको हृदयङ्गम हो, उस दैवज्ञ का फलादेश कभी निष्फल नहीं होता है ॥५॥

यस्य शास्त्रं ग्रन्थं सभगणं भगणज्ञानेन सहितं संयुक्तं गणितेनेत्यर्थः। अनेन स्कन्धत्रयं प्रतिपादितं भवति। कीदृशं शास्त्रं जगति लोके प्रसारितं विस्तारितमिव मतौ बुद्धावालिखितं चित्रितमिव हृदये निषिक्तं प्रक्षिप्तमिव तस्य दैवज्ञस्याऽऽदेशा उक्तयो निष्फला न भवन्ति, सत्यरूपा भवन्तीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति – त्रिस्कन्धज्ञस्य मुनेरिव वाणी सत्यरूपा भवति ॥५॥

भगणसहित शास्त्रज्ञान का अर्थ गणितपूर्वक ग्रह-नक्षत्रों का ज्ञान है। इससे त्रिस्कन्धज्योतिष का प्रतिपादन होता है। यह शास्त्र कैसा हो? इसको बतलाते हुए कहते हैं– संसार में विस्तारित और बुद्धि में चित्रित तथा हृदय में समाविष्ट हो, इस प्रकार के शास्त्रज्ञाता दैवज्ञ का फलादेश निष्फल नहीं होता है, अर्थात् सत्य ही होता है। तात्पर्य यह हुआ कि त्रिस्कन्धज्योतिष के ज्ञाता की वाणी मुनियों की तरह सत्यस्वरूपा होती है।

अथ संहिताप्रशंसार्थमाह :–

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।

संहितापारगो निःशेषज्ञाततत्त्वार्थः। स दैवचिन्तको भवति। दैवस्य प्राक्तन-कर्मविपाकस्य शुभाऽशुभस्य चिन्तको भवति स्मरणशील इत्यर्थः॥

यत्रैते संहितापदार्थाः।

यत्र यस्यां संहितायामेते वक्ष्यमाणाः पदार्थाः। के त इत्याह :–

संहिताशास्त्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं :–

संहिता का पारंगत विद्वान्, दैवचिन्तक होता है।

संहितापारंगत का अर्थ ज्योतिष-तत्त्वों का सम्पूर्ण रूप से ज्ञाता से है। वह ही दैवचिन्तक होता है। अर्थात् पूर्वकर्मों के फलविपाक के शुभाशुभों का विचार करनेवाला ज्ञाता ही दैवचिन्तक होता है।

संहिताशास्त्र में इन पदार्थों का निर्धारण होता है। ये पदार्थ कौन से हैं इन्हें बतलाते हैं :–

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युति-संस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रह-शृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्ष-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगरर - जोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्त - रचक्रमृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनी-राजनखञ्जनकोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगो ऽजाश्वेभपु-रुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽ-ऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादि-ग्रहर्क्षोपघातादिभिः फलानि भवन्ति।

सूर्यादि ग्रहों की गति और उसमें उनकी प्रकृति, विकृति, प्रमाण, वर्ण, किरण, प्रकाश, स्थिति, अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रग्रहसमागम, गतियों के अनुसार फल, नक्षत्रकूर्मविभाग द्वारा देशविचार और अगस्त्य-चार तथा सप्तर्षि-चार हैं। ग्रहों का आधिपत्य, नक्षत्राधिपत्य, ग्रहश्रृङ्गाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहवर्षफल, गर्भलक्षण, रोहिणी-स्वाती-आषाढीयोग, सद्यःवर्षा, कुसुम, लता, परिधि परिवेश, परिघ, पवन, उल्का, दिग्दाह, भूचलन, सन्ध्यावर्ण, गन्धर्वनगर, रजोनिर्घात, अर्घकाण्ड, सस्यजन्म, इन्द्रध्वज, इन्द्रचाप, वास्तुविद्या, अङ्गविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, श्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिष्ठापन, वृक्षायुर्वेद, उदगार्गल, नीराजन, खञ्जनक, उत्पात, शान्ति, मयूरचित्रक, घृतकम्बल, खड्ग, पट्ट, कृकवाकु, कूर्म, गो, अज, अश्व, गज, पुरुषस्त्रीलक्षण, अन्तःपुरचिन्ता, पिटकलक्षण, उपानहच्छेद, चामर-दण्ड-शयन-आसन-लक्षण, रत्नपरीक्षा, द्वीपलक्षण, दन्तकाष्ठादि के आश्रयभूत-शुभाशुभलक्षण संसार में प्रत्येक क्षण अन्य कर्मों में लगे रहनेवालों के लिए भी दैवज्ञ ज्योतिषी द्वारा विचार किया जाना चाहिए। यतः किसी एक व्यक्ति के द्वारा अहर्निश इन निमित्तों का सङ्कलन नहीं हो सकता। अतः दैवज्ञ के द्वारा अन्य भी चार ज्योतिष विद्वानों का और कुशल परिचारकों का संग्रह करना चाहिए। उसमें से एक पूर्व और अग्निकोण का निरीक्षण करे, दूसरा दक्षिण और नैऋत्यकोण का, तीसरा पश्चिम और वायव्यकोण तथा चतुर्थ उत्तर और ईशानकोण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अवलोकन करे। यतः उल्कापात आदि का शीघ्र ही तीव्रता से पतन होता है, अतः उनके आकार, वर्ण, स्नेह, प्रमाण तथा ग्रह-नक्षत्रों के उपघात से फलों का विचार होता है।

एतत्सुबोधं तथापि मन्दबुद्धिहिताय व्याख्यायते। दिनकरादीनामिति। दिनकर आदित्यस्तदादीनां ग्रहाणां रविशशिराहुभौमज्ञगुरुसितसौरिकेतूनां चाराः। चरणं चारः। गतिवशेन शुभाशुभकथनम्।

इसकी व्याख्या सरल है, फिर भी सामान्यबुद्धिवालों के कल्याणार्थ प्रस्तुत दिनकरादि अर्थात् सूर्यादि ग्रहों के रवि, चन्द्र, राहु, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, केतु के चार, इनकी गति के आधार पर शुभाशुभफल का कथन करते हैं।

तेषु चारेषु च तेषामेव ग्रहाणां प्रकृतिः स्वभावः। विकृतिर्विकारः। प्रमाणं बिम्बस्य। वर्णः सितादिकः। किरणा रश्मयः। तेषामेव द्युतिः कान्तिः। संस्थानमाकारः। ऊर्ध्वाधोगामित्वं तोरणदण्डादिसंस्थानम्। अस्तमनोदयौ रविसन्निकर्षविप्रकर्षाभ्याम्। मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमाः शुक्रचारोक्ताः। मार्गान्तरं मार्गमध्यम्। वक्रं प्रतीपगतित्वं ताराग्रहाणाम्। अनुवक्रं पुनः स्पष्टगतित्वम्। ऋक्षग्रहसमागमो नक्षत्रैः सह ग्रहाणां संयोगः। चारो नक्षत्रेषु विचरणं संस्थितिः। आदिग्रहणाद्दक्षिणोत्तरमध्यगमनम्। योगतारकाशकटभेदश्च नक्षत्राणाम्। एवमादिभिस्तेषां तेषु चारेषु फलानि भवन्ति। तथा नक्षत्रकूर्मविभागेन नक्षत्रसप्तविंशत्या कूर्माकारस्थित्या भारतवर्षे नवधा विभक्तेन नक्षत्रत्रयेण देशेषु फलानि। अगस्त्यस्य मुनेश्चारः। सप्तर्षीणां वसिष्ठपूर्वाणां चारः। ग्रहाणां भक्तयो देशद्रव्यप्राणिनामाधिपत्यम्। नक्षत्राणां व्यूहो द्रव्यजनाधिपत्यम्। ग्रहशृङ्गाटकं ताराग्रहाणामेकर्क्षगतानां शृङ्गाटकादिसंस्थानैः शुभाशुभज्ञानम्। ग्रहयुद्धम्। ऊर्ध्वाधोभावेन दक्षिणोत्तरसंस्थानेन च ग्रहाणाम्। समागमश्चन्द्रेण सह संयोगः। ग्रहाणां वर्षाधिपतित्वेन फलानि। गर्भाणां प्रावृट्कालपरिज्ञानार्थं लक्षणम्। रोहिण्याश्चन्द्रमसा सह संयोगः समागमः। एवं स्वातियोगः पूर्वाषाढायोगश्च। सद्योवर्षलक्षणम्। कुसुमलतानां लक्षणं वृक्षादीनां फलकुसुमप्रवृद्ध्या लोके शुभाऽशुभज्ञानम्।

इनके चार में उन ग्रहों की प्रकृति अर्थात् स्वभाव, विकृति अर्थात् विकार, बिम्ब-प्रमाण, शुक्लादि वर्ण, किरणें और उनकी कान्ति, संस्थान अर्थात् आकार, तोरण, दण्डादि संस्थान होते हैं, जिनका ऊर्ध्व और अधोगमन होता है। सूर्य के सान्निध्य और दूरत्व से अस्त और उदय होते हैं। दक्षिण, उत्तर और मध्यम-क्रम से ग्रहों के मार्ग होते हैं, जो शुक्रचाराध्याय में वर्णित हैं। मार्गान्तर को मार्ग-मध्य कहते हैं। ताराग्रहों के विपरीत गति को वक्र कहते हैं। पुनः स्पष्ट गति को अनुवक्र कहते हैं। नक्षत्रों के साथ ग्रहों के संयोग को नक्षत्रग्रहसमागम कहते हैं। नक्षत्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में स्थिति को चार कहते हैं। आदि शब्द से दक्षिणोत्तर एवं मध्यगमन जानना चाहिए। नक्षत्रों के योगतारा और शकटभेद होते हैं। इस प्रकार से इनकी गतियों में विविध फल होते हैं। नक्षत्रकूर्मविभाग से २७ नक्षत्रों के कूर्माकार (कच्छपाकार) में स्थित होने पर भारतवर्ष में तीन-तीन नक्षत्रों के ९ भाग के अनुसार विभिन्न प्रदेशों में फल घटित होते हैं। अगस्त्यमुनि (अगस्त्यतारा) की गति को अगस्त्यचार कहा जाता है। इसी प्रकार वशिष्ठादि सप्तर्षियों का चार होता है। ग्रह-भक्त का अर्थ देश, द्रव्य और प्राणियों का स्वामित्व है। नक्षत्रों के व्यूह का तात्पर्य द्रव्य तथा लोकों का आधिपत्य है। ग्रहशृङ्गाटक का तात्पर्य तारा-ग्रहों के एक नक्षत्र में जाने पर शृङ्गाटकादि संस्थानवश शुभाशुभत्व का ज्ञान है। ग्रहों के ऊर्ध्व एवं अधोभाग तथा दक्षिण एवं उत्तर-भाग में परस्पर सम्मिलन को ग्रहयुद्ध कहते हैं। चन्द्रमा के साथ संयोग को समागम कहते हैं। ग्रहों का वर्षाधिप के अनुसार फल होता है। गर्भलक्षण का तात्पर्य है वर्षाकाल का ज्ञान। रोहिणीनक्षत्र और चन्द्रमा के संयोग को समागम कहते हैं, इसी प्रकार स्वातीयोग और पूर्वाषाढायोग होता है। सद्यः वर्षा का लक्षण, पुष्पलताओं के लक्षण और वृक्षों के फलों तथा पुष्पों की वृद्धि से लोक में शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है।

तथा परिधेः प्रतिसूर्यस्य च लक्षणम् :– परिघस्य सूर्योदयास्तमययोस्तिर्यक्स्थिताया मेघरेखाया लक्षणम्। पवनस्य वायोरुल्कापातदिग्दाहलक्षणानि। क्षितिचलनं भूकम्पः। सन्ध्यारागः सन्ध्ययो रक्तत्वम्। गन्धर्वनगरं खपुरं तल्लक्षणम्। रजसां पांशूनां लक्षणम्। निर्घातलक्षणम्। अर्घकाण्डं राशिवशेन द्रव्याणां समर्घत्वं महार्घत्वं च। क्रीत्वा स्थापितानां येन विक्रयकाले लाभालाभौ ज्ञायेते तदर्घकाण्डम्। सस्यजन्म सस्यजातकम्। इन्द्रध्वजस्य शक्रकेतोस्तथा इन्द्रचापस्येन्द्रधनुषो लक्षणम्। वास्तुविद्या गृहाणां लक्षणम्। अङ्गविद्या यया प्राणिनामङ्गस्पर्शनेन शुभाऽशुभं ज्ञायते। वायसविद्या काकचेष्टितम्। अन्तरचक्रं शाकुने। मृगचक्रं मृगचेष्टितम्। तत्रैव श्वचक्रं श्वचेष्टितम्। वातचक्रमष्टासु दिक्षु प्रवहतो वातस्य लक्षणम्। प्रासादलक्षणं देवगृहाणां रचना। प्रतिमालक्षणं सुरस्थानादिप्रमाणम्। प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा सुरप्रतिमानामेव। वृक्षायुर्वेदस्तरूणां चिकित्सा। उदगार्गलं जलोपलब्धिः। नीराजनं नीरेण जलेन मन्त्रपूतेनाजनं क्षेपणस्पर्शनमिति नीराजनम्। खञ्जनकानां पक्षिणां लक्षणालक्षणम्। उत्पातशान्तिः। उत्पातानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुपशमनम्। घृतकम्बलं पुष्यस्नानम्। मयूरचित्रकं यस्मिन्नध्याये निःशेषसंहितार्थं संक्षेपेणाभिधीयते तन्मयूरचित्रकम्। खड्गपरीक्षा खड्गलक्षणम्। पट्टपरीक्षा पट्टानां नृपमुकुटादीनां लक्षणम्। कृकवाकुः कुक्कुटः। कूर्मः प्रसिद्धजलप्राणी। गौः प्रसिद्धा। अजश्छागः। अश्वस्तुरगः। इभो हस्ती। एतेषां लक्षणानि। पुरुषस्त्रीलक्षणानि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तःपुरचिन्ता अन्तःपुरे स्त्रीणां रक्तानां विरक्तानां च चेष्टितम्। पिटकानां लक्षणम्। उपानच्छेदो मूषकादिभक्षणेनोपानहां छेददर्शनाच्छुभाशुभफलम्। एवं वस्त्राणामम्बराणां छेदः। चामराणां बालव्यजनानां दण्डानां यष्टीनां च द्विजातिक्रमेण लक्षणं परीक्ष्योच्यते। शयनाऽऽसनलक्षणम्। रत्नानां वज्रादीनां परीक्षा। दीपस्य लक्षणम्। दन्तकाष्ठादीनां यान्याश्रितानि तदायत्तानि शुभाशुभानि निमित्तानि चिह्नानि। आदिग्रहणात् कर्तुरपि यानि शुभाशुभानि फलानि। जगतः सर्वजनानां सामान्यानि साधारणानि। यथा [1]रोहिणीशकटमर्कनन्दनः। [2]प्राजापत्ये शकटे भिन्न इत्यादिकानि। तथा प्रतिपुरुषं पुरुषं पुरुषं इति प्रतिपुरुषं यानि शुभाशुभानि। तद्यथा :—

और परिघ अर्थात् प्रतिसूर्य का लक्षण कहते हैं :— सूर्योदय और सूर्यास्त के समय खड़े-तिरछे मेघ-मण्डल को परिघ कहा जाता है। उल्कापात और दिग्दाह (दूर दिशाओं में आग जलने की तरह क्रिया) से वायु का लक्षण ज्ञात होता है। भू-चलन ही भूकम्प है। दोनों सन्ध्याओं में उत्पन्न होनेवाली लालिमा को सन्ध्याराग कहते हैं। आकाश में बनने वाले नगर की आकृति को गन्धर्व-नगर कहते हैं। धूलि-कणों के लक्षण, निर्घात-लक्षण और अर्घकाण्ड अर्थात् राशि के अनुसार द्रव्यों की समर्घता और महार्घता के लक्षण जाने जाते हैं। क्रयकर रखी हुई वस्तु का विक्रय के समय जिस विधि से लाभ और हानि का ज्ञान होता है, उसे अर्घकाण्ड कहते हैं। फसलों की उत्पत्ति से सम्बन्धित-ज्ञान का सस्यजातक नाम है। इन्द्रध्वज तथा इन्द्रचाप यह इन्द्रधनुष का लक्षण है। गृहों के लक्षण को वास्तुविद्या कहते हैं। प्राणियों के अङ्गस्पर्श से जो शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है, उसे अङ्गविद्या कहते है। काक-चेष्टा ही वायसविद्या है। अन्तर चक्र को शाकुन शास्त्र में बतलाया गया है। मृग-चेष्टा को मृगचक्र तथा श्वान-चेष्टा को श्वचक्र कहते हैं। आठों दिशाओं में बहनेवाली वायु को वातलक्षण कहते हैं। देवगृहों की रचना प्रासादलक्षण है। देवस्थान के प्रमाण को प्रतिमालक्षण कहते हैं। देवप्रतिमाओं की स्थापना को सुरप्रतिष्ठा कहा जाता है। वृक्षचिकित्सा को वृक्षायुर्वेद कहते हैं। जलोपलब्धि को उदगार्गल कहते हैं। जल से मन्त्र की पवित्रता के साथ प्रक्षेपण और स्पर्श को नीराजन कहा जाता है। खञ्जन पक्षी के दर्शन से ज्ञात होने वाले फल को खञ्जनलक्षण कहा गया है। दिव्य, अन्तरिक्ष, भूमि के उत्पातों की शान्ति को उत्पातशान्ति कहते हैं। पुष्यस्नान ही घृतकम्बल है। जिस अध्याय में सम्पूर्ण संहिता के विषयों का संक्षेप में सङ्कलन होता है वह

१. बृहत्संहितायाः ४७ अध्यायस्य मयूरचित्रकाख्यस्य १४ श्लोकः।
२. बृहत्संहितायाः ९ अध्यायस्य शुक्रचाराख्यस्य २५ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मयूरचित्रक कहा जाता है। खड्ग (तलवार) की परीक्षा को खड्गलक्षण कहते हैं। राजा के मुकुट, अङ्गवस्त्र आदि के लक्षण का नाम पट्टपरीक्षा है। कृकवाक अर्थात् कुक्कुट (मुर्गा), कूर्म, जलजन्तु, गो, अज (बकरा), तुरग (अश्व) इभ अर्थात् हाथी, इन सभी के लक्षणों के साथ पुरुष और स्त्री के लक्षण कहे गये हैं। अन्तःपुर (रनिवास) में रहनेवाली स्त्रियों की अनुरक्ति और विरक्तिजन्य चेष्टा को अन्तःपुरचिन्ता कहा गया है। पिटक (मस्सा) का लक्षण और चूहे आदि के द्वारा खण्डित किये गये जूते के द्वारा शुभाशुभ-फल के ज्ञान को उपानच्छेद कहा गया है। इसी प्रकार वस्त्रों के छिद्रयुक्त और खण्डित होने का भी फलाफल का विचार है। बालों से निर्मित व्यजन को चामर कहते हैं, उनके और दण्डों के द्विजातिक्रम से परीक्षण को चामरलक्षण कहा गया है। शय्यालक्षण, वज्रादि (हीरा आदि) रत्नों की परीक्षा, दीपक का लक्षण तथा दन्त-काष्ठ (दातून) आदि के आश्रित वस्तुओं के अनुसार शुभाशुभ का लक्षण बताया गया है। यह संसार के सभी लोगों के लिए सामान्य रूप से विहित है। जैसे :– रोहिणीशकट शनि से सम्बन्धित है, प्रजापतिनक्षत्र से वेधित शकट आदि का विचार किया गया है। लक्षणों में एक-एक व्यक्ति का शुभाशुभविचार करना चाहिए। जैसा कि कहा गया है :–

चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम्।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात् सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च॥ इत्यादि।

पूर्वदिशा में रात्रिकाल का इन्द्रधनुष राजा को पीड़ित करता है तथा दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशा में प्रकट होने वाला इन्द्रधनुष क्रमशः सेनापति, नायक और मन्त्री का हनन करनेवाला होता है।

पार्थिवे राजनि च शुभाशुभानि। यथा [1]कृष्णा रेखा सवितरीति तानि च प्रतिक्षणं क्षणं क्षणम्। न अन्यकर्मा अनन्यकर्मा तेनानन्यकर्मणा एकचित्तेनाभियुक्तेन तत्परेण दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण चिन्तयितव्यानि। न तानि निमितान्येकाकिना केवलेनावधारयितुं लयितुं शक्यानि। तस्मात् सुभृतेन दैवज्ञेन सुष्ठु कृत्वा यो नृपेण भृतः, अतिप्रभूतार्थदानेन परितोषितः। तेन दैवज्ञेनान्ये परे तद्विदः कालविदो यथानिर्दिष्टाः कर्त्तव्या अवधार्याः। तत्र तस्मिन्निमित्तज्ञाने ऐन्द्री पूर्वा। आग्नेयी च पूर्वदक्षिणदिगाशा। एकेनाबलोकयितव्या द्रष्टव्या। याम्या दक्षिणा नैर्ऋती दक्षिणपश्चिमाऽन्येन द्वितीयेनावलोकयितव्या। एवमनेन प्रकारेण वारुणी पश्चिमा। वायव्या पश्चिमोत्तरा। तृतीयेनावलोकयितव्या। उत्तरा सौम्या। ऐशानी पूर्वोत्तरा चान्येन चतुर्थेनावलोकयितव्या। इतिशब्दः प्रकाराय। यस्माद्धेतोरुल्कापातादीनि निमित्तानि,

---

१. बृहत्संहितायाः ३ अध्यायस्याऽऽदित्यचाराख्यस्य ३२ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदिग्रहणादुल्कागन्धर्वनगरकेतुदर्शनानि गम्यन्ते। एतान्युल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमाश्वेवापगच्छन्त्यदर्शनं यान्ति। तस्याश्चोल्काया आकार आकृतिः। यथा प्रेत[1] प्रहरणेति। वर्णः श्वेतादिः। स्नेहः सुस्निग्धता। प्रमाणं हस्तादि। दिगुत्तरादिका ग्रहर्क्षोपघातः, ग्रहाणामर्कादीनामृक्षाणामश्विन्यादीनां चोपघात उपहननम्। आदिग्रहणात् कस्मिंस्थाने केनावयवेन पतिताः। एवमादिभिस्तस्याः फलानि शुभाशुभानि भवन्तीति।

राजा का शुभाशुभ लक्षण और सूर्य में उत्पन्न काली रेखा के प्रतिक्षण परिवर्तनशील लक्षणों को बतलाया गया है। किसी अन्य कार्य में न लगे हुए एकाग्रचित्तवाले दैवज्ञ के द्वारा इन लक्षणों का विचार किया जाना चाहिए। ये शुभाशुभ लक्षण किसी एक व्यक्ति के द्वारा समग्ररूप से ज्ञात नहीं किये जा सकते। अतः राजपोषित तथा प्रचुर पारितोषिक से संतृप्त अन्य ज्योतिर्विदों की नियुक्ति होनी चाहिए। इस शकुनज्ञान में पूर्व, अग्निकोण एक के द्वारा देखा जायेगा और दूसरे के द्वारा दक्षिण तथा नैऋत्यकोण तथा तीसरे के द्वारा पश्चिम और वायव्यकोण और चतुर्थ के द्वारा उत्तर तथा ईशानकोण का सम्यक् निरीक्षण किया जायेगा। ये उल्कापातादि लक्षण शीघ्र ही उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गन्धर्वनगर और केतु-दर्शन भी शीघ्र ही विलुप्त हो जाते हैं। अतः उनके प्रेक्षण के लिए अतिरिक्त ज्योतिर्विदों की आवश्यकता है। उल्का के आकार को आकृति कहते हैं, जैसे प्रेत प्रहरणसदृश। श्वेतादि वर्ण होते हैं, स्निग्धता को स्नेह कहते हैं, हस्तादि को प्रमाण कहते हैं। उत्तरादि दिशाओं में ग्रह नक्षत्रों का उपघात अर्थात् सूर्यादि ग्रहों का अश्विन्यादि नक्षत्रों के साथ उपहनन को उपघात कहते हैं। आदि शब्द से किस स्थान में किन अङ्गों के साथ इनका पतन होता है? तदनुसार शुभाशुभों के लक्षण होते हैं।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा तच्चाह :—

कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति॥६॥

महर्षिगर्ग के द्वारा इस प्रकार कहा गया है :—

ज्योतिषशास्त्र के सम्पूर्ण अङ्गों के ज्ञाता होराशास्त्र और गणितशास्त्र में निष्णात दैवज्ञ की पूजा जो राजा नहीं करता है, वह विनष्ट हो जाता है।

कृत्स्नानि निरवशेषाणि यानि ज्योतिःशास्त्राङ्गानि तथोपाङ्गानि तत्रैव पठितानि पुरुषलक्षणस्त्रीलक्षणवस्त्रोपानच्छेदरत्नलक्षणदीपदन्तकाष्ठलक्षणादीनि। एतदुक्तं भवति :— ग्रहनक्षत्रराशीनाश्रित्य यदुक्तम् :— "तान्यङ्गानि परिशिष्टान्युपाङ्गानि" इति।

---

१. बृहत्संहितायाः २३ अध्यायस्योल्कालक्षणाख्यस्य ९ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृत्स्नाङ्ग का अर्थ सम्पूर्ण अङ्ग है। ज्योतिषशास्त्र के सम्पूर्ण अङ्ग को तथा उपाङ्ग अर्थात् पुरुष-स्त्री लक्षण, वस्त्रच्छेद, उपानहच्छेद, रत्नलक्षण, दीपलक्षण, दन्तलक्षणादि हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रह, नक्षत्र और राशियों के आधार पर विवेचित विषय अङ्ग होते हैं और एतदतिरिक्त परिशिष्ट विषयों को उपाङ्ग कहते हैं।

तथा च भगवान् गर्गः—

अधिकृत्य ग्रहर्क्षादि जगतो येन निश्चयः।
तदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्गं शेषमुच्यते॥ इति।

जैसा कि भगवान गर्ग ने कहा है :—

ग्रह नक्षत्रों के आधार पर सांसारिक पदार्थों का जिसके द्वारा विनिश्चय होता है, वह उत्तम अङ्ग है तथा शेष विषयों को उपाङ्ग कहते हैं।

एतेषां कृत्स्नानां निरवशेषाणामङ्गानामुपाङ्गानां कुशलस्तज्ज्ञः। तथा च होरायां जातके गणिते ग्रहगणिते च नैष्ठिकं निष्ठालग्नं षडङ्गं तत्पारगन्तारमित्यर्थः। एवं विधं दैवज्ञं यो राजा नृपो न पूजयते नार्चयति स नाशं विनाशमुपगच्छति प्राप्नोति॥ ६॥

इन समस्त निःशेष अङ्गों और उपाङ्गों का कुशल ज्ञाता ही विज्ञ होता है। इसी प्रकार होरा अर्थात् जातकशास्त्र, गणित अर्थात् ग्रहगणित में निष्ठा से लगा हुआ षडङ्गशास्त्र का पारङ्गत होना चाहिए। इस प्रकार के दैवज्ञ की अर्चना जो राजा नहीं करता है, वह विनाश को प्राप्त होता है।

अन्यद्दैववित्प्रशंसार्थमाह :—

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्॥ ७॥

दैवज्ञ की प्रशंसा में और भी कहा गया है :—

वन में रहनेवाले अहङ्कार और लोभ से रहित जो व्यक्ति होते हैं, वे भी ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता से अपने शुभाशुभ का फल पूछते हैं॥७॥

येऽपि तपस्विनो वनमरण्यं समाश्रिता वसन्ति। निर्ममा निरहङ्काराः। निष्परिग्रहा दारवर्जिताः। निर्गतः परिग्रहो येभ्यस्तेऽपि तथा भूता ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां गतौ गमने कोविदं तज्ज्ञं परिपृच्छन्ति शुभाशुभं ज्ञातुमिच्छन्ति च। अपिशब्दः सम्भावनायां यतस्तेषां ज्योतिःशास्त्रेण न किञ्चित्प्रयोजनं तापसत्वात्॥ ७॥

जो तपस्वी अरण्य में निवास करते हैं, वे निर्मम, निरहङ्कार, निष्परिग्रह, स्त्री-रहित अर्थात् जिनके द्वारा परिग्रहण का भाव निरस्त होता है, वे भी ग्रहनक्षत्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की गति से सम्बन्धित विद्वान् ज्योतिषी से शुभाशुभफल को जानने की इच्छा से प्रश्न करते हैं। यहाँ पर 'अपि' शब्द सम्भावना अर्थ में है, क्योंकि तपस्वी होने के कारण ज्योतिषशास्त्र में इनका कोई प्रयोजन नहीं होता है।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह :–

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ ८॥

अन्य प्रशंसनार्थ कहते हैं :–

जिस प्रकार दीपकरहित रात्रि और सूर्यरहित आकाश अन्धकारमय होता है, उसी प्रकार दैवज्ञरहित राजा मार्ग में अन्धे की तरह भटकता है ॥८॥

यथा रात्रिर्निशाऽप्रदीपा प्रदीपरहिता न शोभामाप्नोति तमसावृतत्वात्। यथा नभ आकाशमनादित्यं सूर्यरहितं सान्धकारं न शोभामाप्नोति। तथा तेन प्रकारेण सांवत्सरो दैवज्ञरहितो राजा न शोभते। न केवलं यावत्सर्वत्र च संशयत्वाद् भ्रमति यथान्धो नेत्रहीनोऽध्वनि पथि परिभ्रमति ॥ ८॥

अन्धकार से आवृत्त होने के कारण दीपकरहित रात्रि शोभा को प्राप्त नहीं होती है, और सूर्यरहित आकाश अत्यधिक अन्धकार के कारण शोभा नहीं प्राप्त करता है, उसी प्रकार दैवज्ञरहित राजा सुशोभित नहीं होता। न केवल किसी कार्य विशेष के लिए अपितु वह सर्वत्र संशययुक्त होने के कारण उसी प्रकार भ्रमण करता है, जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति मार्ग में भटकता है।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह :–

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ ९॥

अन्य भी प्रशंसात्मक कथन उपस्थित करते हैं :–

मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतुएँ और अयनादि ये सभी अव्यवस्थित हो जायेंगी, यदि दैवज्ञ न रहे ॥९॥

मुहूर्त्ताः शिवादिकाः। तिथयः प्रतिपदादिकाः। नक्षत्रमश्विन्यादि। ऋतवः शिशिरादयः। अयने उत्तरदक्षिणे। तथा तेनैव प्रकारेण एतानि सर्वाणि आकुलानि अज्ञातानि। स्युर्भवेयुः। अथवाऽऽकुलानि नष्टागमानि स्युर्यदि सांवत्सरो दैवविन्न स्यान्न भवेत् ॥ ९॥

शिव आदि मुहूर्त, प्रतिपदादि तिथियाँ, अश्विन्यादि नक्षत्र, शिशिरादि ऋतुएँ और दक्षिणोत्तर अयन, ये सभी अव्यवस्थित अर्थात् अज्ञात हो जायेंगे, यदि कदाचित् दैवज्ञ न हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यत्प्रशंसार्थमाह :–

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः।
जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥१०॥

प्रशंसार्थ और भी कहते हैं :–

अतः विजय, यश, श्री, भोग और श्रेयों को प्राप्त करने के इच्छुक राजा के द्वारा श्रेष्ठ, विद्वान् दैवज्ञ का सन्निध्य प्राप्त करना चाहिए, ॥१०॥

तस्मात् पूर्वोक्ताद्धेतो राज्ञा नृपेणाधिगन्तव्योऽधिगमनीयः। विद्वान् पण्डितः। सांवत्सरो दैववित्। अग्रणीः प्रधानः। कीदृशेन राज्ञा। जयं शत्रुविजयं यशः कीर्तिं श्रियं लक्ष्मीं भोगान् उपभोगान् श्रेय आरोग्यं समभीप्सता आप्राप्तुमिच्छता ॥१०॥

इसलिए पूर्वोक्त कारणों से राजा के द्वारा विद्वान्, पण्डित, और श्रेष्ठ दैवज्ञ का अधिगमन किया जाना चाहिए। किस तरह के राजा के द्वारा ? जय, शत्रुविजय, यश, लक्ष्मी, उपभोग और श्रेय अर्थात् आरोग्य को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करने की इच्छा वाले राजा के द्वारा।

अन्यदप्याह :–

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥११॥

और भी कहते हैं :–

कल्याण की कामना करनेवाले व्यक्ति को दैवज्ञरहित देश में निवास नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह नेत्रस्वरूप होता है और वहाँ पर पाप का वास नहीं होता ॥११॥

भूतिं समृद्धिमिच्छता प्रार्थयता नरेण पुंसा। असांवत्सरिके देशे दैवज्ञवर्जिते देशे स्थाने न वस्तव्यं न निवसनीयम्। हि यस्माद्यत्र यस्मिन् देशे एष दैवविच्चक्षुर्भूतः प्रकाशकः स्यात् तस्मिन् देशे पापमेनो न विद्यते न भवति, तत्पुण्यशरीरवृतत्वात् ॥११॥

समृद्धि की कामना करनेवाले मनुष्य के द्वारा दैवज्ञरहित देश में निवास नहीं करना चाहिए। कारण यह है कि जिस देश में यह दैवज्ञ नेत्र के समान सभी विषयों पर प्रकाश डालनेवाला होता है, उस देश में पाप नहीं होता, क्योंकि उसका पुण्यवान् शरीर उस क्षेत्र में स्थित रहता है।

अथ दैववित्प्रशंसार्थमाह :–

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दैवज्ञ की प्रशंसामें कहते हैं :–

ज्योतिषशास्त्र को पढ़नेवाला विद्वान् नरक को प्राप्त नहीं होता है। दैवचिन्तक ज्योतिषी ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥१२॥

संवत्सरमधिकृत्य कृतं शास्त्रं सांवत्सरं तत्पठनशीलः सांवत्सरपाठी। दैवविद् नरकेषु नोपपद्यते, नरकान् न प्राप्नोति। यतो दैवचिन्तकः कालविद् ब्रह्मलोके धातृभवने प्रतिष्ठां स्थितिं लभते॥१२॥

संवत्सर को निर्दिष्टकर विनिर्मित शास्त्र को सांवत्सर कहते हैं और उसको पढ़नेवाला साम्वत्सरपाठी होता है। दैवविद् नरक को नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि दैवचिन्तक अर्थात् काल का ज्ञाता ब्रह्मलोक में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह :–

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः॥१३॥

प्रशंसार्थ और कहते हैं :–

ग्रन्थ और उसमें निहित अर्थ को सम्पूर्ण रूप से जो विप्र ज्योतिषशास्त्र द्वारा जानता है, वह श्राद्ध-कर्म में सर्वप्रथम भोजनकरनेवाला, पूजित और सम्पूर्ण पंक्ति को पवित्र करनेवाला होता है ॥१३॥

एतज्ज्योतिःशास्त्रं ग्रन्थतः पाठेनार्थतो व्याख्यानात् कृत्स्नं निरवशेषं यो द्विजो ब्राह्मणो जानाति वेत्ति स श्राद्धे पितृतर्पणे अग्रभुक् प्रथमभोजी भवति। स च पूजितोऽर्चितः। पङ्क्तिपावनः। यस्यां पङ्क्त्यामुपविशति तां पवित्रीं करोति॥१३॥

यह ज्योतिषशास्त्र अध्ययन कर ग्रन्थों को और व्याख्यान कर अर्थ को निःशेषरूप से जो ब्राह्मण जानता है, वह श्राद्ध अर्थात् पितृ-तर्पण में अग्रभुक् अर्थात् प्रथम भोजन करनेवाला होता है। वह पूजित, अर्चित तथा पंक्तिपावन होता है। वह जिस पंक्ति में बैठता है उसको पवित्र करता है ॥१३॥

अन्यदप्याह :–

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥१४॥

और भी कहते हैं :–

म्लेच्छ यवन जातियों में यह शास्त्र सम्यक् स्थित है और वे भी ऋषियों के समान पूजे जाते हैं, तो फिर दैवज्ञ द्विज का क्या कहना ? ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि यस्मादर्थे यवनाः किल म्लेच्छजातयस्तेषु यवनेष्विदं ज्योतिःशास्त्रं सम्यक् स्फुटतरमागतं स्थितं यतः पूर्वाचार्येभ्यस्तैः प्राप्तम्। तथा चः—

यतः यवनों की म्लेच्छ जाति है, फिर भी उन यवनों में यह ज्योतिषशास्त्र सम्यक्तया स्पष्ट रूप से स्थित है। क्योंकि पूर्वाचार्यों द्वारा उनको यह शास्त्र प्राप्त हुआ है। जैसा कि—

यद्दानवेन्द्राय मयाय सूर्यः शास्त्रं ददौ सम्प्रणताय पूर्वम्।
विष्णोर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो ज्ञानामृतं यत्परमाससाद॥
पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद् गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत्।
प्रकाशयांचक्रुरनुक्रमेण महर्द्धिसन्तो यवनेषु तत्ते॥ इति।

तेऽपि ऋषिवन्मुनिवत्पूज्यन्ते अभ्यर्च्यन्ते किं पुनर्यो द्विजो ब्राह्मणो दैवविद्दैवज्ञ इति॥१४॥

जिस ज्योतिषशास्त्र को सूर्य ने दानवेन्द्र मयराक्षस को प्रथमतः प्रदान किया, विष्णु से वशिष्ठादि प्रमुख महर्षियों ने जिस ज्ञानामृत का सेवन किया, चन्द्रमा से महर्षि पराशर ने जिसे देवों के लिए भी परम गोपनीय अद्भुत शास्त्र को प्राप्त किया, उस परम अद्भुत शास्त्र को सिद्ध सन्तों ने क्रमशः यवनों में भी प्रकाशित किया। वे भी ऋषि-मुनियों की तरह पूजित होते हैं, फिर जो ब्राह्मण दैवज्ञ है, उसके लिए क्या कहना ?॥१४॥

अथाप्रष्टव्यानाह :—

[1]कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः।
कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित्॥१५॥

अब प्रश्न के अयोग्य (धूर्त) ज्योतिषी की बतलाते हैं :—

ऐन्द्रजालिक, दैवबल से आवेशित, कर्णपिशाचिनी आदि के बल से भविष्यफल कहनेवाले व्यक्ति से प्रश्न नहीं पूछना चाहिए, क्योंकि वे ज्योतिषी नहीं होते, वे केवल माया और धूर्त-विद्या से फलादेश करते हैं॥१५॥

कुहकेनेन्द्रजालेन प्रसेनादिकेन आवेशेन देवतादिदेहप्रवेशेन पिहितः प्रच्छन्नोऽदृश्यशरीरः। कुत्रचित्सुषिरे भित्त्यादिके अभ्यन्तरस्थितयाऽव्यक्तया वाचा सम्भाषते। एतैः कुहकावेशपिहितैः। तथा कर्णोपश्रुत्या कश्चिन्मन्त्रविशेषं जपतः कर्णे यथेष्टं कथयति लोके कर्णपिशाचिकेति प्रसिद्धा। अथवा प्रष्टारो यत्रोपविष्टाः स्थितास्तन्मध्ये आत्मीयं शिशुं विसृज्य तेषां कथां परस्परं

---

१. कुहकावेशपिहितकर्णोपश्रुतिहेतुभिरिति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियमाणामाकर्ण्य पितुर्वक्ति। यथा यस्येदमभिज्ञानं तस्य भवता इदं वक्तव्यमिति हेतुना तर्केणाशयं बुद्ध्वा।

कुहक का तात्पर्य इन्द्रजाल से और आवेशपिहित का तात्पर्य शरीर में देवप्रवेश से अदृश्य शरीरवाला है। कहीं पर भित्ति आदि में छिद्र कर उसके भीतर स्थित अव्यक्त वाणी से ध्वनि सुनी जाती है। कर्णोपश्रुति अर्थात् किसी मन्त्रविशेष का जप करने से कान में अभीष्ट बात का ज्ञान हो जाता है। इसको लोगों में कर्णपिशाचिनी के नाम से भी जाना जाता है। अथवा प्रश्नकर्ता जहाँ बैठते हैं, उनके मध्य अपने बालकों को लगाकर उनकी वार्ता को जानकर तदनुसार पिता प्रश्नकर्त्ता के रहस्य को जान लेता है। जैसे :– किसी चिन्हविशेष के व्यक्ति को "आपके द्वारा इस प्रकार कहा जाना चाहिए," इस आशय का वह बालक सङ्केत देता है।

केचित् कुहकावेशपिहितकर्णोपश्रुतिहेतुभिरिति पठन्ति तथापि न कश्चिद्दोषः। एवमादिभिर्यः कृतादेशः। आदेशः कृतो येन। सर्वत्र न क्वचित्प्रष्टव्यो यतः स दैवविज्ज्योतिःशास्त्रवेत्ता न भवति॥१५॥

कुछ लोग इन्द्रजाल के आवेश से प्राप्त कर्णश्रुति के कारण से फलादेश करते हैं। इसमें भी कुछ दोष नहीं है। इस प्रकार से जो फलादेश करता है, ऐसे जिस किसी से सभी जगह प्रश्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता नहीं होता है॥१५॥

अथाज्ञं प्रत्याह :–

अविदित्वैव यच्छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥१६॥

मूर्खों के प्रति कहते हैं :–

जो व्यक्ति ज्योतिषशास्त्र को बिना जाने ही दैवज्ञ बन जाता है, वह नक्षत्र-सूचक, पापी और पंक्ति को दूषित करनेवाला होता है॥१६॥

यः शास्त्रमविदित्वा अज्ञात्वैव दैवज्ञत्वं ज्यौतिषिकत्वं प्रपद्यते अङ्गीकरोति दैवज्ञत्वमाख्यापयति। स पङ्क्तिदूषकः पक्तिं दूषयति अपवित्रीं करोति। पापः पापात्मा। नक्षत्रसूचको नक्षत्रपिशुनः। ज्ञेयो ज्ञातव्य इति॥१६॥

जो शास्त्र को बिना जाने दैवज्ञता प्राप्त करता है, दैवज्ञ ज्योतिषी के रूप में स्वयं को प्रसिद्ध करता है, वह पङ्क्तिदूषक अर्थात् जिस पंक्ति में बैठता है, उसको अपवित्र करता है। उसको पापात्मा और नक्षत्रसूचक जानना चाहिए॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्येतेषां कदाचिदज्ञानां वचनं सत्यरूपं भवति तान् प्रत्याह :—

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम् ।
आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ॥ १७॥

कदाचित् मूर्खों के सत्यवचन हो जाने पर कहते हैं :—

नगर-द्वार पर स्थित मिट्टी के ढेर से याचना करना जिस प्रकार (कदाचित् फलदायक) होता है, उसी प्रकार मूर्खों के द्वारा किया गया फलादेश भी कदाचित् सत्य हो जाता है ॥१७॥

नगरद्वारे पुरद्वारे यो लोष्टो [1]मृत्खण्डस्तस्योपयाचितं, [2]प्रार्थितं यद्वद्यथा सत्यं स्यात् । सत्यरूपं भवेत् । तथा कदाचित्काकतालीयन्यायेन तद्वदज्ञानां मूर्खाणां य आदेशो वार्ताकथनं सत्यमिव विभाव्यते प्रतिभाति ॥ १७॥

नगर-द्वार पर जो लोष्ठ अर्थात् मिट्टी का खण्ड होता है, उससे प्रार्थना करने पर जिस प्रकार कभी सत्य फल प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार कदाचित् काकतालीय-न्याय से मूर्खों का फलादेश सत्य प्रतीत हो जाता है ॥१७॥

अविदग्धसांवत्सरं प्रत्याह :—

सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः ।
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ् महीक्षिता ॥ १८॥

मूर्ख दैवज्ञ के सम्बन्ध में कहते हैं :—

जो व्यक्ति सम्पत्ति के द्वारा फलादेश करता है । ज्योतिषशास्त्र से भिन्न विषयों में कथा-प्रेमी हो और शास्त्र की किसी एक शाखा के ज्ञान से गर्वित हो, इस प्रकार के ज्योतिषी को राजा त्याग दे ॥१८॥

यो दैववित्सम्पत्त्या योजितादेशः । सम्पत्त्या अर्थदानेन योजित आदेशो येन । यथा पूर्वमेवं मया अमुकस्य कथितमेतत्स देवदैश्वर्यं प्राप्स्यति । तद्विति ज्योतिः [3]शास्त्रमुच्यते । तद्विच्छिन्ना ज्योतिःशास्त्रवर्जिता अन्या कथा प्रिया यस्य सः । यतस्तत्र तस्याज्ञानत्वम् । शास्त्रैकदेशमेकं प्रकरणं ज्ञात्वा तेनैव मत्तः सदर्पस्तादृग्भूतो दैवविन्महीक्षिता राज्ञा त्याज्यस्त्यक्तव्यः ॥ १८॥

---

१. मृत्पिण्ड इति अ० क० पु० पाठः ।

२. यथा हे लोष्ट यदि मम पुत्रो भविष्यति तर्हि त्वां पूजयिष्यामीति कयाचित् कामिन्या प्रार्थना कृता । प्रार्थनानन्तरं दैववशात् पुत्रो जातः । परन्तु लोष्टदत्तो मत्पुत्रोऽयमिति तस्या ज्ञानमसत् । एवमज्ञानामपि वाक् कदाचित् सत्यरूपेवाऽऽभातीति भावः ।

३. शास्त्रं परामृश्यत इति अ० क० पु० पाठः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो ज्योतिषी सम्पत्ति के द्वारा फलादेश करता है, अर्थात् परोक्ष के फलादेशों से प्रभाव उत्पन्न करता है। जैसे :– "अमुक व्यक्ति मेरे द्वारा इस प्रकार कहा गया और वह देवों के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेगा", इस प्रकार का कथन करता है, और जो ज्योतिषशास्त्र से असम्बद्ध कथाओं का प्रिय होता है, क्योंकि उसमें शास्त्र का ज्ञान नहीं होता है। शास्त्र का एकाङ्गी ज्ञान अर्थात् किसी एक प्रकरण को जानकर, उसी से गर्वित रहता है। इस प्रकार का ज्योतिषी राजा द्वारा त्याग दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के ज्योतिषी को आत्मसात् नहीं करना चाहिए ॥१८॥

कथं विधमात्मसात्कुर्यादित्याह :–

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥१९॥

किस प्रकार के ज्योतिषी का संग्रह करना चाहिए :–

जो दैवज्ञ सम्यक् प्रकार से होरा, गणित और संहिताशास्त्र को जानता है, वह राजा के द्वारा पूजित होना चाहिए और राजा को ऐसे दैवज्ञ का सङ्ग्रह करना चाहिए ॥१९॥

यस्तु सम्यक् स्फुटतराः सागमाश्च। होरागणितसंहिताः। त्रिस्कन्धं ज्योतिःशास्त्रं विजानाति। स च नरेन्द्रेण राज्ञा जयैषिणा विजयमाकाङ्क्षता प्राप्तुमिच्छताऽभ्यर्च्यः सम्पूज्यः। स्वीकर्त्तव्य आत्मसात्कार्य इति ॥१९॥

जो व्यक्ति वेदसहित होरा, गणित, संहिता से युक्त त्रिस्कन्ध-ज्योतिषशास्त्र को जानता है, वह विजयाकांक्षी राजा के द्वारा आत्मसात् किया जाना चाहिए ॥१९॥

विदग्धसांवत्सरिको हितकृद्भवतीत्याह :–

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः ॥२०॥

विद्वान् दैवज्ञ कल्याणकारी होता है :–

एक देश-काल का ज्ञाता दैवज्ञ जिसप्रकार से (राजा का) कल्याण करता है, वह सहस्रों हाथी और चतुर्गुणित अश्व भी नहीं कर सकते ॥२०॥

राज्ञः करिणां हस्तिनां सहस्रं दशशतानि न तत्कार्यं कुर्वन्ति तथा वाजिनामश्वानां चतुर्गुणं चत्वारि सहस्राणि न तत् कार्यं कुर्वन्ति यथा देशकालज्ञो दैवचिन्तकः सांवत्सरिक एक एव कार्यं करोति। देशकाललक्षणं[1] प्रागेव व्याख्यातम्। तथा च भगवान् पराशरः –

---

१. द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य ३८ पृष्ठम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहस्र अर्थात् दश-शत हाथी और इसके चतुर्गुणित अर्थात् चार सहस्र अश्व राजा का वह कार्य नहीं करते, जैसाकि देश-काल का ज्ञाता दैवज्ञ अकेला ही उसका कार्य करता है। देश-काल का लक्षण पहले ही कहा जा चुका है। जैसाकि भगवान् पराशर ने कहा है :–

यथा मन्त्रमुखोऽग्निरग्निमुखा देवास्तथा दैवज्ञमुखो राजा, राजमुखाश्च प्रजाः। तस्मात्तद्विज्ञानाद्यत्नत्वाच्छ्रेयसो नरपतिरिहामुत्र च श्रेयोऽर्थी विजिगीषुरेनमधिगच्छेत्। कुलीनमनहङ्कृतमस्तब्धमशठमप्रमत्तमविषयमव्यङ्गमविहतप्रशस्तलक्षणं वेदवेदाङ्गेतिहासपुराणधर्मशास्त्रावदातं शुचिं शरण्यं सत्यवादिनमक्रोधिनमग्निदेवद्विजगुरुवृद्धाचार्यपूजाभिरतमनुगामिनमाचार्यं शिष्य इवाभ्युपेत्य नावजानीयाद्रहसि चैनं पृच्छेद्यथास्य दैवं परे न विद्युः। नास्य पृष्टानर्थान्नतिक्रमेदिति।

जिसप्रकार मन्त्रमुख अग्नि होती है और अग्निमुख देव होते हैं, उसी प्रकार दैवज्ञमुख राजा होता है और राजमुख प्रजा होती है। अतः इसका ज्ञानकर प्रयत्नपूर्वक श्रेय के लिए राजा उभयत्र श्रेयकामना से और विजयेच्छा से इस (दैवज्ञ) को प्राप्त करे। कुलीन, अहङ्काररहित, विश्वस्त, शठताहीन, प्रमादरहित, अविषयी, पूर्ण अङ्गोंवाला शुभलक्षणवान्, वेद, वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र में निष्णात, पवित्र, शरणागत, सत्यवादी, क्रोधविहीन, अग्नि-देव-द्विज-गुरु-वृद्ध-आचार्यों की पूजा में तत्पर, अनुगामी आचार्य के पास शिष्य की तरह स्वयं जाकर, जिससे कोई दूसरा उसके रहस्य को न जान ले, इस प्रकार दैवज्ञ, से प्रश्न करे। इसके प्रश्न किये गये विषयों का अतिक्रमण न करे, यह तात्पर्यार्थ है।

तथा चः–

हिंसादम्भानृतस्तेयद्विष्टानिष्टविवर्जितम् ।
नरेन्द्रहितमक्रोधं श्रेष्ठं कालविदं विदुः॥
भूतभव्यभविष्यस्य कालस्य ज्ञानपारगम्।
अहीनाङ्गगुणोपेतं गुरुभक्तं प्रियम्बदम्॥
यथाङ्गिरसमाचार्यमधिगम्य शतक्रतुः।
त्रैलोक्यराज्यं कृतवांस्तद्वत्कालविदं नृपः॥इति॥२०॥

जैसा कि :–

हिंसा, दम्भ, असत्य, चौर्य, द्वेष और अनिष्टकार्यों से रहित, क्रोधरहित, राजा का हितकारी दैवज्ञ श्रेष्ठ कहा जाता है। भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञान में पारङ्गत, सुन्दर अङ्गोंवाला, गुणवान्, गुरुभक्त तथा प्रियवादी दैवज्ञ श्रेष्ठ होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। जिसप्रकार इन्द्र ने आचार्य अङ्गिरस के पास जाकर त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त किया, उसी प्रकार राजा भी उत्तम दैवज्ञ को प्राप्त करे॥२०॥

अथाधुना तिथिनक्षत्रश्रवणात् फलमाह :–

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम्॥२१॥

अब तिथि, नक्षत्र के श्रवण का फल बतलाते हैं :–

दुःस्वप्न, दुश्चिन्ता, अनिष्ट-दर्शन, दुष्कर्म आदि सभी चन्द्रमा और नक्षत्रों के संवाद को सुनकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त करते हैं॥२१॥

दुःस्वप्नं दुष्टस्वप्नम्। दुर्विचिन्तितमनभिमतमध्यातम्। दुष्प्रेक्षितममङ्गलं यद्दृष्टम्। दुष्कृतानि दुष्टानि च यानि कर्माणि कृतानि। एतानि सर्वाणि शशिनश्चन्द्रमसो भसंवादं भेन नक्षत्रेण सह संवादं श्रुत्वा क्षिप्रमाश्वेव विनाशं क्षयं व्रजन्ति। तिथिनक्षत्रं श्रुत्वा सर्वपापानि नश्यन्तीत्यर्थः। तथा चोक्तम् :–

दुष्टस्वप्न को दुःखस्वप्न कहते हैं और अपने प्रतिकूल विषय के ध्यान को दुश्चिन्ता कहते हैं। अमङ्गलकारी वस्तु के दर्शन को अनिष्ट चिन्ता कहते हैं। दुष्टता-पूर्वक किये गये कर्म को दुष्कृत् कहा जाता है। ये सभी चन्द्रमा और नक्षत्र के साथ हुए संवाद को सुनकर शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। अर्थात् तिथि और नक्षत्रों को सुनकर सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है :–

श्रुत्वा तिथिं भग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम्।
आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च दुःस्वप्नघातं प्रियतां च लोके॥इति॥२१॥

तिथि, नक्षत्र, ग्रह, वार को सुनकर व्यक्ति धर्म, अर्थ, यश, सौख्य, आरोग्य, आयु, विजय, दुःस्वप्ननाश और लोकप्रियता को प्राप्त करता है॥२१॥

आप्तज्यौतिषिकं प्रत्याह :–

न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित्॥२२॥

श्रेष्ठ ज्योतिषी के प्रति कहते हैं :–

सबल राजा की यशवृद्धि हेतु जिस प्रकार श्रेष्ठ दैवज्ञ कामना करता है, उस प्रकार उसके पिता, माता, स्वजन अथवा मित्र भी नहीं करते हैं॥२२॥

भूपते राज्ञः। सबलस्य बलसहितस्य। स्वयशोऽभिविवृद्धये आत्मीयकीर्तिवृद्ध्यर्थम्। आप्तः शास्त्रज्ञातत्त्वार्थः। दैवविद्दैवज्ञो यथा हितमिच्छति श्रेय आकाङ्क्षते। तथा न पिता जनक इच्छति न जननी मातृ न स्वजनो बन्धुजनो न सुहृन्मित्रं तथा हितमिच्छतीति॥२२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी कीर्ति के विस्तार के लिए शास्त्रज्ञान-सम्पन्न दैवज्ञ बलसहित राजा के लिए जिस प्रकार श्रेय की आकांक्षा करता है, उस प्रकार न तो पिता इच्छा करता है, न माता, न बन्धुजन और न मित्रगण ही वैसे कल्याण की कामना करते हैं।

आवन्तरचिते सांवत्सरसूत्रमहोदधौ।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रे स्वाप्तये विवृतिप्लवम्॥ इति॥ २२॥

अवन्ति में उत्पन्न (वराहमिहिर) द्वारा रचित सांवत्सरसूत्र रूप महासागर को पार करने की कामना से विवृत्ति रूपी नौका को उत्पल नामक दैवज्ञ ने बनाया है।

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सांवत्सूत्र-
नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इति श्रीभट्टोत्पल द्वारा विरचित संहिताविवृति में सांवत्सरसूत्र
नामक द्वितीय अध्याय ॥२॥

अथ तृतीयोध्यायः

अथादित्यचारो व्याख्यायते। तत्र तावत्परमतेनायनयोर्लक्षणमाह :—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्ध निष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥ १॥

अब आदित्यचार की व्याख्या करते हैं :—

यहाँ पर सर्वप्रथम अन्य मत से अयनों का लक्षण कहते हैं :—

आश्लेषा नक्षत्र के अर्धभाग से दक्षिणायन और धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य का उत्तरायण निश्चित ही किसी समय था, जिसके कारण पूर्वशास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है॥१॥

यदुक्तं पराशरतन्त्रे :—

श्रविष्ठाद्यात् पौष्णान्तं चरतः शिशिरः। वसन्तः पौष्णान्ताद्रोहिण्यन्तम्। सौम्याद्यात् सार्पार्द्धं ग्रीष्मः। प्रावृट् सार्पार्द्धाद्धस्तान्तम्। चित्राद्यादिन्द्रार्द्धशरद्धेमन्तो ज्येष्ठार्द्धाद्विष्णवान्तमिति।

जैसाकि पराशरतन्त्र में कहा गया है :—

धनिष्ठा के प्रारम्भ से रेवती नक्षत्र तक रवि गमन को शिशिर, रेवत्यन्त से रोहिणी के अन्त तक वसन्त, मृगशिरा के आरम्भ से आश्लेषार्ध तक ग्रीष्म, आश्लेषा के आधे से हस्त पर्यन्त वर्षा, चित्रादि से ज्येष्ठा के आधे तक शरद् और ज्येष्ठार्ध से उत्तराषाढ़ के अन्त तक हेमन्त ऋतु होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र रवेरादित्यस्याश्लेषार्द्धात् सार्पान्त्यपादद्वयाद्दक्षिणमयनं तथा धनिष्ठाद्यं वासव-प्रारम्भमुत्तरमयनं नूनं निश्चितं कदाचिदुत्पातवशादासीदभूत्। येन पूर्वशास्त्रेषु पाराशरादिषूक्तं कथितम्। नूनमनुमाने वा॥१॥

यहाँ पर सूर्य के आश्लेषार्ध से अर्थात् अन्तिम दो चरण से दक्षिणायन का तथा धनिष्ठादि से उत्तरायण का प्रारम्भ निश्चित ही कभी उत्पातवश हुआ होगा। जिसके कारण ही पूर्वशास्त्रों में पराशरादि के ग्रन्थों में कहा गया है। यहाँ पर "नूनम्" शब्द प्रकारान्तर से अनुमान अर्थ में भी समझना चाहिए॥१॥

अधुना स्वमतमाह :—

साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥२॥

अब स्वकीय मत को कहते हैं—

वर्तमानकाल में सूर्य का अयन कर्कादि से प्रथम और मकरादि से दूसरा अयन प्रारम्भ होता है। इसके विपरीत ऐसा न होनेपर विकार (दोष) समझना चाहिए। प्रत्यक्ष परीक्षण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है॥२॥

साम्प्रतमिदानीं युक्तं वा। सवितुरादित्यस्य। कर्कटकाद्यं कुलीरप्रथममेकमयनं मृगादितो मकरादितश्चान्यद् द्वितीयमुत्तरमयनम्। एवं कथितस्यार्थस्य यद्यभावोऽन्यथात्वं स्यात्तद्विकृतिर्विकारः। तत्र च प्रत्यक्षपरीक्षणैर्दृश्यमानैर्व्यक्तिः स्पष्टता भवति। विकृतेरुपलम्भनमित्यर्थः॥२॥

वर्तमानकाल में सूर्य का कर्कादि से प्रथम अयन और मकरादि से दूसरा अयन (उत्तरायन) होता है। इस कथन से अन्यथा प्राप्त होने पर उसे विकृति जानना चाहिए, और इस अयन का प्रत्यक्ष परीक्षण द्वारा स्पष्टीकरण होता है। विकृति शब्द का उपलम्भन (अशुद्धता) अर्थ होता है॥२॥

तत्र च परीक्षणमाह :—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेपि वा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति॥३॥

अयन के परीक्षण हेतु कहते हैं :—

सूर्य के उदय अथवा अस्तकाल में सुदूरस्थ चिन्ह के वेधद्वारा अथवा किसी बड़े वृत्त में छाया केप्रवेश और निर्गमन चिन्ह के द्वारा अयन को जानना चाहिए॥३॥

दूरे तिष्ठतीति दूरस्थम्। दूरस्थं तच्चिह्नं दूरस्थचिह्नं तेन वेधो दूरस्थचिह्नवेधस्तस्माद् दूरस्थचिह्नवेधात् सहस्रांशोरादित्यस्योदये उदयकालेऽप्ययनचलनमन्वेष्यं यतो मकरादावादित्यः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति तथा कर्कटादिस्थितः प्रतिदिनं दक्षिणां दिशं याति तेन दूरस्थितं वृक्षादिकमुदयेऽस्तमयेऽथवा सवितुश्चिह्नं कृत्वा द्वितीयेऽपि दिने तत्रैव स्थित्वा पुनरपि विचारः कार्यः किमयनचलननिवृत्तिर्जाता न वेति। एवं [1]दिनसप्तकं यावद्गणितागतसङ्क्रान्ति-कालाद्यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो बलात प्राक् पश्चाच्चान्वेष्य किं स्फुटगणितागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या जाता किमादौ किं पश्चाद्वेति। तथा महत्यतिबृहन्मण्डले उदयास्तमयसमीप इत्यर्थः। छायाप्रवेशनिर्गमनेन वा यानि चिह्नानि उपलक्षणानि तैरपि। वाशब्दः प्रकाराय। एतदुक्तं भवति— सभायामवनौ वृत्तमुत्पाद्य दिगङ्कितं कृत्वा शङ्कुं तन्मध्ये विन्यसेत्। तत्र विषुवद्दिने सूर्योदयास्तमययोः प्राच्यपररेखायां तस्य शङ्कोश्छाया पतति ततो यथायथाऽर्को मिथुनान्तं यावद्याति तथातथाऽर्कोदयकाले छाया दक्षिणेन याति प्राच्यपररेखायाः। अस्तमयेऽप्येवम्। ततः कर्कटादौ स्थितेऽर्के प्रतिदिनं छायोत्तरेण याति यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो धनुरन्तं यावत्प्रतिदिनमुत्तरेण याति ततो मकरादौ पुनः प्रतिदिनं दक्षिणेन याति यावन्मीनान्तम्। एवं मत्वा ततोऽयननिवृत्तावासन्नायां तस्मिन् मण्डले यस्मिन् प्रदेशे पूर्वाह्णे छाया प्रविशति तत्र चिह्नं कार्यम्। यत्र चापराह्णे निर्गच्छति चिह्नं कार्यम्। पुनरपि द्वितीयदिने तथास्थितस्य शङ्कोश्छायाप्रवेशनिर्गमचिह्ने कार्ये। एवमन्वेष्यं प्रतिदिनं दिनसप्तकं यावत्। प्रथमदिनचिह्नकृतद्वितीयदिनचिह्नयोर्यदि साम्यमुत्पन्नं तदा तस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिरेवं तस्यां ज्ञातायां विचारयेत् किमयननिवृत्तिः करणागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या किमादौ किं पश्चाद्वेति। एवं प्राकृतायां वैकृतायां वायननिवृत्तावन्वेषणं कार्यमिति॥ ३॥

दूर स्थित को दूरस्थ कहते हैं। दूरस्थ चिन्ह के द्वारा सूर्य के उदय और अस्तकाल में अयन चलन का अन्वेषण करना चाहिए, क्योंकि मकरादि से सूर्य प्रत्येक दिन उत्तरदिशा में जाने लगता है, तथा कर्कादि में स्थित होने पर प्रतिदिन दक्षिणदिशा में जाता है। इसलिए दूरस्थ वृक्षादि को सूर्य के उदयकाल में अथवा अस्तकाल में चिन्हित कर दूसरे दिन भी वहीं पर स्थित होकर फिर विचार करना चाहिए कि अयन चलन की निवृत्ति हो रही है अथवा नहीं ? इस प्रकार कन्यान्त तक ७ दिन लगातार निरीक्षण करे, जो गणित-साधित समय निश्चित हो। पुनः तुलादि में देखे कि पूर्वापर रेखा में आ रहा है कि नहीं। उसके कुछ पहले और बाद का भी देख लें। गणितागत काल के पहले अयन आया, उसके बाद इसका भी अन्वेषण ठीक से कर लें।

किसी महद् वृत्त में उदयास्तकालिक रविच्छाया के प्रवेश और निर्गम से भी विचार किया जाता है। इस कथन का अभिप्राय यह है :— समतल भूमि पर

---

१. दिनसप्तकं स्वसमयानुसारेण भट्टोत्पलो लिखति। यतस्तत्समये सप्तायनांशा आयान्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक वृत्त बनाकर, पूर्वादि दिशाओं का निर्धारण कर मध्य में एक शंकु (१२ अंगुल की लोहे या लकड़ी की कील) गाड़ दें। विषुवद् दिन में शंकु की छाया पूर्वापर-रेखा में होगी। तत्पश्चात् मिथुनान्त तक वह छाया सूर्योदयकाल में पूर्वापर रेखा से दक्षिण भाग में होगी। अस्त काल में भी छाया उसी प्रकार दक्षिण दिग्स्थ होती है। तत्पश्चात् सूर्य के कर्कादि में जाने पर प्रतिदिन वह छाया कन्यान्त पर्यन्त उत्तर में होती है। तुलादि में फिर यह छाया पूर्वापर रेखा में होगी। तत्पश्चात् धनुपर्यन्त प्रतिदिन उत्तरदिशा में जाती है और पुनः मकरादि से प्रतिदिन मीनान्त तक दक्षिण दिशा में जाती है। इस प्रकार से इस विधि को मान्य करते हुए अयननिवृत्ति की समाप्ति पर उस वृत्त में जिस भाग पर पूर्वाह्न की छाया प्रवेश करती है, वहाँ पर एक चिह्न लगा दें। और अपराह्न में जहाँ पर छाया निकलती हो, उस बिन्दु को भी चिह्नित कर दें। फिर दूसरे दिन भी इसी प्रकार शङ्कु की छाया के प्रवेश और निर्गमनकालिक स्थान पर चिह्न कर लें। इस प्रकार सात दिनों तक चिह्नाङ्कित करता चले। प्रथम दिवस के चिह्न में और द्वितीय दिवस के चिह्न में समानता उत्पन्न हो, तो उसी दिन अयन की निवृत्ति हुई यह ज्ञात होता है। इस ज्ञात काल में विचार करें कि यह अयननिवृत्तिकाल पञ्चाङ्ग साधित सङ्क्रान्तिकाल के समान हैं अथवा उसके पहले या बाद में हुआ है। इस प्रकार अयननिवृत्ति की प्रकृति अथवा विकृति का अन्वेषण करें ॥३॥

इदानीं वैकृते फलमाह :—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम् ॥४॥

विकृतकाल का फल कहते हैं :—

मकरराशि में जाने के पूर्व ही यदि अयन की निवृत्ति होती है, तो दक्षिण-पश्चिम दिशा का हनन होता है। यदि कर्कराशि को प्राप्त करने के पूर्व ही अयननिवृत्ति होती है, तो पूर्वोत्तरदिशा का विनाश होता है। अर्थात् इन दिशाओं में रहनेवालों का अनिष्ट होता है ॥४॥

अर्क आदित्यो मकरमप्राप्य मकरमगत्वा यदि विनिवृत्तो व्यावृत्तस्तदा सापरां याम्यामपरया पश्चिमया सह दक्षिणां दिशं हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा कर्कटकं कुलीरमसम्प्राप्तोऽगतो यदि निवृत्तो भवति तदोत्तरामुदीचीं दिशं सैन्द्रीं सपूर्वां हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा च गर्गः : —

सूर्य मकरराशि पर बिना गये ही यदि निवृत्त होता है, अर्थात् दक्षिणायनगति प्राप्त कर लेता है, तो दक्षिण सहित पश्चिमदिशा की हानि करनेवाला होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् इन दिशाओं में स्थित लोगों का विनाश करता है। इसी प्रकार यदि कर्कराशि को प्राप्त किये बिना उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है, तो पूर्व सहित दक्षिणदिशा का हनन करता है, अर्थात् इन दिशाओं में स्थित प्राणियों का अनिष्ट होता है, जैसाकि गर्गमुनि ने कहा है :–

यदा निवर्ततेऽप्राप्तो धनिष्ठामुत्तरायणे।
आश्लेषां दक्षिणेऽप्राप्तस्तदा विन्द्यान्महद्भयम् ॥ इति।

यदि धनिष्ठानक्षत्र को प्राप्त किये बिना उत्तरायण की निवृत्ति हो जाती है और आश्लेषानक्षत्र को प्राप्त किये बिना दक्षिणायन की निवृत्ति हो जाती है तो महान् भय की सम्भावना होती है।

तथा च पराशरः –

यद्यप्राप्तो वैष्णवमुदग्मार्गं प्रपद्यते। दक्षिणमाश्लेषां वा महाभयाय ॥ इति॥ ४॥

जैसाकि पराशरमुनि ने कहा है :–

यदि धनिष्ठानक्षत्र के अप्राप्त होने पर उत्तरायण की प्रवृत्ति और आश्लेषानक्षत्र को प्राप्त किये बिना दक्षिणायन की प्रवृत्ति हो तो महान् भयकारक होता है॥४॥

अथाधिकतायां शुभमाह :–

उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः॥ ५॥

अतिकाल का शुभफल :–

उत्तरायण के पश्चात् निवृत्त होने पर कल्याणकारी और धान्यों के लिए वृद्धिकारी होता है। स्वाभाविक सूर्य का अयन होने पर इसी प्रकार लाभदायक होता है, परन्तु जब विकृत गति होती है तो सूर्य भयदायक होता है॥५॥

उष्णांशुरादित्य उत्तरमयनमतीत्यातिक्रम्य मकरं प्राप्य पश्चाद्यदि व्यावृत्तो निवर्तितस्तदा क्षेमसस्यवृद्धिकरो भवति। लब्धपालनं क्षेमं करोति, लोके सस्यानां च वृद्धिकरो भवति। तस्य च दिनाधिक्यादुत्तरायणग्रहणमुपलक्षणार्थम्। दक्षिणमयनमप्येवं ज्ञेयम्। तथा प्रकृतिस्थः स्वभावस्थश्चाप्येवं क्षेमसस्यवृद्धिकृद्भवति। एतदुक्तं भवति :– स्फुटगणितेन यस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिर्ज्ञाता तस्मिन्नेव दिने यदि छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्महति मण्डले दृष्ट्या दृश्यते तदा प्रकृतिस्थः। तथा च भगवान् वृद्धगर्गः :–

इसके अधिक दिन होने से उत्तरायण का ग्रहण करना उपलक्षण है। दक्षिणायन का भी ऐसा ही समझना चाहिए। इसी प्रकार स्वाभाविक अयन होने पर भी कल्याणकारी सस्यों के लिए वृद्धिदायक होता है। तात्पर्य यह है कि स्पष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणित द्वारा जिस दिन अयन की निवृत्ति ज्ञात हुई, उस दिन ही यदि छाया के प्रवेश और निर्गमन चिह्न के द्वारा महत्वृत्त में प्रत्यक्ष देखा गया तो उसे प्रकृतिस्थ कहते हैं। जैसाकि भगवान् वृद्धगर्ग ने कहा है :-

अयने सुप्रभः स्निग्धः सेवते यदि भास्करः।
सुवृष्टिं च सुभिक्षं च योगक्षेमं च निर्दिशेत्॥
अनिवृत्ते समे वापि निवृत्तः शस्यते रविः।
हीने भयावहो लोके दुर्भिक्षमकरप्रदः॥

अयनकाल में सुन्दर किरणोंवाला स्निग्ध सूर्य दिखायी पड़े, तो उस समय सुन्दर वृष्टि, उत्तम अन्नोत्पादन और योगक्षेम बताना चाहिए। यदि सूर्य अनिवृत्त हो तो भयावह तथा लोक में दुर्भिक्ष के कारण मरणदायक होता है और साम्य तथा निवृत्तकाल में रवि प्रशस्त होता है।

विकृतगतिर्भयकृदिति। विकृता सविकारा गतिर्यस्यासौ विकृतगतिः। तथाभूतो भयकृल्लोके भयं भीतिं करोति। अयननिवृत्तौ दृष्टायां पुनर्यदि प्रतीपगतित्वमर्कस्य दृश्यते तदा विकृतगतिर्ज्ञातव्या।

विकृत गति का फल भयप्रदायक है। विकारयुक्त गति को विकृतगति कहते हैं। इस प्रकार से विकृतगतिवाला सूर्य भय देता है। अयननिवृत्ति में दृष्ट रवि यदि पुनः विपरीत गति का देखा जाता है, उस समय विकृतगति समझनी चाहिए।

पराशरतन्त्रेऽर्कस्य पञ्चधा गतिरुक्ता। तथा च :-

पञ्चविधां गतिमुदयास्तमययोरन्तरे भजत्यूर्ध्वाम्।
तिर्यङ्मण्डलमधो नक्षत्रानुयायिनीमपि च॥
तिर्यग्गच्छति काष्ठायामूर्ध्वं गच्छति चोदये।
प्रातराशामनुक्रम्य मध्यं गच्छति भास्करः॥
मध्याह्ने तापयंल्लोकान्मण्डलं कुरुते गतिम्।
भ्रष्टस्त्वपि च मध्याह्नादधो गच्छति भास्करः॥
अस्तं गच्छन्नपि रविर्नक्षत्रमनुगच्छति।
एषापि यदि सविकारा दृश्यते तथापि भयकृत्॥इति॥५॥

पराशरतन्त्र में सूर्य की पञ्चधागति कही गयी है, यथा :-

पाँच प्रकार की गतियाँ उदय और अस्त के मध्य होती हैं। ऊर्ध्व, तिर्यक्, मण्डल, अधः और नक्षत्रानुयायी, ये पाँच गतियाँ कही गयी हैं। पश्चिम में तिर्यक्गति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदयकाल में ऊर्ध्वगति, प्रातःकाल की दिशा को लाँघकर सूर्य की मध्यगति होती है। मध्याह्नकाल में लोकों को ताप देता हुआ मण्डलगति करता है। मध्याह्न के पश्चात् सूर्य की अधोगति होती है। अस्त होता हुआ सूर्य नक्षत्रों का अनुयायी होता है। ये गतियाँ यदि विकारयुक्त होती हैं, तो लोक में भय होता है।

त्वष्टा नाम ग्रहस्तेनाच्छादनादर्कस्य यदशुभफलं तदाह :—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः॥ ६॥

त्वष्टाग्रह से आच्छादित सूर्य का अशुभ फल :—

पर्वकाल के बिना ही त्वष्टा नामक ग्रह रविमण्डल को अन्धकारयुक्त कर देता है। वह सात राजाओं को तथा अन्य लोगों को शस्त्र, अग्नि और दुर्भिक्ष के द्वारा मारता है॥६॥

त्वष्टा नाम ग्रहोऽर्कमण्डलं सूर्यबिम्बं पर्व विनाऽपर्वण्येव सतमस्कं तमसान्धकारेण संयुक्तं कुरुते स तु दृष्टः सप्त भूपान्नक्षत्र[1]कूर्मोक्तानां नवानां नृपाणां मध्यात् सप्तसङ्ख्यान् भूपान् नृपान् निहन्ति घातयति। तथा शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः शस्त्रेण सङ्ग्रामेणाग्निना हुतवहेन दुर्भिक्षेण च जनांल्लोकान् निहन्ति। तथा च भगवान् पराशरः :—

त्वष्टा नामक ग्रह सूर्य-बिम्ब को बिना पर्व के ही अन्धकारयुक्त करता है। वह इस प्रकार देखा गया है कि नक्षत्रकूर्माध्याय में कहे गये नवीन राजाओं में से सात राजाओं का घात करता है तथा शस्त्र, अग्नि तथा दुर्भिक्ष द्वारा अन्य लोगों का विध्वंसक होता है। जैसाकि भगवान पराशर ने कहा है :—

अपर्वणि शशाङ्काकौ त्वष्टा नाम महाग्रहः।
आवृणोति तमः श्यामः सर्वलोकविपत्तये॥ इति॥ ६॥

बिना पर्व के (बिना ग्रहणकाल के) चन्द्र और सूर्य को त्वष्टा नामक महाग्रह अन्धकारसहित आच्छादित करता है। यह सम्पूर्ण लोक के लिए विपत्तिकारक होता है॥६॥

अथ तामसकीलकानामर्कमण्डलगतानां फलमाह :—

तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात्॥ ७॥

---

१. बृहत्संहितायाः १५ अध्याये नक्षत्रकूर्माङ्गविभागेन नव—देशा उक्ता आचार्येण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रविमण्डलगत तामस और कीलक का फल :–

तामस, कीलकसंज्ञक राहु के ३३ पुत्र हैं, इन्हें केतु कहा जाता है। इनके वर्ण, स्थान और आकार को देखकर फल कहना चाहिए ॥७॥

राहुसुताः स्वर्भानुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्केतवस्तामसकीलकसञ्ज्ञास्तामसकीलक इति तेषां नाम। तान् तामसकीलकानर्केऽर्कमण्डले वर्णस्थानाकारैः, वर्णाः श्वेतादयः, स्थानं प्रवेशो बिम्बैकभागः, आकार आकृतिर्ध्वाङ्क्षादिसदृशी, एतैर्वर्णस्थानाकारैर्दृष्ट्वा अवलोक्य लोके जनपदे शुभाऽशुभफलं ब्रूयाद् वदेत् ॥७॥

राहु के पुत्र ३३ केतु तामस, कीलक नाम से होते हैं। इन तामस, कीलकों की रविमण्डल में श्वेतादि वर्ण, बिम्ब के प्रवेशभाग के स्थानवश और ध्वाङ्क्षादि के समान आकार को देखकर जनसामान्य में शुभ और अशुभफलों को कहना चाहिए ॥

अथ तेषां शुभाऽशुभलक्षणमाह :–

ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः।
ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि ॥८॥

इनके शुभाशुभ लक्षणों को कहते हैं –

ये (तामस, कीलकादि) रवि– मण्डल में होने पर पाप फलप्रदायक और चन्द्रमण्डल में होने पर शुभफलदायक होते हैं। चन्द्रमण्डल में भी ध्वाङ्क्ष (कौआ), कबन्ध (शिरोविहीन आकृति) और शस्त्राकार के रूप में दृष्ट होने पर पापफलदायक होते हैं ॥८॥

ते तामसकीलकाश्चार्कमण्डले सूर्यबिम्बे गताः प्राप्ताः पापफला दुष्टफलप्रदा भवन्ति। चन्द्रमण्डले शशिबिम्बे गताः सौम्याः शुभफलप्रदा भवन्ति। ध्वाङ्क्षः काकः। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषः। प्रहरणं खड्गादि। ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपास्तदाकृतयः। शशाङ्केऽपि चन्द्रमण्डलेऽपि दृष्टाः पापाः पापफला भवन्ति। अनिष्टदानेतान् वर्जयित्वा अन्यरूपाश्चन्द्रमण्डले शुभावहाः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। चन्द्रमण्डले येऽशुभास्ते सूर्यमण्डलेऽतीवाऽशुभदा इति ॥८॥

ये तामसकीलक सूर्यबिम्ब में दिखायी पड़ने पर दुष्ट फलप्रदायक होते हैं। चन्द्रबिम्ब में जाने पर ये शुभफल देनेवाले होते हैं। ध्वाङ्क्ष शब्द का अर्थ कौआ होता है। कटे शिरवाले धड़ को कबन्ध कहा जाता है और खड्गादि को शस्त्र (प्रहरण) कहा जाता है। इस प्रकार से ध्वाङ्क्ष, कबन्ध, प्रहरण रूप आकृति के चन्द्रमण्डल में भी देखे जाने पर पापफल होते हैं। अर्थात् अनिष्टफल-प्रदायक इन आकृतियों को छोड़कर अन्य आकृतियाँ चन्द्रमण्डल में शुभकारी होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। 'अपि' शब्द संभावना अर्थ में है। चन्द्रमण्डल में जो अशुभकारी हैं, वे सूर्यमण्डल में अतिशुभकारी हैं ॥८॥

अथ तेषामुदयनिमित्तान्याह :–

तेषामुदये रूपाण्यम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम।
नगतरुशिखरामर्दी सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥९॥
ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहाः।
निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र चोत्पाताः ॥१०॥

इनके उदय का कारण कहते हैं :–

इनके उदय में जल की कालिमा, धूलि-कण सहित आकाश, पर्वत, वृक्षशिखर को मर्दित करनेवाली बालुकायुक्त प्रचण्ड वायु कारण होती है ॥९॥

ऋतुओं के विपरीत वृक्षों की प्रकृति, पशु-पक्षियों का उद्दीप्त स्वभाव दिग्दाह, निर्घात (विद्युत्पात) और भूकम्पादि उत्पात होते हैं ॥१०॥

तेषामिति। तेषां तामसकीलकानामुदये दर्शने रूपाण्येतानि लक्षणानि दृश्यन्ते। तद्यथाऽम्भः पानीयं निमित्तं विना कलुषमप्रसन्नम्। व्योम आकाशं रजोवृत्तं रजसा व्याप्तम्। तथा मारुतो वातश्चण्डः परुषो वाति वहति। कीदृशः। नगतरुशिखरामर्दी। नगनां पर्वतानां तरूणां वृक्षाणां शिखराण्यग्राणि। आसमन्तात् मर्दयति लोडयति। सशर्करः शर्कराभिर्मृत्कणिकाभिः सहितः ॥९॥

तामसकीलकों के उदय में ये लक्षण दिखलायी पड़ते हैं :– अकारण ही जल कलुषित, आकाश धूलिकणों से परिव्याप्त, कठोर-प्रचण्ड वायु का बहना, जिससे पर्वत एवं वृक्षों के शिखर के अग्रभाग पूर्णरूप से मर्दित हो जायें। यह वायु धूलिकणों से युक्त होती है ॥९॥

तथा तरवो वृक्षा ऋतुविपरीताः। तेषां ऋतौ स्वकालकुसुमफलानामभावः। अनृतौ कुसुमफलान्युत्पद्यन्ते। तथा मृगा अरण्यपशवः। पक्षिणः खगाश्च। दीप्ताः सूर्याभिमुखदीप्तस्थाः परुषरवाश्च भवन्ति। दिशां दाहा दिग्दाहाश्चासकृद्दृश्यन्ते। अत्रास्मिंस्तामसकीलकोदये निर्घातः। निर्घातलक्षणं वक्ष्यति।

वृक्ष ऋतुओं के विपरीत होते हैं अर्थात् उनके ऋतुओं के स्वाभाविक काल में उत्पन्न होनेवाले फूल और फलों का अभाव रहता है। ऋतुकाल प्राप्त हुए बिना ही फूल और फल उत्पन्न होते हैं। मृग अर्थात् जङ्गली पशु, पक्षिगण सूर्याभिमुख उद्दीप्त होकर कटु स्वर करते हैं। दिशाओं के दाह अर्थात् दिग्दाह अनेक बार परिलक्षित होते हैं। इस तामस-कीलक के उदय में निर्घात होता है। निर्घात का लक्षण इस प्रकार कहा गया है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पवनः[1] पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति।

भवति तदा निर्घातः।इति।

महीकम्पो भूकम्पः। आदिग्रहणाद्रजोनीहारोल्कापातगन्धर्वनगराणि गृह्यन्ते। एते उत्पाता भवन्ति॥१०॥

वायु का वायु के साथ संघात होने पर जब उसका आकाश से पृथ्वी पर पतन होता है, तो उसे निर्घात कहते हैं। पृथ्वी के कम्पन को भूकम्प कहा जाता है। 'आदि' शब्द के ग्रहण से धूलि, तुषार, उल्कादि का पात और गन्धर्वनगर का ग्रहण किया जाता है। ये उत्पात होते हैं॥१०॥

अथ तेषामुत्पातानां निष्फलमाह :–

न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि।
तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात्॥११॥

इन उत्पातों की निष्फलता को कहते हैं :–

इन शिखी, कीलक, राहु के दर्शन के फल पृथक् स्वतन्त्र रूप से नहीं होते हैं। इन केत्वादि के उदयकालिक लक्षणों के अनुसार ही फल कहना चाहिए॥११॥

तेषामम्भःकलुषादीनामुत्पातानां पृथक् फलानि न भवन्ति। यदि शिखिनः केतोः। कीलकानां तामसकीलकानाम्। राहोः स्वर्भानोश्च दर्शनानि भवन्ति। अर्कचन्द्रयोरन्यतरस्य ग्रहणं भवतीत्यर्थः। एतेषां सप्ताहान्तरदर्शने उत्पाता निष्फला ज्ञेयाः। तदुदयकारणमिति। यतस्तामसकीलकानामुदयकारणमुदयनिमित्तानि सम्भवन्ति। अत एतेषां केत्वादीनां फलमेव ब्रूयाद् वदेत्। केतुतामसकीलकराहूणामित्यर्थः। एतदुक्तं भवति – अम्भःकलुषादिभिरुत्पातैर्दृष्टैर्निश्चितं केत्वादीनामुदयो वक्तव्यः। अथ कदाचित्केत्वादीनां दर्शनं न भवति तदा अम्भःकलुषादीनामेव फलं[2] वदेत्॥११॥

जल की कलुषता आदि के इन उत्पातों का स्वतन्त्र फल नहीं होता है। यदि शिखी अर्थात् केतु, कीलक अर्थात् तामसकीलक और राहु के दर्शन होते हैं। यहाँ पर सूर्य और चन्द्र में से किसी एक का ग्रहण करना चाहिए। इनके एक सप्ताह के बाद दर्शन होने पर उत्पात निष्फल हो जाते हैं। क्योंकि तामसकीलक के उदय के निमित्त होते हैं। अतः इन केत्वादिकों का फल कहना चाहिए। यहाँ पर अभिप्राय यह है कि जल के कालुष्य इत्यादि उत्पातों को देखकर केत्वादि का उदय कहना चाहिए। यदि कदाचित् दर्शन नहीं होता है, तब जल की कलुषता आदि का ही फल कहना चाहिए॥११॥

---

१. बृहत्संहितायाः ३९ अध्यायस्य १ श्लोकः।

२. फलानि वदेदिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ तामसकीलकानां दर्शनवशात् फलमाह :—

यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः।
तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥१२॥
क्षुत्म्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः।
निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेणायान्ति परदेशम् ॥१३॥
तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः।
सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भववाष्परुद्धदृशः ॥१४॥
क्षामा जुगुप्समानाः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः।
स्वनृपतिचरितं कर्म न पुरा कृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥१५॥
गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः।
सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम् ॥१६॥

तामसकीलकों के अवलोकन का फल कहते हैं :—

सूर्यबिम्ब में स्थित (तामसकीलकादि) जिन-जिन देशों में दिखलायी पड़ते हैं, उन-उन देशों के राजाओं की विपत्ति जाननी चाहिए ॥१२॥

क्षुधा से दुर्बल शरीर, मुनिगण भी धर्म तथा सच्चरित्र से भ्रष्ट, बालकों के मांसरहित दुर्बल हाथ-आदि कारणों से ये सभी क्षुधा-पीड़ित होकर परदेश चले जाते हैं ॥१३॥

चोरों द्वारा धन-हरण हो जाने पर, दीर्घ श्वास से सङ्कुचित नेत्रवाले, दुःखित शरीरवाले तथा शोक और दुःख से उत्पन्न अश्रु से अवरुद्ध नेत्रवाले होते हैं ॥१४॥

अपने राजा और शत्रु राजा के द्वारा पीड़ित होकर मनुष्य दुर्बल होता हुआ पर-निन्दा करता रहता है। लोग यह कहने लगते हैं कि यह अपना राजा जिस प्रकार का आचरण कर रहा है, ऐसा कर्म पूर्व के किसी राजा ने नहीं किया है ॥१५॥

गर्भलक्षण सहित होने पर भी बादल वर्षा नहीं करते हैं। नदियाँ क्षीण हो जाती हैं और कहीं-कहीं पर ही धान्यादि सस्य होते हैं ॥१६॥

यस्मिन् यस्मिन् देश इति। ते तामसकीलकाः सूर्यबिम्बस्था आदित्यमण्डलगताः। यस्मिन् यस्मिन् यत्र यत्र देशे दर्शनमायान्त्युपगच्छन्ति तस्मिन् तस्मिंस्तत्र तत्र देशे महीपतीनां भूमिपानां व्यसनं दुःखं परिज्ञेयं ज्ञातव्यम् ॥१२॥

वे तामस, कीलक सूर्यमण्डल में जाकर जिन-जिन देशों में दृष्ट होते हैं, उन-उन देशों में राजाओं को दुःख होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षुत्प्रम्लानशरीरा इति। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। मुनयोऽपि ऋषयोऽपि जितक्षुधः, क्षुत्प्रम्लानशरीराः, क्षुद्बुभुक्षा तया प्रकर्षेणातिशयेन म्लानानि शरीराणि देहा येषां ते तथाभूताः, तथोत्सृष्टं त्यक्तं धर्मसच्चरितं शोभनचारित्रं च यैस्ते तथोक्ताः। तथा निर्मांसा मांसरहिताः। दुर्बला ये बालाः शिशवोऽन्नाभावात्ते हस्तेषु करेषु येषां ते तथाभूताः। कृच्छ्रेण क्लेशेन परदेशमन्यदेशं यान्ति प्राप्नुवन्ति॥१३॥

क्षुधा से क्लान्त शरीरवाले, इस कथन में 'अपि' शब्द संभावना अर्थ में अभीष्ट है। मुनि भी अर्थात् ऋषि भी जो क्षुधा को जीत लेते हैं, वे भी क्षुधा से म्लान शरीरवाले हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बुभुक्षा के आधिक्य से मलिन देहवाले हो जाते हैं तथा धर्म और उत्तम चरित्र को छोड़ देते हैं। अन्न के अभाव से मांसरहित बालकों को अपने हाथों में लिये हुए लोग अत्यधिक क्लेश के कारण अन्य देशों में चले जाते हैं॥१३॥

तथा सन्तः साधवो जनास्तस्करविलुप्तवित्ताः, तस्करैश्चौरैर्विलुप्तं छिन्नं वित्तं धनं येषाम्। तथा प्रदीर्घैरत्यायामवद्भिर्निश्वासैः श्वसनैर्मुकुलिताः संकुचिता अक्षिपुटा नेत्राच्छादनानि येषाम्। तथा सन्नशरीराः, सन्नान्यवसादं गतानि शरीराणि देहा येषाम्। तथा शोकेन दुःखेन यदुद्भवं बाष्पमश्रु तेन रुद्धे वृते दृशौ चक्षुषी येषां ते तथोक्ताः॥१४॥

इस प्रकार की स्थिति में साधुजनों का धन चोरों द्वारा चुरा लिया जाता है। तथा अत्यन्त आयास से प्रदीर्घ निःश्वास के द्वारा अक्षि-पुट सङ्कुचित अर्थात् आच्छादित हो जाते हैं। तथा शरीर सन्न अर्थात् अवसाद को प्राप्त हो जाता है तथा वे शोक अर्थात् दुःख से उत्पन्न अश्रु से अवरुद्ध नेत्रवाले हो जाते हैं॥१४॥

क्षामाः कृशाः जुगुप्सुसमाना निन्दन्तो मनुजा [1]मानवाः। यतः स्वनृपतिपरचक्र-पीडिताः। स्वनृपतिना आत्मीयेन राज्ञा परचक्रेण चान्यराष्ट्रेण पीडिताः। स्वनृपतिना आत्मीयेन राज्ञा परचक्रेण चान्यराष्ट्रेण पीडिता उपतप्ताः, अतो जुगुप्सुसमानाः। अन्येऽपरे एवं ब्रुवन्ति कथयन्ति च यथा यत्कर्मास्माभिरद्यानुभूयते तत्पुरा पूर्वं स्वचरितमात्मनार्जितं न नृपतिचरितं राज्ञा-ऽर्जितमिति॥१५॥

क्षाम अर्थात् कृश मनुष्य निन्दापरायण हो जाते हैं। यतः स्वनृपति अर्थात् आत्मीय राजा और अन्य राजाओं से पीड़ित होते हैं। तात्पर्य यह है कि लोग आत्मीय राजा के द्वारा और परकीय राजा के द्वारा सन्तप्त होते हैं, अतः वे परनिन्दा में लिप्त हो जाते हैं। अन्य लोग इस प्रकार कहते है कि जिस प्रकार के कर्मों का हम लोग अनुभव करते हैं, वे हमारे पूर्वजन्म के अपने अर्जित कर्म नहीं हैं, अपितु राजा के द्वारा वे आचरित कर्म हैं॥१५॥

---

१. मनुष्या इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्भेष्वपीति। वारिमुचो मेघा गर्भेष्वपि निष्पन्ना गर्भलक्षणयुक्ता अपि वृष्टिप्राप्तसमये न प्रभूतं न बहु वारि [1]पयो मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा सरितो नद्यस्तनुत्वं स्वल्पतोयत्वं यान्ति गच्छन्ति जलाभावात्। सस्यं धान्यादिकं क्वचित्क्वचित्कुत्रचिज्जायते उत्पद्यते न सर्वत्रेति ॥१६॥

मेघ गर्भनिष्पन्न अर्थात् गर्भलक्षण से युक्त होने पर भी वर्षाकाल आने पर पर्याप्त जल नहीं छोड़ते हैं। तथा नदियाँ तनुता अर्थात् जलाभाव के कारण स्वल्प जलवाली हो जाती हैं। धान्यादि सस्य कहीं-कहीं पर ही उत्पन्न होते हैं, सर्वत्र नहीं ॥१६॥

अथ तेषामाकृतिवशेन फलमाह :—

दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने।
ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥१७॥

स्वरूपानुसार तामसादि का फल कहते हैं :—

सूर्यमण्डल में स्थित दण्डाकृति से राजा की मृत्यु, कबन्धाकृति स्थित होने पर रोगभय, काकाकृति से चौरभय और कीलकाकृति से अकाल पड़ता है ॥१७॥

अर्कस्थे सूर्यमण्डलसंस्थिते। दण्डे दण्डाकारे चिह्ने। नरेन्द्रस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं स्यात्। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषः। कबन्धसंस्थाने कबन्धाकारे चिह्नेऽर्कस्थे। व्याधिभयं रोगभयम्। स्याद् भवेत्। ध्वाङ्क्षः काकस्तस्मिन्नर्कस्थे तस्करभयं चौरकृतं भयं वदेत्। कीलके कीलकाकारेऽर्कस्थे दुर्भिक्षमसुभिक्षं भवेत्[2] ॥१७॥

अर्कस्थ का तात्पर्य सूर्यमण्डल में स्थित चिह्न से है। दण्डाकार का चिह्न होने पर राजा की मृत्यु होती है। कबन्ध का अर्थ कटे हुए शिरवाला पुरुष है। कबन्धाकार चिह्न के सूर्यमण्डल में स्थित होने पर रोगभय होता है। ध्वाङ्क्ष अर्थात् काक, इसके चिह्न सूर्यबिम्ब में होने पर चोरों द्वारा उत्पन्न भय को कहना चाहिए। सूर्य में स्थित कीलकाकृति से दुर्भिक्ष होता है ॥१७॥

अन्यदप्याह :—

राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः।
राजान्यत्वकृदर्कः स्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा ॥१८॥

और भी कहते हैं :—

यदि सूर्यमण्डल राजा के उपकरण छत्र, ध्वज और चँवर इत्यादि से विद्ध (चिह्नित) हो तो दूसरा राजा बनाता (नृप-परिवर्तनकारक) है। तथा चिनगारी और धूमादि चिह्न होने पर जन-हानि करता है ॥१८॥

---

१. पानीयमिति अ० क० पु० पाठः।
२. वदेदिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा नृपस्तस्योपकरणानि हस्त्यऽश्वादयस्तद्रूपैस्तदाकारैरर्कः सूर्यो यदि विद्धो भवति। तथा छत्रध्वजचामरादिभिः। छत्रमातपत्रम्। ध्वजं पताका। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणाद् भृङ्गारकुम्भाकारैर्यद्यर्को विद्धो भवति तदा राजाऽन्यत्वकृत्, राज्ञोऽन्यत्वं करोति, अन्यो राजा भवतीत्यर्थः। अथ स्फुलिङ्गैरग्निकणैर्धूमेन। आदिग्रहणाज्ज्वालादिभिर्युक्तो भवति तदा जनहा, जनान् हन्ति घातयतीत्यर्थः॥१८॥

नृप के उपकरण हाथी, घोड़े आदि के रूपों से सूर्य यदि विद्ध होता है तथा ध्वज (पताका), चामर (बालों का व्यजन) से यदि विद्ध होता है, तो अन्य (व्यक्ति) राजा होता है। यहाँ पर 'आदि' शब्द के ग्रहण से भृङ्ग और कुम्भ की आकृति को भी समझना चाहिए। अग्निकणों को स्फुलिङ्ग कहते हैं। 'आदि' शब्द के ग्रहण से अग्निज्वालायुक्त होने पर भी जनता का विघात करता है॥१८॥

अन्यदप्याह :–

एको दुर्भिक्षकरो द्वयाद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय।
सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ॥१९॥

और भी कहते हैं :–

सूर्य किसी एक चिह्न से विद्ध होने पर अकाल करनेवाला तथा दो या उससे अधिक चिह्नों से विद्ध होने पर राजा के लिए विनाशकारक होता है। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों से विद्ध होने पर क्रमशः उससे सम्बद्ध वर्णों का हनन करता है॥१९॥

एको वेधोऽर्कस्थो दुर्भिक्षमसुभिक्षं करोति। द्वावाद्यौ येषां द्व्याद्याः। द्वौ त्रयश्चत्वारो वा वेधा नरपते राज्ञो विनाशायाभावाय स्युर्भवेयुः। अर्क आदित्यस्तैश्चिह्नैस्सितरक्त-पीतकृष्णैर्विद्धोऽनुवर्णघ्नो भवति। अनु क्रमेण। वर्णान् द्विजादीन् हन्ति। तद्यथा :– सितैः श्वेतवर्णैश्चिह्नैर्विद्धो ब्राह्मणान् हन्ति घातयति, रक्तवर्णैः क्षत्रियान्, पीतवर्णैर्वैश्यान्, कृष्णवर्णैः शूद्रानिति॥१९॥

एक चिह्न से वेधित सूर्य दुर्भिक्ष (अकाल) करता है। दो, तीन, चार आदि चिह्नों का वेध राजा के लिए विनाशकारक होता है। सूर्य में उन चिह्नों के द्वारा उत्पन्न श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों से क्रमानुसार द्विजादि वर्णों का हनन होता है। जैसे – श्वेतवर्ण के चिह्न से विद्ध सूर्य ब्राह्मणों का हनन करता है। रक्तवर्ण से क्षत्रियों का, पीले वर्ण से वैश्यों का और काले वर्ण से शूद्रों का विनाश करता है॥१९॥

विशेषफलमाह :–

दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः।
आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन॥२०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष फल कहते हैं :–

ये महान् उत्पात् सूर्य के जिसी भाग से उत्पन्न होते हैं, उसी दिशा से लोगों को भय प्राप्त होता है ॥२०॥

ते महोत्पाता ध्वाङ्क्षप्रभृतयो रविबिम्बस्यार्कमण्डलस्योत्थिता उत्पन्ना यतो यस्यां दिशि दृश्यन्ते, पूर्वस्यां दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां वा दिशि विदिक्षु वा तेनैव प्रदेशेन लोकानां जनानां भयमागच्छति आयाति ॥ २०॥

ये ध्वाङ्क्षादि महान् उत्पात रविबिम्ब को जिस दिशा में उत्पन्न दिखायी पड़ते हैं, अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तरदिशा अथवा विदिशाओं में, उसी दिशा से लोगों के लिए भय का आगमन होता है ॥२०॥

अथार्करश्मिवशेन शुभाशुभफलमाह :–

ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति।
पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥ २१॥
चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलं करोत्यूर्द्धम्।
तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२॥

रविकिरणानुसार शुभाशुभ फल कहते हैं :–

ऊर्ध्व किरणोंवाला ताम्रवर्ण का सूर्य सेनापति का विनाश करता है। पीतवर्ण का राजपुत्र को और श्वेतवर्ण का पुरोहित को मारता है। इसी प्रकार ऊर्ध्वकिरणों वाला यह सूर्य विविध अङ्गोंवाला अथवा धूम्रवर्ण का चोरों के शस्त्र-प्रहार से शीघ्र ही लोगों को व्याकुल कर पीड़ित करता है। यदि उस समय वर्षा न हो तो यह अशुभफल विनाशकारी होता है ॥२१, २२॥

दिवसकर आदित्यः। ऊर्ध्वकर ऊर्ध्वरश्मिर्यदा दृश्यते। अधोभागे तस्य रश्मयो न दृश्यन्त इत्यर्थः। स च ताम्रस्ताम्रवर्णश्च तदा सेनापतिं चमूनाथम्, विनाशयति घातयति। ऊर्ध्वकरः पीतवर्णश्च नरेन्द्रपुत्रं नृपसुतम्, हन्ति मारयति। ऊर्ध्वकरः श्वेतवर्णश्च पुरोहितं मारयति ॥ २१॥

सूर्य जब ऊर्ध्वकिरणोंवाला अर्थात् जब उसके अधोभाग में किरणें न दिखलायी पड़ती हों, और वह ताम्रवर्ण का हो तो सेनापति का विघात करता है। ऊर्ध्व किरणों-सहित पीतवर्ण का राजा के पुत्र को मारता है। ऊर्ध्व किरणोंवाला श्वेतवर्ण का होने पर पुरोहित को मारता है ॥२१॥

चित्रोऽथवेति। रवेरादित्यस्य संबन्धी रश्मिः करः। ऊर्ध्वं स्थितः स च चित्रो नानावर्णोऽथवापि तु धूम्रवर्णस्तस्करशस्त्रनिपातैः, तस्कराश्चौराः, शस्त्रमायुधम्,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैस्तस्करशस्त्रनिपातैश्चौरसङ्ग्रामोपमर्द्दनैर्व्याकुलं सोद्यमं देशं करोति, यद्याशु शीघ्रं सलिलं जलं न पातयति न वर्षति तदैवम्। अथ सलिलपातं करोति तदा शिवमिति॥२२॥

सूर्य की किरणें ऊर्ध्वभाग में स्थित हों और वे विविध वर्णों की अथवा धूम्रवर्ण की हों, तो तस्करों से और युद्ध में किये गये शस्त्र-प्रहार से देश को व्याकुल करता है, यदि शीघ्र ही जल की वर्षा न हो तो ऐसा होता है। यदि वर्षा होती है, तो कल्याण समझना चाहिए॥२२॥

अथ भगवतो भास्करस्य ऋतुवर्णलक्षणमाह।

ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिरे हरिकुङ्कुमच्छविश्च मधौ।
आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च॥२३॥
शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः।
प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्त्तुनिभोऽपि शुभदायी॥२४॥

भगवान् सूर्य के ऋतुपरक वर्णों के फल :–

शिशिरऋतु में सूर्य ताम्रवर्ण का अथवा कपिल (भूरा रगं) वर्ण का हो तो शुभदायी होता है। वह वसन्तऋतु में हरितवर्ण का, ग्रीष्मऋतु में पाण्डु तथा स्वर्ण वर्ण का, वर्षाऋतु में श्वेतवर्ण का शरद ऋतु में कमलपुष्प के अन्तःवर्ण के सदृश, हेमन्तऋतु में रक्तवर्ण का प्रशस्त (शुभ) होता है। वर्षाऋतु में स्निग्ध तथा सभी ऋतुओं में कहे गये वर्णों के सदृश सूर्य शुभफलप्रदायक होता है॥२३,२४॥

ताम्रः कपिलो वार्क इति। शस्त इति सर्वत्र संबध्यते। शिशिरे माघफाल्गुनयोरर्क आदित्यस्ताम्रवर्णः कपिलो वा कपिलवर्णः शस्तः शुभफल इत्यर्थः। मधौ वसन्ते चैत्रवैशाखयोर्हरिकुङ्कुमच्छविर्हरित[1] कान्तिः शुकाभः। कुङ्कुमवर्णश्च पीतलोहितवर्णः शस्त एव। ग्रीष्मे ज्येष्ठाऽऽषाढयोः पाण्डुः पाण्डुरवर्ण ईषच्छुक्रः। कनकवर्णः सुवर्णकान्तिश्च शस्त एव। वर्षासु वर्षाकाले श्रावणभाद्रयोः। शुक्लः श्वेतवर्णः शस्तः। चशब्दादापाण्डुकनकवर्णश्च शस्त एव॥

यहाँ पर 'शस्त' का सम्बन्ध सभी स्थानों के लिए है। शिशिरऋतु अर्थात् माघ-फाल्गुन मास का सूर्य ताम्रवर्ण अथवा कपिलवर्ण (भूरे रंग) का (शस्त) शुभफलप्रदायक होता है। मधुऋतु अर्थात् वसन्तऋतु में चैत्र-वैशाख का रवि हरितवर्ण अर्थात् शुकवर्ण (तोता का रंग), कुंकुमवर्ण अर्थात् पीला-लाल मिश्रित रंग का प्रशस्त होता है। ग्रीष्म ऋतु; ज्येष्ठ-आषाढ़ को पाण्डुवर्ण, किञ्चित् श्वेत

---

१. हरितः क्रान्तिः शुकानाम्। कुङ्कुमच्छविः कुङ्कुमच्छविवर्ण इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और सुवर्ण के रंग का सूर्य शुभ ही होता है। वर्षाऋतु, श्रावण-भाद्रपद मास में श्वेत वर्ण का प्रशस्त होता है 'च' शब्द से पाण्डु तथा सुवर्ण वर्ण का अप्रशस्त समझना चाहिए।

शरदि शरत्काले। आश्वयुजकार्तिकयोः। कमलोदराभः कमलं पद्मं तस्योदरमभ्यन्तरं तत्सदृशी भा कान्तिर्यस्य स तथाभूतः शस्तः। हेमन्ते मार्गपौषयोः। रुधिरवर्णो रक्तवर्णः शस्तः। प्रावृट्काले वर्षासमये स्निग्धो विमलस्तथा सर्वर्त्तुनिभः सर्वेषां शिशिरादीनामृतूनां ये वर्णा उक्तास्तेषां निभः सदृशस्तद्वर्णोऽपि शुभदायी शुभप्रदो भवति। तथा च समाससंहितायाम् :–

शरद्-ऋतु आश्विन-कार्तिक मास में कमल के भीतरी भाग के वर्ण के सदृश सूर्य शुभ है। हेमन्तऋतु, मार्गशीर्ष पौष मास में रक्त के वर्ण का रवि प्रशस्त है। वर्षाकाल में स्निग्ध अर्थात् स्वच्छ तथा सभी शिशिरादि ऋतुओं के कथित वर्णों के समान रवि के होने पर प्रशस्त शुभफल होता है।

जैसा कि समास सहिता में कहा गया है :–

ताम्रघृतकनकमुक्ताकमलासृक्सन्निभः शुभः सविता।
शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु प्रावृषि सर्वर्त्तुसन्निभः स्निग्धः॥

ताम्र, घृत, स्वर्ण, मोती, कमल और रक्त के सदृश वर्ण का, शिशिरादि छः ऋतुओं में सूर्य शुभ होता है। वर्षाकाल में उक्त सभी ऋतुओं के समान होने पर स्वच्छ रवि शुभफलदायक है।

तथा च वृद्धगर्गः :–

शिशिरे ताम्रसंकाशः कपिलो वापि भास्करः।
वसन्ते कुङ्कुमप्रख्यो हरितो वापि शस्यते॥
ग्रीष्मे कनकवैदूर्यं स्सर्वरूपो जलागमे।
शस्तः शरदि पद्माभो हेमन्ते लोहितप्रभः॥
एतत्स्वरूपं सवितुर्विपरीतमतोऽन्यथा।

जैसा कि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

शिशिर ऋतु में ताम्रवर्ण का अथवा भूरे रंग का, वसन्त ऋतु में कुंकुम के समान अथवा हरे रंग का रवि शुभ होता है। ग्रीष्म में सुवर्ण अथवा मूंगे के रंग का तथा वर्षाऋतु में सभी वर्णों का, शरद् ऋतु में कमल के समान, हेमन्त में लालरंग का सूर्य शुभफलप्रदायक होता है। इस वर्णस्वरूप से भिन्न रवि का फल विपरीत अर्थात् अशुभ जानना चारिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च पराशरः :–

शिशिरे ताम्रः कपिलो वा। वसन्ते [1]कुङ्कुमाभो हरितो वा। ग्रीष्मे कनकवैदूर्यप्रभः। प्रावृषि सर्ववर्णः। शरदि पद्माभो हेमन्ते रक्तवर्णो रश्मिः सर्वर्त्तुषु श्वेतः पाण्डुवर्णश्च शस्यते विपरीतो विपरीतकारीति॥ २३-२४॥

इसी प्रकार पराशर ने भी कहा है :–

शिशिर में ताम्र अथवा भूरा, वसन्त में कुङ्कुम अथवा हंस, ग्रीष्म में सोना और मूंगा के समान, वर्षाऋतु में सभी वर्णो का, शरद्ऋतु में कमल के समान, हेमन्त में लाल रंग का और सभी ऋतुओं में श्वेत और पाण्डुरंग की रवि-किरणें शुभफलदायक होती हैं। इसके विपरीत वर्ण होने पर विपरीत (अशुभ) फल कहना चाहिए॥२३।२४॥

अन्यदप्याह :–

रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान् विनाशयति।
पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः॥ २५॥

रुक्ष तथा श्वेतवर्ण का ब्राह्मणों का, लालवर्ण का क्षत्रियों का, पीतवर्ण का वैश्यों का और कृष्णवर्ण का सूर्य अन्य लोगों का विनाश कारता है। इसके विपरीत स्निग्ध सूर्य-किरणें शुभकरी होती हैं॥२५॥

रूक्ष इति सर्वत्र संबध्यते। श्वेतः शुक्लवर्णो रूक्षः स्नेहरहितो विप्रान् ब्राह्मणान्। विनाशयति हन्ति। रक्ताभो लोहितकान्ती रूक्षश्च क्षत्रियान् विनाशयति। पीतः पीतवर्णो रूक्षो वैश्यान्नाशयति। कृष्णः कृष्णवर्णो रूक्षश्च ततोऽपरान् तदित्यनेन वैश्याः परामृश्यन्ते तेभ्योऽपरानन्यान् शूद्रान् हन्तीति।

रूक्ष शब्द का सम्बन्ध सभी पदों से है। शुक्लवर्ण का रूखा अर्थात् स्नेहरहित ब्राह्मणों का विनाश करता है। रक्तिमप्रकाश का लालवर्ण का और रूक्ष क्षत्रियों का विनाश करता है। पीतवर्णयुक्त रूक्ष वैश्यों का विनाश करता है। कृष्णवर्ण का रूक्ष सूर्य अन्यों का विनाश करता है। 'ततः' तथा 'अपर' शब्द से वैश्यवर्ण का ग्रहण किया जाता है और 'अन्य' शब्द से शूद्रों के लिए विनाशकारक समझना चाहिए।

शुभकरः स्निग्ध इति। यथोक्तवर्णो यदि स्निग्धो भवति तदा तेषामेव शुभकरो भवति। तथा श्वेतः स्निग्धो ब्राह्मणानां शुभकरो भवति, रक्ताभः स्निग्धः क्षत्रियाणाम्, पीतः स्निग्धो वैश्यानाम्, कृष्णः स्निग्धश्च शूद्राणामिति॥ २५॥

---

१. लोहित इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपर्युक्त वर्ण यदि स्निग्ध हों तो उन वर्णों के लिए शुभकारी होते हैं। जैसाकि श्वेत-स्निग्ध विप्रों के लिए शुभकर होता है। रक्त-स्निग्ध क्षत्रियों के लिए, पीत-स्निग्ध वैश्यों के लिए और कृष्ण-स्निग्ध शूद्रों के लिए शुभकारी होता है ॥२५॥

अथार्कस्य ऋतुष्वशुभवर्णानाह :—

ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम्।
हेमन्ते पीतोऽर्कः करोति न चिरेण रोगभयम् ॥२६॥

सूर्य के ऋतुपरक अशुभवर्णों को कहते हैं :—

ग्रीष्मऋतु में रक्तवर्ण का सूर्य भयकारक होता है। वर्षाऋतु में कृष्णवर्ण का अनावृष्टि करता है। हेमन्तऋतु में पीले रङ्ग का सूर्य शीघ्र ही रोग-भय करता है ॥२६॥

अर्क आदित्यो रक्तो लोहितवर्णो ग्रीष्मे दृष्टो भयकृद् भयं करोति। वर्षासु वर्षाकाले। असितवर्णः कृष्णवर्णोऽनावृष्टिं वृष्ट्यभावं करोति। हेमन्ते पीतः पीतवर्णो न चिरेण शीघ्रमेव रोगभयं गदभीतिं करोति। शेषर्तुषु न विशेषः पूर्वोक्तमेव शुभाशुभमिति ॥२६॥

सूर्य रक्तवर्ण का ग्रीष्मऋतु में दिखायी पड़ने पर भय करता है। वर्षाकाल में कृष्णवर्ण का अनावृष्टि अर्थात् वर्षा का अभाव करता है। हेमन्तऋतु में पीत-वर्ण का शीध्र ही रोग-भय करता है। अवशिष्ट ऋतुओं में कोई विशेषता नहीं होती, पूर्वोक्त शुभाशुभ ही समक्षना चाहिए ॥२६॥

अन्यदप्याह :—

सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः।
प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥२७॥
वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः।
शिखिपत्रनिभः सलिलं [1]न करोति द्वादशाब्दानि ॥२८॥

सूर्यमण्डल यदि इन्द्रधनुष से खण्डित होता हो, तो राजाओं में परस्पर विरोध होता है। वर्षाकाल में स्वच्छ कान्तिमान् सूर्य शीघ्र वर्षा करता है ॥२७॥

वर्षाकाल में यदि सूर्य शिरीषपुष्प के वर्ण का हो तो वृष्टिकारक होता है। यदि सूर्य मयूरपंख के सदृश वर्ण का हो तो बारह वर्षों तक वर्षा नहीं करता है ॥२८॥

सुरचापेति। सहस्रांशुरादित्यः। सुरचापमिन्द्रधनुस्तत्तुल्येन चिह्नेन पाटिता विदारिता तनुर्मूर्तिर्यस्य तथा भूतो नृपते राज्ञो विरोधप्रदो भवत्यशुभ इत्यर्थः। प्रावृट्काले वर्षासमये विमलद्युतिर्निर्मलकान्तिः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं करोति वर्षतीत्यर्थः।

---

१. द्वादशवर्षाणि न करोतीति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरचाप अर्थात् इन्द्रधनुष के समान चिन्ह से यदि रविमण्डल विदीर्ण दिखलायी पड़ता हो तो राजाओं के लिए विरोधप्रदायक अर्थात् अशुभ होता है। वर्षाऋतु में निर्मलकान्ति हो तो शीघ्र ही उसी दिन वर्षा करता है।

वर्षाकाले प्रावृट्समये शिरीषपुष्पाभः शिरीषपुष्पकान्तिसदृशो नीलपीत इत्यर्थः। सद्यो वृष्टिं करोति। शिखी मयूरस्तस्य पत्रं पक्षस्तद्विभस्तत्तुल्यो मयूरचन्द्रिकाकारो द्वादशवर्षाणि सलिलं जलं न करोति न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः –

इसी प्रकार वर्षाकाल में शिरीषपुष्प के समान अर्थात् नील-पीतवर्ण मिश्रित सूर्य शीघ्र वर्षा करता है। मयूर के पंख (मयूरचन्द्रिका) के समान होने पर सूर्य बारह वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं करता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

मयूरचन्द्रिकाभो वा यदा दृश्येत भास्करः।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे तदा देवः प्रवर्षति॥ इति २८॥

यदि सूर्य मयूरचन्द्रिका सदृश वर्ण का दिखायी पड़े, तो द्वादश वर्ष पूर्ण होने पर ही इन्द्रदेव वर्षा करते हैं॥२८॥

अन्यदप्याह :–

श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात्।
यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य॥२९॥

सूर्य श्यामवर्ण का हो तो कीटभय, भस्म के वर्ण का हो तो राजयुद्ध से भय प्राप्त होता है। जिस नक्षत्र में सूर्य छिद्रयुक्त दिखलायी पड़ता है, उस नक्षत्र के राजा का विनाश होता है॥२९॥

अर्के सूर्ये श्यामवर्णे कीटभयं कृमिभीतिः सस्यानां भवति। भस्मनिभे भस्मवर्णे पाण्डौ रूक्षे परचक्रादन्यनृपाद्भयं भीतिमुशन्ति कथयन्ति। अर्क आदित्यो यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे स्थितः सच्छिद्रो दृश्यते तन्नक्षत्रं यस्य क्षितीशस्य राज्ञः कूर्मविभागेन भवति तस्य विनाशो मृत्युर्भवति॥२९॥

श्यामवर्ण का सूर्य कीट-भय देता है, जिससे सस्यों की क्षति होती है। सूर्य जिस नक्षत्र में स्थित होकर छिद्रसहित दिखलायी पड़ता है, कूर्मविभाग के अनुसार जिस राजा का वह नक्षत्र होता है, उसका विनाश अर्थात् मरण होता है॥२९॥

अन्यदप्याह :–

शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति सङ्ग्रामाः।
शशिसदृशे नृपतिवधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति॥३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और भी कहा गया है :–

आकाशस्थ सूर्य खरगोश के रक्त के समान हो तो युद्ध होते हैं। चन्द्र-तुल्य मध्याह्नकालिक सूर्य हो तो राजा का बध होता है, और शीघ्र ही दूसरा राजा अधिप हो जाता है ॥३०॥

शशः प्राणिविशेषः। भानावादित्ये शशरुधिरनिभे शशलोहितवर्णे अतिरक्त इत्यर्थः। नभस्तलस्ले मध्याह्ने मध्यस्थिते सङ्ग्रामा युद्धानि भवन्ति। नभस्तलग्रहणमुदयास्तमयकालपरिहारार्थम्। तत्र किल स्वभावादतिलोहितो रविर्भवति। तथा च गर्गः :–

शश जिसे खरगोश कहा जाता है, वह एक प्राणीविशेष है। सूर्य के शश-रक्त के समान अर्थात् अतिशय रक्तवर्ण के होने पर युद्ध होते हैं। यह स्थिति मध्याह्नकालिक सूर्य के होने पर होती है। यहाँ पर उदय और अस्तकाल के परिहार के लिए ही 'नभस्तल' अर्थात् मध्याह्नकाल का ग्रहण किया गया है, क्योंकि उदयास्त-काल में सूर्य स्वभावतः अत्यधिक रक्तवर्ण का होता है। जैसाकि गर्ग कहा है:–

शशलोहितवर्णाभो यदा भवति भास्करः।
तदा भवन्ति सङ्ग्रामा घोरा रुधिरकर्दमाः॥इति॥

शशक के रक्त के समान जब सूर्य होता है, उस समय निश्चित ही भयङ्कर युद्ध होता है और रक्त से कीचड़ हो जाता है।

शशसदृशे चन्द्रनिभे विरश्मौ शीतले च नृपते राज्ञो बधो मरणं भवति। क्षिप्रं चाश्वेवान्योऽपरो नृपो राजा भवति॥३०॥

चन्द्रमा के तुल्य, रश्मिरहित, शीतल किरणें जब सूर्य की हों तो राजा का मरण होता है और शीघ्र ही अश्व-परिवर्तन की तरह राज-परिवर्तन हो जाता है अर्थात् दूसरा राजा हो जाता है ॥३०॥

अन्यदप्याह :–

क्षुन्मारकृद्घटनिभः खण्डो जनहा विदीधितिर्भयदः।
तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय॥३१॥

घटाकार सूर्य क्षुधा से मारक होता है और खण्डित सूर्य जन-हानि करता है और तेजहीन (शान्त किरणोंवाला) सूर्य भयदायक होता है। सूर्य तोरण के सदृश पुर (नगर) का विनाशक और छत्र के सदृश होने पर देश का नाश करता है ॥३१॥

घटनिभो घटाकारोऽर्कः। क्षुन्मारकृत्। क्षुद्दुर्भिक्षं मारं मरणं च करोति। खण्ड एकदेशाद्धीनो जनहा जनान् हन्ति घातयति। विदीधितिर्विगतरश्मिर्भयदो भीतिं ददाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तोरणरूपस्तोरणाकारः पुरहा पुरं नगरं हन्ति। छत्रनिभ आतपत्राकारो देशस्य जनपदस्य नाशाय विघाताय भवति॥३१॥

घट के आकार का सूर्य क्षुधा अर्थात् दुर्भिक्ष से मरणप्रदायक होता है। खण्डित सूर्य अर्थात् एक प्रदेश से छिन्न रविमण्डल लोगों का विघात करता है। रश्मिविहीन भयदायक होता है। तोरणाकार पुरों अर्थात् नगरों का विध्वंस करता है। छत्र (छाता) के आकार का देश, जनपद का नाश करता है॥३१॥

अन्यदप्याह :—

ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च।
कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं [1]सचिवः॥३२॥

सूर्यबिम्ब में ध्वज, धनुष की आकृति और कम्पन तथा रूक्षता (कर्कशता) के होने से युद्ध होते हैं। यदि सूर्यबिम्ब में काले रङ्ग की रेखा हो तो राजा को उसका मन्त्री मार डालता है॥३२॥

ध्वजः प्रसिद्धो बहुपटरचितः पताकारूपः। चापं धनुः। भास्करे सूर्ये। ध्वजचापनिभे तदाकृतौ। युद्धानि सङ्ग्रामा भवन्ति। वेपने कम्पमाने रूक्षे वाऽस्निग्धे युद्धान्येव भवन्ति। सवितर्यादित्ये कृष्णवर्णरेखा यदि मध्ये दृश्यते तदा नृपं राजानं सचिवो मन्त्री हन्ति घातयति। केचित्पठन्ति नृपं सचिवम्। नृपं सचिवं च हन्ति।

ध्वज विविध वस्त्रों से निर्मित प्रसिद्ध पताकाकृति को कहते हैं। चाप का तात्पर्य धनुष से है। इस ध्वज और धनुष की आकृति का सूर्य होने पर युद्ध होते हैं। सूर्य में कृष्णवर्ण की रेखा यदि मध्य में दिखलायी पड़े तो राजा को मन्त्री मारता है। कुछ लोगों के अनुसार यह पाठ है कि राजा और सचिव इन दोनों को मारता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

तथा च पराशरः —

विवर्णो भूमिवर्णो वा महाभयाय। श्यामो जनमरणाय। सुवर्णरजतपद्मनिभो विमलः स्निग्धो जनहिताय। धूम्राभो वृष्टिनिग्रहाय। ऊर्ध्वदण्डो जटिलः शस्त्रकोपव्याधिमृत्युकरः। महान् परिमण्डलः कुक्षिमान् विशालो घृतमण्डलनिभ, क्षेमारोग्यकरः। संक्षिप्तः क्षयाय। वज्राकारो दुर्भिक्षाय। सर्वतश्छिद्रो द्विधा वा दृश्यमानो मृत्युदेशं विनाशं वाऽऽचष्टे। शिरीषपुष्पसंकाशो वार्षुके निष्प्रभो जनमारकरः। घटसंस्थः क्षुत्कृत् ताम्रो रुधिराभो वा शस्त्रकोपकरः। खण्डच्छिद्रो भूपालविनाशाय च। पुण्ड्राकारः उलूकसंस्थानः उन्मादापस्मारकरः। विरश्मिर्व्याधिभयकृत्। छत्राकारो देशविपर्ययकरः। शकटाकारश्च

---

१. सचिवमिति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबन्धाकृतिर्महासङ्ग्रामकृत्। तोरणसंस्थानः पुरनाशाय। अवर्णः प्रजानाशाय। प्रतिरूपः स्त्रीभयकारी। परुषो वेपनः सस्यनाशनः। शरासनाकृतिर्ध्वजाभो वा सद्य आहवाय। विजयाकृतिर्गर्भविनाशी। परुषाकारो रुधिरप्रभोऽनेकनृपतिहस्तोत्पाटनकरः। कृष्णवर्णो जगतःक्षयाय। अपर्वण्युपरक्तः सर्वलोकविनाशाय। व्यामिश्रवर्णो यावत्प्रदृश्यते तावत्परस्परं नृपविनाशाय। कृष्णरुधिरपीतवर्णो जगत्क्षयकारी। वैदूर्यकृष्णवभ्रुवर्णः [1]पांशुवर्णोत्सादनकरः। मयूरचन्द्रिकाभो द्वादशवार्षिकीमनावृष्टिं धत्ते। एवमन्योन्यव्यामिश्रवर्णो युगान्तकारी भवतीति ॥ ३२॥

विवर्ण अर्थात् मिट्टी के वर्ण का (सूर्य) महाभयकारक होता है। कृष्णवर्ण का जनता के लिए मारक होता है। स्वर्ण, रजत, कमल के वर्ण का निर्मल सूर्य लोककल्याणकारक होता है। धूमाकृति का सूर्य वर्षा का अवरोध करता है। ऊर्ध्वदण्ड के समान, जटिल सूर्य शस्त्रकोप और व्याधि से मरण कराता है। विस्तृत बिम्बमण्डलवाला, कुक्षिमान्, विशाल घृतमण्डल के समान कल्याण तथा आरोग्य करने वाला होता है। संक्षिप्त (लघु) क्षयकारक, वज्र के आकार का दुर्भिक्षकारक, और सर्वथा छिद्रवान् अथवा दो भागों में दिखलायी पड़नेवाला मृत्युकारक होता है। शिरीषुपुष्प के समान प्रभारहित जनविघातक होता है। घटाकार का क्षुधाकारक, ताम्रवर्ण का शस्त्रकोपकारक और खण्डित भाग में छिद्रयुक्त राजविनाशकारक होता है। पुण्ड्राकार (रक्तिम इक्षुदण्ड के समान), उलूकसंस्थान अर्थात् उलूकाकृति का सूर्य उन्माद अर्थात् अपस्मारकारक होता है। रश्मिविहीन व्याधि का भयदायक, छत्राकार का देशपरिवर्तनकारक, और शकटाकृति का तथा कबन्ध (शिररहित धड़ भाग) के आकार का महायुद्धकारक होता है। तोरणाकृति का पुरनाशक, वर्णरहित प्रजानाशक और प्रतिस्पर्धी रूपवान् रविमण्डल स्त्रीभय उत्पन्न करता है। कर्कश और कम्पायमान सस्यों का नाशक होता है। धनुषाकृति अथवा ध्वजाकृति का रवि शीघ्र युद्धकारक होता है। विजयाकृति (हरीतकी के समान श्यामवर्ण) का सूर्य गर्भ का विनाश करता है। कर्कश आकार का, रक्तवर्ण के सदृश अनेक राजाओं का विधातक, कृष्णवर्ण का संसार का विनाशक, अपवर्ण अर्थात् किञ्चित् रक्तिम सभी लोकों का विनाशक, कृष्ण, रक्त, पीतवर्ण का संसार के लिए क्षयकारी, मूँगा, कृष्णवर्ण, भूरे रङ्ग का, धूलि के वर्ण का रवि विच्छेदकारी होता है। मयूरचन्द्रिका के वर्ण का सूर्य बारह वर्षों तक अनावृष्टि करता है। इस प्रकार इन विविध वर्णों से मिश्रित विविधवर्णी सूर्य प्रलयान्तकारी होता है ॥ ३२॥

---

१. पांशुवर्णाच्छादनकर इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यदप्याह :—

दिनकरमुदयास्तसंस्थितमुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः।
नरपतिमरणं विन्द्यात्तदाऽन्यराजप्रतिष्ठा च ॥३३॥

और भी कहते हैं :—

यदि उदयास्तकालिक सूर्यबिम्ब को उल्का, वज्र और विद्युत् प्रताड़ित करें तो राजा का मरण होता है और दूसरा राजा अभिषिक्त होता है। ॥३३॥

दिनकरमादित्यमुदयास्तसंस्थितमुदयरेखास्थमस्तस्थमपररेखास्थं वा यदा उल्का अशनिर्विद्युद्वा आसां लक्षणं वक्ष्यति। एता हन्युस्ताडयेयुस्तदा तस्मिन् काले नरपतेर्मरणं मृत्युम्। विन्द्याद्विजानीयात्। तथाऽन्यराजप्रतिष्ठा। अन्यस्य द्वितीयस्य राज्ञो नृपत्वे प्रतिष्ठा स्थितिस्तत्क्षणमेव भवति। तथा च पराशरः :—

सूर्य के उदयकाल में अथवा अस्तकाल में यदि उल्का वज्र (अशनि) अथवा विद्युत् का पतन हो अर्थात् ये जब रविमण्डल को ताड़ित करें, उस समय राजा की मृत्यु तथा दूसरे राजा की प्रतिष्ठा होती है। दूसरे राजा की तत्क्षण ही प्रतिष्ठा अर्थात् स्थिति (नियुक्ति) होती है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

उदयास्तमये भानुमुल्का हन्यात् समुत्थिता।
प्रज्वलन्ती तथा राजा क्षिप्रं शस्त्रेण बध्यते ॥इति॥३३॥

उदयास्त के समय जलती हुई उल्का उठकर सूर्य मण्डल को संपीडित करे तो शीघ्र ही राजा का शस्त्र द्वारा बध होता है। ॥३३॥

अन्यलक्षणमाह :—

प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा।
रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम् ॥३४॥

यदि सूर्य प्रतिदिन परिवेषयुक्त (परिमण्डलसहित) अथवा दोनों सन्ध्याओं में परिवेषयुक्त होता हो अथवा रक्तवर्ण का उदित होता हो और रक्तवर्ण का ही अस्त होता हो तो दूसरा राजा करता है। ॥३४॥

अहिमकिरण उष्णरश्मिः सूर्यः। प्रतिदिवसम्। दिवसं दिवसं प्रति प्रतिदिवसम्। परिवेषी मण्डलवान् भवति। अथवा द्वयोः सन्ध्ययोरुदयास्तमययोः परिवेषी भवति। अथवा रक्तवर्णोऽस्तमेत्यस्तं गच्छति रक्तवर्णश्चोदेति। एतदुक्तं भवति। यादृश एव लोहितवर्णस्तादृश एव सकलमहर्भूत्वा रक्तवर्ण एवास्तमेति। प्रतिदिवसं सर्वत्र संबध्यते तदा तस्मिन् प्रकारत्रये भूपं राजानमन्यं द्वितीयं करोति ॥३४॥

अहिमकिरण अर्थात् उष्णकिरणोंवाला सूर्य, प्रतिदिन परिवेषीय अर्थात् (चतुर्दिक् वृत्ताकार में) गोलमण्डलवाला होता है। अथवा उदय और अस्त की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों सन्ध्याओं में परिवेषी (मण्डलवान) होता है अथवा रक्तवर्ण का अस्त होता है और रक्तवर्ण का उदित होता है। तात्पर्य यह है कि जिस रक्तवर्ण का उदित होता है उसी वर्ण का सम्पूर्ण दिन रहता हुआ उसी रक्तवर्ण का अस्त भी होता है, तब अन्य कोई दूसरा राजा होता है। यहाँ पर प्रत्येक दिन का सम्बन्ध सभी जगह है, और इन तीनों ही प्रकारों में अन्य राजा होता है। और इन तीनों ही परिस्थितियों में अन्य राजा होता है। ॥३४॥

अर्कस्य सन्ध्याकाले शुभाशुभलक्षणमाह :–

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥ ३५॥

सन्ध्याकालिक सूर्य के शुभाशुभलक्षण :–

सूर्य यदि दोनों ही सन्ध्याओं में शस्त्रसदृश मेघों से आच्छादित होता है तो युद्धकारी होता है। मृग, महिष, पक्षी, गर्दभ, उष्ट्रतुल्य रूपवाले बादलों से आच्छादित होने पर भयदायक होता है। ॥३५॥

प्रहरणमायुधं खड्गादि। प्रहरणसदृशैरायुधाकृतिभिर्जलदैर्मेघैर्यदा सन्ध्याद्वये उदयास्तमयकाले स्थगित आच्छादितो भवति सूर्यस्तदा रणकारी सङ्ग्रामकृद्भवति। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते तेनैकस्यां सन्ध्यायां द्वितीयस्यां वेत्यर्थः। मृग अरण्यप्राणी। महिषः प्रसिद्धः। विहगः पक्षी। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। एषां सदृशरूपैस्तुल्याकारैर्यदा सन्ध्याद्वये स्थगितो भवति तदा भयदायी भयं भीतिं ददाति ॥ ३५॥

प्रहरण खड्गादि शस्त्र होते हैं। शस्त्र के आकारवाले मेघों से जब उदयास्तकालिक दोनों सन्ध्याओं में सूर्य आच्छादित होता है तो युद्धकारी होता है। 'अपि' शब्द संभावना अर्थ में है, जिससे एक ही सन्ध्या में अथवा दोनों ही सन्ध्याओं में वैकल्पिक विचार किया जा सकता है। वन्य-प्राणियों को मृग कहते हैं। महिष शब्द प्रसिद्ध है। विहग पक्षी होता है। खर गर्दभ और करभ ऊँट के लिए विहित है। इनके तुल्य आकारों से जब दोनों सन्ध्याओं में (सूर्यबिम्ब) आच्छादित होता है तब भय प्रदान करता है। ॥३५॥

अथार्काक्रान्तस्य नक्षत्रस्य सन्तापसंशोधने आह :–

दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम्।
भवति तु पश्चाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात् ॥ ३६॥

सूर्याक्रान्त नक्षत्र के संतापसंशोधन के सम्बन्ध में सूर्य की किरणों से अभितप्त होकर नक्षत्र अत्यधित पीड़ा को प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् वह उसी प्रकार शुद्ध हो जाती है, जिसप्रकार अग्नि के परिताप से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है ॥३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे दिनकरः सूर्यः स्थितस्तदृक्षं दिनकरकराभितापात्सूर्यरश्मिसन्तापात् सुमहतीं पीडामतिरुजमवाप्नोति लभते। तदेव सूर्यमृक्षं पश्चादनन्तरं शुद्धं निर्दोषं भवति। यथा कनकं सुवर्णं हुताशपरितापादग्निसन्तापेन शुद्धं निर्मलं भवति।

जिस नक्षत्र में सूर्य स्थित रहता है, वह नक्षत्र सूर्यकिरणों के सन्ताप से अधिक पीड़ा को प्राप्त होता है। वही नक्षत्र तत्पश्चात् (सूर्यमुक्त होकर) निर्दोष हो जाता है, जिस प्रकार कि स्वर्ण अग्नि के सन्ताप से शुद्ध और निर्मल होता है।

तथा च पराशरः—

ग्रहोपसृष्टं नक्षत्रं सवितुर्योगमागतम्।
विशोधयति तत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम्॥

इसी प्रकार पराशर ने भी कहा है:—

ग्रहों द्वारा संयुक्त नक्षत्र सूर्य के साथ योग प्राप्तकर उस दोष को उसीप्रकार विशोधित कर लेता है, जिसप्रकार अग्नि से सुवर्ण विशोधित हो जाता है।

तथा च वृद्धगर्गः—

यथाग्निना प्रज्वलिते गृहे तप्यन्त्यदूरिणः।
तथार्कस्याप्यदूरस्थमृक्षं तदपि तप्यते॥इति॥३६॥

इसीप्रकार वृद्ध गर्ग ने कहा है:—

जिस प्रकार अग्नि से प्रज्ज्वलित गृह में समीपस्थ वस्तुएँ परितप्त होती हैं उसी प्रकार सूर्य के समीपवर्ती नक्षत्र परितप्त होते हैं। ॥३५॥

अथ प्रति[1]सूर्यलक्षणमाह:—

दिवसकृतः प्रतिसूर्य्यो जलकृदुदग् दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा॥३७॥

प्रतिसूर्य का लक्षण कहते हैं:—

सूर्य का प्रतिसूर्य उत्तर दिशा में स्थित होने पर जलकारक, दक्षिणदिशा में वायुकारक, दोनों दिशाओं में जलभीतिप्रदायक होता है। ऊपर के भाग में (प्रतिसूर्य) होने पर राजा के लिए और अधोभाग में जनता के लिए हानिकारक होता है। ॥३७॥

दिवसकृत इति। उदयात्प्रभृति दिनप्रहरैकं यावत्तनुघनोऽर्कसमीपे यदा भवति तदार्करश्मिवशात्तत्र द्वितीयोऽर्क इव लक्ष्यते स प्रतिसूर्य उच्यते। एवमस्तमयेऽपि सम्भवति दिवसकृतः स प्रतिसूर्यः। आदित्यस्योदगुत्तरे यदा प्रतिसूर्यो दृश्यते तदा जलकृज्जलं पानीयं

---

१. प्रतिसूर्यफलमाहेति पाठः साधुः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करोति [1]पर्जन्यवृष्टिर्भवति। दक्षिणस्थोऽर्कस्य वातकरो भवति। उभयस्थ उत्तरदक्षिणभागयोर्द्वयोरपि स्थितः सलिलभयं जलभीतिं करोति। तस्यैवार्कस्योपरि स्थितः प्रतिसूर्यो नृपं राजानं हन्ति घातयति। अधः स्थितः प्रतिसूर्यो जनहा जनान् हन्ति॥३७॥

सूर्योदय से प्रारम्भ कर दिन के एक प्रहर तक विरल बादल जब सूर्य के समीप होता है, तब सूर्य की किरणों से द्वितीय सूर्य की तरह जो बिम्ब दिखलायी पड़ता है, वह प्रतिसूर्य कहा जाता है। इसी प्रकार अस्तकाल में भी यह प्रतिसूर्य उत्पन्न होता है। सूर्य के उत्तर दिशा में जब प्रतिसूर्य दृग्गोचर होता है, तब जल प्रदान करता है, अर्थात् सुवृष्टि होती है। सूर्य के दक्षिणभाग में होने पर वायुकारक होता है। दक्षिणोत्तर दोनों में स्थित होने पर जल का भय करता है। इसी प्रकार सूर्यबिम्ब के ऊपरी भाग में स्थित प्रतिसूर्य राजा का विधात करता है। अधोभाग में स्थित प्रतिसूर्य लोगों का हनन करता है। ॥३७॥

अन्यदप्याह :—

रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो न चिरात्।
परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत्॥
असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः।
खगमृगभैरवस्वररुतैश्च निशाद्युमुखे॥३८॥

और भी कहते हैं :—

यदि सूर्य रक्तवर्ण का आकाश में दिखायी पड़ता है तो शीघ्र ही राजा का अन्त होता है। अथवा कठोर धूलिकणों से रक्तमण्डलवाला रविबिम्ब होने पर भी उक्त फल प्रदान करता है। कृष्णवर्ण विचित्र, नील और कर्कश (रूक्ष) कणों से रक्तिम सूर्य जनविघातक होता है। जब पक्षी, मृग के भयङ्कर शब्दों से युक्त सायंकाल हो, तब भी लोगों का विघात होता है। ॥३८॥

दिनकृदादित्यो वियत्याकाशेऽकस्मादेव रुधिरनिभो रक्तवर्णो यदा दृश्यते तदा न चिरात् शीघ्रमेवाऽवनिपस्य राज्ञोऽन्तकरो मृत्युकृद्भवति। वियद्ग्रहणमत्रोदयास्तमयौ विहायान्यत्र ग्रहणार्थम्। परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा। परुषेण रुक्षेण रजसा पांशुनारुणीकृता लोहिता तनुर्मूर्तिर्यस्य तथाभूतोऽप्यवनिपातकरः शीघ्रमेव भवति। असितः कृष्णः। विचित्रो नानावर्णः। नीलो नीलवर्णः। परुषो रुक्षः। एवम्विधोऽर्को जनघातकरः। जनानां लोकानां घातं करोति। खगाः पक्षिणो मृगा आरण्यजातयः। एतेषां भैरवा भीषणा ये स्वराः शब्दास्तैर्यानि रुतानि तैर्यदा निशामुखेऽस्तमये द्युमुखे उदये च युक्तो भवति तदापि जनघातं करोति॥३८॥

---

१. वर्षतीत्यर्थः। अथ दक्षिणे तस्यैवार्कस्य स्थितो भवति तदाऽनिलकृद्घातं करोति इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब सूर्य आकाश में अकस्मात् ही रक्तिमवर्ण का दिखायी पड़े, तब शीघ्र ही राजा के लिए अन्तकारक अर्थात् मृत्युदायक होता है। यहाँ पर "वियत्" शब्द का ग्रहण-उदयास्तकालिक सूर्य को छोड़कर एतद्भिन्न समय में फल का प्रयोजन विहित है। परुष अर्थात् रूक्ष धूलिकणों से रक्तबिम्बवान् होने पर शीघ्र ही राजा का अन्तकारी होता है। असित काले वर्ण को तथा विचित्र विविधवर्णों को कहा जाता है। नीलवर्ण का और रूक्ष सूर्य जनघातक होता है। अर्थात् लोक-जनों का घात करता है। खग पक्षी होते हैं और जङ्गली जीवों को मृग कहते हैं। इनके भैरव आर्थात् भीषण (भयङ्कर) जो शब्द, उनसे उत्पन्न ध्वनि यदि निशामुख अर्थात् अस्तकाल में और द्युमुख अर्थात् उदयकाल में होती है, तो लोगों का घात (विनाश) होता है। ॥३८॥

अथ शुभलक्षणमाह :-

अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः।
अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः॥३९॥

अब शुभलक्षण कहते हैं :-

स्वच्छ तथा स्पष्ट बिम्बवाला विस्तृत, निर्मल, दीर्घ स्फुट किरणोंसहित, विकाररहित वर्णों से युक्त सूर्य संसार में कल्याण करता है। ॥३९॥

अमलवपुरिति। एवम्विधो दिवाकरः सूर्यो जगति जनानां शिवं श्रेयः करोति। कीदृशोऽमलवपुर्निर्मलशरीरः। अवक्रमण्डलः स्पष्टबिम्बः।

इस प्रकार का सूर्य संसार में लोगों के लिए श्रेय प्रदान करता है। किस प्रकार का ? अमलवपु अर्थात् निर्मल शरीरवाला। अवक्रमण्डल अर्थात् स्पष्ट बिम्बवाला जैसाकि पराशर ने कहा है :-

तथा च पराशरः-

श्वेतः शिरीषपुष्पाभः पद्माभो रूप्यसन्निभः।
वैदूर्यघृतमण्डाभो हेमाभश्च दिवाकरः॥
वर्णैरेभिः प्रशस्तः स्यान्महास्निग्धः प्रतापवान्।
भावनः सर्वसस्यानां क्षेमारोग्यसुभिक्षदः॥

श्वेतवर्ण का शिरीषपुष्प के समान, कमल की कान्ति के सदृश रजततुल्य, मूँगा, घृत, मण्ड (एरण्ड) की छविवाला और सुवर्ण सदृश सूर्य इन वर्णों से प्रशस्त, प्रतापवान् और अतिस्निग्ध होकर सभी सस्यों के लिए क्षेम कारक तथा आरोग्य और सुभिक्षदायक होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः। स्फुटाः स्पष्टाः। विपुला विस्तीर्णाः। अमला निर्मलाः। दीर्घा आयामिनो रश्मयो यस्य। तथा च पराशरः—

स्फुट अर्थात् स्पष्ट, विपुल अर्थात् विस्तृत, अमल अर्थात् निर्मल और दीर्घ अर्थात् लम्बायमान जिस (सूर्य) की किरणें हों।

स्निग्धाः परिपूर्णाः शुक्ला माञ्जिष्ठाः पीता अत्यन्तगामिनो रश्मयः शस्यन्ते। रुक्षा अविच्छिन्नास्तनवो ह्रस्वा धूमाभा लोहितवर्णा विगर्हिता इति। अविकृततनुवर्णचिह्नभृत्। अविकृता निर्विकारा तनुर्मूर्त्तिस्तथाऽविकृतो वर्णः कान्तिः। अविकृतं चिह्नं लक्ष्म। एतान्यविकृतानि बिभर्ति धारयति तथाभूत इति॥३९॥

जैसाकि पराशर ने कहा है:—

चिकनी, परिपूर्ण, श्वेत, मजीठे के रङ्ग की, तथा पीतवर्ण की तीव्रगामी किरणें प्रशस्त होती हैं। रूखा, सघन, लघु धूम्रवर्ण और लाल वर्ण की किरणें निन्दित होती हैं। विकाररहित मूर्तिवाला, स्पष्ट कान्तिमान्, विकाररहित चिन्हों से युक्त; इन लक्षणों को धारण करनेवाला शुभ होता है॥३९॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहितायां विवृतावादित्यचारो नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृतिमें आदित्यचार नामक तृतीय अध्याय॥३॥

*

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अथ चन्द्रचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव रवेरुपरि चन्द्रमसमिच्छन्ति, तान् प्रत्याह:—

अब चन्द्रचार की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। प्रारम्भ में सूर्य के ऊपर चन्द्रमा की परिकल्पना करते हुए कहते हैं:—

[1]नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धम्।
स्वच्छाययाऽन्यदसितं कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य॥१॥

सूर्य की किरणों से सर्वदा अधोभाग में स्थित चन्द्रबिम्ब का अर्धभाग श्वेत होता है। उसकी अपनी छाया से अन्य भाग (विपरीत दिशा का) कृष्ण होता है। जिस प्रकार धूप में स्थित कुम्भ का (अर्धभाग प्रकाशमान शेष अप्रकाशित) होता है। ॥१॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाः १३ अध्यायेऽपीदं पद्यमपलभ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्दोश्चन्द्रस्य भानोरादित्यादधस्थस्य भानवीभिर्भाभिः सूर्यरश्मिभिर्नित्यं सर्वकालमेकमर्द्धदलं सितं शुक्लं भवति। यस्मिन् गोलकभागेऽर्करश्मयः पतन्ति तदेवार्द्धं शुक्लं भवति। अन्यद्द्वितीयमर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं नित्यमेव भवति। कथम् उच्यते – कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य। कुम्भस्य यस्मिन्नर्द्धे रश्मयः पतन्ति तदर्द्धं शुक्लं दृश्यते। अन्यदर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं दृश्यते। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

सूर्य के अधःस्थित चन्द्र का सूर्यकिरणों से सर्वकाल में आधा भाग शुक्ल होता है। चन्द्रगोल के जिस भाग में सूर्यकिरणें पड़ती हैं, वही अर्धभाग शुक्ल होता है। अन्य दूसरा अर्धभाग स्वकीय छाया से नित्य ही कृष्ण होता है। धूप में स्थित घड़े की उपमा दी गयी है। घड़े के जिस आधे भाग में किरणें पड़ती हैं, वह आधा भाग शुक्ल दिखायी पड़ता है। दूसरा आधा भाग स्वछाया से कृष्ण दिखायी पड़ता है। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

रविदृष्टं सितमर्द्धं कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य।
कुम्भस्य तथासन्नं रवेरधःस्थस्य चन्द्रस्य॥

रवि से दृष्ट आधाभाग शुक्ल तथा अदृष्टभाग कृष्ण होता है। जिस प्रकार धूप में स्थित घड़े का आधा भाग शुक्ल तथा आधा भाग कृष्ण होता है, उसी प्रकार सूर्य के आसन्न अधोभाग स्थित चन्द्रमा का भी होता है।

तथा च सूर्यसिद्धान्ते :–

[2]महतश्चाप्यधःस्थस्य नित्यं भासयते रविः।
अर्द्धं शशाङ्कबिम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन॥ इति॥१॥

इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्त में भी कहा गया है :–

सूर्य नित्य ही अधःस्थित वृहत् चन्द्रबिम्ब का आधा भाग प्रकाशित करता है, अपर द्वितीय भाग कथमपि प्रकाशित नहीं होता। ॥१॥

नन्विन्दुप्रकाशकोपलम्भात् स्वच्छाययान्यदसितमित्यस्य प्रत्यक्षबाधां मन्यमान आह :–

[3]सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः॥२॥

जलमय चन्द्रबिम्ब में सूर्य की किरणें परावर्तित होकर रात्रि के अन्धकार का नाश करती हैं, जिस प्रकार दर्पणतल से परावर्तित किरणें भवन के भीतर प्रकाश करती हैं। ॥२॥

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।
२. सम्प्रति प्रचलितसूर्यसिद्धान्ते नोपलभ्यत इदं पद्यम्।
३. पञ्चसिद्धान्तिकायाः १३ अध्यायेऽपीदं पद्यमुपलभ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शशिनि चन्द्रमसि सलिलमयेऽम्बुमये रवेरादित्यस्य संबन्धिन्यो दीधितयो रश्मयो मूर्छितास्तत्र संलग्नाः प्रतिफलिता नैशं निशाभवं रात्र्युत्पन्नं तमोऽन्धकारं क्षपयन्ति नाशयन्ति। यथा दर्पणोदरे आदर्शमध्ये द्वाग्रप्रवेशे गृहस्य सूर्यरश्मयो निहिताः संरुद्धा मन्दिरस्य गृहस्यान्तर्मध्ये तमः क्षपयन्ति तथेति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते :–

जलमय चन्द्र में सूर्य-सम्बन्धी किरणें मूर्छित अर्थात् संलग्न होकर प्रतिफलित होती हुई रात्रि में उत्पन्न अन्धकार का नाश करती हैं, जिस प्रकार दर्पणतल के मध्य गृहद्वार में प्रविष्ट सूर्य की किरणें संलग्न होकर गृह के भीतर मध्यभाग में अन्धकार को दूर करती हैं। इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है–

'तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिताः॥

सूर्य तेजोमय एक गोलपिण्ड है और ग्रह-नक्षत्र जलमय गोल पिण्ड होते हैं। ये सूर्यकिरणों से प्रकाशित होकर प्रकाशमय दिखायी पड़ते हैं।

तथा चाऽऽर्यभटः–

भूग्रहभानां गोलार्द्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्द्धानि यथा सार्द्धं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते॥ इति॥ २॥

जैसाकि आर्यभट्ट ने कहा है :–

पृथ्वी, ग्रह एवं नक्षत्रों के गोलपिण्ड अपनी ही छाया से आधे अन्धकारमय होते हैं और उनके आधे अर्धभाग जो सूर्याभिमुख होते हैं वे प्रकाशित होते हैं॥२॥

अथ शशिनः पश्चिमदिग्भागात्तितवृद्धिः किमुपलभ्यते ? तदर्थमाह :–

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम्।
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः॥ ३॥

अब चन्द्रमा के पश्चिमभाग से शुक्लता की वृद्धि का कारण कहते हैं :–

रविबिम्ब के अधस्तल का त्याग करते हुए चन्द्रमा का शुक्लत्व जिस प्रकार क्रमशः पश्चिमभाग में अवलम्बित होता है, उसी प्रकार उदित भाग चन्द्रमा का रविकिरणों के सम्पर्क से प्रकाशमान होता है। ॥३॥

शशिनश्चन्द्रमसोऽर्कतलं सूर्याधोभागं त्यजतो यथा येन प्रकारेण पश्चात्पश्चिमायां दिशि शौक्ल्यं शुक्लत्वमवलम्बते आक्रमते। तथा तेनैव प्रकारेणेन्दोश्चन्द्रस्य दिनकरवशात्सूर्यहितोरधः प्रभृति बुध्नभागादारभ्योदयः प्रकाशते विराजते इति। एतदुक्तं

---

१. सम्प्रति प्रचलितसूर्यसिद्धान्ते नोपलभ्यत इदं पद्यम्। परन्तु सिद्धान्ततत्त्वविवेकबिम्बाधिकारे कमलाकरेणापि न्यासीदम्। तत्र प्रदीपिता इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति। रवेरधोभागस्थश्चन्द्रमा अमावास्यान्ते भवति तत्र च तस्य चन्द्रलोकस्य सूर्याभिमुखं गोलार्द्धं शुक्लं भवति। अधःस्थितमवनिदृश्यभागं कृष्णवर्णं भवति। ततः प्रतिपदादिषु तिथिषु यथा-यथा स्वभागतुल्येनार्कात्प्राङ्मुखः शीघ्रगतित्वाद्याति तथा तथा दृष्टिवर्तिनं सितमधोभागेऽवलम्बते। तथा च सूर्यसिद्धान्ते :–

चन्द्रमा सूर्यतल को छोड़ते हुए जिस प्रकार पश्चिमदिशा में शुक्लता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार चन्द्र का सूर्य किरणों के कारण अधोभाग प्रकाशयुक्त उदित होता है। यहाँ पर कहने का तात्पर्य यह है कि अमावस्या की तिथि के अन्तिम भाग में चन्द्रमा सूर्य के अधोभाग में होता है, उस समय वहाँ चन्द्रलोक का सूर्याभिमुख गोलार्ध शुक्ल होता है। अधःस्थित पृथ्वी द्वारा दृष्ट भाग कृष्णवर्ण का होता है। तत्पश्चात् प्रतिपदादि तिथियों में जैसे-जैसे सूर्य से स्वगति तुल्य चन्द्रमा शीघ्रगति होने के कारण पूर्वाभिमुख जाता है वैसे-वैसे दिखलायी देनेवाली शुक्लता अधोभाग में अवलम्बित प्रतीत होती है। जैसाकि सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है :–

[1]विप्रकर्षं यथा याति ह्यधःस्थश्चन्द्रमा रवेः।
तथातथाऽस्य भूदृश्यमंशं भासयते रवेः॥ इति॥३॥

जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य के अधः स्थित होता हुआ गति करता है, उसी प्रकार सूर्यकिरणों के प्रकाश से इसका पृथ्वी से दृश्यमान भाग प्रकाशित होता है। ॥३॥

प्रतिदिनं कथं चन्द्रगोले शुक्लवृद्धिर्भवति तदर्थमाह :–

प्रतिदिन चन्द्रगोल में शुक्लता की वृद्धि कैसे होती है यह बतलाते हैं :–

प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः।
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव॥४॥

प्रत्येक दिन ही सूर्य से विशेष क्रम में अन्तरित होते हुए चन्द्रमा की शुक्लता की अभिवृद्धि होती है, जिस प्रकार अपराह्णकाल में किसी घट के पश्चिम भाग में प्रकाश की वृद्धि होती है। ॥४॥

एवमनेन प्रकारेण शशिनश्चन्द्रस्यार्कादादित्यात् स्थानविशेषेण स्थानान्तरगमनेन शौक्ल्यस्य शुक्लभावस्य परिवृद्धिर्वृद्धिरधिकतरा भवति। यथायथाग्रतो राशिभोगवशेन याति तथातथा तस्य शुक्लाधिक्यं भवति। यथाऽपराह्णे द्वितीये दिनार्द्धे पश्चाद्भागे पश्चिमार्द्धे घटस्य कुम्भस्याऽऽतपस्थस्य शुक्लता भवति तथेति। एतदुक्तं भवति। यथा चन्द्रः प्राङ्मुखो राशिवशेन याति तथातथा शौक्ल्यपरिवृद्धिर्भवति। यावच्छुक्राष्टम्यर्द्धे राशिचयान्तरितस्यार्द्धशुक्लता भवति। पौर्णमास्यन्ते षड्राश्यन्तरितस्य सर्वशुक्लता भवति। ततो यथायथाऽर्कसन्निकर्षमायाति

१. सम्प्रति प्रचलितसूर्यसिद्धान्ते नोपलभ्यत इदं पद्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथातथा शौक्ल्यहानिर्भवति। यावत्कृष्णाष्टम्यर्द्धे कृष्णार्द्धता भवति। अमावास्यान्ते सर्वकृष्णता भवतीति॥४॥

इस प्रकार से चन्द्रमा के सूर्य से स्थानान्तरित गतिशील होते हुए शुक्लता की अधिकतर वृद्धि होती है। राशि का भोग करता हुआ जैसे-जैसे आगे जाता है वैसे-वैसे उसकी शुक्लता में वृद्धि होती है। जिस प्रकार दिन के दूसरे भाग अपराह्न में स्थित घड़े के पश्चिमभाग में शुक्लता होती है। तात्पर्य यह है कि राशि का भोग करता हुआ चन्द्रमा पूर्वाभिमुख गमन करता है, उसी क्रम से शुक्लता की वृद्धि होती है। शुक्लपक्ष की अष्टमी तक की राशि के अन्तर को प्राप्त चन्द्रबिम्ब का अर्धभाग शुक्ल होता है। पूर्णिमा के अन्त में छः राशियों से अन्तरित चन्द्रमा पूर्ण शुक्ल होता है। तत्पश्चात् जैसे-जैसे सूर्य के समीप आता है, वैसे-वैसे शुक्लता न्यून होती जाती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी के आने पर अर्धकृष्ण हो जाता है। अमावस्या के अन्त में पूर्ण कृष्णता हो जाती है। ॥४॥

अथ चन्द्रस्य नक्षत्रगमनेन शुभाशुभत्वमाह :—

ऐन्द्रस्य शीतकिरणो मूलाषाढाद्वयस्य चायातः।
याम्येन बीजजलचरकाननहा वह्निभयदश्च॥५॥

नक्षत्रानुसार चन्द्रगति का शुभाशुभत्व कहते हैं :—

चन्द्रमा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा नक्षत्र के दक्षिणभाग से गमन करता हुआ बीज, जल-जन्तु और वनों का विनाशक होता है तथा अग्निभय प्रदान करता है। ॥५॥

ऐन्द्रं ज्येष्ठा। मूलं नैर्ऋतम्। आषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे। शीतकिरणश्चन्द्रमा ऐन्द्रस्य मूलाषाढाद्वयस्य च याम्येन दक्षिणेन यदा यातो गतस्तदा बीजानि यान्युप्यन्ते। जलचरा जलप्राणिनः। काननानि वनानि च। हन्ति नाशयति। तथा वह्निभयदश्चाग्निभयदो भवति। अथदिवोत्तरणगतः शोभनः। ततो [1]वक्ष्यति :—

शीतकिरण अर्थात् चन्द्रमा ज्येष्ठा (ऐन्द्र), मूल, दोनों आषाढ के दक्षिण से जब जाता है, तब बीज, जलप्राणी, वन इनका विनाश करता है तथा अग्निभयदायक होता है। अर्थात् इनको पार करने के बाद शुभ होता है। जैसाकि कहा गया है :—

[2]भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिणं तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः॥ इति॥५॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाः १३ अध्यायेऽपीदं पद्यमुपलभ्यते।
२. बृहत्संहितायाम् १८ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रह अथवा नक्षत्रों के यथासंभव उत्तरभाग से जाता हुआ चन्द्रमा प्रदक्षिणक्रम से शुभदायक होता है तथा दक्षिणभाग से जाता हुआ चन्द्रमा राजा के लिए कल्याणकारी नहीं होता है। ॥५॥

अन्येषामप्याह :–

दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी विशाखाऽनुराधयोः पापः।
मध्येन तु प्रशस्तः पितृदेवविशाखयोश्चापि ॥ ६॥

अन्य नक्षत्रों के सम्बन्ध में भी कहा है :–

चन्द्रमा के विशाखा और अनुराधानक्षत्र के दक्षिणभाग से जाने पर अशुभफल होता है। मघा और विशाखा नक्षत्र के मध्य से जाने पर शुभ फल होता है। ॥६॥

विशाखाऽनुराधे प्रसिद्धे नक्षत्रे। अनयोः शशी चन्द्रो दक्षिणपार्श्वेन याम्यभागेन गतो यातः। पापः पापफलदोऽनिष्टदो भवति। अर्थादुत्तरेण शुभः। पितृदेवो मघा। विशाखा प्रसिद्धा। अनयोर्द्वयोर्मध्येनान्तरेण चन्द्रमा गतः प्रशस्तः। शुभफलदः। अपिशब्दो विशेषं द्योतयति, तेन मघाविशाखयोरुत्तरेणापि गतश्चन्द्रः शुभफलदः। तथा च समाससंहितायाम् :–

विशाखा और अनुराधा ये दोनों प्रसिद्ध नक्षत्र हैं। इन दोनों के दक्षिणभाग से जाता हुआ चन्द्रमा अनिष्टफलदायक होता है। अर्थात् उत्तरभाग से शुभदायक होता है। पितृदेव मघानक्षत्र है, विशाखा सुप्रसिद्ध है। इन दोनों के मध्य से चन्द्रमा के जाने पर शुभफल प्राप्त होता है। यहाँ पर 'अपि' शब्द विशेषतया बोध कराता है कि मघा एवं विशाखा नक्षत्र के उत्तरभाग से जाता हुआ चन्द्रमा शुभफलदायक होता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

भवति विशाखाद्यानां षण्णां याम्येन पापदश्चन्द्रः।
उदगिष्टः सर्वेषां पित्र्येशविशाखयोश्चान्तः॥

विशाखानक्षत्र से छः नक्षत्रों तक दक्षिणभाग से जाता हुआ चन्द्रमा पापफल-दायक होता है। उत्तरभाग से जाता हुआ सर्वत्र शुभफलदायक होता है। मघा, आर्द्रा, विशाखा के मध्य से जाता हुआ सबके लिए इष्टफलदायक होता है।

तथा च पराशरः –

अथ मार्गेष्वाग्नेयादुत्तरोऽतिवर्षकरो मित्रसावित्राभ्यां प्रजाहितकारी। ज्येष्ठाग्नेयमैत्रत्वाष्ट्राणां दक्षिणतश्चरन् पुष्कलाशुभदः। उपरिष्टाद्वैरोधिको धान्यविनाशी। अधो यवसम्पत्करः। मघाऽनुराधाभ्यां मध्येन गमनमतिशोभनम्। शिशिरग्रीष्मयोर्दक्षिणे च शुभदो वर्षास्ववर्षकरः सर्वर्तुषु नैर्ऋतेऽपि विश्वदेवानां चेति॥ ६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा कि पराशर ने कहा है :–

चन्द्रमा मृगशिरा एवं कृत्तिका के उत्तरभाग से जाने पर अतिवृष्टिकारी होता है। यहाँ पर आर्द्रानक्षत्र में प्रजाहितकारी होता है। ज्येष्ठा, कृत्तिका, अनुराधा, चित्रा इन नक्षत्रों के दक्षिणभाग में विचरण करता हुआ चन्द्रमा अधिक अशुभफलदायी होता है। ऊंपरी भाग में धान्य का विनाश करता है, अधोभाग मैं जौ की वृद्धि करता है। मघा और अनुराधा नक्षत्र के मध्य से गतिशील हो तो अधिक शुभफलदायक है। शिशिर और ग्रीष्मऋतु में दक्षिणभाग में शुभदायक, वर्षाऋतु में अनावृष्टिकारक, अन्य सभी ऋतुओं में नैऋत्य भाग का चन्द्रमा विश्वदेव के लिए शुभफलदायक है ॥६॥

अथ चन्द्रमसो नक्षत्रयोगमाह :–

षडनागतानि पौष्णाद् द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि।
ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ॥७॥

अब चन्द्रनक्षत्रयोग कहते हैं :–

रेवती से छः नक्षत्र अप्राप्त होकर चन्द्रमा से संयोग करते हैं तथा आर्द्रा से बारह नक्षत्रों का चन्द्रमा से मध्य संयोग होता है। ज्येष्ठा से नौ नक्षत्र अतिक्रान्त होकर चन्द्रमा के साथ संयोग करते हैं। ॥७॥

पौष्णं रेवती तस्मात्प्रभृति षट् नक्षत्राणि रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिराश्चेत्येतानि षट् नक्षत्राणि षट्संख्यानि ऋक्षाणि। उडुपतिना चन्द्रेण सहानागतान्यप्राप्तानि। युज्यन्ते सयोगं यान्ति। यथोत्तरभाद्रपदस्थस्य चन्द्रमसो रेवत्या सह संयोगो दृश्यते। रेवतीसंस्थितस्य अश्विन्या सहैवमन्येषाम्। रौद्रमार्द्रा तस्मात्प्रभृति द्वादशनक्षत्राणि। आर्द्रपुनर्वसुतिष्याश्लेषामघापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधा इति। एतान्युडुपतिना मध्ययोगीनि युज्यन्ते। चन्द्रमा यत्र काले एषां मध्यप्राप्तो भवति। अर्द्धभोगं भुक्त इत्यर्थः। यथा आर्द्रायां स्थितः सन् चन्द्र आर्द्रया सह संयोगं याति, एवमंन्येषामपि ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाणि। ज्येष्ठाद्यानि ज्येष्ठात्प्रभृति नवनक्षत्राणि ज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठाशतभिषक्पूर्वभाद्रपदोत्तराभाद्रपदेत्येतान्युडुपतिना चन्द्रेणातीत्यातिक्रम्य युज्यन्ते। यथा मूलस्थस्य चन्द्रमसो ज्येष्ठया सह संयोगो दृश्यते पूर्वाषाढास्थस्य मूलेनैवमन्येषामपि। एतदुक्तं भवति :– गर्गादिभिः कानिचिन्नक्षत्राण्यर्द्धभोगीन्युक्तानि, कानिचिदध्यर्द्धभोगीनि, कानिचित्समभोगीनि। यान्यर्द्धभोगीनि तान्यतीत्य युज्यन्ते। यान्यध्यर्द्धभोगीनि तान्येवानागतानि। यानि समभोगीनि तानि मध्यभोगीनि युज्यन्ते। तथा च गर्गः–

पौष्णनक्षत्र रेवती को कहा जाता है। इस रेवती नक्षत्र से छः नक्षत्र रेवती, अश्विनी, भरणी कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा, इनका चन्द्रमा के साथ बिना प्राप्त (भोग) हुए ही संयोग होता है। जैसाकि उत्तरभाद्रपदनक्षत्र में स्थित चन्द्रमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का रेवती के साथ संयोग देखा जाता है। रेवती में स्थित चन्द्र का अश्विनी के साथ और इसी प्रकार शेष अन्य भी नक्षत्रों के साथ संयोग होता है। रौद्र आर्द्रानक्षत्र को कहा जाता है। इस आर्द्रानक्षत्र से बारह नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा इन नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ मध्य (केन्द्रीय) संयोग होता है। अर्थात् इन नक्षत्रों का आधा भाग भुक्त होने पर संयोग होता है। जैसाकि आर्द्रा में स्थित चन्द्रमा आर्द्रा के साथ संयोग करता है, इसी प्रकार अन्य भी नक्षत्रों के साथ मध्यसंयोग होता है। ज्येष्ठादि नौ नक्षत्र ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा इन नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ अतिक्रान्त हो जाने पर संयोग होता है। जैसा कि मूल में स्थित चन्द्रमा का ज्येष्ठा के साथ संयोग देखा जाता है तथा पूर्वाषाढा में स्थित चन्द्र का मूल के साथ और अन्य नक्षत्रों का भी इसी प्रकार संयोग होता है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि गर्गादि मुनियों के द्वारा कुछ नक्षत्र अर्धभोगी, कुछ नक्षत्र अर्ध्यर्ध (चतुर्थांश) भोगी और कुछ नक्षत्र समभोगी कहे गये हैं। जो अर्धभोगी नक्षत्र हैं, वे अतिक्रान्त होकर योग करते हैं। जो नक्षत्र अर्धभोगी होते हैं, वे अप्राप्त हुए ही योग करते हैं। जो नक्षत्र समभोगी होते हैं वे मध्य-भोग पर योग करते हैं।

उत्तराश्च तथादित्यं विशाखा चैव रोहिणी।
एतानि षडध्यर्द्धभोगीनि महाक्षेत्राणि।
मघाश्विकृत्तिकासोमतिष्यपित्र्यभगाह्वयाः ।
सावित्रचित्राऽनूराधा मूलं तोयं च वैष्णवम्।
धनिष्ठा चैकपाच्चैव समभागः प्रकीर्तितः।
एतानि पञ्चदश समभोगीनि मध्यक्षेत्राणि।
याम्येन्द्ररुद्रवायव्यसार्पवारुणसंज्ञिताः ।
एतानि षडर्द्धभोगीनि स्वल्पक्षेत्राणि।

जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, विशाखा, रोहिणी; ये छः नक्षत्र अध्यर्धभोगी होते हैं। मघा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मूल, शतभिषा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपद; ये नक्षत्र समभोगी कहे गये हैं। ये पन्द्रह नक्षत्र मध्यक्षेत्रवाले समभोगी कहे गये हैं। भरणी, ज्येष्ठा, आर्द्रा, स्वाती, आश्लेषा, शतभिषा; ये छः नक्षत्र अल्पक्षेत्री और अर्धभोगी कहे गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नन्वाचार्येणान्यथोक्तानि तान्यन्यथा स्थितानि। उच्यते :– आचार्येणातिगोलज्ञतया यष्टियन्त्रेण देवदर्शनदृक्समान्युक्तानि। अथ किम्प्रमाणमध्यर्द्धभोगिनां कि वार्द्धभोगिनां किञ्च समभोगिनामिति। उच्यते :– चन्द्रमध्यमभुक्तिरध्यर्द्धगुणा अध्यर्द्धभोगिनां प्रमाणमर्द्धगुणा अर्द्धभोगिनामेकगुणा समभोगिनामिति। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

यहाँ पर आचार्य के द्वारा जो नक्षत्र अन्यथा कहे गये हैं, वे अन्यथाक्रम से ही स्थित हैं। आचार्य के द्वारा विशिष्ट गोल-ज्ञान होने के कारण यष्टियन्त्र के द्वारा दिव्यदृष्टि के सदृश कहे गये हैं, यह कहा जाता है। अध्यर्धभोगी नक्षत्रों का अथवा अर्धभोगी नक्षत्रों का और समभोगी नक्षत्रों का क्या प्रमाण होता है ? इस सम्बन्ध में कहते है कि :– चन्द्रमध्यमगति का अध्यर्द्धगुणा, अध्यर्द्धभोगीनक्षत्रों का प्रमाण तथा अर्द्धगुणा, अर्द्धभोगी नक्षत्रों का प्रमाण और एक गुणा, समभोगी नक्षत्रों का होता है। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

केशादित्यविशाखाप्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि ।
षट् षड् ज्येष्ठाभरणीस्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः॥
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽऽभिजिदुक्तमृक्षभोगोऽन्यः।
तन्मानं नाक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥
अध्यर्द्धार्द्धसमक्षेत्राणां मध्यगतिलिप्तिकाः शशिनः।
अध्यर्द्धार्द्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योनाः॥
मण्डललिप्ताः शेषा भोगोऽभिजितः॥७॥

शतभिषा, पुनर्वसु, विशाखा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा; ये छः नक्षत्र तथा ज्येष्ठा, भरणी, स्वाती, आर्द्रा, शतभिषा, आश्लेषा और इनके अतिरिक्त शेष पन्द्रह नक्षत्र तथा अभिजित् नक्षत्र का भोग तथा उनका मान अल्पज्ञानियों के लिए दुरधिगम्य रहता है। अध्यर्द्ध, अर्द्ध और समक्षेत्रों के चन्द्र की मध्यमगति-कलाएँ अध्यर्द्ध, अर्द्ध और एकगुणित क्रमशः होती हैं। भभोगकलाओं को एकपादरहित कर, शेष मान अभिजित् का भोग होता है। ॥७॥

अथ चन्द्रमसः संस्थानानि दश भवन्ति। तद्यथाः– नौर्लाङ्गलं दुष्टलाङ्गलं समो दण्डः कार्मुकं युगं पार्श्वशाय्यावर्जितं कुण्डाख्यमिति।

चन्द्रमा के दस संस्थान होते हैं। यथा :– नौ, लाङ्गल, दुष्टलाङ्गल, सम, दण्ड, कार्मुक, युग, पार्श्वशायी, आवर्जित और कुण्डसंज्ञक होते हैं।

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र नौसंस्थानस्य लक्षणं फलं चाह :–

उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता।
नाविकपीडा तस्मिन् भवति शिवं सर्वलोकस्य॥८॥

नौसंस्थान का लक्षण और और फल कहते हैं :–

किञ्चित् ऊँचा और विस्तीर्ण चन्द्र-श्रृङ्ग को नौसंस्थान कहते हैं। इस स्थिति में नाविकजनों को कष्ट होता है, और अन्य सभी लोगों का कल्याण होता है। ॥८॥

ईषच्छृङ्गम्। ईषत्किञ्चिदुन्नतमुच्चं शृङ्गं यस्य। तथा विशालता विस्तीर्णता च भवति। तन्नौसंस्थानम्। तस्मिन्नौसंस्थाने नाविकानां नौकर्णधारिणां पीडोक्ता कथिता। तथा च सर्वलोकस्य समस्तजनस्य च शिवं श्रेयो भवति॥८॥

किञ्चित् उच्चशृङ्ग को ईषत् उन्नत कहते हैं। इस प्रकार की विशालता अर्थात् विस्तीर्णता जब होती है, तब उसको नौसंस्थान कहते हैं। इस नौसंस्थान में नाविकों को पीड़ा होती है। और अन्य शेष लोगों का कल्याण होता है। ॥८॥

अथ लाङ्गलसंस्थानं सफलमाह :–

अर्द्धोन्नते च लाङ्गलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन्।
प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च॥९॥

लाङ्गलसंस्थान और उसका फल :–

चन्द्रशृङ्ग आधा उन्नत होने पर लाङ्गल कहा जाता है। इसमें लाङ्गल (हल) से आजीविका करनेवालों (कृषक) का कष्ट बढ़ जाता है, राजाओं में अकारण ही परस्पर प्रीति बढ़ जाती है, और सुन्दर वर्षा होती है॥९॥

शशिनि उच्छृङ्गे चोत्तरे अर्द्धोन्नते लाङ्गलमिति हलनाम तत्स्थानम्। तस्मिन् संस्थाने तदुपजीविनां लाङ्गलोपजीविनां पीडा भवति। तथा मनुजपतीनां राज्ञां निर्निमित्तं कारणं विना प्रीतिः स्नेहो भवति। लोके शिवं श्रेयः सुभिक्षं च भवति। तथा च वृद्धगर्गः–

चन्द्रमा के उत्तरदिशा का श्रृङ्ग आर्द्धोन्नत होने पर लाङ्गल अर्थात् हलसंज्ञा होती है। इस संस्थान में उससे आजीविका करने वाले अर्थात् हलोपजीवी लोगों को कष्ट होता है। साथ ही राजाओं में बिना कारण ही परस्पर स्नेह होता है। लोक में कल्याण, श्रेय और सुभिक्ष होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

यदा सोमः प्रतिपदि नौस्थायी सम्प्रदृश्यते।
उत्तरोज्जवलशृङ्गो वा लाङ्गली च मनोहरः॥
क्षेमं सुभियमारोग्यं सर्वभूतेषु निर्दिशेत्।
राज्ञां च विजयं ब्रूयाद् वर्द्धन्ते शृङ्गिणस्तथा॥इति॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि चन्द्रमा प्रतिपदा में नौसंस्थानगत दृष्ट हो अथवा उत्तरदिशा का श्रृङ्ग उज्ज्वल हो, सुन्दर दिखायी पड़े तो उसे लाङ्गली कहते हैं। इसमें सभी प्राणियों के लिए कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष होता है। इसमें राजाओं की विजय और सींगवाले पशुओं की वृद्धि होती है ॥९॥

अथ दुष्टलाङ्गलसंस्थानं सफलमाह :—

दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलाङ्गलाख्यं तत्।
पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृदुद्योगकरं बलानां च ॥१०॥

दुष्टलाङ्गलसंस्थान और उसका फल :—

दक्षिणश्रृङ्ग का आधाभाग जब उन्नत हो, तो उसे दुष्टलाङ्गल कहते हैं। इस संस्थान में पाण्ड्य-नृप का निधन होता है और सेना का उपक्रम बढ़ता है। ॥१०॥

दक्षिणविषाणं याम्यशृङ्गं यदाऽर्द्धोन्नतं भवति तदा दुष्टलाङ्गलं नाम तत्संस्थानम्। तच्च पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृत् पाण्ड्यदेशे योऽसौ नरेश्वरो राजा तस्य निधनं मरणं करोति। तथा बलानां सैन्यानामुद्योगकरं सेनानामुद्योगम् उद्यमं करोति यात्रायाम्।

दक्षिणश्रृङ्ग जब आधा ऊँचा होता है, तब दुष्टलाङ्गल नामक संस्थान कहा जाता है। यह संस्थान पाण्ड्य-राजा के लिए मरणकारक होता है और सेना के लिए उद्यमकारक अर्थात् यात्राकारक होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

तथा च वृद्धगर्गः—

दक्षिणे च भवेत् स्थूलं हीनं शृङ्गमथोत्तरम्।
दुष्टलाङ्गलसंज्ञं तत्प्रजाक्षयकरं स्मृतम् ॥ इति ॥१०॥

दक्षिणदिशा में जब श्रृङ्ग स्थूल हो और उत्तरश्रृङ्ग होता हो, तब दुष्टलाङ्गल-संज्ञक होता है और यह जनता के लिए क्षयकारी कहा गया है। ॥१०॥

अथ समदण्डसंस्थानमाह :—

समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः।
दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥११॥

जब चन्द्रश्रृङ्ग समतुल्य हो तो सुभिक्ष, कल्याण, सुवृष्टि होती है। प्रतिपदा तिथि के तुल्य सुभिक्षादि मासपर्यन्त रहता है। दण्डाकार में श्रृङ्ग के उदित होने पर गायों को कष्ट होता है, और राजा दण्डात्मक कार्यों में कठोर हो जाता है ॥११॥

समशशिनि तुल्यशृङ्गे चन्द्रे। प्रथमदिवससदृशाः प्रथमं दिनं प्रतिपत्तत्सदृशास्तत्तुल्याः सुभिक्षक्षेमवृष्टयः स्युर्भवेयुः। प्रतिपद्दिने यादृशः सुभिक्षो यादृशः क्षेमो यादृशी वृष्टिस्तादृशा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एव मासं यावत् स्युर्भवेयुः। दण्डवदुदिते दण्डाकारे। गवां पीडा भवति। तथात्रास्मिन् संस्थाने राजा नृप उग्रदण्डस्तीक्ष्णकरो भवति।

चन्द्रमा के तुल्य श्रृङ्ग होने पर प्रथम दिवस, अर्थात् प्रतिपदा तिथि के सदृश ही सुभिक्ष, क्षेम एवं वर्षा होती है। प्रतिपदा के दिन जिस प्रकार, का सुभिक्ष, जिस प्रकार का क्षेम (कल्याण) और जिस प्रकार की वर्षा होती है, उसी प्रकार मासपर्यन्त स्थिति रहती है। दण्डाकार यदि श्रृङ्ग उदित हो, तो गायों को पीड़ा होती है। इस प्रकार के संस्थान में राजा उग्रदण्डी अर्थात् कठोर, क्रूरकर्मकरनेवाला होता है।

तथा च वृद्धगर्गः—

समशृङ्गो यदा दृष्टः शशी क्षेमसुभिक्षकृत्।
प्रतिपत्सदृशं तत्र वासवो वर्षते तदा॥
चन्द्ररेखा यदा चोर्ध्वमृज्वी दण्ड इव स्थिता।
उदक्शृङ्गाधिकसमो दण्डस्थानं तदुच्यते॥
उद्युक्तदण्डा राजानो विनिघ्नन्ति समन्ततः।
गवां पीडां विजानीयाद्दण्डस्थाने यदा शशी॥ इति॥ ११॥

जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

जब चन्द्रमा समान श्रृङ्गवाला दिखलायी पड़े तो क्षेम और सुभिक्षकारक होता है। वहाँ पर प्रतिपदा के समान ही मासपर्यन्त वर्षा होती है।

चन्द्रश्रृङ्ग जब उन्नत सरल दण्ड के सदृश हो और उत्तरश्रृङ्ग अधिक उन्नत हो, तो दण्डस्थान कहते हैं। यह उक्त उन्नत दण्ड चारो तरफ से राजाओं को विघ्न पहुँचाता है। इस प्रकार दण्डसंस्थान में स्थित चन्द्रमा गायों के लिए पीड़ा-कारक होता है॥ ११॥

अथ कार्मुकयुगसंस्थानयोर्लक्षणं फलं चाह :—

कार्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम्।
स्थानं युगमिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय॥ १२॥

कार्मुकयुगसंस्थान का लक्षण एवं फल :—

धनुषाकार चन्द्रश्रृङ्ग होने पर युद्ध होते है; और उसकी ज्या की दिशावाले राजाओं की जय होती है। दक्षिणोत्तर विस्तृत श्रृङ्ग को युगसंस्थान कहा जाता है। इस युगसंस्थान में भूकम्प होता है। ॥१२॥

कार्मुकं धनुस्तद्रूपे तदाकारे संस्थाने। युद्धानि संग्रामा भवन्ति। यत्र तु ज्या यस्मिन् भागे गुणस्तत्र तस्यां दिशि ये स्थिता राजानस्तेषां जयो भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनुषाकृति को कार्मुकसंस्थान कहा जाता है। इसमें युद्ध अर्थात् सङ्ग्राम होते हैं। जिस दिशा में ज्या अर्थात् धनुष की जीवा (रज्जु) होती है, उस दिशा के राजा की विजय होती है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

उदये तु यदा सोमं पश्येद्धनुरिवोदितम्।
धनुर्द्धराणामुद्योगो जगद्युद्धकरो भवेत्॥
क्षत्रियाः क्षत्रियान् घ्नन्ति वर्णाश्चैव तथापरे।
अग्रतश्च जयस्तेषां पृष्ठतश्च पराजयः॥

उदयकालिक चन्द्रमा जब धनुषाकार दृष्ट हो, तो धनुर्धरों का कार्य बढ़ता है, तथा संसार के लिए युद्धकारक होता है। क्षत्रिय क्षत्रियों को मारते हैं, तथा अन्य वर्ण दूसरे वर्णों को मारते हैं। प्रथमतया तो उनकी जय होती है, और पश्चात् पराजय होती है। दक्षिणोत्तर विस्तृत और बीच में मण्डलाकृति को युग नामक संस्थान कहते हैं। यह भूकम्पकारक होता है।

स्थानं युगमिति। तत्स्थानं याम्योत्तरायतं दक्षिणसौम्यभागविस्तीर्णं मध्यमं मण्डलं यदि भवति तद्युगं नाम। तच्च भूमिकम्पाय भवति। एतदुक्तं भवति :– एवंविधे संस्थाने तन्मासमध्ये भूमिकम्पो वक्तव्यः। तथा च वृद्धगर्ग :–

तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के संस्थान में उस मास के मध्य भूकम्प कहना चाहिए। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

चन्द्ररेखा यदा व्यक्ता दक्षिणोत्तरमायता।
शुक्लादौ प्रतिपद्येत तद्यो'गस्थानलक्षणम्॥
सैन्योद्योगा भवन्त्यत्र भूमिकम्पश्च जायते॥ इति॥ १२॥

जब चन्द्रशृङ्ग दक्षिणोत्तर विस्तृत शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में प्रतिपदा तिथि को हो, तो यह योगस्थान का लक्षण है। इस संस्थान में सेना का उपक्रम होता है और भूकम्प उत्पन्न होता है। ॥१२॥

अथ पार्श्वशायिनः संस्थानं फलं चाह :–

युगमेव याम्यकोट्यां किञ्चित्तुङ्गं स पार्श्वशायीति।
विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात्॥ १३॥

अब पार्श्वशायीसंस्थान का लक्षण और फल कहते हैं :–

युगसंस्थान में दक्षिणकोटि (शृङ्ग) किञ्चित् उन्नत हो, तो यह पार्श्वशायी है। यह संस्थान सार्थवाहों का विनाश करता है और इसमें वर्षा का अभाव होता है। ॥१३॥

१. युगस्वानस्य लक्षणमिति अ० कु पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युगमेव युगसंस्थानं याम्यकोट्यां दक्षिणशृङ्गाग्रे किञ्चिदीषत्तुङ्गमुच्चं यदि भवति तदा स पार्श्वशायीति चन्द्रः। पार्श्वशायीति तत्संज्ञा। स च सार्थवाहान् सार्थप्रधानान् विनिहन्ति घातयति। तथा वृष्टेर्वर्षणस्य च विनिग्रहं विनाशमभावं कुर्यात्। न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

याम्यकोट्यायतः किञ्चिद्युगकाले यदा शशी।
पार्श्वशायीति संज्ञोऽयं सार्थहा वृष्टिनाशनः॥इति॥१३॥

युगसंस्थान में दक्षिणशृङ्ग का अग्रभाग किञ्चित् उच्च हो, तो इस स्थिति में चन्द्रमा पार्श्वशायी होता है। इसकी संज्ञा पार्श्वशायी है, और यह सार्थवाहों (प्रमुख व्यापारियों) का विघात करता है। इस प्रकार के योग में वर्षा का विनाश अर्थात् अभाव होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :— दक्षिण शृङ्ग में विस्तृत युगसंस्थानाश्रयी चन्द्रमा जब हो तो उसकी पार्श्वशायी संज्ञा होती है। यह सार्थवाहों और वृष्टि का विनाशक होता है। ॥१३॥

अथाऽऽवर्जितलक्षणं सफलमाह :—

अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनोऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम्।
आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद् गोधनस्यापि॥१४॥

जब उन्नत श्रृङ्गों में से चन्द्रमा का एक श्रृङ्ग अधोमुखी होता है, तब उसको आवर्जितसंस्थान कहा जाता है। यह दुर्भिक्षकारक और पशुधन का विनाशक होता है। ॥१४॥

आभिमुख्येनोच्छ्रायोऽभ्युच्छ्रायस्तस्मादभ्युच्छ्रायाच्छशिनश्चन्द्रस्य यद्येकशृङ्गमवाङ्मुखमधोमुखं भवति तत्संस्थानमावर्जितं नाम। इतिशब्दः प्रकारायैवं प्रकाराय इत्यर्थः। तदसुभिक्षकारि दुर्भिक्षकारि दुर्भिक्षं करोति लोके। न केवलं यावद् गोधनस्यापि तृणानामभावादपि दुर्भिक्षं करोति। तथा च वृद्धगर्गः—

सम्मुख उन्नत चन्द्र का यदि एक श्रृङ्ग अधोमुख हो, तो उसका नाम आवर्जितसंस्थान है। यहाँ पर 'इति' शब्द प्रकारान्तर के लिए है। वह असुभिक्षकारी अर्थात् दुर्भिक्षकारी होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

अधोमुखं यदा शृङ्गं शशिनो दृश्यते तदा।
संस्थानमावर्जितकं गोध्नं दुर्भिक्षकारकम्॥इति॥१४॥

जब चन्द्रमा का श्रृङ्ग अधोमुख दिखलायी पड़ता है, तब उसे आवर्जित-संस्थान कहा जाता है। यह दुर्भिक्षकारक और गायों के लिए घातक होता है। ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ कुण्डाख्यसंस्थाने लक्षणं फलं चाह :–

अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम् ।
अस्मिन् माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥ १५॥

अब कुण्डसंस्थान का लक्षण और फल कहते हैं :–

चन्द्रमण्डल के चतुर्दिक जब खण्डित रेखाएँ दिखायी पड़ती हों, तब कुण्डसंज्ञा होती है। इस कुण्डसंस्थान में माण्डलिक राजाओं का स्थान-त्याग होता है ॥१५॥

समन्ततः सर्वत्र यद्यव्युच्छिन्ना रेखा खण्डरेखा चन्द्रमसो दृश्यते तदा तत्स्थानं कुण्डाख्यं कुण्डमित्याख्या नाम यस्य। अस्मिन् संस्थाने माण्डलिकानां नरपतीनाम्। मण्डले परिमिते देशे ये राजानस्तेषां स्थानत्यागः स्थानचलनं भवति, स्वस्थानाच्च्युतिरित्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः–

जब चन्द्रमा की रेखा सर्वत्र खण्डित दिखायी पड़ती है, तब उसे कुण्डनामक संस्थान कहते हैं। इस संस्थान में माण्डलिक राजाओं आर्थत् परिमित देश में जो राजा राज करते हैं, उनका स्थान-त्याग होता है। अर्थात् स्वस्थान से उनकी च्युति होती है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

अच्छिन्ना मण्डले रेखा शशिनो दृश्यते यदा।
कुण्डाख्यं नाम संस्थानं नृपविग्रहदायकम् ॥

चन्द्रमण्डल में जब खण्डित रेखाएँ दिखलायी पड़ती हैं, तब कुण्ड नामक संस्थान होता है, जो राजाओं में विग्रह-प्रदायक होता है।

नक्षत्रचन्द्रमसोर्यानि संस्थानान्युक्तानि तेषां कानिचिद् गणितविधिना शृङ्गोन्नतिपरिलेखकरणेनोत्पद्यन्ते कानिचिन्नोत्पद्यन्ते। तथा चाऽऽचार्येणोक्तम् :–

नक्षत्र और चन्द्रमा के जो संस्थान कहे गये हैं, उनमें कुछ गणितविधि से शृङ्गोन्नति– परिलेख के द्वारा उपपत्ति होती है, और कुछ संस्थानों में उपपत्ति नहीं होती। जैसाकि आचार्य ने कहा है :–

अ'पमान्तरसंयुक्तात्तदूनगुणिताच्छशाङ्करविविवरात् ।
मूलेनापमविवरे छिन्ने विक्षेपसंगुणिते ॥
फलमिन्द्वर्कविशेषाच्छोध्यं त्वपमानुकूलविक्षिप्ते ।
तद्व्यत्यासे देयं विपरीतं पूर्वसन्ध्यायाम् ॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ५ अध्यायस्य १-१० श्लोकाः। तत्र १० श्लोके "निशि दिवसेऽस्तं शशी याति" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिनकृत्सप्तमभवनात्तेनोदयनाडिकाद्वयं यदि वा।
वियति विमले तदेन्दोर्लोकस्याऽऽलोकमायाति॥
द्विगुणेच्छातिथ्यंशः शृङ्गमुदक्तुङ्गमुडुगणाधिपतेः।
देयं च भूजादेतच्छौक्ल्यं कर्णाद् द्विषट्कांशम्॥
अपमान्तरविक्षेपावैकान्यत्वे युतोनितौ कोटिः।
कर्णो रवीन्दुविवरं तत्कृतिविवरात् पदं बाहुः॥
सविता यतः शशाङ्कात् कोट्या परिकल्पितस्ततः कोटिः।
देयांशकार्गुलसमा भुजकर्णौ चाङ्गुलैरेव॥
शशिमध्यात् प्राक्कर्णः कोटिरतोऽतो भुजः शशाङ्कगतः।
परिधावक्षो नाम शौक्ल्यं मध्याद्धनुस्तत्र॥
याम्योदग्विक्षेपाद्विषुवत्याघ्नाद्रविभिरवाप्तांशः ।
उदये शशिनो वृद्धिः क्षयो विपर्यस्तमय एवम्॥
एवं व्यर्काच्चन्द्राद्यद्यूना राशयः षडधिका वा।
तदुदयकालेन दिवा निशि च शशाङ्कोदयो वाच्यः॥
कृत्वैवं क्षयवृद्धी व्यर्कं चन्द्रं विशोध्य चक्रार्द्धात्।
शेषोदयकालसमे शशिदिवसार्द्धे शशी मध्ये॥

सूर्य और चन्द्रमा का अन्तर इन दोनों के क्रान्त्यन्तर से एक स्थान पर घटा कर तथा दूसरे स्थान पर जोड़कर रख दे। पुनः इन (युक्त तथा अन्तरित) का परस्पर गुणा कर गुणनफल का जो वर्गमूल प्राप्त हो, उससे क्रान्त्यन्तर में भाग देकर चन्द्र-शर से गुणा करें। यदि चन्द्रशर क्रान्त्यन्तर की दिशा का हो, शर तथा क्रान्ति एक दिशा में हो, तो प्राप्त फल को रवि-चन्द्रान्तरसे घटा दें, अन्यथा जोड़ दें। यह क्रिया सायं संध्या में होगी। यदि प्रातः सन्ध्या में करना हो, तो इसके विपरीत—जहाँ पर फल घटाते हैं, वहाँ पर जोड़ दें और जहाँ जोड़ते हैं, वहाँ पर घटाना चाहिए। यह संस्कृत रविचन्द्रान्तर जो कि चापात्मक है, सूर्य की सप्तम राशि में दो घटी तक उदित होता है, तब निर्मल आकाश में चन्द्रमा का स्पष्ट दर्शन लोगों को प्राप्त होता है।

यदि चन्द्रमा का उत्तरशृङ्ग उन्नत हो, तो द्विगुणित मनोरथ की पूर्ति होती है, तथा अतिथियों का अंश (आतिथ्यलाभ) प्राप्त होता है। कर्ण के मान से द्विषट्क अर्थात् १२ अंश भुजमान में संस्कारित करने पर शुक्लाङ्गुल होता है।

यदि क्रान्त्यन्तर और शर एक दिशा में हों, तो जोड़ने से तथा भिन्न दिशा में हों, तो घटाने से परिलेख की कोटि होती है। सूर्या और चन्द्रमा का अन्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वसाधित कर्ण होता है। इन दोनों का वर्गान्तर कर मूल लेने पर भुज होता है [कर्ण२ – कोटि२ =भुज२]। चन्द्र तथा कोटि से जिस दिशा में रवि स्थित होता है, वहाँ से उसी दिशा में पूर्वसाधित अंश तुल्य अङ्गुलमान से कोटि रखते हैं। भुज और कर्ण भी अङ्गुलात्मक ही रखते हैं। चन्द्र केन्द्र से पूर्वसाधित कर्ण होता है। अतएव उसी कर्ण से कोटि भी होती है। इस कोटि से भुज भी चन्द्रकेन्द्रगत होता है। चन्द्र-बिम्ब परिधि में भुज ही अक्षसंज्ञक होता है। इस अक्ष से ही नत और उन्नत ज्ञात होता है। चन्द्रकेन्द्र से जो कर्ण होता है, वहीं पर शुक्लमान दिया जाता है। वह धनुषाकार चन्द्र की आकृति बतलाता है। दक्षिण अथवा उत्तरशर पलभा से गुणा कर १२ से भाग देने पर भजनफल अंश होता हैं। इन अंशों को उदय- कालिक चन्द्र में दक्षिणशर होने पर जोड़ते हैं तथा उत्तरशर होने पर घटाते हैं। इस प्रकार अक्ष-दृक्कर्मसंस्कृत चन्द्र हो जाता है। अस्तकाल में इसके विपरीत संस्कार से अक्षजदृक्कर्म-संस्कृत चन्द्र होता है। चन्द्रमा में से सूर्य घटाकर जो राश्यादि हो, वह छः राशि से न्यून हो तो दिन में चन्द्रोदय और छः राशि से अधिक हो, तो रात्रि में चन्द्रोदय कहना चाहिए। इस प्रकार पूर्ववत् ऋण और धन करें। अर्थात् अक्षजदृक्कर्म-संस्कृत चन्द्र लाकर उससे रविचन्द्रान्तर कर छः राशि में घटा कर शेष राशि जितने समय में उदित होती है, उतने ही समय में चन्द्रमा अस्त होगा। अर्थात् सूर्योदय के उतने समय के पश्चात् चन्द्रास्त होगा। यदि दिन में चन्द्रास्त है, तब रविचन्द्रान्तर छः में से घटा दें। रात्रि में तो चन्द्रमा ही छः राशि में से घटाया जायेगा, इस क्रम को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

टिप्पणी :– यहाँ पर कदम्बप्रोतीय और ध्रुवप्रोतीय शर एक समान ही मानकर आयन दृक्कर्म छोड़कर केवल अक्षजदृक्कर्म ही लाया गया है।

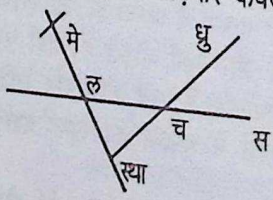

जैसा कि इस चित्र में क्रान्तिवृत्त खण्ड मे ल में, मे = मेषादि, स्था = चन्द्रस्थान, स्था च = ध्रुवप्रोत में चन्द्रशर, च = चन्द्रबिम्ब, स च ल = क्षितिजवृत्त, च = चन्द्रोदयकालिक क्षितिज-स्थक्रान्तिवृत्तलग्नचन्द्र, यह आक्षदृक्कर्म-संस्कृत चन्द्रस्थान है, जिसको जानने हेतु आचार्य ने स्वल्पान्तर से स्थ, ल, च जात्यत्रिभुज में ल च स्था = अक्षांशकोण, स्था ल च = कोटि कोण कल्पित किया है। इसी क्षेत्र में आचार्योक्त सूत्रानुसार चन्द्रोदय और चन्द्रास्त का ज्ञान सिद्ध होता है।

एवमत्र तानि नोत्पद्यन्ते किमर्थमाचार्येण फलमुक्तम्। उच्यते :– यानि नोत्पद्यन्ते परिलेखविधौ तान्युत्पातरूपाणि कदाचिद्दृश्यन्ते यतस्तेषां भगवद्गर्गादिविरचितशास्त्रेषु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलानि दृश्यन्ते, तानि चाऽऽचार्येण पूर्वशास्त्राऽऽचारेणोक्तानीति। पराशरतन्त्रेऽष्टौ संस्थानान्युक्तानि। तथा च पराशरः—

इस प्रकार वे जो उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर किस कारण आचार्य ने फल कहा है ? इस सम्बन्ध में कहते हैं :—

जो परिलेखविधि से नहीं उत्पन्न होते हैं, वे उत्पातरूपक होते हैं और यदा-कदा दिखायी पड़ जाते हैं। अतः भगवान् गर्गादि के विरचित शास्त्रों में इनके फल बतलाये गये हैं, अतः पूर्वशास्त्रों के कथनानुसार ही आचार्य ने उनका फल कहा है। पराशरतन्त्र में आठ संस्थान कहे गये हैं। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

तत्राऽष्टौ संस्थानानि भवन्ति। तद्यथा :— लाङ्गलं नौर्दुष्टलाङ्गलं दण्डो धनुर्युगं समम्बवाक्शिरः। तत्रैषामीषदुन्नतोत्तरशृङ्गं लाङ्गलसंस्थानं तत्र सुभिक्षक्षेमवृष्टिकारणान्युत्पद्यन्ते। उभयशृङ्गः कुक्षिमान्विशालो नौस्थायी फलतः समः। पूर्वेण दक्षिणोन्नतशृङ्गो दुष्टलाङ्गलं परसैन्योद्योगनाशकृत्। दण्डवद्दण्डस्थायी दण्डकृत्प्रजानाम्। धनुष्प्रख्यो धनुःस्थायी स धनुर्द्धरोद्योगकृद्यतोऽस्य ज्या ततो विजयः। यद्युदगायता दक्षिणेन चास्य लेखा भवति, तद्युगसंस्थानमिच्छन्ति जगद्विद्रवभूकम्पाय। समोभयशृङ्गः समसंस्थानं महाभयकृत्। शस्त्रसारभयदोऽवाक्शिराः। अथैतानि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयायां वा लक्ष्याणि भवन्ति।

आठ संस्थान होते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

लाङ्गल, नौ, दुष्टलाङ्गल, दण्ड, धनु, युग, सम और अवाक्शिर। इनमें से कुछ उन्नत उत्तर— श्रृङ्ग को लाङ्गलसंस्थान कहते हैं। वहाँ पर सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती हैं। उभयश्रृङ्ग जब कुक्षिमान और विशाल हो; तब नौ है, जो स्थायी होता है, जिसका फल समानताकारक है। पूर्व और दक्षिण से उन्नत श्रृङ्ग को दुष्टलाङ्गल कहते हैं, जो शत्रु-सेना के उद्योग का विनाश करता है। दण्डाकार श्रृङ्ग को दण्डस्थायी कहते हैं, जो प्रजा के लिए दण्डकारक होता है। धनुष के समान श्रृङ्ग को धनुस्थायी कहा गया है, वह धनुर्धरों के उपक्रम का कारक होता है तथा जिस दिशा में इसकी ज्या होती है, उस दिशा के लिए विजयकारक है। यदि दक्षिणोत्तर में विस्तृत होता है, तो उसको युगसंस्थान कहा जाता है, जो संसार के लिए उपद्रव और भूकम्पकारक होता है। दोनों श्रृङ्ग समान होने पर समसंस्थान कहा जाता है, जो महाभयकारक है। अवाक्शिरा (अधोमुख) हो तो शस्त्रप्रहार से भयकारक होता है। ये लक्षण शुक्लपक्ष की प्रतिपदा अथवा द्वितीया में होते हैं।

तथा च समाससंहितायाम् :—

उदगुन्नतः शुभफलः समः समो दक्षिणोन्नतो न शुभः।
युद्धानि चापरूपे ज्यास्य यतस्ते नृपा जयिनः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाविकपीडा नौवल्लाङ्गलवत्संस्थिते कृषिकराणाम्।
दण्डाऽवाङ्मुखसङ्कटजर्जरपीठाकृतिर्न शुभः॥
उत्पाता व्याख्याता येऽर्के चन्द्रेऽपि ते विनिर्देश्याः।
शुक्ले भवन्ति सौम्याः कृष्णेऽधिकपापफलदास्ते॥इति॥१५॥

जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

उत्तरभाग में उन्नत चन्द्रशृङ्ग शुभफलदायक, समशृङ्ग सामान्यफलदायक और दक्षिण में उन्नतशृङ्ग अशुभ होता है। धनुषाकृति का चन्द्रशृङ्ग युद्धकारक होता है और जीवा की दिशा (धनुष की डोरी) में स्थित राजा की जीत होती है। नौका के समान होने पर नाविकों को पीड़ा, हल के समान होने पर कृषकों को कष्ट, दण्डाकार अधोमुख होने पर घोर सङ्कट तथा जीर्ण-शीर्ण बिखरी हुई किरणों से अशुभ होता है। सूर्य के निमित्त जो-जो उत्पात कहे गये हैं, चन्द्रमा में भी उन उत्पातों का निर्देश करना चाहिए। शुक्लपक्ष में ये उत्पात सौम्य (साधारण शुभ) फलदायक होते हैं, और कृष्णपक्ष में ये अधिक अशुभदायक होते हैं॥१५॥

अथ समान्यलक्षणमाह :–

प्रोक्तस्थानाभावादुदगुच्चः क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः।
दक्षिणतुङ्गश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः॥१६॥

सामान्य लक्षण कहते हैं :–

पूर्व कहे गये लक्षणों के न होने पर सामान्यतया उत्तरभाग में उच्चशृङ्ग कल्याणवर्धक और वृष्टिकारक तथा दक्षिणभाग में उच्चशृङ्ग दुर्भिक्षकारक समझना चाहिए। ॥१६॥

प्रोक्तानि कथितानि यानि संस्थानानि तेषामभावादसम्भवाद्यदुदगुच्च उत्तरोन्नतश्चन्द्रमास्तदा क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः। लब्धपालनं क्षेमस्तञ्च करोति। वृद्धयः सस्यवृद्धयो, वृष्टिर्वर्षणं च करोतीति।

पूर्व कहे गये जो संस्थान हैं, उनके अभाव में उत्तरभागोन्नत चन्द्रमा क्षेमवृद्धिकारक और वृष्टिकारक होता है। लब्ध वस्तु के परिपालन को क्षेम कहा जाता है। सस्यों की वृद्धि से वृद्धि शब्द का तात्पर्य है। यह वर्षाकारक होता है।

अथ दक्षिणतुङ्गो याम्योन्नतो भवति दक्षिणविषाणोन्नतस्तदा दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः कथितः। दुर्भिक्षभयं च करोति॥१६॥

चन्द्रमा का दक्षिणशृङ्ग जब उन्नत होता है, तब दुर्भियकारक भय का निर्देश किया गया है, और निश्चित ही इसमें दुर्भिक्ष होता है। ॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यदप्याह :–

शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीनमथवाऽप्यवाङ्मुखं शृङ्गम्।
सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रंश्येत् ॥१७॥

एक श्रृङ्गवाले चन्द्रमा अथवा गलितश्रृङ्गवाले चन्द्रमा अथवा अधोमुखश्रृङ्गवाले चन्द्रमा, जो सम्पूर्ण रूप से नवीन हो, ऐसे चन्द्र को देखनेवाला व्यक्ति जीवित नहीं रहता ॥१७॥

एवंविधमिन्दुं चन्द्रं दृष्ट्वा विलोक्यैको मनुजो जीवितादायुषो भ्रंश्येत् पतेत्। य एवैकः पश्यति स म्रियत इत्यर्थः। कीदृशम् ? एकेन शृङ्गेणोपलक्षितम्। अथवा विलीनं गलितमिवैकेन शृङ्गेण। अपिशब्दो विकल्पनार्थः। अथवाऽवाङ्मुखमधोमुखं शृङ्गं चास्य भवति। तथा सम्पूर्णं परिपूर्णमभिनवमभि मुख्येन नवम्। चशब्दः समुच्चये। अथवाऽऽभिमुख्येन नवं द्वितीयचन्द्रमेवंविधं पश्यति। तथा च समाससंहितायाम् :–

इस प्रकार के चन्द्र को देखकर द्रष्टा व्यक्ति अपनी आयु से च्युत हो जाता है। जो व्यक्ति देखता है वह मरता है, यही इसका भावार्थ है। किस प्रकार का चन्द्रमा, इसका लक्षण बतलाते हैं– एक श्रृङ्ग का लक्षणवाला। अथवा एक श्रृङ्ग गलित हो। यहाँ पर 'अपि' शब्द विकल्प के लिए अभीष्ट है। अथवा ऐसे चन्द्र का श्रृङ्ग अधोमुख हो। इस प्रकार सम्पूर्ण नवीन रूप में दिखायी पड़े। 'च' शब्द समुच्चयबोधक है। अथवा प्रमुख रूप से नवीन प्रकार का द्वितीया का चन्द्र इस प्रकार दिखायी पड़ता हो। जैसा कि समाससंहिता में कहा गया है :–

उदयन्तमप्यसदृशं न शुभं बहुरूपताथवैकस्य।
एकश्चन्द्रविकारं यः पश्येन्न स चिरं जीवेत् ॥ इति ॥१७॥

उदयकालिक चन्द्र विषम शुभ नहीं होता है। अथवा चन्द्राकृति में बहुरूपता हो, तो भी शुभ नहीं होता है। वह व्यक्ति जो चन्द्रमा में विकृति का दर्शन करे, वह बहु काल तक जीवित नहीं रहता है। ॥१७॥

अथ चन्द्रमसो रूपाण्याह :–

संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद् भवन्ति चन्द्रमसः।
स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान् सुभिक्षावहः प्रोक्तः ॥१८॥

अब चन्द्रमा के विविध रूपों को कहते हैं :–

संस्थानविधि का इसके पूर्व वर्णन किया जा चुका है। अब चन्द्रमा के रूपों को बतलाया जाता है। स्वल्प चन्द्रमा दुर्भिक्षकारक और विस्तृत चन्द्रमा सुभिक्षप्रदायक होता है। ॥१८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः सम्भ्रमाय राज्ञां च।
चन्द्रो मृदङ्गरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति॥१९॥

मध्यम आकृतिवाला चन्द्र वज्रसंज्ञक क्षुधाभयदायक होता है और राजा के लिए भ्रमकारक होता है। मृदङ्ग के समान चन्द्रमा कल्याण और सुभिक्षदायक होता है। ॥१९॥

ज्ञेयो विशालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चन्द्रः।
स्थूलः सुभिक्षकारी प्रियधान्यकरस्तु तनुमूर्तिः॥२०॥

विशालमूर्तिवाला चन्द्रमा राजलक्ष्मी की वृद्धि करता है। स्थूल आकृति का चन्द्रमा सुभिक्षकारक और कृशकाय चन्द्र उत्तम धान्य को बढ़ाता है। ॥२०॥

संस्थानविधिः संस्थानप्रकारश्चन्द्रमसः कथित उक्तः। अस्मात् परतो रूपाणि भवन्ति, तानि चाह :– स्वल्पो दुर्भिक्षकरः, अत्यल्पमूर्त्तिरसुभिक्षं करोति। महान् पृथुमूर्त्तिः सुभिक्षावहः, सुभिक्षमावहति करोतीति सुभिक्षावहः, प्रोक्तः कथितः॥१८॥

चन्द्रमा के संस्थानों के प्रकार कहे गये हैं, अब इसके बाद उसके जो रूप होते हैं उसे कहते हैं :– स्वल्पमूर्ति दुर्भिक्षकारक, अत्यन्त लघु मूर्ति दुर्भिक्षकारक है। बड़ी मूर्ति अर्थात् मोटाश्रृङ्ग सुभिक्षकारक कहा गया है। ॥१८॥

मध्यतनुर्यो मध्यादवनतः स वज्राख्यो वज्रसंज्ञः। क्षुद्भयदः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददाति। राज्ञां नृपाणां च सम्भ्रमायोद्यमाय भवति। तथा च वृद्धगर्गः–

मध्य से अवनत चन्द्र वज्रसंज्ञक होता है, यह क्षुधाभय अर्थात् दुर्भिक्ष देता है। राजाओं के लिए संभ्रमकारक अर्थात् उद्यतकारी होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

विलग्नमध्यो मेघाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः।
मध्यच्छिद्रो विलीनो वा भयं च जनयेद् महत्॥

चन्द्रमा मेघसदृश वर्णवाला मध्य से सूक्ष्म वज्रसंस्थानसंज्ञक होता है। मध्य में छिद्र हो अथवा पतली रेखा हो तो महान् भय उत्पन्न करता है।

चन्द्रः शशी मृदङ्गरूपो मृदङ्गाकारः क्षेमसुभिक्षावहो भवति। क्षेमं सुभिक्षं च करोति॥१९॥

मृदङ्ग रूपवाले चन्द्रमा से सुभिक्ष होता है। यह क्षेम और सुभिक्ष करता है। ॥१९॥

चन्द्रः शशी विशालमूर्तिर्विस्तीर्णबिम्बो नरपते राज्ञो लक्ष्मीविवृद्धये श्रियो वृद्ध्यर्थं ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स्थूलो घनः सुभिक्षकारी सुभिक्षकृद्भवति। तनुमूर्तिरघनदेहः प्रियधान्यकरो दुर्भिक्षकारी च भवति॥२०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रमा का विस्तृत बिम्ब हो, तो उसे राजा के लिए श्री वृद्धिकारक समझना चाहिए। स्थूल अर्थात् मोटा, घना सुभिक्षकारक होता है। सूक्ष्ममूर्तिवाला चन्द्रमा प्रिय (उत्तम) धान्यों का कारक और दुर्भिक्षकारी होता है। ॥२०॥

अथ चन्द्रस्य कुजादिभिस्ताराग्रहैः शृङ्गे भिन्ने फलमाह :–

प्रत्यन्तात् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतिः शृङ्गे कुजेनाहते,
शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत्।
श्रेष्ठान् हन्ति नृपान् महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान्,
शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥२१॥

भौमादि ग्रहों से चन्द्रशृङ्ग के भेदित होने का फल कहते हैं :–

यदि चन्द्रशृङ्ग मङ्गलग्रह के द्वारा आहत (विद्ध) होता हो, तो सीमावर्ती दुष्ट राजाओं का विनाश होता है। शनि के द्वारा आहत होने पर शस्त्र और क्षुधा का भय और बुध के द्वारा अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष होता है। बृहस्पति के द्वारा विद्ध होने पर श्रेष्ठ राजाओं की तथा शुक्र के द्वारा छोटे राजाओं की मृत्यु होती है। ग्रहों से उत्पन्न ये फल शुक्लपक्ष में किञ्चित् फलदायी परन्तु कृष्णपक्ष में पूर्ण फलदायी होते हैं। ॥२१॥

चन्द्रस्य ताराग्रहैः सह संयोगे समागमाध्यायोक्तगणितविधिना ग्रहणवत्कर्मणि जाते भूत्वाऽधोभागेन भौमादयो बिम्बभेदनं कुर्वन्ति। तत्र शृङ्गभेदने इदं फलं मध्यभेदने च वक्ष्यमाणम्।

चन्द्रमा के साथ ताराग्रहों के (भौमादि पाँच ग्रह) संयोग समागम-अध्याय में कथित गणितीयविधि से ग्रहण के समान गणितकर्म करने पर अधोभाग से भौमादि ग्रह चन्द्रबिम्ब का भेदन करते हैं। श्रृङ्ग-भेदन से उत्पन्न यह फल मध्य भाग के भेदन से कहा जा रहा है।

प्रत्यन्तानिति। उडुपतिश्चन्द्रः कुजेन भौमेन शृङ्गे विषाणे आहते ताडिते सति प्रत्यन्तान् दूरवासिनः। कुनृपान् कुत्सितनरपतीन्। हन्ति घातयति। यमेन शनैश्चरेणाऽऽहते शृङ्गे शस्त्रक्षुद्भयकृत्। शस्त्रभयं क्षुद्भयं दुर्भिक्षं च करोति। शशिजेन बुधेनाऽऽहते अवृष्टिजं अवृष्ट्युद्भूतं भयं च करोति महेन्द्रगुरुणा बृहस्पतिना हते श्रेष्ठान् नरपतीन् हन्ति घातयति। शुक्रेण सितेनाऽऽहते शृङ्गे अल्पान् स्वल्पान् नृपान् हन्ति। चशब्दः समुच्चये सर्वत्राऽत्र।

चन्द्रमा मङ्गल के द्वारा श्रृङ्ग में ताड़ित किये जाने पर दुरवासी कुत्सित राजाओं का विधात करता है। शनि ग्रह से आहत श्रृङ्ग शस्त्र और क्षुधा से भयकारी होता है। शस्त्रभय तथा क्षुधाभय का तात्पर्य दुर्भिक्षकारक है। बुध से आहत अवृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से उत्पन्न भय अर्थात् दुर्भिक्ष का भय करता है। देव-गुरु बृहस्पति से आहत होने पर श्रेष्ठ राजाओं का विघात करता है। श्रृङ्ग पर शुक्र का आघात हो तो थोड़े से राजाओं का हनन होता है। यहाँ पर "च" शब्द सर्वत्र समुच्चय के लिए गृहीत है।

शुक्ले याप्यमिति। इदं ग्रहकृतं शृङ्गभङ्गफलं शुक्लपक्षे याप्यं भवति किञ्चिद्भवतीत्यर्थः। कृष्णे कृष्णपक्षे यथोक्तागमं यथा निर्दिष्टं सकलं फलं भवतीति। तथा च पराशरः—

यह ग्रहकृत श्रृङ्गभङ्ग का फल शुक्लपक्ष में कुछ-कुछ ही होता है। कृष्णपक्ष में जैसाकि शास्त्र में बतलाया गया है, वह सम्पूर्ण फल होता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

अथ शृङ्गाभिमर्दने गुरुः प्रधाननृपविनाशाय। भृगुर्यायिनां कुनृपाणाम्। भौमः सौम्यो दुर्भिक्षायाऽवृष्टये। क्षुच्छस्त्रभयदः सौर इति।

तथा च समाससंहितायाम् :—

प्रत्यन्तविनाशोऽन्नक्षयो महाराजपीडा च।
संग्रामाश्चाभिहिते शृङ्गे भौमादिभिः क्रमशः॥ इति॥ २१॥

गुरु के द्वारा श्रृङ्ग का मर्दन होने पर प्रमुख राजा का विनाश होता है। शुक्र से आक्रमाणकारी दुष्ट राजाओं का विनाश और मङ्गल तथा बुध दुर्भिक्ष तथा अनावृष्टि उत्पन्न करते हैं। शनि क्षुधा और शस्त्र का भय देता है। ॥२१॥

अधुना शुक्रभिन्नबिम्बस्य चन्द्रमसः फलमाह :—

भिन्नः सितेन मगधान् यवनान् पुलिन्दान्
नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान्।
पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुषादान्
हन्यादुशीनरजनानपि सप्त मासान्॥ २२॥

अब शुक्रसे विद्ध चन्द्रबिम्ब का फल कहते हैं :—

शुक्रग्रह से विद्ध चन्द्रबिम्ब के द्वारा मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल, भृङ्गी, मरु, कच्छ, सुराष्ट्र, मद्र, पाञ्चाल, कैकय, कुलूत, पुरुषभक्षक, उशीनर; इन सभी प्रदेशों के रहनेवालों का परिपाककाल के पश्चात् सात मास पर्यन्त विघात होता है॥२२॥

सितेन शुक्रेण यदा भिन्नश्चन्द्रो मध्याद्विदारितस्तदा मगधान् जनान्, यवनान्, पुलिन्दान्, एतान् सर्वान् जनान्। नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रानेतान् जनान्, पाञ्चालान्, कैकयान्, कुलूतकान् जनानेव। पूरुषादान् पुरुषभक्षान्। उशीनरजनान्, एतान् सर्वान् पाककालादनन्तरं सप्त मासान् यावन्निहन्याद् घातयेत्॥ २२॥

शुक्र से विद्ध चन्द्रमा अर्थात् मध्य से जब विदीर्ण (कटा हुआ) हो, तब मगध,, यवन, पुलिन्द इन सभी प्रदेशस्थ जनों का और नेपाल-भृङ्ग-मरु-कच्छ-सुराष्ट्र-मद्र इन

39336

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोगों का और पाञ्चाल-कैकय कूलूत एवं पुरुषभक्षक प्रदेशसहित उशीनर प्रदेश के, और इन सभी प्रदेशनिवासियों के लिए परिपाककाल (पूर्ण विद्धकाल) के पश्चात् सात मासों तक विघात करता है। ॥२२॥

अथ जीवभिन्नस्याह :–

गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान्
धान्यानि शैलान् द्रविडाधिपांश्च।
द्विजांश्च मासान् दश शीतरश्मिः
सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः॥२३॥

गुरु से विद्ध चन्द्र का फल कहते हैं :–

गुरु से विदारित चन्द्रबिम्ब गान्धार, सौवीर, सैन्धव, कीर आदि इन सभी को संपीड़ित करता है। साथ ही धान, पर्वत, द्रविड़देश के राजा और ब्राह्मणों को दसमासपर्यन्त पीड़ित करता है॥२३॥

शीतरश्मिश्चन्द्रो वाक्पतिना गुरुणा विभिन्नो विदारितबिम्बः। गान्धारान्, सौवीरकान्, सैन्धवान्, कीरान्, एतान् सर्वानेव जनान् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। तथा धान्यानि व्रीहीन्, शैलान् पर्वतान्, द्रविडाधिपान् द्रविडदेशीयाधिपतीन्, द्विजांश्च ब्राह्मणान्, एतान् दश मासान् यावत् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। पाकाध्यायनिर्दिष्टकालात् परत इदं ज्ञेयमिति सर्वत्र॥२३॥

चन्द्रमा का बिम्ब जब गुरु के द्वारा वेधित होता है, तब वह गान्धार, सौवीरक, सैन्धव, कीर इन सभी प्रदेशों के लोगों को पीड़ित करता है। साथ ही धान्य, पर्वत, दाक्षिणात्य राजा और ब्राह्मण इनको दस मास तक सन्ताप देता है। पाकाध्याय में निर्दिष्ट समय के अनुसार पाककाल का समय सुनिश्चित करना चाहिए। ॥२३॥

अथ भौमभिन्नस्याह :–

उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान् मालवान्
कौलिन्दान् गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान्।
हन्यात् कौरवमत्स्यशुक्त्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि
प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया॥२४॥

मङ्गल से विद्ध चन्द्र का फल कहते हैं :–

यदि चन्द्रबिम्ब भौमग्रह के साथ विद्ध हो, तो विजयाभियानरत राजा का वाहन सहित विनाश होता है। एवञ्च मालव, पुलिन्द सङ्गठनप्रमुख शिबि, अयोध्या इन प्रदेशों के लोगों और राजाओं का विनाश होता है। इसी प्रकार कुरु, मत्स्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा शुक्तिराज्य के राजाओं का और प्रमुख राजकर्मचारियों का छः मासपर्यन्त विघात करता है। ॥२४॥

प्रालेयांशुर्हिमरश्मिश्चन्द्रोऽसृग्ग्रहे अङ्गारके तनुगते शरीरस्थे भौमभिन्न इत्यर्थः। षण्मासमर्यादया षण्मासावधि यावदेतान् हन्यात् घातयेत्। उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतीन्, नरपतीन्नृपान्। उद्युक्तान् उद्योगस्थितान् विजिगीषून् वाहनैरश्वादिभिः सह हन्यात्। त्रैगर्तान् जनान् मालवान् कौलिन्दान् जनानेव। गणपुङ्गवान् समूहप्रधानान्। अथशब्दः स्वार्थे। अथ शिबीन् जनान्, आयोध्यकानयोध्याभवान्, तथा पार्थिवान्नृपान्, एतानपि हन्यात्। तथा कौरवाणां मत्स्यानां शुक्तीनां जनानां चाधिपतयः स्वामिनस्तानपि राजन्यमुख्यान् क्षत्रियप्रधानांश्च हन्यात्॥२४॥

प्रालेयांशु अर्थात् चन्द्रमा, असृग्ग्रह अर्थात् मङ्गल। यह मङ्गल जब चन्द्रशरीर में स्थित हो अर्थात् जब मङ्गल से चन्द्रबिम्ब विद्ध हो, तो छः मास की अवधि तक आगे कहे गये लोगों का विघात करता है। उद्युक्त अर्थात् विजयकामना से प्रयाण करनेवाले राजा का अश्वादि वाहनसहित हनन करता है। इसी प्रकार त्रैगर्त, मालव और पुलिन्दप्रदेशस्य जनों का हनन करता है साथ ही समूहप्रमुख का भी हनन होता है। यहाँ 'अथ' शब्द स्वार्थ में अभिहित है। शिबि तथा अयोध्यावासी राजाओं का भी हनन करता है। साथ ही कौरव, मत्स्य और शुक्तिजनों का एवं राजाओं तथा प्रधान क्षत्रियों का विनाश करता है। ॥२४॥

अथ शनैश्चरभिन्नस्याह :–

यौधेयान् सचिवान् सकौरवान् प्रागीशानथ चार्जुनायनान्।
हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः शीतांशुर्दशमासपीडया॥२५॥

शनि से विद्ध चन्द्र का फल कहते हैं :–

योद्धाजनों का, मन्त्रियों का, कौरवजनों का और अर्जुनायनप्रदेशवासियों सहित ईशान–पूर्व के लोगों का शनि से वेधित चन्द्रमा दस मास पर्यन्त विनाशक होता है। ॥२५॥

शीतांशुश्चन्द्रोऽर्कजभिन्नमण्डलः सौरविदारितबिम्बो दशमासपीडया दशमासोपतापेनैतान् हन्याद् घातयेत्। यौधेयान् जनान्। सचिवान्मन्त्रिणः। सकौरवान् कौरवैर्जनैः सहितान्। प्रागीशान् पूर्वस्यां दिशि येऽधिपतयस्तान्। अथशब्दः पादपूरणे। चशब्दः समुच्चयार्थे। अर्जुनायनान् जनानिति॥२५॥

शीतांशु अर्थात् चन्द्रमा का बिम्ब जब शनि से विदारित होता है, तब (आगे कथित) लोगों को दसमासपर्यन्त विघात करता है। युद्धकरनेवाले सैनिक, मन्त्री, कौरवजन तथा पूर्वदिशा में जो राजा रहते हैं उनका हनन करता है। यहां 'अथ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द पादपूर्ति हेतु है तथा 'च' शब्द समूहवाचक है। अर्जुनायन लोगों के लिए भी यह फल होता है। ॥२५॥

अथ बुधभिन्नस्याह :–

मगधान् मथुरां च पीडयेद्वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः।
अपरत्र कृतं युगं वदेद्यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः॥२६॥

बुध से विद्ध चन्द्रबिम्ब का फल कहते हैं :–

बुध से विद्ध चन्द्रमा मगधदेश और मथुरा को तथा वेणानदी के तट पर रहनेवालों को पीड़ित करता है। यदि वह चन्द्रबिम्ब को विद्धकर निकल जाता है तो यह फल होता है। शेष प्रदेश में रहनेवाले लोगों के लिए सत्ययुग की अनुभूति कहनी चाहिए। ॥२६॥

शशाङ्कजो बुधो यदि शशिनं चन्द्रं भित्त्वा विदार्य विनिर्गतो विनिःसृतस्तदा मगधान् देशान् मथुरां च पीडयेत् हन्ति। तद्वासिनो जनान् विनाशयति। वेणा नाम नदी तस्यास्तटं तत्तीरे ये निवासिनस्तान् जनानित्यर्थः। एतानुक्तान् वर्जयित्वाऽपरत्र अन्यदेशेषु कृतं वदेत् कृतयुगाकारं ब्रूयात् तद्धर्मानुवृत्तेः॥२६॥

बुध यदि चन्द्रमण्डल को विदीर्णकर बाहर निकल जाता है, तब मगधदेश और मथुरा को पीड़ित करता है। इन प्रदेशों में रहनेवाले लोगों का विनाश करता है। वेणा नामक नदी के तट पर रहनेवाले जो लोग हैं, उनको भी पीड़ित करता है। इनको छोड़कर अन्य प्रदेशों में रहनेवालों के लिए सत्युगय के समान धर्मादि में प्रवृत्ति का फल कहना चाहिए। ॥२६॥

अथ केतुभिन्नस्याह :–

क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः।
कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम्॥२७॥

केतुविद्ध चन्द्र का फल कहते हैं :–

यदि केतुग्रह से चन्द्रबिम्ब विद्ध हो, तो वह क्षेम, आरोग्य, सुभिक्ष का विनाशक होता है। इस वेध में शस्त्रजीवियों का विनाश और चोरों के अधिक्य से जनता को पीड़ा होती है। ॥२७॥

शीतांशुश्चन्द्रः शिखिना केतुना यदि भिन्नो विदारितबिम्बस्तदा क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी भवति। क्षेममारोग्यं नीरुजत्वं सुभिक्षं च विनाशयति तच्छीलः। तथाऽऽयुधजीविनामायुधेन ये जीवन्ति तेषां विनाशमुपघातं कुर्यात्। चौराणां तस्कराणामधिकेन चातिशयेन पीडां रुजं कुर्यात्। तथा च पराशरः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि चन्द्रमा शिखी अर्थात् केतु से विदारित होता है, तो वह क्षेम, ओराग्य (निरोगिता) तथा सुभिक्ष का विनाश करता है। साथ ही जिनकी आजीविका शस्त्रों से होती है, वैसे लागों का भी विनाश करता है, और चोर (तस्कर) की अधिकता से जनता को अत्यधिक पीड़ित करता है।

अथ भेदेष्वसुरगुरुभिन्नः पाञ्चालमगधमद्रकुणिन्दकौलूतककैकययवनधू[1]माम्बष्ठमार्गणाङ्गनाराज्यभृङ्गिमरुकच्छोशीनरपुलिन्दपुरुषादनेपालान् सप्तमासानुपतापयतीति। अमरगुरुणा दशमासान् गान्धारवसतिं सिन्धुवाह्लिकपर्वतकाश्मीरान्। क्षितिसुतभिन्नः कुरुशिबिमालवत्रिगर्तकुलिन्दायोध्याधिपतीन् जयार्थिनः सह षण्मासानुपतापयतीति। अर्कसूनुसम्भेदो नृपविरोधामात्यभेदगणपयौधेयार्जुनायनभयायाऽनावृष्टिप्रादुर्भावाय च दशमासान्। बुधभिन्नः सुभिक्षक्षेमवृष्टिकरः। केतोस्तद्विपर्ययः। प्रवर्द्धमानो वपुष्मानपराजितो ग्रहभिन्नोऽप्यशुभफलसंहर्ता इति॥२७॥

जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है:–

विभिन्न ग्रहों के द्वारा चन्द्रबिम्ब विद्ध होने के क्रम में शुक्र से विद्ध होने पर पाञ्चाल, मगध, मद्र, कुणिन्द, कौलूतक, कैकय, यवन, धूम, अम्बष्ठ, मार्गणा अङ्गनाराज्य, भृङ्गी, मरु, कच्छ, उशीनर, पुलिन्द, पुरुषाद और नेपालप्रदेश को सप्त मास पर्यन्त परितापित करता है। गुरुग्रह से विद्ध होने पर दस मासों तक गान्धारप्रदेश, सिन्धु, वाह्लीक, पर्वत और कश्मीरप्रदेश को पीड़ित करता है। मङ्गल से विद्ध होने पर कुरु, शिबि, मालव, त्रिगर्त, पुलिन्द, अयोध्या के राजाओं और विजयाभिलाषियों को छः मास तक पीड़ित करता है। शनि से वेधित होने पर राजाओं में विरोध, मन्त्रियों में मतभेद, समूह-प्रमुख, योद्धाओं, अर्जुनायनप्रदेश के लिए दसमास तक भयकारक तथा अनावृष्टिकारक होता है। बुध से विद्ध होने पर सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि को करनेवाला होता है। केतु का इससे विपरीत फल होता है। वृद्धिशील, सुन्दर बिम्बवान् और अपराजित ग्रह से विद्ध होने पर अशुभ फलों को दूर करनेवाला होता है।॥२७॥

अथ ग्रहणकाले उल्काहतस्य चन्द्रस्य फलमाह:–

उल्कया यदा शशी ग्रस्त एवं हन्यते।
हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः॥२८॥

ग्रहणकाल में उल्का से आहत चन्द्र का फल कहते हैं:–

यदि चन्द्रमा ग्रहणकाल में किसी उल्का से आहत होता है, तो जिस राजा की जन्मराशि में चन्द्रमा उस समय रहता है, उस राजा के लिए घातक होता है॥२८॥

---

१. धूमान्वेष्टमार्गराङ्गनाराज्येति अ० क पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शशीः चन्द्रः। ग्रस्तो राहुराशिगतो यदोल्कया हन्यते, तदभिमुखी उल्का याति, तदा यस्य नृपस्य यस्य राज्ञः, जन्मनि जन्मगतः स्थितः स हन्यते तदा म्रियत इत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम् :—

उल्काभिहतो ग्रहणे तन्नक्षत्रं नृपं हन्ति ॥ इति ॥ २८॥

यदि चन्द्रमा ग्रस्त हो, अर्थात् राहु की राशि में गया हुआ हो और किसी उल्का से आहत होता हो, तो जिस राजा की जन्मराशिगत राशि में हो, उस राजा का मरण होता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :—

उल्का से आहत ग्रहणकालिक नक्षत्रवाले राजा का मरण होता है। ॥२८॥

अथ चन्द्रमसो वर्णलक्षणमाह :—

भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः।
श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुड्डमरामयचौरभयाय ॥ २९॥

चन्द्रमा का वर्णानुसार फल कहते हैं :—

यदि चन्द्रमा भस्मवर्ण का, रूक्ष, रक्तवर्ण, क्षीण किरणोंवाला, कृष्णबिम्ब, खण्डितबिम्ब अथवा कम्पनशील हो, तो क्षुधा, शत्रुकलह, रोग और चौरभयप्रदायक होता है। ॥२९॥

एवंविधः शीतकरश्चन्द्रः क्षुड्डमरामयचौरभयाय भवति। क्षुद्दुर्भिक्षम्। डमरः शत्रुकलहः। आमयो रोगः। चौरास्तस्कराः। एषां संबन्धिभयं भवति। कीदृशः ? भस्मनिभो भस्मवर्णः कलुषः। परुषो रूक्षः। अरुणमूर्त्तिर्लोहितशरीरः। किरणै रश्मिभिः परिहीणो वर्जितः। श्यावतनुः श्यामशरीरः। स्फुटितो भग्नः। स्फुरणः कम्पमान इति ॥ २९॥

इस प्रकार का चन्द्रमा क्षुधा, डमर, आमय और चौरभयदायक होता है :— क्षुत् अर्थात् दुर्भिक्ष, डमर अर्थात् शत्रु-कलह, आमय अर्थात् रोग और चोर इन से सम्बन्धित भय देता है। किस प्रकार का चन्द्रमा ? भस्मवर्ण के सदृश अर्थात् कलुषित। परुष अर्थात् रूक्ष, रक्तवर्णवाला, किरणों से रहित, श्यामबिम्ब, भग्नबिम्ब और प्रकम्पित बिम्बवाला। ॥२९॥

अन्यच्छुभलक्षणमाह :—

प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो
यत्नादिवाऽद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः।
उच्चैः कृतो निशि भविष्यति में शिवाय,
यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य शुभलक्षण कहते हैं :–

हिमखण्ड, कुन्दपुष्प, कुमुदपुष्प और स्फटिक के सदृश स्वच्छ चन्द्र, जैसे माता पार्वती ने उसे परिमार्जितकर अपने शङ्कर के लिए रात्रि में ऊँचे स्थान पर रख दिया हो, इस प्रकार का निर्मल चन्द्रमा जब दिखलाई देता है, तब वह संसार के लिए कल्याणकारी होता है। ॥३०॥

एवंविधश्चन्द्रो यो दृश्यतेऽवलोक्यते स जगतो जनानां शिवाय श्रेयसे भविता भविष्यतीत्यर्थः। कीदृशः ? प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातः, प्रालेयं हिमम्, कुन्दकुमुदे पुष्पविशेषे शुक्ले तथा स्फटिको मणिस्तद्वदवदातो निर्मल इत्यर्थः। तथा अद्रिसुतया गौर्या यत्नायत्नतः परिमृज्य समन्ततो निर्मलीकृत्योच्चैः कृत इवोपरि न्यस्तः। किमर्थम् ? निशि रात्रौ मे शिवाय महेश्वराय भविष्यति श्रेयसे वेति निश्चित्य। तथा च पराशरः–

इस प्रकार का चन्द्रमा जो दिखलाई देता है, वह संसार के लोगों के कल्याण के लिए होगा, किस प्रकार का ? प्रालेय अर्थात् हिम, कुन्द और कुमुद ये दो श्वेत पुष्प तथा स्फटिकमणि के समान अवदात अर्थात् निर्मल। तथा अद्रिसुता गौरी के द्वारा प्रयत्नपूर्वक परिमार्जितकर अर्थात् सम्पूर्ण रूप से स्वच्छ कर ऊपर स्थापित किया गया हो। किस हेतु ? रात्रि में मेरे महेश्वर महादेव के लिए यह श्रेयस्कारी होगा, इसप्रकार का निश्चय करके जैसाकि पराशर ने कहा है :–

भस्मारुणवह्निताम्रपीतपाण्डुनीलरूक्षवर्णः क्षुद्वैरकरः। स्निग्धः प्रसन्नो रश्मिवान् श्वेतः क्षेमसुभिक्षवृष्टिकरः॥ इति॥३०॥

भस्म, अरुण, अग्नि, ताम्र, पीत, पाण्डु, नील और रूक्षवर्ण का चन्द्रमा क्षुधा तथा वैरकारक होता है। स्निग्ध और प्रसन्न किरणोंवाला श्वेतवर्ण का चन्द्रमा सुभिक्ष और वृष्टिकारक होता है। ॥३०॥

अथ पक्षवृद्धौ वा हानौ वा साम्ये शुभाशुभमाह :–

शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च।
हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन॥३१॥

दोनों पक्षों में चन्द्रमा की वृद्धि-हानि और साम्यता का शुभाशुभ फल कहते हैं :–

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा के समृद्ध होने पर ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा अन्य प्रजा की वृद्धि होती है। हीन (लघु) होने पर हानि तथा तुल्यता होने पर तुल्यता होती है। कृष्णपक्ष में यह सम्पूर्ण फल विपरीत होता है। ॥३१॥

शुक्ले पक्षे श्वेतमासार्द्धे सम्प्रवृद्धे सम्यक्प्रवृद्धिं गते ब्रह्मक्षत्रं वृद्धिं यादि। ब्राह्मणा द्विजाः, क्षत्रिया [1]नृपाश्च वृद्धिं गच्छन्ति, तथा प्रजाश्च वृद्धिं यान्ति। हीने हानिरिति, तस्मिन्नेव शुक्लपक्षे

---

१. क्षत्रिया राजन्याः प्रवृद्धिमिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हीने क्षयं गते च ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्भवति। तुल्यता तुल्यतायामिति। तुल्यतायां समत्वे न हानौ न वृद्धौ तेषां ब्रह्मक्षत्रप्रजानां तुल्यता साम्यमेव भवति। कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन, कृष्णे कृष्णपक्षे सर्वं प्रागुक्तं फलं व्यत्ययेन विपरीतेन ज्ञेयं ज्ञातव्यम्।

शुक्लपक्ष में सम्यक्तया वृद्धि को प्राप्त चन्द्रमा ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा प्रजा के लिए वृद्धिदाता होता है। उसी शुक्लपक्ष में हीन अर्थात् क्षय को प्राप्त होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और प्रजा की हानि होती है। तुल्यता अर्थात् समता को प्राप्त होने पर समफल अर्थात् हानि और वृद्धि दोनों का अभाव होता है। सभी फलों में साम्यता रहती है, अभिप्राय यह है कि कृष्णपक्ष में पूर्वोक्त फलों को विपरीत क्रम से जानना चाहिए।

एतदुक्तं भवति—कृष्णपक्षे प्रवृद्धे ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्हीने तस्मिन् पक्ष एव तेषां वृद्धिः। समे पक्षे समत्त्वमिति॥३१॥

कहने का अभिप्राय यह है कि कृष्णपक्ष में प्रवृद्ध होने पर प्रजा की हानि होती है और उसी पक्ष में हीन (क्षय) होने पर इन सबकी वृद्धि होती है। सम होने पर इस कृष्णपक्ष में समत्व रहेगा, ऐसा समझना चाहिए॥३१॥

अन्यदप्याह :—

यदि कुमुदमृणालहारगौर-
स्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा।
अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी
भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः॥३२॥

और भी कहते हैं :—

यदि चन्द्रमा कुमुद, कमलनाल के हार के सदृश गौरवर्ण का और तिथियों के क्रम से क्षय एवं वृद्धि को प्राप्त होता हुआ विकाररहित गतिवाला, सुन्दर किरणों से युक्त होता है तो ऐसा चन्द्रमा राजा के लिए विजयप्रदायक है। ॥३२॥

एवंविधः शीतरश्मिश्चन्द्रो नृणां पुंसां विजयाय भवति। कीदृशो यदि कुमुदमृणालहारगौरः, कुमुदं पुष्पविशेषम्, मृणालं बिसम्, हारो मुक्ताहारस्तद्वद्यदि गौरः श्वेत इत्यर्थः। तिथिनियमात्तिथिक्रमेण क्षयमेति क्षयं गच्छति। तिथिक्रमेण वा वर्द्धते वृद्धिं याति। शुक्लकृष्णप्रतिपदाद्यासु तिथिषु वृद्धिक्षयौ तुल्यौ भवतः कदाचिद्धीनाधिक्यतेत्यर्थः। अविकृतगतिः, अविकृता विकाररहिता गतिर्गमनं यस्य कम्पनादिदोषरहितः। अविकृतं मण्डलं बिम्बं यस्य अविकृतैरंशुभिः किरणैर्योगः संयोगो यस्य तथाभूत इति॥३२॥

कुमुद पुष्पविशेष, मृणाल अर्थात् कमल, हार अर्थात् मुक्ताहार; इनके समान गौरवर्ण का श्वेत चन्द्र राजाओं के लिए विजयकारक होता है। तिथिक्रम से क्षय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता हो तथा तिथिक्रम से ही वृद्धि को प्राप्त होता हो। शुक्ल और कृष्णपक्ष की प्रतिपदादि तिथियों में क्रमशः वृद्धि और क्षय को समान रूप से प्राप्त होता है। कदाचित् हीनता और अधिकता को प्राप्त हो, यह तात्पर्य है। अविकृतगति अर्थात् विकाररहित गमन हो, जो कम्पनादि दोष से रहित हो। जिसका बिम्ब-मण्डल अविकृत किरणों से संयुक्त हो, इस प्रकार का चन्द्रमा (शुभकारी होता है)। ॥३२॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ चन्द्रचारो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृतिमें चन्द्रचार नाम चतुर्थ अध्याय ॥४॥

अथ पञ्चमोध्यायः

अथ राहुचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव राहोर्ग्रहत्वप्रतिपादनाय मतान्तरमाह :–

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके॥१॥

राहुचाराध्याय

आरम्भ में राहु के ग्रहत्व-प्रतिपादन में मतान्तर उपस्थापित करते हैं :–

किसी एक आचार्य के मत से अमृत के आस्वादन विशेष के कारण इस असुर का शिर काट डाला गया, और प्राणत्याग किये बिना ही उसने ग्रहत्व को प्राप्त कर लिया ॥१॥

किलशब्द आगमप्रदर्शनार्थः। एके केचिदाचार्या एवं वदन्ति कथयन्ति। लोके यो राहुरित्युच्यते स चाऽसुरः सैंहिकेयः। तस्य पुराऽमृतं पिबतो भगवता हरिणा सुदर्शनाख्येन चक्रेण शिते यूर्दा शिरं निकृत्तमपि अमृताऽऽस्वादविशेषादमृताऽऽस्वादनहेतोः प्राणैरसुभिरपरित्यक्तं नोज्झितं ग्रहतां यातं तदेव ग्रहत्वं प्राप्तमिति। तथा च पुराणकारः–

यहाँ पर 'किल' शब्द आगम (शास्त्र) को प्रदर्शित करने के लिए है। एक अर्थात् कुछ आचार्य इस प्रकार से कहते हैं :–

लोक में जो राहु नाम से कहा जाता है, वह सैंहिकेय नामक असुर है। प्राचीन समय में अमृत-पान करते समय भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्र से उसके शिर को काट डाला। काटे जाने पर भी अमृत का आस्वादन प्राप्त कर लेने के कारण उसके प्राणों का त्याग नहीं हुआ, इस कारण उसने ग्रहत्व को प्राप्त कर लिया। जैसाकि पुराणकारों ने कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिंहिकातनयो राहुरपिबच्चामृतं पुरा।
शिरच्छिन्नोऽपि च प्राणैरऽत्यक्तोऽसौ ग्रहतां गतः॥इति॥१॥

प्राचीन काल में सिंहिका के पुत्र राहु ने अमृत-पान के कारण शिर कट जाने पर भी ग्रहत्व को प्राप्त कर लिया था। ॥१॥

यद्येवंविधो राहुस्तत्किमित्याकाशे ग्रहवन्नोपलभ्यते तदर्थमाह :—

इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात् कमलयोनेः॥२॥

इस प्रकार का राहु ग्रहों की भाँति आकाश में क्यों नहीं दिखायी पड़ता ?

चन्द्र-मण्डल और रवि-मण्डल के समान बिम्बवाला राहु कृष्णबिम्ब (काली छाया) होने के कारण आकाश में दिखायी नहीं पड़ता है। ब्रह्मा से वर प्राप्तकर केवल पर्वकाल (ग्रहणवाला) में दिखायी पड़ता है, उससे भिन्न काल में नहीं। ॥२॥

इन्दुमण्डलस्य चन्द्रबिम्बस्यार्कमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्य च यादृश्याकृतिराकारस्तादृगेव राहुमण्डलस्य। यद्येवं तत् किमिति गगने आकाशे न दृश्यते नोपलभ्यते ? असितत्वात् किलेति, असितत्वात् कृष्णत्वात् किल न दृश्यते यतोऽसौ तमोमय इति। यदि न दृश्यते तदास्य दर्शनमस्तीत्याह — अन्यत्र पर्वकालादिति। कमलयोनेर्ब्रह्मणो वरप्रदानात् पर्वकालाद् ग्रहणसमयादन्यत्र अन्यस्मिन् काले न दृश्यते, पर्वकाले तु पुनर्दृश्यते। तथा च पराशरः—

चन्द्र-मण्डल के और सूर्य-मण्डल के सदृश ही राहु-मण्डल का भी आकार होता है। यदि इस प्रकार का है तो फिर आकाश में क्यों नहीं उपलब्ध होता है ? इसका उत्तर उसकी (राहुबिम्ब की) कृष्णता ही है। क्योंकि यह राहु तमोमय होता है, इसलिए कृष्णता के कारण वह अदृष्ट रहता है। उसका दर्शन कब होता है ? इसे बताते है :—

ब्रह्मा का वर प्राप्त कर ग्रहण-समय के अन्यत्र अन्य काल में वह नहीं दिखलायी देता है, फिर भी पर्वकाल में दिखलायी पड़ता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

पुरा[1] पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिरकालयाञ्चाकोपाद्दारुणं यमकालान्तकोपमं सुतमदात्, यं राहुमित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्घरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधाद्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजयमर्कचन्द्रसम्भक्षणं च वरमभिवरयामास। तस्मै भगवानमरगुरुः स्वयंभूः प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्तस्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वान्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहुः। ततो हरिररिविमथनं चक्रमुपरि

---

१. द्रष्टव्यो अस्य ग्रन्थस्य २८ पृष्ठे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रक्षिप्यास्य शिरच्छित्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं कुर्वन् जगतः शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसीति।

प्राचीनकाल में इन्द्र के पिता कश्यप से सिंहिका ने सन्तान हेतु याचना की। उसको उस ऋषि ने असामयिक याचना से क्रोधित होकर क्रूर यमराज के सदृश पुत्र को प्रदान किया, जिसको विद्वान् लोग राहु के नाम से कहते हैं। वह उत्पन्न होते ही देवों के सङ्ग्राम में घायल होकर विकृतमुखवाला हो गया तब हिमालय पर्वत पर उसने दिव्य दस सहस्र वर्षों तक अत्यन्त कठोर तप किया। उसने ब्रह्मा से आकाश में विचरना, अमरता, देवविजय तथा सूर्य, चन्द्र का भक्षण करने का वर मांगा। इस पर ब्रह्मा ने हँसते हुए कहा :– यह वर बहुत अधिक है, इसे तुम पचाने में असमर्थ हो। किन्तु ऐसा ही हो। ब्रह्मा के अन्तर्ध्यान होने पर राहु भगवान् सूर्य तथा चन्द्रमा की ओर दौड़ा। तदनन्तर ब्रह्मा ने अपना शत्रुनाशक चक्र उसके ऊपर फेंका और उसके शिर को काटकर कहा :– "ब्रह्मा का वचन सत्य हो अपने-अपने युग-पर्व में तुम ग्रहण करते हुए संसार के शुभाशुभ फलों के कारक बनोगे।"

तथा च भगवान् गर्गः–

आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनश्चान्द्रेषु पर्वसु॥ इति॥ २॥

जैसाकि भगवान् गर्ग ने कहा है :–

राहु सूर्य के निवास तथा चन्द्रमा के पास पर्वों पर जाता है। चान्द्रपर्वों पर चन्द्रमा के पास जाता है। तत्पश्चात् सूर्य को प्राप्त होता है॥२॥

अन्यदपि मतान्तरमाह :–

मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्त्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम्॥ ३॥

अन्य मतान्तर भी कहते है :–

इस सिंहिका-पुत्र राहु को कुछ लोग मुख और पुच्छ से विभाजित अङ्गोंवाला और कुछ लोग सर्पाकार तथा अन्य आचार्य तमोमय, रूपरहित कहते हैं। ॥३॥

एके आचार्याः सैंहिकेयाख्यं राहुं मुखपुच्छविभक्ताङ्गमुपदिशन्ति कथयन्ति। मुखपुच्छाभ्यां विभक्तान्यङ्गानि यस्य, एतदेवास्य ज्ञायते नान्यदवयवादिकं मुखपुच्छाभ्यां परतः। तथा च वीरभद्रः–

कतिपय आचार्य सैंहिकेयसंज्ञक राहु को मुख-पुच्छों से विभाजित अङ्गोंवाला कहते हैं। मुख-पुच्छों से जिसके अङ्ग विभक्त हों, इससे यह ज्ञात होता है कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुख और पुच्छ से अतिरिक्त इसके कोई अन्य अङ्ग नहीं होते हैं। आचार्य वीरभद्र ने जैसाकि कहा है :–

सिंहिकातनयस्यास्य राहोः पुच्छमुखादृते।
नान्यदस्ति परं बाहुकटिपादकरादिकम् ॥ इति ॥

सिंहिका-पुत्र राहु के मुख और पुच्छ के अतिरिक्त बाहु, कटि, चरण और हाथ इत्यादि अन्य कोई अङ्ग नहीं होते हैं।

भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये। अन्ये आचार्या भुजङ्गमाकारं सर्पाकृतिं च वदन्ति कथयन्ति। यथा सर्परूपो राहुः। तथा च वसिष्ठः–

अन्य आचार्य राहु को सर्पाकार कहते हैं। राहु सर्पाकृति होता है, जैसाकि आचार्य वशिष्ठ ने कहा है :–

भषट्कान्तरितो राहुः सूर्याचन्द्रमसावुभौ।
छादयत्युरगाकारो वरदानात् स्वयम्भुवः ॥ इति ॥

राहु छः राशियों के अन्तर पर रहता हुआ सर्पाकार होकर सूर्य-चन्द्र इन दोनों को ब्रह्मा के वरदान से आच्छादित करता है।

कथयन्त्यमूर्तमपर इति। अपरेऽन्ये पुनरमूर्तं मूर्त्तिरहितं तमोमयमन्धकारमयं राहुं कथयन्ति वदन्ति। तथा च देवल :–

अन्य आचार्यों के मत से राहु मूर्तिरहित केवल अन्धकारमय कहा गया है। जैसाकि आचार्य देवल ने कहा है :–

अन्धकारमयो राहुर्मेघखण्ड इवोत्थितः।
आच्छादयति सोमार्कौ पर्वकाले ह्युपस्थिते ॥ इति ॥ ३ ॥

राहु बादल के टुकड़ों के समान, अन्धकारमय उत्पन्न होकर ग्रहणकाल के उपस्थित होने पर चन्द्रमा और सूर्य को आच्छदित करता है। ॥३॥

अधुनैतत्परमतं दूषयितुमाह :–

यदि मूर्त्तो भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः।
भगणार्द्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥

अब इससे भिन्न मत का दोष कहते हैं :–

यदि राहु मूर्तिमान् होकर अथवा शिरोमण्डलवाला नियत गति से राशियों पर चलता है, तो छः राशियों के अन्तर पर कैसे ग्रहण करता है ? ॥४॥

यद्यसौ राहुर्मूर्त्तो मूर्त्तिमान् सावयवः। भविचारी भेषु राशिषु नक्षत्रेषु विचरणशीलः। शिरोऽथवा भवति, शिरोमान् राहुर्मण्डलवान् वा तन्नियतचारो निश्चितगतिर्भूत्वा कथं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगणार्द्धेन राशिषट्केनान्तरितौ व्यवहितौ सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति। किलास्य तिस्रो लिप्ता एकादशविलिप्ताश्च गणितस्कन्धोक्ता नियता गतिर्यस्य नियतचारस्तस्य षड्राश्यन्तरिता गतिर्न सम्भाव्यते अर्कादीनां यथेति ॥४॥

यदि यह राहु अङ्गोंसहित रूपवान् है, राशियों तथा नक्षत्रों में गतिशील है, अथवा शिरवाला मण्डलाकार है, अथवा निश्चित गतिवाला है, तो इस प्रकार छः राशियों के अन्तर पर रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण कैसे करता है ? गणितस्कन्ध के अनुसार राहु की निश्चित गति तीन कला ग्यारह विकला है। इस प्रकार निश्चित गतिशील इस राहु की छः राशियों के अन्तर पर गति कथमपि सम्भावित नहीं है, जिस प्रकार सूर्यादि ग्रहों की होती है। ॥४॥

अन्यद् दूषणान्तरमाह :—

अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य।
पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥५॥

अन्य मतों का दोष कहते हैं :—

यदि राहु की अनिश्चित गति है, तो निश्चित संख्या में (गणितीय विधि से राश्यादि) उसका ज्ञान कैसे हो सकता है। यदि मुख और पुच्छ से युक्त है, तो (छः राशियों के अतिरिक्त) मध्यवर्ती राशियों में क्यों नहीं ग्रहण करता है ? ॥५॥

यद्यसौ राहुरनियतचारोऽनिश्चितगतिः केत्वादिरिव तत्कथं तस्य संख्यया गणितेनोपलब्धिरुपलम्भनम्। कथं ज्ञायते यथास्मिन् राशौ राहुरवस्थित इति।

यदि यह राहु; केतुओं (धूमकेतु आदि) की तरह अनिश्चित गति का है, तो गणितागत संख्याओं से राश्यादि की प्राप्ति कैसे होती है? अर्थात् कैसे जाना जाता है कि राहु इस (अमुक) राशि में स्थित है ?

अथवा पुच्छाननाभिधानो मुखपुच्छविभक्ताङ्गस्तदान्तरेण मध्येन कथं न गृह्णाति। यथा षड्राश्यन्तरितौ गृह्णाति तथा राशिद्वयेन राशित्रयेण राशिचतुष्केण राशिपञ्चकेन वा कस्माद्वेतोर्न गृह्णाति ॥५॥

अथवा मुख और पुच्छों से विभाजित अङ्गोंवाला है, तो मध्य से क्यों नहीं ग्रहण करता है ? अर्थात् जिस प्रकार छः राशियों के अन्तर पर ग्रहण करता है, उसी प्रकार दो, तीन, चार अथवा पाँच के अन्तर पर किस कारण ग्रहण नहीं करता ? ॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यदपि दूषणमाह :—

अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्द्धम् ॥६॥

और भी दोष कहते हैं :—

यदि राहु सर्पाकार है और मुख अथवा पुच्छ से ग्रहण करता है तो मुख और पुच्छ के मध्यवर्ती छः राशियों के अन्तर पर क्यों नहीं ग्रहण करता है?॥६॥

अथशब्दो विकल्पार्थे। तुशब्दः पादपूरणे। यदि राहुर्भुजगेन्द्ररूपः सर्पाकारः। स च षड्राश्यन्तरितावर्कचन्द्रौ पुच्छेन लाङ्गूलेन मुखेन वदनेन वा गृह्णाति। एवं चेद् मुखपुच्छान्तरसंस्थं मुखपुच्छमध्यवर्ति भगणाऽर्द्धं राशिषट्कं कस्माद्धेतोर्न स्थगयति नाच्छादयति। किलैतदुपपद्यत इति ॥६॥

यहाँ पर 'अथ' शब्द विकल्प के लिए और 'तु' शब्द पादपूर्ति हेतु स्थित है। यदि राहु सर्पाकार है, और वह छः राशियों के अन्तर पर रवि-चन्द्र को पुच्छ से अथवा मुख से ग्रहण करता है, तो इस स्थिति में मुख-पुच्छ के मध्यवर्ती छः राशि को किस कारण आच्छादित नहीं करता है? ॥६॥

अथ राहुद्वयमप्यस्ति तत्रैको नियतचारः, अन्योऽनियतचारः। यश्चानियतचारः स षड्राश्यन्तरितयोरर्कचन्द्रयोर्मुखेन ग्रहणं करोतीत्येतत्प्रतिषेधयन्नाह :—

राहु दो प्रकार का होता है, एक निश्चित गति का और दूसरा अनिश्चित गतिवाला। जो अनिश्चित गतिमान है वह छः राशियों के अन्तर पर स्थित रवि-चन्द्र का मुख से ग्रहण करता है, इस मत का निषेध करते हुए कहते हैं :—

राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥७॥

यदि दो राहु है तो चन्द्रमा के अस्त-ग्रहण अथवा उदित-ग्रहण होने पर उसी प्रकार गतिशील सूर्य भी ग्रस्त दिखायी पड़ना चाहिए। ॥७॥

यदि चेद्राहुद्वयं स्वर्भानुयुगम्। स्याद्भवेत्। तच्चन्द्रे शशिनि ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवा दिने ग्रस्त उदिते सति सूर्योऽपि रविरपि तत्समगतिना सूर्यतुल्यगतिनान्येनापरेण द्वितीयेन राहुणा ग्रस्तश्छादितो दृश्येत अवलोक्येत च। एतदुक्तं भवति— यदा ग्रस्तश्चन्द्रमा उदेति ग्रस्तो वास्तमेति तदा पूर्वापरहरिजसक्तस्येन्दोरर्कस्यापि पूर्वापरक्षितिजासक्तिर्भवति षड्राश्यन्तरितत्वादुपपद्यते। द्वावपि क्षितिजादुपरि स्थितौ दृश्यौ भवतः। पर्वकालस्य च सम्भवादेकेनानियतचारेण चन्द्र आच्छाद्यते परेण च नियतचारेण षड्राश्यन्तरितः सूर्य इति ॥७॥

यदि राहु दो हो, तो चन्द्रमा के ग्रस्तास्त अथवा ग्रस्तोदित होने पर सूर्य भी समान गतिवाले दूसरे राहु के द्वारा आच्छादित दिखलायी पड़ता। कहने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभिप्राय यह है, कि ग्रहण के ग्रस्त चन्द्रमा उदय के अथवा ग्रस्त चन्द्रमा अस्त हो तो पूर्वापर क्षितिज में लम्बरूप सूर्य और चन्द्रमा की छः राशियों के अन्तर पर पूर्वापर क्षितिज में स्थिति रहती है। दोनों ही क्षितिज के ऊपर दृश्य होते हैं। ग्रहणकाल उपस्थित होने पर एक ऊर्ध्वगतिवाले के द्वारा चन्द्रमा आच्छादित होता है और दूसरे निम्नगतिवाले (राहु) के द्वारा सूर्य छः राशि के अन्तर पर ग्रस्त होना चाहिए। ॥७॥

एवं मतान्तराणि निराकृत्य स्वसिद्धान्तमाह :—

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चाद्वेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥८॥

इसप्रकार मतान्तरों को निरस्तकर अपना सिद्धान्त कहते हैं :—

चन्द्रमा स्वयं के ग्रहण में स्वयं ही पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है, और रविग्रहण में छाया रविपथ में प्रवेश करती है। इस कारण से चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

यदि राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणं तदिन्दोः प्राक्ग्रहणं पश्चात् सूर्यस्येति तत्किमिति राहोरेकरूपत्त्वात् ? अत्राऽऽह भूच्छायामिति। इन्दुश्चन्द्रः स्वग्रहणे। आत्मीयोपरागे भूच्छायां प्रविशति। अर्कग्रहणे सूर्योपरागे भास्करमर्कं प्रविशति, यतोऽर्कात् सप्तमराशौ भूच्छाया भवति चन्द्रश्च पौर्णमास्यन्ते तत्रैव भवति। स च शीघ्रत्वात् पूर्वाभिमुखो भूच्छायां प्रविशति। तत्र प्रविष्टस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतस्तस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रार्कावेकराशिगौ भवतः। तत्र चन्द्रमाः शीघ्रगतित्वात् पश्चादागत्यामावास्यान्तेऽर्कतलं प्रविशत्यतोऽविक्षिप्तः स एवाधःस्थोऽर्कमाच्छादयति। अतः पश्चात् सूर्यस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतोऽस्माद्धेतोरिन्दोश्चन्द्रस्य पश्चादर्द्धात् प्रग्रहणं न भवति। भानोरादित्यस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं न भवतीति ॥८॥

यदि सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहुकृत होता है, तो चन्द्रमा के पूर्वभाग का ग्रहण और सूर्य के पश्चिमभाग का ग्रहण क्यों होता है ? जबकि राहु एक रूप ही होता है ? इस सम्बन्ध में कहते हैं :— चन्द्रमा निजग्रहण में भूछाया में प्रवेश करता है। सूर्य ग्रहण में पूर्व को छाया प्राप्त होती है, क्यों कि सूर्य से सप्तम राशि पर भूछाया भ्रमण करती है और चन्द्रमा पूर्णिमान्त पर वहीं होता है। वह शीघ्र गतिमान् होने के कारण पूर्वाभिमुख चलता हुआ भूछाया में प्रवेश करता है। वहाँ पर प्रविष्ट होने वाले का खण्ड नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए उसका (चन्द्र का) पूर्वार्ध से ग्रहण होता है। सूर्यग्रहण में रवि-चन्द्र एक ही राशि में होते हैं। वहाँ चन्द्रमा शीघ्रगति के कारण पश्चिम से आकर अमान्तकाल में सूर्यतल पर प्रवेश करता है। इसलिए वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रक्षिप्त होकर रवितल के अधोभाग को आच्छादित करता है। इस कारण सूर्य का पश्चिमार्ध से खण्ड नहीं होता है। इस कारण चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से ग्रहण नहीं होता है, और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

अथ रात्रौ कुतो भूच्छाया भवत्येतत्प्रतिपादयितुमाह :–

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य॥९॥

रात्रि में भूच्छाया कैसे होती है ? इसका प्रतिपादन करते हैं :–

जिस प्रकार वृक्ष की अपनी छाया एक पार्श्व में अतिदीर्घ होती है, उसी प्रकार सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया रात्रि में उत्पन्न होती है। ॥९॥

यथा वृक्षस्य तरोः स्वच्छायाऽऽत्मीया भा दिनेशस्याऽऽदित्यस्याऽऽवरणवशात् छादनहेतोरेकस्मिन् पार्श्वे भवति दीर्घचयाऽऽयामिनी सूर्याद्विपक्षायां दिशि भवति। तद्वत्तेनैव प्रकारेण निशि निशि रात्रौ रात्रौ दिनेशस्याऽऽवरणवशाद् भूर्यतः सूर्यमाच्छादयति। अतो हेतोरेकपार्श्वे भवति दीर्घचया॥९॥

जिस प्रकार किसी वृक्ष की अपनी छाया सूर्य के आवरणवश एक पार्श्व में सूर्य के विपरीत दिशा में अतिदीर्घ (लम्बी) होती है, उसी प्रकार प्रत्येक रात सूर्य के आवरणवश पृथ्वी सूर्य को आच्छादित करती है। इस कारण एक पार्श्व में लम्बी छाया होती है। ॥९॥

यद्येवं तत्प्रतिमासं किमिति चन्द्रस्य ग्रहणं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयन्नाह :–

सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः।
चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति॥१०॥

ऐसा होने पर प्रत्येक मास में चन्द्रग्रहण न होने के कारण का प्रतिपादन करते हैं :–

सूर्य से सप्तम राशि में स्थित चन्द्रमा यदि उत्तर अथवा दक्षिण अधिक विचलित नहीं होता है, तब चन्द्रमा भूछाया में पूर्वाभिमुख होकर प्रवेश करता है ॥१०॥

यदि चन्द्रः शशी सूर्यादादित्यात् सप्तमे राशौ स्थितो भूच्छायात उत्तरेण दक्षिणेन च नात्यर्थं याति। स्वल्पेन विक्षेपेण विक्षिप्तो भवतीत्यर्थः। तदा पूर्वाभिमुखो गच्छन् प्राचीं दिशमनुसरन्नौर्वीं भूच्छायां प्रविशति नान्यथेति। यतो भूच्छाया मूलाद्बृहती भवत्यग्रादल्पा। सा च चन्द्रकक्षाया ऊर्ध्वं याति। तत्रस्थश्चन्द्रमा अत्यल्पविक्षिप्तो यदा भवति तदा सर्वग्रास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभिप्राय यह है, कि ग्रहण से ग्रस्त चन्द्रमा उदय ले अथवा ग्रस्त चन्द्रमा अस्त हो तो पूर्वापर क्षितिज में संलग्न सूर्य और चन्द्रमा की छः राशियों के अन्तर पर पूर्वापर क्षितिज में स्थिति रहती है। दोनों ही क्षितिज के ऊपर दृश्य होते हैं। ग्रहणकाल उपस्थित होने पर एक अनियत गतिवाले के द्वारा चन्द्रमा आच्छादित होता है और दूसरे नियतगतिवाले (राहु) के द्वारा सूर्य छः राशि के अन्तर पर ग्रस्त होना चाहिए। ॥७॥

एवं मतान्तराणि निराकृत्य स्वसिद्धान्तमाह :–

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥८॥

इसप्रकार मतान्तरों को निरस्तकर अपना सिद्धान्त कहते हैं :–

चन्द्रमा स्वयं के ग्रहण में स्वयं ही पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है, और रविग्रहण में छाया रविपथ में प्रवेश करती है। इस कारण से चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

यदि राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणं तदिन्दोः प्राक्प्रग्रहणं पश्चात् सूर्यस्येति तत्किमिति राहोरेकरूपत्वात् ? अत्राऽऽह भूच्छायामिति। इन्दुश्चन्द्रः स्वग्रहणे। आत्मीयोपरागे भूच्छायां प्रविशति। अर्कग्रहणे सूर्योपरागे भास्करमर्कं प्रविशति, यतोऽर्कात् सप्तमराशौ भूच्छाया भ्रमति चन्द्रश्च पौर्णमास्यन्ते तत्रैव भवति। स च शीघ्रत्वात् पूर्वाभिमुखो भूच्छायां प्रविशति। तत्र प्रविष्टस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतस्तस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रार्कावेकराशिगौ भवतः। तत्र चन्द्रमाः शीघ्रगतित्वात् पश्चादागत्यामावास्यान्तेऽर्कतलं प्रविशत्यतोऽविक्षिप्तः स एवाधःस्थोऽर्कमाच्छादयति। अतः पश्चात् सूर्यस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतोऽस्माद्धेतोरिन्दोश्चन्द्रस्य पश्चादर्द्धात् प्रग्रहणं न भवति। भानोरादित्यस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं न भवतीति ॥८॥

यदि सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहुकृत होता है, तो चन्द्रमा के पूर्वभाग का ग्रहण और सूर्य के पश्चिमभाग का ग्रहण क्यों होता है ? जबकि राहु एक रूप ही होता है ? इस सम्बन्ध में कहते हैं :– चन्द्रमा निजग्रहण में भूछाया में प्रवेश करता है। सूर्य ग्रहण में पूर्व को छाया प्राप्त होती है, क्यों कि सूर्य से सप्तम राशि पर भूछाया भ्रमण करती है और चन्द्रमा पूर्णिमान्त पर वहीं होता है। वह शीघ्र गतिमान् होने के कारण पूर्वाभिमुख चलता हुआ भूछाया में प्रवेश करता है। वहाँ पर प्रविष्ट होने वाले का खण्ड नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए उसका (चन्द्र का) पूर्वार्ध से ग्रहण होता है। सूर्यग्रहण में रवि-चन्द्र एक ही राशि में होते हैं। वहाँ चन्द्रमा शीघ्रगति के कारण पश्चिम से आकर अमान्तकाल में सूर्यतल पर प्रवेश करता है। इसलिए वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रक्षिप्त होकर रवितल के अधोभाग को आच्छादित करता है। इस कारण सूर्य का पश्चिमार्ध से खण्ड नहीं होता है। इस कारण चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से ग्रहण नहीं होता है, और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

अथ रात्रौ कुतो भूच्छाया भवत्येतत्प्रतिपादयितुमाह :–

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥९॥

रात्रि में भूच्छाया कैसे होती है ? इसका प्रतिपादन करते हैं :–

जिस प्रकार वृक्ष की अपनी छाया एक पार्श्व में अतिदीर्घ होती है, उसी प्रकार सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया रात्रि में उत्पन्न होती है। ॥९॥

यथा वृक्षस्य तरोः स्वच्छायाऽऽत्मीया भा दिनेशस्याऽऽदित्यस्याऽऽवरणवशात् छादनहेतोरेकस्मिन् पार्श्वे भवति दीर्घचयाऽऽयामिनी सूर्याद्विपक्षायां दिशि भवति। तद्वत्तेनैव प्रकारेण निशि निशि रात्रौ रात्रौ दिनेशस्याऽऽवरणवशाद् भूर्यतः सूर्यमाच्छादयति। अतो हेतोरेकपार्श्वे भवति दीर्घचया ॥९॥

जिस प्रकार किसी वृक्ष की अपनी छाया सूर्य के आवरणवश एक पार्श्व में सूर्य के विपरीत दिशा में अतिदीर्घ (लम्बी) होती है, उसी प्रकार प्रत्येक रात सूर्य के आवरणवश पृथ्वी सूर्य को आच्छादित करती है। इस कारण एक पार्श्व में लम्बी छाया होती है। ॥९॥

यद्येवं तत्प्रतिमासं किमिति चन्द्रस्य ग्रहणं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयन्नाह :–

सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः।
चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥१०॥

ऐसा होने पर प्रत्येक मास में चन्द्रग्रहण न होने के कारण का प्रतिपादन करते हैं :–

सूर्य से सप्तम राशि में स्थित चन्द्रमा यदि उत्तर अथवा दक्षिण अधिक विचलित नहीं होता है, तब चन्द्रमा भूछाया में पूर्वाभिमुख होकर प्रवेश करता है ॥१०॥

यदि चन्द्रः शशी सूर्यादादित्यात् सप्तमे राशौ स्थितो भूच्छायात उत्तरेण दक्षिणेन च नात्यर्थं याति। स्वल्पेन विक्षेपेण विक्षिप्तो भवतीत्यर्थः। तदा पूर्वाभिमुखो गच्छन् प्राचीं दिशमनुसरन्नौर्वीं भूच्छायां प्रविशति नान्यथेति। यतो भूच्छाया मूलाद्बृहती भवत्यग्रादल्पा। सा च चन्द्रकक्षाया ऊर्ध्वं याति। तत्रस्थश्चन्द्रमा अत्यल्पविक्षिप्तो यदा भवति तदा सर्वग्रास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभिप्राय यह है, कि ग्रहण से ग्रस्त चन्द्रमा उदय ले अथवा ग्रस्त चन्द्रमा अस्त हो तो पूर्वापर क्षितिज में संलग्न सूर्य और चन्द्रमा की छः राशियों के अन्तर पर पूर्वापर क्षितिज में स्थिति रहती है। दोनों ही क्षितिज के ऊपर दृश्य होते हैं। ग्रहणकाल उपस्थित होने पर एक अनियत गतिवाले के द्वारा चन्द्रमा आच्छादित होता है और दूसरे नियतगतिवाले (राहु) के द्वारा सूर्य छः राशि के अन्तर पर ग्रस्त होना चाहिए। ॥७॥

एवं मतान्तराणि निराकृत्य स्वसिद्धान्तमाह :–

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥८॥

इसप्रकार मतान्तरों को निरस्तकर अपना सिद्धान्त कहते हैं :–

चन्द्रमा स्वयं के ग्रहण में स्वयं ही पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है, और रविग्रहण में छाया रविपथ में प्रवेश करती है। इस कारण से चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

यदि राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणं तदिन्दोः प्राक्प्रग्रहणं पश्चात् सूर्यस्येति तत्किमिति राहोरेकरूपत्त्वात् ? अत्राऽऽह भूच्छायामिति। इन्दुश्चन्द्रः स्वग्रहणे। आत्मीयोपरागे भूच्छायां प्रविशति। अर्कग्रहणे सूर्योपरागे भास्करमर्कं प्रविशति, यतोऽर्कात् सप्तमराशौ भूच्छाया भ्रमति चन्द्रश्च पौर्णमास्यन्ते तत्रैव भवति। स च शीघ्रत्वात् पूर्वाभिमुखो भूच्छायां प्रविशति। तत्र प्रविष्टस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतस्तस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रार्कावेकराशिगौ भवतः। तत्र चन्द्रमाः शीघ्रगतित्वात् पश्चादागत्यामावास्यान्तेऽर्कतलं प्रविशत्यतोऽविक्षिप्तः स एवाधःस्थोऽर्कमाच्छादयति। अतः पश्चात् सूर्यस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतोऽस्माद्धेतोरिन्दोश्चन्द्रस्य पश्चादर्द्धात् प्रग्रहणं न भवति। भानोरादित्यस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं न भवतीति ॥८॥

यदि सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहुकृत होता है, तो चन्द्रमा के पूर्वभाग का ग्रहण और सूर्य के पश्चिमभाग का ग्रहण क्यों होता है ? जबकि राहु एक रूप ही होता है ? इस सम्बन्ध में कहते हैं :– चन्द्रमा निजग्रहण में भूछाया में प्रवेश करता है। सूर्य ग्रहण में पूर्व को छाया प्राप्त होती है, क्यों कि सूर्य से सप्तम राशि पर भूछाया भ्रमण करती है और चन्द्रमा पूर्णिमान्त पर वहीं होता है। वह शीघ्र गतिमान् होने के कारण पूर्वाभिमुख चलता हुआ भूछाया में प्रवेश करता है। वहाँ पर प्रविष्ट होने वाले का खण्ड नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए उसका (चन्द्र का) पूर्वार्ध से ग्रहण होता है। सूर्यग्रहण में रवि-चन्द्र एक ही राशि में होते हैं। वहाँ चन्द्रमा शीघ्रगति के कारण पश्चिम से आकर अमान्तकाल में सूर्यतल पर प्रवेश करता है। इसलिए वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रक्षिप्त होकर रवितल के अधोभाग को आच्छादित करता है। इस कारण सूर्य का पश्चिमार्ध से खण्ड नहीं होता है। इस कारण चन्द्रमा का पश्चिमार्ध से ग्रहण नहीं होता है, और सूर्य का पूर्वार्ध से ग्रहण नहीं होता है। ॥८॥

अथ रात्रौ कुतो भूच्छाया भवत्येतत्प्रतिपादयितुमाह :–

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥९॥

रात्रि में भूच्छाया कैसे होती है ? इसका प्रतिपादन करते हैं :–

जिस प्रकार वृक्ष की अपनी छाया एक पार्श्व में अतिदीर्घ होती है, उसी प्रकार सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया रात्रि में उत्पन्न होती है। ॥९॥

यथा वृक्षस्य तरोः स्वच्छायाऽऽत्मीया भा दिनेशस्याऽऽदित्यस्याऽऽवरणवशात् छादनहेतोरेकस्मिन् पार्श्वे भवति दीर्घचयाऽऽयामिनी सूर्याद्विपक्षायां दिशि भवति। तद्वत्तेनैव प्रकारेण निशि निशि रात्रौ रात्रौ दिनेशस्याऽऽवरणवशाद् भूर्यतः सूर्यमाच्छादयति। अतो हेतोरेकपार्श्वे भवति दीर्घचया ॥९॥

जिस प्रकार किसी वृक्ष की अपनी छाया सूर्य के आवरणवश एक पार्श्व में सूर्य के विपरीत दिशा में अतिदीर्घ (लम्बी) होती है, उसी प्रकार प्रत्येक रात सूर्य के आवरणवश पृथ्वी सूर्य को आच्छादित करती है। इस कारण एक पार्श्व में लम्बी छाया होती है। ॥९॥

यद्येवं तत्प्रतिमासं किमिति चन्द्रस्य ग्रहणं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयन्नाह :–

सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः।
चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥१०॥

ऐसा होने पर प्रत्येक मास में चन्द्रग्रहण न होने के कारण का प्रतिपादन करते हैं :–

सूर्य से सप्तम राशि में स्थित चन्द्रमा यदि उत्तर अथवा दक्षिण अधिक विचलित नहीं होता है, तब चन्द्रमा भूछाया में पूर्वाभिमुख होकर प्रवेश करता है ॥१०॥

यदि चन्द्रः शशी सूर्यादादित्यात् सप्तमे राशौ स्थितो भूच्छायात उत्तरेण दक्षिणेन च नात्यर्थं याति। स्वल्पेन विक्षेपेण विक्षिप्तो भवतीत्यर्थः। तदा पूर्वाभिमुखो गच्छन् प्राचीं दिशमनुसरन्नौर्वीं भूच्छायां प्रविशति नान्यथेति। यतो भूच्छाया मूलाद्बृहती भवत्यग्रादल्पा। सा च चन्द्रकक्षाया ऊर्ध्वं याति। तत्रस्थश्चन्द्रमा अत्यल्पविक्षिप्तो यदा भवति तदा सर्वग्रास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पद्यते। विक्षेपे सति तदनुसारेण चतुर्भागग्रासप्रमाणमर्द्धग्रासप्रमाणं पादोनग्रासप्रमाणं ग्रासाभावो वा स्वबुद्ध्योह्यमिति। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

यदि चन्द्रमा सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होकर भूच्छाया से उत्तर अथवा दक्षिण अधिक नहीं जाता है, अर्थात् स्वल्प शर से अन्तरित रहता है, तब पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूच्छाया में प्रवेश करता है, इससे भिन्न स्थिति में नहीं। यतः पृथ्वी की छाया मूलभाग में विस्तृत और अग्रभाग में सङ्कुचित होती है तथा वह चन्द्रकक्षा के ऊपर जाती है। वहाँ पर स्थित चन्द्रमा जब अत्यल्प अन्तरित होता है। तब वहाँ सर्वग्रास ग्रहण उत्पन्न होता है। विक्षेप (शर) होने पर उसके अनुसार ही चतुर्थांश ग्रासप्रमाण, अर्धग्रासप्रमाण, चतुर्थांशहीन ग्रासप्रमाण अथवा ग्रासाभाव होता है, इसका स्वविवेक से निर्णय करना चाहिए। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

भूच्छायां शशिकक्ष्यागां रवौ भार्द्धान्तरस्थिते।
यदा विशत्यविक्षिप्तश्चन्द्रः स्यात्तद्ग्रहस्तदा॥ इति॥१०॥

सूर्य के छः राशि के अन्तर पर पृथ्वी की छाया चन्द्रकक्षा में जाती है, और उसमें जब चन्द्रमा शररहित प्रवेश करता है; तब उसका (चन्द्र का) ग्रहण होता है। ॥१०॥

अथ चन्द्रग्रहणं सर्वत्रैकरूपं दृश्यते अर्कग्रहणं प्रतिदेशमन्यादृशमित्येतत्प्रतिपादयन्नाह :–

चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति रविमम्बुदवत् समागतः पश्चात्।
प्रतिदेशहतश्चित्रं दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम्॥११॥

चन्द्रग्रहण सर्वत्र एकरूप और सूर्यग्रहण प्रतिदेश में विभिन्न दिखायी पड़ता है, इसका प्रतिपादन करते हैं :–

रविमण्डल के अधःस्थित चन्द्रमा पश्चिमभाग से बादल की तरह आकर आच्छदित करता है। इस कारण ही दृष्टिवश प्रत्येक स्थान के लिए सूर्यग्रहण विभिन्न प्रकार का दिखायी पड़ता है। ॥११॥

आदित्यादधःस्थश्चन्द्रः। स च पश्चात् पश्चिमभागात् समागतोऽम्बुदवन्मेघखण्डवद्बिम्बादित्यं स्थगयत्याच्छादयति। अतोऽस्माद्धेतोः प्रतिदेशं देशं देशं प्रति भास्करग्रहणं सूर्योपरागं दृष्टिवशाद्दर्शनहेतोश्चित्रं नानाप्रकारं दृश्यतेऽवलोक्यते। क्वचित्सर्वग्रहणं क्वचित्खण्डग्रहणं क्वचिद्ग्रहणाभावः। यथा मेघखण्डाच्छादितमर्कबिम्बं समाधोवर्त्तिनां सर्वमेवादृश्यं

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पार्श्ववर्त्तिनां केषाञ्चिदर्द्धदृश्यं केषाञ्चिच्चतुर्थभागदृश्यमन्येषां सर्वदृश्यमिति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते :–

सूर्य से नीचे स्थित चन्द्रमा पश्चिमभाग से आता हुआ, मेघखण्ड की तरह सूर्य को आच्छादित करता है। इसी कारण प्रत्येक देश में सूर्यग्रहण (विभिन्न प्रदेश के द्रष्टा के) दृष्टिवश विविध प्रकार का देखा जाता है। कहीं पर पूर्ण ग्रहण, कहीं पर खण्डग्रहण और कहीं पर ग्रहण का अभाव होता है। जिस प्रकार खण्ड से आच्छादित सूर्यबिम्ब ठीक नीचे रहनेवाले के लिए पूर्ण अदृश्य, पार्श्ववर्ती कुछ लोगों के लिए अर्धदृश्य कुछ के लिए चतुर्थांश और अन्यों के लिए पूर्णदृश्य होता है। जैसाकि सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है :–

[1]इन्दुना छादितं सूर्यमधोऽविक्षिप्तगामिना।
न पश्यति यदा लोकस्तदा स्याद्भास्करग्रहः॥
तमोमयस्य तमसो रविरश्मिपलायिनः।
भूच्छाया चन्द्रबिम्बं च स्थाने द्वे परिकल्पिते॥ इति।

सूर्य के नीचे जाते हुए चन्द्रमा के द्वारा आच्छादित होने पर जब लोग उस (सूर्य) को नहीं देखते हैं, वही सूर्यग्रहण कहा जाता है। सूर्य किरणों से उत्पन्न अन्धकारमयी भूभा में चन्द्रबिम्ब का प्रवेश होने पर चन्द्रग्रहण होता है। इस प्रकार दो भिन्न स्थितियों में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की प्रवृत्ति होती है।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

भूच्छायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्द्धात्।
विक्षेपो यद्यूनः शुक्लेतरपञ्चदश्यन्ते॥ इति॥ ११॥

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

चन्द्रमा को पृथ्वी की छाया और सूर्य को चन्द्रमा की छाया आच्छादित करती है। बिम्बान्तरमान के योगार्ध से यदि अल्प विक्षेप (शर) होता है, तभी अमावास्या और पूर्णिमा के अन्तभाग में ग्रहण होता है। ॥११॥

अथार्द्धच्छन्नस्य चन्द्रमसः कुण्ठविषाणता भवत्यर्द्धच्छन्नस्यार्कस्य तीक्ष्णविषाणता भवति तत्किमेकत्वाद् ग्राहकस्येत्येतत्प्रतिपादयितुमाह :–

ग्राहक के एक ही होने पर अर्धग्रस्त चन्द्रमा के श्रृङ्ग में कुण्ठा होती है और अर्धग्रस्त सूर्य के श्रृङ्ग में तीक्ष्णता होती है, इसका प्रतिपादन करते है :–

---

१. सम्प्रति प्रचलितसूर्यसिद्धान्ते नोपलभ्यत इदं पद्यद्वयम्।
२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्द्धसंछन्नः।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥१२॥

चन्द्रमा का छादक महान् होने से अर्धग्रस्त होने पर उसका श्रृङ्ग कुण्ठित होता है। सूर्य का आवरण लघु होने के कारण तीक्ष्ण श्रृङ्ग होता है। ॥१२॥

इन्दोश्चन्द्रस्य महत् अतिबृहत् किञ्चिदावरणमाच्छादकः। ततस्तस्माद्धेतोरर्द्धसंछन्नोऽर्द्धग्रस्तः कुण्ठविषाणो भग्नशृङ्गो भवति।

चन्द्रमा का आवरण अधिक बृहद् होता है। इस कारण अर्धग्रस्त होने पर वह भग्न-श्रृङ्ग होता है।

रवेदादित्यस्य स्वल्पमावरणम्। यतो यस्मादर्द्धसंछन्नो रविस्तीक्ष्णविषाणस्तीक्ष्णशृङ्गो भवति। एतच्च भूच्छायाचन्द्रयोरेव सम्भवति। परिलेखकरणेनात्रोपपत्तिरिति। तथा चाऽऽचार्य एवं पञ्चसिद्धान्तिकायाम् :–

सूर्य का आवरण स्वल्प होता है, इस कारण अर्धग्रस्त रवि का तीक्ष्ण श्रृङ्ग होता है। यह भूच्छाया और चन्द्रमा के (आच्छादक) के कारण ही होता है। परिलेख-प्रक्रिया के द्वारा इसकी उपपत्ति होती है। जैसाकि आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है :–

स्वं[1] भूच्छायामिन्दुः स्पृशत्यतः स्पृश्यते न पश्चार्द्धे।
भानुग्रहेऽर्कमिन्दोः प्राक् प्रग्रहणं रवेर्नातः॥

भूच्छाया को चन्द्रमा स्वयं स्पर्श करता है, इसलिए उसका पश्चिमार्ध से स्पर्श नहीं होता है। सूर्यग्रहण में चन्द्रमा पूर्वभाग से सूर्य को स्पर्श करता है, अतः रवि का पूर्वभाग से ग्रहण नहीं होता है।

तथा च [2]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

महदिन्दोरावरणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्द्धसंछन्नः।
अर्द्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्णविषाणस्ततोऽस्याल्पम् ॥ इति ॥ १२॥

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

चन्द्रमा का आवरण बृहद् होने एवं अर्धग्रस्त होने से श्रृङ्ग कुण्ठित होता है। सूर्य का अल्प आवरण होने एवं अर्धग्रस्त होने के कारण श्रृङ्ग में तीक्ष्णता होती है। ॥१२॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ६ अध्यायस्य १४ श्लोकः। तत्र "स्पृशति तथा स्पृशति" इति द्वितीयपादे पाठः।

२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्न ग्रहणमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह :–

एवमुपरागकारणमुक्तम् दिव्यदृग्भिराचार्यैः।
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः॥१३॥

रवि-चन्द्रग्रहण राहुकृत नहीं होता है। इसका प्रतिपादन करते हैं :–

इस प्रकार ग्रहण के कारण को दिव्य दृष्टिवाले आचार्यों ने कहा है। इस ग्रहण में राहु कारण नहीं होता है, इस प्रकार शास्त्रों में सद्भावनापूर्वक कहा गया है। ॥१३॥

एवमनेन प्रकारेणेदमुपरागकारणं ग्रहणनिमित्तं दिव्यदृग्भिराचार्यैरुक्तं दिव्यज्ञानसंयुक्ता दृष्टिर्येषां ते दिव्यदृशस्तैर्दिव्यदृग्भिरुक्तं कथितम्। अस्मिन्नुपरागे राहुरकारणमनिमित्तमिति शास्त्रसद्भावः परमार्थ उक्त कथितः। इति शब्दो निश्चयार्थे। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

इस प्रकार से ग्रहण के कारण को दिव्यज्ञान से संयुक्त दृष्टिवाले आचार्यों ने कहा है। इस ग्रहण में राहु निमित्त नहीं होता है, ऐसा शास्त्रों ने परमार्थतः कहा है। यहाँ पर 'इति' शब्द निश्चयात्मक अर्थ के लिए है।

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

यदि राहुः प्राग्भागादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।
स्थित्यर्द्धं यदिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य॥
किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।
ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणमर्केन्द्वोः॥इति॥

यदि राहु पूर्वभाग से चन्द्रमा को आच्छादित करता है, तो उसी प्रकार सूर्य को क्यों नहीं आच्छादित करता ? चन्द्रमा का स्थित्यर्ध जिस प्रकार बड़ा होता है उसी प्रकार सूर्य का क्यों नहीं होता है ? क्या प्रत्येक समय सूर्य और राहु भिन्न-भिन्न होते हैं, जिसके कारण सूर्यग्रहण का ग्रास विभिन्न प्रकार का होता है। ऐसा न होने पर सूर्य-चन्द्र का ग्रहण राहुकृत नहीं होता।

ननु यद्येवमर्केन्द्वोर्न राहुकृतं ग्रहणं तच्छ्रुतिसंहितालोकैः सह विरुध्यते। यतो लोके राहुकृतं ग्रहणमित्यागोपालाङ्गनादिप्रसिद्धं स्मृतिषूक्तम्।

यदि इस प्रकार से सूर्य-चन्द्र का ग्रहण राहुकृत नहीं होता है, तो श्रुति और लोक-परम्परा के साथ विरोध उत्पन्न होता है। क्योंकि लोक में ग्रहण राहुकृत होता है; ऐसी प्रसिद्धि गोपालक-अङ्गनाओं में भी प्रसिद्ध है, और ऐसा स्मृतियों में भी कहा गया है :–

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्। तथा :–

राहु के दर्शन के अतिरिक्त (बिना ग्रहण के) रात्रि-स्नान निषिद्ध है। जैसाकि :–

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु ।
स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च ॥ इति।

राहु का दर्शन, संक्रान्तिकाल, विवाह और रोग वृद्धि आदि में तथा काम्यव्रतों में रात्रि में स्नान दानादि करना चाहिए।

तथा च श्रुतौ :–

स्वर्भानुर्ह वा आसुरिः सूर्यं तमसा विव्याधेति।

जैसा कि श्रुति में कहा गया है :–

राहु (स्वर्भानु) राक्षस रूप है, जो अपने अन्धकार से सूर्य को बाधित (ग्रहण) करता है।

संहितासु तथा च गर्गः–

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥ इति।

गर्गसंहिता में इसी प्रकार कहा गया है :–

जिस नक्षत्र में गया हुआ राहु रवि-चन्द्र को ग्रस्त करता है, उस नक्षत्र में उत्पन्न जो लोग शान्ति नहीं करते हैं– उनको पीड़ा होती है।

तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :–

राहुकृतं ग्रहणद्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम्।
बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र ॥
स्मृतिषूक्तं न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्रात्रौ।
राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गङ्गासमं तोयम् ॥
स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा विव्याध वेदवाक्यमिदम् ॥ इति ॥ १३ ॥

जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा गया है :–

(रवि-चन्द्र) दोनों का ग्रहण राहु द्वारा होता है। यह गोपाल-कन्याओं में भी प्रसिद्ध है। इस समय जप, होम, स्नान का फल सिद्ध होता है, तथा बहुफलदायक रहता है। स्मृतियों में कहा गया है, कि राहुदर्शन के अतिरिक्त काल में रात्रिस्नान-नहीं करना चाहिए। सूर्य जब राहु से ग्रस्त होता है, उस समय सभी प्रकार के जल गङ्गा के समान हो जाते हैं। वेद का भी यह कथन है, कि असुर स्वर्भानु (राहु) ने सूर्य को अपने अन्धकार से आच्छादित कर दिया। ॥१३॥

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं मत्वा लोकश्रुतिस्मृतिसंहितानां यथैक्यं भवति तत्प्रतिपादनाय राहोरेव ग्राहकत्वमाह :—

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्तः।
आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ॥१४॥
तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः।
याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ॥१५॥

यह मानकर लोक-श्रुति-स्मृति और संहिताग्रन्थों में साम्यता को प्रतिपादित करने के लिए राहु की ग्राहकता को कहते हैं :—

जो यह असुर राहु है, उसके लिए वर प्रदान करते हुए ब्रह्मा ने आज्ञा दी है, कि ग्रहण के समय दिये हुए हवनीय अंश से तुम्हारा भरण होगा। इसी कारण उस समय राहु की उपचर्या (होम, दानादि) की जाती है। दक्षिणोत्तर चन्द्रमा की गति गणित-क्रिया में भी उसी के नाम से व्यवहृत होती है। ॥१४-१५॥

योऽसावसुर इति। योऽसावसुरः सैंहिकेयाख्यो राहुस्तस्य राहोर्ब्रह्मणा पितामहेन वरोऽयमाज्ञप्तो दत्तः। यथापरागे ग्रहणेऽर्कचन्द्रयोर्दत्तहुतांशेन ग्रहणकाले यद्दानं दीयते यच्च वह्नौ हूयते ततोऽसावंशो भागस्तेन दत्तहुतांशेन ते तव चाप्यायनं तर्पणं भविता भविष्यतीति।

जो यह असुर सैंहिकेय नामक राहु है, उसको ब्रह्मा द्वारा यह वर दिया गया है। जैसाकि सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में दिये गये हवनीय अंश जो दान दिये जाते हैं, वह अंश तुम्हारी भी (राहु की) तृप्ति के लिये होगा।

तस्मिन् काले ग्रहणसमयेऽस्य राहोः सान्निध्यं सन्निहितत्वं कमलजवरप्रदानाद्भवति तेन कारणेन लोके राहुरित्युपचर्यते कथ्यते। तेन भूच्छायाचन्द्रगोलौ द्वे स्थाने तस्य, निवासार्थं परिकल्पिते। तत्र स्थितत्वात् स एवाऽऽच्छादक इति सर्वत्र प्रसिद्धिः। गणिते तु पुनः शशिगतिर्याम्योत्तरा दक्षिणसौम्यविक्षेपवशात्। स च दक्षिणसौम्यविक्षेप उत्पद्यते पातवशात्। यतश्चन्द्रपात एव लोके राहुरिति प्रसिद्धः। भौमादीनां ताराग्रहाणामपि पाता विद्यन्ते। तेषामपि तद्वशात्तद्विक्षेपो भवति। तेन याम्योत्तरा गतिर्ज्ञायते। किमयं ग्रहः क्रान्त्यग्रादुत्तरेण विक्षिप्तः किं वा दक्षिणेनेति। एवं चन्द्रस्य याऽसौ दक्षिणोत्तरा गतिः पातवशात् सिध्यति, सैवापि लोके राह्वर्थेनोपचर्यते व्यवस्थाप्यते। अपिशब्दो निश्चयार्थे। एतदुक्तं भवति :— चन्द्रविक्षेपज्ञानार्थं यश्चन्द्रपातः परिकल्पितः स एव लोके राहुरित्युच्यते। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :—

उस ग्रहण के समय राहु का सान्निध्य ब्रह्मा के वरदान के कारण होता है, उसी कारण लोक में राहु की उपचर्या की जाती है। इस प्रकार भूच्छाया और चन्द्रगोल,

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये दो स्थान उसके निवास हेतु परिकल्पित किये गये हैं। वहाँ पर स्थित होने के कारण वह राहु ही आच्छादक होता है, ऐसा सर्वत्र प्रसिद्ध है। गणित में तो शर के अनुसार चन्द्रगति दक्षिणोत्तरा होती है। यह दक्षिणोत्तर शर-पात के कारण ही उत्पन्न होता है। इसलिए चन्द्रपात ही लोक में राहु के नाम से प्रसिद्ध है। भौमादि ताराग्रहों के भी पात होते हैं। उनका भी इसी पात के कारण विक्षेप होता है। इसके (शर) द्वारा ही दक्षिणोत्तरागति जानी जाती है। यह ग्रह क्रान्तिवृत्त से उत्तरभाग में अथवा दक्षिणभाग में किस प्रकार है ? इसका ज्ञान होता है। इस प्रकार चन्द्रमा की यह दक्षिणोत्तरागति पात के कारण ही सिद्ध होती है। वह भी लोक में राहु के नाम से जानी जाती है। "अपि" शब्द निश्चय अर्थ में है। कहने का अभिप्राय यह है कि चन्द्र-शर जानने के लिए जिस चन्द्र-पात की परिकल्पना की गयी है, वह भी लोक में राहु कहा जाता है। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में वर्णित है :-

श्रुतिसंहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः।
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदश्यन्ते॥
भूच्छायातमसीन्दुं वरप्रदानात् कमलजस्य।
चन्द्रोऽम्बुमयोऽधःस्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते॥
छादयति शमिततापं राहुश्छादयति तत्सवितुः।
भूच्छायाव्याससमः शशिकक्षायां स्थितः शशिग्रहणे॥
राहुश्छादयतीन्दुं सूर्यग्रहणेऽर्कमिन्दुसमः।
यत्तदधिकं तमोमयराहुव्यासस्य सूर्यदृष्टं तत्॥
नश्यति भूच्छायेन्दुव्याससमोऽस्माद्भवति राहुः॥
भूच्छाया नेन्दुमतो ग्रहणे छादयति नार्कमिन्दुर्वा।
तत्स्थस्तद्व्याससमो राहुश्छादयति शशिसूर्यौ॥ इति॥ १४-१५॥

वेद, संहिता और स्मृतियों के कथन में जिस प्रकार एकरूपता हो सके, ऐसा कहा गया है। शुक्लपक्ष के पूर्णिमान्त में राहु प्रवेशकर आच्छादित करता है। ब्रह्मा के वर-प्रदान से भूच्छाया के अन्धकार में राहु चन्द्रमा को ग्रस्त करता है। जलबिम्बमय चन्द्रमा सूर्य के नीचे स्थित होकर मासान्त (अमान्त) में आच्छादित करता है। सूर्य के तेज के शान्त होने पर राहु आच्छादित करता है। चन्द्रग्रहण में भूच्छाया के व्यासतुल्य राहु चन्द्रकक्षा में स्थित होकर आच्छदित करता है। सूर्यग्रहण में चन्द्रमा के साथ राहु सूर्य को आच्छादित करता है। तमोमय राहु के व्यास का अधिक भाग सूर्य से दृष्ट होने के कारण नष्ट हो जाता है। इस कारण से राहु भूच्छाया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और चन्द्रव्यास के तुल्य होता है। इस प्रकार से न तो भूच्छाया चन्द्रमा को और न चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित करता है। उसमें स्थित व्यासतुल्य राहु भी रवि-चन्द्र को आच्छादित करता है। ॥१४-१५॥

गर्गादिभिरुत्पातैर्ग्रहणज्ञाननिमित्तान्युक्तानि, तैर्ग्रहणज्ञानं स्फुटं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयितुमाह :—

न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ॥१६॥

गर्गादि मुनियों के द्वारा उत्पातादि के लक्षणों से ग्रहण का ज्ञान बतलाया गया है, परन्तु उनसे स्पष्ट ग्रहण का ज्ञान नहीं होता है; इसका प्रतिपादन करते हैं :—

किसी भी प्रकार से उत्पातादि लक्षणों से ग्रहण का ज्ञान नहीं हो सकता है, क्योंकि उत्पात रूप निमित्त अन्य काल में भी होते हैं। ॥१६॥

निमित्तैश्चिह्नैरुत्पातरूपैर्ग्रहणपरिज्ञानं न कथञ्चिदपि विज्ञायते। यतो निमित्तान्यन्यस्मिन्नपि काले परसमये सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि उत्पातभूतानि गण्यन्ते। गर्गादिभिरुत्पातवशेन यद्ग्रहणज्ञानमुक्तं तन्न शोभनम्। निमित्तानि ग्रहणकाल एव न सम्भवन्ति। अन्यस्मिन्नपि काले सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि गण्यन्ते न ग्रहणकारणानीति। तथा च पराशरः—

निमित्त अर्थात् उत्पातादि चिन्हों से ग्रहण का ज्ञान कथमपि नहीं हो सकता है। कारण यह है, कि निमित्त (लक्षण) अन्य समय में भी उत्पन्न होते हैं। वहाँ पर उन उत्पातों की गणना उत्पात रूप में की जाती है। गर्गादि के द्वारा उत्पातवश जो ग्रहण का ज्ञान कहा गया है, वह उचित नहीं है। निमित्त ग्रहणकाल में ही काल उत्पन्न नहीं होते हैं, अपितु अन्य कालों में भी होते हैं। वहाँ पर वे उत्पात रूप में गिने जाते हैं, न कि ग्रहण के कारण रूप में। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

तद्यथा :— ग्रहणनिमित्तानि। चन्द्रमसस्तावत्स्पन्दनं सव्यावृत्तिर्दैन्यं पाण्डुत्वं सततपरिवेषणं चिरोत्पादितज्योत्स्नाप्रभाभङ्गः क्षीणता क्षामता दक्षिणशृङ्गतैमिर्येरितस्यात्यर्थं तुङ्गताविर्भावश्च।

ग्रहण के लक्षण इस प्रकार हैं, यथा—चन्द्रमा में कम्पन, दक्षिणावर्तन, कृशता, पाण्डुता, निरन्तर परिवेष का बना रहना, दीर्घकालोत्पादित ज्योतिकिरणों की भङ्गता, क्षीणता, दुर्बलता, दक्षिणश्रृङ्ग में कालिमा, अपरश्रृङ्ग की अधिक उच्चता इत्यादि।

आदित्यस्यापि वेपनं परिवेषणं दीनमन्दरश्मिता कृष्णकल्माषता। उभयोरपि सन्ध्ययोश्चोल्कापातदिग्दाहभूमिकम्पाशनिवज्रनिर्घातस्तनयित्नुपांशुवृष्टिविषमवातशीतोष्णविकृतानि। वज्रकनकरजतमणीनां प्रभाभङ्गः। अभ्रलेखासन्दर्शनम्। अर्कमण्डलोत्थितायाः कृष्णराज्याः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोमानुप्रवेशश्च। शिवाखगगणरुतविकृतनीचैरभ्रपरिसर्पणरश्मिजालव्याकुलत्वम्। तप्ताम्भसां शीतता क्षीरिणां क्षीरक्षयः। अकस्मान्माल्यग्लानिः। पञ्चताराग्रहादिभी रोहिणीपीडनमिति चन्द्रग्रहणेऽर्कविकृतिः।

अर्कग्रहणे चन्द्रमसो बलवन्मध्यतनुनिमित्तहेतुकानि सर्वार्द्धकिञ्चद्ग्रहणेऽप्यानुपूर्व्या। ततो निमित्तोत्पातस्ततः प्रग्रहणम्। यत एषामपसरणं ततो मोक्ष इति॥१६॥

सूर्य का भी कम्पन, परिवेष, दुर्बलता, अल्पकिरणता, कालिमा और कल्मषता। दोनों सन्ध्याओं में उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, वज्रपात, पर्याप्त धूलिवृष्टि, वायु के शीत और उष्णता में विषमता और विकार; हीरा, स्वर्ण, चाँदी आदि मणियों की कान्ति में क्षीणता। बादल में रेखा दिखायी पड़ना। सूर्यमण्डल से उत्पन्न काले धब्बे का चन्द्रमा में प्रवेश और श्रृगाली, पक्षीसमूह की ध्वनियों से विकृति, निम्नभाग में बादलों का परिभ्रमण तथा किरणों से व्याकुलता, उष्णजल में शीतलता, दुधारू पशुओं के दूध में क्षीणता, अकस्मात् माला का मुरझा जाना, पञ्चताराग्रहों के द्वारा रोहिणीनक्षत्र का उत्पीड़न, इत्यादि विकृतियाँ चन्द्रग्रहण के समय उत्पन्न होती हैं। सूर्यग्रहण के समय चन्द्रमा का अत्यधिक मध्यभाग से दुर्बल हो जाना निमित्त माना गया है, जो सर्वग्रहण, अर्धग्रहण और अल्पग्रहण में पूर्ववत् होता है। जब इन निमित्तों का अवसान होता है, तभी मोक्ष होता है। ॥१६॥

अथान्यद् दूषणमाह :–

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः॥१७॥

अन्य दोष कहते हैं :–

पाँच ग्रहों के संयोग से ग्रहण उत्पन्न नहीं होता है। अष्टमी तिथि को जल में तेल के द्वारा ग्रहण दिशा का ज्ञान नहीं होता है, इसका विद्वानों द्वारा विचार किया जाना चाहिए। ॥१७॥

किलेत्यागमसूचने शास्त्रान्तरेष्वेवमुक्तम्। यथा पञ्चानां ग्रहाणां संयोगात् समागमाद् ग्रहणस्य सम्भवो न भवति। एतदुक्तं भवति :– पौर्णमास्याममावास्यायां वा पञ्चग्रहसंयोगो यदि भवति तदा ग्रहणाभाव इति। तथा च वृद्धगर्गः–

'किल' शब्द शास्त्रसूचक है। अर्थात् अन्य शास्त्रों में भी ऐसा कहा गया है। जैसाकि– पाँच ग्रहों के संयोग से ग्रहण सम्भव नहीं होता है। अभिप्राय यह है, कि पूर्णिमा अथवा अमावस्या को पाँच ग्रहों का संयोग (युति) होता है, तो ग्रहण का अभाव होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्ट्वा न ग्रहणं वदेत्।
यदि न स्याद् बुधस्तत्र तं दृष्ट्वा ग्रहणं वदेत्॥

पाँच ग्रहों के संयोग को देखकर ग्रहण नहीं कहना चाहिए। यदि इसमें बुध न हो, तो इस स्थिति में ग्रहण कहना चाहिए।

एतदसत्। अत्रापि दिक्परिज्ञानार्थमाह – तैलं च जलेऽष्टम्यामिति सोमग्रहणं सूर्यग्रहणं वा यदा भावि तदाष्टम्यां समीपवर्त्तिन्यां तिथौ जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्यां दिशि तत्प्रसरति तस्यामेव दिशि ग्रहणं वक्तव्यम्। पुनरपि मोक्षार्थं भूयो जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्यामेव दिशि न प्रसरति तस्यामेव मोक्षो वक्तव्यः। तथा च वृद्धगर्गः –

यह भी सत्य नहीं है। यहाँ भी दिशाज्ञान के लिए कहा गया है, कि सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण यदि होनेवाला हो, तो उसके समीपवर्ती अष्टमी तिथि को जल में तेल डाले जाने पर जिस दिशा में फैलता हो, उसी दिशा में ग्रहण कहना चाहिए फिर मोक्षज्ञान करने के लिए जल में तेल डालने पर जिस दिशा में तेल न फैलता हो, उसी दिशा में मोक्ष कहना चाहिए। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

अष्टम्यां परिवेषः स्यात्तैले जलगते यदा।
प्रसारिते विजानीयाद्यतः खण्डस्ततस्तमः॥ इति।

अष्टमी तिथि को जल में तेल प्रक्षिप्त करने पर जिस दिशा में तेल विभाजित होता है, उस दिशा में ग्रहण होता है।

एतदप्यसत्। यतोऽन्यस्मिन् भाण्डगते जले तैलं क्षिप्तं किमन्यस्यां दिशि न प्रसरति। अन्यत्र सर्वत्र प्रसरति तस्मात् सर्वमेव तदसत्। तथा च गर्गः –

यह भी असत्य है। क्योंकि दूसरे पात्र के जल में तेल प्रक्षिप्त करने पर क्या अन्य दिशा में नहीं फैलेगा ? वह सभी दिशाओं में फैलेगा, अतः यह सब मिथ्या है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

दिग्दाहोल्कामहीकम्पतमोधूमरजांसि च।
सूचयन्त्यागमं राहोः पुनः पर्वण्युपस्थिते॥
तत्राष्टम्यां जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत्।
परिवेषो यतः खण्डस्तत्र ज्ञेयौ समागमौ॥
पञ्चग्रहसमायोगं दृष्ट्वा सौम्यविवर्जितम्।
ग्रहणं नु वदेत्तत्र सबुधं न ग्रहं वदेत्॥

दिग्दाह, उल्कापात, भूकम्प, घना अन्धेरा, धूलिकण; ये पर्वकाल में राहु का (ग्रहण) आगमन सूचित करते हैं। यहाँ पर अष्टमी तिथि को जल में तेल डालकर ग्रहणस्थान का निर्देश करना चाहिए। प्रसृत तैल में जहाँ खण्ड दिखायी पड़ता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी दिशा में ग्रहण होता है। बुध रहित पाँच ग्रहों के संयोग को देखकर ग्रहण कहना चाहिए। यदि बुधयुक्त हो तो ग्रहण न कहे।

तस्माद्विपश्चिद्भिः पण्डितैरिदं न विचिन्त्यं नाङ्गीकार्यं पञ्चग्रहसंयोगात्तैलं च जलेऽष्टम्यामिति ॥१७॥

इसलिए विद्वानों द्वारा इसका विचारकर पञ्चग्रहों के संयोग और अष्टमी तिथि को जल में तैल द्वारा ग्रहणादि का ज्ञान स्वीकार नहीं करना चाहिए। ॥१७॥

अथ ग्रहणे ग्रासप्रमाणं दिग्ज्ञानं वेलाज्ञानं चाह :—

अवनत्याऽर्के ग्रासो दिग्ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च।
तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया ॥१८॥

अब ग्रहण में ग्रासमान, दिग्ज्ञान और बेला-ज्ञान को कहते हैं :—

सूर्यग्रहण में अवनति (स्पष्टशर) से ग्रासमान, अवनति तथा बलन से दिशाज्ञान और तिथ्यन्त के ज्ञान से बेला (समय) का ज्ञान होता है, जो मेरे द्वारा करणप्रकरण में कहा गया है। ॥१८॥

अवनतिरिति स्फुटविक्षेपस्य नाम। तयाऽवनत्या तेन स्फुटविक्षेपेणार्के सूर्ये ग्रासो ज्ञेयः। अत्यल्पे विक्षेपे महाग्रहणं महति विक्षेपेऽल्पमिति। चन्द्रार्कमानयोगार्द्धादवनतिमपास्य शेषे रविमानादधिके सर्वग्रहणमूने खण्डग्रहणमशुद्धे ग्रहणाभावः। एवमवनत्याऽर्के ग्रासो ज्ञेयः।

स्पष्ट विक्षेप (शर) का नाम अवनति है। उस अवनति के द्वारा सूर्यग्रहण में ग्रास जानना चाहिए। अल्पविक्षेप में अधिकग्रहण और अधिकविक्षेप में अल्पग्रहण होता है। रवि-चन्द्र के बिम्बमान के योगार्ध में अवनति को घटाकर शेष रविमान से अधिक होने पर सर्वग्रहण और न्यून होने पर खण्डग्रहण तथा नहीं घटने पर ग्रहण का आभाव होता है। इस प्रकार अवनति से सूर्य में ग्रास का ज्ञान करना चाहिए।

दिग् ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च, अवनत्या तत्कालोत्पन्नयाऽवनत्या स्फुटविक्षेपेण च परिलेखकरणेन प्रग्रहणादीनां दिग् ज्ञेया।

अवनति और वलन से दिशा का ज्ञान करना चाहिए। अवनति का तात्पर्य तात्कालिक है, उत्पन्न अवनति के द्वारा और स्पष्टशर के द्वारा परिलेख करने से ग्रहण की दिशा का ज्ञान करना चाहिए।

तिथ्यवसानाद्वेला, तिथेरमावास्याया योऽवसानोऽस्य हरिजसंस्कारेण मध्याह्नमप्राप्य निवृत्तिर्मध्याह्नादूर्ध्वं वा तत्र मध्यग्रहणम्। तस्मिन्नेव प्राग्रहणिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संशोध्य प्रग्रहणकालो भवति। तत्रैव मोक्षस्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। एवं तिथ्यवसानाद्वेला। अत्रार्कग्रहणमुपलक्षणार्थम्। चन्द्रग्रहणेऽपि स्वोपकरणैः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथि के अवसान से बेला का ज्ञान होता है। तिथि अर्थात् अमावास्या का जो समाप्तिकाल है, उसका क्षितिजसंस्कार के द्वारा मध्याह्न पूर्व निवृत्ति अथवा मध्याह्नोत्तर मध्यग्रहण का ज्ञान होता है। इसमें ही ग्रहणकालिक स्पष्ट स्थित्यर्द्ध घटाकर ग्रहणकाल होता है। वहाँ पर मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्द्ध जोड़कर मोक्षकाल होता है। इस प्रकार तिथि की समाप्ति से बेला (समय) का ज्ञान होता है। यहाँ पर रविग्रहण उपलक्षणात्मक (साङ्केतिक) है। चन्द्रग्रहण में भी इसी प्रकार तात्कलिक साधनों से ज्ञान होता है।

एतान्युपकरणानि करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां मया कथितान्युक्तानीति। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम् :–

ये उपकरण पञ्चसिद्धान्तिका में करण के प्रकरण में मेरे द्वारा कहे गये हैं। जैसाकि पञ्चसिद्धान्तिका में कहा गया है :–

'दिनमध्यमसम्प्राप्ता यावत्यो नाडिका व्यतीता वा।
ताभ्यः षड्गुणिताभ्यो ज्यात्रिंशांशस्तिथेर्नाम॥
उदयात् प्रभृति च नाड्यो याः स्युः प्राग्लग्नमानयेत्ताभिः।
तस्मात्तु नवसमेतादपक्रमांशान् विनिश्चित्य॥
लग्नत्र्यगुविवरज्यां द्विगुणां खरसांशसंमितामपमात्।
जह्याद्दिग्व्यत्यासे विक्षेपैक्यै तयोर्योगः॥
उत्तरमक्षाच्छुद्धं याम्यं साक्षं च दक्षिणं विन्द्यात्।
उत्तरमक्षाद्यदधिकमुत्तरमेवं विजानीयात्॥
तज्ज्याघ्नीं शशिभुक्तिं हत्वा धृतिभिः शतैः स्फुटाऽवनतिः।
मध्यममानं त्रिंशद्भानोः शशिनश्चतुस्त्रिंशत्॥
समलिप्तराहुविवरज्याभ्यस्ता मूर्छना नवहृताश्च।
अवनत्या युतविश्लेषिता च दिक्साम्यवैलोम्ये॥
मध्यममानाभ्यस्ता स्फुटभुक्तिर्मध्यभुक्तिभक्ता च।
भवति कलापरिमाणं तत्कालीनं रविहिमांश्वोः॥
अवनतिवर्गं जह्याद्रवीन्दुपरिमाणयोगदलवर्गात्।
तन्मूलात्तु द्विगुणात्तिथिभुक्तवदादिशेत् कालम्॥
रविशशिमानयुतिदलादवनतिहीनाद्भवन्ति या लिप्ताः।
तान्यङ्गुलानि विन्द्याद्भानोश्छन्नानि चन्द्रमसा॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ८ अध्यायस्य ९-१८ श्लोकाः। तत्र १० श्लोके "अपमांशा विनिश्चिन्त्याः," १३ श्लोके च "स्मृतावनतिः" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरित्यस्यामभायामौत्पातिकं पर्व विना रविसोमयोरप्येकस्मिन्नेव मासे ग्रहणफलमुक्तम्। कुत एतल्लभ्यते। तथा च भगवान् व्यासः—

यदि एक ही मास में रवि-चन्द्र का ग्रहण कहा गया है, तो यह उत्पातजनित ग्रहण है। यह बिना पर्वकाल के रवि-चन्द्र के ग्रहण का फल एक ही मास में कहा गया है। ये कहाँ से प्राप्त होता है। जैसाकि भगवान् व्यास ने कहा है :—

'चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासे त्रयोदशे।
अपर्वणि ग्रहावेतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः॥ इति॥

तेरहवें मास में रवि-चन्द्र का ग्रहण पर्वकाल के बिना होता है, तो ये दोनों ग्रहण प्रजा का विनाश करेंगे।

तथा च पराशरः—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रहः।
आवृणोति तमःश्यामः सर्वलोकविपत्तये॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :—

त्वष्टा नामक महाग्रह अपर्वकाल में ही रवि-चन्द्र को काले अन्धकार से सभी लोगों की विपत्ति के लिए, आच्छादित करता है।

तथा च वृद्धगर्गः—

मासि त्रयोदशे सोमार्कौ ग्रहणं गतौ।
छत्राण्यनेकानि तदा मृज्यन्ते भूमिपक्षये॥
सपुत्रदारा गच्छन्ति संग्रामे लोमहर्षणे।
अनेन वनितायाः स वैधव्यान्तकरोऽधिकम्॥
कालशोकावहः पुंसां देशानेकविनाशनः।
स्वचक्रपरचक्रैश्च विनश्यन्ति बहुप्रजाः॥ इति॥

जैसा कि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

तेरहवें मास में रवि-चन्द्र का ग्रहण होता है, तो अनेक राजाओं का क्षयपूर्वक छत्रों का अवमर्दन होता है। लोमहर्षक युद्ध में पुत्र-पत्नी सहित लोग भाग लेते हैं, और वह युद्ध महिलाओं के लिए अत्यधिक वैधव्य का कारण बनता है। यह काल लोगों के लिए शोकप्रदायक तथा अनेक देशों का विनाशक होता है। स्वपक्ष तथा शत्रुपक्ष से अधिक संख्या में प्रजा का विनाश होता है।

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्येत्यत्र पक्षान्ते मासान्ते पर्वनियममाह :— तस्मात् पुनरुक्ततादोषोऽन्यत्रावगम्यत इति।

---

१. महाभारतस्य भीष्मपर्वणि ३ अध्याये ३२ श्लोक। तत्र "एकमासीं त्रयोदशीम्" इति प्रामादिकः पाठो विभाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करें, इससे भुक्त, तिथि के तुल्य काल का निर्देश होता है। तात्पर्य यह है कि, द्विगुणित मूल ६० से गुणितकर रवि-चन्द्र की गत्यन्तर कला से भाग देने पर, स्थितिकाल होता है।

रवि-चन्द्र के मानैक्य खण्ड से स्फुटशर हटाकर जो अवशेष कलात्मक मान होता है, वह रवि-चन्द्र का छन्न प्रदेश (छादित प्रदेश) होता है। व्यासार्ध से रविबिम्ब का आलेखकर रविकेन्द्रमध्य से उत्तर अथवा दक्षिण दिशा में अवनति देकर उस बिन्दु से व्यासार्ध कर ग्रासहेतु चन्द्रबिम्ब का आलेखन करे। इसी प्रकार चन्द्रमा को उसके उपकरणों द्वारा उद्घृत करना चाहिए। जैसाकि कहा गया है :–

एवमेव चन्द्रस्य स्वोपकरणैरुदाहार्यम्। तथा च :–

[1]तिथ्यन्ते ग्रहमध्यं प्राक्परतः स्थितिदलेन चाद्यन्तौ।
रक्तकपिलौ च वर्णावुच्चाधःस्थे परे नितराम्॥
[1]सर्वग्रासिन्येवं वर्णविशेषं वदेन्निशानाथे।
उदयास्तमये धूम्रं खण्डग्रहणे सलिलदाभम्॥ इति।

एवं पञ्चग्रहसंयोगादित्यादि यदुक्तं तत्सर्वमसदिति॥१८॥

तिथ्यन्त में ग्रहणमध्य होता है। स्थितिदल के आदि और अन्त में पूर्व तथा पश्चिमग्रहण कहा गया है। उच्चभाग और अधोभाग में क्रमशः रक्त और भूरा वर्ण होता है। सभी प्रकार के चन्द्रग्रहण में इस प्रकार का विशेष वर्ण कहना चाहिए। उदयास्तकाल में धूम्रवर्ण और खण्डग्रहण में सलिलाभ (नीलवर्ण) होता है। इस प्रकार से पाँच ग्रहों के संयोगवश जो कहा गया है, वह सब युक्तिरहित है। ॥१८॥

इदानीं कल्पादेः षण्मासोत्तरया वृद्ध्या सप्त पर्वाणि ब्रह्मादीनां भवन्ति। तेषां देवानां नामानि चाह :–

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः॥१९॥

कल्पादि में षण्मासोत्तर क्रम से ब्रह्मादि सात देवों को कहते हैं :–

कल्पादि से छः-छः मासों के वृद्धिक्रम से ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि, और यम; ये सात पर्वेश होते हैं॥१९॥

---

१. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ६ अध्याये ९ श्लोकः। तत्र "सर्वग्रासे पीतम्" इति प्रथमपादे, "उदयास्तग्रासधूम्रम्" इति तृतीयपादे, "खण्डग्रहणे च सलिलाभम्" इति चतुर्थपादे च पाठः।

२. ब्रह्मगुप्तकृतं खण्डखाद्यकाख्यं करणं (द्रष्टव्या मत्कृता गणकतरङ्गिणी)। तत्र भट्टोत्पलेन या टीका कृता तत्र पर्वेशप्रसङ्गे स्ववचनमिदं पद्यद्वयमुपनिबद्धमिति। मन्निकटे यत्पुस्तकमस्ति तत्र मूल एव लेखकाध्यापकाध्येतृदोषैरिदं पद्यद्वयमुपन्यस्तमस्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्पादारभ्य षण्मासोत्तरया वृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्गतैः पर्व भवति। तानि च सप्त पर्वाणि। तेषां पर्वणां क्रमशः क्रमेण सप्तदेवता ब्रह्माद्याः। तद्यथा – ब्रह्मा कमलजः, शशी चन्द्रः, इन्द्रः शक्रः, कुबेरो वैश्रवणः, वरुणो यादसाम्पतिः, अग्निर्हुताशनः, यमः पितृपतिः – एते सप्त यथासंख्यं सप्तानां पर्वणामधिपतयो विज्ञेया विज्ञातव्याः एतेषामानयनं गणितसिद्धम्। तथा च खण्डखाद्यके करणेऽस्मदीयं वचनम् :–

दिनवृन्दात् खशर५०घ्नात् षण्णवरविभि१२९६र्विभाजितादाप्तम्।
रामर्तुखेन्दु १०६३ सहितं क्षिपेद् युवृन्दे भजेत् खधृतिभि १८०स्तत्॥
लब्धः कमलजपूर्वः पर्वगणः सप्तभाजितः शेषः।
गतगम्ये ते शून्यधृत्यूने चन्द्रसूर्यपर्व स्यात्॥

अत्र यल्लब्धं तदतीतं स्यात्ततः परं वर्तमानं भवति[1] ॥इति॥१९॥

कल्पादि से प्रारम्भकर छः मासों के अनन्तर वृद्धिक्रम से पर्वेश होते हैं। ये पर्व सात होते हैं। इन पर्वो के क्रमशः सात देवता ब्रह्मादि हैं, जैसा कि ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, आदि और यम, ये सात यथाक्रम सात पर्वों के स्वामी समझने चाहिए। इनका आनयन गणित-क्रिया से सिद्ध होता है। जैसा कि खण्डखाद्यक नामक करण-ग्रन्थ में मेरा (भट्टोत्पल का) कथन है :– अहर्गण को ५० से गुणाकर १२९६ से भाग देकर लब्ध फल में १०६३ जोड़ दें। इस योगफल को अहर्गण से घटाकर १८० से भाग दें। लब्धफल में सात का भाग देने से लब्धि और शेष क्रमशः गत और गम्य प्राप्त होता है। १८० में घटाने पर चन्द्र और सूर्य का पर्व ज्ञात हो जाता है।

यहाँ पर जो लब्ध फल हुआ वही व्यतीत (गत) होता है, और उससे एक आगे वर्तमान रहता है॥१९॥

अथ तेषां फलान्याह :–

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च।
तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च॥२०॥

इन पर्वेशों का फल कहते हैं :–

ब्रह्मा के पर्वेश होने पर द्विज और पशुओंकी अभिवृद्धि, कल्याण, नैरुज्य, सस्य-सम्पत्ति होती है। चन्द्रमा के पर्वेश होने पर इसी प्रकार शुभ-होता है, फिर भी विद्वानों को कष्ट एवं अनावृष्टि होती है॥२०॥

---

१. रवि १२ गुणिते शककाले माससमेतेऽक्षिसागर ४२ विभक्ते।
यल्लब्धं ते भगणाः शेषे षड्भाजिते पर्व॥
इति क० पु० अधिकः पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम्।
कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च॥२१॥

इन्द्र पर्वेश हो, तो नृप-विरोध, शरद ऋतु के धान्यों का विनाश और कल्याण का अभाव रहता है। कुबेर के पर्वेश होने से धनपतियों के धन की हानि और सुकाल रहता है॥२१॥

वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम्।
आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम्॥२२॥

वरुण के पर्वेश होने से राजाओं के लिए अशुभ तथा अन्य सभी के लिए शुभ तथा सस्य (अन्न) के लिए वृद्धिकारक होता है। अग्नि पर्वेश हो, जिसका दूसरा नाम मित्र भी है, तो सस्यकारक, आरोग्य-प्रदायक और सुन्दर वृष्टि करनेवाला होता है। ॥२२॥

याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च सस्यानाम्।
यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व॥२३॥

यम पर्वेश हो तो, अनावृष्टि, अकाल, और सस्य अर्थात् धान्यों का क्षय होता है। इससे भिन्न पर्वों में अशुभ, भुखमरी और अनावृष्टि होती है।२३॥

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणीति। ब्राह्मे पर्वणि द्विजानां ब्राह्मणादीनां पशूनां चतुष्पदानां वृद्धिर्वर्द्धनम्, तथा क्षेमं लब्धपालनम्, आरोग्यं नीरोगत्वम्, एतानि भवन्ति। सस्यानां च सम्पद्वृद्धिर्भवति।

ब्राह्म में द्विजपशुवृद्धि इत्यादि। ब्राह्मपर्व में द्विज अर्थात् ब्राह्मणों का पशु अर्थात् चतुष्पदों का अभिवर्धन होता है। क्षेम अर्थात् लब्धवस्तु का पालन और आरोग्य अर्थात् निरोगिता होती है। तथा च सस्यों की वृद्धि होती है।

तद्वत्सौम्य इति। सौम्ये पर्वणि चान्द्रे तद्वद् द्विजपशुवृद्धिक्षेमारोग्याणि भवन्ति। सस्यसम्पच्च भवति। तस्मिन् सौम्ये तु पुनर्विदुषां पण्डितानां पीडा। अवृष्टिरवर्षणं भवति॥

सौम्यपर्व अर्थात् चन्द्रमा के पर्व में उसी प्रकार द्विज, पशुवृद्धि, क्षेम, और आरोग्य होते हैं और सस्य-सम्पत्ति भी होती है। तथा च इस चन्द्रपर्व में विद्वान् पण्डितों को पीड़ा होती है। इसमें अनावृष्टि भी होती है।

ऐन्द्रे भूपविरोध इति। ऐन्द्रे पर्वणि भूपानां राज्ञां परस्परं विरोधः कलहम्, तथा शारदानां सस्यानां धान्यानां क्षयो विनाशः, लोके क्षेमं न च भवति।

इन्द्र पर्व में राजाओं में परस्पर कलह, विरोध होता है। साथ ही शरद्कालीन सस्यों (धान्यों) का विनाश और लोक में कल्याण होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौबेरे पर्वण्यर्थपतीनामीश्वराणामर्थविनाशो वित्तक्षयः सुभिक्षं च भवति।

कुबेरपर्व में अर्थपति अर्थात् धनेश्वरों के अर्थ का विनाश होता है तथा सुभिक्ष (सुकाल) रहता है।

वारुणमवनीशाशुभमिति। वारुणं नाम यत्पर्व तदवनीशानां राज्ञामशुभमश्रेयस्करमन्येषां सर्वजनानां क्षेमकरं तथा सस्यानां वृद्धिकरं भवति।

वरुण-पर्व में राजाओं के लिए अशुभ, परन्तु अन्य सभी लोगों के लिए कल्याण कारक और सस्यों के लिए वृद्धिदायक होता है।

आग्नेयं मित्राख्यमिति। आग्नेयस्य पर्वणो मित्राख्यमित्यपरं नाम तत्पर्व सस्यारोग्यकरं सस्यानि करोति निष्पादयति, आरोग्यं च करोति। तथा अम्बु जलमभयं भयरहितं नातिबहुलं नात्यल्पं मध्यमं यथाकालोपयोग्यं च करोति॥

अग्नि-पर्व की मित्र नाम से भी प्रसिद्धि है, यह पर्व सस्यों (धान्यसम्पत्ति) के लिए शुभकारक और आरोग्यप्रदायक होता है। पानी अभय हो, अर्थात् न बहुत कम और न बहुत अधिक, यथोचित मध्यम वर्षा होती है।

याम्यमिति। याम्यं पर्वावृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं क्षुद्भयं सस्यानां च संक्षयं विनाशं करोति।

यम-पर्व अवृष्टि, दुर्भिक्ष, भुखमरी और सस्यों का विनाश करता है।

यदतः परमिति। अतोऽस्मात् पर्वसप्तकाद्यत्परमन्यत्पर्व तदशुभमनिष्टदम्।

इससे भिन्न पर्व अर्थात् इन सात पर्वों के अतिरिक्त जो पर्व हैं, वे अनिष्टफल-दायक होते हैं॥

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशा उक्ता। तत्र कदाचिदुत्पातवशात् पञ्चभिर्मासैः सार्द्धैः पञ्चभिर्वा षड्भिः सार्द्धैः सप्तभिर्वा पर्व भवति। तत्पर्व ब्राह्मादि न भवति। तच्च क्षुन्मारावृष्टिदम्, क्षुद् दुर्भिक्षम्, मारं मरणम्, अवृष्टिमवर्षणं च ददाति। तथा च पराशरः—

छः मास के पश्चात् उत्तरोत्तर क्रम से पर्वेश कहे गये हैं। वहाँ पर कभी उत्पातों के कारण पाँच मासो में, साढ़े पाँच मासों में अथवा छः, साढ़े छः अथवा सात मासों में पर्व होते हैं। ये पर्व ब्रह्मादि नहीं होते हैं। वह क्षुधाकारक, मरणदायक दुर्भिक्षकारक और अनावृष्टिकारक होता है। जैसा कि आचार्य पराशर ने कहा है :—

शुक्लकृष्णाष्टमीपञ्चदश्योरन्तराद् ग्रहणनिमित्तानीन्दुभान्वोः प्रबलानि भवन्ति। तानि च निशामय। षण्मासात् चन्द्रमसस्ततोऽर्द्धषष्ठेत्यादि[1] चादित्यस्यापि पूजितमाहुराचार्याः। सप्तदशत्रयोदशपञ्चत्रिंशन्मासिकानि चेन्दोस्त्रीणि विसन्धिग्रहणानि क्षुद्व्याधिमरणदुर्भिक्षोपद्रवाय वेदितव्यानि। एवमेवैतानि प्राकृतवैकृतग्रहणानि। अतः परं सप्त विधेः पर्वेशान् कथयिष्यामः।

---

१. अर्द्धषष्ठेत्यादि अर्द्धषष्ठसप्तमासानन्तरं ग्रहणमिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मसौम्यैन्द्रकौबेरवरुणाऽऽग्नेययाम्यानि षण्मासान्तरितानि सप्त भवन्ति। तत्र ब्राह्मं सस्यजननं तद्वत्सौम्यम्। ऐन्द्रं भूपालविरोधाक्षेमदुर्भिक्षकरम्। कौबेरमीश्वराणामैश्वर्यविनाशकरं क्षेमसस्यकृच्च। वारुणं वृष्टिसस्यक्षेमारोग्यकरम्। आग्नेयमन्नक्षयदम्। दुर्भिक्षायाल्पवृष्टये याम्यं चेति॥

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा पूर्णिमा के मध्य रवि-चन्द्र के ग्रहण सम्बन्धी-निमित्त (लक्षण) प्रबल होते हैं। ये रात्रिवत् (अन्धकारमय) होते हैं। छः मास से चन्द्रमा के तत्पश्चात् साढ़े छः मास तक सूर्य की भी पूजनीयता आचार्यों ने कहा है। १७, १३, ३५ मासों में चन्द्रमा के तीन ग्रहण विना पर्वकाल के भूख, मारक रोग, दुर्भिक्ष और उपद्रवकारक हैं, ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार के ये प्रकृति-विकृति-ग्रहण हैं। इसके तत्पश्चात् ब्रह्मा के ७ पर्वों को कहूँगा। छः छः मासों के अन्तर पर ब्राह्म, सौम्य, ऐन्द्र, कौबेर, वारुण, आग्नेय और याम्य ये सात पर्व होते हैं। यहाँ पर ब्राह्म सस्योत्पादक होता है, तथा सौम्य भी इसी प्रकार (फलदायक) है। ऐन्द्र राजाओं में परस्पर विरोध, अकल्याण और दुर्भिक्ष (अकाल) कारक होता है। कौबेर पर्व ईश्वरों के (समृद्ध लोगों के) ऐश्वर्य का विनाशक तथा कल्याणदायक और सस्योत्पादक होता है। वारुण पर्व वर्षा, सस्य, कल्याण और आरोग्यकारक होता है। आग्नेय पर्वअन्नों के लिए क्षयकारक होता है। याम्यपर्व दुर्भिक्ष तथा अल्पवृष्टि का कर्ता होता है।

तथा च गर्गः—

चन्द्रात् पञ्चममासे तु मासे त्वेकादशे तथा।
'सप्तादशे वा सूर्यस्य ग्रहणं क्षुद्भयाय तत्॥ इति॥ २०-२३॥

गर्गमुनि ने इस प्रकार कहा है:— चन्द्रग्रहण से ५, ११, तथा १७ वें मास में यदि सूर्य का ग्रहण हो, तो इससे क्षुधाभय अर्थात् भुखमरी उत्पन्न होती है॥२०-२३॥

अथ वेलाहीनेऽतिवेले च पर्वणि फलमाह:—

वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।
अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च॥ २४॥

अब समय-पूर्व तथा समयातीत ग्रहण का फल कहते हैं:—

समय-पूर्व ग्रहण होने पर गर्भ-नाश तथा सशस्त्र आक्रमण होता है। समय के पश्चात् ग्रहण होने पर पुष्प-फल की क्षति, भय तथा सस्यों का विनाश होता है॥२४॥

---

१. सप्तादश इत्यार्षप्रयोगः। आङुपसृष्टस्यास्य लोकेऽपि साधुत्वं भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणिताऽऽगतप्रग्रहणात् पूर्वं यदि दृक्प्रग्रहणं दृश्यते तदा तत्पर्व वेलाहीनम्। अथ गणिताऽऽगतप्रग्रहणकालात् पश्चाद् दृक्प्रग्रहणं भवति तदा तत्पर्वाऽतिवेलम्। वेलाहीने पर्वणि गर्भाणां विपत्तिर्नाशो भवति। गर्भागर्भलक्षणमग्रतो वक्ष्यति। ते तत्र विज्ञेयाः। तथा शस्त्रकोपो युद्धं च भवति।

गणित से आनीत ग्रहणकाल के पहले यदि ग्रहण दिखायी पड़ता है, तो उस ग्रहण को वेलाहीन (समय-पूर्व) कहा जाता है। गणितागत ग्रहणकाल के पश्चात् यदि ग्रहण दृष्ट होता है, तो यह ग्रहणवेलातीत (समयातीत) है। वेलाहीन ग्रहण में गर्भों का विनाश होता है। गर्भागम का लक्षण आगे कहा जायेगा। उनका ज्ञान वहीं पर करना चाहिए। इसमें सशस्त्र युद्ध होता है।

अतिवेले पर्वणि कुसुमानां पुष्पाणां फलानां च क्षयो विनाशः। लोके भयं सस्यानां नाशश्च भवति॥

समयातीत ग्रह में फूल और फलों का विनाश होता है। लोक में भय उत्पन्न होता है और सस्यों का विनाश होता है।

तथा च गर्गः—

वेलाहीने शस्त्रभयं गर्भाणां स्रावणं तथा।
अतिवेल[1] फलानां तु सस्यानां क्षयमादिशेत्।
दृक्समे पर्वणि नृपा निर्वैरा विगतज्वराः।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वा भयरोगविवर्जिताः।

जैसाकि आचार्य गर्गने कहा है :—

समयपूर्व ग्रहण में शस्त्रों का भय और गर्भस्राव होता है। समयातीत ग्रहण में फलों का विनाश तथा सस्य-सम्पत्ति का क्षय कहना चाहिए। गणितागत समय में ग्रहण होने पर राजागण शत्रुरहित और निश्चिन्त रहते हैं। और प्रजा सुखी होती है, तथा सभी लोग भय तथा रोगरहित रहते हैं।

तथा च काश्यपः—

अनागतमतीतं वा ग्रहणे पर्व दृश्यते।
गर्भस्रावमनावृष्टिं फलं पुष्पं विनश्यति॥ इति॥२४॥

जैसाकि काश्यप ने कहा है :—

समयपूर्व अथवा समयातीत ग्रहण दृष्ट हो, तो गर्भस्राव, अनावृष्टि तथा फल और पुष्पों का विनाश होता है। ॥२४॥

---

१. फलपुष्पौषधीनां चातिवेले भयमादिशेत्-इति अ० क० पुस्तके पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतन्मया पूर्वशास्त्राणि निरीक्ष्योक्तं न स्वमतेनेत्याह :–

हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति॥२५॥

पूर्व शास्त्रानुसार ये कथन है, अपना नहीं :–

पूर्व आचार्यों के शास्त्रों को देखकर समयपूर्व एवं समयातीत ग्रहण के फल को कहा गया है। परन्तु स्पष्ट-गणित के विज्ञ जयोतिर्विद् द्वारा निर्धारित ग्रहण का समय कभी भी अन्यथा नहीं होता है। ॥२५॥

हीनातिरिक्तकाले पर्वणि यन्मया फलमुक्तं कथितं तत्पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्। पूर्वशास्त्रेषु भगवद्गर्गादिप्रणीतेषु दृष्टम्। यतः स्फुटगणितविदः स्फुटं गणितं वेत्ति जानातीति स्फुटगणितज्ञस्य कालः प्रग्रहणादीनां समयः कथञ्चिदप्यन्यथा न भवति। यतो देशान्तरकर्मणा विना तिथिचलनं न भवति। तच्च गणितज्ञ एव जानाति। उक्तं च :–

समयपूर्व, समयातीत ग्रहण का फल मेरे द्वारा जो कहा गया, वह पूर्वशास्त्रों को देखकर कहा गया है। भगवान् गर्गादि द्वारा प्रणीत पूर्वशास्त्रों में ये फल देखे गये हैं। तथापि स्पष्ट गणितज्ञ द्वारा निर्धारित ग्रहणादि का समय किसी भी स्थिति में अन्यथा (असत्य) नहीं होता है। क्योंकि देशान्तरकर्म के बिना तिथियों का चलन नहीं होता है, और इसको गणितज्ञ ही जानता है। जैसाकि कहा गया है :–

गणितप्रग्रहात् पश्चाद्यदि दृक्प्रग्रहो भवेत्।
स प्राग्देशोऽन्यथा पश्चाद्रेखायाः स च मेरुतः॥
उज्जयिन्यां गता यावल्लङ्कातो दक्षिणोत्तरा।
तदन्तर्घटिका भुक्तिवधात् षष्ट्या हृतात् फलम्॥
मध्ये धनर्णं पश्चात्प्राग्घटिका द्युगणेऽथवा।

गणितगत ग्रहणकाल के पश्चात् यदि किसी स्थान पर ग्रहण दृष्ट होता है, तो वह पूर्वभाग का देश है। गणितागतकाल के पूर्व ग्रहण दृश्य हो, तो वह स्थान पश्चिमभाग का है। मेरु से उज्जयिनी होते हुए लङ्का तक जानेवाली दक्षिणोत्तरा रेखा मध्यरेखा है। इस रेखा से पूर्वस्थित प्रदेश को पूर्वदेश और पश्चिमभाग में स्थित प्रदेश को पश्चिमदेश कहा जाता है। पूर्वापर अन्तरघटी (देशान्तरघटी) को ग्रहगतिकला से गुणाकर ६० से भाग देने पर जो फल प्राप्त होता है, उसको मध्यमकाल में पश्चिमभागस्थ प्रदेश में धन और पूर्वभाग में ऋण करने से स्पष्ट ग्रहणकाल होता है। अथवा अहर्गण के द्वारा भी फलानयन प्राप्त किया जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं संस्कृता ग्रहा दृक्समा भवन्तीत्यर्थः। पूर्वागमतः परीक्ष्योक्तम्। यथा :–

[1]ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किं तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥इति॥२५॥

इस प्रकार से संस्कारित ग्रह दृक्तुल्य होते हैं, यह अभिप्राय है। पूर्वशास्त्रों के परीक्षण के बाद ही यह कहा गया है। जैसा कि :–

ज्योतिषशास्त्र आगम शास्त्र है। इस शास्त्र में कहीं पर विपरीतता (अनवस्था) देखकर स्वयं ही उसका विकल्प निकालना हम लोगों के लिए उचित नहीं है। यह अनेक विद्वानों के मत के अनुसार मैं कह रहा हूँ॥२५॥

अधुनैकमासे चन्द्रसूर्यग्रहणयोः फलमाह :–

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः।
स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च॥२६॥

एक मास में सूर्य एवं चन्द्रग्रहण का फल कहते हैं :–

यदि एक ही मास में रवि तथा चन्द्र इन दोनों का ग्रहण हो, तो भूपतिगण अपने सैन्य-विद्रोह के कारण तथा अतिशय शस्त्र-प्रयोग के द्वारा विनाश को प्राप्त होते हैं। ॥२६॥

एकस्मिन् मासे रविसोमयोः सूर्य्याचन्द्रमसोर्यदि ग्रहणमुपरागो भवति, तदा क्षितिपा राजानः स्वबलक्षोभैरात्मीयसैन्यानां क्षोभणैः संक्षयं विनाशमायान्ति प्राप्नुवन्ति। अतिशस्त्रकोपोद्योगः संग्रामाश्च भवन्ति। तथा च काश्यपः–

एक ही मास में सूर्य और चन्द्रमा का यदि ग्रहण होता है, तब नृपतिगण अपनी सेनाओं के विद्रोह से विनाश को प्राप्त होते हैं। अत्यधिक शस्त्रों के प्रयोग से युद्ध होते हैं। जैसाकि काश्यप ने कहा है :–

चन्द्रार्कयोरेकमासे ग्रहणं न प्रशस्यते।
परस्परं वधं कुर्युः स्वबलक्षुभिता नृपाः॥इति॥

सूर्य-चन्द्र का एक ही मास में ग्रहण शुभ नहीं होता है। अपनी सेनाओं से क्षुब्ध राजागण परस्पर वध करते हैं।

नन्वत्रोक्तं यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरिति। तदत्र वक्ष्यमाणेन :–

यहाँ पर एक ही मास में रवि-चन्द्र का ग्रहण कहा गया है, इस सम्बन्ध में कहते हैं :–

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रामयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम्॥

---

१. बृहत्संहितायाम् ९ अध्यायस्य शुक्रचाराख्यस्य ७ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रग्रहण के समाप्त होने के पश्चात् एक पक्ष के अन्तर्गत यदि सूर्यग्रहण हो, तो प्रजा के लिए अनिष्ट तथा पति-पत्नी के बीच परस्पर वैर होता है।

इत्यनेनैव सह पुनरुक्ततादोषः स्यात्। यस्माज्ज्योतिश्शास्त्रे मासः शुक्लादिरुक्तः। प्रथमपक्षान्ते सोमग्रहो द्वितीयपक्षान्तेऽमावास्यायामर्कग्रहात् तथैकमासः सञ्जायते तस्मादयं महान् दोषः।

इसके साथ ही इसमें पुनरुक्तिदोष उपस्थित है। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र, में मासारम्भ शुक्लादि से कहे गये हैं। प्रथमपक्ष के अन्त में चन्द्रग्रहण और द्वितीयपक्ष के अन्त में अमावस्या में सूर्यग्रहण होने से इस प्रकार एक मास की पूर्ति होना, यह एक महान् दोष है।

अन्य एवं[1] व्याचक्षते—यथाधिकमास एवैतत्सम्भवति। यदि समाने मासाद्वये सूर्येन्द्वोर्ग्रहणं भवति तदैकमासोक्तफलमन्यत्र पक्षान्तरितग्रहणफलमर्केन्द्वोर्वक्तव्यम्। एतत् सत्यमौत्पातिकं भवति। यस्मादाचार्येणाऽऽदित्यचारे सूर्यस्योपरक्तस्यापर्वणि फलमुक्तम्ः—

अन्य आचार्य इस प्रकार कहते हैं :— इस प्रकार का ग्रहण अधिकमास में सम्भव होता है। यदि सामान्य मास में सूर्य-चन्द्र का ग्रहण होता है, तो एक मास में कहा गया फल अन्यत्र अर्थात् पक्ष के व्यतीत हो जाने पर रवि-चन्द्र में होने वाले ग्रहण का फल कहना चाहिए। इसकी वास्तविक उत्पत्ति (तार्किकता) होती है। क्योंकि आचार्य ने आदित्यचाराध्याय में पर्वरहित सूर्यग्रहण का फल इस प्रकार कहा है :—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः॥ इति॥

पर्वकाल के बिना त्वष्टा नामक तमः पुञ्ज-मण्डल सूर्य को आच्छादित करता है। उस समय वह सात राजाओं को मारता है, तथा अन्य लोगों को शस्त्र, अग्नि और दुर्भिक्ष से पीड़ित करता है।

तथा च व्यास आह :—

[2]ततो ववौ महाराज मारुतो लोमहर्षणः।
राहुरग्रसताऽऽदित्यं युगपत् सोममेव च॥

इसी प्रकार व्यास ने भी कहा है :—

तत्पश्चात् लोमहर्षण वायु बहने लगी। हे महाराज! राहु ने एक साथ ही सूर्य और चन्द्रमा को ग्रस लिया।

---

१. अस्यैव ग्रन्थस्य ३ अध्यायस्य ६ श्लोकः।
२. भारतस्य अश्वमेघपर्वणि ७७ अध्याये १५ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्द्धेनाऽऽलिख्य रविं दत्वावनतिं यथादिशं मध्यात्।
अवनत्यन्ताच्चन्द्रं विलिखेद् ग्रासार्धमर्द्धेन॥ इति॥

इष्टकाल में जितनी घटी पर दिनार्द्ध होता है, उतनी घटी दिनार्द्धकालिक पूर्वनत घटी होती है। दिनार्द्ध से जितनी घटी बीती हुई होती है, उतना ही पश्चिमनत होता है। षड्गुणित घटीमान से ज्या साधित करें; इसका त्रिंशांश तिथि का नमन होता है, जिसे सम्प्रति लम्बन नाम से जाना जाता है। सूर्योदय से इष्टकाल में जितनी घटी हो, उतनी घटी पूर्व पूर्वक्षितिज में क्रान्ति-वृत्त का जो प्रदेश अर्थात् लग्न हो, उसका आनयन करे। उसी लग्न में नौ राशि जोड़कर क्रान्त्यंश का आनयन करना चाहिये।

टिप्पणी :– यहाँ पर सूर्यग्रहण साधन के लिए लम्बन और वित्रिभ का आनयन प्रस्तुत किया गया है।

लग्न और त्रिराशिभराहु की अन्तरज्या लायें। अर्थात् सर्वप्रथम लग्न से तीन राशि घटाकर वित्रिभलग्न होता है। इसमें से राहु को घटाकर ज्या-साधन करें। इस ज्या को २ से गुणाकर ६० से भाग देने पर लब्धि अंशात्मक वित्रिभशर हो जाता है। इस अंशात्मक सङ्ख्या को पूर्वानीत क्रान्ति से विपरीत दिशा होने पर (शर और क्रान्ति की दिशा विपरीत होने पर) घटा दें। क्रान्ति और शर की एक ही दिशा होने पर इन दोनों का योग कर दें। इस प्रकार वित्रिभ की स्पष्ट क्रान्ति हो जाती है। स्पष्टउत्तराक्रान्ति अक्षांश से घटाकर वित्रिभ का दक्षिणनत हो जाता है। स्पष्ट दक्षिणाक्रान्ति और अक्षांश का योग दक्षिणनत होता है। स्पष्ट उत्तराक्रान्ति अक्षांश से अधिक होने पर; अर्थात् घटाये जाने पर यदि स्पष्ट क्रान्ति से अक्षांश ऋण होता हो, तो उत्तरनत जानना चाहिए। चन्द्रमा की गति वित्रिभनतांशज्या से गुणाकर १८०० से भाग देने पर अवनति प्राप्त होती है। रविबिम्ब मध्यममान से ३० कला और चन्द्रबिम्ब मध्यममान से ३४ कला होता है। ग्रहण के समय इन दोनों का कलात्मक मान समान होने से, समकलात्मक रवि-चन्द्र कहे जाते हैं। इस समलिप्त चन्द्र की तथा राहु की अन्तरज्या से २१ का गुणाकर ९ से भाग देने पर चन्द्रमा का मध्यमशर होता है। पूर्वागत लब्धि–शर और अवनति की एक दिशा होने से, जोड़ने पर तथा भिन्न दिशा में घटाने पर स्पष्ट अवनति प्राप्त होती है।

रवि-चन्द्र की स्पष्टगति मध्यमबिम्बमान से गुणाकर मध्यमगति से भाग देने पर तात्कालिक रवि-चन्द्र का स्पष्ट बिम्बकलापरिमाण होता है। रवि-चन्द्र योगार्ध के वर्ग से स्पष्ट शर का वर्ग घटाकर उसे द्विगुणित कर मूल आनयन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रग्रहण के समाप्त होने के एक पक्ष की समाप्ति होने पर सूर्यग्रहण होता है :– यहाँ पर पक्षान्त अर्थात् मासान्त में पर्व का नियम कहा गया है, इसलिए यहाँ पर पुनरुक्तिदोष जानना जाहिए।

अन्य एवं व्याचक्षते। यथा :– कथमेकस्मिन् मासे रविसोमयोर्ग्रहणं स्याद् यावच्चैत्रसिताद्या मासा इति शास्त्रस्थितिः। अत्रोच्यते –यदि पञ्चदश्यां ग्रहणं भवति ततः पुरस्तादमावास्यायामर्कग्रहणं भवति, तत्रागूलम्बनमृणगतं भवति तदैको मासो भवति। अथवा लम्बनं धनगतं भवति, ततः पुरस्तात् पौर्णमास्यां चन्द्रग्रहणं भवति। तत्राप्येको मासो युज्यते नान्यथेति।

अन्य लोग इस प्रकार कहते हैं, जैसाकि :–

किस प्रकार एक मास में रवि-चन्द्र का ग्रहण हो सकता है ? जबकि चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा से ही मास का आरम्भ होता है, यह शास्त्रीय स्थिति है। इस सम्बन्ध में कहते हैं :– यदि पूर्णिमा में (चन्द्र) ग्रहण होता, तत्पश्चात् अमावस्या में रविग्रहण होता है, तो पूर्वलम्बन ऋण होता है; और वह एक मास होता है। अथवा धनलम्बन होता है, तो उसके आगे पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होता है। वहाँ पर भी एक मास ही युक्त है, अन्यथा नहीं।

एवमत्राधिकमासके यदुक्तं तदेव शोभनमृषिवचनादेकमासे त्रयोदश इति॥२६॥

इस प्रकार यहाँ पर अधिमास में जो कहा गया है, वह तेरहवें मास में कहे हुए महर्षि के कथनानुसार ही समुचित है। ॥२६॥

अथ ग्रस्तोदितयोर्ग्रस्तास्तयोश्चार्कचन्द्रयोः फलमाह :–

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ।
सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसन्दृष्टौ॥२७॥

ग्रस्तोदित तथा ग्रस्तास्त रवि-चन्द्र का फल कहते हैं :– रवि-चन्द्र ग्रस्त ही उदित हों अथवा ग्रस्त ही अस्त हों, तो शरदकालीन धान्य और राजा के लिए क्षयकारक होते हैं। यदि रवि-चन्द्र सर्वग्रस्त हों (पूर्णग्रहण) तथा पापग्रह से दृष्ट हों, तो व दुर्भिक्ष और मृत्युदायक होते हैं। ॥२७॥

ग्रस्तावुदितास्तमितावित्यत्र शशिरव्योः प्रत्येकस्य फलेन सह संबन्धः। चन्द्रो यदा ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितो वा भवति तथा शारदधान्यस्य क्षयदो विनाशकर्ता भवति। एवमर्को ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितश्चावनीश्वरस्य राज्ञः क्षयदो भवति। ननु सूर्येन्द्वोर्यथासंख्येन कस्मात् फलं संबध्यते। ग्रस्तोदितौ सूर्येन्दू शारदधान्यक्षयदौ ग्रस्तास्तमितावनीश्वरक्षयदौ भवत इति। अत्रोच्यते नैतद्युक्तम्। यस्माद्वृद्धगर्गः –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रवि-चन्द्र के ग्रस्त, उदित और अस्तमित होने पर फल के साथ प्रत्येक का सम्बन्ध है। चन्द्रमा जब ग्रस्तोदित अथवा ग्रस्तास्त होता है, तब शरदकालीन धान्यों का विनाशक होता है। इस प्रकार ग्रस्तोदित और ग्रस्तास्त सूर्य राजाओं के लिए क्षयकारक होता है। यहाँ पर रवि-चन्द्र का क्रमानुसार किस प्रकार फल से सम्बन्ध नहीं होता है ? ग्रस्तोदित रवि-चन्द्र शारद् धान्यों के लिए क्षयकारक होता है, तथा ग्रस्तास्त राजाओं के लिए क्षयकारक होता है। यदि ऐसा कहा जायेगा, तो यह उचित नहीं होगा। क्योंकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

उद्गच्छति गृहीतश्चेदस्तं वा यदि गच्छति।
शारदं तु तदा सस्यं जातं जातं विपद्यते॥
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नरा मूलफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च तदा सम्पीड्यते जगत्॥ इति।

यदि ग्रहण लगा हुआ उदित होता है, अथवा (ग्रहण सहित) अस्त होता है, तो शरद्काल में उत्पन्न धान्य विनष्ट होते हैं। ग्रीष्मकाल में लोग मूल और फल खाकर जीवित रहते हैं। उस समय मनुष्य भय, अकाल और रोगों से पीड़ित हो जाते हैं।

तथा च ऋषिपुत्रः–

यावतोंऽशान् ग्रसित्वेन्दोरुदयत्यस्तमेति वा।
तावतोंऽशान् पृथिव्यास्तु तम एव विनाशयेत्॥
उदयेऽस्तमये वापि सूर्यस्य ग्रहणं भवेत्।
तदा नृपभयं विन्द्यात् परचक्रस्य चागमम्॥

जैसाकि ऋषिपुत्र ने कहा है :– जितने अंशों से ग्रस्त होकर चन्द्रमा उदित अथवा अस्त होता है, पृथ्वी के उतने अंशों का वह ग्रहण विनाश करता है। उदय और अस्तकाल में सूर्यग्रहण हो, तो उस समय राजभय उत्पन्न होता है, तथा शत्रुसेना का आगमन होता है।

तथा च :–

चिरं गृह्णाति सोमार्कौ सर्वं वा ग्रसतः यदा।
हन्यात् स्फीतान् जनपदान् वरिष्ठांश्च जनाधिपान्॥
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नराश्चाम्बुफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च सम्पीड्यन्ते प्रजास्तथा॥ इति।

और भी :–

यदि रवि-चन्द्र का ग्रहण दीर्घकाल तक हो, अथवा सम्पूर्ण ग्रहण हो, तो स्फीत जनपदों का और वरिष्ठ राजाओं का हनन होता है। वहाँ पर मनुष्य ग्रीष्मकालीन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जल और फल खाकर जीवित रहते हैं, अथवा प्रजा भय, अकाल और रोगों से पीड़ित होती है।

सर्वग्रस्ताविति। सूर्येन्दू सर्वग्रस्तौ निःशेषाच्छादितौ तावेव यदि पापसन्दृष्टौ पापग्रहयोरङ्गारकसौरयोरन्यतरेण दृष्टौ भवतस्तदा दुर्भिक्षं मरकं च ददाते इति॥२७॥

रवि-चन्द्र सर्वग्रस्त अर्थात् सम्पूर्ण रूप से आच्छादित हो जायें, और वे दोनों यदि मङ्गल अथवा शनि; इन पापग्रहों में से किसी एक से दृष्ट हों, तो ये दोनों दुर्भिक्ष तथा मरण प्रदान करते हैं। ॥२७॥

अथोदयात् प्रभृत्यस्तमयं यावद् ग्रस्तयोश्चन्द्रार्कयोः सप्तस्वाकाशभागेषु फलं श्लोकचतुष्टयेनाह :—

उदय से अस्त पर्यन्त ग्रस्त रवि—चन्द्र का आकाश के सात भागों में फल कहते हैं :—

अर्द्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च।
अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगेऽभ्युदितः॥२८॥
कर्षकपाखण्डिवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयांशे।
कारुकशूद्रम्लेच्छान् खतृतीयांशे समन्त्रिजनान्॥२९॥
मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः।
तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे॥३०॥
स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहाऽस्तमयकाले।
यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्रोक्तानां शिवं भवति॥३१॥

अर्द्धोदित रवि-चन्द्र यदि ग्रस्त होते हों, तो निषाद जातियों तथा सभी प्रकार के यज्ञों का क्षय होता है। दिनमान तथा रात्रिमान के सातवें भाग को एक आकाशखण्ड कहते हैं। इस प्रकार दिन में सात भाग और रात्रि में सात भाग आकाश के होते हैं। प्रथमभाग में ग्रहण होने पर अग्नि से आजीविका चलानेवाले, गुणी, प्रिय तथा आश्रमवासियों को कष्ट होता है। द्वितीय भाग में कृषक, पाखण्डी, व्यापारी, क्षत्रिय और सेनानायकों को कष्ट पहुचता है। तृतीयभाग में चित्रकार, शूद्र, म्लेच्छ और मन्त्रियों का नाश होता है। चतुर्थभाग में राजा तथा मध्यप्रदेश का नाश होता है, और धान्यों के भाव अच्छे रहते हैं। पञ्चमभाग में पशु, मन्त्री, अन्तःपुर और वैश्यों को कष्ट पहुँचता है। षष्ठभाग में स्त्री और शूद्रों का नाश होता है। सप्तमभाग (अस्तकाल) में चोर तथा गुफा के निवासियों का मोक्ष होता है, उस भाग के निवासियों का कल्याण होता है। ॥२८-३१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रोऽर्को वाऽर्द्धोदितो यद्युपरक्तो भवति ग्रस्त इत्यर्थः। तदा नैकृतिकान्निषादान् सर्वयज्ञान् निःशेषान् यागांश्च हन्ति नाशयति। ग्राह्यादिनप्रमाणस्य सप्तभिर्भागमपहृत्य यल्लभ्यते तच्छास्त्रप्रमाणम्। अनेनाऽऽकाशमपि सप्तधाकृतं भवति।

स्पार्शिकं मौक्षिकं वान्यं कालं सप्तगुणं हरेत्।
दिनमानेन यल्लब्धं खांशमानं युगस्य तत्॥

रवि-चन्द्र यदि अर्द्धोदित उपरक्त अर्थात् ग्रस्त होते हैं, तब नैकृतिक अर्थात् निषादों का तथा सम्पूर्ण यज्ञों का नाश करते हैं। प्राप्त दिन-प्रमाण का सप्तमभाग जो प्राप्त होता है, वही शास्त्र का प्रमाण है। इस प्रकार आकाश भी सात प्रकार से विभाजित होता है। दिनमान में सात से भाग देने पर जो लब्ध होता है, वही आकाशभाग कहा जाता है। स्पर्श, मोक्ष अथवा अन्यकाल के लिए इसी से विचार किया जाता है।

एवं कृत्वा विचारयेत्। कस्मिन्नाकाशभागे प्रग्रहणं मोक्षो वा। तत्र यदाभ्युदित उद्गत एव चन्द्रः सूर्यो वा युगे प्रथमभागे प्रथमदिनसप्तभागे यद्यर्कस्य चन्द्रस्य ग्रहणं भवति वा तदा स एवाकाशभागः प्रथम इत्यर्थः। तत्र ग्रस्तो दृश्यते तदाग्न्युपजीविनः सुवर्णकारप्रभृतयः। गुणाधिका गुणिनः। विप्रा ब्राह्मणाः। आश्रमिण आश्रमवासिनश्चैतान् हन्ति।

इस प्रकार विचार करें कि आकाश के किस भाग में ग्रहण अथवा मोक्ष हो रहा है। वहाँ पर उदय के समय चन्द्र अथवा सूर्य को प्रथमभाग अथवा युगभाग का कहा जाता है। प्रथमदिन के सूर्य का अथवा चन्द्र का ग्रहण होता है, तो उसे आकाश का प्रथमभाग कहा जाता है। उस समय ग्रस्त दिखायी देने पर सुवर्णकार आदि अग्निजीवीजनों का, गुणी लोगों का, ब्राह्मणों का और आश्रमवासियों का हनन होता है।

कर्षकाः कृषिकराः। पाखण्डिनो वेदबाह्याः। वणिजः क्रयविक्रयकारकाः। क्षत्रिया राजन्याः। बलनायकाः सेनापतयः। एतान् द्वितीयांशे द्वितीयभागे निहन्ति। कारुकाः शिल्पिनः। शूद्राः शूद्रजातयः। म्लेच्छा म्लेच्छजातयः। एतान् समन्त्रिजनान् मन्त्रिजनैः सह तृतीयेंऽशे तृतीय आकाशविभागे निहन्ति।

कृषक, पाखण्डी (वेदविरोधी), क्रय-विक्रयकर्ता, क्षत्रिय और सेनापति का द्वितीयभाग में विनाश करता है। करुक अर्थात् शिल्पी, शूद्रजाति, और म्लेच्छजाति इनका मन्त्रिगणों के साथ तीसरे आकाशभाग में (ग्रहण होने पर) हनन होता है।

तथा मध्याह्ने चतुर्थे खांशे नरपतिमध्यदेशहा नरपतिं राजानं मध्यदेशं च निहन्ति मध्यदेशे यो राजा तमेव हन्ति। धान्यस्यार्घः शोभनो भवति सममर्घं धान्यं भवतीत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृणभुजश्चतुष्पदान्। अमात्यान् मन्त्रिणः। अन्तःपुराणि राजदारान्। वैश्यान् वैश्यजातीयांश्च पञ्चमे खांशे आकाशभागे निहन्ति।

स्त्रीशूद्रानिति। स्त्रियो योषितः। शूद्राः शूद्रजातयः। एतान् षष्ठेंऽशे आकाशभागे निहन्ति। दस्यवश्चौराः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। एतानस्तमयकाले निहन्ति। यस्मिन् खांशे आकाशभागे मोक्षो भवति तत्रोक्तानामग्न्युपजीविप्रभृतीनां शिवं श्रेयो भवति। अथ यस्मिन्नंशे प्रग्रहस्तस्मिन् मोक्षस्तदा यदुक्तं फलं तन्न भवति शुभाशुभं समं स्यात्।

चतुर्थ आकाशभाग अर्थात्, मध्याह्नकाल में राजा का और मध्यदेश का हनन होता है। मध्यदेश में जो राजा होता है, उसकी हत्या होती है। यह अभिप्राय है। धान्य का मूल्य उत्तम होता है। पञ्चम आकाशभाग में पशु, मन्त्री, अन्तःपुर की स्त्रियाँ और वैश्यजाति का विनाश होता है। षष्ठभाग में स्त्री, शूद्रजाति; इनका विनाश होता है। अस्तकाल के समय चोर तथा गुफावासियों का विनाश होता है। जिस आकाशभाग में मोक्ष होता है, उसमें कहे गये अग्निजीवी प्रभृति मनुष्यों का कल्याण होता है। जिस आकाशभाग में ग्रहण होता हो, उसी भाग में मोक्ष भी हो, तो पूर्वोक्त फल नहीं होते हैं। अर्थात् शुभाशुभ में साम्यता रहती है।

तथा च काश्यपः—

उदितास्तमितौ ग्रस्तौ सर्वसस्यक्षयङ्करौ।
सर्व[1]ग्रस्तौ यदा पश्येद्दुर्भिक्षं तत्र जायते॥
प्रथमांशे विप्रपीडा क्षत्रियाणां द्वितीयके।
शूद्राणां च तृतीयेंऽशे चतुर्थे मध्यदेशिनाम्॥
वैश्यानां पञ्चमे खांशे षष्ठांशे प्रमदाभयम्।
[2]दस्युप्रत्यन्तकम्लेच्छविनाशः सप्तमांशके॥
येषामंशे भवेन्मोक्ष[3]स्तज्जातानां शुभं भवेत्।

जैसाकि काश्यप ने कहा है:—

उदित और अस्तकाल में (रवि अथवा चन्द्र) ग्रस्त हों, तो सभी प्रकार के सस्यों का क्षय होता है। जब सपूर्णग्रस्त हों, तो वहाँ पर दुर्भिक्ष होता है। प्रथम अंश में ब्राह्मणों को पीड़ा, द्वितीय में क्षत्रियों को तृतीय अंश में शूद्रों को, चतुर्थ

---

१. सर्वग्रस्तावर्कचन्द्रौ दुर्भिक्षक्षयकारकौ-इति अ० क० पु० पाठः।
२. दस्युप्रत्यन्तिका म्लेच्छाः पीड्यन्ते सप्तमांशके-इति अ० क० पु० पाठः।
३. तत्रोक्तानाम्-इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में मध्यदेशवासियों को, पञ्चम में वैश्यों को, आकाश के षष्ठभाग में स्त्रियों को भयप्रदाता, सप्तमभाग में दस्यु, तटवर्ती और म्लेच्छजनों का विनाश होता है। जिस अंश में मोक्ष होता है, उसमें उत्पन्न लोगों का शुभ होता है!

तथा च वृद्धगर्गः—

येषां सोमो युगे ग्रस्तो विमर्दो यत्र वा भवेत्।
तेषां पीडां विजानीयात् [1]मोक्षे शुभमथादिशेत्॥इति॥२८-३१॥

जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है:—

जिस भाग में चन्द्रमा ग्रस्त अर्थात् विमर्दित होता है, उस भाग के लोगों को कष्ट होगा, यह जानना चाहिए। जिस भाग में मोक्ष होता है, उसके लिए शुभ का आदेश करना चाहिए॥२८-३१॥

अथायनफलं दिक्फलं चाह श्लोकत्रयेण:—

द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान् दक्षिणायने हन्ति।
राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन्॥३२॥
म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च।
सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोदग्गवामशुभः॥३३॥
पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः।
पश्चात् कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः॥३४॥

अब अयनफल और दिक्फल को कहते हैं:—

उत्तरायण में ग्रहण होने पर ब्राह्मणों और राजाओं का तथा दक्षिणायन में वैश्यों और शूद्रों का विनाश करता है। उत्तर आदि दिशाओं में प्रदक्षिणाक्रम से दृष्ट राहु विप्रादि वर्णों का विनाश करता है। अर्थात् उत्तर में विप्र, पूर्व में क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य और पश्चिम में शूद्रजाति का विनाश होता है। विदिशाओं में स्थित राहु क्रमशः म्लेच्छ, यांत्रिक, अग्निजीवी, जलचर, दन्तविघातक (हिंसक) आदि का विनाश करता है। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं के लिए पुनः विशेष फल कहते हैं:— दक्षिण में राहु हो तो जलचर और हाथियों का नाश होता है। उत्तर में दृश्य हो, तो गो-वृषभ का नाश करता है। पूर्व में दृश्य हो, तो भूमि जल से परिपूर्ण होती है, तथा पश्चिम में दिखायी दे, तो कृषक, सेवक तथा बीजों का विनाश होता है। ॥३२-३४॥

मकारादिराशिषट्कस्थेऽर्के उत्तरमयनम्। कर्कटादिराशिषट्कस्थेऽर्के दक्षिणमयनमिति। उदगयने उत्तरायणे राहुर्दृष्टो द्विजान् ब्राह्मणान् नृपतीन् क्षत्रियांश्च निहन्ति। तथा विट्शूद्रान् वैश्यान् शूद्रांश्च दक्षिणायने हन्ति घातयति। तथा च गर्गः—

---

१. मोक्षे तु शुभमादिशेत्-इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मकरादि छः राशियों में सूर्य के स्थित होने पर उत्तरायण होता है। सूर्य के कर्कादि छः राशियों में होने पर दक्षिणायन होता है। उत्तरायण में राहु दृष्ट हो तो ब्राह्मणों, राजाओं और क्षत्रियों को मारता है तथा दक्षिणायन में शूद्रों और वैश्यों का विधात करता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

उत्तरायणसन्दृष्टो ब्रह्मक्षत्रविनाशनः।
दक्षिणायनगो राहुर्वैश्यशूद्रविनाशनः॥

उत्तरायण में दृष्ट राहु ब्राह्मण और क्षत्रियों का तथा दक्षिणायन में वैश्यों और शूद्रों का विनाशक होता है।

राहुरुदगादिदृष्ट इति। उदगादिषूत्तराद्यासु चतसृषु दिक्षु प्रदक्षिणेन राहुर्दृष्टो विप्रादीन् ब्राह्मणादीन् हन्ति। एतदुक्तं भवति :– सूर्ये चन्द्रे वा यद्युत्तरस्यां दिशि राहुः प्रग्रहणं करोति तदा ब्राह्मणान् हन्ति। पूर्वस्यां दृष्टः क्षत्रियान् निहन्ति। दक्षिणस्यां दृष्टो वैश्यान् हन्ति। पश्चिमायां दृष्टः शूद्रान्निहन्ति।[1] अत्र यद्यप्यर्कचन्द्रयोर्दक्षिणोत्तरदिग्भागात् प्रग्रहणं न सम्भवति, तथाप्याचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च काश्यपः–

राहु उत्तरादि चार दिशाओं में प्रदक्षिणाक्रम से दृष्ट हो तो ब्राह्मणादि को मारता है। कथनाभिप्राय यह है, कि सूर्य अथवा चन्द्रमा को यदि उत्तर दिशा में

---

१. अत्र :–
नन्वत्र यदुक्तमुदगादिदृष्टो राहुः प्रदक्षिणं विप्रादीन् निहन्ति तदुत्तरदक्षिणदिग्भागात् कदाचिदपि रविशशिनोः प्रग्रहणमोक्षौ न भवतस्तत्किमुक्तमेतदसत्यं गणितगोलविरुद्धमिति। अत्रोच्यते :– पूर्वशास्त्रेषु भगवत्पराशरगर्गादिविरचितेषु दृश्यते। तैश्चौत्पातिकं पर्वाधिकृत्योक्तं फलमेतत्। यथा च पराशरः– "अपर्वणि शशाङ्कार्कौ" इति। तदेव पूर्वशास्त्रदृष्टत्वादाचार्येणाप्युक्तमिति। यतस्तस्य प्रतिज्ञेयम्–

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥

इति अ० क० पु० अधिकः पाठः।
भट्टोत्पलस्यायं प्रामादिको लेखो गोलयुक्त्या षट्षष्टिपललवदेशेषु दक्षिणोत्तरयोः प्रग्रहणसम्भवात्। अत एव सिद्धान्तशिरोमणौ गणिताध्याये भास्कराचार्याः–

यत्राक्षोऽङ्गरसा लवा दिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो
मेषे वा वृषभेऽपि वाप्यनिमिषे कुम्भे स्थितस्यापि वा।
स्पर्शो दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत् स्यात् क्रान्तिवृत्तं यत-
स्तद्ब्रूह्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्द्धतुल्यं कथम्॥

इति प्राहुः।
षट्षष्टिपलाधिकदेशा नृगोचरा न। अतस्तदल्पपललवदेशेषु भट्टोत्पलव्याख्यानं समीचीनं भवतीति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राहु ग्रहण करता है, तो ब्राह्मणों का हनन होता है। पूर्वदिशा में दृष्ट राहु क्षत्रियों को मारता है, दक्षिण में दृष्ट होने पर वैश्यों को, पश्चिम में दृष्ट होने पर शूद्रों को मारता है। यहाँ पर विचारणीय है, कि यद्यपि दक्षेणोत्तरदिशा के विभाग से ग्रहण नहीं उत्पन्न होता है, तथापि आचार्य ने पूर्वशास्त्रों को देखकर ही कहा है। जैसाकि काश्यप का कथन है :–

सौम्यायामागतो विप्रान् पूर्वस्यां [1]क्षत्रजातयः।
वैश्यान् दक्षिणतो राहुर्हन्ति पश्चिमतोऽपरान्॥

उत्तरदिशा में गया हुआ राहु ब्राह्मणों का, पूर्वदिशा में क्षत्रियों का, दक्षिणदिशा में वैश्यों का और पश्चिमदिशा में शूद्रों का विनाश करता है।

तथा च पराशरः–

उदक्प्रागुदक्षिणप्रत्यग् ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रोच्छेदनायाऽऽनुपूर्व्याऽपि च॥

म्लेच्छान् विदिक्स्थित इति। विदिक्स्थितो राहुः। ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येषु स्थित इत्यर्थः। म्लेच्छान् म्लेच्छजनांस्तथा यायिनः प्रोषितान्। हुताशसक्तानग्निरतानग्निहोत्रिणो हन्यात्। दक्षिणोत्तरयोः पुनरपि विशेषमाह – सलिलचरेति। याम्येन दक्षिणेन दृष्टः सलिलचरान् जलचरान् तथा दन्तिनो हस्तिनो घातयति हन्ति। उदगुत्तरेण दृष्टो गवामशुभः क्षयकृत्।

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम दिशाओं में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों का विच्छेद करता है। विदिशाओं में स्थित राहु म्लेच्छादिकों का अर्थात् ईशान, अग्नि, नैऋत्य और वायव्य में स्थित होने पर म्लेच्छजातियों यांत्रिकजनों अग्निहोत्री आदि अग्निजीवीजनों का विनाश करता है। दक्षिणोत्तरदिशा को पुनः विशेष रूप से कहते हैं :– दक्षिण में दृष्ट राहु जलचर तथा, हाथियों का विघातक होता है। उत्तर में दृष्ट राहु गायों के लिए क्षयकारक होता है।

अथ पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः पुनरपि विशेषफलमाह :– पूर्वेणेति। दैत्यो राहुः पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि समागतो दृष्टो वसुधां भूमिं सलिलपूर्णां तोयपूर्णां करोति। पश्चादागतः कर्षकाणां कृषिकाराणां सेवकानां पराऽऽराधनरतानां बीजानां च विनाशाय निर्दिष्ट उक्तः। उप्यन्ते यानि तानि बीजानि। तथा च काश्यपः–

अब पूर्व– पश्चिम दिशाओं के लिए पुनः विशेष फल कहते हैं :– पूर्व-दिशा में आया हुआ राहु भूमि को जलपूर्ण करता है। पश्चिम दिशा में गया हुआ राहु कृषकों, सेवकों और बीजों के लिए विनाशकारक कहा गया है। जिसको बोया जाता है, उसे बीज कहते हैं। जैसा कि काश्यपने कहा है :–

---

१. ये क्षत्रजातयस्तान् हन्तीति व्याख्याऽऽर्षवचनस्य कार्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वे सलिलघाती स्यात् पश्चाद्धान्यकृषीवलान्।
याम्ये जलचरान् हन्ति सौम्ये गोनाशकः स्मृतः॥
म्लेच्छान् यायिनृपान् हन्ति विदिक्स्थः सिंहिकासुतः॥इति।

राहु पूर्व में जलप्लावन करनेवाला, पश्चिम में धान्य तथा कृषकों का विनाशक, दक्षिण में जलचरों का घातक-और उत्तर में (दृष्ट होने पर) गो-वंश का नाशक कहा गया है। विदिशाओं (कोणों) में यायी (आक्रमणकारी) राजाओं का हनन करता है।

तथा च समाससंहितायाम् :—

उदगादिषु दिक्ष्वशुभो विप्रादीनां सितादिवर्णस्य।
विदिगादिगतो हन्याद्राहुर्म्लेच्छान् सविजिगीषून्॥
द्विजराजन्यान् हन्यादुदगयने दक्षिणे तु विट्शूद्रान्।
समरामयाय राहुर्यदि पक्षान्ते पुनर्दृश्यः॥इति॥३२-३४॥

इसी प्रकार समाससंहिता में कहा गया है :—

उत्तरादि दिशाओं में गया हुआ राहु क्रमशः ब्राह्मणादि वर्ण और श्वेतादि रंगों का विनाश करता है। विदिशाओं में गया हुआ राहु म्लेच्छ जातिओं तथा विजयेच्छु राजाओं का विनाश करता है। उत्तरायण में गया हुआ राहु ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का, और दक्षिणायन में वैश्यों एवं शूद्रों का विनाश करता है। एक पक्ष के पश्चात् यदि राहु पुनः दृष्ट होता है, तो युद्ध और रोगों का कारक होता है। ॥३२-३४॥

अथ चन्द्रार्कयोर्मेषादिषु राशिषु ग्रस्तयोः फलान्याह :—

पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्त्ताः।
जीवन्ति च ये हुताशवृत्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे॥३५॥

मेषादि राशिओं में ग्रस्त रवि-चन्द्र का फल :—

मेष राशि में स्थित रवि अथवा चन्द्र का ग्रहण होने पर पाञ्चाल, कलिङ्ग, शूरसेन, काम्बोज, उड्र और किरात-जनों को पीड़ा होती है। साथ ही शस्त्रों से जीविका करनेवाले और अग्नि से आजीविका करनेवाले पीड़ा को प्राप्त होते हैं। ॥३५॥

पाञ्चालाः पाञ्चालजनाः, कलिङ्गाः, शूरसेनाः, काम्बोजः, उड्राः, किराता एते सर्वे जनाः। तथा शस्त्रवार्ताः शस्त्रवृत्तयः शस्त्रं वर्तनं येषाम्। ये च हुताशवृत्त्या अग्निवृत्त्या च जीवन्ति सुवर्णकारादयः। ते सर्वे पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति मेषसंस्थितेऽर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते॥३५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाञ्चालक्षेत्र के लोग, कलिङ्ग, शूरसेन, काम्बोज, उड्र और किरात क्षेत्र के सभी लोग तथा शस्त्रवृत्ति वाले लोग, और जो अग्निवृत्ति से जीवनयापन करते हैं, जैसे सुवर्णकार आदि, ये सभी पीड़ा को प्राप्त होते हैं, जबकि सूर्य अथवा चन्द्रमा मेषराशिगत ग्रस्त होता है ॥३५॥

अथ वृष आह :–

गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः।
पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ॥ ३६॥

वृषराशि में ग्रस्त का फल :–

रवि अथवा चन्द्र वृषराशिस्थ होकर ग्रस्त होता है, तो गोप, पशु, गोस्वामी और विशिष्ट महत्त्व को प्राप्त व्यक्ति पीड़ित होते हैं ॥३६॥

गाः पान्ति रक्षन्तीति गोपाः। पशवश्चतुष्पदाः। गोमिनो गोमन्तो गावो विद्यन्ते येषां ते। [1]ज्योत्स्नातमिस्रेति गोमिन् शब्दः। ये च मनुजा मनुष्या महत्त्वमागताः पूज्यतां प्राप्तास्ते सर्व एव भास्करे सूर्ये शीतकरे चन्द्रे वा वृषस्थे ग्रस्ते पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ३६॥

जो गायों की रक्षा करते हैं, वे गोप होते हैं। चतुष्पद को पशु कहते हैं। जिसके पास गायें होती हैं, उन्हें गोमिन (गोमन्त) कहते हैं। गोमिन शब्द का अर्थ ज्योत्स्ना तथा तमिस्रा है। और जो मनुष्य महत्त्व (पूज्यता) को प्राप्त होते हैं, वे सभी लोग सूर्य अथवा चन्द्रमा के वृषराशि में होने पर ग्रस्त होने से पीड़ा को प्राप्त करते हैं ॥३६॥

मिथुन आह :–

मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः।
यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥ ३७॥

मिथुन का फल कहते हैं :–

मिथुनराशि में स्थित सूर्य अथवा चन्द्रमा के ग्रस्त होने पर श्रेष्ठ स्त्रियाँ, नृप, नृपसदृश मन्त्री, बली प्राणी, कलाकार, यमुना के पट पर स्थित जन, मत्स्यजनपदीय जन, बाह्लीकजन और सुह्मजन; ये सभी पीड़ा को प्राप्त होते हैं ॥३७॥

प्रवराङ्गनाः प्रधानस्त्रियः। नृपा राजानः। नृपमात्रा नृपसदृशा अमात्याः। बलिनः प्राणिनः। कलाविदश्चित्रगीतनृत्यवाद्याभिज्ञाः। यमुनानदी तस्यास्तटे तीरे ये जातास्ते च सबाह्लिका बाह्लिकैर्जनैः सहिताः। तथा मत्स्या जनास्ते च सुह्मजनैः समन्विताः सहिता एते सर्व एव मिथुनस्थे सूर्ये चन्द्रे वा ग्रस्ते पीडामुपयान्ति ॥ ३७॥

---

१. ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्वानूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः (५-२-११४) इति पाणिनिसूत्रेण सूत्रस्थाः शब्दा मत्वर्थे निपात्यन्ते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रवर अङ्गना अर्थात् प्रधान स्त्रियाँ, नृप, नृपमात्रा अर्थात् राजा के सदृश अमात्य, बली प्राणी, कलाविद् अर्थात् चित्र, गीत, नृत्य, वाद्यों के ज्ञाता, यमुना नदी के तटीय-क्षेत्र, वाह्लीक लोगों सहित मत्स्यप्रदेश के लोग और सुह्मजनों सहित ये लोग पीड़ा को प्राप्त होते हैं ॥३७॥

कर्कटक आह :–

आभीराञ्छबरान् सपह्लवान्
मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि।
पाञ्चालान् विकलांश्च पीडय-
त्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥३८॥

कर्क का फल कहते हैं :–

आभीर, शबर, पह्लव, मल्ल, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चाल, विकलाङ्ग; इन सभी को कर्कराशिगत रवि-चन्द्र ग्रस्त होने पर पीड़ित करता है। साथ ही अन्न का विनाश होता है ॥३८॥

आभीरान् जनान्, शबरानपि जनांश्च, सपह्लवान् पह्लवैर्जनैः सहितान्, मल्लान् बाहुयुद्धज्ञान्, मत्स्यान्, कुरूंश्च, शकानपि, पाञ्चालानपि, विकलानङ्गहीनान् एतान् सर्वानेव जनान् पीडयत्युपतापयति तथाऽन्नं च निहन्ति धान्यमहार्घाधिक्यं भवतीति कर्कटे यद्यर्कचन्द्रौ ग्रस्तौ भवतः ॥३८॥

आभीरजन, शबरजन, पह्लवजन सहित मल्ल अर्थात् बाहु - युद्ध के ज्ञाता, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चाल और विकल अर्थात् अङ्गहीन; इन सभी लोगों को पीड़ित अर्थात् उपतापित करता है, तथा धान्यों का विनाश अर्थात् अधिक महर्घता होती है, जब कर्कराशि में रवि-चन्द्र ग्रस्त होते हैं ॥३८॥

सिंहकन्ययोराह :–

सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्
राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च।
षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्
हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥३९॥

सिंह-कन्याराशि का फल :–

सिंह राशिगत रवि-चन्द्र का ग्रहण हो, तो निषाद-समूह, मेकलजन, सात्विक लोग, नृपतुल्य धन-सम्पत्तिवान्, राजा, अरण्यवासी, इन सभी को पीड़ा होती है।

कन्याराशिगत रवि-चन्द्र का ग्रहण सस्य, कवि, लेखक, गायक तथा अश्मक, त्रिपुर और शालिप्रदेशों के निवासियों को पीड़ित करता है ॥३९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुलिन्दा निषादा जनाः, गणाः समूहाः, मेकला जनाः, सत्त्वयुक्ताः सत्त्वप्रधानाः, राजोपमा राजन्यतुल्या वित्तप्रतिपत्तियुक्ताः, नरपतयो राजानः, बनगोचरा बनमरण्यं गोचरो विषयो येषां ते बनगोचरा बनवासिन इत्यर्थः। एतान् सिंहे हन्ति।

पुलिन्द अर्थात् निषादजन, गण अर्थात् समूह, मेकला प्रदेशस्थजन, सत्त्वप्रधान अर्थात् सात्विकजन, राजातुल्य वित्त-सामर्थ्य से युक्त जन, नरपति अर्थात् राजा लोग, वनगोचर अर्थात् अरण्य ही जिसका विषय हो, ऐसे वनवासीजन, इन सभी को सिंहराशिगत रवि-चन्द्र ग्रस्त होने पर पीड़ित करता है।

षष्ठ इति। सस्यानि प्रसिद्धानि, कवयः पण्डिताः, लेखका लेखज्ञाः, गेयसक्ता गेयरताः, अश्मका जनाः, त्रिपुरा देशाः, शालियुता देशा येषु शालयो धान्यानि बहूनि भवन्ति, एतान् सर्वान् षष्ठे कन्यायां हन्ति॥३९॥

शस्य सामान्यतया प्रसिद्ध है, कवि (पण्डित), लेखक, गायक, अश्मकप्रदेश के लोग, त्रिपुरदेश और शालिधान्य जहाँ पर बहुत होते हैं; इन सभी को कन्याराशिगत रवि-चन्द्र ग्रस्त होने पर पीड़ित करते हैं॥३९॥

अथ तुलावृश्चिकयोराह :—

तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून्
वणिग्दशार्णान् मरुकच्छपांश्च।
अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्
द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान्॥४०॥

तुला-वृश्चिक का फल कहते हैं :—

तुलाराशि में स्थित रवि-चन्द्र का ग्रहण हो तो अवन्ति-निवासियों, सीमान्तवासियों, साधुओं, व्यापारियों, दशार्णवासियों, मरु-कच्छपवासियों को पीड़ा पहुँचती है।

वृश्चिकराशिगत रवि-चन्द्र के ग्रस्त होने पर अलिनी, उदुम्बर, मद्र और चोलप्रदेशवासियों तथा वृक्षों, सैनिकों, विषयुक्त शस्त्रधारकों को पीड़ा होती है॥४०॥

अवन्ती आवन्त्या जनाः, अपरान्त्या जना एव, साधवः सज्जनाः, वणिजः [1]किराटाः, दशार्णा जना एतान् मरुकच्छपाञ्जनांश्च, एतान् सर्वान् तुलाधरे तुले हन्ति।

अवन्ती अर्थात् अवन्तिप्रदेश के लोग अपरान्त्य अर्थात् सीमान्त प्रदेशस्थ लोग, सज्जन, व्यापारी, किरात और दशार्ण; इन लोगों को तथा मरु-कच्छपवासी, इन सबको तुलाराशिगत ग्रस्त रवि-चन्द्र पीड़ित करता है।

---

१. कतिपयपुस्तकेषु किराटस्थाने किरात इत्युपलभ्यते। व्याकरणेन पदद्वयस्य साधुत्वं भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलिन्यथेति, उदुम्बरा जनाः, मद्राः, चोला एतानपि जनान्, द्रुमान् वृक्षान्, यौधेयान् जनान्, विषायुधीयान् विषमायुधं येषां तान् सह यौधेयैर्विषायुधीयान् एतानलिनि वृश्चिके हन्ति ॥४०॥

अलिनी, उदुम्बर, मद्र, चोल, इन प्रदेशों के लोगों को तथा वृक्षों, सैनिकों, विष-शस्त्रधारियों का वृश्चिकराशिगत (रवि-चन्द्र का ग्रहण) हनन करता है ॥४०॥

अथ धनुर्मकरयोराह :–

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्
पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान्।
हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्
मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥४१॥

धनु-मकरराशि का फल कहते हैं :–

धनुराशिगत रवि-चन्द्र के ग्रहण से धनुर्धारी, अमात्य, अश्व, विदेहजन, मल्ल, पाञ्चालजन, वैद्य, व्यापारी और विषम शस्त्रधारी लोगों को पीड़ा होती है।

मकरराशिगत रवि-चन्द्र के ग्रहण से मत्स्य, मन्त्री, नीचजन, मन्त्र-औषधि-कुशल, वृद्ध और शस्त्रजीवियों को पीड़ा होती है ॥४१॥

अमात्या मन्त्रिणः, बराः प्रधानाः अथवाऽमात्यवराः प्रधानाः, वाजिनोऽश्वाः, विदेहा जनाः, मल्ला बाहुयुद्धज्ञाः, पाञ्चाला जनाः, वैद्याः कायचिकित्सकाः, वणिजः क्रयविक्रयिणः, विषमाः क्रूराः, आयुधज्ञा आयुधवेत्तार एतान् धन्विनि हन्यात्।

अमात्य अर्थात् मन्त्री, वर अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अमात्यवर प्रधानसचिव, अश्व, विदेह जनपद के लोग, मल्ल अर्थात् बाहु-युद्ध के ज्ञाता, पाञ्चाल (पञ्जाब प्रदेश) के लोग, वैद्य अर्थात् कायचिकित्सक तथा क्रूर आयुधों के ज्ञाता और धन्वीपुरुषों का हनन करता है।

हन्यान्मृगे त्विति। झषा मत्स्याः, मन्त्रिणश्चाणक्यविदः सचिवाः, कुलानि वंशाः, अथवा मन्त्रिणां सचिवानां कुलानि, नीचा अधमकर्मकराः, एतान् तथा मन्त्रौषधीषु च कुशलान् मन्त्रेषु शैववैष्णवसौरेषु औषधीषु च कुशलान् शक्तान्, स्थविरान् वृद्धान्, आयुधीयानायुधजीविन एतान् मृगे मकरे हन्यात् ॥४१॥

मत्स्य, चाणक्य-नीतिविद् सचिवों, कुलों, अथवा सचिव के कुलों को अधमकर्म करने वाले नीचों को तथा मन्त्रौषधियों में कुशल अर्थात् शैव, वैष्णव और सौर औषधियों में कुशल, समर्थ, वृद्धों, शस्त्रजीवियों; इन सबकों मकरराशिगत रवि-चन्द्र का ग्रहण विनष्ट करता है ॥४१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ कुम्भमीनयोराह :—

कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् [1]सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करा-
नाभीरान् दरदाऽऽर्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान्।
मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि [2]वन्यान् जनान्
प्राज्ञान् वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥४२॥

कुम्भ-मीनराशिगत फल कहते हैं :—

कुम्भ राशि में स्थित रवि-चन्द्र के ग्रहण में गिरिवासियों, पाश्चात्यजनों, भारवाहक, तस्कर, अहीर, (आभीर), दरदक्षेत्रवासियों, श्रेष्ठ लोगों, सिंहपुर वासियों, बर्बर जातियों को पीड़ा होती है।

समुद्र-तट, समुद्र जलोत्पन्न पदार्थ, वनवासियों, बुद्धिमानों, जलोपजीवियों का हनन करता है। नक्षत्रों का फल कूर्मविभाग में कथित चक्र से जानना चाहिए ॥४२॥

अन्तर्मध्ये गिरौ पर्वते जाता अन्तर्गिरिजास्तान् पर्वतमध्यजातान् जनान् सपश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिभिर्जनैः सह। केचिदन्तर्गिरिजान् स पश्चिमानिति पठन्ति। गिरेरन्तरे जातान् जनान् पश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिनः। प्राक्पाठोऽत्र शोभनः। भारोद्वहान् भारवाहिनः, तस्करान् चौरान्, आभीरान् जनान्, दरदान् जनानेव, आर्यान् प्रधानजनान्, सिंहपुरकान्, बर्बरान् जनान् तथा तेनैव प्रकारेण एतान् सर्वान् कुम्भे हन्यात्।

पर्वत के मध्य में उत्पन्न लोगों को, साथ ही पश्चिमदिशा में निवास करने वाले लोगों को, कुछ लोग अन्तर्गिरिजन सहित पश्चिम के लोगों का ऐसा पाठ करते हैं, गिरिमध्य उत्पन्न लोग तथा पश्चिम दिग्वासीजन, यहाँ पर पूर्वपाठ उचित है। भारवाहक, चोर, आभीर, दरदजन, प्रधान लोग, सिंहपुर के वासी तथा बर्बर लोगों को कुम्भराशि में स्थित रवि-चन्द्र के ग्रहण से पीड़ा होती है।

सागरकूलं समुद्रतटम्। सागरजलद्रव्याणि समुद्रोत्पन्नानि द्रव्याणि रत्नादीनि। [3]वन्यान् वनभवान् जनान्, प्राज्ञान् बुद्धियुक्तान्, वार्युपजीविनो जलोपजीविनः, उदकविक्रयेण जीवन्ति ये एतान् मीने हन्यात्। भफलं नक्षत्रफलं कूर्मोपदेशात् कूर्मविभागकथितात् वदेद् ब्रूयात्। यन्नक्षत्रस्थावर्कचन्द्रौ ग्रहणसमये भवतस्तन्नक्षत्रं कूर्मविभागेन यस्मिन् देशे उक्तं तज्जनानां पीडा भवति। तच्च वक्ष्यति :—

---

१. स पश्चिमजनान्-इति पाठान्तरम्।

२. मान्यानिति-अ० क० पु० पाठः।

३. मान्यान् पूज्यान्। केचिद्वन्यान् जनानिति पठन्ति। वने भवा वन्यास्तान्। पूर्वपाठ एव श्रेयानिति अ० क० पु० अधिकः पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मीनराशिस्थ रवि-चन्द्र के ग्रहण से समुद्रतट तथा समुद्री रत्नादि द्रव्यों, वन्य पदार्थों, प्रज्ञावान्, जलोपजीवी, जो जल के विक्रय से जीवन यापन करते हैं; इन सभी का हनन करता है। (ग्रहणगत) नक्षत्रों का फल कूर्मविभाग में कथनानुसार जानना चाहिए। जिस नक्षत्र में रवि-चन्द्र ग्रहण के समय होते हैं, वह नक्षत्र कूर्मविभाग के द्वारा जिस देश में कहा गया है, उस देश में उत्पन्न लोगों को पीड़ा होती है। जैसाकि कहा गया है :–

[1]नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा।
भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजिता देशाः॥इति।

तीन-तीन नक्षत्रों के समूह के द्वारा आग्नेय आदि दिशाओं में नौ भागों में विभक्त भारतवर्ष के मध्यक्षेत्र से पूर्वादि दिशाओं में प्रदेशों को विभाजित किया जाता है।

तथा च पराशरः–

अथ कृत्तिकासु कलिङ्गानामधिपतीन् पीडयति। रोहिण्यां हच्छस्त्रकोपैः प्रजानाम्, मृगशिरसि सालनिषादकैकयान्, आर्द्रायां शुकान् कुक्कुरान् पल्वलोपजीविनश्च। पुनर्वसौ पण्यान् रुरुकर्पासं च। पुष्ये गोमतिसिन्धुसौवीरकुरुपाञ्चालान्। सार्पे काशिकलिङ्गसिंहलकराजन्यान्। पित्र्ये दण्डकनिवासिनः पितृधान्यं च। भाग्ये सुभगान् काम्बोजान् सुराष्ट्राधिपतींश्च। अर्यम्णे मगधान् यवनान्। हस्ते दशार्णान्। त्वाष्ट्रे मद्रान् कुरुक्षेत्रं च। वायव्ये काश्मीरोशीनरान् वाजिनश्च। विशाखायां वृक्षाश्मकान्। मैत्रे काशिकोशलान्। ज्येष्ठायां ज्येष्ठनृपतीन् दरदांश्च। मूले क्षुद्रमालवकयौधेयान्। आप्ये पञ्चनदान् सुवीराधिपतिं च। वैश्वदेवे आर्जुनायनपौण्ड्रशिबिमालवान्। श्रवणे सत्त्वावतंसकांश्च। वासवे धनिनः शकानण्डजांश्च। वारुणे कैकयपाञ्चालराजांश्च। अजे बङ्गमगधकुक्कुरान्। अहिर्बुध्नेऽश्मकेक्षुक्षुद्रकत्रिगर्त्तान्। पौष्णे च वैदेहानर्त्तकसिन्धुसौवीरान्। आश्विनेऽश्वानश्वजीविनश्च। याम्ये कलिङ्गान् दक्षिणानुपतापयति। तथा च समाससंहितायाम् :–

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

कृत्तिकानक्षत्र में कलिङ्ग राजाओं को पीड़ित करता है। रोहिणी में शस्त्राघात से प्रजा को; मृगशिरा में साल, निषाद, कैकयवासियों को; आर्द्रानक्षत्र में शुक, श्वान और जलोपजीवियों को; पुनर्वसु में व्यापारी, मृग और कपास को; पुष्यनक्षत्र में गोमती, सिन्धु, सौवीर, कुरु, पाञ्चालवासियों को; आश्लेषानक्षत्र में काशी, कलिङ्ग और सिंहल प्रदेश के राजाओं को; मघा में दण्डकवन के निवासियों तथा पितृधान्य

---

१. बृहत्संहितायाम् १४ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को; पूर्वाफाल्गुनी में सुभग, कम्बोज और सौराष्ट्र के राजाओं को; उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में मागधों तथा यवनों को; हस्तनक्षत्र में दशार्णवासियों को; चित्रानक्षत्र में मद्र तथा कुरुक्षेत्र के वासियों को; स्वातीनक्षत्र में काश्मीर, तथा उशीनरप्रदेश-वासियों और अश्वों को; विशाखानक्षत्र में अश्मकप्रदेशवासियों को; अनुराधा में काशी तथा कोशलराज्य की जनता को; ज्येष्ठानक्षत्र में वरिष्ठराजा तथा दरदक्षेत्रवासियों को; मूलनक्षत्र में नीचजन तथा मालवक के सैनिकों को; पूर्वाषाढानक्षत्र में पञ्चनद (पञ्जाब) और सुवीर के अधिपों को; उत्तराषाढा में आर्जुनायन, पौण्ड्र, शिवि और मालव प्रदेशस्थजनों को; श्रवणनक्षत्र में सत्त्वगुणी श्रेष्ठजनों को; धनिष्ठानक्षत्र में धनिक, शक और अण्डजजीवों को; शतभिषानक्षत्र में कैकय तथा पाञ्चाल के राजाओं को; पूर्वभाद्रपदनक्षत्र में बङ्ग तथा मगध प्रदेश और श्वानों को; उत्तरभाद्रपद में अश्मक, इक्षु, क्षुद्रक और त्रिगर्तवासियों को; रेवतीनक्षत्र में वैदेह (मिथिला), नर्तक सिन्धु, और सौवीरप्रदेश के निवासियों को तथा भरणीनक्षत्र में कलिङ्ग तथा दक्षिण के राज्यों को सन्तापित (पीड़ित) करता है। जैसा कि समाससंहिता में कहा गया है :–

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।
सहितं ग्रहणं येन तद्देशश्चाप्नुयात् पीडाम्॥ इति॥ ४२॥

कूर्मविभाग के द्वारा देश का विचारकर नक्षत्रानुसार पीड़ा (अनिष्टफल) को कहना चाहिए। ग्रहणकालिक नक्षत्रानुसार जो देश उस नक्षत्र से युक्त होता है; वह देश पीड़ित होता है॥४२॥

अथार्कशशिनोर्दश ग्रासा भवन्ति तेषां संज्ञामाह :–

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः ।
आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः॥ ४३॥

रवि-चन्द्र के दस प्रकार के ग्रासों के नाम कहते हैं :–

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण (ग्रास) दस प्रकार के होते हैं, जिनके नाम क्रमशः १. सव्य, २. अपसव्य, ३. लेह, ४. ग्रसन, ५. निरोध, ६. अवमर्दन, ७. आरोह, ८. आघ्रात, ९. मध्यतम, १०. तमोऽन्त्य हैं।

सव्यः, अपसव्यः, लेहः, ग्रसनम्, निरोधः, अवमर्दनम्, आरोहः, आघ्रातम्, मध्यतमः, तमोऽन्त्य इत्येवं प्रकारास्ते दश ग्रासा इति॥ ४३॥

सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्न्दन, आरोह, आघ्रात, मध्यतम और तमोऽन्त्य, ये दस प्रकार के ग्रास होते हैं॥४३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैतेषां लक्षणानि सफलानि। तत्र सव्यापसव्ययोराह :–

सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च।
अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः॥४४॥

इनके फलसहित लक्षण के क्रम में सव्यापसव्य का वर्णन करते हैं :–

सव्यसंज्ञक राहु में संसार जलमग्न होता है; तथा निर्भयता और प्रसन्नता रहती है। अपसव्य में राजाओं, तथा तस्करों के उत्पीड़न से प्रजा का विनाश होता है॥४४॥

तमसि राहौ सव्यगते चन्द्रस्यार्कस्य वा दक्षिणभागगते जगज्जलप्लुतं वारिणा प्लावितं मुदितं हृष्टमभयं भयरहितं च भवति। अपसव्ये वामभागगते राहौ नरपते राज्ञस्तस्कराणां चौराणामवमर्दैः पीडनैः प्रजानाशः संक्षयो भवति।

अथ चन्द्रग्रहणे आग्नेय्यां राहोरागमनं सव्यः। ऐशान्यामपसव्यः। अर्कग्रहणे वायव्ये सव्यो नैर्ऋत्यामपसव्य इति॥४४॥

चन्द्र अथवा सूर्य के दक्षिणभाग में राहु (तमस) के होने पर संसार जल से परिपूर्ण, हृष्ट और भयरहित होता है। राहु के वामभाग में होने पर राजा तथा चोरों के पीड़न से प्रजा का क्षय होता है।

चन्द्रग्रहण में आग्नेयदिशा में राहु का आगमन सव्य होता है। ईशानदिशा में अपसव्य होता है। सूर्यग्रहण होने पर वायव्यदिशा में सव्य तथा नैऋत्यदिशा में अपसव्य होता है॥४४॥

अथ लेहस्याह :–

जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः।
प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही॥४५॥

अब लेह का फल कहते हैं :–

जीभ से चाटने की तरह चारों ओर से अन्धकाराच्छन्न रवि-चन्द्र का बिम्ब हो, तब उसे लेह कहते हैं। इसमें समस्त जीव प्रसन्न रहते हैं, और पृथ्वी प्रचुर जल से परिपूर्ण होती है॥४५॥

तिमिरनुदः। चन्द्रस्यार्कस्य वा तिमिरमन्धकारं नुदति प्रेरयतीति तिमिरनुदस्तस्य परितः समन्ततो मण्डलं बिम्बं जिह्वोपलेढि, जिह्वया रसनयोपलीढमिव दृश्यते तथा स ग्रासो लेह इति। तत्र तस्मिन् ग्रासे मही भूः प्रमुदितसमस्तभूता प्रकर्षेण मुदिता हर्षिताः समस्ता भूता जना यस्यां तथा प्रभूततोया वारिबहुला च भवति॥४५॥

यदि चन्द्र अथवा सूर्य में अन्धकार की प्रेरित करनेवाले बिम्ब के समस्त भाग में जिह्वा से चाटने की भाँति ग्रास दिखायी पड़े, तो वह लेह-ग्रास होता है। इस ग्रास में भूमि प्रसन्न (हर्षित) प्रजावाली तथा अधिक जलमयी होती है॥४५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ ग्रसनस्याह :–

ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाऽप्यर्द्धम्।
स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम् ॥४६॥

अब ग्रसन का लक्षण तथा फल कहते हैं :–

जब तृतीयांश अथवा चतुर्थांश अथवा अर्द्धांश ग्रस्त होता है, तब उसे ग्रसन कहते हैं। इसमें समृद्धशाली राजा का धन-नाश तथा समृद्ध देशों को पीड़ा होती है ॥४६॥

त्र्यंशस्त्रिभागः। पादश्चतुर्भागः। अर्द्धं वा बिम्बार्द्धं गृह्यते तमसाऽऽच्छाद्यते तदा स ग्रासो ग्रसनमिति। तस्मिन् ग्रासे स्फीतानामतिविभवयुक्तानां नृपाणां राज्ञां वित्तहानिर्धननाशो भवति। तथा स्फीतानां सधनानां च देशानां पीडा भवति ॥४६॥

त्र्यंश अर्थात् तृतीय अंश, पाद अर्थात् चतुर्थ अंश, अथवा अर्द्धांश बिम्ब जब अन्धेरे से आच्छादित होता है, तब वह ग्रास ग्रसन कहा जाता है। इस ग्रास में स्फीत अर्थात् अधिक वैभवयुक्त राजाओं का धननाश होता है और धनी, समृद्धशाली देशों को पीड़ा होती है ॥४६॥

अथ निरोधस्याह :–

पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत्।
स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम् ॥४७॥

अब निरोध का लक्षण तथा फल कहते हैं :–

चारों ओर ग्रहणकर बीच में सघन अन्धेरा स्थित हो, तो निरोधसंज्ञक ग्रहण जानना चाहिए। वह सभी जीवों के लिए कल्याणकारक होता है ॥४७॥

तमो राहुः पर्यन्तेषु गृहीत्वा समन्ततः संछाद्य मध्ये मध्यभागे पिण्डीकृतं घनतरं भूत्वा यदि तिष्ठेत्तदा स ग्रासो निरोधसंज्ञो विज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च सर्वभूतानां निःशेषप्राणिनां प्रमोदकृत् हर्षकृत् ॥४७॥

राहु चारों ओर ग्रहण करता हुआ आच्छादितकर मध्यभाग में सघन होकर स्थित रहे, तब वह ग्रास निरोधसंज्ञक जानना चाहिए। वह समस्त प्राणियों का हर्षकारक होता है ॥४७॥

अथावमर्दनमाह :–

अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत्।
हन्यात् प्रधानभूपान् प्रधानदेशांश्च तिमिरमयः ॥४८॥

अब अवमर्दन का लक्षण और फल कहते हैं :–

यदि सम्पूर्णमण्डल को सम्यक् आच्छादितकर चिरकाल तक स्थित हो, तो उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवमर्दन कहा जाता है। यह प्रमुख राजाओं तथा प्रधान देशों को विनष्ट करता है ॥४८॥

तिमिरमयो राहुर्निःशेषं समग्रमेव मण्डलं सञ्छाद्य स्थगयित्वा यदि चिरं बहुकालं तिष्ठेत् तदाऽवमर्दनं नाम ग्रासस्तेन ग्रासेन प्रधानभूपान् प्रधानान् नृपान् प्रधानांश्च देशान् हन्याद् घातयेत् ॥४८॥

यदि तिमिरमय अर्थात् राहु सम्पूर्ण मण्डल को आच्छादित अर्थात् ढँककर बहुत काल तक स्थित रहे, तो वह अवमर्दन नामक ग्रास होता है। इस ग्रास से प्रधान राजाओं तथा प्रधान देशों का विघात होता है ॥४८॥

अथाऽऽरोहणस्याह :—

वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः।
आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ॥४९॥

अब आरोहण का लक्षण एवं फल कहते हैं :—

ग्रहण के निवृत्त होने पर यदि तत्क्षण ही बिम्ब पुनः अन्धकार से आच्छादित दिखायी पड़े, तो वह आरोहणसंज्ञक होता है। इस ग्रहण में राजाओं के परस्पर युद्ध से भयङ्कर स्थिति हो जाती है ॥४९॥

ग्रहे ग्रहणे वृत्ते निवृत्तेऽतिक्रान्ते भूयः पुनर्यदि चेत्तमो राहुस्तत्क्षणमावृत्य पुनश्छादयन् तिष्ठेत् तदाऽऽरोहणं नाम ग्रासः। तच्च राज्ञां नृपाणामन्योऽन्यमर्दनैः परस्पराबमर्दनैर्भयं भीतिं करोति। इतिशब्दः प्रकारार्थे। एतदौत्पातिकम्। यतो नोत्पद्यते गणितगोलबासनया। आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम् ॥४९॥

ग्रहण के वृत्त अर्थात् निवृत्त होने पर यदि पुनः राहु तत्क्षण ही आच्छादित कर लेता है, तो वह आरोहण नामक ग्रास होता है। वह ग्रास राजाओं के परस्पर अवमर्दन (सङ्ग्राम) से भय उत्पन्न करता है। यहाँ पर 'इति' शब्द प्रकारान्तर से अर्थ व्यक्त करने वाला है। यह ग्रहण औत्पातिक होता है, क्योंकि गोलीयगणित की उत्पत्ति से इस ग्रहण की सङ्गति नहीं होती है। आचार्य ने पूर्वाचार्यों के कथनानुसार ही इसे कहा है ॥४९॥

अथाऽघ्रातस्याह :—

दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥५०॥

अब आघ्रात का लक्षण एवं फल कहते हैं :—

दर्पण की भाँति बिम्ब का एक भाग निःश्वास वायु के वाष्प की भाँति दिखायी पड़े, तो वह आघ्रात नामक ग्रास होता है। यह संसार के लिए सुन्दर वर्षा और वृद्धि का संवाहक होता है ॥५०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दर्पण आदर्शं इवैकदेशे एकस्मिन् स्थाने सबाष्पेण सोष्मणा निःश्वासमारुतेन श्वासबायुना चोपहतो दृश्येतावलोक्येत तदाऽऽघ्रातं नाम ग्रासः। तच्च जगतः सुवृष्टिवृद्ध्यावहं शोभनां वृष्टिं वृद्धिं च वहति जगतो जनपदस्य॥५०॥

जब दर्पण अर्थात् आदर्श की भाँति एक स्थान में वाष्पयुक्त वायु से आच्छादित दिखायी पड़ता है, तब आघ्रात नामक ग्रास कहा जाता है। यह संसार में सुन्दर वृष्टि और वृद्धि को लाता है॥५०॥

अथ मध्यतमस आह :–

मध्ये तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः।
तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च॥५१॥

अब मध्यतमस का लक्षण एवं फल कहते हैं :–

यदि बिम्ब के मध्यभाग में ग्रहण का अन्धेरा हो, और शेष भाग चतुर्दिक् प्रकाशमय हो, तो उसकी मध्यतमस संज्ञा होती है। इससे मध्यदेशों का विनाश और कुक्षिरोग का भय होता है॥५१॥

तमो राहुर्मध्येऽन्तर्यदि प्रविष्टो दृश्यते परितः समन्ततो मण्डलं वितमस्कं तमोरहितं निर्मलं भवति तदा ग्रासो मध्यतमो नाम। तच्च मध्यदेशस्य नाशं विघातं करोति तथा कुक्ष्यामयभयं कुक्षिरोगभयं च।

जब तम अर्थात् राहु मध्य में प्रविष्ट हो; और समस्त मण्डल तमोरहित निर्मल हो, तब मध्यतम नामक ग्रास होता है। यह मध्यदेश का नाश करता है, और कुक्षिरोग का भय उत्पन्न करता है।

अस्य ग्रासस्य संस्थानमर्कग्रहण एवं सम्भवति छादकस्येन्दोरल्पत्वात्। चन्द्रग्रहणे छाद्यस्याल्पत्वाच्छादकस्य च भूच्छायाया महत्त्वान्न सम्भवति॥५१॥

इस ग्रास का स्थान (अवसर) सूर्यग्रहण में ही संभव है, क्योंकि छादक चन्द्रबिम्ब का मान (सूर्य से) अल्प होता है। चन्द्रग्रहण में छाद्य के लघु होने से और आच्छादक भूच्छाया के बृहत् होने से यह संभव नहीं होता है॥५१॥

अथ तमोऽन्त्याख्यस्याह :–

पर्य्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये।
सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च॥५२॥

अब तमोऽन्त्य का लक्षण और फल कहते हैं :–

यदि बिम्ब के किनारे पर अत्यधिक तम (ग्रहण) हो और मध्यभाग में अल्पग्रहण हो, तो वह तमोऽन्त्य संज्ञक होता है। इसमें सस्यों (धान्यों) को ईति अर्थात् सस्यों के छ उपद्रवों का भय और तस्करों का भय होता है॥५२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तमः पर्यन्तेषु बिम्बपरिध्यन्तर्भागेषु। अतिबहुलमतिघनं मध्ये मध्यभागे स्वल्पमत्यल्पं दृश्यते तदा स ग्रासस्तमोऽन्त्याख्यो नाम। अस्मिंस्तमोऽन्त्याख्ये ग्रासे सस्यानामीतिभयं भवति। ईतयः सस्योपद्रवाः। तथा चः—

बिम्बपरिधि के अन्तर्भागों में अतिसघन और मध्यभाग में अत्यल्पतम दिखायी पड़े, तो वह ग्रास तमोऽन्त्यसंज्ञक होता है। इस तमोऽन्त्यग्रास में सस्यों को ईति-भय होता है। ईति सस्यों के उपद्रव को कहते हैं। जैसाकि :—

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक और समीपस्थ राजा; इन छः को ईति कहा गया है।

आभ्यः सस्यानां भयं तथा तस्कराणां चौराणां भयं भवति। चौरकृता भीतिर्भवतीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

इनसे सस्यों को भय होता है तथा तस्करों से भय होता है। अर्थात् चोरों के उत्पात का भय होता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

तद्यथा :— देशोपप्लवा ग्रसनारोहणोपघ्रातोन्मर्दननिरोधपरिलेहनापसव्यसव्यान्तर्मध्यतम उपप्लवाश्च। तत्रार्धत्रिभागग्रहणं ग्रसनं प्रख्यातनृपतिविप्रच्युताय। मण्डलमध्ये ग्रहावर्त्तनमारोहणं नरपतिक्षोभकरं प्रजानाशनम्। ईषद्ग्रहणमुपघ्रातं जगद्धिताय। उन्मर्दनं चिरमर्केन्दुसकलमण्डलाक्रमणं प्रजाविद्रवकरम्। सर्वमण्डलधूमावरणं निरोधस्तदरोगक्षेम-सुभिक्षलक्षणम्। समन्ताद् जिह्वयेवाभिलेहनं परिलेहनं समानफलम्। पूर्वेण दक्षिणमपसव्यं प्रजाभयाय। अप्रदक्षिणं सव्यमभयाय। मण्डलान्तर्मध्ययोर्ग्रहणमन्तर्मध्यं नृपतिक्षोभकरम्। महातमसाऽऽवरणं तम उपप्लवः परस्परं म्लेच्छसङ्करकृदिति।

देश में उपद्रवकारक ग्रसन, आरोहण, उपघ्रात, उन्मर्दन, निरोध, परिलेहन, अपसव्य, सव्य, अन्तर, मध्यम और उपप्लवसंज्ञक ग्रास होते हैं। यहाँ पर अर्द्धभाग अथवा तृतीयभाग के ग्रहण को ग्रसन कहते हैं। जिसमें प्रसिद्ध राजा और विप्र का विनाश होता है। मण्डल के बिम्ब-मध्य में ग्रहण को आरोहण कहते हैं, जो राजा के लिए क्षोभकारक तथा प्रजा का नाशक होता है। किञ्चित्मात्र ग्रहण को उपघ्रात कहते हैं, जो लोक के लिए हितकारी होता है। चिरकाल तक रवि-चन्द्र के सम्पूर्ण बिम्ब को आक्रान्त करनेवाला उन्मर्दन नामक ग्रहण है, जो प्रजा का विनाश करता है। सम्पूर्ण बिम्ब मण्डल धूम्राच्छादित हो, तो निरोधसंज्ञक होता है, जो निरोग, कल्याण और सुभिक्ष लाता है। यदि चारो ओर से जिह्वाद्वारा अभिलेहन (चाटना) के समान हो; तो पूर्वोक्त तुल्य फल देता है। पूर्वभाग के द्वारा दक्षिण दिशा में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण अपसव्य होता है, जो प्रजा के लिए भयदायक है। दक्षिण ग्रहण अपसव्य होता है, जो निर्भयता लाता है। यदि बिम्ब के मध्य में ग्रहण हो, तो वह अन्तर्मध्य होता है; जो राजा के लिए क्षोभकारक है। गहन अन्धेरे से आच्छादित ग्रहण को उपप्लव कहते हैं, जो परस्पर म्लेच्छजातियों में युद्धकारक होता है।

तथा च कश्यपः—

सव्यगे तु सुभिक्षं स्यादपसव्ये तु तस्कराः।
लीढे प्रजाः प्रहृष्टाः स्युर्ग्रसनं लोकनाशनम्॥
निरोधे जनहर्षः स्यादारोहे नृपसंक्षयः।
आमर्दितं चापमर्दे स्वयं क्षुभ्यन्ति पार्थिवाः।
स्वच्छं वर्णप्रदेशं यदाघ्रातं तद्विघातयेत्।
मध्ये तमसि सन्दृष्टे पीडयेद् मध्यदेशजान्॥
दृष्टे तमसि पर्यन्ते सस्यानामीतिजं भयम्॥इति॥५२॥

जैसाकि कश्यप ने कहा है :—

सव्यग्रहण में सुभिक्ष तथा अपसव्य में तस्कर होते हैं। लीढ में प्रजा प्रसन्न रहती है, तथा ग्रसन में लोक का विनाश होता है। निरोध में जनता हर्षित होती है, तथा आरोह में राज्य-क्षय होता है। अपमर्दन में राजगण स्वयं मर्दित होकर क्षुब्ध हो जाते हैं। जब बिम्बप्रदेश स्वच्छ वर्ण का हो, तब आघ्रात ग्रहण होता है; जो संघातकारक है। बीच में ग्रहण दृष्ट होने पर मध्यप्रदेशवासियों को कष्ट होता है। किनारे-किनारे ग्रहण दिखायी पड़ने पर सस्यों के लिए ईति अर्थात सस्यों के छः उपद्रवों के उत्पन्न होने का भय उत्पन्न होता है॥५२॥

अथ राहोर्वर्णान् वक्तुकाम आह :—

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम्॥५३॥

अब राहु के वर्णों को बताते हैं :—

यदि राहु श्वेतवर्ण का हो; तो शक्ति, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। अग्निवर्ण (रक्तिम) का हो, तो अग्नि का भय और अग्नि से आजीविका चलानेवालों को पीड़ा होती है॥५३॥

हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम्॥५४॥

यदि हरे रङ्ग का राहु हो; तो रोगवृद्धि, सस्यों को ईतिभय और विध्वंस होता है। कपिल (भूरा) वर्ण का होने पर शीघ्रगामी प्राणियों तथा म्लेच्छों का विध्वंसक और दुर्भिक्ष (अकाल) कारक होता है॥५४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा।
आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च॥५५॥

रविकिरण के सदृश वर्ण का होने पर दुर्भिक्ष, अवर्षण तथा पक्षियों को पीड़ा होती है। धूम्रवर्ण का होने पर सुख, सुभिक्ष और अल्पवृष्टि का आदेश करना चाहिए॥५५॥

कापोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्।
कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च॥५६॥

कपोत के सदृश अरुण तथा भूरे और साँवले वर्ण का होने पर क्षुधाभय (अकाल) का निर्देश करना चाहिए। कपोतवर्ण और कृष्णवर्ण का शूद्रों को पीड़ा देनेवाला तथा रोगकारक होता है॥५६॥

विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय।
सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि॥५७॥

स्वच्छ मणि के तुल्य पीतवर्ण का वैश्यों का विनाशक और सुभिक्षदायक होता है। अग्निज्वाला के सदृश होने पर अग्नि का भय तथा गेरूवर्ण का होने पर युद्ध होते हैं॥५७॥

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः॥५८॥

दूर्वादल के सदृश श्यामवर्ण अथवा हरिद्रा (पीला) वर्ण का होने पर मृत्यु का निर्देश करना चाहिए। पाटलपुष्प (गुलाब) के सदृश वर्ण का राहु उल्कापात (तड़ितपात) का भय देनेवाला होता है॥५८॥

पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।
बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥५९॥

धूलि से रक्ताभ-सदृश वर्णवाला क्षत्रिय-नाशक तथा वर्षा का निरोधक होता है। उदयकालिक सूर्य (अरुणोदय) तथा कमलपुष्प और इन्द्रधनुष के तुल्य वर्णों-वाला राहु (ग्रहण) हो, तो शस्त्र-प्रहार से विनाश होता है॥५९॥

राहौ तमसि श्वेते शुक्लवर्णे दृष्टे क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणानां च पीडां विनिर्दिशेत्। अग्निवर्णेऽनललवर्णे अग्निसदृशे अग्निभयं हुताशभीतिस्तथा हुताशवृत्तीनामग्निवार्त्तानां लोहकारसुवर्णकारादीनां पीडा भवति।

राहु श्वेतवर्ण का दिखायी देने पर क्षेम, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीड़ा देने वाला कहना चाहिए। अग्नि के सदृश वर्ण होने पर अग्नि का भय तथा लोहार, सोनार आदि अग्नि से आजीविका चलानेवालों को पीड़ा होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरित इति। हरिते हरितवर्णे शुकाभे राहौ रोगाणामुल्बणता रोगप्राचुर्यम्। सस्यानामीतिभिरतिवृष्टिप्रभृतिभिरुपद्रवैश्च विध्वंसो विनाशो भवति। कपिले पिङ्गलाभे राहौ शीघ्रगाणां सत्त्वानामुष्ट्रादीनां तथा म्लेच्छानां ध्वंसो विनाशो दुर्भिक्षं च भवति। अथशब्दः स्वार्थे।

हरितवर्णी (शुकसदृश) राहु के होने पर रोगों की प्रचुरता, सस्यों (धान्यों) का ईतियों अर्थात् अतिवृष्टि आदि छः उपद्रवों से विध्वंस होता है। कपिल अर्थात् पिङ्गल (भूरा) वर्ण का राहु होने पर शीघ्रगामी ऊँट आदि प्राणियों का तथा म्लेच्छों का विनाश और दुर्भिक्ष होता है। 'अथ' शब्द स्वार्थ में प्रवृत्त है।

अरुणकिरणानुरूपे अरुणरश्मिसदृशे ईषल्लोहितवर्ण इत्यर्थः। दुर्भिक्षावृष्टयो भवन्ति। विहगानां पक्षिणां च पीडा भवति। आधूम्रे धूम्रवर्णे क्षेमं सुभिक्षं चादिशेत्। मन्दां स्वल्पां च वृष्टिमादिशेत्।

अरुण अर्थात् लालकिरणों के सदृश किञ्चित् रक्तवर्ण का होने पर दुर्भिक्ष तथा अवर्षण होता है। साथ ही पक्षियों को पीड़ा होती है। धूम्रवर्ण का होने पर सुभिक्ष, क्षेम और अल्पवृष्टि का आदेश करना चाहिए।

कापोतः कपोतवर्णः, तस्मिंस्तथा अरुणे लोहितवर्णे। कपिले कपिलवर्णे। श्यावे श्याववर्णे क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं विनिर्देश्यं वक्तव्यम्। कापोतः कपोतवर्णः कृष्णवर्णश्च शूद्राणां व्याधिकरः पीडावहः।

कपोत (कबूतर) वर्णी होने पर अथवा रक्त, कपिल और श्यामवर्णी होने पर दुर्भिक्ष का भय कहना चाहिए। कपोतवर्ण और कृष्णवर्ण का शूद्रों के लिए पीड़ाकारक होता है।

विमलकमणेरिव पीता आभा कान्तिर्यस्य स विमलकमणिपीताभः, नीलपीत इत्यर्थः। एवंविधे वैश्यध्वंसी वैश्यहन्ता भवेत् स्यात्। सुभिक्षाय भवेत् सुभिक्षकृद्भवेत्। सार्चिष्मति सज्वाले राहावग्निभयं भवति। तथा गैरिकरूपे गैरिकसदृशे युद्धानि संग्रामा भवन्ति।

विमल मणि के सदृश जिसकी पीली आभा हो, उसे पीताभ अर्थात् नील-पीत कहते हैं। इस प्रकार के ग्रहण में वैश्यों का हनन होता है, तथा सुभिक्षकारक रहता है। ज्वालासहित राहु अग्निभयदायक होता है। गैरिकसदृश राहु के होने पर सङ्ग्राम होते हैं।

दुर्वाकाण्डश्यामे दूर्वाकाण्डवत् श्यामे शाद्वलप्रणालतुल्यवर्णे हारिद्रे वा अतिपीतवर्णे मरकं निर्दिशेद्वदेत्। राहुर्यदि पाटलकुसुमोपमः पाटलपुष्पसदृशः श्वेतलोहित इत्यर्थः। तथाभूतोऽशनिभयसम्प्रदायी अशनिभयं ददाति।

दूर्वाकाण्ड के समान साँवला अर्थात् पत्तों की हरियाली के सदृश अथवा हरिद्रा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के समान अत्यधिक पीतवर्णी होने पर मरणकारक कहना चाहिए। यदि राहु पाटलपुष्प के समान अर्थात् श्वेत-रक्तवर्ण का हो, तो अशनि (तड़ित्) का भय देता है।

पांशुरूपो विलोहितरूपश्च व्यामिश्रवर्णः क्षत्रध्वंसाय क्षत्रियाणां नाशाय वृष्टेश्च नाशाय भवति। तथा बालरवेर्बालार्कस्य कमलस्य पद्मस्य च सुरचापस्येन्द्रधनुषः सदृशं तुल्यं रूपं कान्तिं यदा बिभर्त्ति धारयति तदा शस्त्रकोपाय भवति शस्त्रकोपं करोति। युद्धानि भवन्तीत्यर्थः।

पांशुवर्ण और रक्तवर्ण से मिश्रितवर्ण का हो, तो क्षत्रियों का विनाशक और वृष्टिविध्वंसक होता है। बालसूर्य के सदृश और कमल तथा इन्द्रधनुष के तुल्य कान्ति को जब धारण करता है, तब शस्त्र-कोप अर्थात् युद्ध होते हैं।

तथा च पराशरः—

वर्णः कृष्णकपोतोऽतिवर्षाय शूद्रकुक्षिरोगाय तिलतोयवृद्धये दैत्यनाशाय च। पांशुधूमलोहितः क्षत्रियविनाशाय। बालार्कांशुकपिलो दुर्भिक्षाय। हारिद्रो व्याधये। दूर्वाङ्कुरसदृशो जनमरकाय। पाटलकुसुमसन्निकाशोऽशनिभयदो भवतीति॥५३-५९॥

जैसाकि पराशर ने कहा है:—

कृष्ण-कपोत के सदृशवर्ण का अधिक वर्षा तथा शूद्र-कुक्षि-रोग, तिल और जल के लिए वृद्धिकारक और दैत्यों का विनाशक होता है। धूम्र और रक्तवर्ण का क्षत्रियों का विनाशकारक; बालरविरश्मि, कपिल (भूरा) वर्ण का दुर्भिक्षकारक तथा हरिद्रा के सदृश (पीला) रोगकारक होता है। दूर्वाङ्कुर के समान (श्याम) वर्ण का प्रजा के लिए मृत्युदायक होता है। गुलाब के पुष्प के सदृश हो तो अशनि (तड़ितपात) से भयदायक होता है॥५३-५९॥

अधुनाऽर्कचन्द्रयोर्ग्रहदृष्टिफलान्याह:—

पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च।
भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च॥६०॥

रवि-चन्द्र पर ग्रहों की दृष्टि का फल कहते हैं:—

यदि ग्रस्त रवि-चन्द्र को बुध देखे तो घृत, मधु, तैल और राजाओं के लिए क्षय-कारक होता है। मङ्गल की दृष्टि से भयङ्कर सङ्ग्राम, अग्निदाह और चोरों का भय होता है॥६०॥

शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम्।
रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च॥६१॥

शुक्र की दृष्टि होने पर सस्यों (धान्यों) का क्षय और विविध कष्ट इस धरती पर उत्पन्न होते हैं। शनि की दृष्टि होने पर अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और चोरों का भय होता है॥६१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौम्यो बुधो ग्रस्तमर्कं चन्द्रं वा पश्यति तदा घृतमधुतैलानां राज्ञां नृपाणां च क्षयाय नाशाय भवति। भौमश्चेत् पश्यति तदा समरविमर्दं युद्धं शिखिकोपमग्निप्रकोपं तस्करभयं चौरभयं च करोति॥६०॥

बुध ग्रस्तरवि अथवा चन्द्र को देखता है; तब घृत, मधु, तैल और राजाओं के लिए क्षयकारक होता है। जब मङ्गल देखता है; तब युद्ध, अग्निकोप और चौरभय करता है॥६०॥

शुक्रश्चेत् पश्यति तदा सस्यविमर्दं सस्यविनाशं धरित्र्यां भूमौ नानाक्लेशान् अनेकान् कृच्छ्रान् जनयत्युत्पादयति। रविजः सौरिश्चेत् पश्यति तदाऽवृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं तस्करभयं चौरभीतिं च करोति॥६१॥

यदि शुक्र देखता है, तब सस्यों का विनाश और धरती पर अनेक रोगों को उत्पन्न करता है। यदि शनि देखता है, तब अवर्षण, दुर्भिक्ष और चौरभय करता है॥६१॥

अधुना शुभदृष्टेः प्रशंसार्थमाह :–

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं
ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणावलोकिते त-
च्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः॥६२॥

अब शुभदृष्टि की प्रशंसा करते हैं :–

रवि-चन्द्र के ग्रहण अथवा मोक्षकाल में ग्रहों की दृष्टि के अनुसार जो अशुभफल कहे गये हैं, वे यदि गुरु (बृहस्पति) से दृष्ट हों, तो उसी प्रकार शान्त हो जाते हैं, जिस प्रकार संवर्धित अग्नि जल पड़ने पर शान्त हो जाती है॥६२॥

पश्यन् ग्रस्तं सौम्य इत्यादिकाभिरवलोकनाभिर्दृष्टिभिर्ग्रहजनितं ग्रहोत्पादितं यदुक्तमशुभं फलं ग्रहणकाले वा तत्सर्वं सुरपतिगुरुणा बृहस्पतिनाऽवलोकिते दृष्टे शमं शान्तिमुपयाति गच्छति। यथा जलैरम्बुभिरिद्धः प्रज्वलितोऽग्निर्हुतवह इति। ग्रहणे प्रमोक्षणे वेत्यत्र विकल्पः कृतः। यदि कदाचिद् ग्रहणकाले योऽसौ दृश्यो द्रष्टा च ग्रहः स एव राश्यन्तरं संक्रामति, तदा तानि फलानि न भवन्ति। तेन ग्रहणे मोक्षान्तदृष्टिफलमभिमतमिति॥६२॥

"ग्रस्त (रवि-चन्द्र) को देखता हुआ बुध" इत्यादि दृष्टिवश ग्रहोत्पन्न जो अशुभफल ग्रहणकाल के लिए कहे गये हैं, वे सभी (अशुभफल) बृहस्पति द्वारा दृष्ट होने पर शान्त हो जाते हैं। जैसे– प्रज्ज्वलित अग्नि का (शमन) जल के द्वारा होता है। यहाँ पर ग्रहण अथवा मोक्षकाल का विकल्प किया गया है। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर यदि कदाचित् ग्रहणकाल में जो दृश्य अथवा द्रष्टा ग्रह है, वह यदि दूसरी राशि पर चला जाता है, तब वे फल नहीं होते हैं। इसी कारण ग्रहण में मोक्षपर्यन्त दृष्टि का फल अभिमत है ॥६२॥

अथ प्रग्रहणकालाद् मोक्षान्तं यावद् ग्रहणसमयस्तन्मध्ये उत्पातैर्दृष्टैरन्यस्य ग्रहणस्य परिज्ञानमाह :—

ग्रहण काल से मोक्षपर्यन्त ग्रहण समय के मध्य उत्पात दिखायी पड़ने पर दूसरे ग्रहण के ज्ञान को कहते हैं :—

ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्ध्या।
पवनोल्कापातरजः क्षितिकम्पतमोऽशनिनिपातैः ॥ ६३॥

ग्रहण के समय यदि क्रमशः वायु, उल्कापात, धूलि-वर्षा, भूकम्प, अन्धकार और वज्रपात हों, तो इसी क्रम से छः छः मास के अन्तराल पर पुनः ग्रहण होता है ॥६३॥

अर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते गृहीते सति यद्येत उत्पाता दृश्यन्ते तदा पुनर्भूयो मासषट्कपरिवृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। तद्यथा :— प्रग्रहणकाले यदि पवनो वायुर्भवति तदा तेनोत्पातेन पुनः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। एवमुल्कापातेन द्वादशभिः। रजसा पांशुवर्षेणाष्टादशभिः। क्षितिकम्पेन भूचलनेन मासचतुर्विंशत्या तमसा मासत्रिंशता। अशनिपातेन मासषट्त्रिंशता। तथा च पराशरः—

यदि रवि अथवा चन्द्र के ग्रहण पर ये उत्पात दिखाई पड़ें, तो पुनः छः मास के वृद्धि-क्रम से ग्रहण होता है। जैसा कि ग्रहणकाल में जब वायु बहती हो, तब इस उत्पात के द्वारा फिर छः मास पर ग्रहण होता है। इसी प्रकार उल्कापात के द्वारा १२ मास पर तथा धूलि-वर्षा से १८ मास पर, भूकम्प से २४ मास पर, अन्धकार से ३० मास पर तडित-पात से ३६ मास पर ग्रहण होता है। जैसा कि पराशर ने कहा है :—

उपरक्ते यदा 'सूर्ये प्रबलाद्वाति मारुतः।
मासषट्के तदा विन्याद्राहोरागमनं ध्रुवम् ॥
उल्कायां द्वादशे मासे रजसाष्टादशे तथा।
भूकम्पे च चतुर्विंशे त्रिंशे तमसि निर्दिशेत् ॥
षट्त्रिंशेऽशनिपाते स्याद् सर्वेषु स्यात् षडुत्तरे ॥ इति ॥ ६३॥

---

१. चन्द्रे-इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य के ग्रहण में यदि प्रचण्ड वायु बहती है, तो छः मास पर निश्चित ही ग्रहण का आगमन होता है। उल्का में १२ मास पर, धूलि से १८ मास पर, भूकम्प से २४ मास पर, अन्धकार से ३० मास पर और व्रजपात होने पर ३६ मास पर ग्रहण होता है। उत्तरोत्तर छः-छः मास पर; इस क्रम से ग्रहण होता है ॥६३॥

अधुना भौमादीनां ग्रस्तानां फलमाह :–

आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४॥

अब भौमादि के ग्रहण का फल कहते हैं :–

मंगल के ग्रस्त होने पर अवन्ती राज्य के जनपद, कावेरी तथा नर्मदा नदी के तटवर्ती लोगों और तेजस्वी राजा को पीड़ा होती है ॥६४॥

अत्रादौ तावत्ताराग्रहाणां ग्रस्तत्वं व्याख्यायते :–

यो ग्रहोऽर्केण चन्द्रेण वा सहैकराशौ भवति तत्र चेति विक्षिप्तो न भवति, तदा छादनात् ग्राहकस्य ग्रस्त इत्युच्यते। एवं क्षितिसुतेऽङ्गारके ग्रस्ते आवन्तिका इत्यवन्तिदेशभवा जनपदाः। तथा कावेरी नदी नर्मदा च तयोस्तटं तीरं ये समाश्रितास्तन्निवासिनः। तथा दृप्ता दर्पिष्ठा ये मनुजपतयो मनुष्याणां मनुजानां पतयो राजानः, एते सर्व एव पीड्यन्ते ॥ ६४॥

अब ताराग्रहों के ग्रस्तत्व की व्याख्या करते हैं :–

जो ग्रह रवि अथवा चन्द्र के साथ एक ही राशि में होता है और वह जब दूर प्रक्षिप्त न हो, तब ग्राहक ग्रह के आच्छादन से ग्रस्त (ग्रहण) कहा जाता है। इस प्रकार मंगल के ग्रस्त होने पर, अवन्ती देश के जनपद तथा कावेरी और नर्मदा नदी के तट के निवासियों तथा स्वाभिमानी मनुजपति अर्थात् राजा; ये सभी पीड़ित होते हैं ॥६४॥

अथ बुधस्याह :–

अन्तर्वेदी सरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम्।
स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५॥

अब बुध ग्रहण का फल कहते हैं :–

बुध के ग्रहण में गंगा-यमुना के मध्यवर्ती लोग, सरयू, नेपाल, पूर्वी समुद्र, शोण (सोन) नदी, स्त्री, राजा, योद्धा, कुमार के साथ विद्वानों को भी पीड़ा होती है ॥६५॥

अन्तर्वेदी गङ्गायमुनयोर्मध्यम्। सरयू पूर्वनदी। नेपालदेशः। पूर्वसागरः पूर्वसमुद्रः। शोणो नदः। स्त्रियो योषितः। नृपा राजानः। योधाः संग्रामकुशलाः। कुमारा बालाः। प्रथमवयसश्च। एतान् सर्वान् विद्वद्भिः पण्डितैः सह बुधो ग्रस्तो हन्ति घातयति ॥ ६५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तर्वेदी अर्थात् गंगा यमुना का मध्यवर्ती क्षेत्र, सरयू अर्थात् पूर्वनदी, नेपाल देश, पूर्वसमुद्र, शोण (सोन) नदी, स्त्रियाँ, राजागण, योद्धा, कुमार अर्थात् बालक; जो प्रथम अवस्था में हों, इन सबको पण्डितोंसहित, बुद्ध ग्रह ग्रस्त होने पर विघातक होता है ॥६५॥

अथ जीवस्याह :–

ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः।
सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥६६॥

अब गुरु के ग्रहण का फल कहते हैं :–

बृहस्पति के ग्रहण में विद्वान्, राजा, मंत्री, हाथी, घोड़े का विनाश होता है। साथ ही सिन्धुनदी के तट पर निवास करनेवाले और उत्तरदिशा में रहनेवाले लोगों का भी विध्वंस होता है ॥६६॥

जीवे बृहस्पतौ ग्रहणोपगते ग्रहणं प्राप्ते विदुषां पण्डितानां नृपाणां राज्ञां मन्त्रिणां सचिवानां गजानां हस्तिनां हयानामश्वानां च ध्वंसो विनाशो भवति। तथा सिन्धुर्नाम नदी तत्तटवासिनो ये तेषामपि। तथोदग्दिशं संश्रितानामुत्तरदिग्वासिनां जनानां च ध्वंस एव भवति ॥६६॥

जीव अर्थात् बृहस्पति में ग्रहण प्राप्त होने पर पण्डितों का, राजाओं का, सचिवों का, हाथिओं का, अश्वों का विनाश होता है, तथा सिन्धु नामक नदी के तट पर जो वास करते हैं उनका और उत्तरदिशा में निवास करनेवाले लोगों का भी विध्वंश होता है ॥६६॥

अथ शुक्रस्याह :–

भृगुतनये राहुगते दाशेरककैकयाः सयौधेयाः।
आर्यावर्त्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥६७॥

अब शुक्र के ग्रहण का फल कहते हैं :–

शुक्र के ग्रस्त होने पर दाशेरक तथा कैकय नामक राज्य के लोग योद्धाओं के साथ आर्यावर्त (भारत वर्ष का मुख्य भाग) के लोग, शिबि प्रदेश के लोग, स्त्री तथा सचिवगण पीड़ित होते हैं ॥६७॥

भृगुतनये शुक्रे राहुगते ग्रस्ते सति दाशेरका जनाः। कैकयाः सयौधेयाः सह यौधेयैर्जनैः। आर्यावर्त्ताः प्रधानदेशजनाः। शिबयो जनाः। स्त्रियो योषितः। सचिवा मन्त्रिणः। गणाः समूहाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते उपतप्यन्ते ॥६७॥

शुक्र के राहु द्वारा ग्रस्त होने पर दाशेरक प्रदेश के लोग, योद्धाओं सहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कैकय प्रदेश के लोग आर्यावर्त अर्थात् प्रमुख देश के लोग, शिबि प्रदेश के लोग, स्त्रियाँ, मंत्रीजन; ये सभी सन्तप्त होते है ॥६७॥

अथ सौरस्याह :–

सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रिकधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः।
[1]गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥६८॥

अब शनि-ग्रहण का फल कहते हैं :–

शनि-ग्रहण में मरुस्थल, पुष्कर, सौराष्ट्र, पर्वतीय क्षेत्र, अन्त्यज, गोपालक, पारियात्र प्रदेशों के आश्रित लोगों का तथा द्रव्यों का शीघ्र विनाश होता है ॥६८॥

सौरे शनैश्चरे ग्रस्ते मरुभवा मरुभूमावुत्पत्तिर्येषां ते। पुष्करजनाः। सौराष्ट्रिकाः। धातवो धातुद्रव्याणि। अर्बुदजनाः अर्बुदः पर्वतस्तत्र ये निवसन्ति। अन्त्यजना निकृष्टजनाः। गोमन्तो गोमिनः, केचिद् गोनन्दा इति पठन्ति, गोनन्दा जनाः। पारियात्राश्रिताश्च पारियात्रः पर्वतस्तत्र ये आश्रिताः स्थिता एते सर्व आशु क्षिप्रमेव नाशं व्रजन्ति गच्छन्ति ॥६८॥

शनिश्चर के ग्रस्त होने पर मरुभूमि में उत्पन्न लोग, पुष्कर क्षेत्र में उत्पन्न लोग, सौराष्ट्रप्रदेश (गुजरात) के निवासी, धातुद्रव्य, अर्बुदपर्वत के निवासीगण अन्त्यज अर्थात् निकृष्ट (नीच) लोग, गोस्वामी – कुछ लोग "गोनन्द" यह पाठ करते हैं। तदनुसार गोनन्द क्षेत्र के लोग, पारियात्र पर्वत के आश्रित लोग; ये सभी शीघ्र ही नाश को प्राप्त होते हैं ॥६८॥

अथ मासफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव कार्त्तिकस्याह :–

कार्त्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान्
कल्माषानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत्।
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो।
दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥६९॥

अब मासफल कहने की इच्छा से कार्तिकमास का फल कहते हैं :–

कार्तिक मास में ग्रहण होने पर अग्नि से आजीविका करने वाले, मगध क्षेत्रीय, पूर्व देश के राजा, कोशल देश के निवासी, कल्मष तथा शूरसेन सहित काशी प्रदेश के रहने वाले लोगों को सन्ताप होता है। इसमें कलिंग (उत्कल) प्रदेश के मन्त्री तथा सेवक सहित राजा को शीघ्र ही मरण होता है। साथ ही क्षत्रियों को सन्ताप उत्पन्न करता है, और क्षेम (कल्याण) और सुभिक्ष को उत्पन्न करता है ॥६९॥

---

१. गोनन्द इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्त्तिकस्येयं पौर्णमास्यामावास्या वा कार्त्तिकी। तस्यां कार्त्तिक्यां तमो दृष्टं राहुर्यदि दृश्यते तदाऽनलोपजीविनोऽग्निवार्त्ताः सुवर्णकारप्रभृतयः। मगधा जनाः। प्राच्याधिपाः पूर्वस्यां दिशि ये अधिपतयो राजानस्तान् तथा कोशलाञ्जनान्, कल्माषान् जनान्। अथशब्दः स्वार्थे, तांश्च शूरसेनसहितान् शूरसेना जनास्तैः सहितान् तथा काशींश्च जनान् एतांश्च सर्वान् सन्तापयेदुपतापयेत्। तथा कलिङ्गदेशे यो नृपती राजा तं सामात्यभृत्यम्। अमात्यैर्मन्त्रिभिर्भृत्यैश्च सर्वकर्मकरैः सहितमाश्वेव क्षिप्रं हन्यान्नाशयेत्[1]। तथा क्षत्रियतापदं क्षत्रियाणां राजन्यानां तापं ददाति। क्षेमं सुभिक्षान्वितं सुभिक्षसंयुक्त जनयत्युत्पादयति॥ ६९॥

कार्तिक की पूर्णिमा अथवा अमावस्या को कार्तिकी पूर्णिमा अथवा कार्तिकी अमावस्या कहा जाता है। उस कार्तिकीपूर्णिमा या अमावस्या को यदि राहु (ग्रहण) दृष्ट हो, तो सुवर्णकार आदि अग्नि से आजीविका चलानेवाले, मगधक्षेत्र के वासी, पूर्वदिशा के राजा, कोशल प्रदेश के लोग, कल्मषक्षेत्र के लोग तथा इनके साथ ही शूरसेन प्रदेश के लोग और काशीक्षेत्र के लोग; इन सबको सन्तापित करता है। कलिङ्ग देश के जो राजा, उनके मन्त्री, सेवक और सभी कर्मचारियों को शीघ्र ही विनष्ट करता है। तथा क्षत्रिय राजाओं को ताप देता है। सुख और सुभिक्ष को उत्पन्न करता है॥ ६९॥

अथ मार्गशीर्षस्याह :–

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान्
मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च।
ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये
सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च॥ ७०॥

अब मार्गशीर्ष का फल कहते हैं :–

मार्गशीर्षमास में ग्रहण होने पर काश्मीर, कोशल, सुपुण्ड्र और सीमान्त क्षेत्र के लोगों का तथा वन्यप्राणियों और सुरापायी जनों का हनन करता है। यह सुन्दर वर्षा करनेवाला तथा क्षेम और सुभिक्ष करता है॥ ७०॥

सौम्ये मार्गशीर्षमासे राहुर्दृष्टः काश्मीरकान् जनान्। कोशलांश्च सपुण्ड्रान् पुण्ड्रैर्जनैः सहितान्। मृगा अरण्यप्राणिनस्तानपि। अपरान्तकान् जनान्। एतानपि हन्यान्नाशयेत्। तथा ये सोमपाः सोमं पीतं यैस्ते कृतयज्ञास्तांश्च निहन्ति। सुवृष्टिकृत् शोभनां वृष्टिं करोति। क्षेमसुभिक्षकृच्च क्षेमं सुभिक्षं च करोति॥ ७०॥

सौम्य अर्थात् मार्गशीर्षमास में राहु (ग्रहण) दृष्ट हो, तो काश्मीर के लोगों को कोशल सहित पुण्ड्रजनों को, मृग अर्थात् जङ्गली पशुओं को अपरान्तक अर्थात्

१. घातयेत्-इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सीमान्तवर्ती लोगों को; इन सबको विनष्ट करता है, तथा जो सोमपान करते हैं अर्थात् यज्ञ करने पर सुरापान ग्रहण करने वाले, इन सबका हनन करता है। उत्तम वर्षा होती है तथा क्षेम (कल्याण) और सुभिक्ष (सुकाल) करता है ॥७०॥

अथ पौषस्याह :–

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः
ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं
भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥७१॥

अब पौषमास का फल कहते हैं :–

पौषमास में ग्रहण दृष्ट हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियों का उपद्रव होता है। सैन्धव (सिन्धु प्रदेश वासी) उनके साथ ही कुकुर और विदेह (मिथिला) प्रदेश के लोग विनाश को प्राप्त होते हैं। अल्पवृष्टि, भय तथा दुर्भिक्ष सहित भय जानना चाहिए ॥७१॥

पौषे मासे तमसि दृष्टे द्विजानां ब्राह्मणानां क्षत्रजनानां चोपरोध उपद्रवो भवति। तथा सैन्धवा जनाः सैन्धवेत्याख्या नाम येषां ते। कुकुराश्च जना एव सह सैन्धवाख्यैर्ये कुकुरा वर्त्तन्ते ते ससैन्धवाख्याः कुकुराः। तथा विदेहजनाः। एते सर्वे ध्वसं विनाशं व्रजन्ति गच्छन्ति। अत्र च मन्दामल्पां वृष्टिं तथाऽसुभिक्षयुक्तं दुर्भिक्षसहितं भयं विन्द्याज्जानीयात् ॥७१॥

पौषमास में ग्रहण दृष्ट होने पर ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगों का उपद्रव होता है, तथा सैन्धव नामक जो लोग अर्थात् सैन्धव (सिन्धु) प्रदेश वासी, उनके साथ ही कुकुर प्रदेश के निवासियों और विदेह क्षेत्र के लोग; ये सभी विनाश को प्राप्त होते हैं। यहाँ पर अल्पवृष्टि तथा दुर्भिक्षसहित भय जानना चाहिए ॥७१॥

अथ माघ आह :–

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्
स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।
वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहु-
र्वृष्टिं च कर्षकजनाभिमतां करोति ॥७२॥

अब माघ मास का फल कहते हैं :–

माघमास में ग्रहण होने पर माता-पिता के भक्तों, वशिष्ठगोत्रियों, स्वाध्याय तथा धर्मकार्य में संलग्न लोगों, हाथियों, अश्वों, बङ्ग, अङ्ग और काशी प्रदेश के निवासियों को कष्ट होता है। इस ग्रहण में राहु कृषकों के अनुकूल वर्षा करता है ॥७२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माघमासे राहुर्दृष्टो मातृपितृभक्तान् जननीजनकतत्परान्, तथा वसिष्ठगोत्रान् वसिष्ठो गोत्रं येषां द्विजातीनां तान्, तथा स्वाध्याये पाठे धर्मे च निरतान् सक्तान्, करिणो हस्तिनः, तुरङ्गानश्वान्, वङ्गान् जनान्, अङ्गानपि, काशिमनुजान् काशिदेशे मनुष्यान्, अथवा मनुजशब्दः प्रत्येकं संबध्यते। वङ्गान् मनुजानङ्गमनुजान् काशिमनुजांश्च सर्वान् दुनोत्युपतापयति। तथा कर्षकजनानां कृषिकराणामभिमतामभीष्टां वृष्टिं च करोति॥७२॥

माघमास में यदि राहु दृष्ट हो, तो माता-पिता की सेवा करनेवाले, वशिष्ठ गोत्रवाले ब्राह्मणों को तथा स्वाध्याय, पाठ और धर्मकार्य में तत्पर लोगों को, हाथी, घोड़े, बङ्ग-प्रदेश, अङ्ग-प्रदेश और काशी-प्रदेश के मनुष्यों को पीड़ा होती है। यहाँ पर "मनुज" शब्द प्रत्येक बङ्ग, अङ्ग और काशी के साथ सम्बद्ध है। साथ ही कृषिकार्य करनेवालों के लिए यथेच्छ वर्षा करता है॥७२॥

अथ फाल्गुन आह :—

पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तिकमेकलानाम्।
नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च॥७३॥

फाल्गुनमास का फल कहते हैं :—

फाल्गुनमास का ग्रहण बङ्ग, अश्मक, अवन्तिका, मेकलवासियों के लिये पीड़ाकारक होता है तथा नृत्यशास्त्र के ज्ञाता, सस्य, श्रेष्ठ महिलाएँ, धनुषनिर्माताओं (शस्त्रनिर्माता), क्षत्रियों और तपस्वियों को पीड़ित करता है॥७३॥

फाल्गुने मासि पर्वग्रहणं वङ्गानां जनानामश्मकानामावन्तिकानां मेकलानां पीडाकरमुपतापजनकम्। तथा नृत्यज्ञानां नाट्यविदां सस्यानां प्रवराङ्गनानां प्रधानस्त्रीणां धनुष्कराणां शिल्पिनां क्षत्राणां क्षत्रियाणां तपस्विनां तपोनिरतानामेषां सर्वेषां पीडाकरमेव॥७३॥

फाल्गुनमास में ग्रहण बङ्ग प्रदेश (बङ्गाल), अश्मक, अवन्तिका (उज्जैन) और मेकलप्रदेश के लोगों की पीड़ित करता है; तथा नाट्यशास्त्रियों, सस्यों, प्रधानस्त्रियों, धनुष-शिल्पियों, क्षत्रियों और तपस्या में संलग्न; इन सबके लिए पीड़ा करनेवाला होता है॥७३॥

अत्र चैत्र आह :—

चैत्र्यां तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान्
रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान्।
पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च
तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र[1] विचित्रवर्षी॥७४॥

---

१. अमरराडपि चित्रवर्ण इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चैत्रमास का फल कहते हैं :–

चैत्रमास में ग्रहण हो; तो चित्रकार, लेखक, गायक, रूपाजीवी (वेश्या), शास्त्रज्ञ, सुवर्ण-विक्रेता तथा पौण्ड्र, औड्र, कैकय तथा अश्मकदेश के लोगों को परिताप प्राप्त होता है। यहाँ पर इन्द्र विचित्र प्रकार से (विविध प्रकार) से वर्षा करने वाला होता है॥७४॥

चैत्र्याममावास्यायां पौर्णमास्यां वा चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः, लेखका लिपिज्ञाः, गेयसक्ता गीतरता एतान्। तथा रूपोपजीविनो वेश्याजनाः। निगमज्ञा वेदपाठकाः। हिरण्यपण्याः सुवर्णविक्रयिणः एतानपि। तथा पौण्ड्रा जनाः। औड्राः कैकया एते सर्व एव जनाः। अथशब्दः पादपूरणे। अश्मकाश्च जना एव, एतान् सर्वान् तापः सन्तापः स्पृशति। एते पीडिता भवन्तीत्यर्थः। अत्रास्मिन् वर्षे अमरप इन्द्रो विचित्रवर्षी। विचित्रं नानाप्रकारं वर्षति। क्वचिन्न वर्षति क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः। केषाञ्चित् पाठः – अमरराडपि चित्रवर्णः॥७४॥

चैत्री अमावस्या अथवा पूर्णिमा को चित्रकार, लेखक, लिपिज्ञाता, गायक; इन लोगों को तथा रूपोपजीवी (वेश्या), निगमों के ज्ञाता अर्थात् वेदपाठी, सुवर्ण के विक्रेता, पौण्ड्र के निवासी तथा औड्र और कैकय के सभी लोग तथा अश्मकजन; इन सबको सन्ताप का स्पर्श होता है। अर्थात् ये सभी पीड़ित होते हैं। इस वर्ष में इन्द्र विचित्र अर्थात् नाना प्रकार की वर्षा करता है। तात्पर्य यह है कि कहीं पर वर्षा नहीं होती है, और कहीं पर वर्षा होती है। कुछ ग्रन्थों के अनुसार 'अमरराट्' चित्रवर्ण है॥७४॥

अथ वैशाख आह :–

वैशाखमासे ग्रहणे विनाशमायान्ति कर्पासतिलाः समुद्गाः।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपप्लवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन्॥७५॥

अब वैशाखमास का फल कहते हैं :–

वैशाखमास में ग्रहण होने पर कपास, तिल एवं मूँग का विनाश होता है। इक्ष्वाकु, यौधेय, शक और कलिङ्गदेश उपद्रवयुक्त होते हैं; किन्तु इसमें सुभिक्ष रहता है॥७५॥

वैशाखमासे ग्रहणे कर्पासास्तिलाः समुद्गाः मुद्गसहिता एते विनाशमायान्ति गच्छन्ति। तथेक्ष्वाकवो जना यौधेयाः शका कलिङ्गा एते सर्वे सोपप्लवाः सोपद्रवाः। किन्तु पुनरस्मिन् ग्रहणे सुभिक्षं च भवति॥७५॥

वैशाखमास में कपास, तिल तथा मूँग सहित इन पदार्थों का विनाश होता है। तथा इक्ष्वाकु प्रदेश के जन, यौधेयजन, शक, कलिङ्ग प्रदेशवासी; ये सभी उपद्रवसहित रहते हैं। किन्तु फिर भी इस ग्रहण में सुभिक्ष होता है॥७५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ ज्येष्ठ आह :–

ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च।
प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसङ्घाः॥७६॥

अब ज्येष्ठमास के ग्रहण का फल कहते हैं :–

ज्येष्ठमास में ग्रहण होने पर राजा, द्विज, राजकीय स्त्रियाँ, सस्य, वर्षा तथा विशालसमूह का ध्वंस होता है। साथ ही उत्तरदिशा के वासी, साल्वसहित निषाद जाति के लोगों का विनाश होता है॥७६॥

ज्येष्ठे मासि पर्वणि ग्रहणे नरेन्द्रा राजानो द्विजा ब्राह्मणा राजपत्न्यो राजस्त्रियः। सस्यानि प्रसिद्धानि। वृष्टिर्वर्षणं च। महागणा महासमूहाश्च। एते सर्वे प्रध्वंसं नाशमायान्ति नाशं प्राप्नुवन्ति। तथा च ये नराः सौम्या दर्शनीया उत्तरदिग्वासिन इति। एते साल्वैः समेताः सहिताश्च निषादानां प्राणिघातकानां संघाः समूहा प्रध्वंसमायान्ति॥७६॥

ज्येष्ठमास में ग्रहण होने पर राजा, ब्राह्मण, राजपत्नियाँ, सस्य, वर्षा, महान् समूह; ये सभी विनाश को प्राप्त होते हैं। तथा जो मनुष्य सौम्य अर्थात् दर्शनीय, उत्तरदिशा के वासी होते हैं; वे सभी साल्वों के सहित निषाद अर्थात् प्राणिघातक जातियों के समूह के साथ ध्वंस को प्राप्त होते हैं॥७६॥

अथाऽऽषाढ आह :–

आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान्।
गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेद् मण्डलवर्षमस्मिन्॥७७॥

अब आषाढ़मास के ग्रहण का फल कहते हैं :–

आषाढ़ मास के ग्रहण में जलस्रोत, नदी के प्रवाह और फल-मूलों के व्यापारी तथा गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द और चीन देशों के निवासियों का विनाश कहना चाहिए॥७७॥

आषाढपर्वण्याषाढे मासे ग्रहणे उदपानं जलाधारो वापीकूपतडागादिस्तस्य चोदपानस्य वप्रस्तटः। नदीप्रवाहः पुलिनविस्तरम्। फलमूलवार्त्ताः फलानि मूलानि वार्त्ता वर्तनं वृत्तिर्येषां ते। तथा गान्धारा जनाः। काश्मीराः। पुलिन्दाः। चीनाः। एतान् सर्वान् हतान् नष्टानिति वदेत्। सर्व एव नश्यन्तीत्यर्थः। अस्मिन् पर्वणि मण्डलवर्षं भवति। क्वचित् क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः॥७७॥

आषाढ़मास में ग्रहण होने पर जल के आधार बावली, कूँआ, तालाब के तट, नदी का प्रवाह, फल-मूल से आजीविका पालनेवाले तथा गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द और चीन; इन प्रदेशों के निवासियों का विनाश कहना चाहिए। अर्थात् सभी लोग नष्ट होते हैं। इस पर्व में (ग्रहण) में मण्डलवर्षा होती है। अर्थात् कहीं-कहीं पर वर्षा होती है॥७७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ श्रावण आह :–

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रजान्
गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे।
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमा-
नन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥७८॥

अब श्रावणमास के ग्रहण का फल कहते हैं :–

श्रावणमास में ग्रहण होने पर काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र, गान्धार तथा मध्यदेश के लोगों को आहत करता है। कम्बोजप्रदेश को और एकशफवाले (घोड़, गदहे) तथा शरद ऋतु के धान्यों का भी विनाश करता है। पूर्वोक्त प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में प्रचुर अन्न से लोग प्रसन्न रहते हैं, तथा धरती आनन्दमग्न होती है ॥७८॥

श्रावणे मासि ग्रहो ग्रहणं दृष्टः काश्मीरान् जनान् सपुलिन्दचीनयवनान् पुलिन्दचीनजा जना यवनास्तैः सहितान्। तथा कुरुक्षेत्रजान् जनान्। गान्धारानपि। मध्यदेशसहितानेतान् सर्वान् हन्यात् नाशयेत्। तथा काम्बोजान् जनान्। एकशफांश्च अश्वगर्दभान्। चशब्दः समुच्चये। न केवलं यावत् शारदमपि शारदधान्यादिकान् एतानपि हन्ति। इमान् यथोक्तान् काश्मीरादीन् त्यक्त्वा विहायान्यत्र देशेषु प्रचुरेण प्रभूतेनान्नेन ये हृष्टाः प्रहर्षिता मनुजा नरास्तैर्धात्रीं भूमिमावृतां व्याप्तां करोति ॥७८॥

यदि श्रावण मास में ग्रहण दृष्ट हो; तो काश्मीरी लोग, पुलिन्द, चीन और यवन लोगों सहित, कुरुक्षेत्र के लोग, गान्धारक्षेत्र तथा मध्यदेश के सभी लोगों का विनाश होता है। तथा कम्बोजवासी, अश्व, गर्दभ आदि एक शफवाले (एक खुरवाले) और शरदकालीन धान्यादिकों का विनाश होता है। इन सभी को अर्थात् पूर्वोक्त काश्मीर आदि को छोड़कर अन्य देशों में मनुष्य हृष्ट-पुष्ट होते हैं, और भूमि सुख से परिव्याप्त होती है ॥७८॥

अथ भाद्रपद आह :–

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान्
म्लेच्छान् सुवीरान् [1]दरदाश्मकांश्च।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति
सुभिक्षकृद् भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥७९॥

अब भाद्रपदमास के ग्रहण का फल कहते हैं :–

भाद्रपदमास में ग्रहण होने पर कलिङ्ग, बङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर,

१. दरदाञ्छकांश्च - इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दरद, अश्मक और स्त्रियों के गर्भ का हनन करता है। यह ग्रहण सुभिक्षकारक होता है ॥७९॥

असुरो राहुर्भाद्रपदे मास्यभ्युपेत आगतः कलिङ्गान् जनान्। वङ्गान्। मगधान्। सुराष्ट्रान्। म्लेच्छान्। सुवीरान्। दरदान्। अश्मकान्। एतान् सर्वान्निहन्ति घातयति। केचिद्दरदाञ्छकानिति पठन्ति। तथा स्त्रीणां योषितां गर्भान् निहन्ति। सुभिक्षकृत् सुभिक्षं करोति ॥७९॥

जब असुर अर्थात् राहु (ग्रहण) भाद्रपदमास में समागत हो; तब कलिङ्ग के लोगों, बङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर, दरद, अश्मक; इन सभी का विघात करता है। कुछ लोग दरद और शक का पाठ ग्रहण करते हैं। तथा स्त्रियों के गर्भ का विनाश करता है, और सुभिक्ष करता है ॥७९॥

अथाश्वयुज्याह :–

काम्बोजचीनयवनान् सह शल्यहद्भि-
र्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्।
आनर्त्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्
दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥८०॥

अब आश्विनमास के ग्रहण का फल कहते हैं :–

आश्विनमास में ग्रहण होने पर कम्बोज, चीन, यवनप्रदेश सहित, शल्यचिकित्सक, वाह्लीक और सिन्धुनदी के तट पर रहनेवाले लोगों का हनन करता है। आनर्त्त, पौण्ड्र, वैद्य तथा किरातजनों का विनाश करता है। इस ग्रहण में उत्तम सुभिक्ष होता है ॥८०॥

असुरो राहुरश्वयुजि मासि दृष्टः काम्बोजान् जनान्। चीनान् यवनान् एतान् सर्वान् सह शल्यहद्भिः शल्यहर्तृभिर्व्रणचिकित्सकैः सह। तथा वाह्लीकान् जनान्। सिन्धोर्नद्यास्तटे ये निवसन्ति जनास्तांश्च। हन्यात् घातयेत्। चशब्दः सर्वत्रात्र समुच्चये। आनर्त्ता जनाः। पौण्ड्राः। भिषजो वैद्याः। तथा किराता जनाः। एतान् सर्वान् हन्यान्नाशयेत्। तथा भूरिसुभिक्षकृच्च। भूर्यतिबाहुल्येन सुभिक्षं करोति। तथा च समाससंहितायाम् :–

यदि असुर अर्थात् राहु (ग्रहण) आश्विनमास में दृष्ट हो; तो काम्बोजजनों, चीन तथा यवनसहित शल्यक्रिया से व्रणचिकित्सा करनेवालों, तथा वाह्लीकजनों, सिन्धु-तट पर निवास करनेवाले लोगों का विघात करता है। यहाँ पर सभी जगह "च" शब्द समुच्चय (समूह) अर्थ में प्रयुक्त है। आनर्त्तजन, पौण्ड्र, वैद्य तथा किरातजन; इन सबका विनाश होता है। तथा च पर्याप्त सुभिक्ष करता है। अर्थात् सुभिक्ष की बहुलता लाता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्वयुग्माघकार्त्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
राहुरवशिष्टमासेष्वशुभकरो वृष्टिधान्यानाम् ॥

आश्विन, माघ, कार्तिक, भाद्रपद मासों में आया हुआ ग्रहण सुभिक्ष-कारक अर्थात् शुभ होता है; एवं शेष मासों में वर्षा, धान्य इत्यादि के लिए अशुभ-कारक होता है।

तथा च पराशरः—

तत्र कार्त्तिके सुभिक्षक्षेमाय काशिकोशलशूरसेनाऽभावाय च। मार्गशीर्षे मृगपौण्ड्रसोमभयाय वृष्टये च। पौषे भयदुर्भिक्षब्रह्मक्षत्रोपरोधाय। माघे शस्त्रप्रकोपाय प्रावृड्वृद्धये वङ्गानर्त्तकयवनकाशिदेशोत्सादनकृत्। फाल्गुनेऽन्नसम्पच्च। नटनर्त्तकधनुष्करसस्यविनाशाय चैत्रे। वैशाखेऽश्मकपौण्डौड्रम्लेच्छवृक्षसस्याभावाय। ज्येष्ठे ज्येष्ठपत्नीगणमुख्यसस्योपद्रवाय। साल्वनिषादवृष्टिसस्यघ्नमाषाढे। श्रावणे क्षेमसुभिक्षमन्यत्र चीनकाश्मीरपुलिन्दगान्धारेभ्यः। भाद्रपदे मगधदरदकलिङ्गवङ्गाऽनयाय सस्यक्षेमाय च। आश्वयुग्ग्रहणे सुभिक्षक्षेमाय आवन्तिवाह्लीकानर्त्तकाम्बोजसैन्धवाऽऽमयायेति ॥ ८०॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :—

कार्तिकमास में काशी, कोशल, शूरसेन के लिए अभावकारक तथा सुभिक्ष और क्षेमकारक होता है। मार्गशीर्ष में मृग (पशु), पौण्ड्र और सोम क्षेत्र के लिए भयदायक और वृष्टिकारक होता है। पौषमास में भय तथा दुर्भिक्षकारक और ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को विघ्नप्रदायक होता है। माघमास में सशस्त्र संघर्ष वर्षावृद्धिकारक, बङ्गप्रदेश, आनर्त्तक, यवन और काशीप्रदेश के लिए विनाशकारक होता है। फाल्गुनमास में धान्य सपत्तिकारक होता है। चैत्रमास में नट, नर्तक, शस्त्र-शिल्पी और सस्यों का विनाश- होता है। वैशाखमास में अश्मक, पौण्ड्र, म्लेच्छवासियों तथा वृक्षों और सस्यों का अभाव (कष्ट) होता है। ज्येष्ठमास में ज्येष्ठपत्नी, प्रमुखगण तथा सस्यों के लिए उपद्रवकारक होता है। आषाढ़मास में साल्वप्रदेश, निषाद जाति और वृष्टि तथा सस्यों का विनाश करता है। श्रावणमास में चीन, काश्मीर, पुलिन्द और गान्धारप्रदेश को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह क्षेम तथा सुभिक्ष होता है। आश्विनमास में ग्रहण होने पर सुभिक्ष तथा कल्याणकारक और अवन्ति (उज्जैन) वाह्लीक, आनर्त्त, कम्बोज तथा सैन्धवप्रदेशों के लिए रोगकारक होता है ॥८०॥

अथार्कशशिनोर्दश मोक्षा भवन्ति तेषां नामान्याह :—

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः सञ्छर्दनं च जरणं च।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥ ८१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब रवि-चन्द्र के दश प्रकार के मोक्षों के नाम कहते हैं :–

हनु, कुक्षि, पायु के दो-दो भेद (कुल छः) तथा सञ्छर्दन, जरण, मध्यविदरण और अन्त्यविदरण; इस प्रकार रवि-चन्द्र के मोक्ष के दश भेद होते हैं ॥८१॥

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः। द्वौ द्वौ बारौ द्विर्द्विः। हनुभेदौ द्वौ। कुक्षिभेदौ द्वौ। पायुभेदौ द्वाविति षट्। सञ्छर्दनं च जरणं च। चकारः समुच्चये। तथा मध्यविदरणमन्त्यविदरणम्। इत्येवंप्रकाराः शशिसूर्ययोश्चन्द्रार्कयोर्दश मोक्षाः॥८१॥

हनु, कुक्षि, पायु के दो-दो भेद, अर्थात् हनु के दो भेद, कुक्षि के दो भेद, पायु के दो भेद, इस प्रकार कुल छः भेद तथा सञ्छर्दन और जरण, मध्यविदरण और अन्त्यविदरण; इस प्रकार से रवि-चन्द्र के मोक्ष के दश प्रकार होते हैं ॥८१॥

अथैतेषां लक्षणं सफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव दक्षिणहनुभेदस्य लक्षणं फलं चाह :–

आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः।
सस्यविमर्दो मुखरुग् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥८२॥

अब इन सभी का फलसहित लक्षण बतलाने की कामना से प्रारम्भ में दक्षिणहनुभेद का लक्षण और फल कहते हैं :–

यदि अग्निकोण में चन्द्र का मोक्ष होता है, तो वह दक्षिणहनुभेद संज्ञक होता है। इसमें सस्यों की हानि, मुखरोग, राजपीड़ा और सुन्दर वर्षा होती है ॥८२॥

आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि यद्यपगमनं निवर्त्तनं तमः करोति तदा स मोक्षो दक्षिणहनुभेदसंज्ञितो दक्षिणहनुभेद इति तस्य संज्ञा। कस्य मोक्षः शशिनश्चन्द्रस्य। चन्द्रग्रहणमत्रोपलक्षणार्थमर्कस्यापि यतो वक्ष्यति। [1]"एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करस्यापि" इति। अस्मिन् मोक्षे सस्यविमर्दः सस्यनाशो भवति। तथा मुखरुग्वदनपीडा। नृपस्य राज्ञः पीडा स्याद्भवेत्। सुवृष्टिः वृष्टिश्च भवेत्। तथा च कश्यपः–

अग्निकोण में अर्थात् पूर्व-दक्षिण की दिशा में यदि ग्रहण का निवर्तन (मोक्ष) होता है, तो वह मोक्ष दक्षिणहनुभेद संज्ञक होता है, किसका मोक्ष? चन्द्रमा का। चन्द्रग्रहण यहाँ पर उपलक्षणात्मक है, क्योंकि आगे सूर्य के लिए भी यही कहा गया है :– "ये सभी मोक्ष सूर्य के लिए भी कहने चाहिये।" इन सभी मोक्षों में सस्यों का नाश होता है; तथा मुखरोग, वदनपीड़ा, राजा को कष्ट होता है, और सुन्दर वृष्टि होती है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

दक्षिणो हनुभेदः स्याच्चाग्नेय्यां यदि गच्छति।
सस्यनाशं च कुरुते नृपभङ्गं सुदारुणम् ॥इति॥८२॥

---

१. अस्यैवाध्यायस्य ९१ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्निकोण में यदि मोक्ष होता है, तब दक्षिणहनुभेद कहा जाता है; और इसमें सस्यनाश, राज्यभङ्ग तथा अधिक कष्ट होता है ॥८२॥

अथ वामहनुभेदलक्षणं सफलमाह :–

पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी।
मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विन्द्यात् सुभिक्षं च ॥८३॥

वामहनुभेद का लक्षण और फल कहते हैं :–

पूर्वोत्तरदिशा (ईशानकोण) में मोक्ष होने पर वामहनुभेद कहा जाता है; जो राजकुमारों को भयदायक, मुखरोग तथा शस्त्रभय उत्पन्न करनेवाला होता है, तथा इसमें सुभिक्ष होता है ॥८३॥

पूर्वोत्तरेणैशान्यां दिशि अपगमनं राहोर्यदि भवति तदा स वामो हनुभेदो नाम मोक्षः। स च नृपकुमाराणां नृपपुत्राणां भयदायी भवति भीतिं ददाति। तस्मिंश्च मोक्षे मुखरोगं वक्त्रपीडां शस्त्रभयं संग्रामभीतिं च विन्द्याज्जानीयात्। सुभिक्षं च भवति। तथा च कश्यपः–

पूर्वोत्तरदिशा (ईशानकोण) में राहु का प्रत्यावर्तन अर्थात् मोक्ष होता है, तब वह वामहनुभेद नामक मोक्ष है। यह राजपुत्रों के लिए भयदायक होता है। इस मोक्ष में मुखरोग, युद्धभय समझना चाहिए तथा सुभिक्ष होता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

पूर्वोत्तरेऽपरो भेदो नृपपुत्रभयप्रदः॥ इति ॥८३॥

पूर्वोत्तर में होने वाला भेद राजपुत्रों को भय देता है ॥८३॥

अथ दक्षिणकुक्षिविभेदलक्षणं सफलमाह :–

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः।
पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपवः॥८४॥

अब दक्षिणकुक्षिभेद का लक्षण और फल कहते हैं :–

यदि दक्षिणदिशा से मोक्ष हो, तो वह दक्षिणकुक्षिविभेद संज्ञक होता है। इसमें राजपुत्रों को पीड़ा होती है, और दक्षिणदिशा के शत्रुओं पर अभियान कहना चाहिए ॥८४॥

दक्षिणपार्श्वेन दक्षिणभागेन यदि मोक्षो भवेत् स दक्षिणकुक्षिविभेदो नाम मोक्षः। तस्मिन्मोक्षे नृपपुत्राणां राजसुतानां पीडा भवति। तथा दक्षिणा रिपवो दक्षिणदिक्स्थाः शत्रवोऽभियोज्याः। तेषामुपयोगः कार्य इत्यर्थः। एतदौत्पातिकम्। यतो गणितगोलवासनया दक्षिणोत्तरयोर्दिशोर्ग्रासमोक्षौ न भवतः। कदाचिदपि आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम्। तथा च कश्यपः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि दक्षिणपार्श्व अर्थात् दक्षिणीभाग में मोक्ष हो, तो वह दक्षिणकुक्षिविभेद नामक मोक्ष होता है। इस मोक्ष में राजपुत्रों को कष्ट होता है, तथा दक्षिणदिशा के शत्रुओं पर अभियान (विजय-प्रयास) कहना चाहिए। यह स्थिति (मोक्ष) उत्पातजनित होती है। क्योंकि गोलीयगणित की उपपत्ति के द्वारा दक्षिणोत्तर दिशाओं में ग्रहण और मोक्ष नहीं होता है। कदाचित् आचार्य ने पूर्वशास्त्रों के अनुसार ही कहा है। जैसाकि कश्यप का मत है :-

दक्षिणः कुक्षिभेदः स्याद्वामे मोक्षो भवेद्यदि।
राजपुत्रभयं तत्र दक्षिणाशाद्विषां वधः॥इति॥८४॥

यदि वामभाग में मोक्ष हो, तो दक्षिणकुक्षिभेद होता है। इसमें राजपुत्रों का भय और दक्षिणदिशा के शत्रुओं का वध होता है॥८४॥

अथ वामकुक्षिभेदं सफलमाह :-

वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः।
स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि॥८५॥

अब वामकुक्षिभेद का लक्षण एवं फल कहते हैं :-

यदि उत्तरभाग में राहु (ग्रहण) स्थित (मोक्ष) हो, तो वामकुक्षिभेद कहा जाता है। इसमें स्त्रियों के गर्भनाश और मध्यम सस्य होते हैं॥८५॥

राहुर्यद्युत्तरमार्गसंस्थितः उत्तरस्यां दिशि संस्थितो भवति तदा स वामकुक्षिभेदो नाम मोक्षः। तस्मिन् मोक्षे स्त्रीणां योषितां गर्भविपत्तिर्गर्भविनाशो भवति। तथा सस्यानि मध्यानि भवन्ति नाल्पानि न बहूनीत्यर्थः। एतदौत्पातिकम्। तथा च कश्यपः-

राहु जब उत्तरभाग में स्थित अर्थात् उत्तरदिशा में स्थित होता है, तब वह वामकुक्षिभेद नामक मोक्ष है। इस मोक्ष में स्त्रियों का गर्भविनाश होता है, तथा सस्य मध्यम होते हैं अर्थात् न अल्प और न अधिक होते हैं। यह उत्पातजनित मोक्ष है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :-

सौम्यायां तु यदा मोक्षो वामकुक्षिविभेदतः।
स्त्रीणां गर्भविनाशाय सौम्याशाधिपतेर्वधः॥इति॥८५॥

उत्तरदिशा में जब मोक्ष हो, तब वह वामकुक्षिविभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें स्त्रियों का गर्भविनाश और उत्तरदिशा के राजा का वध होता है॥८५॥

अथ दक्षिणवामौ पायुभेदौ सफलावाह :-

नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे॥८६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब दक्षिणवाम में पायुभेदों के फलसहित लक्षण कहते हैं :–

नैऋत्य और वायव्यदिशाओं में क्रमशः दक्षिणपायुभेद और वामपायुभेद नामक दो मोक्ष होते हैं। इनमें गुप्तरोग, अल्पवृष्टि तथा वामपायु में राजपत्नी का मरण होता है ॥८६॥

नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि व्यवस्थिते तमसि दक्षिणपायुभेदः। वायव्यस्थे पश्चिमोत्तरस्यामवस्थिते वामपायुभेदः। पायुशब्देनापानस्थानमुच्यते। अनयोर्द्वयोरपि गुह्यरुग् गुदरोगो भवति। गुह्यं लिङ्गं वा तत्र रोगो भवति। अल्पा स्वल्पा वृष्टिर्वर्षणं भवति। वामस्य विशेषमाह–राज्ञीक्षयो वाम इति। वामकुक्षिभेदे राज्ञ्या राजपत्न्याः क्षयो मरणं भवति। तथा च कश्यपः–

नैर्ऋत्य अर्थात् दक्षिणपश्चिमदिशा में राहु के व्यवस्थित होने पर दक्षिणपायुभेद और वायव्यकोण में अर्थात् पश्चिमोत्तरदिशा में अवस्थित होने पर वामपायुभेद होता है। 'पायु' शब्द से अपान (गुदा) स्थान कहा जाता है। इन दोनों में ही गुप्तरोग अर्थात् गुदरोग होता है। अथवा लिङ्ग जनित (शिश्न) रोग होता है। स्वल्पवृष्टि होती है। वामकुक्षिभेद का विशेष फल यह होता है कि रानी का मरण होता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

पायुभेदगते राहौ वायवीनैर्ऋताशयोः।
गुह्यरोगभयं विन्याद्वामे राज्ञीभयं तथा ॥इति॥ ८६॥

राहु वायव्य तथा नैऋत्य दिशाओं में पायुभेद संज्ञक होकर गुप्तरोग का भय देता है, तथा वामभेद में विशेषतया रानी के लिए भय होता है ॥८६॥

अथ सञ्छर्दनलक्षणमाह :–

पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत।
सञ्छर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥ ८७॥

अब सञ्छर्दन का लक्षण तथा फल कहते हैं :–

पूर्वदिशा से ग्रहण होकर यदि पूर्वदिशा में ही मोक्ष हो, तो उसे सञ्छर्दन कहते हैं। यह संसार के लिए क्षेम (कल्याण), सस्य और आनन्दप्रदायक होता है ॥८७॥

पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव पूर्वस्यामेव यद्यपसर्पेत गमनं करोति स मोक्षः सञ्छर्दनमिति। तच्च जगतो लोकस्य क्षेमप्रदं सस्यप्रदं हार्दिप्रदं तुष्टिप्रदं च भवति। तथा च कश्यपः–

पूर्वदिशा में ग्रहण होकर यदि पूर्वदिशा में ही गमन करता हो, तो वह मोक्ष सञ्छर्दन होता है। वह लोक के लिए कल्याणप्रद सस्योत्पादक तथा सन्तुष्टिदायक होता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रासमोक्षौ यदा पूर्वे छर्दनं तु तदा भवेत्।
क्षेमहार्दिप्रदं ज्ञेयं सस्यनिष्पत्तिकारकम्॥इति॥८७॥

पूर्वदिशा में जब ग्रास और मोक्ष दोनों होता है, तब सञ्छर्दन कहा जाता है। यह कल्याण, आनन्द और सस्यों की वृद्धि करनेवाला होता है॥८७॥

अथ जरणं सफलमाह :–

प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्।
क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः॥८८॥

अब जरण का फल एवं लक्षण कहते हैं :–

पूर्वदिशा में ग्रहण हो और पश्चिमदिशा में मोक्ष हो, तब जरण कहा जाता है। इसमें भुखमरी, शस्त्रभय, उद्विग्नता होती है; तथा लोगों को कहीं शरण नहीं मिलती है॥८८॥

यस्मिन् प्रग्रहणे प्राक् पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा पश्चात् पश्चिमायां दिशि अपसर्पणं गमनं यदि करोति तदा तज्जरणं नाम मोक्षः। तत्र तस्मिन् मोक्षे जना मर्त्याः क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्नाः। क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयम्। शस्त्रभयं संग्रामभीतिः। तेनोद्विग्ना दुःखिता न शरणमुपयान्ति शरणं न प्राप्नुवन्ति। निःशरणा भवन्तीत्यर्थः। तथा च कश्यपः–

जिस ग्रहण में पूर्वदिशा में ग्रहणकर पश्चिमदिशा में गमन करता है, तब वह जरण नामक मोक्ष है। इस मोक्ष में लोग क्षुधा-भय अर्थात् दुर्भिक्ष-भय, सङ्ग्रामभय से दुःखित होकर कहीं शरण नहीं प्राप्त करते हैं। अर्थात् निःशरण हो जाते हैं। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

पूर्वेण ग्रसते राहुरपरस्यां विमुञ्चति।
क्षुत्तस्करभयं तत्र मोक्षस्तु जरणं स्मृतम्॥इति॥८८॥

पूर्वदिशा में राहु ग्रस्त करता है, और पश्चिमदिशा में मुक्त करता है; तब वह जरणसंज्ञक कहा गया है। जिसमें क्षुधा और चौरभय होता है॥८८॥

अथ मध्यविदरणं सफलमाह :–

मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम।
अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम्॥८९॥

अब मध्यविदरण का लक्षण एवं फल कहते हैं :–

यदि मध्य में प्रकाश हो, तो वह मध्यविदारण नामक मोक्ष होता है। इसमें अन्तःपुर (रनिवास) में कोप बढ़ता है, सुभिक्ष रहता है औल अधिक वृष्टि नहीं होती है॥८९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथमभावी मध्यभागे यदि प्रकाशो बिम्बस्य प्राकाश्यमुत्पद्यते तन्मध्यविदरणं नाम मोक्षः। तदन्तःकोपकरम्। अन्तरभ्यन्तरे राजगृहे कोपकरम्। स्वयमेव सैन्यक्षोभकरं स्याद्भवेत्। तथा सुभिक्षदं सुभिक्षं ददाति। नातिवृष्टिकरं भवति प्रभूतं न वर्षतीत्यर्थः। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धम्। तथा च कश्यपः—

आरम्भकाल में यदि मध्यभाग से प्रकाश उत्पन्न होता है, तब वह मध्यविदरण नामक मोक्ष है। यह राजभवन के भीतर क्रोधकारक, स्वयं ही सैन्य-विद्रोह कराने वाला तथा सुभिक्षदायक होता है। अतिवृष्टि अर्थात् प्रचुर वर्षा नहीं होती है। यह भी उत्पातजनित ही संभव है, क्योंकि यह गोलीयगणित के विरुद्ध है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :—

यदा प्रकाशो मध्ये स्याद् दुर्भिक्षमरकं तदा॥ इति॥ ८९॥

जब प्रकाश मध्य में होता है, तब दुर्भिक्ष और मृत्युकारक होता है॥८९॥

अथान्त्यविदरणाख्यं सफलमाह :—

पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्त्यदरणाख्यः।
मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन्॥ ९०॥

अब अन्त्यविदरण का लक्षण तथा फल कहते हैं :—

यदि बिम्ब के किनारे-किनारे श्वेतवर्ण हो तथा मध्य में सघन अन्धेरा रहे, तो उसे अन्त्यविदरणसंज्ञक मोक्ष कहते हैं। इसमें मध्यदेशों का नाश तथा शरदकालीन सस्यों का विनाश होता है॥९०॥

पर्यन्तेषु बिम्बान्तभागेषु यदि विमलता निर्मलत्वं भवति मध्ये मध्यभागे बहुलं सन्ततं तमस्तदान्त्यदरणाख्यो मोक्षः। अस्मिन् मोक्षे मध्याख्यस्य देशस्य नाशो भवति। मध्यदेशो विनश्यतीत्यर्थः। तथा शारदानां सस्यानां च क्षयः। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धमिति। तथा च कश्यपः—

बिम्ब के अन्त्यभागों में यदि निर्मलता होती है, तथा मध्यभाग में अधिक अन्धकार रहता है; तब वह अन्त्यदरण नामक मोक्ष होता है। इस मोक्ष में मध्यदेश का नाश होता है, और शरदकालीन सस्यों का क्षय होता है। यह मोक्ष भी उत्पातजन्य समझना चाहिए, क्योंकि यह गोलीयगणित के विरुद्ध है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :—

पर्यन्ते विमलत्वं स्यात्तमो मध्ये यदा भवेत्।
मध्याख्यदेशनाशः स्याच्छरत्सस्यं विनश्यति॥ इति॥ ९०॥

जब बिम्ब में किनारे पर स्वच्छता और मध्य में अन्धेरा हो, तब मध्यदेश का नाश होता है, तथा शरद्काल के सस्य विनष्ट होते हैं॥९०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैत एव मोक्षा भास्करस्य ज्ञेया इत्येतदाह :—

एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र।
पूर्वा दिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥९१॥

अब ये ही मोक्ष सूर्य के भी जानने चाहिएँ—

पूर्वोक्त सभी मोक्ष जो चन्द्रमा के लिए निर्दिष्ट हैं, वे सूर्य के लिए भी उसी प्रकार कहने चाहिये। किन्तु यहाँ पर चन्द्रमा में जो पूर्वदिशा का विधान किया गया है, उसको सूर्य में पश्चिम दिशा की कल्पना करनी चाहिए ॥९१॥

एते सर्वे मोक्षा ये चन्द्रमस्युक्तास्ते सर्वे भास्करे सूर्येऽपि वक्तव्याः कथनीयाः। किन्त्वत्रायं विशेषः— यथा शशिनि चन्द्रे पूर्वा दिक् तथा रवावादित्ये पश्चिमा दिक् कल्प्या। एतदुक्तं भवति— आदित्यस्य पश्चिमा दिक् पूर्वा, पूर्वा च पश्चिमा। दक्षिणा उत्तरा। उत्तरा च दक्षिणा। विदिशश्चानेनैव वैलोम्येन परिकल्प्य चन्द्रवद् मोक्षा वाच्या इति ॥९१॥

ये सभी मोक्ष जो चन्द्रमा के लिए कहे गये हैं, वे सभी सूर्य में भी कहने चाहिये। परन्तु यहाँ पर यह विशेष है, कि जिस प्रकार चन्द्रमा में पूर्वदिशा है; वहाँ सूर्य में पश्चिम दिशा की कल्पना कर लें। तात्पर्य यह है कि सूर्य की पश्चिम दिशा पूर्व और पूर्वदिशा पश्चिम होती है। इसी प्रकार दक्षिणदिशा उत्तर और उत्तरदिशा दक्षिण होती है। विदिशाओं (कोणदिशाओं) की भी इसी विलोम परिवर्तन से परिकल्पनाकर चन्द्रमा के सदृश मोक्ष कहना चाहिए ॥९१॥

अथ ग्रहणे मुक्ते सप्ताहान्तःफलान्याह श्लोकपञ्चकेन :—

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसंक्षयं कुरुते।
नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ॥९२॥

अब ग्रहण समाप्त होने के पश्चात् सप्ताहान्त का फल कहते हैं :—

ग्रहणमुक्त होने के एक सप्ताह के अन्दर धूलिपात हो, तो अन्न का क्षय होता है। तुषारपात होने पर रोग का भय तथा भूकम्प होने पर प्रसिद्ध राजा की मृत्यु होती है ॥९२॥

उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥९३॥

यदि उल्कापात हो, तो मन्त्री का नाश; विविध वर्णों के बादल हों, तो अत्यधिक भय; प्रबल मेघ-गर्जना हो तो गर्भ का विनाश और विद्युत्-पतन से राजा तथा दन्तुलपशुओं को पीड़ा होती है ॥९३॥

परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥९४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिवेश हो तो रोगों से पीड़ा, दिग्दाह होने पर राजा तथा अग्नि का भय, रुक्ष (रूखा दिन) हो, तो वायु का भय और चोरों के उत्पात का भय होता है ॥९४॥

निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदेव सन्दृष्टः॥९५॥

निर्घात, इन्द्रधनुष और दण्ड प्रकट हो; तो क्षुधाभय तथा शत्रुव्यूहन होता है। ग्रहयुद्ध होने पर राजाओं में युद्ध और केतु (धूमकेतु आदि) दृष्ट हो, तो यही फल होता है॥९५॥

अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति॥९६॥

एक सप्ताह के अन्तर्गत सुन्दर, अनुकूल वर्षा हो; तो सुभिक्ष का फलादेश करना चाहिए। ग्रहण से उत्पन्न जो भी अशुभफल होता है, वह सब समाप्त हो जाता है॥९६॥

मुक्ते ग्रहणे सप्ताहान्तर्दिनसप्तकमध्ये यदि पांशुनिपातो भवति पांशुवर्षणं दृश्यते तदान्नसंक्षयं दुर्भिक्षं कुरुते। एवं नीहारो रोगभयं करोति। भूकम्पः प्रवरस्य प्रधानस्य नृपस्य राज्ञो मृत्युं मरणं करोति।

ग्रहण के मुक्त होने पर सात दिनों के अन्तर्गत यदि धूलिकणों की वर्षा दिखायी पड़े, तो अन्नक्षय अर्थात् दुर्भिक्ष करता है। इस प्रकार नीहार (तुषारपात) से रोगभय करता है। भूकम्प प्रधान राजा का मरण करता है।

उल्का पतिता मन्त्रिणः सचिवस्य विनाशं करोति। नानावर्णा विविधकान्तयो घना मेघा अतुलमतिभयं भीतिं कुर्वन्ति। स्तनितं मेघशब्दस्तच्च गर्भविनाशं करोति। गर्भा [1]गर्भलक्षणोक्ता अत्र ज्ञेयाः। विद्युत्तडित्। नृपो राजा। दंष्ट्रिणः सर्पादयः। तेभ्यः परिपीडां करोति।

उल्कापतन हो तो मन्त्री, सचिव का विनाश करता है। विविधवर्णों के मेघ अत्यधिक भय उत्पन्न करते हैं। स्तनित अर्थात् मेघध्वनि से गर्भविनाश होता है। गर्भ के लक्षण आगे कहे गये हैं। विद्युत्-पतन से राजा और डँसनेवाले जन्तुओं को पीड़ा होती है।

परिवेषो रुक्पीडां रोगव्यथां करोति। दिग्दाहो दिशां दाहो नृपभयमग्निभयेन सहितं करोति। रूक्षः परुषः प्रबलश्चण्डो वायुश्चौरसमुत्थं तस्करोत्पन्नं भयं धत्ते ददाति।

परिवेष होने पर रोगव्यथा करता है। दिग्दाह राजभय तथा अग्निभय करता है। रूक्ष (कर्कश) और प्रचण्ड वायु चोरों से भय उत्पन्न करता है।

---

१. बृहत्संहितायाम् २१ अध्याये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्घातः शब्दस्तस्य च लक्षणं वक्ष्यति – "पवनः[1] पवनाभिहतः" इति। सुरचापमिन्द्रधनुः। दण्डश्च रविकिरणजलदमरुतां संघातः। एतेषामन्यतमं क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं सपरचक्रं परचक्रभयसहितं करोति। ग्रहयोर्युद्धे नृपाणां राज्ञां युद्धं भवति। केतुः शिखी च सन्दृष्टस्तदेव नृपयुद्धं करोति।

निर्घात वह शब्द है, जिसका लक्षण कहेंगे। "जो वायु के परस्पर टकराने से उत्पन्न होता है।" यह निर्घात तथा इन्द्रधनुष और दण्ड; इनमें से कोई भी एक हो, तो दुर्भिक्ष का भय और शत्रुपक्ष से भय करता है। सूर्यकिरणों का वायु तथा बादल से सङ्घात (घर्षण) को दण्ड कहते हैं। ग्रहों में युद्ध होने पर राजाओं को युद्धभय होता है। केतु दृष्ट हो तो वही नृपयुद्ध करता है।

सप्ताहान्तर्दिनसप्तमध्यऽविकृतस्याविकारस्य सलिलस्य पानीयस्य निपातैः सुभिक्षमादेश्यं वक्तव्यम्। यच्च ग्रहणजं फलमशुभं तत्सर्वं नाशमुपयाति नश्यतीत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम् :–

सात दिनों के अन्तर्गत विकाररहित पानी पड़े, तो सुभिक्ष कहना चाहिए और जो ग्रहण से उत्पन्न अशुभफल होते हैं, उन सबका विनाश हो जाता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

परुषपवनाभ्रगर्जितविद्युत्परिवेषभूप्रकम्पाद्याः।
सप्ताहान्तर्न शुभा ग्रहणनिवृत्तौ शुभा वृष्टिः॥

कर्कश पवन, मेघगर्जना, विद्युत्, परिवेष और भूकम्प आदि एक सप्ताह के अन्तर्गत शुभ नहीं होते हैं। ग्रहण-निवृत्ति के पश्चात् एक सप्ताह के मध्य यदि वर्षा हो तो शुभ होता है।

तथा च वृद्धगर्गः–

अथेन्दुग्रहनिर्मुक्ते सप्ताहान्तर्भवेद्यदि।
पांशुवर्षोऽन्ननाशः स्यान्नीहारो रोगवृद्धये॥
नृपनाशाय भूकम्प उल्का मन्त्रिविपत्तये।
रोगाय परिवेषः स्याद्भयायैवाभ्रसंप्लवः॥
विद्युद्गर्भविनाशाय दिग्दाहोऽग्निविवृद्धये।
निर्घातेन्द्रधनुर्दण्डा दुर्भिक्षाय भयाय च॥
पवनः प्रबलो रूक्षश्चौरोपद्रवसूचकः।
सर्वोपद्रवनाशः स्यात् सम्यग्वृष्टिर्भवेद्यदि॥
यद्राहुचरितं प्रोक्तं चन्द्रग्रहणहेतुकम्।
तदेव सकलं सूर्ये वेदितव्यं शुभाशुभम्॥ इति॥ ९२-९६॥

---

१. बृहत्संहितायाम् ३७ अध्यायस्य १ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

चन्द्रग्रहण की मुक्ति के पश्चात् एक सप्ताह के अन्तर्गत यदि धूलिवर्षा हो तो अन्न का नाश, नीहार हो तो रोगवृद्धि होती है। भूकम्प आने पर राजा का विनाश होता है; तथा उल्कापात होने पर मन्त्री पर विपत्ति आती है। परिवेष होने पर रोग होता है, तथा बादलों का संघर्षण होने पर भय उत्पन्न होता है। विद्युत्, इन्द्रधनुष और दण्ड होने से दुर्भिक्ष तथा भय उत्पन्न होता है। प्रचण्ड और रूक्ष पवन चोरों का उपद्रव लाता है। यदि अच्छी प्रकार से वर्षा हो, तो सभी प्रकार के उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। चन्द्रग्रहण के निमित्त राहु के जो भी फल कहे गये हैं, वे सम्पूर्ण शुभाशुभफल सूर्यग्रहण में भी जानने चाहिए ॥९२-९६॥

चन्द्रग्रहप्यानन्तरं यद्यर्कग्रहणं दृश्यते तदा फलमाह :–

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥९७॥

चन्द्रग्रहण के बाद रविग्रहण का फल कहते हैं :–

चन्द्रग्रहण होने पश्चात् यदि एक पक्ष के बाद सूर्यग्रहण हो, तब प्रजा में दुःशासन और दाम्पत्यजीवन में परस्पर कलह उत्पन्न होता है ॥९७॥

सोमग्रहे चन्द्रग्रहणे निवृत्तेऽतीते पक्षान्ते दिनपञ्चदशकात्परतो यदि ग्रहो ग्रहणमर्कस्याऽऽदित्यस्य भवति तत्र तस्मिन् प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयो भवति। दम्पत्योर्जायापत्योरन्योन्यं परस्परं वैरं द्वेषो भवति ॥९७॥

चन्द्रग्रहण की निवृत्ति (समाप्ति) के बाद १५ दिनों के पश्चात्; यदि सूर्य का ग्रहण होता है, तो प्रजा के लिए दुर्नीति (कुशासन) होती है। दम्पति अर्थात् पति-पत्नी के मध्य द्वेष होता है ॥९७॥

अथार्कग्रहाच्छशिग्रहणं दृष्टं फलमाह :–

अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः।
नैकऋतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥९८॥

अब सूर्य ग्रहण के पश्चात् चन्द्रग्रहण का फल कहते हैं :–

सूर्य ग्रहण के पश्चात् यदि चन्द्र-ग्रहण पड़ता हो, तब ब्राह्मण अनेक यज्ञों के फल-भागी और जनता प्रसन्नता को प्राप्त होती है ॥९८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्कग्रहादादित्यग्रहणादनन्तरं पक्षान्ते यदि शशिनश्चन्द्रमसो ग्रहणं दृश्यते अवलोक्यते। ततो विप्रा ब्राह्मणा नैकऋतुफलभाजो नैकानां बहूनां क्रतूनां यज्ञानां फलभागिनो भवन्ति। तथा सर्वाः प्रजा मुदिता हृष्टा भवन्तीति॥९८॥

सूर्य-ग्रहण के पश्चात् पक्ष के अन्त में यदि चन्द्रमा का ग्रहण दिखाई पड़ता है, तब ब्राह्मण बहुत से यज्ञों के फलभागी होते हैं। तथा सभी जनता प्रमुदित अर्थात् हर्षित होती है॥९८॥

॥इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ राहुचारो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

॥ इति श्रीभट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृतिमें राहुचार नामक पञ्चम अध्याय॥५॥

●

अथ षष्ठोऽध्यायः

अथ भौमचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्र भौमस्य पञ्चमुखानि भवन्ति। तद्यथा :—

उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च।
निस्त्रिंशमुशलं चेति पञ्च वक्त्राणि भूसुते॥

अब भौमचाराध्याय की व्याख्या की जाती है :—

भौम के पाँच मुख होते हैं, जैसाकि :—

भौम के उष्ण, अश्रुमुख, व्याल, रुधिरानन, निस्त्रिंशमुसल ये पाँच मुख होते हैं।

एतेषां लक्षणानि सफलानि वक्ष्यति। तत्रादावेवोष्णमुखस्य लक्षणं सफलमाह :—

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु।
तद्वक्त्रामुष्णमुदये पीडाकरमग्निवार्त्तानाम्॥१॥

अब इनके लक्षण तथा फल कहते हुए, पहले उष्णमुख का लक्षण तथा फल कहते हैं :—

जिस नक्षत्र में भौम उदय होता है, उस नक्षत्र से ९,८,७ नक्षत्रों में यदि वक्री होता है, तो वह उष्णमुख संज्ञक है। इसमें अग्नि से जीविका करनेवालों को पीड़ा उत्पन्न होती है॥१॥

यस्मिन्नक्षत्रे स्थितोऽङ्गारक आदित्यमण्डलादुदयं करोति तदुदयर्क्षादुदयनक्षत्राद् नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु नवमे ऋक्षे नक्षत्रे अष्टमे वा यदि वक्रं प्रतीपगमनं करोति तदा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्वक्त्रमुष्णं नाम। तच्च भौमस्योदये रविमण्डलात् पुनरपि निर्गमेऽग्निवार्त्तानामग्निवृत्तीनां सुवर्णकारलोहकारादीनां पीडाकरमुपतापकरम्। वक्रादनन्तरं यदाऽर्कमण्डलेऽस्तमेष्यति तदैतत्फलमेषां सर्वेषां ज्ञेयम्। यत्र यद्यप्यसम्भवस्तत्रापि पूर्वशास्त्रानुसारेणाऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च वृद्धगर्गः–

जिस नक्षत्र में मङ्गल स्थित रहता है, उस उदयनक्षत्र से नवम नक्षत्र में अथवा अष्टम नक्षत्र में अथवा सप्तम नक्षत्र में यदि वक्रगमन (वक्री) करता है, तब उसका नाम उष्णमुख होता है। इस प्रकार के मङ्गल के होने पर पुनः मार्गी होने तक अग्नि से आजीविका करनेवाले स्वर्णकार, लोहार आदि को पीड़ित करता है। वक्र होने के पश्चात् जब अस्त होता है, तब यह फल सभी के लिए जानना चाहिए। यद्यपि ऐसा असंभव है, तथापि पूर्वशास्त्रों के अनुसार ही आचार्यों ने कहा है। जैसाकि वृद्ध गर्ग का मत है :–

उदयात् नवमे कुर्यादष्टमे सप्तमेऽपि वा।
निवृत्तिं लोहिताङ्गस्तु तदुष्णं वक्त्रमुच्यते॥
नरोऽग्निजीविनो ये च पचन्ति च दहन्ति च।
तेषामुत्पद्यते तापो जायते धनसंक्षयः॥

उदय नक्षत्र से नवम, अष्टम अथवा सप्तमनक्षत्र में यदि भौम वक्री होता है, तो उसे उष्णमुख कहते हैं। इसमें अग्निजीवी लोग अर्थात् जो अग्नि से पाचन और दहन का कार्य करते हैं, उनको कष्ट होता है, तथा धन का क्षय होता है।

तथा च पराशरः–

तस्य पञ्चवक्त्राणि क्रमेणोपदिशन्ति। उष्णमश्रुमुखं व्यालं लोहिताख्यं निस्त्रिंशमुशलं चेति। तत्रोदयर्क्षात् सप्तमाष्टनवमेषु नक्षत्रेषु निवृत्तः प्रजासंक्षयं विशेषतः पचतां दहतां च पीडां धत्ते॥१॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

उसके (मङ्गल) पाँच मुख क्रमशः कहे जाते हैं– उष्णमुख, अश्रुमुख, व्याल, लोहित और खड्गमुसल। यहाँ पर यदि उदय नक्षत्र से ७,८,९ नक्षत्रों में वक्री होने पर प्रजा का क्षय और विशेषतः अग्नि से पकाने और जलानेवालों को विशेष पीड़ा होती है॥१॥

अथाश्रुमुखस्याह :–

द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम्।
दूषयति रसानुदये करोति रोगानवृष्टिं च॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब अश्रुमुख का लक्षण एवं फल कहते हैं :–

उदयनक्षत्र से १२,१०,११ नक्षत्रों में भौम के वक्री होने पर अश्रुमुख कहा जाता है। ऐसे भौम के उदय होने पर मधुरादि रसों का प्रदूषण तथा रोग और अनावृष्टि होती है ॥२॥

उदयनक्षत्राद्द्वादशे नक्षत्रे दशमे वैकादशे वाकुजेऽङ्गारके वक्रिते प्रतीपगतौ अश्रुमुखं नाम वक्त्रम्। तच्चोदये पुनरर्कमण्डलान्निर्गमे रसान् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायान् दूषयति सदोषान् करोति। ते च दुष्टा नराणां भक्षणमात्रात् पीडामुत्पादयन्ति। एवं रोगान् करोति। तथा अवृष्टिमवर्षणं च करोति। तथा च गर्गः–

उदय नक्षत्र से दशम, एकादश अथवा द्वादश नक्षत्रों में मङ्गल के वक्री होने पर अश्रुमुख नामक मुख होता है। इसके पुनः उदित होने पर रसों अर्थात् मधुर, आम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय रस को दूषित करता है। वे इस प्रकार दूषित हो जाते हैं, कि मनुष्यों को खाने मात्र से पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं। एवञ्च रोगों को तथा अवर्षण को उत्पन्न करता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

दशमैकादशे वापि द्वादशे वापि वक्रिते।
लोहिताङ्गे ग्रहे ज्ञेयं वक्त्रमश्रुमुखं च तत्॥
तत्र वर्षति पर्जन्यो दूषयित्वा शुभान् रसान्।
ते दुष्टा दूषयन्त्याशु नृणां धातून् तथा भृशम्॥
बहवो व्याधयः क्रूरा उत्पद्यन्ते शरीरिणाम्।
बहुभिः कारणैरेतैस्ततो लोकः प्रलीयते॥

दशम, एकादश अथवा द्वादश नक्षत्र में भौम के वक्री होने पर अश्रुमुखवक्र जानना चाहिए। इसमें सभी अच्छे रसों की प्रदूषितकर मेघ वर्षा करता है। वे दुष्ट शीघ्र ही मनुष्यों को तथा धातुओं को दूषित कर देते हैं। प्राणियों को बहुत से भयावह रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के अनेक कारणों से लोगों का विनाश होता है।

तथा च पराशरः–

दशमैकादशद्वादशेषु प्रदुष्टवातैरद्रव्यरसान् प्रजानां धातून् कोपयन् व्याधीन् प्रवर्त्तयति॥२॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

दशम, एकादश और द्वादशनक्षत्रों में (वक्री होने पर) प्रदूषित वायु से द्रव्यों, रसों तथा लोकों और धातुओं को प्रकुपित करता हुआ रोगों को उत्पन्न करता है ॥२॥

अथ व्यालस्याह :–

व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये।
दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च॥३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब व्याल का लक्षण तथा फल कहते हैं :–

उदय नक्षत्र से त्रयोदश अथवा चतुर्दशनक्षत्र में भौम के वक्री होने पर उसकी व्याल संज्ञा होती है। अस्त होने पर उसके फल का परिपाक होता है। इसमें दन्तुल (दाँतवाले) पशुओं सर्प तथा वन्य पशुओं से पीड़ा उत्पन्न करता है और सुभिक्ष होता है ॥३॥

उदयापेक्षया त्रयोदशर्क्षात् त्रयोदशनक्षत्राच्चतुर्दशाद्वा कुजे वक्रिते व्यालं नाम वक्रम्। तच्चास्तमये विपच्यते। यस्मिन् काले भौमोऽर्कमण्डले पुरस्तादस्तमेति तत्र परिपाकमायाति। दंष्ट्रिणः सूकरकुक्कुरादयः। व्यालाः सर्पाः। मृगा आरण्यजातयः। तेभ्यः सकाशात् पीडां लोकानां करोति सुभिक्षं च करोति।

उदय के पश्चात् त्रयोदश अथवा चतुर्दश नक्षत्र में वक्री मङ्गल का व्याल नामक वक्र होता है। वह अस्त होने पर परिपक्व होता है। जिस समय मङ्गल सूर्य के सान्निध्य में अस्त होता है। तभी परिपाक प्राप्त करता है। दन्तुल अर्थात् सूकर, कुक्कुरादि तथा व्याल अर्थात् सर्प और मृग अर्थात् वन्यजीव-जातियाँ; इनके कारण लोगों को पीड़ा होती है और सुभिक्ष होता है।

तथा च गर्गः–

त्रयोदशे च नक्षत्रे यदि वापि चतुर्दशे।
निवृत्तिं कुरुते भौमस्तद्वक्त्रं व्यालमुच्यते॥
भवन्ति प्रचुरा व्यालास्तेभ्यो लोकभयं वदेत्।
नृपाणामशुभं विन्द्यात् सस्यसम्पत्तिमादिशेत्॥

जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

त्रयोदश अथवा चतुर्दश नक्षत्र में यदि भौम वक्री होता है, तब वह व्यालवक्र कहा जाता है। इसमें सर्पों की बहुलता से लोक में भय कहना चाहिए। राजाओं के लिए अशुभ होता है, तथा सस्य-सम्पत्ति की वृद्धि का आदेश कहना चाहिए।

तथा च पराशरः–

त्रयोदशचतुर्दशयोः सस्यदंष्ट्रिव्यालप्राबल्यं हिरण्यसंचयं च॥इति॥३॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

त्रयोदश और चतुर्दश नक्षत्र में (वक्री होने पर) सस्य, दन्तुल तथा सर्पों की प्रबलता होती है। इसमें स्वर्ण का सञ्चय होता है ॥३॥

अथ रुधिराननस्याह :–

रुधिराननमिति वक्त्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते।
तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति॥४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब रुधिरानन का लक्षण तथा फल कहते हैं :–

मङ्गल के पञ्चदश अथवा षोडशनक्षत्र में वक्री होने पर रुधिराननवक्त्र कहा जाता है। इस समय मुखरोग, भय और सुभिक्ष प्राप्त होता है ॥४॥

उदयापेक्षया पञ्चदशान्नक्षत्रात् षोडशाच्च विनिवृत्ते वक्रितेऽङ्गारके रुधिराननमिति नाम वक्त्रम्। तच्च तत्कालं यावद्वक्रं तावन्मुखरोगं वक्त्रं पीडितं सभयं भयसहितं च सुभिक्षमावहत्युत्पादयति। तथा च गर्गः–

उदयनक्षत्र से पञ्चदशनक्षत्र अथवा षोडशनक्षत्र में मङ्गल के वक्री होने पर रुधिरानन नामक वक्त्र होता है। उस समय जब तक वक्र रहता है, तब तक मुख का रोग, भयातुरता और सुभिक्ष उत्पन्न करता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

यदि पञ्चदशर्क्षे तु भूसुतः षोडशेऽपि वा।
निवृत्तिं कुरुते वक्रस्तद्विदुर्लोहिताननम्॥
दीप्तिमन्तः पार्थिवाश्च भवन्ति प्रथिता भुवि।
क्षत्रकोपश्च सुमहान् मुखरोगा भवन्ति च॥

यदि पञ्चदश अथवा षोडश नक्षत्र में वक्र होता है, तब उसको लोहिताननं नामक वक्त्र कहते हैं। इसमें तेजस्वी राजा प्रसिद्ध होते हैं। इसमें क्षत्रियों का अधिक कोप (संघर्ष) और मुख के रोग होते हैं।

तथा च पराशरः–

पञ्चदशषोडशयोर्मुखरोगो नृपक्षोभः शस्त्रकोपश्च ॥ इति॥४॥

जैसा कि पराशर ने कहा है :–

पञ्चदश अथवा षोडशनक्षत्र में मुख का रोग, राजाओं में संघर्ष और शस्त्रकोप अर्थात् सशस्त्रसंघर्ष होता है ॥४॥

अथासिमुशलस्याह :–

असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे।
दस्युगणेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम्॥५॥

अब असिमुसल का लक्षण एवं फल कहते हैं :–

मङ्गल सप्तदश अथवा अष्टादश नक्षत्र में वक्र होता है, तो उसकी असिमुसल संज्ञा होती है। इसमें तस्करों से पीड़ा, अनावृष्टि और सशस्त्र संघर्ष का भय होता है ॥५॥

उदयापेक्षया सप्तदशान्नक्षत्रादष्टादशतोऽपि वा वक्रितेऽङ्गारके तद्वक्त्रमसिमुशलं नाम। तच्चानुवक्रे स्पष्टगत्याऽऽश्रिते भौमे दस्युगणेभ्यश्चौरसंघेभ्यः सकाशात् प्रजानां पीडां करोति। तथाऽवृष्टिं सशस्त्रभयां शस्त्रभयेन सहितां च करोति। तथा च गर्गः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदय के पश्चात् सप्तदश अथवा अष्टादश नक्षत्र में मङ्गल के वक्री होने पर असिमुसल नामक वक्त्र होता है। इस वक्रगति में चोरों के समूहों द्वारा जनता को कष्ट होता है। तथा अनावृष्टि और शस्त्रभय होता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

स[1]प्तादशेऽष्टादशे वा लोहिताङ्ग निवर्तिते।
निस्त्रिंशमुशलं नाम तद्वक्त्रं परिकीर्तितम्॥
पशुपुत्रधनं धान्यमाहरन्ते तु दस्यवः।
प्राणिनां जीवनं हन्ति जायते शस्त्रसम्भ्रमः॥

मङ्गल के सप्तदश अथवा अष्टादश नक्षत्र में वक्री होने पर असिमुसल नामक वक्त्र (मुख) कहा गया है। इसमें चोर पशु, पुत्र, धन और धान्यों का अपहरण कर लेते हैं। प्राणियों का जीवन नष्ट हो जाता है, तथा शस्त्रसंघर्ष होता है।

तथा च पराशरः–

सप्तदशेऽष्टादशे वा दस्युगणैः प्रजानामुपद्रवमवृष्टिं शस्त्रभयं च इति॥५॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :–

सप्तदश अथवा अष्टादशनक्षत्र में (वक्री मङ्गल) चोरों द्वारा प्रजा में उपद्रव तथा अनावृष्टि और शस्त्रभय उत्पन्न करता है॥५॥

अथात्रैव योगवशेन विशेषफलमाह :–

भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्तते वैश्वदैवते भौमः।
प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोकान्निपीडयति॥६॥

अब यहीं योगवशात् विशेष फल कहते हैं :–

यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्र अथवा उत्तराफाल्गुनीनक्षत्र में उदित होकर उत्तराषाढनक्षत्र में वक्री होता हो, तथा रोहिणीनक्षत्र में अस्त हो, तब तीनों लोकों को पीड़ित करता है॥६॥

भाग्यं पूर्वफल्गुनी। अर्यमा उत्तरफल्गुनी। भौमोऽङ्गारकोऽनयोरेकतरे यमुदितो भवति रविमण्डलनिर्गतः। ततोऽग्रतो वैश्वदैवते उत्तराषाढायां निवर्तते वक्रं करोति तथा प्राजापत्ये रोहिण्यामस्तमितो यदि भवति तदा त्रीनपि भूर्भुवःस्वराख्यांल्लोकान्निपीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः–

भाग्य अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, अर्यमा अर्थात् उत्तराफाल्गुनीनक्षत्र। मङ्गल इन दोनों में से किसी एक में उदित होता है, अर्थात् उत्तराषाढनक्षत्र में ही वक्री होता है, और प्राजापत्य अर्थात् रोहिणीनक्षत्र में यदि अस्त होता है, तो भूलोक, भुवः

---

१. द्रष्टव्याऽस्य ग्रन्थस्य २३३ पृष्ठे १ टिप्पणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोक और स्वर्लोक; इन तीनों लोकों को उत्पीड़ित करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

फल्गुन्यामुदयं कृत्वा वक्रं स्याद्वैश्वदैवते।
प्राजापत्ये प्रवासश्च त्रैलोक्यं तत्र पीड्यते॥इति॥६॥

फाल्गुनीनक्षत्र (पूर्वा एवं उत्तरा) में उदित होकर उत्तराषाढ़नक्षत्र में हो और रोहिणीनक्षत्र में अस्त हो, तब तीनों लोकों को पीड़ित करता है॥६॥

अन्यदपि विशेषमाह :–

श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्द्धाभिषिक्तपीडाकृत्।
यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति॥७॥

अन्य विशेष फल कहते हैं :–

यदि मङ्गल श्रवणनक्षत्र में उदित होकर पुष्यनक्षत्र में वक्री होता है, तब राज्याभिषिक्त राजाओं को पीड़ित करता है। जिस नक्षत्र में वह उदित होता है; उस नक्षत्र की दिशावाले लोगों का हनन करता है॥७॥

श्रवणस्थस्याङ्गारकस्यार्कमण्डलादुदितस्य यद्यग्रतः पुष्ये वक्रं भवति तदा मुर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञां पीडां करोति। तथा च पराशरः–

श्रवणनक्षत्र में स्थित मङ्गल के अर्थात् रविमण्डल से पृथक् उदित होकर आगे पुष्यनक्षत्र में वक्रगमन होता है, तब वह मूर्द्धाभिषिक्त राजाओं को पीड़ित करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

उदितः श्रवणे भौमः पुष्ये वक्रं चरेद्यदि।
मुर्द्धाभिषिक्ता राजानो विनश्येयुः परस्परम्॥

श्रवणनक्षत्र में उदित होकर मङ्गल यदि पुष्यनक्षत्र में वक्रगमन करता है, तो वह मूर्द्धाभिषिक्त राजाओं को परस्पर सङ्ग्राम द्वारा विनष्ट करता है।

यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदित इति। सूर्यमण्डलस्थो यस्मिन्नृक्षे यत्र नक्षत्रे स्थितोऽभ्युदितः सूर्यमण्डलादुद्गतस्तस्य नक्षत्रस्य या दिक् नक्षत्रकूर्मोक्ता यश्च तस्य व्यूहो नक्षत्रव्यूहोक्तस्तत्र ये जनास्तान् हन्ति घातयति। तथा च पराशरः–

सूर्यमण्डल से निकलकर मङ्गल जिस नक्षत्र का उदित होता है, नक्षत्र-कूर्म प्रकरण में कहे गये उस नक्षत्र के लोगों का विघात करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

यथा जनपदव्यूहे दिग्विभागः प्रदर्शितः।
तस्य वै मोहितं कुर्याल्लोहिताङ्गस्तथा मुखम्॥इति॥७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनपदों की रचना का निर्धारण और उनकी दिशाओं का विभाजन प्रदर्शित किया गया है, मङ्गल के उस नक्षत्र के मुखानुसार उन दिशाओं के लोगों को कष्ट होता है ॥७॥

अन्यदपि विशेषफलमाह :–

मध्ये न यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः।
पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः॥८॥

और भी विशेष फल कहते हैं :–

मङ्गल यदि मघानक्षत्र में स्थित होकर गमनागमन (वक्रानुवक्र) नहीं करता है, तब पाण्ड्यदेश का राजा विनष्ट होता है; तथा शस्त्रसंघर्ष का भय एवं अनावृष्टि होती है ॥८॥

लोहितोऽङ्गारको यदि चेन्मघानां मध्ये न गतागतं करोति स्पष्टगतेस्तन्मध्ये तारकाणां गत्वा पुनर्वक्रगतेरागमनं तन्मध्ये नैव करोति ततस्तस्माद्धेतोः पाण्ड्योनृपः पाण्ड्यदेशे यो राजा स विनश्यति विनाशमायाति। लोके च शस्त्रोद्योगाद्भयं भवति। शस्त्राणामुद्योगः संग्रामः। अवृष्टिरवर्षणं च भवति॥८॥

लोहित अर्थात् मङ्गल यदि मघानक्षत्रों के मध्य गमनागमन नहीं करता हो, अर्थात् स्पष्ट गति से उसके मध्य तारा में जाकर पुनः उनके मध्य वक्रगति से आगमन नहीं करता है, तब इस कारण से पाण्ड्यदेश का राजा विनाश को प्राप्त होता है। लोक में सशस्त्र संघर्ष से भय होता है। शस्त्रों का उद्योग अर्थात् संङ्ग्राम होता है। अवृष्टि अर्थात् अवर्षण (अनावृष्टि) होता है ॥८॥

अन्यदपि योगवशेनाह :–

भित्वा मघा विशाखां भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम्।
मरकं करोति घोरं यदि भित्त्वा रोहिणीं याति॥९॥

अन्य फल योगवशात् कहते हैं :–

मङ्गल मघानक्षत्र का भेदनकर विशाखानक्षत्र का भेदन करता हुआ गमन करे, तो दुर्भिक्षकारक होता है। यदि मङ्गल रोहिणीनक्षत्र का भेद कर जाता है, तब भयानक मृत्युकारक होता है ॥९॥

भौमोऽङ्गारको मघां भित्वा मघायोगतारकाभेदं कृत्वा यदि विशाखां भिन्दन् तामपि पुनर्भिनत्ति तदा दुर्भिक्षं क्षुद्भयं करोति। यदि रोहिणीं भित्वा याति रोहिण्या योगतारकभेदनं कृत्वा गच्छति तदा घोरं तीव्रं मरकं जनानां करोति विदधाति॥९॥

भौम मघा का भेदनकर अर्थात् मघानक्षत्र के योगतारा का भेदनकर पुनः विशाखा का भी भेदन करे, तब दुर्भिक्ष (भुखमरी) करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का भेदनकर अर्थात् रोहिणीनक्षत्र के योगतारा का भेदनकर आगे बढ़ जाता है, तब जनता के लिए तीव्र मरण उत्पन्न करता है ॥९॥

अन्यदप्याह :—

दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत् ।
धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्थान् ॥१०॥

और भी कहते हैं :—

मङ्गल रोहिणी नक्षत्र के दक्षिणी भाग से जाता है, तब मूल्य और वर्षा का नियन्त्रण करता है। यदि मङ्गल धूमवान् अथवा शिखासहित दिखायी पड़े, तो पारियात्रपर्वत पर स्थित लोगों का हनन करता है ॥१०॥

महीजोऽङ्गारको रोहिण्या दक्षिणतश्चरन् रोहिण्या योगतारकस्य दक्षिणभागेन गच्छन् अर्घस्य वृष्टेश्च निग्रहं करोति विनाशयतीत्यर्थः। अर्घस्य निग्रहः स्वल्पत्वम्। वृष्टेर्निग्रहश्चाभावः। धूमायन् सशिखो वेति। धूमायन् धूममुद्वहन् सशिखः सचूडो वा यदि दृश्यते तदा पारियात्रस्थान् विनिहन्यात्। पारियात्रः पर्वतः। तत्र स्थितान् जनान् हन्याद् घातयेत् ॥१०॥

महिज अर्थात् मङ्गल रोहिणी के दक्षिण भाग से चलता हुआ, अर्थात् रोहिणी-योगतारा के दक्षिणभाग से जाता हुआ अर्घ और वृष्टि का विनाश करता है। अर्घ का निग्रह अर्थात् स्वल्पता (वस्तुओं की कमी से मूल्यवृद्धि) और वृष्टि का निग्रह अर्थात् वर्षा का अभाव होता है। धूमायन अर्थात् धूएँ सहित तथा शिखासहित यदि दिखायी पड़ता है, तब पारियात्र नामक पर्वत पर स्थित लोगों का विघात करता है ॥१०॥

अथ भौमस्य वार्षिकाणि नक्षत्राण्याह :—

प्राजापत्ये श्रवणे मूले [1]त्रिषु चोत्तरेषु शाक्रे च ।
विचरन् घननिवहानामुपघातकरः क्षमातनयः ॥११॥

भौम रोहिणी, श्रवण, मूल और तीनों उत्तराओं तथा ज्येष्ठानक्षत्र में गमन करता है तो मेघसमूहों का अवरोधक (अवर्षणकारक) होता है ॥११॥

क्षमातनयोऽङ्गारकः प्राजापत्ये रोहिण्यां स्थितः श्रवणे मूले त्रिषु नक्षत्रेषूत्तरेषु उत्तरशब्द आदौ येषाम्। उत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदासु च। त्रिसृषूत्तरासु वा पाठः। शाक्रे ज्येष्ठायाम्। चशब्दः समुच्चये। एतेष्वेकतमे विचरन्निवसन् घननिवहानां मेघवृन्दानामुपघातकरो विनाशकर्ता भवत्यवृष्टिकृदित्यर्थः ॥११॥

क्षमातनय अर्थात् भौम (अङ्गारक) यदि प्राजापत्य अर्थात् रोहिणी नक्षत्र, श्रवण, मूल; इन तीन नक्षत्रों में तथा उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा , उत्तरभाद्रपदा इन तीनों

१. तिसृषूत्तरासु-इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तराओं में तथा शाक्र अर्थात् ज्येष्ठानक्षत्र इनसे किसी एक में स्थित होता है, तब मेघवृन्दों का विनाशकर्ता होता है। तात्पर्यार्थ यह है कि इस स्थिति में वर्षा नहीं होती है ॥११॥

अथास्य नक्षत्रेषु स्थितस्योदितस्य वा विशेषफलमाह :–

चारोदयाः प्रशस्ताः श्रवणमघादित्यहस्तमूलेषु।
एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येषु च कुजस्य ॥१२॥

अब इन नक्षत्रों में स्थित अथवा उदित मङ्गल का विशेष फल कहते हैं :–

मङ्गल का श्रवण, मघा, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा, रोहिणी; इन नक्षत्रों में गमन तथा उदित होना शुभ होता है ॥१२॥

"[1]यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति" तथा "[2]प्राजापत्ये श्रवण" इत्यस्यापवादोऽयम्। कुजस्याङ्गारकस्य श्रवणे मघायामादित्ये पुनर्वसौ हस्ते मूले एकपदायां पूर्वभद्रपदायामश्विन्यां विशाखायां प्राजापत्ये रोहिण्याम्। चशब्दः समुच्चये। एतेषु नक्षत्रेषु चारोदयाः। चारश्चरणमवस्थितिः। उदयः सूर्यमण्डलादुद्गमनम्। प्रशस्ताः शोभनाः। पूर्वोक्तमशुभफलमत्र न भवतीत्यर्थः ॥१२॥

"जिस नक्षत्र में उदित होता है, उससे सम्बद्ध दिशा के लोगों का विनाश करता है।" तथा "रोहिणी और श्रवण का" जो पूर्वोक्त फल निर्दिष्ट है, उसका यह अपवाद है। मङ्गल का श्रवण, मघा, पुनर्वसु, हस्त, मूल, एकपदा अर्थात् पूर्वभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा और सूर्यमण्डल से बहिर्गमन शुभ कहे गये हैं। अर्थात् पूर्वोक्त अशुभफल यहाँ पर नहीं होते हैं ॥१२॥

अथ वर्णलक्षणमाह :–

विपुलविमलमूर्त्तिः किंशुकाशोकवर्णः
स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः ।
विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥१३॥

अब मङ्गल का वर्णलक्षण कहते हैं :–

यदि मङ्गल विस्तृत, स्वच्छ, बिम्बवाला किंशुक तथा अशोकपुष्प के वर्ण का स्पष्ट मनभावन किरणोंवाला, तपे हुए ताँबे की कान्ति से युक्त होकर यदि स्वस्थित नक्षत्र के उत्तरदिशा में होता हुआ गमन करे, तो वह राजाओं के लिए शुभ है तथा प्रजा के लिए सन्तोषप्रदायक होता है ॥१३॥

---

१. अस्यैवाध्यायस्य ७ श्लोकः।
२. अस्यैवाध्यायस्य ११ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेदिनी भूस्तस्या जातो मेदिनीजोऽङ्गारको विपुलविमलमूर्तिः। विपुला विस्तीर्णा विमला निर्मला मूर्तिर्यस्य। तथा किंशुकाशोकवर्णः। किंशुकाशोकौ पुष्पविशेषौ अतिलोहितौ तत्सदृशवर्णः अतिलोहित इत्यर्थः। स्फुटरुचिरमयूखः। स्फुटा स्पष्टा रुचिरा दीप्तिमन्तो मयूखा रश्मयो यस्य। तप्तताम्रप्रभाभः। तप्तस्य गलितस्य ताम्रस्य यादृशी प्रभा कान्तिस्तत्तुल्या आभा बिम्बच्छाया यस्य। यदि चोत्तरं मार्गं विचरति यस्मिन्नक्षत्रे स्थितस्तस्योत्तरभागेन यदि याति तदाऽवनिपानां राज्ञां शुभकृत् श्रेयस्करः। प्रजानां लोकानां च हार्दिदस्तुष्टिदो भवति। तथा च पराशरः—

मेदिनी अर्थात् भूमि, इससे उत्पन्न को मेदिनीज अर्थात् मङ्गल विस्तीर्ण बिम्बवाला, निर्मल मूर्तिमान् किंशुक तथा अशोकपुष्प के सदृश अत्यधिक लालवर्ण का, स्पष्ट सुन्दर किरणोंवाला अर्थात् रुचिर प्रकाशवाला, तपे हुए ताम्र के सदृश आभायुक्त, द्रवित ताम्र के सदृश कान्ति (बिम्बछाया) के सदृश; यदि जिस नक्षत्र में स्थित होता है, उसके उत्तरभाग में जाता है; तब राजाओं के लिए श्रेयस्कर होता है। तथा च लोक के लिए तुष्टिदायक होता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

वर्णरश्मिप्रभाप्रमाणतेजोयुक्त उदग्मार्गगः स्नेहवान् सर्वलोकहितायापि च।
प्रदक्षिणगतिः कान्तः स्निग्धश्च कलशोपमः।
तप्तकाञ्चनसङ्काशो भवेल्लोकविवृद्धये॥

वर्ण, किरण, कान्ति, प्रमाण और तेज से युक्त (मङ्गल) उत्तरभाग से जाता हुआ स्नेहकारक और सभी लोकों के लिए कल्याणकारक होता है।

प्रदक्षिणाक्रम से गति करता हुआ सुन्दर कान्तिवाला, स्निग्ध, कलश-सदृश तपे हुए स्वर्ण के समान मङ्गल लोक के लिए वृद्धिकारक होता है।

अन्ये एवं व्याचक्षते :— यथा भरण्यादिमघान्तमुत्तरो मार्गस्तत्र यदा विचरति तदावनिपानां शुभकृत् प्रजानां च हार्दिदः।

अन्य लोग इस प्रकार से व्याख्या करते हैं :—

भरणी आदि से प्रारम्भकर मघा नक्षत्र पर्यन्त उत्तरमार्ग होता है। इसमें जब मङ्गल गमन करता है, तब राजाओं के लिए शुभकारक और प्रजा के लिए सन्तोषदायक होता है।

तथा च गर्ग :—

याम्यादिपितृपर्यन्तं नवर्क्षं मार्गमुत्तरम्।
भाग्यादिनैर्ऋतान्तं तु मध्यमं मार्गमुच्यते॥
आषाढाद्याश्विनान्तं तु दक्षिणं समुदाहृतम्।
सौम्यमार्गस्थितो भौमः प्रजानामुपकारकः॥
मध्यमे मध्यफलदो याम्ये तु भयदः स्मृतः॥ इति॥ १३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि गर्ग ने कहा है :-

भरणी से मघापर्यन्त ९ नक्षत्र उत्तरमार्गी होते हैं। पूर्वाफाल्गुनी से मूलनक्षत्र तक मध्यममार्ग कहा जाता है। पूर्वाषाढ से अश्विनी नक्षत्र तक दक्षिणमार्ग कहा गया है। उत्तरमार्ग में स्थित मङ्गल जनता का उपकारक होता है। मध्यममार्गी नक्षत्रों में मध्यम फलदायक तथा दक्षिणमार्गी नक्षत्रों में भयदायक कहा गया है ॥१३॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ भौमचारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृतिमें भौमचार नामक षष्ठ अध्याय ॥६॥

●

अथ सप्तमोध्यायः

अथ बुधचारोनाम व्याख्यायते। तत्रादावेव बुधस्योदितस्य फलमाह :-

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम्।
जलदहनपवनभयकृद् धान्यार्घक्षयविवृद्धौ वा ॥१॥

अब बुधचार की व्याख्या करते हैं :-

पहले बुध के उदय होने का फल कहते हैं :-

बुध कभी भी उत्पात को छोड़कर उदित नहीं होता है, अर्थात् इसके उदय होने से उत्पात होते ही हैं। यह उदित होकर जल, अग्नि और वायु से भय प्रदान करता है। तथा धान्यों का विनाश और मूल्यों में ह्रास तथा वृद्धि (असमानता) करता है ॥१॥

चन्द्रजो बुध उत्पातपरित्यक्त उत्पातविरहितो न कदाचिदपि न जात्वप्युदयं सन्दर्शनं व्रजति गच्छति। अपि तु यदा यदोद्गच्छति तदा तदा सोत्पातरूप एवेति। किमुत्पातं करोति। जलदहनपवनभयकृत्। जलमुदकम्, दहनोऽग्निः, पवनो वायुः, एभ्यो भयं करोति। तथा धान्यार्घस्य क्षयाय भवति। विवृद्धये विवृद्धये च भवति। बहुमूल्यता अर्घवृद्धिः, स्वल्पमूल्यता अर्घक्षयः। तथा च समाससंहितायाम् :-

उदयं याति शशिसुतो नोत्पातविवर्जितः कदाचिदपि।
पवनाग्निसलिलभयदो धान्यार्घवृद्धिक्षयकृद्वा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रज अर्थात् बुध कभी भी उत्पातरहित होकर उदित नहीं होता है। अपितु जब-जब उदित होता है, तब-तब उत्पातरूप ही आता है। क्या उत्पात करता है ? जल, अग्नि और वायु; इससे भय करता है। तथा धान्य-मूल्य का क्षयकारक होता है और वृद्धिकारक भी होता है। बहुमूल्यता को अर्घवृद्धि तथा अल्पमूल्यता को अर्घक्षय कहते हैं। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :-

बुध उत्पातरहित होकर कभी भी उदित नहीं होता है। यह वायु, अग्नि और जल से भयदायक तथा धान्यमूल्यों के क्षय एवं वृद्धि का कारक होता है।

ननु जलदहनादिभिरुत्पातैः परित्यक्तश्चन्द्रजः कदाचिदप्युदयं नो गच्छति। किमेतेषां जलदहनादीनामन्यतम उत्पातसमेत उदयं करोति किं वा सर्वैरेव युक्त इत्यत्रोच्यते :-

यदि यह बुध जलदहनादि उत्पातों को छोड़कर कभी भी उदित नहीं होता है, तो क्या जल, अग्नि आदि किसी एक उत्पात के साथ उदित होता है, अथवा इन सभी उत्पातों के साथ ही उदित होता है ? इस सम्बन्ध में कहते हैं :-

येनोत्पातेन सहास्तगस्तत्प्रतिलोमगश्चन्द्रज उदयं याति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह :-

अवर्षे कुरुते वर्षं वर्षे वर्षं न गच्छति।
भये च कुरुते क्षेमं सर्वत्र प्रतिलोमगः॥

जिस उत्पात के साथ अस्त होता है, उससे वक्री होकर उदित होता है। इसी अर्थ को वृद्धगर्ग ने कहा है :-

वक्रीगत बुध अवर्षण में वर्षा, वर्षा में अवर्षण तथा भय में शुभ, सभी जगह करता है।

उदयोक्तं फलमेतद्विशेषतश्चारजं फलं ब्रूयात्। तथा च कश्यपः-

नाकस्माद्दर्शनं याति विनोत्पातेन सोमजः।
भयवातातपहिमैरर्घवृद्धिक्षयादिभिः ॥इति॥१॥

उदय काल में कहा हुआ यह फल विशेषतया सामान्यगति का फल कहना चाहिए। जैसाकि कश्यप ने कहा है :-

बुध उत्पातरहित कभी भी अकस्मात् दृष्ट नहीं होता है। भय, वायु, आतप (धूप), हिम (ओला) और मूल्यों की वृद्धि तथा क्षय आदि के साथ ही दृष्ट होता है॥१॥

अधुना नक्षत्रावस्थितस्य बुधस्य फलमाह :-

विचरन् श्रवणधनिष्ठाप्रजापत्येन्दुवैश्वदेवानि।
मृद्नन् हिमकरतनयः करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम्॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब नक्षत्रों में स्थित बुध का फल कहते हैं :–

श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा और उत्तराषाढा; इन नक्षत्रों में गमन करता हुआ बुध लोगों का मर्दन करता हुआ अनावृष्टि तथा रोगभय को उत्पन्न करता है ॥२॥

श्रवणम्। धनिष्ठा। प्राजापत्यं रोहिणी। इन्दुर्मृगशिरः। वैश्वदेवमुत्तराषाढा। हिमकरश्चन्द्रस्तत्तनयो बुधः। एतानि नक्षत्राणि। विचरन्निवसन्नेतेषामन्यतमस्य मृद्नन्नुपमर्दयन् विचरति। मर्दनं भेदः। तदा अवृष्टिमवर्षणं सरोगभयां गदभीत्या सहितां करोति। मर्दनमत्र श्रवणमध्यात् केषाञ्चित् सम्भवति केषाञ्चिन्न सम्भवति। आचार्येणोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारेणेति। तथा च कश्यपः–

रोहिणीं वैश्वदेवं च सौम्यवैष्णववासवान्।
शशिजश्च यदा हन्ति प्रजा रोगैश्च पीडयेत् ॥ इति ॥ २॥

श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, उत्तराषाढा; इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में स्थित होता हुआ बुध विचरण करता है, तब अवर्षण तथा रोगभय उत्पन्न होता है। यहाँ पर नक्षत्रों का मर्दन श्रवणादि के मध्य किसी नक्षत्र में होता है और किसी में नहीं होता है। आचार्य ने प्राचीन शास्त्रों के अनुसार ही यह कहा है। जैसाकि आचार्य कश्यप ने कहा है :–

रोहिणी, उत्तराषाढ, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा; इन नक्षत्रों को जब बुध अपमर्दित करता है, तब प्रजा रोगों से पीड़ित होती है ॥२॥

अन्येषु नक्षत्रेष्वाह :–

रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः ॥ ३॥

अन्य नक्षत्रों के फल :–

आर्द्रानक्षत्र से मघा नक्षत्र पर्यन्त बुध के होने पर प्रजा को पीड़ा, शस्त्रसंघर्ष, भुखमरी, रोग और अनावृष्टि से सन्ताप होता है ॥३॥

रौद्रमार्द्रा तदादीनि मघान्तानि पञ्च नक्षत्राणि। आर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघाश्चेति। चन्द्रजे उपाश्रिते व्यवस्थिते तानि चोपमृद्नन् यदि विचरति तदा प्रजानां पीडा भवति। कैः शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः। शस्त्रनिपातेन युद्धेन। क्षुद्भयेन दुर्भिक्षभीत्या। रोगैर्गदैः। अनावृष्ट्या अवर्षणेन। सन्तापेनोपतापेन च। तथा च कश्यपः–

आर्द्रा से मघा तक पाँच नक्षत्र, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा; इन नक्षत्रों में बुध उपस्थित होकर मर्दन करता हुआ गमन करता है, तब प्रजा को पीड़ा होती है। किससे ? शस्त्रसम्पात, क्षुधाभय, रोग और अनावृष्टि आदि के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्तापों से। शस्त्रनिपात अर्थात् युद्ध, क्षुधाभय अर्थात् दुर्भिक्ष भय, रोग (गद), अनावृष्टि (अवर्षण) और सन्ताप अर्थात् उपताप से पीड़ा होती है। जैसाकि आचार्य कश्यप ने कहा है :–

रौद्रादीनि यदा पञ्च नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
भिनत्ति शस्त्रदुर्भिक्षव्याधिभिः पीड्यते जगत्॥इति॥३॥

बुध आर्द्रा आदि पाँच नक्षत्रों का जब भेदन करता है, तब शस्त्र, दुर्भिक्ष और रोगों से संसार को पीड़ित करता है॥३॥

अन्येष्वाह :–

हस्तादीनि चरन् षड्ऋक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः।
स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम्॥४॥

अन्य नक्षत्रों के फल :–

हस्त आदि छः नक्षत्रों को पीड़ितकर गमन करता हुआ बुध गायों के लिए अशुभ, तैल आदि द्रव्यों तथा रसों के मूल्य का वृद्धिकारक और पृथ्वी पर प्रचुर अन्नप्रदायक होता है॥४॥

हस्तादीनि षड् नक्षत्राणि हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठा इति। एतानि षड् नक्षत्राणि विचरन् बुध एतेषु व्यवस्थितस्तथोपपीडयन् योगतारकां भिन्दन् गवामशुभो भवति, गाः हन्ति। स्नेहानां तैलघृतानाम्। रसानां मधुरादीनामर्घवृद्धिं सामर्घ्यम्। तथोर्वीं भूमिं प्रभूतान्नां पर्याप्तसस्यां करोति। तथा च कश्यपः–

हस्तादीनि चरन् षड् वै नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
गवामशुभदः प्रोक्तः सुभिक्षक्षेमकारकः॥ इति॥४॥

जब हस्त आदि छः नक्षत्र– हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा; इन छः नक्षत्रों में विचरण करता हुआ बुध, इनको उत्पीड़ित करता हुआ अर्थात् इनके योगतारा का भेदन करता है, तब गायों के लिए अशुभ होता है (गायों की मृत्यु होती है)। स्नेह अर्थात् तैल और घृत आदि का तथा मधुरादि रसों की मूल्यवृद्धि करता है। तथा पृथ्वी को पर्याप्त सस्यों से परिपूर्ण (अन्नमय) करता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

हस्त आदि छः नक्षत्रों में चलता हुआ बुध गायों के लिए अशुभ कहा गया है, तथा सुभिक्ष (सुकाल) और क्षेम (कल्याण) कारक होता है॥४॥

अन्येष्वाह :–

आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशं च।
चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसंक्षयकृत्॥५॥

पुस्तकालय
Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य नक्षत्रों के फल :–

जब उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा और भरणी; इन नक्षत्रों का भेदनकर बुध गमन करता है, तब वह प्राणियों की धातुओं का विनाश करता है ॥५॥

आर्यम्णमुत्तरफल्गुनी। हौतभुजं कृत्तिकाः। हुतं भुक्त इति हुतभुगग्निस्तस्येदं हौतभुजम्। भद्रपदा उत्तरा उत्तरभद्रपदा। यमेशं भरणी। चशब्दः समुच्चये। एतानि नक्षत्राणि चन्द्रस्य सुतो बुधो निघ्नन्नुपमर्दयन् प्राणभृतां देहिनां धातूनां संक्षयं विनाशं करोति। वसासृङ्मांसमेदास्थिमज्जाशुक्राणि धातव इति। तथा च कश्यपः–

भरणी - कृत्तिकार्यम्णमहिर्बुध्नं च चन्द्रजः।
चरन् धातुविनाशाय प्राणिनां परिकीर्तितः॥ इति॥५॥

आर्यम्ण अर्थात् उत्तराफाल्गुनी, हुतभुज अर्थात् कृत्तिका। हुत अर्थात् प्रदत्त पदार्थ का भोग करने वाला, हुतभुक्, अग्नि होती है। हुतभुक् से सम्बन्धित "हौतभुज" शब्द अग्नि के लिए निष्पन्न होता है। उत्तरभाद्रपदा और यमेश अर्थात् भरणी; इन सभी नक्षत्रों में चन्द्रपुत्र बुध भेदन करता हुआ जीवों की धातु का क्षय (विनाश) करता है। वसा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र; ये सात धातुएँ होती हैं। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

भरणी, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी तथा रोहिणीनक्षत्रों में गति करता हुआ बुध प्राणियों का धातुविनाशक कहा गया है ॥५॥

अन्येष्वप्याह :–

आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुतः।
पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकरः ॥६॥

अन्य नक्षत्रों के फल कहते हैं :–

अश्विनी, शतभिषा, मूल और रेवतीनक्षत्र का भेदन करता हुआ बुध व्यापारी, चिकित्सक, नाविक जलीय-उत्पाद और अश्वों का विघातक होता है ॥६॥

आश्विनमश्विनी, वारुणं शतभिषक्, मूलम्। एतानि नक्षत्राणि तथा रेवतीं च चन्द्रसुतो बुधश्चरन् तथोपमृद्नन् पण्यजीविनां पण्यवृत्तीनां वणिक्प्रभृतीनाम्। भिषजां वैद्यानाम्, नौजीविकानां नाविकानाम्, सलिलजानां जलोत्पन्नानां द्रव्याणां मुक्ताफलादीनाम्, तुरगाणामश्वानामुपघातं करोति नाशकर्ता भवति। तथा च कश्यपः–

रेवतीं वारुणं मूलमश्विनीं चोपमर्दयन्।
बुधो वणिग्भिषग्वाहान् जलोत्थांश्च विनाशयेत्॥ इति॥६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्विनी, शतभिषा, मूल; इन नक्षत्रों को तथा रेवती को अपमर्दितकर चलता हुआ चन्द्रसुत बुध वणिक् आदि, क्रय-विक्रय से आजीविका चलानेवाले व्यवसायियों का, वैद्यों का, नाविकों का तथा जल में उत्पन्न होने वाले मोती आदि द्रव्यों का और अश्वों का विनाशकर्ता होता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

रेवती, शतभिषा, मूल, अश्विनी नक्षत्रों का अपमर्दन करता हुआ बुध व्यापारी, चिकित्सक, वाहन और जलोत्पन्न पदार्थों का विनाश करता है ॥६॥

अन्येष्वाह :–

पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकमपीन्दोः सुतोऽभिमृद्नीयात्।
क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी चरन् जगतः॥७॥

अन्य नक्षत्रों के फल :–

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा; इन तीन नक्षत्रों में से किसी एक का भी भेदन करता हुआ बुध संसार के लिए क्षुधा, शस्त्र, तस्कर और रोगभय का प्रदायक होता है ॥७॥

पूर्वशब्द आदिर्यस्य तत्पूर्वाद्यृक्षत्रितयम् :–पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभद्रपदेति। अस्मान्नक्षत्रत्रितयादिन्दोः सुतो बुधश्चरन्नेकमभिमृद्नीयात् पीडयेत् तदा जगतो लोकस्य क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी भवति। क्षुद् दुर्भिक्षम्, शस्त्रं संग्रामः, तस्कराश्चौराः, आमयो रोगः। एभ्यो भयं भीतिं प्रददाति तच्छीलः। तथा च कश्यपः–

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो भेदं कृत्वा यदि व्रजेत्।
क्षुच्छस्त्रतस्करभयैः करोति प्राणिनां वधम्॥इति॥७॥

पूर्व शब्द जिसके आदि में हो, ऐसे तीन नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद; इन तीन नक्षत्रों का भेदन करता हुआ बुध संसार को बुभुक्षा अर्थात् दुर्भिक्ष, शस्त्र-सङ्ग्राम, चोर और रोग; इनसे भय देता है। जैसाकि कश्यप ने कहा है :–

तीनों पूर्वा नक्षत्रों का भेदन करता हुआ बुध गमन करता है, तो अकाल, युद्ध और चोरों के भय से प्राणियों का संहार करता है ॥७॥

अथ बुधस्य सप्तगतय उक्ताः पराशरतन्त्रे। तासां च तन्मतेनैव नामान्याह :–

पराशरतन्त्रानुसार बुध की सात गतियाँ :–

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः।
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः॥८॥

प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्त, घोर और पाप संज्ञक सात प्रकार की गतियाँ नक्षत्रों की पराशरतन्त्र में कही गयी हैं ॥८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राकृता, विमिश्रा, संक्षिप्ता, तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा, पापाख्या, एताः सप्तगतयः पराशराख्ये तन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता उक्ताः॥८॥

पराशरतन्त्र में नक्षत्रों की सात गतियाँ– प्राकृता, विमिश्रा, संक्षिप्ता, तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा, और पापनामिका कही गयी हैं॥८॥

अथैतासां नक्षत्रवशेन नामान्याह :–

प्राकृतसंज्ञा वायव्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च।
मिश्रा गतिः प्रदिष्टा शशिशिवपितृभुजगदेवानि॥९॥
संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति।
तीक्ष्णायां भद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम्॥१०॥
योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गतिः सुतस्येन्दोः।
घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदैवं वारुणं चैव॥११॥
पापाख्या सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति।

अब इनकी नक्षत्रानुसार संज्ञा कहते हैं :–

स्वाती, भरणी, रोहिणी, कृत्तिका; इनकी प्राकृतसंज्ञा है। मृगशिरा, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा; इन नक्षत्रों की मिश्रा नामक गति है। पुष्य, पुनर्वसु, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा एवं उत्तरा); इनकी संक्षिप्ता संज्ञा है। दोनों भाद्रपदा (पूर्वा एवं उत्तरा), ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती; इनकी तीक्ष्णा संज्ञा है। मूल, दोनों आषाढा इनकी योगन्तिका संज्ञा है। श्रवण, चित्रा, वसुदेव, शतभिषा; इनकी घोरा संज्ञा है, तथा हस्त, अनुराधा, विशाखा की पापनामिका संज्ञा है॥९-११॥

प्राकृतसंज्ञेति। वायव्यं स्वाती, याम्यं भरणी, पैतामहं रोहिणी, बहुलाः कृत्तिकाश्चैतानि नक्षत्राणि प्राकृतसंज्ञा गतिः। एतेषां नक्षत्राणामन्यतमे स्थितो बुधः प्राकृतगत्या स्थितो भवति।

वायव्य अर्थात् स्वाती, याम्य (भरणी) पैतामह (रोहिणी), बहुला (कृत्तिका); इन नक्षत्रों की प्राकृतसंज्ञा है। इन नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र में स्थित बुध प्राकृता गति का होता है।

मिश्रा गतिरिति। शशिदेवो मृगशिरः, शिवदेव आर्द्रा, पितृदेवो मघा, भुजगदेव आश्लेषा, एतानि नक्षत्राणि बुधस्य मिश्रा नाम्नी गतिः प्रदिष्टा उक्ता।

शशिदेव (मृगशिरा), शिवदेव (आर्द्रा), पितृदेव (मघा), भुजगदेव (आश्लेषा); ये नक्षत्र बुध की मिश्रा नामक गतिवाली कही गयी हैं।

संक्षिप्तायामिति। पुष्यः पुनर्वसुः, फल्गुनीद्वयं पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी एतानि नक्षत्राणि संक्षिप्तायां गतौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुष्य, पुनर्वसु, दोनों फाल्गुनी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी; इन नक्षत्रों की संक्षिप्ता गति होती है।

तीक्ष्णायामिति। भद्रपदाद्वयं पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे, शाक्रं ज्येष्ठा, अश्वयुगश्विनी, पौष्णं रेवती, तच्च सशाक्राश्वयुक् शाक्रेणाश्वयुजा च सह पौष्णमित्यर्थः। एतानि नक्षत्राणि तीक्ष्णायां गतौ।

दोनों भाद्रपदा अर्थात् पूर्वभाद्रपदा एवं उत्तरभाद्रपदा, शाक्र (ज्येष्ठा), अश्वयुक् (अश्विनी), पौष्ण (रेवती); इन नक्षत्रों में गतिमान बुध की तीक्ष्णा गति होती है।

योगान्तिकेति। मूलम्, द्वे आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढे एतानि नक्षत्राणि इन्दुसुतस्य बुधस्य योगान्तिका नाम्नी गतिः।

मूलनक्षत्र, दोनों आषाढा अर्थात् पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा; इन नक्षत्रों में बुध की योगान्तिका नामक गति होती है।

घोरेति। श्रवणम्, त्वाष्ट्रं चित्रा, वसुदैवं धनिष्ठा, वारुणं शतभिषग्, एतानि नक्षत्राणि घोरा नाम्नी गतिः॥

श्रवण, त्वाष्ट्र (चित्रा), वसुदेव (धनिष्ठा) वरुण (शतभिषा); इन नक्षत्रों में घोरा नामक गति होती है।

पापाख्येति। सावित्रं हस्तः, मैत्रमनुराधा, इन्द्राग्निदैवतं विशाखा, एतानि नक्षत्राणि पापा नाम्नी गतिः। इतिशब्दः प्रकाराय। तथा च पराशरः—

अथास्य गतयः सप्त च प्राकृता विमिश्रा संक्षिप्ता तीक्ष्णा घोरा पापा योगान्तिका च। तत्र प्राकृता याम्याग्नेयरोहिणीवायव्यानि। मिश्रा सौम्यार्द्रा मघाश्लेषा च। संक्षिप्ता पुष्यार्यम्णभाग्यादित्यानि। तीक्ष्णा अजपादतश्चत्वारि ज्येष्ठा च। घोरा त्रीणि श्रवणादीनि त्वाष्ट्रं च। पापा सावित्रेन्द्राग्निमैत्राणि। योगान्तिका मूलमाषाढे॥९-११॥

सावित्र (हस्त), मैत्र (अनुराधा), इन्द्राग्निदैवत (विशाखा); इन नक्षत्रों में पापा नामक गति होती है। यहाँ पर "इति" शब्द विविध प्रकार की गतियों हेतु प्रयुक्त है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

प्राकृता, विमिश्रा, संक्षिप्ता, तीक्ष्णा, घोरा, पापा और योगान्तिका नामक इसकी (बुध की) सात गतियाँ होती हैं। इसमें भरणी, कृतिका, रोहिणी, स्वाती की प्राकृता गति, मृगशिरा, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा; इनकी मिश्रा गति, पुष्य, पुनर्वसु, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा और उत्तरा); इनकी संक्षिप्ता गति, दोनों भाद्रपदा (पूर्वा और उत्तरा), ज्येष्ठा, अश्विनी, रेवती; इनकी तीक्ष्णा गति, मूल, और दोनों आषाढा; इनकी योगान्तिका गति; श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा; इनकी घोरा गति तथा हस्त, अनुराधा, विशाखा; इनकी पापा नामक गति होती है॥९-११॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ पराशरमतेनाऽऽसामेवोदयास्तलक्षणमाह :—

उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह ॥१२॥
चत्वारिंशत्४० त्रिंशद्३० द्विसप्तेता विंशति२२ र्द्विनवकं च१८।
नव९ मासार्द्धं१५ दश चैकसंयुताः११ प्राकृताद्यानाम् ॥१३॥

पराशर के मत से नक्षत्रों के उदयास्त का लक्षण :—

उदय तथा प्रवास दिनों के साथ उन्होंने ही (पराशर ने) गतियों का लक्षण निरूपित किया है। प्राकृता आदि पूर्वोक्त नक्षत्रों में क्रमशः ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ दिनों तक उदय तथा अस्त रहता है ॥१२-१३॥

स एव पराशरमुनिर्गतिलक्षणं प्राह :—

उदयदिवसैः प्रवासदिवसैः। उदयः सूर्यमण्डलान्निर्गमः। प्रवासस्तत्रैवास्तमयः। तैश्च दिवसैर्गतिलक्षणं प्राहोक्तवान्।

पराशर मुनि ने गति का लक्षण इस प्रकार किया है :—

पराशर मुनि ने गति का, उदय दिनों का तथा प्रवासदिनों का लक्षण (निर्धारण) किया है। सूर्यमण्डल से निर्गमन को उदय तथा अस्त होने को प्रवास कहा जाता है। इन उदयास्त दिनों के अनुसार गतिलक्षण कहा गया है :—

चत्वारिंशदिति। एतानि चत्वारिंशदादीनि प्राकृताद्यानां गतीनामुदये प्रवासे च प्रमाणम्। तद्यथा :—

प्राकृतायां गतौ यदि बुधः स्थित उदेति तदा चत्वारिंश४०द्दिनान्युदित एव तिष्ठति। अथास्तमेति तदा चत्वारिंश४०द्दिनान्यस्तमित एव तिष्ठति। एवं मिश्रायां त्रिंशत् ३०। संक्षिप्तायां द्विसप्तेता विंशतिर्द्वाविंशतिः २२। तीक्ष्णायां द्विनवकमष्टादश १८। योगान्तिक्यां नव९। घोरायां पञ्चदश१५। पापाख्यां च दश चैकसंयुता एकादश११ दिनानीति। यद्यपि गणितबासनयैतन्नोपपद्यते तथापि पराशरमङ्गीकृत्याऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च पराशरः —

अथ [1]चत्वारिंशत्त्रिंशद्द्वाविंशत्यष्टादशपञ्चदशैकादशनवरात्राणि गतिक्रमादुदितोऽभिदृश्यते तान्येवास्तमितो भवति। उष्णशीतवाय्वभ्रसूर्येन्दुग्रहणायोदयति सस्यविघाताय चेति॥

ये ४० दिनादि प्राकृतादि गतियों के उदय और अस्त के प्रमाण हैं। जैसाकि :—

प्राकृतागति में स्थित होकर यदि बुध उदित होता है, तब ४० दिनों तक उदित ही रहता है। यदि इनमें अस्त होता है, तब ४० दिनों तक अस्त ही रहता है। इस प्रकार मिश्रागति में ३०, संक्षिप्ता में २२, तीक्ष्णा में द्विगुणित ९ अर्थात् १८, योगान्तिका में ९, घोरा में १५ और पापानामिका गति में ११ दिनों तक रहता है। यद्यपि गणितीय सूत्रों से यह उपपन्न नहीं होता है, तथापि पराशर के मत को सम्मान देते हुए आचार्य ने कहा है। जैसाकि पराशर का कथन है :—

---

१. अत्रैवोपरिस्थे पराशरवचने यथा गतिक्रमस्तत्क्रमेणैवात्र दिवसाः पठिताः सन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुध क्रमशः ४०, ३०,२२, १८, १५, ११ और ९ दिनों तक गतिक्रम से उदित देखा जाता है, तथा इतने ही दिनों में अस्त होता है। उष्ण, शीत, वायु, मेघ तथा रवि-चन्द्र के ग्रहण के लिए, साथ ही सस्यों के विनाश के लिए उदित होता है।

न केवलं पराशरेणोक्तं यावद् गर्गादिभिरपि। तथा च वृद्धगर्गः—

चत्वारिंशत्प्राकृतायां गतावालक्ष्यते बुधः।
मासमेकं विमिश्रायां दर्शयित्वास्तमर्हति॥
अह्नां द्वाविंशतिं सार्द्धं संक्षिप्तामेत्य लक्ष्यते।
अष्टादशाहं तीक्ष्णायां घोरायां दश पञ्च च॥
पापायां पादहीनानि तथैकादश तिष्ठति।
योगान्तिक्यामिन्दुसूनुर्नवाहं लक्ष्यते तथा॥
चारकालो य एवोक्तः सोमपुत्रस्य भागशः।
अस्तकालः स एव स्यात् सूर्यमण्डलचारिणः॥

यह कथन केवल पराशर का ही नहीं है, अपितु गर्गादि मुनियों ने भी ऐसा कहा है। जैसाकि वृद्ध गर्ग का कथन है:—

बुध प्राकृतागति में ४० दिनों तक तथा विमिश्रा में एक मास तक उदयोपरान्त अस्त होता है। २२१/२ दिनों तक संक्षिप्ता में, १८ दिन तीक्ष्णा में, १५ दिन घोरा में, चतुर्थांश रहित अर्थात् ११ दिन पापागति में और योगान्तिका में ९ दिनों तक बुध परिलक्षित होता है। यह बुध का क्रमशः गतिकाल कहा गया है। साथ ही रविबिम्बप्रदेश के सामीप्य से बुध का अस्तकाल भी उतना ही होता है।

तथा च कश्यपः—

चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्दिनानि द्वौ च विंशतिः।
अष्टादशार्द्धमासं च दश चैकयुतानि च॥
नव च प्राकृताद्यासु सोमजस्तूदितस्तथा।
अस्तं गतः सर्वकालं तिष्ठतीति विनिश्चयः॥

जैसाकि कश्यप ने कहा है:—

सोमपुत्र बुध के प्राकृता आदि गतियों में क्रमशः ४०, ३०, २२, १८, १५ ११ और ९ दिनों तक उदय तथा अस्तकाल का विनिश्चय किया गया है।

आचार्यस्यैतत्राभिमतम्। यतः समाससंहितायामनेनैवोक्तम्:—

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः ।
गतयो लक्षणमासां नोदयदिवसैः स्फुटं भवति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पष्टा पराशरमते स्वाती च प्राकृता त्रिभं याम्यात्।
मिश्रा गतिः शशिशेखरभुजगपितृदेवतासौम्यैः॥
संक्षिप्ता नाम गतिः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं पुष्यः।
तीक्ष्णा भद्रपदाद्यं नत्रक्षचतुष्टयं ज्येष्ठा॥
मूलऋक्षं योगा घोरा श्रवणत्रिभं च सत्वाष्ट्रम्।
पापाख्या तु विशाखा हस्तो मैत्रं च शशिसूनोः॥इति॥१२-१३॥

आचार्य का यह अभिमत नहीं है, क्योंकि समाससंहिता में इनके द्वारा ही कहा गया है: –

प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्त, घोर और पापसंज्ञक गतियों का लक्षण जो कहा गया है, वह बुध के उदय दिनों से स्पष्ट नहीं होता है। पराशर के मतानुसार स्पष्ट है कि स्वातीनक्षत्र और भरणीनक्षत्र से तीन नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी) प्राकृता तथा मृगशिरा, आर्द्रा, मघा और आश्लेषा उत्तराफाल्गुनी की संक्षिप्तागति; पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती की तीक्ष्णागति; पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ और मूल की योगा गति; श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषा की घोरा गति और विशाखा, हस्त, अनुराधा, इनकी पापा गति होती है॥१२-१३॥

अथैतासां फलान्याह :–

प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धयः क्षेमम्।
संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम्॥१४॥

अब इनके फल कहते हैं :–

प्राकृतासंज्ञक गति में आरोग्य, वृष्टि, सस्यों की अच्छी उपज और कल्याण होता है। संक्षिप्ता और मिश्रा गतियों में इन फलों का मिश्रित प्रभाव होता है, तथा अन्य गतियों में विपरीत फल जानना चाहिए॥१४॥

प्राकृतगत्यां स्थिते बुधे आरोग्यं नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, प्रकृष्टा अभिप्रभूता सस्यानां वृद्धिरेतानि भवन्ति, तथा लोके क्षेमं च भवति। संक्षिप्तमिश्रयोर्द्वयोर्गत्योरेतदेव पूर्वोक्तं फलं मिश्रम्। आरोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धयः क्षेमं च मध्यं भवति। अन्यासु परिशेषासु तीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्यासु विपरीतम्। अनारोग्यमनावृष्टिः सस्यानामवृद्धिरक्षेममिति। तथा च पराशरः–

तासां प्रथमा गतिः क्षेमारोग्याम्बुसस्यवती। इतरे द्वे व्यामिश्रफले। शेषाश्चतस्रो दुर्भिक्षाक्षेमाय। विशेषतस्तु सौम्यादिषड्नक्षत्रचारी सुवृष्टये। श्रविष्ठावारुणयोश्च। दक्षिणतो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नैर्ऋतिन्द्रपूर्वासु भयकृत्। अश्विन्यां वणिग्विनाशाय। त्वाष्ट्रे शरत्सस्यानाम्। रोहिणीश्रवणाग्नेयब्रह्मराशिष्वम्भोदविनाशः। हस्तोदितो मैत्रमनुचरन् पशुगोकोशलानभिहन्ति। विशाखामध्यगश्च सस्यमिति। तथा च गर्गः—

क्षेमारोग्यसुभिक्षेषु लक्षणा प्राकृता गतिः।
संक्षिप्ता च विमिश्रा च शुभाशुभफलोदये॥
तीक्ष्णा घोरा च पापा च तथा योगान्तिकापरा।
एताश्चतस्रः सौम्यस्य दुर्भिक्षाक्षेमलक्षणाः॥इति॥१४॥

प्राकृतगति में बुध के स्थित होने पर निरोगता, वर्षा, सस्यों की प्रचुर वृद्धि तथा लोक में कल्याण होता है। संक्षिप्ता तथा मिश्रा, इन दोनों गतियों में ये पूर्वोक्त फल मिश्रित रूप में होते हैं। इनमें आरोग्य, वृष्टि, सस्यों की वृद्धि और मध्यम कल्याण होता है। अन्य शेष तीक्ष्णा, योगान्ता, घोरा और पापा संज्ञक गतियों में विपरीत फल होता है। अनारोग्य और अवर्षण तथा सस्यों की वृद्धि और अकल्याण होता है, यह अभिप्राय है। जैसाकि पराशर ने कहा है:—

इनमें से प्रथमा गति (प्राकृता गति) क्षेम, आरोग्य तथा जल और सस्यप्रदायिका होती है। अन्य दोनों गतियाँ मिश्रित फलवाली होती हैं। शेष चार दुर्भिक्ष तथा विनाशकारक हैं। विशेषतया सौम्यादि छः नक्षत्रों में गमनशील बुध सुन्दर वृष्टि करता है। धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में सुवृष्टि होती है। मूल, ज्येष्ठा और पूर्वा नक्षत्रों में भयकारी होता है। अश्विनी नक्षत्र में बुध व्यापारीजनों का विनाशक होता है। चित्रानक्षत्र में शरत्कालीन सस्यों का; रोहिणी, श्रवण, कृत्तिका, अभिजित् नक्षत्र में जल का विनाशक होता है। हस्त में उदित होकर अनुराधा नक्षत्र में गतिशील बुध पशु, गोवंश और कोशलप्रदेश के लोगों का घात करता है। विशाखा के मध्य से जाता हुआ बुध सस्य विनाशक है। जैसाकि गर्ग ने कहा है:—

प्राकृतागति क्षेम, आरोग्य तथा सुभिक्ष-लक्षणोंवाली है। संक्षिप्ता और विमिश्रा में शुभाशुभ-मिश्रितफल होता है। तीक्ष्णा, घोरा, पापा तथा योगान्तिका; बुध की इन चार गतियों में अकाल और विनाशदायी हैं॥१४॥

अधुना देवलमतेन बुधस्य गतिचतुष्टयमाह:—

ऋज्वतिवक्रा वक्रा विकला च मतेन देवलस्यैताः।
पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्वादीनां षडभ्यस्ताः॥१५॥

देवल के मतानुसार बुध की चार गतियाँ:—

ऋजु, अतिवक्रा, वक्रा और विकला; ये चार गतियाँ आचार्यदेवल के मतानुसार बुध ग्रह की होती हैं। इन ऋजु आदि गतियों का काल क्रमशः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षड्गुणित ५, ४, २, १ अर्थात् ३०, २४, १२, ६ दिनों तक इन गतियों का मान है ॥१५॥

आकृत्येव या स्वाभाविकी गतिः सा ऋज्वी अवक्रा। कुटिलगतित्वमाश्रित्य तन्मध्ये ग्रहस्य यदा भुक्त्यभावो भवति तदा अतिवक्रा गतिरुच्यते। ऋजुं मार्गं परित्यज्य निवृत्तिं करोति सा वक्रा। विकला वैकारिकी गतिर्या न्यूना। ऋज्वी चातिवक्रा च वक्रा च यास्ता ऋज्व्यतिवक्रावक्राः। न केवलं ऋज्व्यतिवक्रावक्राः। यावद्विकला। चकारः समुच्चये। देवलस्य मतेनैताश्चतस्रो गतयः। तथा च वृद्धगर्गः—

ऋजुर्गच्छति चेद् मार्गमविकारं प्रदक्षिणम्।
ग्रहो यस्मात्तु तस्मात् सा ऋज्वी तु गतिरुच्यते॥
कुर्वन्ति वक्रं वक्रायां यस्मान्नित्यं महाग्रहाः।
अङ्गारकप्रभृतयस्तस्माद्वक्रेति सा गतिः॥
वक्राद् भूयो महावक्रमनुकुर्वन्ति चेद् ग्रहाः।
अनेनैवानुमानेन सातिवक्रोच्यते गतिः॥
विस्खलन्ति यथा चारान्मार्गादस्तमयोदयात्।
गतेस्तस्माद्धि विकला सा गतिः परिकीर्तिता॥

स्वरूपानुकूल जो स्वाभाविक सरला गति है, वह ऋज्वी गति कहलाती है। वक्रगति प्राप्तकर जब ग्रह की गति का अभाव होता है, तब उसे अतिवक्रागति कहा जाता है। सरलागति को छोड़कर जब प्रत्यावर्तित गति करता है, तब उसे वक्रा गति कहते हैं। विकारयुक्त गति जो अल्प होती है, उसे विकला गति कहते हैं। इस प्रकार ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा और विकला, ये चार गतियाँ आचार्य देवल के मतानुसार कही गयी हैं। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

ऋजुमार्ग से यदि चलता है, तो वह अविकारी है और प्रदक्षिण ग्रह होने के कारण इस गति को ऋज्वी गति कहा जाता है। मङ्गल आदि बड़े ग्रह जिस गति से वक्रित होकर गमन करते हैं, उस गति को वक्रा गति कहते हैं। वक्र के पश्चात् पुनः जब ग्रह अत्यधिक वक्रता का अनुसरण करता है, तब वह अतिवक्रा गति होती है। जिस गति से ग्रह अपने गतिमार्ग, उदय और अस्त से विस्खलित होते हैं; उस प्रकार की गति को विकला गति कहा जाता है।

तथा चाऽऽचार्येण विकला गतिः प्रदर्शितैव :—

[1]अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम्॥

---

१. आदित्यचारस्य ४ श्लोकः। द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य १५३ पृष्ठम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि आचार्य ने विकलागति को प्रदर्शित किया है :-

मकरराशि पर पहुँचने के पूर्व ही यदि सूर्य प्रत्यावर्तित हो जाता है, तब वह दक्षिण-पश्चिम प्रदेशों को विनष्ट करता है। कर्कराशि को प्राप्त किये बिना यदि सूर्य परावृत्त हो जाता है, तो पूर्वोत्तर क्षेत्रों को विनष्ट करता है।

तथा च ऋषिपुत्रेणोक्तम् :-

उन्मार्गस्थानमार्गस्था ग्रहाः कुर्वन्ति पार्थिवान्।
मार्गवन्तश्च मार्गस्थान् कुर्वन्ति वसुधाधिपान्॥
सत्पथप्रतिपन्नेषु पार्थिवेषु भवन्ति हि।
प्रजाः सत्पथमापन्ना विपर्यासे विपर्ययः॥

जैसाकि ऋषिपुत्र ने कहा है :-

जब ग्रह उन्मार्गस्थान पर होते हैं, तब राजाओं को कुमार्ग में स्थित करते हैं। और मार्गी होने पर राजाओं को सुमार्गगामी बनाते हैं। राजाओं के सत्पथ के अनुगामी होने पर प्रजा भी सत्पथ से युक्त होती है, तथा विपर्यय में विपरीत रहती है।

आसां प्रमाणमाह :-

पञ्चचतुर्द्व्येकाहा इति। उदयप्रवासदिवसैरित्यनुवर्तते। पञ्चचतुर्द्व्येकाहाः षडभ्यस्ताः षड्गुणितास्त्रिंशदादीनि भवन्ति। एतानि ऋज्व्यादीनां प्रमाणम्। एतदुक्तं भवति- यदा बुधस्त्रिंशद्दिनानि (३०) उदितस्तिष्ठत्यस्तमितो वा तदा सा ऋज्वी नाम्नी बुधस्य गतिः। एवमन्यासामपि ज्ञेयम्। तेन चत्वारः षडभ्यस्ताः चतुर्विंशतिः २४। चतुर्विंशद्दिनान्यतिवक्रायाः प्रमाणम्। द्वौ षडभ्यस्तौ द्वादश १२। द्वादशदिनानि वक्रायाः प्रमाणम्। एकाहः षडभ्यस्तः षड्दिनानि (६) भवन्ति। एतानि विकलायाः प्रमाणम्॥१५॥

अब इनका प्रमाण कहते हैं :-

उदय प्रवास दिवसों से ५, ४, २, १ का अनुवर्तन करना चाहिए। ५, ४, २, १ दिनों को ६ से गुणा करने पर ३० इत्यादि ऋजु आदि गतियों के प्रमाण होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जब बुध ३० दिनों तक उदित रहता है अथवा अस्त रहता है, तब उसकी ऋज्वी नामिका गति होती है। इस प्रकार अन्यों की भी गति जाननी चाहिए। इस प्रकार ४×६=२४ दिन अतिवक्रा गति के प्रमाण हैं। २×६=१२ दिन वक्रा गति के प्रमाण हैं। १×६=६ दिन विकला गति के प्रमाण हैं॥१५॥

अथाऽऽसां फलान्याह :-

ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्राऽघं गतिर्विनाशयति।
शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसंजननी॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब इनके फल कहते हैं :–

ऋज्वी गति लोक कल्याणकारी, अतिवक्रा गति महर्घतामयी तथा विनाशिका होती है। वक्रा गति शस्त्रभयप्रदायिका और विकला गति भय तथा रोगोत्पादिका होती है ॥१६॥

ऋज्वी गतिः प्रजानां हिता शुभकरी। अतिवक्रा गतिरर्घं विनाशयति दुर्भिक्षं करोति। वक्रा शस्त्रभयदा शस्त्रभयं संग्रामभीतिं करोति। विकला भयं भीतिं रोगान् गदांश्च संजनयत्युत्पादयति। तथा च देवलः–

दिनानि त्रिंशदुदितस्तिष्ठेद्यदि च सोमजः।
ऋज्वी गतिः सा विज्ञेया प्रजानां हितकारिणी॥
चतुर्विंशद्दिनान्येवं यदि तिष्ठेच्च सोमजः।
अतिवक्रा गतिर्ज्ञेया दुर्भिक्षगतिलक्षणा॥
अहानि द्वादश यदा बुधस्तिष्ठेत्तथोद्गतः।
वक्रा गतिः सा विज्ञेया शस्त्रसम्भ्रमकारिणी॥
षड् दिनानि यदा तिष्ठेदुद्गतः सोमनन्दनः।
विकला सा गतिर्ज्ञेया भयरोगविवर्धिनी॥
एवमस्तमये सर्वं गतिजं सोमजस्य तु।
भावाभावाय लोकानां फलं वाच्यं शुभाशुभम्॥इति॥१६॥

ऋज्वीगति लोगों के लिए शुभकारिणी होती है। अतिवक्रा गति अर्घ (मूल्य) का विनाश अर्थात् दुर्भिक्ष करती है। विकलागति शस्त्रभयदायिका अर्थात् युद्धभय करती है। विकलागति भय तथा रोगों को उत्पन्न करती है। जैसाकि देवल ने कहा है :–

यदि बुध ३० दिन तक ऋज्वी गति (मार्गी) का होता है, तो इस गति में प्रजा का कल्याण होता है। यदि बुध २४ दिनों तक इस प्रकार (उदित) रहता है, तब उसकी अतिवक्रा गति समझनी चाहिए; जिसमें दुर्भिक्ष होता है। जब बुध इस प्रकार १२ दिनों तक उदित रहे, तब उसकी वक्रागति जाननी चाहिए; जो सशस्त्रसंघर्ष को उत्पन्न करती है। जब बुध ६ दिनों तक उदित रहे, तब विकला-गति रहती है, जो भय और रोग को बढ़ाती है। इस प्रकार के सभी फल बुध के अस्त में भी जानने चाहिए। लोक में भाव तथा अभाव और शुभ तथा अशुभ फलों को कहना चाहिए ॥१६॥

अथोदयास्तमययोः शुभाशुभलक्षणमाह :–

पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु।
दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत्प्रोषितस्तेषु॥१७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदयास्त के अनुसार शुभाशुभ लक्षणों के फल :–

पौष, आषाढ़, श्रावण, वैशाख और माघ मासों में बुध दृष्ट हो (उदित हो) तो संसार के लिए भयदायक होता है, यदि अस्त हो तो शुभफलदायक रहता है ॥१७॥

पौषाऽऽषाढश्रावणवैशाखेषु मासेषु माघसहितेषु इन्दुजो बुधो दृष्ट उदित इत्यर्थः। जगतो लोकस्य भयाय भीत्यै भवति। तेष्वेव पौषादिषु मासेषु प्रोषितोऽस्तं गतः शुभफलकृद् भवति जगतः शुभफलं करोति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह :–

वैशाखपौषमाघेषु श्रावणाषाढयोरपि।
न दृश्यते बुधः प्रायो मासेष्वन्येषु दृश्यते॥
यदाऽदृश्येषु दृष्टः स्याद् दृश्येषु च न दृश्यते।
गवां रोगमनावृष्टिं दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत्॥

पौष, आषाढ़, श्रावण, वैशाख और माघ; इन मासों में बुध उदित हो तो लोक के लिए भयकारक होता है। इन्हीं पौष आदि मासों में प्रोषित अर्थात् अस्त होता है, तब संसार को शुभफल देता है। इसी के समर्थन में वृद्धगर्ग ने कहा है :–

वैशाख, पौष, माघ, श्रावण और आषाढ़; इन मासों में प्रायः बुध दिखायी नहीं पड़ता। यह अन्य मासों में दिखायी पड़ता है। इस प्रकार जब अदृश्य मासों में दिखायी पड़ता है तथा दृश्यमासों में दिखायी नहीं पड़ता है, तब पशुओं को रोग, अनावृष्टि और दुर्भिक्ष (अकाल) का निर्देश करना चाहिए।

तथा च पराशरः–

वैशाखाषाढयोर्माघे पौषश्रावणयोस्तथा।
बुधो न दृश्यते जातु दृश्येत भयमादिशेत्॥
पौषे करोति मरकं माघे वातं तथा च सोमसुतः।
वैशाखे जनमरकमाषाढे श्रावणे च दुर्भिक्षम्॥इति॥१७॥

जैसाकि पराशर ने कहा :–

वैशाख, आषाढ़, माघ, पौष और श्रावणमासों में बुध दिखायी नहीं पड़ता है। यदि दिखायी पड़े तो भय का आदेश करना चाहिए। बुध पौष मास में मरण, माघ में वायु, वैशाख में जनविनाश और श्रावण तथा आषाढ़ मास में दुर्भिक्ष करता है ॥१७॥

अन्येष्वप्याह :–

कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः।
शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च तदा विदधाति॥१८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य मासों के फल कहते हैं :-

कार्तिक अथवा आश्विनमास में यदि बुध दृश्य (उदित) होता है; तब शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और क्षुधा (भुखमरी) का भय देता है ॥१८॥

कार्तिके अश्वयुजि मासे वा यदि शिशिरांशोश्चन्द्रस्य तनुभवः पुत्रो दृश्यते उद्गच्छतीत्यर्थः। भयशब्दः प्रत्येकमपि संबध्यते। तदा शस्त्रभयं संग्रामभयम्, चौरभयं तस्करभयम्, हुतभुग्भयमग्निभयम्, गदभयं रोगभयम्, तोयभयं जलभयम्, क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयमेतानि विदधाति करोति ॥१८॥

कार्तिकमास अथवा आश्विनमास में यदि चन्द्रपुत्रबुध उदित होता है; तब शस्त्रभय, सङ्ग्रामभय, चोरभय, अग्निभय, रोगभय, जलभय और दुर्भिक्ष का भय; इन सब भयों को करता है ॥१८॥

अन्यदुदयास्तमयवशेनेन्दुजस्य फलमाह :-

रुद्धानि सौम्येऽस्तगते पुराणि यान्युद्गते तान्युपयान्ति मोक्षम्।
अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥१९॥

बुध के उदयास्त से अन्यफलों को कहते हैं :-

बुध के अस्त होने पर जो नगर अवरुद्ध (बाधित) रहते हैं, उनका मोक्ष (निर्बाध) बुध के उदित होने पर ही होता है। अन्य आचार्यों के मत में जब पश्चिम दिशा में बुध उदित होता है, उस समय उन नगरों का लाभ (कल्याण) होता है ॥१९॥

सौम्ये बुधेऽस्तगते सूर्यमण्डलस्थे यानि पुराणि नगराणि रुद्धानि शत्रुभिर्वेष्टितानि तानि तस्मिन्नेवोद्गते उदिते रविमण्डलान्निष्क्रान्ते मोक्षमुपयान्ति प्राप्नुवन्ति, ततो रोद्धा चलतीत्यर्थः। अन्ये त्विति। अन्ये तु पुनस्तज्ज्ञाः पण्डिता नन्दिप्रभृतयः पश्चादुदिते बुधे पश्चिमायां दिश्युद्गते पुराणां लाभो लब्धिर्भवतीति वदन्ति कथयन्ति। लाभश्चाभियोक्तुर्भवति। अन्यथोदिते पुरपतेरेव। तथा च नन्दी :-

बुध के अस्त होने पर अर्थात् सूर्यबिम्ब प्रदेश के अन्तर्गत होने पर जो नगर शत्रुओं से घिरे रहते हैं, वे नगर उस बुध के उदित होने पर अर्थात् सूर्यमण्डल से बहिर्भूत होने पर मोक्ष (मुक्त) को प्राप्त कर पाते हैं। अर्थात् तत्पश्चात् वह स्वतन्त्र हो जाते हैं। अन्य विद्वान्-पण्डित नन्दी इत्यादि पश्चिम दिशा में बुध के उदित होने पर नगरों का लाभ होता है, ऐसा कहते हैं। इसमें अभियोक्ता अर्थात् यायी को लाभ होता है। अन्यथा इससे भिन्न उदयकाल में नगरस्वामी को लाभ होता है। जैसाकि नन्दी ने कहा है :-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पश्चार्द्धादुदिते सौम्ये लभते पुररोधकः।
पुनः प्रागुदिते तस्मिन् पुरमोक्षं विनिर्दिशेत् ॥ इति ॥१९॥

पश्चिमदिशा से बुध के उदित होने पर नगर का अवरोध (घेरा) होता है। पुनः बुध के पूर्व दिशा में उदित होने पर उस पुर की मुक्ति का निर्देश कहना चाहिए ॥१९॥

अथास्य बिम्बलक्षणमाह :—

हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा।
स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥२०॥

अब इसके बिम्ब का लक्षण कहते हैं :—

सुवर्ण सदृश कान्तिमान् अथवा शुकवर्ण (हरित) अथवा सस्यक-मणि (नीलमणि) और स्निग्ध, स्थूल बिम्बवाला बुध कल्याणकारक होता है। इसके विपरीत वर्णों का शुभ नहीं होता है ॥२०॥

हेमकान्तिः सुवर्णाभः, अथवा शुकवर्णः शुककान्तिर्नीलपीतवर्ण इत्यर्थः। सस्यकेन मणिना नीलवर्णेन सदृशस्तुल्यो वा। तथा स्निग्धमूर्तिर्निर्मलदेहः। अलघुश्च विस्तीर्णबिम्बः। एवंविधः शशिपुत्रो बुधो लोकानां हिताय श्रेयसे भवति। व्यत्यये उक्तविपर्यये न शुभकृन्न शुभकरः। तथा च पराशरः—

हेमकान्ति अर्थात् सुवर्ण के सदृश अथवा शुककान्ति अर्थात् नील-पीतवर्ण का, सस्यकमणि अर्थात् नीलवर्ण के सामन, स्निग्धमूर्ति अर्थात् स्वच्छ बिम्बोंवाला तथा विस्तीर्ण बिम्बोंवाला बुध लोक के लिए कल्याणकारी होता है। उक्त कथन के विपरीत शुभकारक नहीं होता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

विमलजलरजतस्फटिकाभः प्रशस्यते ॥ इति ॥२०॥

स्वच्छ जल, चाँदी और स्फटिक की आभा के समान बुध प्रशस्त होता है ॥२०॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ बुधचारो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृतिमें बुधचार नामक सप्तम अध्याय ॥७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ अष्टमोध्यायः

अथ बृहस्पतिचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव महाकार्तिकादीनां षष्ट्यब्दवर्षाणां संज्ञाज्ञापनार्थमाह :–

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ १ ॥

अब बृहस्पतिचार नामक अध्याय की व्याख्या करते हैं :–

प्रारम्भ में महाकार्तिकादि षष्ट्यब्दों की संज्ञाएँ :–

गुरु जिस नक्षत्र के साथ उदित होता है, तदनुसार ही मासों के क्रम से वर्ष की संज्ञा कहनी चाहिए ॥ १ ॥

येन नक्षत्रेण सहोदयं याति सुरमन्त्री गुरुर्यस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सूर्यमण्डलादुदयं दर्शनं याति तन्नक्षत्रं गुरुसंज्ञितम्। अथवा येन नक्षत्रेण सहास्तं याति यस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सूर्यमण्डले प्रविशति तत्संज्ञं तन्नामधेयं वर्षं वक्तव्यं लोके वाच्यम्। तच्च मासक्रमेणैव मासपरिपाट्या। अनन्तरोक्तस्यार्थस्य नक्षत्रेण सहोदयमस्तं चेत्यस्य सन्देहव्युदासार्थमाह :– मासक्रमेणैव। अन्यमासनक्षत्रेण सहास्तं गतोऽन्यमासनक्षत्रेण सहोदितः। यथा रोशिणीस्थोऽस्तं गतो मृगशिरःस्थश्चोदयं गतस्तदानन्तराक्रान्तमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं बोद्धव्यमिति। ऋषिपुत्रादिभिरुदयनक्षत्रमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं वक्तव्यमित्युक्तम्। तथा च ऋषिपुत्र आह :–

यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे सह येन प्रवर्धते।
संवत्सरः स विज्ञेयस्तन्नक्षत्रविधायकः॥

तथा च काश्यपः–

संवत्सरे युगे चैव षष्ट्यब्देऽङ्गिरसः सुतः।
यन्नक्षत्रोदयं कुर्यात्तत्संज्ञं वत्सरं विदुः॥

गुरु जिस नक्षत्र के साथ उदय को प्राप्त होता है, अर्थात् रविमण्डल से पृथक् होकर दृष्ट होता है, वह नक्षत्र जब गुरु के साथ हो अथवा जिस नक्षत्र के साथ अस्त होता हो; अर्थात् जिस नक्षत्र में स्थित होकर रविमण्डल में प्रवेश करता हो, उस नक्षत्र के नाम से वर्ष कहना चाहिए। यह मासों के क्रम से ही होता है। नक्षत्रों के साथ उदय और अस्त का अग्रिम वाक्यार्थों के सन्देह को समाप्त करने के लिए ही मासक्रम से कहा गया है। अन्य मास तथा नक्षत्र के साथ अस्त हुआ हो तथा अन्य मास के नक्षत्र के साथ उदित हुआ हो। जैसाकि रोहिणीनक्षत्र में स्थित होकर अस्त हुआ हो और मृगशिरा में स्थित होकर उदित हुआ हो, तब तत्पश्चात् आक्रान्त माससंज्ञा के क्रम से वर्ष जानना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋषिपुत्रादि के द्वारा उदयनक्षत्र के क्रम से माससंज्ञक वर्ष कहना चाहिए, ऐसा कथन है। जैसाकि ऋषिपुत्र ने कहा है :-

जिस नक्षत्र के साथ उदित होता है और जिसके द्वारा आगे गमन करता है, उस नक्षत्र की संज्ञा से वह वर्ष जानना चाहिए।

जैसाकि काश्यप ने कहा है :-

संवत्सर में अथवा साठवर्षात्मक युग में गुरु जिस नक्षत्र में उदित होता है, उस वर्ष की वही संज्ञा होती है।

प्रभवादीनामब्दानां प्रवृत्तिर्गुरोरुदयकालादित एव। यतो गुरुरत्राबाधितत्वेन स्थितः। तथा च ऋषिपुत्र आह :-

प्रभवादि वर्षों की प्रवृत्ति गुरु के उदयकाल से ही होती है, क्योंकि यहाँ पर गुरु बाधारहित स्थित रहता है। जैसाकि ऋषिपुत्र ने कहा है :-

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः।
बृहस्पतेस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादशवार्षिकम्॥
उदेति यस्मिन् मासे तु प्रवासोपगतोऽङ्गिराः।
तस्मात् संवत्सरो मासो बार्हस्पत्योऽथ गम्यते॥ इति।

पुष्यादि युग को वशिष्ठ, अत्रि और पराशर ने कहा है। मृगशिरान्त द्वादशवार्षिक बृहस्पति का युग कहा गया है। जिस मास में गुरु अस्त के पश्चात् उदित होता है, उससे बार्हस्पत्य मास और वर्ष का ज्ञान किया जाता है।

तथा च गर्गः-

प्रवासान्ते सहर्क्षेण तूदितो युगपच्चरेत्।
तस्मात् कालाद्दृक्षपूर्वो गुरोरब्दः प्रवर्तते॥

जैसाकि गर्ग ने कहा है :-

अस्त के पश्चात् उस नक्षत्र के साथ समकाल में ही (गुरु) उदित होता है। इसलिए उस काल से नक्षत्र पूर्व गुरु का वर्ष प्रवर्तित होता है।

कचित् कृत्तिकादियुक्ते गुरौ यच्चन्द्रयुक्तं नक्षत्रं चैत्रमासादितो भवति, ततो महाकार्तिकादीनि संवत्सराणि प्रभवादीनि च गणयन्ति। अपरे सौरमानेन गणयन्ति। तदयुक्तम्। यस्मात् सौरं मानमधिकं गुरुमानात्। यदुत्कृष्टं मानं तत्स्वल्पतरमानेनानुमीयमानं बहुतरं भवति। यथा :- अष्टयवेनाङ्गुलेन ये पादोना [1]एकाशीतिहस्तास्त एव सप्तयवेनानुमीयमाना हस्तशतं भवन्ति। एवं सौरं मानं गुरुमानाच्चतुर्युगेण न्यूनं भवति। आचार्याऽऽर्यभटेन च प्रदर्शितम् :-

---

१. अर्द्धोना अष्टाशीतिहस्ता इति पाठः साधुः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ आचार्य कृत्तिकादि नक्षत्रों से गुरु के युक्त होने पर चन्द्रयुक्त नक्षत्र से चैत्रादि मास होते हैं, उससे महाकार्तिकादि और प्रभवादि वर्षों की गणना करते हैं। अन्य आचार्य सौरमान से गणना करते हैं, जो युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि गुरु के मान से सौरमान अधिक होता है। जो महान् मान होता है, वह लघुमान के अनुमानित मान से अधिक होता है। उदाहरणार्थ– आठ यवात्मक अङ्गुल से जो चतुर्थांशरहित ८१ हाथ के मान हैं, वे ही सप्तयवात्मक अनुमानित मान से १०० हाथ होते हैं। इस प्रकार सौरमान गुरु के मान से चतुर्गुणित न्यून होता है। जैसाकि आचार्य आर्यभट ने प्रदर्शित किया है :–

गुरुभगणा राशिगुणा आश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः।
गुरुभगणानां संख्या जिनयमवेदर्तुहव्यभुक्तुल्याः ३६४२२४॥

गुरु के भगण को द्वादशगुणित करने पर आश्विन आदि गुरु-वर्ष होते हैं। गुरु के भगणों की संख्या ३६४२२४ होती है।

राशिगुणा इति। भगणे द्वादश राशयो भवन्ति तैर्गुणा द्वादशगुणा इत्यर्थः। द्वादशगुणा गुरोरब्दाः। वस्वष्टरसाम्बराद्रिगुणवेदतुल्याः ४३७०६८८। रविभगणा एव रव्यब्दाः खचतुष्टयरदवेदतुल्याः ४३२०००० । गुरोरब्दानां रव्यब्दानां चान्तरे कृते गुरोरब्दाः समधिका जाता वस्वष्टर्तुखेषवः ५०६८८। अत्र च त्रैराशिकम् :– यदि चतुर्युगरव्यब्दानामनन्तरप्रदर्शितगुरुरव्यब्दान्तरं लभ्यते तदैकस्य रव्यब्दस्य किमिति। न्यासः– ४३२०००० । ५०६८८।१॥ फलं रविवर्षभोग इति। रव्यब्दानां कृतखगुणयमै-२३०४रपवर्तितानां शरागाष्टेन्दवो लभ्यन्ते १८७५। तावद्भागेन रविगुरुवर्षान्तरस्य द्व्यधिका विंशतिर्भवति २२। सप्तत्यधिकेऽब्दशते एकादशभागैः पञ्चभिरधिके १७०$^{५}/_{११}$ गते गुरुयुक्तनक्षत्रमाससंज्ञवर्षद्वयमधिकं भवति। तथा च गर्ग आह :–

युगानि द्वादशाब्दानि तत्र तानि बृहस्पतेः।
तत्र सावनसौराभ्यां सावनाब्दो निरुच्यते॥
एवमाश्वयुजं चैव चैत्रं चैव बृहस्पतिः।
संवत्सरं नाशयते सप्तत्यब्दशतेऽधिके॥

एक भगण में बारह राशियाँ होती हैं। गुरु की वर्षसंख्या को भगण अर्थात् १२६ से गुणा करते हैं। द्वादशगुणित रविभगण = ३६४२२४ × १२ = ४३७०६८८ होते हैं। रविभगण, रविवर्ष के तुल्य ४३२०००० , होते हैं। गुरु की वर्षसंख्या और रवि की वर्षसंख्या का अन्तर करने पर गुरु के वर्ष अधिक होते हैं। गुरुवर्षसंख्या, ४३७०६८८ – ४३२०००० = ००५०६८८, अधिक होती है। यहाँ पर त्रैराशिक के द्वारा अनुपात करते हैं :– यदि चतुर्युग के सूर्यवर्ष और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरुवर्ष का अन्तर उक्त संख्या (५०६८८) प्राप्त होती है, तब एक रविवर्ष में वर्षसंख्या कितनी होगी ? न्यास :- ४३२०००० । ५०६८८ ।१।। प्राप्त फल रविवर्ष का भोग होता है। रविवर्षों को २३०४ से अपवर्तित करने पर १८७५, प्राप्त होता है। इस भाग में रवि और गुरु के वर्षों का अन्तर २२ होता है। १७०, सहित पाँच का एकादश भाग अर्थात् १७०$^{५}/_{११}$ वर्ष व्यतीत होने पर गुरुयुक्त नक्षत्र, माससंज्ञक दो वर्ष अधिक होता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :-

बारह वर्षों का युग होता है। इसको बार्हस्पत्य युग कहते हैं। सावन तथा सौरमास से सावनवर्ष कहा जाता है। इस प्रकार आश्विन और चैत्रमास में १७० वर्षों पर गुरुवर्ष का विनाश (क्षय) होता है।

एवं नष्टजातकेऽपि :-

"'लग्नत्रिकोणेषु गुरुस्त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात्" इत्यनेन गणितेन यान्यतीतवर्षाण्यागतानि तानि द्व्यधिकया विंशत्या २२ गुणयित्वा पादोनैरेकोनविंशतिशतै १८७५ र्विभज्य लब्धमनन्तरोक्तश्लोकानीतगुर्वतीतजन्मवर्षाणां विशोध्य शेषं स्फुटतरमतीतजन्मवर्षपिण्डं भवतीति। अत्र गुणकारभागहारयोराचार्येण द्विगुणतोपनिबद्धा। यत आचार्यप्रणीतकालेऽतीतं षष्ट्यब्दादेर्वर्षद्वयं त्रयो मासाश्चतुर्दश दिनानि दिनशेषं खद्विदश १०२०। अक्षागाष्टरूपाणि १८७५ छेदः। तत्परिणामाय छेदं तेन वर्षद्वयेन सङ्गुण्य ततो मासत्रयं दिनीकृत्य सदिनं कृत्वा तेन छेदेन सङ्गुण्य शेषं युक्तं कृत्वा खर्त्वग्निभि ३६० र्विभज्यावाप्तं शतपञ्चकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं सार्द्धम् ५४४$^{१}/_{२}$। तच्च वर्षघ्ने छेदे संयोज्यते। तस्य च सविकलत्वात् सवर्णनाय द्वाभ्यां गुणना क्रियते। स्वाधःस्थं रूपार्द्धं योज्यते। ततः सवर्णीकृतो भवति। एवं क्षेपस्य द्विगुणत्वाद् गुणकारभागहारावप्याचार्येण द्विगुणावुपनिबद्धाविति। तदर्थं [2]चतुश्चत्वारिंशद् गुणकारः। शून्यशरागरामा ३७५० भागहार इति ॥१॥

इसी प्रकार नष्टजातक में भी कहा गया है :-

"लग्न और त्रिकोण में गुरु के तृतीयभाग से वर्षों में विभाजितकर वय का अनुमान होता है।" इस गणित से जो व्यतीत वर्ष प्राप्त होते हैं, उनको २२ से गुणाकर १८७५ से भाग देने पर प्राप्त फल पूर्व कथनानुसार गुरु के व्यतीत जन्मवर्षों को घटाकर शेष स्पष्ट अतीत जन्म का वर्षपिण्ड होता है। यहाँ पर आचार्य ने गुणक तथा भागहार को द्विगुणित रखा है। क्योंकि आचार्य के समय षष्ट्यब्द का आरम्भिक २ वर्ष ३ मास १४ दिन तथा दिनशेष १०२० थे।

---

१. बृहज्जातके २६ अध्यायस्य नष्टजातकाख्यस्य २ श्लोकः।

२. द्रष्टव्योऽस्यैवाध्यायस्य २० श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८७५ भाज्य उसको २ वर्ष से गुणाकर तत्पश्चात् ३ मास का दिन बनाकर उस छेद से गुणाकर शेष को जोड़कर ३६० से भाग देकर पाँच सौ चौवालिस अर्ध सहित – ५४४१/२ होता है। इसको वर्षगुणित छेद में जोड़ते हैं। इसके विकला सहित होने के कारण सवर्ण करने के लिए २ से गुणा करते हैं। इसमें शेष रूपार्ध १/२ को जोड़ते हैं, तब सवर्णित होता है। इस प्रकार क्षेप के द्विगुणित होने से गुणक, भागहार भी आचार्य के द्वारा द्विगुणित लिखे गये हैं। इसके लिए ४४ गुणक और ३७५० भाजक (भागहार) किये गये हैं ॥१॥

यदुक्तं वर्षं मासक्रमेणैव तत् कथमित्यत आह :–

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥२॥

जो यह कहा है कि वर्ष मासक्रम से ही होता है, वह कैसे ? कहते हैं :–

कार्तिक आदि वर्ष कृत्तिकानक्षत्र से क्रमशः दो-दो नक्षत्रों के योग से होते हैं। इनमें से पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष (फाल्गुन, भाद्रपद और आश्विन) तीन-तीन नक्षत्रों के होते हैं ॥२॥

कार्तिकादीनि कार्तिकमासपूर्वाणि वर्षाणि भवन्ति माससमानि द्वादश। तानि चाग्नेयात् कृत्तिकातः प्रभृति भद्वयानुयोगीनि। भद्वयेनानुयोगो येषाम्। नक्षत्रद्वयानुयोगीनि क्रमशः क्रमेण परिपाट्या भवन्ति।

कार्तिकादि मास से वर्ष होते हैं, जो मासों के समान बारह हैं। वे कृत्तिकानक्षत्र से दो-दो नक्षत्रों के योग से क्रमशः होते हैं।

त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षमिति। पञ्चमं फाल्गुनं वर्षम्। त्रिभं नक्षत्रत्रयानुयोगि। अन्त्यं द्वादशं चाश्वयुजं त्रिभम्। तस्य समीपमुपान्त्यमित्येकादशं च त्रिभम्। एवं पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च वर्षत्रयं त्रिभम्। तद्यथा :– कृत्तिकारोहिणीभ्यां कार्तिकः। मृगशिरआर्द्राभ्यां मार्गशीर्षः। पुनर्वसुतिष्याभ्यां पौषः। आश्लेषामघाभ्यां माघः। पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तैः फाल्गुनः। चित्रास्वातीभ्यां चैत्रः। विशाखानुराधाभ्यां वैशाखः। ज्येष्ठामूलाभ्यां ज्यैष्ठः। पूर्वाषाढोत्तराषाढाभ्यामाषाढः। श्रवणधनिष्ठाभ्यां श्रावणः। शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदाभिर्भाद्रपदः। रेवत्यश्विनीभरणीभिश्चाश्वयुज इति। एतदुक्तं भवति :– यदा कृत्तिकायां रोहिण्यामवस्थितो वा गुरुरुदयं याति तदा कार्तिकं वर्षं ज्ञेयम्। एवमन्येषामपि। अत्रान्ये एवं व्याचक्षते :– "यथोपान्त्यमन्त्यं चेत्यत्रान्त्यशब्दः समीपवाची। उपान्त्यस्यैकादशस्य समीपं दशमं श्रावणं न तु द्वादशमाश्वयुजमिति। यतस्तत्र गर्गादिवचनैः सह विरोधो भवति।" तथा च गर्ग आह :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फल्गुनी चैव हस्तं च चरेद्यदि बृहस्पतिः।
स फाल्गुनोऽब्दः क्रूरः स्याद्धान्यमुच्चाटतां व्रजेत्॥
श्रवणादीनि च त्रीणि चरेद्यदि बृहस्पतिः।
श्रावणो नाम सोऽब्दः स्यात् क्षेमसौभिक्षमूर्तिमान्॥
पूर्वोत्तरे प्रोष्ठपदे चरेद्रेवतिमेव च।
प्रौष्ठपाद इति ज्ञेयो मध्यमो वत्सरो हि सः।
आश्विनं चैव याम्यं च चरेद्यदि बृहस्पतिः।
संवत्सरः सोऽश्वयुक् स्यात् सर्वभूतहितावहः॥

तीन नक्षत्रों में पञ्चम, उपान्त्य और अन्त्य नक्षत्र होते हैं। पञ्चमवर्ष फाल्गुन, तीन नक्षत्रों का होता है। अन्त्य अर्थात् बारहवाँ वर्ष आश्विन, तीन नक्षत्रों का है और उपान्त्य अर्थात् ग्यारहवाँ वर्ष भाद्रपद, तीन नक्षत्रों का होता है। इस प्रकार पञ्चम, एकादश और द्वादश, ये तीन वर्ष तीन नक्षत्रों के होते हैं। जैसाकि– कृत्तिका और रोहिणी से कार्तिक, मृगशिरा और आर्द्रा से मार्गशीर्ष, पुनर्वसु और पुष्य से पौष, आश्लेषा और मघा से माघ, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और हस्त से फाल्गुन, चित्रा और स्वाती से चैत्र, विशाखा और अनुराधा से वैशाख, ज्येष्ठा और मूल से ज्येष्ठ, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा से आषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा से श्रावण, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा से भाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी से आश्विन वर्ष होते हैं। इस कथन का अभिप्राय यह है कि जब कृत्तिका तथा रोहिणी में स्थित गुरु उदित होता है, तब कार्तिकवर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वर्ष भी होते हैं। यहाँ पर अन्य आचार्य इस प्रकार कहते हैं– "उपान्त्य एकादश के समीपस्य दशम श्रावणमास होता है न कि द्वादश आश्विनमास। क्योंकि यहाँ गर्गादि ऋषियों के वचन के साथ विरोध होता है।" जैसाकि गर्ग ने कहा है:–

यदि गुरु उत्तराफाल्गुनी और हस्तनक्षत्र में गमन करता है, तब वह फाल्गुनवर्ष कहा जाता है। यह वर्ष क्रूर होता है और धान्यों का उच्चाटन (विनाश) करता है। श्रवणादि तीन नक्षत्रों पर जब बृहस्पति होता है, तब वह श्रावण नामक वर्ष होता है। इसमें सुन्दर वर्षा (सुभिक्ष) और कल्याण होता है। पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रों में जब गुरु का गमन होता है, तब वह भाद्रपदवर्ष होता है, जो कि वर्ष का मध्यम है। अश्विनी और भरणी में जब बृहस्पति गमन करता है, तब उसका आश्विनवर्ष होता है, जो सभी जीवों के लिए कल्याणकारक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च पराशरः—

कृत्तिकारोहिणीषूदिते क्षुच्छस्त्राग्निना वृष्टिव्याधिप्राबल्यं गोशाकटिकपीडा च। सौम्यरौद्रयोरेतदेव गवादिवर्ज्जम्। तिष्यपुनर्वस्वोरुक्तविपर्ययः। पुष्यवन्मघाश्लेषासु राज्ञामुपतापश्च। फल्गुनीसावित्रेषु क्वचित्क्षेमसुभिक्षं नारीदौर्भाग्यं च। चित्रास्वात्योरुदितो नृपसस्यवर्षक्षेमारोग्यकरः। एवमेव मैत्रेन्द्राग्न्योरिन्द्रनैर्ऋतयोर्वनस्पतिसस्यवर्षश्रेष्ठनृपतिप्रधान-जनविनाशायेतरवृद्धये। अषाढयोः प्राक्परसस्यानां वृद्धये मध्यमक्षेमवर्षणमन्योन्यभेदश्च। श्रवणधनिष्ठावारुणेषु यज्ञनृपसस्यवर्षारोग्यवृद्धये। अजाहिर्बुध्न्यपौष्णेष्वाषाढवत्फलं प्राक्परसस्यविपर्ययः। प्रभूतजलसस्यर्द्धिजलक्षेमाण्यश्वयुग्भरण्योरिति॥

जैसाकि पराशर ने कहा है :—

कृत्तिका, रोहिणी में गुरु के उदित होने पर क्षुधा, शस्त्र, अग्नि, वर्षा और रोग की प्रचुरता होती है। इसमें पशुओं तथा वाहनचालकों को पीड़ा होती है। मृगशिरा और आर्द्रानक्षत्र में पशुओं तथा वाहनचालकों को छोड़कर शेष फल पूर्ववत् होते हैं। पुष्य तथा पुनर्वसु नक्षत्र में पूर्वोक्त फल के विपरीत फल होता है। पुष्य की ही भाँति मघा और आश्लेषा में राजाओं को पीड़ा होती है। पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में कुत्रचित् सुख तथा सुभिक्ष और महिलाओं के लिए दुर्भाग्यकारक होता है। चित्रा और स्वाती में उदित गुरु राजा, सस्य, वर्षा, सुख और आरोग्य का कारक होता है। इसी प्रकार विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र में वनस्पति, सस्य, श्रेष्ठ राजा, मुख्य नागरिकों का विनाशक और अन्य लोगों के लिए अभिवृद्धिकारक होता है। पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा में शारद तथा ग्रीष्मकालीन सस्यों का विनाश होता है। अश्विनी और भरणीनक्षत्र में पर्याप्त जल, सस्यवृद्धि और जलीय पदार्थों का सुख होता है।

एवमत्रान्त्यशब्देन समीपं दशमं वर्षं श्रावणमन्त्येनाऽऽश्वयुजमिति न शोभनम्। अत्र केचिदृषिपुत्रस्य मतभेदं मन्यन्ते :—

इस प्रकार यहाँ पर "अन्त्य" शब्द से समीपस्थ दशम वर्ष श्रावण को और अन्त्य से आश्विन का ग्रहण करना उचित नहीं है। यहाँ पर कुछ लोग ऋषिपुत्र का मतभेद स्वीकार करते हैं :—

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र स्युः सौम्यत्वाष्ट्रवैष्णवाः।
द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः पूर्वपश्चिमयोगतः॥ इति।

मृगशिरा, चित्रा और श्रवण नक्षत्रक्रम से तीन-तीन नक्षत्रों के तीन वर्ष होते हैं। शेष वर्ष पूर्वापरक्रम से दो-दो नक्षत्रों के कहे गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वमतेनैतद्विरुध्यते। यदि त्रिनक्षत्रो मार्गशीर्षस्तदा माघस्त्वेकनक्षत्रो भवति "द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः" इत्यनेन सह विरुद्ध्यते। यस्मात् त्रयस्त्रिनक्षत्राः शेषा द्विनक्षत्राः स्मृतास्त्वेकनक्षत्रो नास्त्येव। तस्मात् पुस्तकपाठेऽयं सिद्धान्तपाठः कथ्यते।

यह कथन अपने मत के विरुद्ध है। यदि मार्गशीर्ष तीन नक्षत्रों का होगा, तो माघ एक नक्षत्र का हो जायेगा, जो कि "शेष दो नक्षत्रों के होते हैं" इस कथन के साथ विरोध प्राप्त होता है। इस प्रकार तीन वर्ष तीन-तीन नक्षत्रों के तथा शेष नौ वर्ष दो-दो नक्षत्रों के कहे गये हैं। इस प्रकार से (३×३=९ नक्षत्र, ९×२=१८ नक्षत्र, इनका योग ९+१८ = २७ नक्षत्र) एक नक्षत्र का अभाव होता है। इसलिए पुस्तक के पाठ में यह सिद्धान्त-पाठ कहा जाता है।

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र ज्ञेया भाग्याजवैष्णवाः।
द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः पूर्वपश्चिमयोगतः॥इति।

तीन-तीन नक्षत्रों के तीन वर्ष पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा और श्रवण क्रम से जानने चाहिए। शेष वर्ष पूर्वापरक्रम से दो-दो नक्षत्रों के कहे गये हैं।

'तथा च गर्गः—

नववारा द्विनक्षत्रा गुरोर्द्वादशमासिकाः।
शेषास्त्रयस्त्रिनक्षत्राः पञ्चमैकादशान्तिमाः॥

जैसाकि गर्ग ने कहा है:—

गुरु के द्वादशमासिक वर्ष में दो-दो नक्षत्र नौ बार तथा शेष पञ्चम, एकादश और द्वादशवर्ष तीन-तीन नक्षत्रों के होते हैं।

तथा च काश्यपः—

कार्तिकादिसमा ज्ञेया द्विनक्षत्रविचारिणा।
त्रिभं भाद्रपदे ज्ञेयं फाल्गुने श्रावणे तथा॥

जैसाकि काश्यप ने कहा है:—

कार्तिकादि मासानुसार वर्ष दो-दो नक्षत्र के अनुसार विचारित होते हैं। भाद्रपद, फाल्गुन और श्रावणवर्ष तीन-तीन नक्षत्रों के होते हैं।

तस्मात् "क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्" इत्यत्र पञ्चमैकादश-दशास्त्रिनक्षत्राश्चेति शोभनम्॥२॥

इसलिए "क्रमशः पञ्चम, उपान्त्य और अन्त्यवर्षों" का अर्थ ५, ११ और १० वर्ष त्रिनक्षत्रात्मक होते हैं। यह कथन उचित है॥२॥

---

१. तथा च वृद्धगर्ग इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैतेषां कार्तिकादीनां वर्षाणां फलानि विवक्षुरादौ कार्तिक आह :–

शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च।
वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्तिके वर्षे ॥ ३॥

अब इन कार्तिकादि वर्षों का फल कहते हैं: –

कार्तिकवर्ष में वाहन (शंकट) से आजीविकावालों, अग्नि से आजीविका करनेवालों तथा गायों (पशुओं) को पीड़ा होती है। इसमें रोग तथा शस्त्रकोप (युद्ध) और रक्त-पीत पुष्पों की वृद्धि होती है ॥ ३॥

कार्तिके वर्षे शकटोपजीविनां शकटेन गन्त्र्या य उपजीवन्ति तेषाम्। तथा अनलोपजीविनां सुवर्णकारलोहकारा [1]यस्कारादीनाम्। गवां च पीडा भवति। तथा व्याधयो रोगाः शस्त्रकोपश्च युद्धानि भवन्ति। तथा रक्तपीतककुसुमानां द्रव्याणां रक्तं पीतं च पुष्पं येषां सम्भवति तेषां च वृद्धिर्भवति। तथा च गर्गः–

कार्तिकः प्रचुरातङ्कः क्षुच्छस्त्राग्निभयप्रदः।
गोशाकटिकपीडां च करोत्येवमवृष्टिदः॥ इति॥ ३॥

कार्तिकवर्ष में शकट से अर्थात् गाड़ी से आजीविकावाले, अग्नि से आजीविकावाले अर्थात् सुवर्णकार, लोहार, अयस्कार (विशिष्ट लोहार) और गायों को पीड़ा होती है। रोग, शस्त्रकोप अर्थात् युद्ध होते हैं। लाल और पीले फूलों का अर्थात् उन द्रव्यों का जिनका पुष्प लाल और पीला होता है, उनकी वृद्धि होती है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

कार्तिकवर्ष में आतंक की अधिकता, क्षुधा, शस्त्र और अग्नि का भय, गाय तथा परिवहनकर्मियों को कष्ट और अनावृष्टि होती है ॥ ३॥

अथ मार्गशीर्ष आह :–

सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः।
व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम् ॥ ४॥

अब मार्गशीर्षवर्ष का फल कहते हैं :–

मार्गशीर्षवर्ष में अनावृष्टि, पशु, टिड्डी और अण्डज जीवों से कृषि उपज की हानि होती है। रोगों का भय तथा राजाओं का अपने मित्रों से भी वैमनस्य हो जाता है ॥ ४॥

सौम्ये मार्गशीर्षेऽब्दे अनावृष्टिर्भवति। मृगा अरण्यपशवः, आखवो मूषकाः, शलभाः प्राणिनः कीटजातयः, अण्डजाः पक्षिणः, एतैः सस्यानां वधो नाशो भवति।

---

१. अयस्कारो विशिष्टलोहकार इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा व्याधिभयं रोगभीतिः। भूपानां राज्ञां मित्रैरपि सुहृद्भिरपि वैरमप्रीतिर्जायत उत्पद्यते। किं पुनः शत्रुभिः सह न भवेदिति। तथा च गर्गः—

वर्षहन्ता व्याधिकरो मिथो भेदभयावहः।
शलभाद्याकुलः सौम्यो दुर्भिक्षभयकारकः॥इति॥४॥

सौम्य अर्थात् मार्गशीर्षवर्ष में अवर्षण होता है। मृग अर्थात् जङ्गली पशुओं, आखु अर्थात् चूहे, शलभ अर्थात् कीट जाति के जीवों (कीट-पतङ्गों), अण्डज अर्थात् पक्षियों; इनसे सस्यों का विनाश होता है। तथा रोगभय उत्पन्न होता है। राजाओं का सुहृद् स्वजनों से भी मनमुटाव उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि पुनः शत्रुओं से उनका विरोध क्यों नहीं हो सकता ? जैसाकि आचार्यगर्ग ने कहा है :—

मार्गशीर्षवर्ष मारक, रोगकारक, राजाओं में परस्पर विभेद और भय प्रदान करने वाला होता है। इसमें टिड्डी पतङ्गादि की बहुलता और अकाल से भय प्राप्त होता है॥४॥

अथ पौष आह :—

शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः।
द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च॥५॥

अब पौषवर्ष का फल कहते हैं :—

पौषवर्ष संसार केलिए कल्याणकारी होता है। राजाओं का परस्पर वैर समाप्त हो जाता है। धान्य की उपलब्धता द्विगुणित तथा त्रिगुणित मात्रा में होती है, और पौष्टिक कार्यों (विकास कार्यों) की ख्याति होती है॥५॥

पौषोऽब्दो जगतो लोकस्य शुभकृच्छुभमिष्टं करोति। क्षितिपा राजानः परस्परमन्योन्यं निवृत्तवैरा विगतद्वेषा भवन्ति। धान्यस्यार्घो द्विगुणस्त्रिगुणो वा भवति। धान्यस्य यन्मूल्यमासीत्तेनैव द्विगुणं त्रिगुणं वा धान्यं लभ्यते। तथा पौष्टिककर्मणां पुष्टिदानां कार्याणां प्रसिद्धिर्भवति। अतिशयेन भवतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

प्रशान्तव्याधिदुर्भिक्षदुर्वर्षाशनितस्करः।
सर्वलक्षणसम्पन्नः पौषः संवत्सरोत्तमः॥इति॥५॥

पौषवर्ष लोक की अभीष्टपूर्ति करता है। राजागण परस्पर विद्वेषरहित हो जाते हैं। धान्य की प्राप्ति पूर्व निर्धारित मूल्यों पर ही द्विगुणित तथा त्रिगुणित मात्रा में होती है। इसमें पौष्टिक कर्मों की अर्थात् पुष्टिदायक कार्यों की प्रसिद्धि होती है। अर्थात् अत्यधिक मात्रा में पौष्टिक कार्य होते हैं। जैसाकि आचर्यगर्ग ने कहा है :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौषसंवत्सर सभी शुभलक्षणों से संयुक्त श्रेष्ठ वर्ष होता है। इसमें रोग, दुष्काल और अनियमित वृष्टि, तड़ित-पात और चौरादि के भय का उपशमन होता है ॥५॥

अथ माघ आह :–

पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्।
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च ॥६॥

अब माघवर्ष का फल कहते हैं :–

माघवर्ष में पितरों की पूजा में वृद्धि तथा सभी प्राणियों में हार्दिक सन्तोष उत्पन्न होता है। नैरुज्य, वर्षा, धान्यसम्पत्ति में समर्घता और मित्रों का लाभ होता है ॥६॥

माघे पितृणां पूजापरिवृद्धिर्भवति। अत्यर्थं जनाः पितृपूजाकर्मणि रता भवन्तीत्यर्थः। मघायाः पितृदैवतत्वात् सर्वभूतानां च हार्दिश्चित्ततुष्टिर्भवति। तथा आरोग्य नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, धान्यस्यार्घसम्पत्समर्घता, एते भवन्ति। तथा मित्रलाभश्च भवति। यत्किञ्चिन्मित्रत्वमापद्यत इत्यर्थः। तथा च गर्गः–

माघवर्ष में पितरों की पूजा में समुन्नति (अधिकता) होती है। अर्थात् अत्यधिक लोग पितरों की पूजा के कार्य में संलग्न होते हैं। यतः मघानक्षत्र के स्वामी पितृ-देव होते हैं, अतः इस मघावर्ष में पितरों की तृप्ति होने के कारण सभी प्राणियों को हार्दिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है। स्वास्थ्यलाभ (नीरोगता), वर्षा, धान्य-सम्पत्ति की समर्घता होती है, तथा मित्रों का लाभ होता है। अर्थात् जो कोई भी मित्र बन जाता है। जैसाकि आचार्यगर्ग ने कहा है :–

क्षेमारोग्यं सुभिक्षं च वर्षणं शिवमेव च।
पितृपूजाः प्रवर्तन्ते माघे राज्ञां च सन्धयः॥इति॥६॥

माघवर्ष में कल्याण, आरोग्य, सुभिक्ष, वर्षा, मनोनुकूलता और पितरों की पूजा तथा राजाओं में परस्पर सन्धि होती है ॥६॥

अथ फाल्गुन आह :–

फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि।
दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्राः॥७॥

अब फाल्गुनवर्ष का फल कहते हैं :–

फाल्गुनवर्ष में कहीं-कहीं पर कल्याण, वर्षा तथा सस्यों की उत्पत्ति होती है। महिलाओं के लिए दुर्भाग्यपूर्ण, चोरों की प्रबलता और राजाओं में उग्रता होती है ॥७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फाल्गुनवर्षे क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि विन्याज्जानीयात्। क्वचित्क्षेमं क्वचिद्वृष्टिः क्वचिच्च सस्यं भवति न सर्वत्र। तथा प्रमदानां स्त्रीणां दौर्भाग्यं दुर्भाग्यत्वं तन्नृणामवाल्लभ्यं भवति। प्रबलाश्चौरास्तस्करा बहवो भवन्ति। तथा नृपाश्च राजान उग्राः क्रूरा भवन्ति। तथा च गर्गः—

नारीदौर्भाग्यकृच्चौरः फाल्गुनः सस्यवर्षदः।
क्वचित् क्षेमं सुभिक्षं च क्वचिदक्षेमकारकः॥ इति॥७॥

फाल्गुनवर्ष में किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर क्षेम, वृष्टि और सस्यों की वृद्धि जाननी चाहिए। कहीं पर क्षेम (कल्याण) कहीं पर वृष्टि और कुछ स्थानों पर सस्योत्पत्ति होती है, सभी स्थानों पर नहीं। स्त्रियों का दुर्भाग्य अर्थात् उनको पुरुषों का कष्ट (वियोग) होता है। प्रबल चोर अर्थात् तस्करों की बहुलता होती है और राजागण क्रूर हो जाते हैं। जैसाकि गर्ग ने कहा है :—

फाल्गुनवर्ष सस्य और वर्षा को देता है और नारियों का दौर्भाग्य तथा चौरकारक होता है। कुछ स्थानों पर क्षेम और सुभिक्ष होता है, जबकि कुछ स्थानों के लिए क्षेमकारक नहीं होता है॥७॥

अथ चैत्र आह :—

चैत्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः।
वृद्धिश्च कोशधान्यस्य भवति पीडा च रूपवताम्॥८॥

चैत्रवर्ष का फल :—

चैत्रवर्ष में अल्पवृष्टि, उत्तम खाद्यान्न, कल्याण, राजाओं में मृदुता, कोषधान्यों की वृद्धि और सुन्दर रूपवालों को कष्ट होता है॥१८॥

चैत्रेऽब्दे वृष्टिर्मन्दा अल्पा भवति। प्रियमन्नं सुदुर्लभमन्नं भवति। लोके क्षेमं लब्धपालनं तथा अवनिपा राजानो मृदवोऽक्रूरा भवन्ति। कोशधान्यस्य शिम्बिधान्यस्य मुद्गादेर्वृद्धिर्बाहुल्यम्। तथा रूपवतां सुरूपाणां पीडा भवति। चशब्दः समुच्चये। तथा च गर्गः—

चैत्रवर्ष में मन्दवृष्टि अर्थात् अल्पवृष्टि होती है। प्रिय अन्न अर्थात् दुर्लभ अन्नों का उत्पादन होता है। लोक में क्षेम अर्थात् प्राप्त सम्पत्ति की रक्षा तथा राजालोग क्रूरतारहित होते हैं। कोषधान्य अर्थात् मूँग आदि शिम्बीधान्य का बाहुल्य होता है। सुरूप व्यक्तियों को पीड़ा होती है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :—

मृदुप्रचारा राजानः प्रियमन्नं जनस्य च।
क्षेमारोग्यं च मृदुता चैत्रवर्षस्तथा मृदुः॥ इति॥८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चैत्रवर्ष में राजागण मृदु व्यवहार करते हैं। लोगों के प्रिय अन्न उत्पन्न होते हैं और कल्याण तथा नीरोगता एवं स्नेहभाव होता है ॥८॥

अथ वैशाख आह :—

वैशाखे धर्मरता विगतभयाः प्रमुदिताः प्रजाः सनृपाः।
यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९॥

अब वैशाखवर्ष का फल कहते हैं :—

वैशाखवर्ष में जनता धर्मकार्य में संलग्न, भयरहित और राजा सहित सभी प्रसन्न रहते हैं। इसमें प्रजा की याज्ञिक क्रियाओं में प्रवृत्ति और सभी प्रकार के सस्यों का परिपाक होता है ॥९॥

वैशाखेऽब्दे सनृपाः प्रजा नृपेण राज्ञा सहिताः सर्वजनपदा धर्मरता धर्मसक्ता विगतभया भयरहिताः प्रमुदिताः प्रहृष्टाश्च भवन्ति। तथा यज्ञक्रियाणां यागकर्मणां प्रवृत्तिः प्रवर्तनं भवति। सस्यानां सर्वेषां च निष्पत्तिरशेषाणां सस्यानां समृद्धिर्भवति। तथा च गर्गः—

ईतयः प्रथमं यान्ति सन्धिं कुर्वन्ति पार्थिवाः।
वैशाखे तु सस्यजन्या वृष्टयः सम्भवन्ति हि ॥ इति ॥ ९॥

वैशाखवर्ष में राजा सहित प्रजा, जनपदों के सभी लोग, धर्मसक्त, भयरहित और प्रसन्न रहते हैं। यज्ञक्रियाओं का सम्पादन होता है। सभी प्रकार के सस्यों की संवृद्धि होती है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :—

ईतिभय (टिड्डी, पतङ्गादि) शान्त होता है, राजागण परस्पर सन्धि करते हैं, और इस प्रकार वैशाखवर्ष में सस्यों के अनुकूल वर्षा होती है ॥९॥

अथ ज्येष्ठ आह :—

ज्यैष्ठे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः।
पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कङ्गुं 'शमीजातिम् ॥ १०॥

अब ज्येष्ठवर्ष का फल कहते हैं :—

ज्येष्ठवर्ष में जाति, कुल, धन, समुदाय में श्रेष्ठजनों, धर्म-ज्ञानियों सहित राजागण पीड़ित होते हैं। इसी प्रकार कङ्गु, साँवां, टाकुनी तथा शमीजाति (तिल आदि) को छोड़कर सभी धान्यों का विनाश होता है ॥१०॥

ज्येष्ठेऽब्दे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा जातीनां ये श्रेष्ठाः प्रधानाः, कुलश्रेष्ठाः सत्कुलजाः, धनश्रेष्ठा अतिधनिनः, श्रेणीश्रेष्ठा बहूनां समानजातीयानां संज्ञा श्रेणी, ततः श्रेष्ठाः

१. सबीजातीति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधानाः, नृपा राजानस्ते च सधर्मज्ञा धर्मज्ञैर्जनैः सहिताः, ते सर्व एव पीड्यन्ते। तथा धान्यानि च पीड्यन्ते सर्वाण्येव। किन्तु हित्वा कङ्गुं शमीजातिम्। कङ्गुः प्रियङ्गुः, शमीजातिस्तिलादिः, एतद्धित्वा वर्जयित्वा। केचित् सबीजानीति पठन्ति। तथा च गर्गः—

वृक्षगुल्मलतासस्यक्षेमवर्षविनाशनः ।
क्रूराज्ञादीप्तिजननो ज्यैष्ठो ज्येष्ठनृपान्तकृत् ॥ इति ॥ १० ॥

ज्येष्ठवर्ष में जाति, कुल, धनश्रेष्ठ श्रेणीश्रेष्ठ, जातियों में श्रेष्ठ अर्थात् जातियों में प्रधान, कुलश्रेष्ठ अर्थात् उत्तम कुल में उत्पन्न, धनश्रेष्ठ अर्थात् अत्यधिक धनी, अनेक समान जातियों को श्रेणी कहते हैं। उन श्रेणियों के प्रधान श्रेणीश्रेष्ठ, धर्मज्ञों सहित राजा; इन सभी लोगों की तथा सभी धान्यों की क्षति होती है। किन्तु कङ्गु और शमीजाति के अन्नों को छोड़कर। प्रियङ्गु को कङ्गु कहते हैं और तिलादि को शमीजाति कहा जाता है; इन सबको छोड़कर अर्थात् एतदतिरिक्त। कुछ लोग "बीज सहित" यह पाठ कहते हैं। जैसाकि आचार्यगर्ग ने कहा है :—

वृक्ष, गुल्म, लता, सस्य, क्षेम और वर्षा का विनाश होता है। कठोर राजाज्ञा के कारण प्रजा में आन्दोलन होता है, तथा इस ज्येष्ठवर्ष में श्रेष्ठ राजाओं की मृत्यु होती है ॥ १० ॥

अथाऽऽषाढ आह :—

आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिदवृष्टिरन्यत्र।
योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ॥ ११ ॥

अब आषाढ़वर्ष का फल कहते हैं :—

आषाढवर्ष में कहीं कहीं सस्य उत्पन्न होते हैं, तथा दूसरे स्थानों पर अनावृष्टि होती है। योग-क्षेम मध्यम रहता है और, राजागण विकल होते हैं ॥ ११ ॥

आषाढेऽब्दे क्वचित्क्वचित्सस्यानि जायन्ते उत्पद्यन्ते न सर्वत्र। अन्यत्रान्यत्र देशेषु अवृष्टिरवर्षणं भवति। तथा लोके योगक्षेमं मध्यमं भवति। अलब्धलाभो योगः, लब्धपालनं क्षेमम्। तच्च मध्यमं भवति। न चात्युत्कृष्टं न चातिनिकृष्टमित्यर्थः। भूपाला राजानो व्यग्राः सोद्यमा भवन्ति। तथा च गर्गः—

दुर्भिक्षाक्षेमजननश्चाषाढोऽन्योन्यभेदकृत्।
भूपालयुद्धजननो मध्यमक्षेमकारकः ॥ इति ॥ ११ ॥

आषाढवर्ष में सभी जगह सस्य नहीं होते हैं, अर्थात् कुछ ही जगहों पर उत्पन्न होते हैं। अन्य देशों में अनावृष्टि होती है। लोक में योग-क्षेम मध्यम होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। अप्राप्त की प्राप्ति को योग तथा प्राप्त वस्तु के परिपालन को क्षेम कहते हैं, और यह मध्यम होता है, न तो अधिक उत्तम होता है न अधिक निकृष्ट। राजागण व्यग्र अर्थात् उद्यमसहित (युद्धोन्मुख) होते हैं। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

आषाढ़वर्ष दुर्भिक्ष तथा अकल्याण और परस्पर भेद का जनक होता है। राजाओं के लिए युद्धकारक तथा मध्यम क्षेम करनेवाला होता है ॥११॥

अथ श्रावण आह :–

श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति।
क्षुद्रा ये पाखण्डाः पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ॥१२॥

अब श्रावणवर्ष का फल कहते हैं :–

श्रावणवर्ष में समुचित कल्याण होता है और सस्यों का परिपाक भली-भाँति होता है। नीच तथा पाखण्डी लोग एवं उनके अनुयायी पीड़ित होते हैं ॥१२॥

श्रावणवर्षे क्षेमं भवति। तथा सर्वाणि सस्यानि सम्यग् निश्चितं पाकं निष्पत्तिमुपयान्ति। तथा ये क्षुद्राः क्रूरा ये च पाखण्डा वेदबाह्यास्ते सर्वे पीड्यन्ते। ये च तद्भक्तास्तेषां क्षुद्राणां पाखण्डानां भक्ताः सेवकास्ते पीड्यन्ते बाध्यन्ते। तथा च [1]गर्गः–

श्रावणः सस्यसम्पन्नः क्षेमारोग्यकरः शिवः।
धान्यं समर्घतां याति सम्यग् वर्षति वासवः।
क्षुद्रान् पाखण्डिनः सर्वान् तद्भक्तांश्चोपतापयेत् ॥ इति ॥१२॥

श्रावणवर्ष में क्षेम होता है तथा सभी प्रकार के सस्य उचित रीति से पककर तैयार हो जाते हैं। जो क्षुद्र अर्थात् क्रूर और जो पाखण्ड अर्थात् वेदविरुद्ध होते हैं, वे सभी कष्ट पाते हैं। जो क्षुद्रों तथा पाखण्डियों के भक्त होते हैं, वे भी कष्ट पाते हैं। जैसाकि गर्गाचार्य ने कहा है :–

श्रावणवर्ष में सस्यसम्पत्ति, क्षेम, आरोग्य और कल्याण होता है। धान्य सममूल्य पर प्राप्त होते हैं और अच्छी वर्षा होती है। क्षुद्र और पाखण्डी तथा उनके सभी भक्तों को परिताप प्राप्त होता है ॥१२॥

अथ भाद्रपद आह :–

भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च।
न भवत्यपरं सस्यं क्वचित्सुभिक्षं क्वचिच्च भयम् ॥१३॥

अब भाद्रपदवर्ष का फल कहते हैं :–

भाद्रपदवर्ष में वल्लीज (लताओं में होने वाली फलियाँ) और पहले बोये हुए

---

१. वृद्धगर्ग इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सस्यों का परिपाक होता है। पश्चात् बोये हुए सस्य नहीं होते हैं। कहीं पर सुन्दर वर्षा और कहीं पर भय होता है॥१३॥

भाद्रपदेऽब्दे वल्लीजं मुद्गादिकं निष्पत्तिं परिपाकं याति प्राप्नोति। तथा च पूर्वं प्रथममुप्तं सस्यं निष्पत्तिं याति। अपरं पश्चादुप्तं सस्यं न भवति। क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च भयं भीतिर्भवति। तथा च गर्गः—

प्रौष्ठपात् सस्यजननो नाशयत्यपरं च यत्।
करोति च क्वचित् क्षेमं क्वचिदक्षेमकारकः॥इति॥१३॥

भाद्रपदवर्ष में वल्लीज अर्थात् मूँग आदि अन्नों का परिपाक होता है, तथा प्रथम बोये गये सस्य परिपक्व होते हैं, पश्चात् (विलम्ब से) बोये गये सस्य नहीं होते हैं। कहीं पर सुभिक्ष (पर्याप्त अन्न) और कहीं पर भय उत्पन्न होता है। जैसाकि गर्ग ने कहा है :—

भाद्रपदवर्ष में सस्य उत्पन्न होता है परन्तु विलम्ब से होने वाले सस्य बाधित होते हैं। यह वर्ष कहीं पर क्षेम और कहीं पर अशुभकारक होता है॥१३॥

अथाऽऽश्वयुज आह :—

आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्।
प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम्॥१४॥

अब आश्विनवर्ष का फल कहते हैं :—

आश्विनवर्ष में निरन्तर वर्षा होती है। जनता प्रसन्न रहती है और कल्याण होता है। सभी प्राणियों में शक्ति का सञ्चार होता है और सभी प्रकार के अन्नों की प्रचुरता होती है॥१४॥

आश्वयुजेऽब्दे वर्षेऽजस्रं सततं जलं पतति सततं वर्षतीत्यर्थः। तथा प्रजाः सर्वाः प्रमुदिताः प्रहृष्टाः। क्षेमं च भवति। तथा प्राणभृतां शरीरिणां सर्वेषामवशेषाणां प्राणचयो बलोपचयो भवति। तथाऽन्नबाहुल्यमतिसुभिक्षं च। तथा च वृद्धगर्गः—

पर्याप्तसस्यान्नजलक्षेमश्चाश्वयुजः शिवः।
सम्प्रवृत्तोत्सवः श्रीमान् सर्वकामसुखावहः॥इति।

आश्विनवर्ष में निरन्तर जल गिरता है अर्थात् अनवरत वर्षा होती है, तथा जनता प्रमुदित होती है, और कल्याण होता है। सम्पूर्ण प्राणियों के बल की अभिवृद्धि होती है। अन्नों की बहुलता और सुभिक्ष होता है। जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :—

आश्विनवर्ष में पर्याप्त सस्त, अन्न, जल, क्षेम तथा कल्याण होता है। लोग श्रीसम्पन्न, उत्सवों में तल्लीन और सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च समाससंहितायाम् :–

गुरुरुदयति नक्षत्रे यस्मिंस्तत्संज्ञितानि वर्षाणि।
द्विभयोगीन्याग्नेयात्त्रिभमन्त्यं पञ्चममुपान्त्यम्॥

जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

अनेन वाक्येनाऽऽचार्यस्य प्रथमैव व्याख्या साध्वी। उपान्त्यमेकादशमन्त्यं च द्वादशमिति। तथा च :–

जिस नक्षत्र में गुरु का उदय होता है, उस नक्षत्रानुसार ही उसके वर्ष होते हैं। कृत्तिका से प्रारम्भ कर दो-दो नक्षत्रों से तथा अन्त्य अर्थात् द्वादश वर्ष तीन नक्षत्रों का और उपान्त्य अर्थात् एकादश वर्ष पाँच नक्षत्रों का होता है।

फाल्गुनचैत्राषाढा मध्याः सौम्योऽधमस्तथा ज्येष्ठः।
वैशाखपौषमाघाः शुभफलदाः श्रावणाद्याश्च॥ इति॥ १४॥

फाल्गुन, चैत्र और आषाढवर्ष मध्यमफलदायक, मार्गशीर्ष अधमफलदायक तथा ज्येष्ठ, वैशाख, पौष, माघ और श्रावण आदि शुभफलदायक होते हैं॥१४॥

अथ नक्षत्रेषु चरतो गुरोर्विशेषफलमाह :–

उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानाम्।
याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी॥ १५॥

अब नक्षत्रों में गुरु के गमनानुसार विशेषफल कहते हैं :–

गुरु नक्षत्रों के उत्तरभाग में गमन करता हुआ आरोग्य, सुभिक्ष और कल्याणकारक होता है। दक्षिणभाग में गमन करता हुआ इसके विपरीत फल देता है। नक्षत्रों के मध्यभाग से गमन करता हुआ गुरु मध्यम फलदायक होता है॥१५॥

वाक्पतिर्बृहस्पतिर्भानां नक्षत्राणामुदगुत्तरेण चरन् गच्छन्नारोग्यसुभिक्षक्षेमकरः आरोग्यं सुभिक्षं क्षेमं च करोति। याम्ये दक्षिणेन चरंस्तद्विपरीतः अनारोग्यमसुभिक्षमक्षेमं च करोति। मध्येन तु चरन् मध्यभागेन नक्षत्रस्य गच्छन् मध्यफलदायी भवति। मध्यमं फलं ददाति न शुभं नाशुभमिति॥ १५॥

वाक्पति अर्थात् गुरु नक्षत्रों के उत्तरभाग से सञ्चरण करता हुआ आरोग्य, सुभिक्ष और क्षेम (कल्याण) करता है। दक्षिणभाग से सञ्चरण करता हुआ; इसके विपरीत रोग, दुर्भिक्ष और अकल्याण करता है। मध्यभाग से विचरण करता हुआ मध्यमफल देता है, अर्थात् न शुभफलकारक होता है और न तो अशुभफलकारक॥१५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यदप्याह :—

विचरन् भद्वयमिष्टस्तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफलः।
सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं यदि कदाचित् ॥१६॥

अन्य विशेषफल भी कहते हैं :—

यदि एक ही वर्ष में दो नक्षत्रों में गुरु गमन करता हो, तो वह अनुकूल होता है और वर्षपर्यन्त मध्यम फलदायक होता है। यदि कथञ्चित् दो से अधिक नक्षत्रों में विचरण करे, तो सस्यों के लिए विनाशकारी होता है ॥१६॥

वत्सरेण वर्षेण भद्वयं नक्षत्रद्वयं विचरन् गच्छन् गुरुरिष्टः शोभनः। एतदुक्तं भवति— बृहस्पतिर्यदा वर्षेण नक्षत्रद्वयं भुङ्क्ते तदा स प्रजानां शुभकरो भवति। तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफल इति। तन्नक्षत्रद्वयं सार्द्धं यदि वत्सरेण विचरति तदा मध्यफलो मध्यमं फलं करोति। न शुभं नाप्यशुभमित्यर्थः। सस्यानां विध्वंसीति। अधिकं भद्वयात् सार्द्धाद्यदि कदाचिद्विचरेद्वर्षेण तदा सस्यानां विध्वंसी भवति। सस्यानि विनाशयतीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

मध्यदक्षिणोत्तरमार्गप्रविचारी मध्यदारुणोत्तमप्रजाभावकरः। श्वेतरक्तपीतकृष्णवर्णो ब्राह्मणादिवर्णजयाय। सपादमृक्षद्वयमब्देन प्रविचरन् सस्यसम्पत् करोति। विपर्ययाद्विपरीतः ॥१६॥

एक वर्ष में दो नक्षत्रों पर विचरण करता हुआ गुरु इष्ट अर्थात् शुभ होता है। कथनाभिप्राय यह है कि जब वृहस्पति एक वर्ष में दो नक्षत्रों का भोग करता है, तब वह जनता के लिए शुभकारक होता है। उसके साथ वर्षपर्यन्त मध्यम फल करता है। न तो शुभफल और न तो अशुभफल होता है, यह भावार्थ है। यदि कभी एक ही वर्ष में दो से अधिक नक्षत्रों के साथ विचरण करता है, तब सस्यों का विध्वंस होता है। अर्थात् सस्यों को विनष्ट करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

मध्य, दक्षिण और उत्तरमार्गों पर विचरण करता हुआ गुरु मध्य, क्रूर, उत्तम और प्रजा के लिए अभावकारक होता है। श्वेत, लाल, पीला और काले रङ्ग का ब्राह्मणादि वर्णों के लिए विजयकारक होता है। एक वर्ष में सवा दो नक्षत्रों में गमन करता हुआ सस्य-सम्पत्ति करता है, और इसके विपरीत गमन में विपरीत फल देता है ॥१६॥

अथ गुरोर्वर्णलक्षणमाह :—

अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणागमः श्यामे।
हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥१७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरु का वर्णानुसार लक्षण कहते हैं :–

अग्निवर्ण का बृहस्पति अग्नि का भय, पीतवर्ण का रोग, कृष्णवर्ण का युद्ध और हरितवर्ण का तस्करभय तथा रक्तवर्ण का शस्त्रभय उत्पन्न करता है। धूमवर्ण का अनावृष्टि करता है। दिन में गुरु दृश्य हो तो राजा का वध होता है। विस्तृत आकार का, स्वच्छ, सुन्दर तारासदृश गुरु रात्रि में दृष्ट हो, तो जनता निरोग रहती है ॥१७॥

धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे।
विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे [1]प्रजाः स्वस्थाः॥१८॥

धूमवर्ण का बृहस्पति अनावृष्टि करता है। दिन में गुरु दृश्य हो तो राजा का वध होता है। विस्तृत आकार का, स्वच्छ, सुन्दर तारासदृश रात्रि में गुरु दृष्ट हो तो जनता निरोग रहती है ॥१८॥

त्रिदशगुरौ देवाचार्ये बृहस्पतावनलवर्णेऽग्निप्रभेऽनलभयमग्निभीतिर्भवति। पीते पीतवर्णे व्याधिः पीडा। श्यामे श्यामवर्णे रणागमः संग्रामः। हरिते हरितवर्णे शुकाभे तस्करेभ्यश्चौरेभ्यः पीडोपतापो लोकानां भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रभयम्॥१७॥

त्रिदशगुरु अर्थात् देवगुरु बृहस्पति के अग्निसदृशवर्ण का होने पर अग्निभय होता है। पीतवर्ण में रोगपीड़ा होती है। श्यामवर्ण का होने पर युद्धागम होता है। हरितवर्ण अर्थात् शुकवर्ण का होने पर लोक में चोरों का उत्पात होता है। रक्तवर्ण का होने पर शस्त्र-भय होता है ॥१७॥

धूमाभे धूमप्रभे अनावृष्टिरवर्षणम्। दिवा दिवसभागे दृष्टे नृपवधो राज्ञो मृत्युर्भवति। तथा च पराशरः–

बृहस्पति का धूम के समान वर्ण होने पर अनावृष्टि होती है। दिन में गुरु के दृष्ट होने पर राजा की मृत्यु होती है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

कदाचिद्यत्र दृश्येत दिवा देवपुरोहितः।
राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति॥

विपुले महाबिम्बे। अमले निर्मले। सुतारे शोभनतारे। रात्रौ निशि। दृष्टे प्रजा लोकाः स्वस्था नीरोगा भवन्ति। केचिन्नृपाः स्वस्था इति पठन्ति॥१८॥

यदि कभी दिन में गुरु दिखायी पड़े तो राजा का मरण होता है, अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है। बिम्ब के विस्तृत होने पर, निर्बल होने पर, सुन्दर तारा होने पर तथा रात्रि में दृष्ट होने पर लोग नीरोग होते हैं। कुछ लोग "राजा स्वस्थ होता है" यह पाठ करते हैं ॥१८॥

---

१. नृपाः स्वस्था इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ संवत्सरपुरुषमाह :–

रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढाद्वयं
सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम्।
देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं
पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम्॥१९॥

अब संवत्सरपुरुष का वर्णन करते हैं :–

रोहिणी और कृत्तिकानक्षत्र संवत्सर के शरीर होते हैं। दोनों उत्तराषाढानक्षत्र नाभि, आश्लेषा हृदय और मघा नक्षत्र पुष्प होता है। इनके शुद्ध (शुभग्रहयुक्त) होने पर शुभ होता है। शरीरस्थान क्रूरग्रह से पीड़ित हो तो अग्नि और वायु का भय, नाभि पीड़ित हो तो क्षुधा-भय तथा पुष्प पीड़ित हो तो फल-मूलों का क्षय होता है और हृदय पीड़ित होने पर निश्चय ही सस्य का विनाश होता है॥१९॥

रोहिण्योऽनलभं कृत्तिकाः। एते द्वे नक्षत्रे संवत्सरतनुः संवत्सरपुरुषस्य शरीरम्। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे तस्यैव नाभिः। सार्पमाश्लेषा हृत् हृदयम्। पितृदैवतं मघा कुसुमं पुष्पमिति। प्रयोजनमप्याह :– शुद्धैः शुभं तैः फलमिति। तैस्तन्वादिभिः शुद्धैः पापग्रहविरहितैर्लोके शुभं फलं भवति। देहे क्रूरनिपीडित इति। क्रूरग्रहा रविभौमसौराः। देहे तनौ कृत्तिकारोहिण्योरित्यर्थः। क्रूरनिपीडिते क्रूरहते तयोर्यदि पापाः स्थितास्तदा अग्न्यनिलजं भयं भवति। अग्निर्हुतवहः, अनिलो वायुः, अनयोर्जातम्। तथा नाभ्यां पीडितायामषाढाद्वय इत्यर्थः। क्षुत्कृतं दुर्भिक्षभयं भवति। पुष्पे मघायां पीडितायां मूलफलक्षयः, मूलानां मूलद्रव्याणां फलानां चाम्रादीनां क्षयो विनाशो भवति। अथशब्दः स्वार्थे। हृदये आश्लेषायां पीडितायां ध्रुवमवश्यं सस्यस्य धान्यस्य नाशः क्षयो भवति। तथा च काश्यपः–

कृत्तिका रोहिणी चोभे संवत्सरतनुः स्मृता।
अषाढाद्वितयं नाभी सार्पं हृत्कुसुमं मघा॥
क्रूरग्रहहते देहे दुर्भिक्षानलमारुताः।
क्षुद्भयं तु भवेन्नाभ्यां पुष्पे मूलफलक्षयः॥
हृदये सस्यहानिः स्यात् सौम्यैः पुष्टिः प्रकीर्तिता॥इति॥१९॥

रोहिणी और अनलनक्षत्र अर्थात कृत्तिका, ये दो नक्षत्र संवत्सरपुरुष के शरीर होते हैं। दोनों आषाढा अर्थात् पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा उसकी नाभि होती है। सार्प अर्थात् आश्लेषानक्षत्र हृदय, पितृदैवत अर्थात् मघानक्षत्र पुष्प होता है। इसका प्रयोजन कहते हैं :– शुद्ध होने पर शुभफल होता है। इन शरीरादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अङ्गों के शुद्ध अर्थात् पापग्रहरहित होने पर लोक में शुभफल होता है। शरीर क्रूरग्रहों से निपीड़ित हो, इसका भावार्थ यह है कि क्रूरग्रह रवि और शनि, देह अर्थात् कृत्तिका और रोहिणी, ये यदि क्रूरग्रह से पीड़ित होते हैं अर्थात् इन दोनों नक्षत्रों में यदि पापग्रह स्थित रहते हैं, तो अग्नि और वायु का भय होता है। अग्नि और अनिल (वायु), इन दोनों से उत्पन्न भय होता है। नाभि पीड़ित हो अर्थात् दोनों आषाढा के पीड़ित होने पर क्षुधाभय अर्थात् दुर्भिक्ष का भय होता है। पुष्प अर्थात् मघानक्षत्र के पीड़ित होने पर मूल और फलों का क्षय अर्थात् मूलद्रव्यों का और आम्रादि द्रव्यों का विनाश होता है। "अथ" शब्द स्वार्थ में प्रयुक्त है। हृदय में अर्थात् आश्लेषानक्षत्र के पीड़ित होने पर अवश्य ही सस्यों का अर्थात् धान्यपदार्थों का क्षय होता है। जैसाकि काश्यप ने कहा है :–

कृत्तिका और रोहिणी; ये दोनों नक्षत्र संवत्सर के शरीर कहे गये हैं। दोनों आषाढा नक्षत्र नाभि, आश्लेषा हृदय और मघा कुसुम होता है। शरीरनक्षत्र के क्रूर ग्रहों से पीड़ित (विद्ध) होने पर दुर्भिक्ष तथा अग्नि और वायु का भय होता है। नाभि के पीड़ित होने पर क्षुधा-भय (अकाल) तथा पुष्पनक्षत्र (मघा) के पीड़ित होने पर मूल और फलों का विनाश होता है। हृदयनक्षत्र (आश्लेषा) पीड़ित हो तो सस्य-हानि होती है। शुभग्रह से युक्त अङ्गों (नक्षत्रों) के होने पर पुष्टिदायक शुभफल कहा गया है ॥१९॥

अधुना षष्ट्यब्दानयनमाह :–

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला-
द्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः।
नवाष्टपञ्चाष्ट ८५८९ युतानि कृत्वा
विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ३७५० ॥२०॥
लब्धेन युक्तं शकभूपकालं
संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य।
युगानि नारायणपूर्वकाणि
लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥२१॥

अब षष्ट्यब्दानयन-विधि कहते हैं :–

गत शकाब्द मान को ११ ने गुणा कर गुणनफल को पुनः ४ से गुणा करें। इस प्राप्त गुणन-फल में ८५८९ जोड़कर ३७५० से भाग दें। लब्धिफल में शकाब्द संख्या जोड़कर योगफल में ६० का भाग दें। भागफल गत संवत्सर होता है। शेष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राशि में ५ का भाग दें। भजनफल संख्या तुल्य नारायणादि से प्रारम्भ कर युगों की संख्या प्राप्त होती है। शेषफल वर्तमान युग के वर्ष होते हैं ॥२०-२१॥

शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः। तस्माच्छकेन्द्रकालात् शकनृपवधादारभ्याभीष्टवर्षं यावद् यानि वर्षाणि गतान्यतीतानि तानि संस्थाप्य हतानि रुद्रैरेकादशभिर्गुणयेत्, ततः पुनरपि चतुर्भिर्गुणयेत्। एवं चतुश्चत्वारिंशता गुणितानि भवन्तीत्यर्थः। ततो नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कार्याणि। अष्टभिः सहस्रैः पञ्चभिः शतैरेकोननवत्याधिकैरित्यर्थः ८५८९। एवं कृत्वा ततः शून्यशरागरामैर्विभाजयेत् त्रिभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः सार्द्धैरित्यर्थः ३७५०। एतैर्भागमपहरेत्, लब्धं फलं वर्षाणि। तान्येव बृहस्पतिराशयः। शेषं त्रिंशता सङ्गुण्य तेनैव छेदेन विभज्यावाप्तं भागा राशीनामधः स्थाप्याः। भागशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं लिप्ता भागानामधः स्थाप्याः। शेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं विलिप्ता लिप्तानामधः स्थाप्याः॥२०॥

म्लेच्छ जातियों के राजाओं की संज्ञा शक है। जिस समय वे विक्रमादित्य राजा से पराजित किये गये, वह काल लोक में शक-काल के नाम से सुविख्यात है। उस शकनृपेन्द्र के काल से अर्थात् शक राजा के वध के समय से प्रारम्भ कर अपने इष्ट-वर्ष तक के बीते हुए वर्ष (शकाब्द संख्या) को ११ से गुणाकर पुनः ४ से गुणा करें। अर्थात् गतशकाब्द को ४४ से गुणा करें। पुनः गुणन-फल में आठ हजार पाँच सौ नवासी ८५८९ संख्या को जोड़ दें। जोड़कर ३७५० तीन हजार सात सौ पचास, इस संख्या से भाग दें। लब्धफल वर्ष होते हैं, वे ही गुरु की राशियाँ होती है। शेष राशि को ३० से गुणाकर उसी भाजक से भाग देकर लब्ध फल राशि-संख्या के नीचे (दाहिने बगल में) रखें। इसकी शेष संख्या को ६० से गुणाकर उसी भाजक (३७५०) से भाग देकर प्राप्त लब्धफल कलामान को अंश के पश्चात् (नीचे) लिखे। इसके शेष अंक को ६० से गुणाकर उसी भाजक (३७५०) से भाग दें तो, लब्ध फल विकलात्मक होता है, जिसको कला के पश्चात् (बगल में) स्थापित करें ॥२०॥

लब्धेन युक्तमिति। ततस्तेन लब्धेन राश्यादिना फलेन शकभूपकालं शकनृपसमयं युक्तं कार्यम्। वर्षेषु राशयः क्षेप्याः शेषमधः स्थापयेत्। यतस्तानि वर्षरूपाण्येव गुरो राशयः सम्पन्नाः। ततः संशोध्य षष्ट्या। वर्षस्थाने योऽसौ राशिस्ततः षष्ट्या भागमपहरेत्। लब्धमतीतषष्ट्यब्दाः। शेषं वर्तमानषष्ट्यब्दस्य गतवर्षाणि। यतो गुरो राशिभोग एव वर्षम्। ततस्तान्यब्दान्यत्र विषयैः पञ्चभिर्विभज्य लब्धं वर्तमानषष्ट्यब्दस्यातीतयुगानि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतानि नारायणपूर्वकाणि विष्णुप्रभृतीनि भवन्ति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदेव वर्तमानयुगस्याब्दाः सविकला गताः। शेषं पञ्चभ्यः संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति वर्षाणि तत्र भवन्ति॥२१॥

इस प्रकार प्राप्त राश्यादि (रा० अं० क० वि०) मान को शकाब्द वर्ष संख्या में जोड़ दें। वर्षसंख्या में राशिसंख्या जोड़े तथा अंशादि फल यथावत् बगल में ही रहेंगे। क्योंकि वे वर्षात्मक मान ही गुरु की राशियाँ होती हैं। वर्ष-स्थान में जो यह राशिमान है, उसमें ६० का भाग दें। लब्ध फल गत-षष्ट्यब्द का मान हुआ। शेष संख्या वर्तमान षष्ट्यब्द के गत वर्ष की संख्या है। क्योंकि गुरु के एक राशि का भोगमान ही वर्ष है। अतः वे वर्षमान ५ से विभाजित करने पर लब्ध-फल वर्तमान षष्ट्यब्द के गत-युग होता है। यह नारायणादि अर्थात् विष्णु आदि क्रमशः युग होते है। ५ से भाग देने पर शेष फल ही वर्तमान युग के विकला-सहित गत वर्ष होते हैं। ५ से विभाजितकर जो शेष हुआ, उतना ही वर्ष का मान हुआ, यह तात्पर्यार्थ है॥२१॥

अथ बृहस्पतिनक्षत्रज्ञानं तद्वशेन वर्षज्ञानमप्याह :—

एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेण।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम्॥२२॥

गुरु का नक्षत्रज्ञान तथा वर्षज्ञान कहते हैं :—

पूर्वानीत वर्षमान को ९ से गुणाकर गुणनफल को वर्षमान के १२वें भाग में जोड़ कर, इस योगफल संख्या में ४ का भाग देने पर धनिष्ठादि नक्षत्र प्राप्त होते हैं। शेष पूर्व वर्ष का अंशादि मान होता है॥२२॥

वर्तमानषष्ट्यब्दस्य ये गताः सविकला अब्दा अनष्टाः पृथक् स्थापिताः। तान् सविकलान् पृथगेकत्र नवभिर्गुणयेत, ततो द्वितीयस्थानस्थेभ्यो वर्तमानषष्ट्यब्दगतवर्षेभ्यो द्वादशभागं वर्षादिकं गृहीत्वा नवगुणितेष्वब्देषु योजयेत्। यत उक्तम् :— एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेणेति। द्वादशभिर्द्वादशभिर्वर्षैरेकैकं योजयेत्। वर्षस्थाने द्वादशभिर्भागमपहृत्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः। शेषं त्रिंशता षष्ट्या षष्ट्या च सङ्गुण्य विकलासहितं कृत्वा प्राग्वद् भागाद्यानीय तत्र राशीनामधः स्थापयित्वा द्वादशभागं नवाहतेष्वब्देषु योजयेद्यथास्थानमेव। ततः स्वच्छेदैर्भागमपहृत्यावाप्तं यथास्थानमुपर्युपरि योजयेत्। ततस्तत्र चतुर्भिर्भागमपहृत्य यल्लब्धं तान्युडनि नक्षत्राणि वसुदेवताद्यानि धनिष्ठादीनि भवन्ति। शेषं स्थाप्यम्। लब्धस्य सप्तविंशत्यावशेषाङ्कसमं धनिष्ठादिकं नक्षत्रं वक्तव्यम्। तत्र चतुर्भिर्भागे हृते यच्छेषं स्थापितं तदंशकपूर्वमब्दं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति। लब्धसंख्यनक्षत्रात् परस्य नक्षत्रस्य तावद्भिरंशैश्चतुर्भागैर्गुरुणा भुक्तेर्वर्तमानात् पूर्वस्य कार्तिकादेः प्रवृत्तिरिति। यदुक्तम् :–[1]वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनी-त्यादि। एतन्मध्यगत्या ज्ञेयम्, न स्फुटगत्येति। अत्राऽऽनयनमाचार्येण स्फुटतरं पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तथा च :–

वर्तमान षष्ट्यब्द की गत वर्षसंख्या विकलासहित पृथक् यथावत् रख लें। उस विकलासहित वर्ष संख्या को ९ से गुणा कर, पृथक् रखे हुए वर्षादि संख्या के १२वें भाग को इस नवगुणित संख्या में जोड़ दें। तात्पर्य यह है कि "एकैकमब्देषु....." इत्यादि जो कहा गया है, तदनुसार १२-१२ वर्षों पर एक-एक को जोड़ें। वर्ष के स्थान पर १२ से भाग देने पर जो लब्ध वर्ष होते हैं, वे ही राशिमान हैं। शेष को ३०, ६०, ६० से क्रमशः गुणा कर विकलात्मक बना लें। (वर्षशेष को ३० से अंश शेष को ६० से तथा कलाशेष को ६० से गुणाकर एक जातीय विकलात्मक करें) पुनः इस अंशादि मान को राशियों के साथ रख कर, इस (राशि) के १२वें भाग को ९ गुणित वर्षमान में यथास्थान जोड़ दें। इसको अपने भाजक से भाग देकर प्राप्त लब्धफल को यथास्थान उत्तरोत्तरक्रम में जोड़ दें। इस संख्या में ४ का भाग देकर जो लब्धफल की संख्या आयेगी, उतनी ही धनिष्ठादि नक्षत्रक्रम से गुरु नक्षत्र की संख्या होगी। शेष राशि को स्थापित कर लें। लब्धसंख्या को २७ से अवशिष्ट (विभाजित) कर शेष संख्या के अनुसार ही धनिष्ठादि नक्षत्रों को कहना चाहिए। चार से भाग देकर जो शेष स्थापित किया गया है, वह अंशादि सहित वर्षमान होता है। लब्ध संख्यातुल्य नक्षत्र के बाद के नक्षत्र का उतने अंश के चतुर्थांश पर गुरु की भुक्ति (गति) होने से कार्तिकादि मास-क्रम से वर्तमान की प्रवृत्ति होती है। जो यह कहा गया है कि कृत्तिकादि दो नक्षत्रों के क्रम से कार्तिकादि वर्ष होते हैं (इसी अध्याय के श्लोक सं० २)। इसको मध्यमगति से जानना चाहिए, न कि स्पष्टगति से। यह आनयन आचार्य ने स्पष्ट रीति से पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है। यथा :–

[2]रविशशिनोः पञ्च युगं वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि।
अधिमासास्त्रिंशद्भिर्मासैरवमो द्विषष्ट्याह्नाम्॥
द्युनं शकेन्द्रकालं पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षाणाम्।
द्युगणं माघसिताद्यं कुर्याद्युगभानि वह्न्युदयात्॥

---

१. अस्यैवाध्यायस्य २ श्लोकः। द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य ३२० पृष्ठम्।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १२ अध्यायस्य पैतामहसिद्धान्ताख्यस्य १-३ श्लोकाः। तत्र १ श्लोके "द्विषष्ट्या तु", २ श्लोके "कुर्याद् द्युगणं तदह्न्युदयात्", ३ श्लोके च "सैकषट्यंशे गणे" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतानि नारायणपूर्वकाणि विष्णुप्रभृतीनि भवन्ति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदेव वर्तमानयुगस्याब्दाः सविकला गताः। शेषं पञ्चभ्यः संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति वर्षाणि तत्र भवन्ति॥२१॥

इस प्रकार प्राप्त राश्यादि (रा० अं० क० वि०) मान को शकाब्द वर्ष संख्या में जोड़ दें। वर्षसंख्या में राशिसंख्या जोड़े तथा अंशादि फल यथावत् बगल में ही रहेंगे। क्योंकि वे वर्षात्मक मान ही गुरु की राशियाँ होती हैं। वर्ष-स्थान में जो यह राशिमान है, उसमें ६० का भाग दें। लब्ध फल गत-षष्ट्यब्द का मान हुआ। शेष संख्या वर्तमान षष्ट्यब्द के गत वर्ष की संख्या है। क्योंकि गुरु के एक राशि का भोगमान ही वर्ष है। अतः वे वर्षमान ५ से विभाजित करने पर लब्ध-फल वर्तमान षष्ट्यब्द के गत-युग होता है। यह नारायणादि अर्थात् विष्णु आदि क्रमशः युग होते है। ५ से भाग देने पर शेष फल ही वर्तमान युग के विकला-सहित गत वर्ष होते हैं। ५ से विभाजितकर जो शेष हुआ, उतना ही वर्ष का मान हुआ, यह तात्पर्यार्थ है॥२१॥

अथ बृहस्पतिनक्षत्रज्ञानं तद्वशेन वर्षज्ञानमप्याह :—

एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेण।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम्॥२२॥

गुरु का नक्षत्रज्ञान तथा वर्षज्ञान कहते हैं :—

पूर्वानीत वर्षमान को ९ से गुणाकर गुणनफल को वर्षमान के १२वें भाग में जोड़ कर, इस योगफल संख्या में ४ का भाग देने पर धनिष्ठादि नक्षत्र प्राप्त होते हैं। शेष पूर्व वर्ष का अंशादि मान होता है॥२२॥

वर्तमानषष्ट्यब्दस्य ये गताः सविकला अब्दा अनष्टाः पृथक् स्थापिताः। तान् सविकलान् पृथगेकत्र नवभिर्गुणयेत, ततो द्वितीयस्थानस्थेभ्यो वर्तमानषष्ट्यब्दगतवर्षेभ्यो द्वादशभागं वर्षादिकं गृहीत्वा नवगुणितेष्वब्देषु योजयेत्। यत उक्तम् :— एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेणेति। द्वादशभिर्द्वादशभिर्वर्षैरेकैकं योजयेत्। वर्षस्थाने द्वादशभिर्भागमपहृत्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः। शेषं त्रिंशता षष्ट्या षष्ट्या च सङ्गुण्य विकलासहितं कृत्वा प्राग्वद् भागाद्यानीय तत्र राशीनामधः स्थापयित्वा द्वादशभागं नवाहतेष्वब्देषु योजयेद्यथास्थानमेव। ततः स्वच्छेदैर्भागमपहृत्यावाप्तं यथास्थानमुपर्युपरि योजयेत्। ततस्तत्र चतुर्भिर्भागमपहृत्य यल्लब्धं तान्युडनि नक्षत्राणि वसुदेवताद्यानि धनिष्ठादीनि भवन्ति। शेषं स्थाप्यम्। लब्धस्य सप्तविंशत्यावशेषाङ्कसमं धनिष्ठादिकं नक्षत्रं वक्तव्यम्। तत्र चतुर्भिर्भागे हृते यच्छेषं स्थापितं तदंशकपूर्वमब्दं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति। लब्धसंख्यनक्षत्रात् परस्य नक्षत्रस्य तावद्भिरंशैश्चतुर्भागैर्गुरुणा भुक्तेर्वर्तमानात् पूर्वस्य कार्तिकादेः प्रवृत्तिरिति। यदुक्तम् :–'वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनी-त्यादि। एतन्मध्यगत्या ज्ञेयम्, न स्फुटगत्येति। अत्राऽऽनयनमाचार्येण स्फुटतरं पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तथा च :–

वर्तमान षष्ट्यब्द की गत वर्षसंख्या विकलासहित पृथक् यथावत् रख लें। उस विकलासहित वर्ष संख्या को ९ से गुणा कर, पृथक् रखे हुए वर्षादि संख्या के १२वें भाग को इस नवगुणित संख्या में जोड़ दें। तात्पर्य यह है कि "एकैकमब्देषु....." इत्यादि जो कहा गया है, तदनुसार १२-१२ वर्षों पर एक-एक को जोड़ें। वर्ष के स्थान पर १२ से भाग देने पर जो लब्ध वर्ष होते हैं, वे ही राशिमान हैं। शेष को ३०, ६०, ६० से क्रमशः गुणा कर विकलात्मक बना लें। (वर्षशेष को ३० से अंश शेष को ६० से तथा कलाशेष को ६० से गुणाकर एक जातीय विकलात्मक करें) पुनः इस अंशादि मान को राशियों के साथ रख कर, इस (राशि) के १२वें भाग को ९ गुणित वर्षमान में यथास्थान जोड़ दें। इसको अपने भाजक से भाग देकर प्राप्त लब्धफल को यथास्थान उत्तरोत्तरक्रम में जोड़ दें। इस संख्या में ४ का भाग देकर जो लब्धफल की संख्या आयेगी, उतनी ही धनिष्ठादि नक्षत्रक्रम से गुरु नक्षत्र की संख्या होगी। शेष राशि को स्थापित कर लें। लब्धसंख्या को २७ से अवशिष्ट (विभाजित) कर शेष संख्या के अनुसार ही धनिष्ठादि नक्षत्रों को कहना चाहिए। चार से भाग देकर जो शेष स्थापित किया गया है, वह अंशादि सहित वर्षमान होता है। लब्ध संख्यातुल्य नक्षत्र के बाद के नक्षत्र का उतने अंश के चतुर्थांश पर गुरु की भुक्ति (गति) होने से कार्तिकादि मास-क्रम से वर्तमान की प्रवृत्ति होती है। जो यह कहा गया है कि कृत्तिकादि दो नक्षत्रों के क्रम से कार्तिकादि वर्ष होते हैं (इसी अध्याय के श्लोक सं० २)। इसको मध्यमगति से जानना चाहिए, न कि स्पष्टगति से। यह आनयन आचार्य ने स्पष्ट रीति से पञ्चसिद्धान्तिका में कहा है। यथा :–

[1]रविशशिनोः पञ्च युगं वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि।
अधिमासास्त्रिंशद्भिर्मासैरवमो द्विषष्ट्याह्नाम्॥
द्युनं शकेन्द्रकालं पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षाणाम्।
द्युगणं माघसिताद्यं कुर्याद्युगभानि वह्न्युदयात्॥

---

१. अस्यैवाध्यायस्य २ श्लोकः। द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य ३२० पृष्ठम्।

२. पञ्चसिद्धान्तिकायाम् १२ अध्यायस्य पैतामहसिद्धान्ताख्यस्य १-३ श्लोकाः। तत्र १ श्लोके "द्विषष्ट्या तु", २ श्लोके "कुर्याद् द्युगणं तदह्न्युदयात्", ३ श्लोके च "सैकषट्यंशे गणे" इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सैकत्रिंशे युगणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽक्ष्यर्कैः।
दिग्रसभागैः सप्तभिरूनं शशिभं धनिष्ठाद्यम्॥ इति।

रवि-चन्द्र का पञ्चवर्षात्मक युग होता है। ३० मास पर एक अधिकमास तथा ६२ दिनों पर एक क्षयदिन होता है, जो कि ब्रह्मा द्वारा पैतामहसिद्धान्त में कहा गया है। शकमान में २ घटाकर ५ से भाग देने पर शेष वर्षों से अधिमास और अवम का आनयन कर माघ शुक्ल प्रतिपदा से अहर्गण का आनयन करें। यह अहर्गण मान सूर्योदय से होता है।

अहर्गण में उसका ६१वाँ भाग जोड़ने पर तिथि होती है। अहर्गण में ९ से गुणाकर १२२ से भाग देने पर धनिष्ठादि गणना से सूर्य नक्षत्र प्राप्त होता है। इस प्रकार अहर्गण को ६१० से भाग देकर ७ से गुणाकर लब्धफल को अहर्गण में घटा दें। इस प्रकार धनिष्ठादि क्रम से चन्द्रमा का नक्षत्र ज्ञात हो जाता है।

गतानि वर्षाणीत्यत्रोत्पत्तिः प्रदर्श्यते :—

पूर्वमेव रव्यब्दानां गुरुवर्षाणां चान्तरे कृते त्रैराशिकेन प्रतिवर्षमन्तरं[1] प्रदर्शितम्। तत्र फलभागाद्राज्यभाजकराशी द्वावप्यपवर्तितौ। तत्र भाज्यराशिर्जातो द्वाविंशतिः २२। भाजकराशिः शरागाष्टेन्दवः १८७५। तत्र च शकेन्द्रकालाद् गतवर्षाणि सौराणि यातानि यानि तानि च बार्हस्पत्यानि क्रियन्ते। कथम्? उच्यते :—पृथक्स्थानि द्वाविंशत्या सङ्गुण्य शरागाष्टेन्दुभिर्विभज्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः कल्प्याः। शेषात्त्रिंशदादिगुणकारगुणितात् प्राग्वद्विभज्याऽऽप्तमंशादिकं वर्षाणामधः स्थापयेत्। तच्च वर्षादिफलं तत्रैव शककाले संयोज्य बार्हस्पत्येन मानेन तानि वर्षाणि भवन्ति। एवं स्थिते सति तत्र शककालात् प्राग्गतस्य षष्ट्यब्दस्य छेदपरिणतं शेषमस्ति वेदनवयमाब्धयः सार्द्धाः ४२९४ $^{1}/_{2}$। एतान्यत्र योज्यानि भवन्तीति तदर्थं सवर्णीक्रियते। स्वच्छेदेन द्विकेन गुणयित्वा रूपं च संयोज्य जातो राशिर्नवाष्टपञ्चाष्टाख्यः ८५८९। एवं क्षेपसवर्णिते सति गुणकभाजकावपि सवर्णीकृतौ यतः, तेनैवात्र गुणकारश्चतुश्चत्वारिंश ४४ दङ्को जातः। भागहारः शून्यशरागरामाख्यः ३७५०। लब्धेन फलेन शककालं संयुतं कृत्वा बार्हस्पत्येन मानेनाब्दगणो भवति। तस्य षष्ट्या भागे हृते अतीताः षष्ट्यब्दा भवन्ति। शेषस्य पञ्चभिर्भागे हृते युगानि लभ्यन्ते। यतः पञ्चवार्षिकं युगम्। ततो नवाहता अब्दा नक्षत्रपदा भवन्ति, राश्यात्मकत्वात्। अत्र द्वादशकक्रमेणैकैको नक्षत्रपादो दीयते पृथक्स्थादब्दसमूहात्। यतस्तत्र वर्षद्वादशके नक्षत्रे पादमन्तरं भवति। चतुर्भिर्भागे हृते नक्षत्राणि सविकलानि भवन्ति। तेषां च धनिष्ठादिका गणना। यतो धनिष्ठास्थे गुरौ षष्ट्यब्दप्रवृत्तिः। यतो वक्ष्यति "[2]आद्यं धनिष्ठांशम्" इत्यादि। अर्थादेवाशेषं भोग्यनक्षत्रपादा भवन्तीति॥ २२॥

---

१. द्रष्टव्ये अस्य ग्रन्थस्य ३२०-३२१ पृष्ठे।
२. अस्यैवाध्यायस्य २७ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"गतानि वर्षाणि" की उत्पत्ति प्रस्तुत करते हैं :–

पूर्व में ही (इसी अध्याय के प्रथम श्लोक की व्याख्या में) सूर्यवर्ष और गुरुवर्ष का अन्तरकर त्रैराशिक द्वारा प्रतिवर्ष का अन्तर प्रदर्शित किया गया है। वहाँ पर भाज्य और भाजक दोनों राशियाँ फल से अपवर्तित की गयी हैं। इस प्रकार भाज्यराशि २२ और भाजक राशि १८७५ हो गयी। यहाँ शकाब्द से गत सौरवर्ष जितने हुए, उनको गुरुवर्ष किया जाता है ? इसको कहते हैं :–

पृथक् स्थापित (वर्षसंख्या को) २२ से गुणाकर १८८५ से भाग देने पर लब्धफल वर्षादि को ही राशि मान लें। शेष संख्या को ३० से गुणाकर गुणन-फल में भाजक राशि से भाग दें और प्राप्त अंशादिमान को वर्ष के बाद लिखकर स्थापित करें। वर्षादिफल को शकाब्दमान में जोड़ने से गुरुमान से वर्ष हो जाता है। इस स्थिति में शककाल के पूर्व प्राप्त षष्ट्यब्द के विभाजित शेषाङ्क ४२९४ $^{1}/_{2}$ होते हैं। ये अंक योजक होते हैं। इनको सवर्णित करने पर क्रिया होगी। अपने हराङ्क २ से गुणा कर अंश संख्या एक जोड़ने पर सवर्णित संख्या ८५८९ प्राप्त हुई। इस प्रकार क्षेप को सवर्णित करते समय गुणक और भाजक दोनों को सवर्ण किया गया, क्योंकि इसी से गुणकाङ्क ४४ प्राप्त हुआ। भाजक संख्या ३७५० है। लब्ध फल से शकाब्द जोड़ने पर बृहस्पति के मान से वर्षगण गत प्राप्त होता है। शेष में ५ का भाग देने पर युग की संख्या प्राप्त होती है। क्योंकि पञ्चवर्षात्मक ही युग माना गया है। वर्ष एक राशि का होने के कारण उसको ९ से गुणा करने पर नक्षत्र-पाद हो जाता है। (एक राशि में ९ चरण स्वीकृत हैं)। वर्ष समूह के पृथक् होने के कारण प्रतिद्वादश के क्रम से एक-एक नक्षत्रपाद जोड़ देते हैं। यहाँ बारह वर्ष पर नक्षत्रों में एक चरण का अन्तर होता है। चार से भाग देने पर नक्षत्र विकला सहित हो जाते हैं। इनकी गणना धनिष्ठानक्षत्र से प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि धनिष्ठानक्षत्र में गुरु के होने पर ही षष्ट्यब्द का प्रारम्भ हुआ था। जैसाकि आगे कहा गया है (अग्रिम श्लोक २७)"आद्यं धनिष्ठाशम्"। "अर्थात्" पद से शेष सभी भोग्यनक्षत्र-चरण ज्ञात होते हैं ॥२२॥

अधुना द्वादशानां षष्ट्यब्दावस्थितानां युगानां नामान्याह :–

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभागाः प्रदिष्टाः॥२३॥

अब षष्ट्यब्द स्थित द्वादश युगों के नाम कहते हैं :–

विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि, प्रजापति, उत्तरभाद्रपद का स्वामी अहिर्बुध्न्य नामक सूर्य, पिता, विश्वदेव, सोम, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार और सूर्य; ये क्रमशः बारह युगों के स्वामी कहे गये हैं ॥२३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णुर्नारायणः प्रथमयुगम्। सुरेज्यो बृहस्पतिर्द्वितीययुगम्। बलभिदिन्द्रस्तृतीयम्। हुताशोऽग्निश्चतुर्थम्। त्वाष्टा नाम प्रजापतिः पञ्चमम्। उत्तरप्रोष्ठपदाधिपोऽहिर्बुध्न्यः षष्ठम्। पिता सप्तमम्। विश्वोऽष्टमम्। सोमो नवमम्। शक्रानल इन्द्राग्निर्दशमम्। अश्विसंज्ञमेकादशम्। भगः सूर्यो द्वादशम्। एते देवविशेषा द्वादश क्रमादानुपूर्व्येण युगेशा युगस्वामिनः प्रदिष्टा उक्ताः। तथा च समाससंहितायाम् :—

प्रथमयुग नारायण विष्णु, द्वितीययुग देवगुरु बृहस्पति, तृतीययुग बलभित् इन्द्र, चतुर्थयुग हुताश अर्थात् अग्नि, पञ्चमयुग त्वष्टा नामक प्रजापति, षष्ठयुग उत्तराभाद्रपद का स्वामी अहिर्बुध्न्य, सप्तम युग पितृ, अष्टम युग विश्वदेव, नवम युग सोम, दशम युग शक्रानल अर्थात् इन्द्राग्नि, एकादश युग अश्विसंज्ञक और द्वादश युग भग अर्थात् सूर्य होता है। ये द्वादश देवविशेष क्रमशः युगों के स्वामी कहे गये हैं। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :—

विष्णुगुरुशक्रहुतभुक्त्वष्टाहिर्बुध्न्यपित्र्यविश्वानि।
सौम्यमथेन्द्राग्न्याख्यं त्वाश्विनमपि भाग्यसंज्ञं च॥इति॥२३॥

विष्णु, गुरु, इन्द्र, अग्नि, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितृ, विश्व, सोम, इन्द्राग्नि, आश्विन और भाग्यसंज्ञक द्वादश युगेश होते हैं॥२३॥

अत्र युगे युगे पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तेषां नाम दैवतं च प्रत्येकस्याह :—

संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली।
प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च॥२४॥

प्रत्येक युग के पाँच वर्ष और उनके देवता :—

संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का स्वामी सूर्य, इदावत्सर का चन्द्रमा, अनुवत्सर का प्रजापति और इद्वत्सर के भगवान् शिव स्वामी होते हैं॥२४॥

संवत्सरपरिवत्सरेदाद्यनुवत्सरेद्वत्सराख्यानि पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तत्र यः संवत्सरः प्रथमोऽब्दः सोऽग्निदैवत्यः। परिवत्सरो द्वितीयः सोऽर्कदैवत्यः सूर्याधिपः। यश्चेदादिकः इदाशब्द आदौ यस्य स इदावत्सरस्तृतीयस्तस्य शीतमयूखमाली चन्द्रोऽधिपतिः। योऽनुवत्सरश्चतुर्थस्तस्य प्रजापतिर्ब्रह्माऽधिपतिः। य इद्वत्सरः पञ्चमस्तस्य शैलसुतापतिरुमाभर्ता रुद्र इति। अत्र दैवतकथनेन किं प्रयोजनम् ? उच्यते :— यथा युगानामधिपतय उक्तास्तथा वर्षाणामपि। तस्मिन् वर्षे तस्या देवताया यागः सम्पत्यर्थं वेदे पठ्यते। तदर्थं दैवतकथनमिति॥२४॥

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर; ये पाँच वर्ष होते हैं। जो प्रथम संवत्सर नामक वर्ष है, उसके स्वामी अग्निदेव हैं। द्वितीय परिवत्सर नामक वर्ष है, जिसका स्वामी सूर्य है। तृतीय इदावत्सर नामक वर्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, जिसका स्वामी चन्द्रमा है। जो अनुवत्सर नामक चतुर्थ वर्ष है, उसके स्वामी प्रजापति ब्रह्मा हैं। जो इद्वत्सर नामक पञ्चम वर्ष है, उसके स्वामी शैलसुतापति अर्थात् उमापति भगवान् रुद्र हैं। यहाँ पर अधिपति देवता के कथन का क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तर में कहते हैं :– जिस प्रकार युगों के अधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार वर्षों के भी कहे गये हैं। उस वर्ष में उस वर्ष के देवता के यज्ञ सम्पादनार्थ वेद में कहा गया है, इसीलिए अधिदेवताओं का कथन समीचीन है ॥२४॥

अथैतेषां फलान्याह :–

वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥२५॥

अब इन संवत्सरों के फल कहते हैं :–

प्रथमसंवत्सर में मध्यम वर्षा, द्वितीय संवत्सर में पूर्वार्द्धभाग में वर्षा होती है। तृतीय संवत्सर में उत्तरार्धभाग में वर्षा तथा चतुर्थ संवत्सर में पर्याप्त वर्षा होती है। पञ्चम संवत्सर में अल्प वर्षा होती है ॥२५॥

आद्ये संवत्सराख्ये वर्षे समा वृष्टिर्भवति, न चातिबह्वी न चात्यल्पा। श्रावणभाद्रपदाऽश्वयुजकार्तिकमासेषु चतुर्ष्वपि तुल्या भवतीत्यर्थः। द्वितीये परिवत्सरे प्रमुखे प्रथमभागे आदावेव वृष्टिर्भवति न पश्चात्। श्रावणभाद्रपदयोर्भवति नाश्वयुजकार्तिकयोरित्यर्थः। तृतीये इदावत्सरे प्रभूततोया बहुजला वृष्टिर्भवति चतुर्ष्वपि मासेषु। यच्चतुर्थवर्षमनुवत्सराख्यं तत्पश्चादन्ते जलं मुञ्चति वर्षति। न प्रथममाश्वयुजकार्तिकयोर्न श्रावणभाद्रपदयोरित्यर्थः। यत्पञ्चममब्दं वर्षमिद्वत्सराख्यं तत्स्वल्पोदकमल्पजलमुक्तं कथितं चतुर्ष्वपि मासेषु ॥२५॥

प्रथम संवत्सर नामक वर्ष में समान वर्षा होती है, न तो बहुत न न्यून। अर्थात् श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक; इन चारों मासों में समान वर्षा होती है। द्वितीय परिवत्सर नामक वर्ष में प्रमुख भाग अर्थात् आदि में ही वर्षा होती है, पश्चात् नहीं। अर्थात् श्रावण और भाद्रपद में वर्षा होती है, आश्विन और कार्तिक में नहीं। तृतीय इदावत्सर नामक वर्ष में पर्याप्त वर्षा चारों मासों में होती है। चतुर्थ अनुवत्सर नामक वर्ष में पश्चात् अर्थात् अन्त में वर्षा होती है। न तो आश्विन और कार्तिक के प्रारम्भ में और न तो श्रावण तथा भाद्रपद में, यह तात्पर्य है। जो पञ्चम वर्ष इद्वत्सर नामक है, वह चारों ही मासों में अल्प जल प्रदान करनेवाला कहा गया है॥ २५॥

अधुना युगान्युत्तममध्यमाधमान्याह :–

चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां विष्ण्विन्द्रजीवानलदैवतानि।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विन्द्यात् ॥२६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब उत्तम-मध्यम-अधम युगों को कहते हैं :–

विष्णु, इन्द्र, गुरु और अग्नि देवतावाले चार युग, इन द्वादश युगों में मुख्य होते हैं। द्वादश युगों के क्रम में मध्य के चार युग मध्यम फलवाले और अन्तिम चार युग अधम फलवाले होते हैं ॥२६॥

एषां द्वादशानां युगानां मध्याच्चत्वारि युगानि मुख्यानि उत्तमफलानि प्रयच्छन्ति। अथशब्दः पादपूरणे चार्थे वा। कानि तानि? विष्णुः। इन्द्रः। जीवो बृहस्पतिः। अनलोऽग्निः। विष्णुदैवतं प्रथमम्। इन्द्रदैवतं तृतीयम्। बृहस्पतिदैवतं द्वितीयम्। अग्निदैवतं चतुर्थम्। एतानि मुख्यानि। तथा चत्वारि युगानि मध्यानि मध्यमान्येव मध्यफलानि न शुभानि नाप्यशुभानि। कानि च तानि? त्वष्टृदैवतम्। अहिर्बुध्न्यदैवतम्। पितृदैवतम्। विश्वदैवतम्। एतानि मध्यफलानि। तथा चान्त्यानि चत्वारि। सोमदैवतम्। इन्द्राग्निदैवतम्। अश्विदैवतम्। भगाख्यदैवतम्। एतान्यधमानि दुष्टफलानि विन्द्याज्जानीयत्। तथा च समाससंहितायाम् :–

चत्वारि युगान्यादौ शुभानि मध्यानि मध्यमफलानि।
चत्वार्यन्त्यानि न शोभनानि वर्षैर्विशेषोऽत्र॥इति॥२६॥

इन बारह युगों के मध्य चार मुख्य युग उत्तम फल देते हैं। 'अथ' शब्द का प्रयोग पादपूर्ति अथवा 'और' अर्थ का बोधक है। ये चार (युग) कौन से हैं? विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि। विष्णुदेव प्रथम, इन्द्रदेव तृतीय, बृहस्पतिदेव द्वितीय और अग्निदेव चतुर्थ हैं। ये मुख्य युग हैं। चार युग मध्यम मानवाले मध्यम फलदायक हैं, अर्थात् न तो शुभ और न अशुभ। ये चार (युग) कौन से हैं? उत्तर :– त्वष्ट्रादैवत, अहिर्बुध्न्यदैवत, पितृदैवत और विश्वदैवत; ये मध्यमफलदायक हैं। अन्तिम चार युग सोमदैवत, इन्द्राग्निदैवत, अश्विदैवत और भगदैवत हैं। ये अधम अर्थात् दुष्टफलदायक होते हैं। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

युगों के प्रारम्भिक चार युग शुभ तथा मध्य के चार मध्यमफलदायक और अन्तिम चार युग अशुभफलदायक होते हैं। यह इन युगवर्षों का विशेष फल समझना चाहिए ॥२६॥

अधुना षष्ट्यब्दपूर्वस्य प्रभवाख्यस्याब्दस्य प्रवृत्तिकालमाह :–

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः॥२७॥

षष्ट्यब्द के प्रथम वर्ष प्रभव की प्रवृत्ति का काल कहते हैं :–

गुरु जब धनिष्ठानक्षत्र के प्रथम चरण में होकर माघ मास में उदित होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, तब षष्ट्यब्द का प्रभव नामक प्रथम वर्ष आरम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियों के लिए हितकारक होता है ॥२७॥

सुरेज्यो बृहस्पतिः। आद्यं प्रथमं धनिष्ठांशं धनिष्ठायाः प्रथमपादमभिप्रपन्नस्तत्र स्थितो माघे मासे यदा यस्मिन् काले उदयं याति सूर्यमण्डलादुद्गच्छति तदा तस्मिन् काले षष्ट्यब्दपूर्वः षष्ट्यब्दस्य प्रथमोऽब्दः। स च प्रभवो नाम्ना प्रभवसंज्ञः प्रपद्यते प्रवर्तते। तस्य प्रारम्भो भवतीत्यर्थः। एतच्चान्द्रेण मानेन यो मासस्तत्र सम्भवति न सौरमानेन। यतः 'कृतदृक्कर्मद्वयो गुरुर्यदा राशिनवकाद्भागत्रयोविंशतेर्लिप्ताविंशतेश्चार्वाग्भवति, सूर्यश्च राशिदशकं षड् भागान् द्वादशलिप्ताश्च भुक्त्वा स्थितो भवति, तदैतत्सम्भवति नान्यत्रेति। कीदृशोऽब्दः? भूतहितो भूतानां सत्त्वानां हितोऽनुकूल इति॥२७॥

सुरेज्य अर्थात् गुरु धनिष्ठा के प्रथम अंश अर्थात् धनिष्ठा के प्रथम चरण में स्थित होकर माघमास में जिस समय उदित हो अर्थात् रविमण्डल से निकलकर पृथक् हो, तब उस काल में षष्ट्यब्द का प्रथमवर्ष होता है। प्रभव नामक वह वर्ष सर्वप्रथम प्रारम्भ होता है। यह चान्द्रमान से होनेवाले मास में ही संभव होता है, न कि सौरमान से। क्योंकि दृक्कर्म-संस्कार करने के पश्चात् जब गुरु ९ राशि, २३ अंश, २० कला पश्चिम होता है, और सूर्य १० राशि, ६ अंश, १२ कला भोगकर स्थित होता है, तब यह सम्भव होता है; अन्यथा नहीं। यह वर्ष कैसा होता है? इसका विचार करते हुए कहते हैं, कि प्राणियों के लिए कल्याणकारक होता है ॥२७॥

विशिष्ट टिप्पणी :—

आयन और आक्ष इन दो दृक्कर्म-संस्कारों से संस्कारित गुरु जब धनिष्ठा के आदि में अर्थात् ९-२३-२० राश्यादि से आगे होता है, तब सूर्य के १०-६-२० राश्यादि का भोग करने पर अवश्य ही इन दोनों का अन्तर १३ अंश का कलांश उत्पन्न होता है। इसलिए तभी गुरु का उदय होता है। क्योंकि आचार्य ने भी पञ्चसिद्धान्तिका के अध्याय १७, श्लोक १२ के द्वारा गुरु के उदय में

---

१. कृतदृक्कर्मद्वयोर्गुरुरायनाक्षजदृक्कर्मसंस्कृतो गुरुर्यदा धनिष्ठादावर्थाद् राशिनवकाद् भागत्रयोविंशतेर्लिप्ताविंशतेश्चार्वाक् तदैव रविश्च राशिदशकं षड्भागान् विंशतिलिप्तांश्च भुक्त्वा भोगं कृत्त्वा स्थितो भवति. तदाऽवश्यं तयोरन्तरे त्रयोदश कालांशा उत्पद्यन्तेऽतस्तदा गुरोरुदयः। यत आचार्येणापि पञ्चसिद्धान्तिकायां सप्तदशाध्यायस्य १२ श्लोकेन गुरोरुदये स्फुटगुरुरव्यन्तरं १३ अंशा उदिताः। अतो यदि वराहमिहिरमतानुसारिण्येव भट्टोत्पलस्य व्याख्या कल्प्यते, तर्हि द्वादशलिप्ता इत्यत्र विंशतिलिप्ता इति पाठं साधुर्मन्तव्य इति। अथ यदा रवेः कुम्भसंक्रान्तिस्तदैव चान्द्रो माघः। सौरश्च तदा फाल्गुन एव। अत इयं संस्था चान्द्रमानेनैव सम्भवतीति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पष्ट गुरु और सूर्य का अन्तर १३ अंश कहा है। अतः यदि वराहमिहिर के कथनानुसार ही भट्टोत्पल की व्याख्या की कल्पना की जाये, तो १२ कला के स्थान पर २० कला पाठ युक्तियुक्त होगा। जब सूर्य की कुम्भसंक्रान्ति होगी, तभी चान्द्र-मास होगा, जबकि सौरमास फाल्गुन ही रहेगा। अतः यह स्थिति चान्द्रमान से ही सम्भव होती है ॥२७॥

तथा च स्वरूपमाह :–

क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः।
संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥ २८॥

प्रभव वर्ष का फल :–

इस प्रभव नामक संवत्सर के आरम्भ होने पर कहीं पर अनावृष्टि, वायु और अग्नि का प्रकोप, ईति-भय तथा कफज रोग होते हैं, तथापि लोगों को दुःख नहीं प्राप्त होता है ॥२८॥

अस्मिन् प्रभवाख्ये संवत्सरे वर्षे प्रवृत्ते प्रतिपन्ने सति क्वचित्त्ववृष्टिरवर्षणं भवति न सर्वत्र। तथा पवनाग्निकोपः। पवनो वायुः। अग्निर्हुताशनः। वायुप्रकोपोऽग्निप्रकोपश्च क्वचिद् भवति। तथा ईतयोऽतिवृष्ट्यादय उपद्रवाः सन्ति भवन्ति। श्लेष्मकृताः कफोत्पन्नाश्च रोगा गदाश्च क्वचिद् भवन्ति। तथापि जनो लोको न दुःखं कृच्छ्रमाप्नोति लभते ॥ २८॥

इस प्रभव नामक वर्ष के प्रारम्भ होने पर कहीं-कहीं पर अवर्षण होता है, अर्थात् सर्वत्र ऐसा नहीं होता है, तथा पवन अर्थात् वायु और अग्नि, इन दोनों का प्रकोप होता है। ईति-भय अर्थात् अतिवृष्टि आदि उपद्रव होते हैं। श्लेष्माकृत अर्थात् कफ से उत्पन्न रोग होते हैं तथापि लोग दुःख नहीं प्राप्त करते ॥२८॥

अथान्येष्वब्देषु नामानि फलं चाह :–

तस्माद् द्वितीयो विभवः प्रदिष्टः शुक्लस्तृतीयः परतः प्रमोदः।
प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलान्यथैषाम् ॥ २९॥
निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम्।
संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ॥ ३०॥

अब अन्य वर्षों के नाम और फल कहते हैं :–

द्वितीय वर्ष विभव, तृतीय वर्ष शुक्ल, चतुर्थ वर्ष प्रमोद और पञ्चम वर्ष प्रजापति होता है। ये वर्ष उत्तरोत्तर शुभफलदायक हैं ॥२९॥

इन वर्षों में धान, गन्ना, जौ इत्यादि की उपज अच्छी होती है। जनता भयरहित तथा परस्पर द्वेषरहित, प्रसन्न और लोक में कलह से मुक्त रहती है। राजा प्राणियों के कल्याणहेतु शासन करता है ॥३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मात् प्रभवाद् द्वितीयोऽब्दो विभवनामा प्रदिष्ट उक्तः। तृतीयः शुक्लः। परतोऽनन्तरं चतुर्थः प्रमोदः। प्रजापतिः पञ्चमश्चेति। इतिशब्दः प्रकाराय। एतानि वर्षाणि यथोत्तराणि उत्तरोत्तराणि। शस्तानि शुभानि। अथानन्तरमेषां वर्षाणां फलानि भवन्ति॥२९॥

उस प्रभववर्ष से दूसरा वर्ष विभव नामक कहा गया है। तीसरा शुक्ल तत्पश्चात् चतुर्थ प्रमोद और पञ्चम प्रजापति कहा जाता है। ये वर्ष उत्तरोत्तर शुभ होते हैं। अनन्तरक्रम से इन वर्षों का फल होता है॥२९॥

निष्पन्नेत्यादि। तदा तस्मिन् युगे क्षत्रं राजवर्गो भूतधात्रीं वसुन्धरामेवंविधां शास्ति पालयति। किंभूताम् ? निष्पन्ना निष्ठाः प्राप्ताः शालय इक्षवो यवादयः सस्यानि च यस्यां ताम्। आदिग्रहणाद् गोधूममसूरचणकमुद्गमाषा गृह्यन्ते। तथा भयैर्दुःखैर्विमुक्तां वर्जिताम्। उपशान्तवैरां नष्टद्वेषाम्। संहृष्टलोकां प्रहृष्टजनाम्। कलिदोषमुक्तां कलियुगे ये दोषा अधर्मव्याधिदारिद्र्यशोकाकालमृत्युप्रभृतयस्तैर्मुक्तां रहिताम्। अथवा कलिः कलहः। दोषा राष्ट्रोपतापाः॥३०॥

उस युग में राजा पृथ्वी पर इस प्रकार से शासन करता है, जिससे धान, जौ तथा इक्षु आदि की उपज होती है। "आदि" शब्द के ग्रहण से गेहूँ, मसूर, चना, मूँग और उड़द का ग्रहण किया जाता है। लोग भयरहित अर्थात् दुःखरहित, शान्तवैर अर्थात् द्वेषरहित और प्रसन्न रहते हैं। कलियुग के दोषों से मुक्त रहते हैं; अर्थात् कलियुग में उत्पन्न होनेवाले पाप, रोग, दरिद्रता, शोक, अकालमृत्यु आदि दोषों से मुक्त रहते हैं, अथवा कलि अर्थात् कलह (विवाद) और दोष अर्थात् राष्ट्रसङ्कट; इनका भय नहीं होता है।॥३०॥

अथ द्वितीययुगस्याह :—

आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ युवा सुधातेति युगे द्वितीये।
वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे॥३१॥
त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी देवो निरातङ्कभयश्च लोकः।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च॥३२॥

अब द्वितीययुग का फल कहते हैं :—

द्वितीय युग में प्रथमवर्ष अङ्गिरा तत्पश्चात् श्रीमुख, भावस, युवा और सुधाता नामक पाँच वर्ष होते हैं। इनमें से क्रमानुसार तीन वर्ष शुभ और तत्पश्चात् दो वर्ष सम होते हैं॥३१॥

प्रारम्भ के तीन वर्षों में प्रचुर वर्षा होती है और लोक, आतङ्क और भय से रहित होता है। अन्तिम दो वर्षों में समान वर्षा होती है, किन्तु रोग और युद्ध का प्रकोप बढ़ता है॥३२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीये बार्हस्पत्ययुगे आद्यः प्रथमोऽब्दोऽङ्गिराः, द्वितीयः श्रीमुखः, तृतीयो भावसाह्वो भावसेत्याह्वः संज्ञा यस्य, चतुर्थो युवा, पञ्चमः सुधाता। एतानि पञ्च वर्षाणि यथाक्रमेण परिपाट्या स्थितानि। अत्रास्मिन् युगे त्रीणि प्रथमानि वर्षाणि शस्तानि शोभनानि। परे पश्चिमे चतुर्थपञ्चमे द्वे समे न शुभे नाप्यशुभे इति॥३१॥

दूसरे बार्हस्पत्ययुग में प्रथमवर्ष अङ्गिरा, द्वितीय श्रीमुख, तृतीय भावससंज्ञक, चतुर्थ युवा और पञ्चम सुधाता नामक वर्ष होता है। ये पाँच वर्ष यथाक्रम से परम्परया स्थित हैं। इस युग में प्रथम तीन वर्ष प्रशस्त और तत्पश्चात् चतुर्थ और पञ्चम; ये दो वर्ष न तो शुभ और न अशुभ अर्थात् सम होते हैं॥३१॥

त्रिष्वाद्यवर्षेष्विति। आद्येषु प्रथमेषु त्रिषु वर्षेषु अङ्गिरःश्रीमुखभावसाह्वेषु देव इन्द्रो निकामवर्षी निकामं पर्याप्तं वर्षति। लोको जनो निरातङ्कभयः, आतङ्क उपद्रवो भयं भीतिश्च निर्गता अविद्यमाना यस्य। तथा अन्त्ये पश्चिमे अब्दद्वये वर्षयुग्मे सुवृष्टिः शोभना वृष्टिः समा तुल्या भवति, नातिवृद्धी नात्यल्पा यथाकालोपयोग्या। किन्तु अत्रास्मिन् वर्षद्वये रोगा गदा भवन्ति। तथा समरागमश्च। समरः संग्रामस्तस्यागमः प्राप्तिः॥३२॥

प्रथम तीन वर्षों में अर्थात् अङ्गिरा, श्रीमुख, भावस नामक वर्षों में देव अर्थात् इन्द्र पर्याप्त वर्षा करता है। लोक आतङ्क और भय से विमुक्त रहता है। अन्तिम दो वर्षों में सुन्दर वर्षा समरूप में होती है। अर्थात् समयानुसार यथोचित अर्थात् न तो अधिक और न अल्प। किन्तु इन दो वर्षों में रोग होते हैं तथा युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती है॥३२॥

अथ तृतीययुगस्याह :—

शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः।
प्रमाथिनं विक्रममप्यथान्यद् वृषं च विन्द्याद् गुरुचारयोगात्॥३३॥
आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम्।
पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च॥३४॥

अब तृतीययुग का फल कहते हैं :—

शक्रयुग में ईश्वर नामक प्रथम वर्ष, बहुधान्य नामक द्वितीय वर्ष तत्पश्चात् प्रमाथी नामक तृतीय वर्ष, विक्रम नामक चतुर्थ वर्ष, और वृष नामक पञ्चम वर्ष गुरु की गति के अनुसार होते हैं॥३३॥

प्रथम और द्वितीय वर्ष शुभ होकर सत्ययुग के समान प्रजा का कल्याण करते हैं। प्रमाथी नामक वर्ष पापफलदायक और वृष तथा विक्रमवर्ष सुभिक्ष एवं रोग का भय प्रदान करते हैं॥३४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शाक्रे इन्द्रे युगे पूर्वं प्रथमं वर्षमीश्वरसंज्ञम्। अथशब्दः पादपूरणे। द्वितीयं वर्षं बहुधान्यसंज्ञमाहुरुक्तवन्तः। प्रमाथिनं तृतीयम्। विक्रमं चतुर्थम्। अपिशब्दश्चार्थे। अथशब्द आनन्तर्ये। अन्यत् पञ्चमं वृषं नाम गुरुचारयोगाद् बृहस्पतिचारसंयोगाद्विन्द्याज्जानीयात्। यतो बार्हस्पत्येनैव मानेनैतानि वर्षाणि भवन्ति। यस्मिन् काले गुरुरादित्यमण्डलादुदेति तस्मिन्नेव कालेऽब्दप्रवृत्तिः। अत उक्तं गुरुचारयोगादिति॥३३॥

इन्द्रयुग में प्रथमवर्ष ईश्वर नामक होता है। 'अथ' शब्द पादपूर्ति हेतु प्रयुक्त है। द्वितीयवर्ष बहुधान्य नामक कहा गया है। प्रमाथी तृतीयवर्ष और विक्रम चतुर्थवर्ष है। 'अपि' शब्द 'और' के लिए तथा 'अथ' शब्द 'अनन्तर' अर्थ का वाचक है। अन्तिम पञ्चमवर्ष वृष नामक है। इनको गुरुचार के संयोग से जानना चाहिए। क्योंकि बार्हस्पत्यमान से ही ये वर्ष होते हैं। जिस समय गुरु आदित्य-मण्डल से निकलकर उदित होता है, उसी काल में वर्षारम्भ होता है। इसीलिए गुरुचार-योग से प्रवृत्ति कही गयी है॥३३॥

आद्यं द्वितीयं चेति। आद्यं वर्षं द्वितीयं च एते द्वे वर्षे शुभे प्रशस्तफले प्रजानां लोकानां कृत्तानुकारं कृतयुगस्यानुकारं कुरुतः। तद्धर्मानुष्ठानात् तत्सदृशमित्यर्थः। धर्मरताः सुखिता दीर्घजीविन्यः प्रजा भवन्तीति यावत्। प्रमाथी नाम तृतीयोऽब्दः स पापोऽनिष्टफलः। वृषविक्रमौ तु द्वावब्दौ सुभिक्षदौ सुभिक्षं ददतः, किन्तु रोगभयप्रदौ रोगभयं कुरुतः॥३४॥

प्रथम और द्वितीय; ये दोनों वर्ष शुभफल देनेवाले, लोगों को सत्ययुग के अनुरूप शुभफलदायक हैं। अभिप्राय यह है कि उसके समान ही धर्मानुष्ठान होने के कारण सत्ययुग जैसा होता है। जनता धर्मासक्त, सुखी और दीर्घजीवी होती है। प्रमाथी नामक तृतीयवर्ष पाप अर्थात् अनिष्ट फलदायक है। वृष और विक्रम, ये दोनों वर्ष सुभिक्ष देते हैं, किन्तु रोगभय करते हैं॥३४॥

अथ चतुर्थस्य युगस्याह :—

श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम्।
मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसञ्ज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं [1]नतं च॥३५॥
तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम्।
पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम्॥३६॥

अब चतुर्थ युग का फल कहते हैं :—

चतुर्थयुग का प्रथम वर्ष चित्रभानु नामक अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है। सुभानुसंज्ञक द्वितीयवर्ष मध्यम होता है। तृतीय वर्ष नत नाम का रोगप्रदायक और मृत्युकारक होता है॥३५॥

---

१. सम्प्रति प्रसिद्धज्यौतिषफलग्रन्थेषु सर्वेष्वस्य वत्सरस्य पार्थिवेति नाम। तदर्थं मूले आधुनिका विद्वांसो 'न तच्च' इति पाठं कल्पयन्ति। अस्माभिर्भट्टोत्पलव्याख्यानुसारेणात्र पाठ उपन्यस्त इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्पश्चात् तारणसंज्ञक पञ्चम वर्ष अधिक जलकारक, सस्यों के लिए वृद्धिकारक और राजाओं के लिए अति प्रसन्नतादायक होता है। व्यय नामक पञ्चम वर्ष शुभकारक, शृङ्गारिक चेष्टाओं को बढ़ानेवाला और विविध प्रकार के उत्सवों का आयोजन करानेवाला होता है ॥३६॥

श्रेष्ठमिति। चतुर्थस्य युगस्य हुताशाख्यस्य पूर्वं प्रथमं वर्षं यच्चित्रभानुसंज्ञं तच्छ्रेष्ठं शुभं कथयन्ति प्रवदन्ति। तस्यैव द्वितीयं सुभानुसंज्ञं तच्च मध्यं मध्यफलम्। तृतीयं नत नाम तच्च रोगप्रदं रोगान् ददाति। मृत्युकरं मृत्युं च करोति ॥३५॥

हुताश (अग्नि) नामक चतुर्थयुग का जो चित्रभानु नामक प्रथम वर्ष होता है, उसको शुभकारक कहा गया है। इस युग का द्वितीय वर्ष सुभानुसंज्ञक है, जो मध्यमफलदायक है। नत नामक तृतीय वर्ष रोगप्रदायक है और मृत्युकारक होता है ॥३५॥

तदनु तस्य तृतीयस्य वर्षस्य पश्चाच्चतुर्थं वर्षं तारणं नाम, तच्च भूरिवारिदम्, भूरि बहु वारि जलं ददाति। तथा सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम्, सस्यानां वृद्धिः, मुदितातिपार्थिवं मुदितो हृष्टोऽतीवात्यर्थं पार्थिवो राजा च यत्र। तथा पञ्चमं वर्षं व्ययसंज्ञं तच्च श्रेष्ठमुशन्ति कथयन्ति। मन्मथप्रबलम्, मन्मथः कामः प्रबल उद्धतो यस्मिन् वर्षे तत्। तथोत्सवैर्विवाहादिभिराकुलं सोद्यमम् ॥३६॥

उस तृतीय वर्ष के पश्चात् तारण नामक चतुर्थ वर्ष होता है, जो कि अत्यधिक जल देता है। तथा सस्यों की वृद्धि होती और इसमें राजा अत्यधिक प्रमुदित होते हैं। व्यय नामक पञ्चम वर्ष को श्रेष्ठ कहा गया है। इसमें काम की प्रबलता अर्थात् उद्धता होती है और विवाहादि उत्सवों की अधिकता रहती है ॥३६॥

अथ पञ्चमस्य युगस्याह :—

त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी।
तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ॥३७॥

अब पञ्चमयुग का फल कहते हैं :—

त्वाष्ट्र नामक युग में प्रथम वर्ष सर्वजित्, द्वितीय वर्ष सर्वधारी, तृतीय विरोधी, चतुर्थ विकृत्, पञ्चम खर नामक वर्ष होते हैं। इनमें से द्वितीय वर्ष शुभ तथा अन्य शेष चार वर्ष भयदायक होते हैं ॥३७॥

त्वाष्ट्रे युगे आद्यः प्रथमः संवत्सरोऽब्दः सर्वजिन्नामा उक्तः कथितः। अन्यो द्वितीयः सर्वधारी। खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे आगमद्योतनार्थे वा। तस्माद् द्वितीयात् परतस्तृतीयो विरोधी नाम। चतुर्थो विकृतः। पञ्चमः खरः। शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषा इति। अत्रास्मिन् युगे द्वितीयोऽब्दः शस्तः शुभः। शेषाः प्रथमतृतीयचतुर्थपञ्चमा भयाय भवन्ति भयं कुर्वन्ति। अनिष्टफलदा इत्यर्थः ॥३७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वाष्ट्र नामक युग में प्रथम वर्ष सर्वजित् नामक कहा गया है। अन्य द्वितीय वर्ष सर्वधारीसंज्ञक है। यहाँ पर 'खलु' शब्द वाक्य में अलङ्कार के लिए अथवा शास्त्र के विवेचन हेतु है। इस द्वितीय वर्ष के पश्चात् तृतीय विरोधी नामक, चतुर्थ विकृत और पञ्चम खरसंज्ञक होता है। इस युग में द्वितीय वर्ष प्रशस्त अर्थात् शुभ होता है। शेष प्रथम, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम भयकारक होते हैं। अर्थात् अनिष्टफलदायक होते हैं ॥३७॥

अथ षष्ठस्य युगस्याह :–

नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः।
[1]कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः॥३८॥

अब षष्ठयुग का फल कहते हैं :–

नन्दन, विजय, जय, मन्मथ और दुर्मुख संज्ञक पाँच वर्ष (षष्ठयुग में) होते हैं। आरम्भ से तीन वर्ष शुभकारक तथा मन्मथ फलप्रदायक और शेष (दुर्मुख) अनिष्टफलदायक होता है ॥३८॥

अहिर्बुध्न्ये युगे प्रथमोऽब्दो नन्दनः। अथानन्तरं द्वितीयो विजयः। तथा तेनैव प्रकारेण तृतीयो जयः। चतुर्थो मन्मथः। अस्य चतुर्थस्य परतोऽनन्तरं दुर्मुखः पञ्चमः। अत्रास्मिन् युगे आदित आदौ प्रथमं वर्षत्रयं कान्तं शुभमित्यर्थः। केचित् 'कान्तमत्र युगमादितस्त्रये' इति पठन्ति। अत्रास्मिन् युगमादित आदौ प्रथमवर्षत्रये कान्तम्। मन्मथः समफलः, न शुभो नाप्यशुभ इत्यर्थः। अपरश्च दुर्मुखोऽधमः, अशुभफल इत्यर्थः॥३८॥

अहिर्बुध्न्ययुग में प्रथम वर्ष नन्दन, द्वितीय विजय, उसी प्रकार तृतीय जय, चतुर्थ मन्मथ। इस चतुर्थ के पश्चात् पञ्चम दुर्मुख नामक वर्ष होता है। इस युग में आरम्भ से तीन वर्ष कान्त अर्थात् शुभ होते हैं। कुछ लोग 'आदितस्त्रये युगं कान्तम्' यह पाठ करते हैं। मन्मथ समफल अर्थात् न तो शुभ और न तो अशुभफलकारक होता है। तत्पश्चात् दुर्मुखवर्ष अधम अर्थात् अशुभफलकारक होता है ॥३८॥

अथ सप्तमस्य युगस्याह :–

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे,
स्याद्विलम्बि परतो विकारि च।
शर्वरीति तदनु प्लवः स्मृतो-
वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः॥३९॥

---

१. कान्तमत्र युगमादितस्त्रय इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईतिप्राया प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे
मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः॥४०॥

अब सप्तमयुग का फल कहते हैं :–

सप्तमयुग में हेमलम्ब, विलम्बि, विकारि, शर्वरी; तत्पश्चात् गुरु-चार वश पञ्चम प्लव नामक वर्ष कहा गया है॥३९॥

प्रथम वर्ष में ईतिभय, अधिक वायु और वृष्टि होती है। द्वितीय वर्ष में सस्य की अल्पता और अधिक जल का अभाव होता है। तृतीय वर्ष अधिक उद्वेग युक्त (अशान्तिमय) और इसमें पर्याप्त वर्षा होती है। चतुर्थ प्लव नामक वर्ष दुर्भिक्ष (अकाल) कारक और शोभनसंज्ञक वर्ष पर्याप्त जलदायक होता है॥४०॥

सप्तमे पैत्रे युगे हेमलम्ब इति प्रथमो वत्सरः स्यात्। विलम्बि द्वितीयः। परतोऽनन्तरं तृतीयो विकारि। चशब्दः समुच्चये। शर्वरीति चतुर्थः। तदनु तत्पश्चात् पञ्चमो वत्सरोऽब्दः प्लवः इति स्मृत उक्तः। गुरुवशेन बृहस्पतिचारयोगात्॥३९॥

सप्तम पैत्रयुग में हेमलम्ब नामक प्रथम वर्ष होता है। द्वितीय विलम्बि तत्पश्चात् तृतीय विकारि चतुर्थ शर्वरी तत्पश्चात् पञ्चम वर्ष प्लव नामक कहा गया है। ये सभी बृहस्पति के चार के अनुसार होते हैं॥३९॥

ईतिप्रायेति। पूर्वे प्रथमेऽब्दे वर्षे ईतिप्रायाऽतिवृष्ट्यायुपद्रवबहुला। प्रचुरपवना बहुवाता वृष्टिर्भवति। अतोऽब्दाद् द्वितीये वत्सरे मन्दमल्पं सस्यं न बहुसलिलं प्रभूतजलं भवति। तृतीयो वत्सरोऽत्युद्वेगकरः प्रभूतदोषदस्तथा प्रचुरसलिलः प्रभूतजलः स्याद् भवेत्। चतुर्थो दुर्भिक्षाय भवति। ततोऽनन्तरं प्लव इति पञ्चमः शोभनः श्रेष्ठ इति। स च भूरितोयो बहुजलश्च भवति॥४०॥

प्रथम वर्ष में प्रायः ईति अर्थात् अधिक वर्षा आदि उपद्रवों का अधिक्त होता है। अधिक वायुवाली वर्षा होती है। दूसरे वर्ष में अधिक सस्य नहीं होता है। तथा प्रचुर जल होता है। तृतीय वर्ष अधिक उद्वेगकारक अर्थात् अधिक दोषप्रदायक और पर्याप्त जलदायक होता है। चतुर्थ वर्ष दुर्भिक्षकारक होता है। तत्पश्चात् प्लव नामक पञ्चम वर्ष श्रेष्ठ और अधिक जलकारक होता है॥४०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथाष्टमस्य युगस्याह :–

वैश्वे युगे [1]शोक [2]हृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद् द्वितीयः।
क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ॥४१॥
पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः।
अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्तिर्द्विजगोभयं च ॥४२॥

अब अष्टमयुग का फल कहते हैं :–

वैश्व (विश्व) युग में प्रथम वर्ष शोकहृत् नामक, द्वितीय वर्ष शुभकृत्संज्ञक, तृतीय क्रोधी और क्रमशः विश्वावसु तथा पराभव नामक पाँच वर्ष होते हैं ॥४१॥

प्रथम दो वर्ष प्रजा के लिए आनन्दकारक, तृतीय वर्ष बहुविध दोषप्रदायक तथा अन्तिम दो वर्ष अर्थात् चतुर्थ और पञ्चम वर्ष सम फलदायक होते हैं। इनमें पराभव नामक वर्ष में अग्नि, शस्त्र, रोग और गो-ब्राह्मणों को भय होता है ॥४२॥

वैश्वे युगे इति। अथानन्तरं वैश्वे अष्टमे युगे आद्यः प्रथमः संवत्सरोऽब्दः शोकहृदिति। केचिच्छोककृदिति पठन्ति। शोकं कृन्तति छिनत्तीति शोककृत्। यतोऽस्य शोभनं फलमाचार्यो वक्ष्यति :– "पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानाम्" इति। तस्माच्छोकहृदिति निःसन्देहः पाठः। अतोऽन्यो द्वितीयः शुभकृत्। तृतीयः क्रोधी। परतोऽनन्तरं क्रमेण विश्वावसुश्चेति चतुर्थः। इतिशब्दः प्रकारे। पराभवश्च पञ्चमः ॥४१॥

वैश्व नामक अष्टमयुग में प्रथम संवत्सर शोकहृतसंज्ञक होता है। कुछ विद्वान् 'शोककृत' ऐसा पाठ करते हैं। शोक का कृन्तन अर्थात् छेदन करनेवाला शोककृत् होता है। यहाँ पर आचार्य ने इसका फल शुभ कहा है :– "प्रजा के लिए प्रीतिकारक होते हैं।" अतः शोकहृत् पाठ ही असंदिग्ध है। एतत्पश्चात् द्वितीय वर्ष शुभकृत्, तृतीय क्रोधी तत्पश्चात् क्रमशः चतुर्थ विश्वावसु और पञ्चम वर्ष पराभव नामक होता है ॥४१॥

पूर्वापराविति। प्रथमद्वितीयावब्दौ प्रजानां प्रीतिकरौ। एषां सर्वेषां पञ्चानां क्रोधी योऽब्दस्तृतीयः स बहुदोषदः, बहुदोषानशुभान् ददाति। अन्त्यौ पश्चिमौ चतुर्थपञ्चमौ समौ समफलौ न शुभौ नाप्यशुभौ भवतः। किन्त्वत्र वर्षद्वये पराभवेऽग्निरग्निभयं भवति। तथा शस्त्रामयार्तिः शस्त्रेण आमयैश्च रोगैरार्तिः पीडा भवति। तथा द्विजगोभयं च द्विजानां ब्राह्मणानां गवां च भयं भवति ॥४२॥

---

१. सम्प्रति सर्वत्रास्य 'शुभकृत्' द्वितीयस्य च 'शोभकृत्' इति प्रसिद्धं नाम।
२. शोककृद् इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम और द्वितीय वर्ष जनता के लिए प्रसन्नताकारक होते हैं। इन पाँच वर्षों में क्रोधी नामक जो तृतीय वर्ष है, वह विविध प्रकार के दोषों को करनेवाला अर्थात् बहुत से अशुभफलों को देनेवाला होता है। अन्तिम दो अर्थात् चतुर्थ और पञ्चम वर्ष समफलदायक, न तो शुभफल देनेवाला और न ही अशुभफलदायक होते हैं। किन्तु इन दोनों वर्षों में पराभव नामक वर्ष अग्निभय का कारक होता है, तथा इसमें शास्त्रों और रोगों से कष्ट होता है। इसमें ब्राह्मणों तथा गायों को भय होता है ॥४२॥

अथ नवमस्य युगस्याह :–

आद्यः प्लवङ्गे नवमे युगेऽब्दः स्यात् कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः।
साधारणो 'रोधकृदित्यथैवं शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ ॥४३॥
कष्टः प्लवङ्गे बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च।
यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥४४॥

अब नवमयुग का फल कहते हैं :–

नवम युग का प्रथम वर्ष प्लवङ्ग होता है। तत्पश्चात् कीलक, सौम्य, साधारण और रोधकृत् संज्ञक ये पाँच वर्ष होते हैं। इनमें से कीलक और सौम्य नामक वर्ष शुभफलदायक होते हैं। प्लवङ्गवर्ष में जनता अधिक कष्ट भोगती है। साधारण वर्ष में जल की न्यूनता तथा ईति-भय होता है। जो पञ्चम रोधकृत् वर्ष है, इसमें विचित्र प्रकार से वर्षा के साथ ही धान्यसम्पत्ति होती है ॥४३-४४॥

आद्यः प्लवङ्ग इति। नवमे युगे सौम्ये आद्यः प्रथमोऽब्दः प्लवङ्गसंज्ञः स्याद्भवेत्। अन्यो द्वितीयः कीलकः। परतस्तृतीयः सौम्यः। साधारणश्चतुर्थः। रोधकृत् पञ्चमः। इत्येवं प्रकारे। अथशब्द आनन्तर्ये। तत्र कीलकसौम्यसंज्ञौ द्वावब्दौ शुभप्रदौ श्रेष्ठौ ॥४३॥

सौम्य नामक नवम युग में प्रथम वर्ष प्लवङ्गसंज्ञक होता है। द्वितीय कीलक तत्पश्चात् तृतीय सौम्य, चतुर्थ साधारण और पञ्चम रोधकृत् होता है। इस प्रकार यहाँ पर 'अथ' शब्द अनन्तर का वाचक है। यहाँ पर कीलक और सौम्यसंज्ञक दो वर्ष शुभप्रदायक श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥४३।

कष्ट इति। प्लवङ्गसंज्ञः प्रजानां बहुशो बहुप्रकारं कष्टोऽशुभः। अब्दे साधारणे अल्पं जलं स्वल्पमुदकम्। ईतय अतिवृष्ट्यादय उपद्रवाः। अथानन्तरं यः पञ्चमोऽब्दो रोधकृदिति तत्र तस्मिन्नब्दे चित्रं नानाप्रकारं जलं क्वचित्क्वचिद्वर्षति। तथा सस्यानां सम्पच्च भवति ॥४४॥

---

१. सम्प्रत्यस्य 'विरोधी' इति प्रसिद्धं नाम।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्लवङ्गसंज्ञक वर्ष प्रजा को अनेक प्रकार से कष्ट देता है। साधारण नामक वर्ष में अल्प जल प्राप्त होता है। ईति अर्थात् अतिवृष्टि आदि का उपद्रव होता है। तत्पश्चात् जो पञ्चम रोधकृत् नामक वर्ष है, उसमें चित्र अर्थात् विचित्र वर्षा, किन्हीं स्थानों पर ही होती है और सस्यसम्पत्ति होती है ॥४४॥

अथ दशमस्य युगस्याह :—

इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत्तत्राद्यवर्षं परिधाविसंज्ञम्।
प्रमादिनं [1]विक्रममप्यतोऽन्यत् स्याद्राक्षसं चानलसंज्ञितं च ॥४५॥
परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः।
अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥४६॥
विक्रमः सकललोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा।
ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो वह्निकोपमरकप्रदोऽनलः ॥४७॥

दशमयुग का फल कहते हैं :—

दशमयुग इन्द्राग्निदैवत होता है, जिसका प्रथम वर्ष परिधावि नामक तथा द्वितीय प्रमादि, तत्पश्चात् विक्रम पुनः राक्षस और अनलसंज्ञक पाँच वर्ष होते हैं ॥४५॥

परिधाविवर्ष में मध्यदेश का विनाश, राजविध्वंस, जल की न्यूनता और अग्निकोप होता है। प्रमादिसंज्ञक वर्ष में लोगों में आलस्य, परस्पर शस्त्राघात और लाल फूल तथा बीजों का क्षय होता है ॥४६॥

विक्रम संवत्सर सम्पूर्ण लोक के लिए आनन्दकारक होता है। राक्षसवर्ष विनाशकारक होता है। और अनलवर्ष ग्रीष्मऋतु के धान्यों का उत्पादक होता है। राक्षसवर्ष अग्निकोण, मृत्यु और अग्निदाहप्रदायक होता है ॥४७॥

इन्द्राग्निदैवमिति। दशमं युगमिन्द्राग्निदैवतं यत्तत्र तस्मिन्नाद्यवर्षं प्रथमवर्षं परिधाविसंज्ञम्। प्रमादिनं द्वितीयम्। अतोऽस्मादन्यत्तृतीयं विक्रमं स्याद् भवेत्। राक्षसं चतुर्थम्। अनलसंज्ञितं पञ्चमम्। चशब्दोऽत्रोभयत्र समुच्चये ॥४५॥

दशम युग इन्द्राग्निदैवत है। जिसके प्रथम वर्ष का नाम परिधावि है। द्वितीय प्रमादि और इसके बाद विक्रम नामक तृतीय वर्ष होता है। चतुर्थ वर्ष राक्षस नामक और अनलसंज्ञक पञ्चम वर्ष होता है। यहाँ 'च' शब्द दोनों के लिए समुच्चयवाचक है ॥४५॥

---

१. सम्प्रति प्रसिद्धज्यौतिषग्रन्थेषु सर्वेष्वस्य 'आनन्द' इति संज्ञा। तदर्थं नव्या अत्र "प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत्", ४७ श्लोकादौ च 'तत्परः' इति पाठं कल्पयन्ति। यद्यप्यत्र तृतीययुगे ३३ श्लोके चतुर्थवर्षस्यापीदमेव नाम, तथापि सर्वेष्वादर्शपुस्तकेष्वेकरूपां तदर्थप्रतिपादिकां व्याख्यां मूलं चैतादृशमेव विलोक्यायमेव पाठ उपन्यस्तो मयेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिधाविनीति। परिधाविनि वर्षे मध्यदेशनाशो भवति। तत्रैव नृपहानी राज्ञो मरणम्। जलमुदकमल्पं स्तोकम्। अग्निकोपो वह्निभयम्। प्रमादिसंज्ञे जनो लोकः। अलसः सालसो भवति। तथा डमरं कलहः सशस्त्रः। रक्तकपुष्पाणां येषां वृक्षाणां लोके रक्तपुष्पं भवति, तथा रक्तकबीजानां च नाशो भवति॥४६॥

परिधाविवर्ष में मध्यदेश का विनाश होता है। इसमें राजा की मृत्यु, अल्प वर्षा, अग्निदाहभय होता है। प्रमादिसंज्ञक वर्ष में लोगों में आलस्य बढ़ता है तथा डमर अर्थात् सशस्त्र विद्रोह, रक्त पुष्प अर्थात् जिन वृक्षों के पुष्प लाल होते हैं तथा लालवर्ण के बीजों का विनाश होता है॥४६॥

विक्रम इति। विक्रमः सकललोकानां नन्दनोऽब्दः समस्तजनसमृद्धिकरः। राक्षसः समस्तलोकानां क्षयकरो विनाशकरो भवति। अनलस्तेनैव प्रकारेण क्षयकर एव। अत्रास्मिन् युगे राक्षसोऽब्दो ग्रीष्मधान्यानां यवगोधूमादीनां जननः सम्पत्करः। अनलो वह्निकोपमरकप्रदः। अग्निकोपं मरकं च ददाति॥४७॥

विक्रम नामक वर्ष समस्त जनों के लिए समृद्धिकारक होता है। राक्षसवर्ष सभी प्रकार के प्राणियों के लिए विनाशक होता है। अनल नामक वर्ष भी इसी प्रकार क्षयकारक होता है। इस युग में राक्षसवर्ष ग्रीष्मऋतु की उपज, गेहूँ आदि के लिए समृद्धिकारक होता है। अनल (वह्नि) वर्ष अग्निप्रकोप तथा मृत्युप्रदायक होता है॥४७॥

टिप्पणी :–

वर्तमान में सभी प्रमुख ज्योतिष ग्रन्थों में विक्रमवर्ष का नाम 'आनन्द' वर्ष प्राप्त होता है। इसलिए आधुनिक विद्वान् प्रमादि के पश्चात् आनन्द का तथा श्लोक संख्या ४७ के प्रारम्भ में 'तत्पर' पाठ की कल्पना करते हैं। यद्यपि यहाँ पर तृतीय युग में श्लोक संख्या ३३ के अनुसार चतुर्थवर्ष का भी यही नाम है। तथापि सभी आदर्श पुस्तकों में एकरूपता और उनके अर्थों को प्रतिपादित करनेवाली व्याख्या और मूलपाठ को इस प्रकार देखकर ही यहाँ पर उक्त पाठ को स्थापित किया है।

अथैकादशस्य युगस्याह :–

एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च।
आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः॥४८॥
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च।
रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत् प्रदिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत् सः॥४९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब एकादशयुग का फल कहते हैं :–

एकादशयुग में पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति नामक वर्ष होते हैं। प्रथम वर्ष अधिक वर्षा, चौराधिक्य, श्वासरोग तथा ओष्ठ कम्पन करनेवाला कासरोग को देनेवाला होता है ॥४८॥

कालयुक्तवर्ष में अनेक प्रकार के दोष होते हैं। सिद्धार्थ नामक वर्ष में अनेक गुणों की वृद्धि होती है। रौद्र नामक वर्ष उग्रता और विनाश को उत्पन्न करता है। दुर्मतिसंज्ञक वर्ष मध्यम वृष्टिकरनेवाला होता है ॥४९॥

एकादशेति। एकादशो आश्विने युगे प्रथमोऽब्दः पिङ्गलः। द्वितीयः कालयुक्तः। तृतीयः सिद्धार्थः। चतुर्थो रौद्रः। पञ्चमो दुर्मतिः। खलुशब्द आगमद्योतनार्थः। आद्ये प्रथमे वर्षे महती चण्डा अतिवृष्टिर्भवति सा तु सचौरा चौरयुक्ता। तस्करा भवन्तीत्यर्थः। तथा श्वासो भवति जनानां हनूकम्पयुतश्च कासः। कासपीडा च भूतानां भवति यया हनू कम्पेते।

आश्विन नामक एकादशयुग में प्रथम वर्ष पिङ्गल नामक, द्वितीय कालयुक्त, तृतीय सिद्धार्थ, चतुर्थ रौद्र और पञ्चम दुर्मतिसंज्ञक होता है। प्रथम वर्ष में अति प्रचण्ड वर्षा होती है। और यह वर्ष चोरों से युक्त होता है। इसमें श्वासरोग होता है, और लोगों की ठुड्डी कँपा देनेवाला कास होता है। तात्पर्यार्थ यह है कि ऐसी कास (खाँसी) पीड़ा होती है, जिससे कि हनु (ठुड्डी) काँपने लगता है।

यत्कालयुक्तमिति। यदब्दं कालयुक्तं तदनेकदोषं बहुदोषप्रदम्। सिद्धार्थसंज्ञे बहवः प्रभूता गुणाः सम्पदादयो भवन्ति। यो रौद्रः सोऽतिरौद्रः। अतिदुष्टफलः। तथा क्षयकृत् प्रजानां क्षयकरः प्रदिष्ट उक्तः। यो दुर्मतिः स मध्यमवृष्टिकृत् मध्यमां वृष्टिं करोतीति ॥४८-४९॥

जो वर्ष कालयुक्त है, वह अनेक दोषों का प्रदायक होता है। सिद्धार्थ नामक वर्ष में प्रचुर गुण और सम्पत्तियाँ होती हैं। रौद्रवर्ष अतिरौद्र अर्थात् अधिक दुष्टफलदेनेवाला तथा प्रजा के लिए क्षयकारक कहा गया है। दुर्मति नामक वर्ष में मध्यम वर्षा होती है ॥४८-४९॥

अथ द्वादशस्य युगस्याह :–

भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति।
[1]अङ्गारसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ॥५०॥
रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं तस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गवाश्च।
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधैः ॥५१॥

---

१. सम्प्रत्यस्य 'रुधिरोद्गारि' इतिप्रसिद्धं नाम। तदर्थं केचित् 'उद्गारिसंज्ञं' इति पठन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब द्वादशयुग का फल कहते हैं :–

भाग्य नामक द्वादशयुग में प्रथम दुन्दुभि नामक वर्ष होता है, जो सस्यों की पर्याप्त वृद्धि करता है। तत्पश्चात् अङ्गारसंज्ञक वर्ष राजाओं के लिए विनाशकारक और विषम वर्षा करता है ॥५०॥

रक्ताक्ष नामक तृतीयवर्ष दन्तुल जीवों से भयप्रदायक और रोगकारक होता है। क्रोध नामक चतुर्थ वर्ष अधिक क्रोधवर्धक तथा विरोधसंज्ञक पञ्चम वर्ष राज्यों को परस्पर विरोध से शून्य (नष्ट) कर देता है ॥५१॥

भाग्ये युगे इति। भाग्यसंज्ञे द्वादशे युगे आद्यं प्रथमं वर्षं दुन्दुभिसंज्ञं तच्च महतीमतिवर्द्धीं सस्यवृद्धिं करोति। तदनु तत्पश्चात् द्वितीयमङ्गारसञ्ज्ञं तच्च नरेश्वराणां राज्ञां क्षयाय नाशाय भवति। वृष्टिश्च विषमा अतुला अतिचण्डा वा भवति॥५०॥

भाग्य नामक बारहवें युग में प्रथमवर्ष दुन्दुभि नामक है, जो सस्यों की अत्यधिक वृद्धि करता है। तत्पश्चात् द्वितीय वर्ष अङ्गारक नामक है, जो राजाओं के विनाश के लिए होता है। इसमें विषम वर्षा अर्थात् प्रचण्ड वृष्टि होती है ॥५०॥

तथा तृतीयमब्दं वर्षं रक्ताक्षसंज्ञं कथितमुक्तम्। तस्मिन्नब्दे दंष्ट्रिकृतं भयं भवति। दंष्ट्रिणः सूकरादयस्तत्कृतं भयं भवति। तथा गदा रोगाश्च भवन्ति। चतुर्थं क्रोधसंज्ञं तच्च बहुक्रोधकरं बहुप्रकारं लोकानां क्रोधं करोति। तथा राष्ट्राणि विरोधैः कलहैः शून्यीकुरुते। अशून्यानि शून्यानि करोतीति शून्यीकुरुते। उद्वासयतीत्यर्थः॥५१॥

तृतीय वर्ष रक्ताक्ष नामक कहा गया है। इस वर्ष में दाँतवाले पशुओं से भय होता है। शूकरादि को दंष्ट्री कहा गया है, उनसे उत्पन्न भय होता है तथा रोग होते हैं। क्रोध नामक चतुर्थ वर्ष है, यह अनेक प्रकार से लोक में क्रोध उत्पन्न करता है। यह राष्ट्रों को विरोध से शून्य कर देता है। अशून्य को शून्य करता है, अर्थात् व्यथित (उद्वासित) करता है ॥ ५१॥

अथ पञ्चमस्य वर्षस्य फलं षष्ट्यब्दलक्षणं मया-संक्षेपतः कृतमित्येतच्चाह :–

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं
जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीबलवृद्धिदम्।
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहृतां तथा
कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समासतः॥५२॥

पञ्चमवर्ष का फल कहते हैं :–

इस अन्तिम युग का अन्तिम वर्ष क्षय नामक सर्वाधिक क्षयकारक होता है। यह विप्रों के लिए भयप्रदायक, कृषकों के लिए वृद्धिदायक, वैश्यों और शूद्रों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए उन्नतिप्रदायक और दूसरों के धन को हरनेवालों के लिए भी वृद्धिकारक होता है। इस षष्ट्यब्द के सम्पूर्ण फलों को यहाँ पर संक्षिप्त रूप में कह दिया गया है ॥५२॥

अन्त्यस्य युगस्य द्वादशस्य अन्त्यं पञ्चमं वर्षं क्षयमिति क्षयसंज्ञम्। तच्च बहुक्षयकरं बहुविधं जनानां क्षयं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानां भयं भीतिं जनयत्युत्पादयति। कृषीबलानां कर्षकाणां वृद्धिदम्। विट्शूदाणां वैश्यानां शूद्राणां चोपचयकरं वृद्धिकरम्। तथा परस्वहृतां परधनहृतृणामप्युपचयकरम्। अखिलं निःशेषं षष्ट्यब्दे षष्ट्यब्दाख्ये।

अन्तिम युग बारहवें का अन्तिम पञ्चम वर्ष क्षयसंज्ञक होता है। यह अनेक प्रकार से लोगों का विनाश करता है। ब्राह्मणों को भय उत्पन्न करता है। किसानों को समृद्धि देता है। वैश्यों और शूद्रों की उन्नति करता है। यह परकीय धन के अपहर्ताओं को भी वृद्धि प्रदान करता है। सम्पूर्ण षष्ट्यब्द में जो कहा गया है:–

'माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चकस्येह कालज्ञानं निबोध्यते॥

माघ-शुक्ल से प्रारम्भकर पौष-कृष्णपर्यन्त समाप्त होनेवाले पाँच युगों का कालज्ञान प्रस्तुत किया जाता है।

'वेदाङ्गज्योतिष' का यह पाँचवाँ श्लोक है। जिसमें 'माघशुक्लप्रपन्नस्य' प्रथम चरण में और उत्तरार्ध में, 'युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते' यह पाठ है।

इति तस्मिन् शास्त्रे यत्कथितमुक्तं तदत्रास्मिन् बृहस्पतिचारे सर्वं समासतः संक्षेपतः कथितमुक्तम्। तथा च समाससंहितायाम्:–

ऐन्द्रे तृतीयमशुभं द्वितीयवर्जानि पञ्चमे तु युगे।
पित्र्ये युगे तृतीयं चतुर्थमपि पापदं वर्षम्॥
वैश्वे तृतीयमशुभं शुभदान्युक्तानि चावशेषाणि।
सौम्ये द्वितीयवर्षं शुभावहं यत्तृतीयं तु॥
प्रथितं शुभमैन्द्राग्नौ तृतीयवर्षं तथाश्विदैवत्ये।
भाग्ये प्रथमं वर्षं षष्ट्यब्दस्यैष संक्षेपः॥इति॥५२॥

उस शास्त्र में जो कहा गया है, वह इस बृहस्पतिचार में सब कुछ संक्षिप्त में कहा गया। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है:–

ऐन्द्रयुग में तृतीय वर्ष अशुभ, पञ्चमयुग में द्वितीय निषिद्ध, पितृयुग में तृतीय और चतुर्थ वर्ष पापफलदायक होते हैं। वैश्वयुग में तृतीय वर्ष अशुभ तथा

---

१. ज्योतिषवेदाङ्गस्यायं ५ श्लोकः। तत्र प्रथमपादे 'माघशुक्लप्रपन्नस्य' तथोत्तरार्द्धे 'युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते' इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवशिष्ट सभी वर्ष शुभ होते हैं। सौम्ययुग में द्वितीय वर्ष शुभ और इन्द्राग्नियुग में तृतीय वर्ष शुभ होता है, अश्विदैवतयुग में तृतीय वर्ष एवं भाग्यवर्ष में प्रथम वर्ष शुभ होता है। षष्ट्यब्द का यह संक्षिप्त फल है॥५२॥

अथ बिम्बलक्षणमाह :–

अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः।
ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम्॥५३॥

अब गुरु का बिम्बलक्षण कहते हैं :–

यदि गुरु स्वच्छ किरणों वाला, विस्तृत बिम्बवान्, कुमुद-कुन्दपुष्प तथा स्फटिकमणि के सदृश प्रभायुक्त, ग्रहों से अविद्ध और सरल मार्गगामी हो, तो प्राणियों के लिए हितकारक होता है॥५३॥

एवंविधोऽमरगुरुर्बृहस्पतिर्मनुजानां मनुष्याणां हितकरः शिवप्रदः। कीदृशः? अकलुषांशुर्निर्मलरश्मिः। जटिलः समन्ततो रश्मिभिर्व्याप्तः। पृथुमूर्तिर्विस्तीर्णदेहः। तथा कुमुदस्य कुमुदपुष्पस्य कुन्दकुसुमस्य स्फटिकस्य च मणेः सदृशी आभा कान्तिर्यस्य। अतिस्निग्धः श्वेतवर्ण इत्यर्थः। यदि च ग्रहहतो न भवति ग्रहयुद्धे अन्येन ग्रहेण विजितो न भवति। तथा सत्पथवर्ती ग्रहनक्षत्राणामुत्तरमार्गगोचराणामधिकृतश्चेति॥५३॥

इस प्रकार का गुरु मनुष्यों के लिए कल्याणकारक होता है, किस प्रकार का? (उत्तर में कहते हैं) निर्मल किरणोंवाला, जटिल अर्थात् चारों ओर से किरणों से परिव्याप्त, विस्तृत बिम्बवाला, कुमुदपुष्प और कुन्दपुष्प तथा स्फटिकमणि के सदृश जिसकी कान्ति हो; अर्थात् स्निग्ध श्वेतवर्ण का हो। यदि ग्रहहत अर्थात् ग्रहयुद्ध में किसी अन्य ग्रह से न जीता गया हो तथा सत्पथ का अर्थात् ग्रहनक्षत्रों के उत्तरमार्ग पर दृष्टिगत हो; ऐसा गुरु शुभ होता है।॥५३॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ बृहस्पतिचारो नामाऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

इति श्री भट्टोत्पलधाराविरचित संहिताविवृतिमें बृहस्पतिचार नामक अष्टम अध्याय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ नवमोध्यायः

अथ शुक्रचारो व्याख्यायते। तस्य च नव वीथयस्त्रयो मार्गा उदङ्मध्यदक्षिणा वात[1]व्याडवैश्वानरास्त्रयो मार्गभेदाः षड् मण्डलानि भवन्ति। तत्रादावेव परमतेन वीथीनां लक्षणमाह :—

शुक्रचार की व्याख्या की जाती है :—

शुक्र की नौ वीथियाँ; उत्तर, मध्य और दक्षिण तीन मार्ग; वायु, सर्प और वैश्वानर नामक तीन मार्ग-भेद तथा छः मण्डल होते हैं। यहाँ पर सर्वप्रथम अन्य आचार्यों के मतानुसार वीथियों के लक्षण कहते हैं :—

नागगजैरावतवृषभगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः ।
अश्विन्याद्याः कैश्चित्त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिता ॥ १॥

नाग, गज, ऐरावत, वृषभ, गो, जरद्गव, मृग, अज और दहन संज्ञक शुक्र की नौ वीथियाँ होती हैं। कुछ आचार्यों द्वारा अश्विन्यादि तीन-तीन नक्षत्रों की एक-एक वीथियाँ कही गयी हैं ॥१॥

नागवीथी प्रथमा। गजवीथी द्वितीया। ऐरावतवीथी तृतीया। वृषभवीथी चतुर्थी। गोवीथी पञ्चमी। जरद्गववीथी षष्ठी। मृगवीथी सप्तमी। अजवीथी अष्टमी। दहनवीथी नवमी। एता नव वीथयः कैश्चिदाचार्यैर्देवलप्रभृतिभिरश्विन्याद्यास्त्रिभास्त्रिभिर्भैर्नक्षत्रैः कथिताः। अश्विनीभरणीकृत्तिका नागवीथी। रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावतवीथी। एवं क्रमेण त्रिभिस्त्रिभिर्नक्षत्रैरन्या अपि ज्ञेयाः। एताः क्रमात् परिपाट्या वीथयः कथिता उक्ताः। तथा च देवलः—

अश्विन्यादित्रिभाः सर्वा नागाद्या दहनान्तिकाः।
वीथयो भृगुपुत्रस्य नव प्रोक्ताः पुरातनैः॥

नागवीथी प्रथम, गजवीथी द्वितीय, ऐरावतवीथी तृतीय, वृषभवीथी चतुर्थ, गोवीथी पञ्चम, जरद्गववीथी षष्ठ, मृगवीथी सप्तम, अजवीथी अष्टम तथा दहनवीथी नवम वीथी होती है। ये नौ वीथीयाँ देवलप्रभृति कुछ आचार्यों के द्वारा अश्विन्यादि तीन नक्षत्रों के अनुसार कही गयी हैं। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका से नागवीथी; रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रानक्षत्र से गजवीथी; पुनर्वसु, पुष्य आश्लेषा से ऐरावतवीथी, एवं इसी क्रम से तीन-तीन नक्षत्रों के द्वारा अन्य वीथियों को भी जानना चाहिये। ये वीथियाँ क्रमशः परम्परानुसार कही गयी हैं। जैसाकि आचार्य देवल ने कहा है :—

---

१. व्याडः सर्प इति। द्रष्टव्यमस्यैवाध्यायस्य २२ श्लोकटीकायां पराशरवाक्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्विन्यादि तीन-तीन नक्षत्रों के क्रम से नागादि से दहनपर्यन्त शुक्र की नौ वीथियाँ प्राचीन आचार्यों द्वारा कही गयी हैं।

तथा च काश्यपः—

त्रिष्वश्विन्यादिषु यदा चरति[1] भृगुनन्दनः।
नागवीथीति सा ज्ञेया प्रथमान्या निबोधत॥
रोहिण्यादिगजा ज्ञेयाऽदित्याद्यैरावती स्मृता।
मघाद्या वृषभा ज्ञेयाँ हस्ताद्या गौः प्रकीर्तिता॥
जारद्गवी विशाखाद्या मूलाद्या मृगवीथिका।
अजवीथी विष्णुभाद्याऽजाद्या तु दहना स्मृता॥ इति॥ १॥

जैसाकि आचार्य काश्यप ने कहा है:—

अश्विन्यादि तीन नक्षत्रों में जब शुक्र विचरण करता है, तब उसे प्रथमा नागवीथी और पुनर्वसु आदि तीन नक्षत्रों में ऐरावतीवीथी, मघादि तीन नक्षत्रों में वृषभवीथी तथा हस्त आदि तीन नक्षत्रों में गोवीथी कही गयी है। विशाखादि जारद्गवी, मूलादि मृगवीथी, श्रवणादि अजवीथी और पूर्वभाद्रपदादि तीन नक्षत्रों में दहनावीथी कही गयी है॥१॥

अथ स्वमतेन प्रविभागमाह:—

नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः।
गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे॥२॥
जारद्गव्यां श्रवणात्त्रिभं मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम्।
हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्यजेत्यषाढाद्वयं दहना॥३॥

अब स्वयं के मत से वीथि-विभाग कहते हैं:—

स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रों की नागवीथी तथा रोहिणी नक्षत्र से तीन-तीन नक्षत्रों की क्रमशः तीन-तीन वीथियाँ होती हैं। अश्विनी, रेवती और दोनों भाद्रपदा (पूर्वभाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा); इन चार नक्षत्रों की गोवीथी होती है॥२॥

श्रवणनक्षत्र से तीन नक्षत्र जारद्गव, अनुराधा से तीन नक्षत्र मृग और हस्त, विशाखा, चित्रा की अजवीथी एवं दोनों आषाढा (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा) नक्षत्रों की दहनवीथी होती है॥३॥

पवनः स्वातिः। याम्यं भरणी। अनलः कृत्तिकाः। एतानि नक्षत्राणि नागवीथी। पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः। पैतामहं रोहिणी तत आरभ्य त्रिभास्त्रिभिस्त्रिभिर्नक्षत्रैस्तिस्रो

---

१. अत्र छन्दोभङ्गदोषः। स चार्षत्वान्न हानिकरः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीथयो भवन्ति। तद्यथा :– रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावती। मघा पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी चेति वृषभा गोवीथ्यामिति। अश्विन्यः पौष्णं रेवती द्वे भद्रपदे पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि गोवीथी॥२॥

पवन अर्थात् स्वाती, याम्य अर्थात् भरणी, अनल अर्थात् कृत्तिका; इन तीन नक्षत्रों की नागवीथी होती है। पैतामह अर्थात् रोहिणी नक्षत्र, इससे प्रारम्भ कर तीन-तीन नक्षत्रों की तीन वीथियाँ होती हैं। उदाहरणार्थ– रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा नक्षत्र की गजवीथी; पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा की ऐरावतवीथी; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी की वृषभवीथी होती है। अश्विनी, रेवती और पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा; इन चार नक्षत्रों की गोवीथी होती है॥२॥

जारद्गव्यामिति। श्रवणात्प्रभृति त्रिभं नक्षत्रत्रयं श्रवणा धनिष्ठा शतभिषगिति जारद्गव्याम्। मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम्। मैत्रमनुराधा तदाद्यं त्रिभं नक्षत्रत्रितयम्। अनुराधा ज्येष्ठा मूलमिति मृगाख्या। तुशब्दः पादपूरणे। हस्तो विशाखा त्वाष्ट्रं चित्रा। एतानि नक्षत्राण्यजा अजवीथी। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढा चेति दहनवीथी॥३॥

श्रवणनक्षत्र से प्रारम्भकर अर्थात् श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा की जरद्गववीथी; हस्त, विशाखा और चित्रा की अजवीथी और दोनों आषाढा अर्थात् पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा; इनकी दहनवीथी होती है॥३॥

अथ तासां मार्गप्रविभागमाह :–

तिस्रस्तिस्रस्तासां क्रमादुदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः।
तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणेन स्थितैकैका॥४॥

अब वीथियों के मार्गभेद कहते हैं :–

इन तीन-तीन वीथियों के क्रमशः उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग होते हैं। इनमें भी उत्तर, मध्य और दक्षिण क्रम से एक-एक वीथी स्थित होती है॥४॥

तासां नागाद्यानां नवानां वीथीनां क्रमात् परिपाट्या तिस्रस्तिस्रो वीथय उदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः। उत्तरे मार्गे मध्ये मध्यमे याम्ये दक्षिणे च स्थिताः। तद्यथा :– नागगजैरावत्य उत्तरमार्गस्थाः। वृषभगोजारद्गव्यो मध्यममार्गस्थाः। मृगाजदहना दक्षिणमार्गस्थाः। तासामपि वीथीनामुत्तरमध्यमदक्षिणमार्गस्थानामुत्तरमध्यदक्षिणेनैकैका स्थिता। तद्यथा :– नागा उत्तरोत्तरा। गजा उत्तरमध्यमा। ऐरावती उत्तरदक्षिणा। तथा वृषभा मध्योत्तरा। गोवीथी मध्यमध्या। जरद्गववीथी मध्यदक्षिणा। तथा मृगा दक्षिणोत्तरा। अजा दक्षिणमध्या। दहना दक्षिणदक्षिणा इति। तथा च पराशरः–

अथ मार्गास्त्रयो भवन्त्युत्तरमध्यमदक्षिणाः। पुनरेकैकशस्त्रिधा नव वीथय इत्याचक्षते। तत्रोत्तरे नागगजैरावत्यः। मध्ये वृषभगोजारद्गव्यः। दक्षिणे मृगाजदहनाः। तासां नागाऽ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऽग्नेययाम्यवायव्यानि। गजवीथी रोहिण्यादीनि त्रीणि। चत्वारि परमैरावती। वृषभा फल्गुन्यौ। गोवीथी प्राक्प्रोष्ठपदादीनि चत्वारि। श्रवणधनिष्ठावारुणानि जारद्गवी। मृगवीथी त्वाष्ट्रहस्तम्। आजी मैत्रमिन्द्राग्न्यधिपमैन्द्रम्। मूलमषाढाद्वयं च वैश्वानरीमितीच्छन्ति।

इन नागादि नौ वीथियों में क्रमशः परम्परया तीन-तीन वीथियाँ उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में स्थित होती हैं। जैसाकि नाग, गज और ऐरावतवीथी उत्तरमार्गगत; वृषभ, गो और जारद्गव मध्यममार्गगत; मृग, अज और दहनवीथी दक्षिणमार्गगत होती हैं। इन वीथियों में भी उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्गों में स्थित वीथियों में प्रत्येक उत्तर, मध्य और दक्षिणक्रम से स्थित रहती हैं। जैसाकि नागवीथी उत्तर में भी उत्तर, गजवीथी उत्तर के मध्य और ऐरावतवीथी उत्तर-दक्षिण होती है। इसी प्रकार वृषभ मध्य के उत्तर, गोवीथी मध्य से मध्य और जरद्गवीथी मध्य से दक्षिण होती है। इसी प्रकार मृगवीथी दक्षिण से उत्तर, अजवीथी दक्षिण से मध्य और दहनवीथी दक्षिण से दक्षिण होती है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है:–

उत्तर मध्यम और दक्षिण, ये तीन मार्ग होते हैं। पुनः प्रत्येकमार्ग में तीन-तीन कुल ९ वीथियाँ होती हैं। उत्तर में नाग, गज और ऐरावतवीथी; मध्य में वृषभ, गो और जारद्गववीथी; दक्षिण में मृग, गज और दहनवीथी होती है। इनमें कृत्तिका, भरणी और स्वाती नक्षत्रों की नागवीथी; रोहिणी आदि तीन नक्षत्रों की गजवीथी; तत् पश्चात् (पुनर्वसु आदि) चार नक्षत्रों की ऐरावतवीथी; दोनों फाल्गुनी (पूर्वा तथा उत्तरा) की वृषभवीथी; पूर्वाभाद्रपदा से चार नक्षत्रों की गो-वीथी; श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा की जारद्गवीवीथी; हस्त तथा चित्रा की मृग-वीथी; अनुराधा, ज्येष्ठा की अजवीथी और मूल तथा दोनों आषाढा (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा) की दहन (अग्नि) वीथी होती है।

अत्र वराहमिहिरेण सह भेदः। तथा च गर्गः–

कृत्तिका भरणी स्वाती नागवीथी प्रकीर्तिता।
रोहिण्याद्यास्त्रिभास्तिस्रो गजैरावतवार्षभाः[1]॥
अहिर्बुध्न्याश्विपौष्णं च गोवीथीति प्रकीर्तिता।
श्रवणत्रितयं ज्ञेया वीथी जारद्गवीति सा॥
मैत्रत्रिभा मृगाख्या स्याद्धस्तचित्राविशाखिका।
अजवीथी तु दहनाषाढायुग्ममिति स्मृता॥

---

१. 'वार्षभी' इत्यत्र 'वार्षभा' इत्यार्षप्रयोगः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वोत्तरा नागवीथी गजवीथी तदुत्तरा।
ऐरावती ततो याम्या एतास्तूत्तरतः स्मृताः॥
आर्षभी तु चतुर्थी स्याद् गोवीथी पञ्चमी स्मृता।
षष्ठी जारद्गवी ज्ञेया तिस्रस्ता मध्यमाश्रिताः॥
सप्तमी मृगवीथी स्यादजवीथी तथाष्टमी।
दहना नवमी ज्ञेया दक्षिणं मार्गमाश्रिताः॥

यहाँ पर वराहमिहिर के साथ वैमत्य है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

कृत्तिका, भरणी और स्वाती नक्षत्र की नागवीथी कही गयी है। रोहिणी से प्रारम्भ कर क्रमशः तीन-तीन नक्षत्रों की गज, ऐरावत और वृषभ-वीथी होती है। उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी की गोवीथी होती है। श्रवण से तीन नक्षत्र जारद्गववीथी है। अनुराधा से तीन नक्षत्र मृगवीथी; हस्त, चित्रा और विशाखा अजवीथी तथा पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा की दहनवीथी होती है। नागवीथी की पूर्वोत्तरा-दिशा, गजवीथी उससे उत्तर, ऐरावतवीथी उससे दक्षिण; ये सभी उत्तर दिशा की कही गई हैं। वृषभवीथी चतुर्थी, गोवीथी पञ्चमी, जारद्गववीथी षष्ठी; ये तीन वीथियाँ मध्य में स्थित रहती हैं। मृगवीथी सप्तमी, अजवीथी अष्टमी और दहनवीथी नवमी वीथी है; ये तीन वीथियाँ दक्षिणमार्ग में स्थित रहती हैं।

तथा च समाससंहितायाम् :–

वीथी नागा नाम्नी स्वातिर्भरणी च कृत्तिका चैव।
स्वायम्भुवस्त्रिभाः स्युर्गजवीथ्यैरावती वृषभा॥
एकपदादिचतुष्कं गौः स्याज्जारद्गवी त्रिभा श्रवणात्।
मैत्रात्त्रिभं मृगाऽजा हस्तश्चित्रा विशाखा च॥
द्वे चाषाढे दहना तिस्र उदग्वीथयः क्रमाच्छुभदाः।
मध्या मध्यास्तिस्रो याम्याः पापा मृगाद्यास्ताः॥इति॥४॥

जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

भरणी, कृत्तिका और स्वाती नक्षत्र की नागवीथी होती है। रोहिणी से तीन-तीन नक्षत्रों की क्रमशः गज, ऐरावती और वृषभ वीथी होती है। उत्तरभाद्रपद से चार नक्षत्र गोवीथी के होते हैं (उत्तरभाद्रपद से तीन नक्षत्र उत्तरभाद्रपद, रेवती और अश्विनी नक्षत्रों की ही गोवीथी होगी, क्योंकि भरणी नक्षत्र की नाग-वीथी ऊपर कहा जा चुका है। अतः मूलपाठ में "एकपदादि च त्रिष्कम्" यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाठ करना ही समीचीन होगा)। श्रवण नक्षत्र से तीन नक्षत्रों की जारद्भवी वीथी है। अनुराधा से तीन नक्षत्रों की मृगवीथी; हस्त, चित्रा, विशाखा की अज वीथी; दोनों आषाढा नक्षत्रों की दहनवीथी होती है। तीन की उत्तर वीथी है, जो शुभ है। मध्य की तीन वीथियाँ मध्य में हैं, जो कि मध्यमफलदायी है। मृगादि तीन (मृग, अज, दहन) वीथियों की दक्षिण दिशा है, जो कि पापफलदायक रहती है ॥४॥

अत्रैव मतान्तरमाह :–

वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथास्थितान् भमार्गस्य।
नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥५॥

इसमें मतान्तर कहते हैं :–

अन्य आचार्य, नक्षत्र-मार्ग की यथास्थिति के अनुसार वीथी-मार्ग को इससे भिन्न रीति से कहते हैं। नक्षत्रों की योगतारा जिस क्रम से दक्षिण, उत्तर और मध्य दिशा में होती है, उसी क्रम से उनकी दिशा जाननी चाहिए ॥५॥

अपरे आचार्या भमार्गस्य नक्षत्रपथस्य यथास्थितान् येनैव प्रकारेण व्यवस्थितान् वीथीमार्गान् तैनेव प्रकारेण कथयन्ति प्रवदन्ति। यतस्तद्वत्तेनैव प्रकारेण नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमाः स्थिताः। याम्यास्तारा दक्षिणो मार्गः। उत्तराः उत्तरो मार्गः। मध्यमा मध्यमो मार्गः। अथवा नक्षत्राद्दक्षिणभागस्थो ग्रहो दक्षिणमार्गगः। उत्तरमार्गस्थ उत्तरमार्गगः। मध्यममार्गस्थो मध्यममार्गगः। तथा च काश्यपः–

नक्षत्राणां त्रयो मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमाः।
उदक्स्थास्तारकाः सौम्यो मध्यमो मध्यमाः स्मृताः॥
दक्षिणा दक्षिणो मार्गो नक्षत्रेषु प्रकीर्तितः।
नक्षत्रात् सौम्यगः सौम्यमार्गस्थो ग्रह उच्यते॥
दक्षिणे दक्षिणो मार्गो मध्ये मध्य इति स्मृतः॥ इति॥५॥

अन्य आचार्य नक्षत्र-मार्ग की व्यवस्था के अनुसार ही वीथी-मार्ग को उसी प्रकार कहते हैं। क्योंकि उसी प्रकार से नक्षत्रों की तारा (योगतारा) दक्षिण, उत्तर और मध्य में स्थित है। जिस तारा का दक्षिणमार्ग, उत्तरमार्ग तथा मध्यममार्ग है, वही उनका मार्ग-क्रम है। अथवा नक्षत्र से दक्षिणभाग में स्थित ग्रह दक्षिणमार्गी, उत्तरमार्ग से स्थित ग्रह उत्तरमार्गी और मध्यभाग में स्थित ग्रह मध्यमार्गी होता है। जैसाकि आचार्य काश्यप ने कहा है :–

दक्षिण, उत्तर और मध्य– ये तीन प्रकार के मार्ग नक्षत्रों के कहे गये हैं। उत्तर में स्थित नक्षत्र उत्तरमार्गी, दक्षिण में स्थित नक्षत्र दक्षिणमार्गी और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्य में स्थित नक्षत्र मध्यमार्गी कहे गये हैं। नक्षत्रों से उत्तरभाग में रहनेवाला ग्रह उत्तरमार्गी, दक्षिण में रहनेवाला ग्रह दक्षिणमार्गी तथा मध्य में रहनेवाला ग्रह मध्यमार्गी कहा गया है ॥५॥

पुनरपि मतान्तरमाह :–

उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्यः।
दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गाः॥६॥

पुनः दूसरा मत कहते हैं :–

भरणी से प्रारम्भ कर ९ नक्षत्रों का उत्तर-मार्ग, पूर्वाफाल्गुनी से ९ नक्षत्रों का मध्यम-मार्ग और पूर्वाषाढा से ९ नक्षत्रों का दक्षिण मार्ग होता है, ऐसा कुछ आचार्यों का मार्ग के सम्बन्ध में कथन है ॥६॥

कैश्चिदाचार्यैरेवमनेन प्रकारेण मार्गाः कृताः। ते च गर्गादयः। याम्या भरणी तदादिको नवनक्षत्रान्त उत्तरो मार्गो निगदित उक्तः। यथा :– भरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिरआर्द्रा-पुनर्वसुतिष्याश्लेषामघा उत्तरो मार्गः। मध्यमस्तु भाग्याद्यः। भाग्यं पूर्वफल्गुनी तदादिको नवनक्षत्रान्तो मध्यमो मार्गः। तद्यथा :– पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखा-नुराधाज्येष्ठामूलमिति मध्यमो मार्गः। दक्षिणमार्गोऽषाढादि। अषाढा पूर्वाषाढा तदादिको नवनक्षत्रान्तो दक्षिणमार्गः। तद्यथा :– पूर्वाषाढोत्तराषाढा श्रवणा धनिष्ठा शतभिषक्पूर्व-भद्रपदोत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी दक्षिणो मार्ग इति। तथा च गर्गः–

कुछ आचार्यों ने मार्ग के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है। ये गर्गादि आचार्य हैं। याम्य अर्थात् भरणी से प्रारम्भ कर ९ नक्षत्र पर्यन्त उत्तरमार्ग कहा गया है। जैसे कि :– भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा नक्षत्र उत्तरमार्ग के हैं। पूर्वफाल्गुनी से प्रारम्भ कर ९ नक्षत्र पर्यन्त मध्य-मार्ग होता है। जैसाकि :– पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, और मूल नक्षत्र का मध्यममार्ग होता है। अषाढा अर्थात् पूर्वाषाढा नक्षत्र से आरम्भ कर ९ नक्षत्र पर्यन्त दक्षिणमार्ग होता है। जैसाकि :– पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरमाप्रपदा, रेवती और अश्विनी नक्षत्र दक्षिणमार्गगत होते हैं। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

अश्वयुग्भोगपर्यन्तेऽषाढादौ नवके गणे।
वर्तमानः सदा क्रूरो दक्षिणे पथि वर्तते॥
शुक्रो निर्ऋतिपर्यन्ते भाग्यादौ नवके गणे।
वर्तमानश्च मध्यस्थो मध्यमेपथि वर्तते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरण्यादौ मघान्ते च तृतीये नवके गणे।
वर्तमानः शुभो ज्ञेय उत्तरे पथि वर्तते॥इति॥६॥

पूर्वाषाढादि अश्विनी पर्यन्त नव नक्षत्र दक्षिण मार्ग में स्थित, सदा ही क्रूर होते हैं। पूर्वाफाल्गुनी से आरम्भ कर मूल नक्षत्रपर्यन्त शुक्र मध्यममार्ग में होता है। भरणी नक्षत्र से प्रारम्भ कर मघानक्षत्रपर्यन्त तृतीय क्रम में इन ९ नक्षत्रों में स्थित शुक्र उत्तरमार्ग का, शुभफल देनेवाला जानना चाहिए॥६॥

ननु संग्रहकर्त्रा यत्सारं तदेव वक्तव्यं किं मतान्तरैः प्रयोजनमित्येतदाशङ्क्याऽऽह :–

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥७॥

सङ्कलन-कर्ता को जो सारतत्व हो, उसे ही कहना चाहिए। विभिन्नमतों के कहने का प्रयोजन क्या है? इस आशंका के प्रति कहते हैं :–

ज्योतिषशास्त्र एक आगम शास्त्र (परम्परागत शास्त्रीय विषय) है। इसके वैमत्य में स्वयं ही किसी विकल्प का (निर्णय) निश्चय करना हम लोगों के लिए योग्य नहीं है। अतएव विविध आचार्यों के मत को कहा गया है॥७॥

ज्योतीषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्यौतिषं तच्चागमशास्त्रमागमेन विना न ज्ञायते। अस्माकं विप्रतिपत्तौ विषये स्वयमेवाऽऽत्मना विकल्पयितुं न योग्यं न न्याय्यम्। इदं शोभनमिदमशोभनमिति। यतः सर्व एव मुनयस्त्रिकालदर्शिनः। न ज्ञायते कस्य मुनेः कीदृश आगमः। तस्मादस्माकं विकल्पयितुं न न्याय्यम्। किन्तु बहूनां प्रभूतानां मतं वक्ष्ये कथयिष्ये॥७॥

ग्रह, नक्षत्रादि प्रकाश-पिण्ड (ज्योति-पुञ्ज) हैं, इसको निर्दिष्ट कर विरचित शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र होता है, जो कि आगमशास्त्र (वेदाङ्गशास्त्र) है और आगम के बिना यह नहीं जाना जा सकता। हमारे सन्देह के विषय में स्वयं ही किसी विकल्प का निर्णय कर लेना समुचित नहीं है। यह (अर्थ) उचित है और यह अनुचित, इसका विचार स्वयं नहीं करना चाहिए। क्योंकि हमारे सभी महर्षि त्रिकालद्रष्टा हैं। हम यह नहीं जान सकते कि किसका शास्त्र किस प्रकार का है। अतः विकल्प की परिकल्पना न्यायपूर्ण नहीं होगा, इस लिए मैंने सभी के मतान्तरों को उपस्थापित कर दिया है॥७॥

अधुना वीथीनां फलमाह :–

उत्तरवीथिषु शुक्रः सुभिक्षशिवकृद् गतोऽस्तमुदयं वा।
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु॥८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब वीथियों के फल कहते हैं :–

उत्तरवीथी में शुक्र उदित अथवा अस्त होकर सुभिक्ष तथा कल्याणकारक होता है। मध्यवीथी में मध्यम (सम) फलदायक तथा दक्षिणवीथी में कष्टकारक फल देता है ॥८॥

शुक्र उत्तरवीथीषु नागगजैरावताख्यासु स्थितो यद्यर्कमण्डले अस्तमयं गतस्तस्मादेवोदयं वा गतस्तदा सुभिक्षशिवकृत्। सुभिक्षं श्रेयश्च करोति। एवं मध्यासु मध्यमासु वीथिषु ऋषभगोजारद्गवाख्यासु मध्यमफलदः। न शुभं नाप्यशुभं फलं करोति। तथा च दक्षिणस्थासु वीथिषु मृगाजदहनाख्यासु कष्टफलोऽनिष्टफल इति। तथा च गर्गः–

शुक्र जब नाग, गज, ऐरावत नामक उत्तर वीथिओं में स्थित होकर रविमण्डल में तिरोहित होकर अस्त होता है, अथवा उससे निकलकर उदित होता है, तब सुभिक्ष और श्रेय (कल्याण) करता है। इसी प्रकार मध्यवीथिओं में, ऋषभ (वृषभ), गो, जारद्गव वीथिओं में मध्यमफलदायक, न शुभ और न तो अशुभ फलप्रदायक होता है। इसी प्रकार दक्षिणवीथियाँ, मृग, अज, दहन नामक हैं, इन वीथिओं में कष्टफल अर्थात् अनिष्टफल देता है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

उदयास्तमयं कुर्यान्मार्गमुत्तरमाश्रितः।
सुभिक्षं च सुवृष्टिं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्॥
उदयास्तमयं कुर्यात् मध्यमं मार्गमाश्रितः।
मध्यमं चार्घसस्यं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्॥
उदयास्तमयं कुर्याद्दक्षिणं मार्गमाश्रितः।
धान्यस्य संग्रहं कृत्वा केदारेषु तिलान् वपेत्॥

उत्तरमार्ग (वीथी) पर रहता हुआ (शुक्र) उदय अथवा अस्त होता है; तो सुभिक्ष, सुन्दर वर्षा तथा कल्याणकारी कहना चाहिए। यदि मध्यममार्ग (मध्यवीथी) में उदयास्त हो तो, सस्य (उपज) तथा अर्ध (मूल्य) में मध्यम स्थिति का निर्देश करना चाहिए। दक्षिणमार्ग (दक्षिणवीथी) में शुक्र का उदयास्त हो तो, धान्यों (अन्नों) का संग्रह कर खेतों में तिल बोना चाहिए। अर्थात् अन्नोत्पादन का अभाव (अकाल) होता है, महान् दुर्भिक्ष पड़ता है।

तथा च पराशरः–

तत्र नागवीथीगतो नागाश्रितांश्च पीडयति गजकुलानि गजवीथ्याम्। ऐरावत्यां नृपतिबलविरोधः। आर्षभ्यां वयोवित्तज्ञानबलाधिकसस्यपीडाश्लेष्मव्याधिप्रादुर्भावश्च। गोवीथ्यां सस्यगोमतां हानिर्जरद्गववीथ्यां शास्त्रविदाम्। मृगवीथ्यां मृगव्याधिः सस्यतपस्विनामपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोगोद्भवश्च। अजवीथ्यां सस्यवर्षब्रह्मचारिणामाधिक्यम्। दहनवीथ्यां सस्यविलयनमग्नि-पित्तव्याधिसम्भवश्च ॥ ८॥

जैसा कि आचार्य पराशर ने कहा है :–

नागवीथी में गया हुआ (शुक्र) नागाश्रित लोगों को पीडित करता है, और गजवीथी पर होकर गजकुल (हाथी समुदाय) को पीड़ा देता है। ऐरावत वीथी में होने पर राजसैनिकों का परस्पर विरोध होता है। ऋषभ (वृषभ) वीथी में होने पर वयोवृद्ध, धनाढ्य श्रेष्ठज्ञानी, बली और सस्य-पदार्थ को पीड़ित करता हुआ कफज व्याधिओं को उत्पन्न करता है। गोवीथी में सस्य तथा गोपालक आदि को तथा जरद्गव वीथी में शास्त्रज्ञों को हानि पहुँचाता है। मृगवीथी में मृगों (पशुओं) को रोग तथा सस्यों और तपस्वी लोगों को भी रोग से कष्ट देता है। अजवीथी में सस्य, वर्षा और ब्रह्मचारियों की बहुलता होती है। दहनवीथी में सस्यसम्पत्ति का विनाश, अग्निदाह और पित्तसम्बन्धी रोगों की उत्पत्ति होती ॥८॥

अथाऽऽसामपि विशेषफलमाह :–

अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनमधमकष्टफलम्।
कष्टतरं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ॥ ९॥

अब भी इनके विशेषफल कहते हैं :–

उत्तरादि-वीथियों में क्रमशः अति उत्तम, उत्तम, हीन, सम, मध्यम, न्यून, अधम, कष्टकर और अत्यधिक कष्टकर फलों को कहना चाहिए ॥९॥

सौम्याद्यासु उदगाशाद्यासु वीथिषु नागाद्यासु नवसु यथाक्रमं परिपाट्याऽनेन प्रकारेण फलमिदं ब्रूयाद्वदेत्। तद्यथा :– नागायामत्युत्तममतिशुभं फलम्। गजाख्यायां वीथ्यामुत्तमं शुभफलं किञ्चिदूनं पूर्वापेक्षया। एवमूनं किञ्चिच्छुभफलमैरावत्याम्। समं मध्यमं फलमृषभवीथ्याम्। मध्यममेव गोवीथ्याम्। न्यूनमीषदशुभं जारद्गव्याम्। अधममनिष्टं मृगवीथ्याम्। कष्टमशुभ-मजवीथ्याम्। कष्टतरमतिकष्टं दहनवीथ्याम् ॥ ९॥

उत्तरादि वीथियों में अर्थात् नागादि नौ वीथियों में क्रमशः यह फल कहना चाहिए। जैसाकि नागवीथी अति उत्तम शुभफलदायी होती है। गजवीथी इसकी अपेक्षा कुछ अल्प शुभफलदायी होती है। इसी प्रकार ऐरावतवीथी में कुछ न्यून शुभफल होता है। वृषभ (ऋषभ) वीथी में सम-मध्यमफल होता है। गोवीथी में मध्यमफल होता है। जारद्गववीथी में न्यूनफल अर्थात् थोड़ा अशुभफल होता है। मृगवीथी में अधम अर्थात् अनिष्टफल होता है। अजवीथी में कष्ट अर्थात् अशुभफल होता है। दहनवीथी अत्यन्त कष्टप्रदायक होती है ॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ शुक्रस्य षण्मण्डलानि भवन्ति। तेषां लक्षणं सफलमाह :—

भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम्।
वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजननम् ॥१०॥
अत्रोदितमारोहेद् ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात्।
भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान् ॥११॥

शुक्र के छः मण्डल होते हैं। इनके लक्षण और फल कहते हैं :—

भरणी से प्रारम्भकर चार नक्षत्रों का प्रथम मण्डल होता है; जो सुभिक्षकारक और बङ्गप्रदेश, अङ्गप्रदेश, महिषवाह्लिक और कलिङ्गप्रदेशों में भय उत्पन्न करता है ॥१०॥

इस मण्डल में उदित शुक्र के ऊपर कोई अन्य ग्रह आरुढ़ (संयुक्त) हो; तब भद्र, अश्व, शूरसेन, यौधेय तथा कोटिवर्ष के राजाओं का हनन करता है ॥११॥

आद्यं प्रथममण्डलं भरणीपूर्वमृक्षचतुष्कम्। भरणी पूर्वा प्रथमा यस्य ऋक्षचतुष्कस्य तद्भरणीपूर्वम्। भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरश्चेति। तच्च सुभिक्षकरं सुभिक्षं करोति। तथा वङ्गा अङ्गा महिषा बाह्लिकाः कलिङ्गाः। एषां ये देशास्तेषु देशेषु भयजननं भीतिं जनयत्युत्पादयति ॥१०॥

भरणी से प्रारम्भकर चार नक्षत्रों का प्रथम मण्डल होता है। चार नक्षत्रों में भरणी नक्षत्र के पूर्व में होने से इसे भरणीपूर्व कहा जाता है। अर्थात् भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा; ये चार नक्षत्र सुभिक्षकारक होते हैं। तथा ये बङ्ग, अङ्ग, महिष, वाह्लिक, कलिङ्ग; इन देशों में भय उत्पन्न करते हैं ॥१०॥

अत्रास्मिन् मण्डले सितं शुक्रमुदितं सूर्यमण्डलादुद्गतं यद्यपि परोऽन्यो ग्रह आरोहेदुपरि पतेत्। अग्रतस्तिष्ठतीत्यर्थः। तदा भद्राश्वा जनाः। शूरसेनकाः। यौधेयकाः। कोटिवर्षाः। एतेषां ये नृपा राजानस्तान् हन्यान्नाशयेत् ॥११॥

इस मण्डल में शुक्र उदित होकर सूर्यमण्डल से बाहर आकर, यदि अन्य ग्रह से आरूढ हो अर्थात् उसके आगे स्थित हो; तब भद्राश्वप्रदेश के लोग, शूरसेन प्रदेश के नागरिक, यौधेयक और कोटिवर्ष के जो राजा होते हैं, उनको विनष्ट करता है ॥११॥

अथ द्वितीयमण्डलं सफलमाह—

भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै।
विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकश्वजीविगोमन्तान् ।
गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥ १३॥

आर्द्रानक्षत्र से प्रारम्भकर चार नक्षत्रों का द्वितीयमण्डल होता है। इस मण्डल में प्रचुर वर्षा, सस्यसम्पत्ति होती है। यह मण्डल विप्रों के लिए अशुभकारक है, उसमें भी क्रूरकर्मियों के लिए विशेष कष्टकारक होता है ॥१२॥

किसी अन्य ग्रह से अक्रान्त होने पर म्लेच्छ, वन्यजीवी, श्वानजीवी, पशुपालक, गोनर्दवासी, नीच, शूद्र और मिथिलाञ्चलवासियों को रोगयुक्त करता है ॥१३॥

आर्द्राद्यमार्द्राप्रथमं भचतुष्टयं नक्षत्रचतुष्कं द्वितीयं मण्डलं तच्चामिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै भवति। अमितमपरिमितमम्बु जलं सस्यानां च सम्पदं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानामशुभकरमनिष्टफलदम्। क्रूरचेष्टानां विषमस्वभावानां विशेषतो न शुभकरम् ॥ १२॥

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन परेण ग्रहेणाऽऽक्रान्ते रुद्धे शुक्रे म्लेच्छा जनाः। आटविका अरण्यवासिनः। श्वजीविनश्च श्वभिर्ये जीवन्ति। गोमन्तो विद्यमानगावः। गोनर्दा जनाः। नीचा अधमकर्मकराः। शूद्राः। वैदेहा जनाः। एतान् सर्वाननयः स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थः ॥ १३॥

आर्द्रा से प्रारम्भकर चार नक्षत्र द्वितीय मण्डल कहा जाता है, जो कि अपरिमित जल और शस्यसम्पत्ति को करता है। ब्राह्मणों को अनिष्टफल देता है। क्रूर चेष्टावाले अर्थात् विषम स्वभाववाले व्यक्तियों के लिए विशेषतया शुभकारक नहीं होता है ॥१२॥

इस मण्डल में अन्य ग्रह से आक्रान्त (अवरुद्ध) शुक्र के होने पर म्लेच्छ लोग, अरण्यवासी, श्वान से आजीविका चलानेवाले श्वानोपजीवी, गोमन्त अर्थात् विद्यमान् गायोंवाले, गोनर्दजन, नीच कर्म करनेवाले, शूद्र, वैदेह (मिथिला के लोग), इन सबको अनीति का स्पर्श होता है, अर्थात् वे उपद्रवग्रस्त होते हैं ॥१३॥

अथ तृतीयं मण्डलं सफलमाह :–

विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः ।
क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥ १४॥
पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्येनाविकान् शबरशूद्रान् ।
पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १५॥

अब तृतीय मण्डल का लक्षण एवं फल कहते हैं :–

मघा से प्रारम्भ कर पाँच नक्षत्रों में शुक्र उदित होकर सस्यों का विनाश करता है। क्षुधा और तस्कर (चोर) का भय करता है। नीचों (कुपात्रों) की उन्नति और वर्णसङ्कर को बढ़ाता है ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन मघादि नक्षत्रों में गया हुआ शुक्र यदि किसी अन्य ग्रह से अवरुद्ध होता है, तो आविक अर्थात् भेंड-पालक, शबर (किरात), शूद्र, पुण्ड्रवासी, अपरान्त्यवासी, सूलिकवासी, वनवासी, द्रविड़ (दाक्षिणात्य) और समुद्रतटवासियों का हनन करता है ॥१५॥

तृतीयमण्डलं मघादिपञ्चकम्। मघा आदौ यस्य ऋक्षपञ्चकस्य तत्। तत्र शुक्र उदितः सूर्यमण्डलादुद्गतो विचरंस्तिष्ठन् सस्यप्रणाशकृत् सस्यानां प्रणाशं करोतीति सस्यप्रणाशकृत्। तथा क्षुद् दुर्भिक्षम्। तस्करश्चौरः। आभ्यां भयं जनयति उत्पादयति। तथा नीचानामुन्नतिं प्राधान्यं करोति। सङ्करकरश्च वर्णसङ्करं करोति ॥१४॥

पित्र्याद्ये मघाद्ये। अन्येनापरेणावष्टब्धो रुद्धो यदि भवति। तदाऽऽविकानविसम्भूतान् शबरान् जनान्। शूद्रान्। पुण्ड्रा अपरान्त्याः शूलिका जनाः। वनवासिनो वनेचराः। द्रविडा जनाः। सामुद्राः समुद्रतीरवासिनः। एतान् हन्ति घातयति ॥१५॥

तृतीयमण्डल मघादि पाँच नक्षत्रों का होता है। मघा से प्राम्भकर पाँच नक्षत्रों का यह मण्डल है। इस मण्डल में शुक्र उदित हो अर्थात् सूर्यमण्डल से निकलकर स्थित हो, तब सस्यों का विनाश करता है। यह दुर्भिक्ष-चोर; इन दोनों से भय उत्पन्न करता है, तथा नीचों की उन्नति अर्थात् उनकी प्रधानता करता है। और इसमें वर्णसङ्करों की वृद्धि होती है ॥१४॥

मघादि इन पाँच नक्षत्रों में शुक्र किसी अन्य ग्रह से यदि अवरुद्ध होता है, तब आविक अर्थात् भेंड़ से सम्बन्धित, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, अपरान्त्य और शूलिकजनों, वनेचरजातियों, द्रविड़ (दाक्षिणात्य) जनों और समुद्रतट के निवासियों का विघात करता है ॥१५॥

अथ चतुर्थं मण्डलं सफलमाह :—

स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम्।
ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥१६॥
अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून्।
प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणान् शूरसेनांश्च ॥१७॥

अब चतुर्थ मण्डल का फल और लक्षण कहते हैं :—

स्वातीनक्षत्र से प्रारम्भकर तीन नक्षत्रों का चतुर्थमण्डल होता है, जो अभयकारक होता है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय और सुभिक्ष के लिए वृद्धिकारक तथा मित्रों में विभेद कराता है ॥१६॥

इस मण्डल में यदि शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो किरातपति की मृत्यु और इक्ष्वाकुवंशियों का विनाश करता है। प्रत्यन्त अर्थात् सीमान्तवासी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उज्जैन, पुलिन्द, तङ्गण और शूरसेन के निवासियों को पीस डालता है अर्थात् विनष्ट कर देता है ॥१७॥

स्वात्यायं स्वातिपूर्वकं भत्रितयं चतुर्थं मण्डलम्। एतदभयकरं भयं न करोति। व्याध्यादिकृता भीतिं नोत्पादयति। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च सुभिक्षस्याभिवृद्धये भवति। एतेषां वृद्धिं करोति। तथा मित्रभेदाय भवति मित्राणां सुहृदां परस्परं भेदमप्रीतिं जनयति ॥१६॥

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन ग्रहेणाक्रान्ते शुक्रे मृत्युः किरातभर्तुः किराताधिपस्य। पिनष्टि संचूर्णयति तथा चेक्ष्वाकून् जनान्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। अवन्तयो जनाः। पुलिन्दाः। तङ्गणाः। शूरसेनाः। एतांश्च पिनष्ट्येव ॥१७॥

स्वाती से प्रारम्भकर तीन नक्षत्र चतुर्थ मण्डल में हैं। ये भय नहीं करते हैं, रोगादि से भय उत्पन्न नहीं करते हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों तथा सुभिक्ष के लिए वृद्धिकारक होते हैं, इनकी वृद्धि करता है। ये मित्रभेद-कारक होते हैं अर्थात् मित्रों, सुहृदों में परस्पर शत्रुता उत्पन्न करते हैं ॥१६॥

इस मण्डल में किसी अन्य ग्रह से शुक्र के आक्रान्त होने पर किरात-स्वामी की मृत्यु होती है। इक्ष्वाकुजनों को संचूर्णित (विनष्ट) कर देता है। प्रत्यन्त अर्थात् सीमान्त गुफाओं में रहने वाले, आवन्तिक (उज्जैनवासी) जनों, पुलिन्द, तङ्गण और शूरसेन के निवासी जनों को पीस डालता (नष्ट करता) है ॥१७॥

अथ पञ्चममण्डलं सफलमाह :–

ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्कररोगदं प्रबाधयते।
काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तींश्च ॥१८॥
अत्रारोहेद् द्रविडाभीराम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्।
नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥१९॥

अब पञ्चम-मण्डल का फल एवं लक्षण कहते हैं :–

ज्येष्ठादि पाँच नक्षत्र (में स्थित शुक्र) क्षुधा, तस्कर और रोग-दायक होता है। काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवीनदी के तटवर्ती और अवन्ति-राज्य के निवासिओं को कष्ट देता है ॥१८॥

यदि इस मण्डल में ग्रहाकान्त शुक्र हो, तो द्रविड़ (दाक्षिणात्य), आभीर, अम्बष्ठ, त्रिगर्त और सौराष्ट्र के साथ ही सिन्धु एवं सौवीरक के वासिओं का विनाश करता है। इसमें काशीनरेश की हत्या (मृत्यु) होती है ॥१९॥

ज्येष्ठाद्यं ज्येष्ठापूर्वकं पञ्चर्क्षं पञ्चनक्षत्रं पञ्चमं मण्डलम्। तच्च क्षुत्तस्कररोगदम्। क्षुद्र दुर्भिक्षम्। तस्कराश्चौराः। रोगा गदाश्च। एतान् ददाति। अथ काश्मीरान् जनान्। अश्मकान्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत्स्यान्। एतान् जनान्। चारुदेवीन्। चारुदेवी नदी तत्तटनिवासिन इत्यर्थः। अवन्तीन् जनान् सचारुदेवीन् चारुदेव्या सहितान् एतान् प्रबाधयते उपतापयति॥१८॥

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत् तदा द्रविडान् जनान्। आभीरान्। अम्बष्ठान्। त्रिगर्तान्। सौराष्ट्रान्। एतान्नाशयति क्षयं नयति। तथा सिन्धुसौवीरकांश्च जनान् नाशयत्येव। काशीश्वरस्य काशिराजस्य च वधो मरणं भवति॥१९॥

ज्येष्ठा से प्रारम्भकर पाँच नक्षत्रों का पञ्चम मण्डल होता है। यह क्षुधा, तस्कर एवं रोगदायक होता है। क्षुद् अर्थात् दुर्भिक्ष (अकाल), तस्कर अर्थात् चोर और रोगों को देता है। कश्मीर, अश्मक, मत्स्य; इनके लोगों को तथा चारुदेवी नदी के तट पर रहने वाले लोगों के सहित सभी को कष्ट देता है॥१८॥

इस मण्डल में यदि कोई अन्य ग्रह शुक्र को आक्रान्त करता है, तब द्रविड़ लोगों, आभीर, अम्बष्ठ, त्रिगर्त और सौराष्ट्र वासिओं का नाश करता है। तथा सिन्धु और सौवीरक के लोगों का भी विनाश करता है। इसमें काशीराज का वध अर्थात् मृत्यु होती है॥१९॥

अथ षष्ठं मण्डलं सफलमाह :—

षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्।
भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित् सभयम्॥२०॥
अत्रारोहेच्छूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते।
वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः॥२१॥

अब षष्ठमण्डल का फल एवं लक्षण कहते हैं :—

धनिष्ठादि छः नक्षत्रों का षष्ठमण्डल होता है। इसमें प्रचुर धन, गोवंश का विस्तार, प्रचुर धान्य तथा कुछ स्थानों पर भयावह स्थिति रहती है॥२०॥

अन्य ग्रह से शुक्र आक्रान्त हो तो शूलिक, गान्धार, और अवन्तिप्रदेश के लोग पीड़ित होते हैं। मैथिल लोगों का मरण तथा सीमान्त (गुफावासी), यवन, शक और सेवकों की समृद्धि होती है॥२१॥

धनिष्ठाद्यं धनिष्ठापूर्वकं षण्नक्षत्रम् :— धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदा, रेवती, अश्विनीति। एतत् षष्ठं मण्डलम्। तच्च शुभं शुभफलप्रदम्। भूरिधनगोकुलाकुलम्। भूरि बहुलम्। धनं वित्तम्। गोकुलानि गोवाटाः। एतैराकुलं सोद्यमं व्याप्तम्। अनल्पधान्यं प्रभूतशालिसंयुक्तम्। क्वचित् क्वचिच्च सभयं भीतिसंयुक्तं न सर्वत्र॥२०॥

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत्तदा शूलिकाः। गान्धाराः। अवन्तयः। एते जनाः प्रपीड्यन्ते। तथा वैदेहानां जनानां वधो मरणम्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। यवनाः। शकाः दासाः कर्मकराः। एतेषां परिवृद्धिर्भवति॥२१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनिष्ठा से प्रारम्भ कर छः नक्षत्र धनिष्ठा, शतभिषा, पू० भा, उ० भा०, रेवती और अश्विनी; ये नक्षत्र षष्ठमण्डल में होते हैं। यह शुभफल देनेवाला है। धन की अधिकता, गोवंश का विस्तार, प्रचुरान्न धान्य तथा कहीं-कहीं पर भययुक्त क्षेत्र होता है, सभी स्थानों पर नहीं ॥२०॥

इस मण्डल में यदि दूसरा ग्रह शुक्र का अतिक्रमण करें, तब शूलिक, गान्धार और अवन्ती प्रदेशों के वासी पीड़ित होते हैं। इसमें विदेहजनों (मैथिल) की मृत्यु होती है। प्रत्यन्त अर्थात् गुफाओं में रहनेवाले लोग, यवन, शक और दास (भृत्य) लोगों की अभिवृद्धि होती है ॥२१॥

अथैषां मण्डलानां विशेषफलमाह :—

अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्।
पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥२२॥

अब मण्डलों का विशेष-फल कहते हैं :—

स्वात्यादि तथा ज्येष्ठादि से होनेवाले दो मण्डलों में पश्चिम दिशा का शुक्र शुभ होता है। मघादि से होने वाले मण्डल में पूर्वदिशा का शुक्र शुभ होता है, शेष मण्डलों का फल यथोक्त ही शुभाशुभ होता है ॥२२॥

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि स्वात्याद्यं मण्डलं ज्येष्ठाद्यं च तच्छुभदम्। एतदुक्तं भवति :— अस्मिन् मण्डलद्वये शुक्र उदितः पश्चिमायां शुभफलदः। एवमेव पित्र्याद्यं मघाद्यं मण्डलं पूर्वस्यां दिशि शुभदम्। शेषाण्यन्यानि मण्डलानि यथोक्तफलदानि यथा प्रागुक्तं फलं तदेव प्रयच्छन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

आद्यरोहितदारुणविरोचनोर्ध्वदण्डतीक्ष्णान्येतानि षण्मण्डलानि। तत्र भरण्यादीनि चत्वारि चतुर्नक्षत्राणि। ज्येष्ठाद्ये द्वे पञ्चनक्षत्रे। आद्यमेव मण्डलचतुष्टयं वातमाहुस्तीक्ष्णं व्याडमार्गम्। ऊर्ध्वदण्डं वैश्वानरमृते श्रवणात्। अथ मण्डलेषु विचरन् क्रमाद् गोब्रह्मचारिनृपतनयसुहृद्भूपालप्रजानामुपतापायेति। तेष्वेवोदयास्तमयौ कुर्वन् प्रथमेऽतीवसुभिक्षायाङ्गवङ्गशबरकलिङ्गाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढोऽसौ माञ्जिष्ठपुरुषादशूरसेनपटच्चरपण्यागाराभावाय। द्वितीयेऽन्नसम्पत्प्रदोऽवन्त्यश्मकमालवपाण्ड्यकैकयोपद्रवाय च। तृतीये शकसौराष्ट्रनृपानयायान्यग्रहारूढः काश्मीरयवनक्षुद्रमालवकिरातश्वाननयेन स्पृशति। चतुर्थे सुवर्षसस्यक्षेमाणि विधत्तेऽन्यग्रहारूढः सुभगांश्चित्रांश्चोपतापयति। पञ्चमे मगधान् शूद्रान् जनाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढो व्याधिभयशस्त्रदुर्भिक्षावर्षाणि सृजति। विशेषतस्तु कुरुपाञ्चालशाल्वेयशूरसेनपटच्चराहारभूतयोऽभिपीड्यन्ते। षष्ठे बालगर्भान् बालान् शूद्रांश्च हिनस्ति। यद्यारोहेत तदा काम्बोजैः सैन्धवो नृपतिः पराजयेत आवन्त्याश्मकाधिपती चोपसृज्येते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपर अर्थात् पश्चिम दिशा में स्वात्यादि और ज्येष्ठादि मण्डल शुभदायक होते हैं। तात्पर्य यह है कि इन दोनों मण्डलों में पश्चिम दिशा में उदित शुक्र शुभ फल देता है। इसी प्रकार मघादि मण्डल पूर्व दिशा में शुभ होते हैं। शेष मण्डल भी यथोक्त फलप्रदायक हैं, अर्थात् पूर्व में उनका जो फल कहा गया है, वही फल देते हैं। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है:–

आद्य, रोहित, दारुण, विरोचन, ऊर्ध्वदण्ड और तीक्ष्ण; ये छः मण्डल होते हैं। भरण्यादि चार नक्षत्र, ज्येष्ठादि दो नक्षत्र, प्रारम्भ के ये चार मण्डल, वात (वायु) कहे जाते हैं। तीक्ष्ण को सर्प मार्ग (व्याडो हिंस्रपशौ सर्पे–अमर कोश ३।३।४२) कहा जाता है। ऊर्ध्वदण्ड श्रवण नक्षत्र का त्याग कर वैश्वानर कहा जाता है। इन मण्डलों में विचरण करता हुआ शुक्र क्रमशः– गो, ब्रह्मचारी, राजकुमार, मित्र, राजा और सामान्य जनता को पीड़ित करता है। इन मण्डलों में अत्यधिक सुभिक्षदायक तथा अङ्ग, वङ्ग, शबर तथा कलिङ्ग प्रदेश के लोगों को दुर्नीति (अत्याचार) का स्पर्श कराता है (अत्याचार भोगना पड़ता है)। इसमें किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त शुक्र मांजिष्ठ, पुरुषाद, शूरसेन, पटच्चर और पण्यागार (दुकान) के लिए अभावकारक होता है। द्वितीय मण्डल में अन्न सम्पदा को देनेवाला, अवन्ती, अश्मक, मालव, पाण्ड्य और कैकय प्रदेश के लिए उपद्रवकारक होता है। तृतीय मण्डल का शक और सौराष्ट्र के राजा के लिए अनीति एवं कष्टकारक होता है। अन्य ग्रह से आक्रान्त होने पर काश्मीर, यवन, क्षुद्रजन, मालव, किरात और शक लोगों को कष्ट देता है।

चतुर्थ मण्डल में सुन्दर वर्षा तथा सस्यों के लिए कल्याणकारक होता है। अन्य ग्रहाक्रान्त होकर सुभग एवं चित्र प्रदेश के निवासिओं को पीड़ित करता है। पञ्चम मण्डल में मागधों तथा शूद्रलोगों को कष्ट देता है। इसमें अन्य ग्रह से आक्रान्त होने पर रोगभय, शस्त्रभय, दुर्भिक्ष (अकाल) तथा अनावृष्टि को उत्पन्न करता है। विशेषतया कुरु, पाञ्चाल, शाल्वेय, शूरसेन, पटच्चर प्रदेशों तथा आहारोपजीवी प्राणियों को पीड़ित करता है। षष्ठ मण्डल में गर्भस्थ शिशुओं, बालकों तथा शूद्रों का हनन करता है। यदि किसी ग्रह से आक्रान्त होता है, तो कम्बोज एवं सिन्धु प्रदेश के राजा को पराजित करता है। अवन्ती और अश्मक प्रदेश के राजाओं का निर्माण करता है (नये राजा होते हैं)।

अत्र मतभेदो वराहमिहिरेण सहास्ति। तथा च समाससंहितायाम्:–

भरणीरौद्रमघाऽनिलशक्रधनिष्ठादिसम्प्रवृत्तेषु।
चारोदयः शुभो मण्डलेषु हित्वैन्द्र्यपित्र्याये॥इति॥२२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पर वराहमिहिर के साथ मतभेद है। जैसा कि समाससंहिता में कहा गया है :-

भरणी, आर्द्रा, मघा, स्वाती, ज्येष्ठा और धनिष्ठादि नक्षत्रों में शुक्र का गमन तथा उदय शुभ होता है। इन मण्डलों में से ज्येष्ठादि तथा मघादि मण्डल शुभ नहीं हैं। अर्थात् इन दो मण्डलों को छोड़कर शेष चार मण्डल शुभ हैं ॥२२॥

अथ दिवादृष्टस्य शुक्रस्य विशेषफलमाह :-

दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के भयकृत् क्षुद्रोगकृत्समस्तमहः।
अर्द्धदिवसे च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ॥२३॥

अब दिन में दृष्ट शुक्र का विशेषफल कहते हैं :-

सूर्यास्त के पूर्व दिन में शुक्र यदि दृष्ट हो, तब भयकारक होता है। सम्पूर्ण दिन में यदि दृष्ट हो, तो दुर्भिक्ष तथा रोगों को उत्पन्न करता है। मध्याह्नकाल में चन्द्रमा सहित दृष्ट हो, तो राजसेना और नगर में विभेद उत्पन्न करता है ॥२३॥

शुक्रो भार्गवोऽनस्तमिते नास्तमितेऽर्के सूर्ये दृष्टोऽवलोकितो भयकृद् भयं करोति। तथा समस्तमहः सकलं दिनं दृष्टः क्षुद्रोगकृत्। क्षुद्र दुर्भिक्षम्। रोमान् गदांश्च करोति। तथा अर्द्धदिवसे मध्याह्नसमये सेन्दुः सचन्द्रः शुक्रो दृष्टो नृपबलपुरभेदकृद् भवति। नृपस्य राज्ञो बलस्य सेनायाः परस्य नगरस्य भेदं पृथग्भावं करोति तथा च पराशरः-

अहः सर्वं यदा शुक्रो दृश्यतेऽथ महाग्रहः।
तदा न्वागन्तुभिर्ग्रामा बाध्यन्ते नगराणि च ॥ इति ॥२३॥

शुक्र सूर्य के अस्त न रहने पर (संध्या समय) दीख पड़े, तो भयकारक है। यदि पूरे दिन दिखलाई पड़े, तब क्षुद्ररोग अथवा दुर्भिक्ष तथा रोगों को करता हैं। अर्ध-दिवस अर्थात् मध्याह्नकाल में चन्द्रमा के साथ दृष्ट शुक्र राजा की सेना तथा शत्रु-नगर का भेद अर्थात् विखण्डन करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :-

जब शुक्र सम्पूर्ण दिन दिखायी पड़ता है, तब बाहरी आगन्तुकों (आक्रमण-कारियों) के द्वारा गाँव और नगर पीड़ित होते हैं ॥२३॥

अथ शुक्रस्य नक्षत्राणां भेदनात् फलमाह-

भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः।
अध्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥२४॥

अब नक्षत्रों के भेदन-वश शुक्र का फल कहते हैं :-

जब शुक्र कृत्तिकानक्षत्र को भेदता हुआ गमन करे, तब नदियाँ अपने तटों को आक्रान्त करती हैं। अर्थात् तटबन्धों को तोड़कर जलप्रवाहवाली हो जाती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। पृथ्वी नदियों के जल से ऊँची और नीची हो जाती है, तथा नदियाँ सभी प्रकार के भूभाग को जल-पूरित कर समतल बना देती हैं ॥२४॥

अनलर्क्षं कृत्तिकां भिन्दन् भित्त्वा यदि शुक्रो गतस्तदा सरिद्भिर्नदीभिः कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः कूलातिक्रान्तं वारि जलं वहन्ति याः। आत्मीयं प्रवाहमतिक्रम्यातिप्रभूतं जलं वहन्तीत्यर्थः। तथाभूताभिः। धात्री भूरव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा भवति। न व्यक्तमव्यक्तम्। तुङ्गमुच्चम्। निम्नं नीचम्। अव्यक्तौ तुङ्गनिम्नौ यस्याः। अलक्षितोच्चनीचप्रदेशेत्यर्थः॥२४॥

अनलनक्षत्र अर्थात् कृत्तिका का भेदन कर यदि शुक्र जाता है, तब नदियाँ तटों का अतिक्रमणकर जल बहाती हैं। अर्थात् अपने सहज प्रवाह से अधिक जल का वहन करती हैं। इस प्रकार की नदियों द्वारा ऊँची-नीची धरती समान हो जाती है। तात्पर्यार्थ यह है कि धरती के उच्च और नीच भाग अदृश्य हो जाते हैं, जिससे उच्च और निम्नभाग व्यक्त नहीं होते हैं ॥२४॥

अथ रोहिण्याः शकटभेदे फलमाह :—

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा।
केशास्थिशकलशबला कापालमिव व्रतं धत्ते॥२५॥

अब रोहिणीशकट भेदन का फल कहते हैं :—

रोहिणीशकट का भेदन होने पर पृथ्वी किसी पातकी के समान केश, अस्थिखण्ड और श्वेत-कृष्ण सहित किसी कापालिकव्रत को धारण करती है ॥२५॥

प्राजापत्ये शकटे रोहिण्याः शकटे भिन्ने। शकटभेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम्। तथा च [1]ब्रह्मसिद्धान्ते :—

विक्षेपोंऽशद्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः॥

रोहिणीशकट का भेदन करने पर जो फल होता है, उसे कहा जा रहा है। शकटभेद का लक्षण गणितज्ञों द्वारा कहा गया है। जैसाकि ब्रह्मसिद्धान्त में (आचार्य ब्रह्मदेव गुप्त) कहा गया है :—

वृषराशि के १७ अंश पर जिस ग्रह का दक्षिण-शर २ अंश से अधिक हो, वह रोहिणीशकट का भेद करता है।

तथा च भानुभट्टः—

वृषस्यांशे सप्तदशे विक्षेपो यस्य दक्षिणः।
अंशद्वयाधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः॥

एवं रोहिण्याः शकटे शुक्रेण भिन्ने वसुधा भूः पातकं ब्रह्महत्यामिव कृत्वा केशैर्मूर्द्धजैरस्थिशकलैरस्थिखण्डैः शबला मिश्रितशुक्लकृष्णा भवति। अतः कापालं व्रतमिव

---

१. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धत्ते धारयति। 'ब्रह्महत्यायाः कापालं व्रतं प्रायश्चित्तम्। कापालिकश्च केशास्थिशकलैः शबलो भवति॥२५॥

इसी प्रकार आचार्य भानुभट्ट ने भी कहा है :–

वृषराशि के १७ अंश पर स्थित जिस ग्रह का दक्षिण-शर २ अंश से अधिक होता है, वह रोहिणीशकट का भेदन करता है।

इस प्रकार शुक्र से रोहिणीशकट का भेदन होने पर पृथ्वी पातक अर्थात् ब्रह्महत्या की हुई की भाँति केशों, अस्थिखण्डों से शबला अर्थात् श्वेतकृष्णमयी होती है। अतः यह कापालव्रत धारणा की हुई की भाँति होती है। ब्रह्महत्या का प्रायश्चित कापालव्रत होता है। कापालिक केश और अस्थिखण्डों से शबल की भाँति होता है॥२५॥

टिप्पणी– महापातक ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त के सन्दर्भ में मनुस्मृति-११/७२ "कृत्वा शवशिरोध्वजम्" के द्वारा कापालव्रत बतलाया गया है।

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह :–

सौम्योपगतो रससस्यसंक्षयायोशनाः समुद्दिष्टः।
आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः॥२६॥

मृगशिरा और आर्द्रा का भेदनफल :–

मृगशिरा नक्षत्र पर गया हुआ शुक्र रसपदार्थ और सस्यों का विनाशक होता है। आर्द्रानक्षत्र पर गया हुआ शुक्र कोशल तथा कलिङ्गप्रदेश का विघातक होता है और पर्याप्त जलकारक होता है॥२६॥

उशनाः शुक्रः। सौम्योपगतो मृगशिरसि प्राप्तो रसानां मधुरादीनां सस्यानां च संक्षयाय विनाशाय समुद्दिष्टः कथितः। आर्द्रागतस्तु कोशलान् कलिङ्गांश्च हन्ति तथा सलिलं जलं निकरं निवहं करोति। अतिवृष्टिं करोतीत्यर्थः॥२६॥

शुक्र सौम्य अर्थात् मृगशिरानक्षत्र पर गया हो, तब मधुर आदि रसों और सस्यों का विनाशक कहा गया है। आर्द्रा पर गया हुआ शुक्र कलिङ्ग और कोशल प्रदेश का हनन करता है, तथा जल का अधिक्य करता है; अर्थात् अनावृष्टि करता है॥२६॥

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह :–

अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सित महाननयः।
पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधररणविमर्दश्च॥२७॥

---

१. महापातकब्रह्महत्याप्रायश्चित्ते मनुस्मृतौ ११ अध्याये ७२ श्लोके 'कृत्वा शवशिरोध्वजम्" इत्यनेन कपालव्रतमुक्तम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब पुनर्वसु और पुष्य का फल कहते हैं :-

शुक्र पुनर्वसुनक्षत्र पर स्थित होकर अश्मक और विदर्भप्रदेश के लिए महान् उपद्रवकारक होता है। पुष्य नक्षत्र में परिपूर्ण वर्षा होती है, तथा विद्याधरों में सङ्ग्राम से अवमर्दन होता है ॥२७॥

पुनर्वसुस्थे सिते। अश्मकानां जनानां वैदर्भाणां च महाननय उपद्रवो भवति। तथा पुष्ये तिष्यस्थे सिते पुष्टा बह्वी वृष्टिर्भवति। तथा विद्याधराणां देवयोनीनां रणे संग्रामे विमर्दो भवति ॥ २७॥

पुनर्वसुनक्षत्र में स्थित शुक्र अश्मकवासियों और विदर्भजनों के लिए उपद्रवकारक होता है। पुष्य अर्थात् तिष्यनक्षत्र में शुक्र के स्थित होने पर अधिक वर्षा होती है। विद्याधरों अर्थात् देवयोनियों के सङ्ग्राम में विमर्द अर्थात् संमर्द होता है ॥२७॥

अथाश्लेषामघयोराह :-

आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्चरन् शुक्रः।
भिन्दन् मघां [1]महामात्रदोषकृद् भूरिवृष्टिकरः॥ २८॥

अब आश्लेषा और मघा का फल कहते हैं :-

आश्लेषानक्षत्र में स्थित शुक्र सर्पों के उपद्रव से पीड़ा उत्पन्न करता है। मघा नक्षत्र का भेदन करता हुआ गजपतिओं के लिए दोषकारक तथा प्रचुर वर्षा करानेवाला होता है ॥२८॥

शुक्र आश्लेषासु चरंस्तिष्ठन् भुजङ्गमेभ्यः सर्पेभ्यो लोकानां दारुणां तीव्रां पीडां वहेत् कुर्यात्। मघां भिन्दन् विदारयन् महामात्राणां हस्तिसाधनपतीनां दोषकृद् दोषं करोति। केचिन्महामात्याः प्रधाना इतीच्छन्ति। भूरिवृष्टिकरो बहुवर्षकरः।

भेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम् :-

छादयति योगतारां मानार्द्धोनाधिकाद् भविक्षेपात्[2]।
स्फुटविक्षेपो यस्याधिकोनको भवति समदिक्स्थः॥

---

१. महामात्य इति पाठान्तरम्।

२. ब्रह्मगुप्तकृतब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ताराग्रहसमागमाधिकारस्येमौ श्लोकौ। भिन्नदिवस्थयोरपि ग्रहतारयोर्यदा दक्षिणोत्तरमन्तरं मानार्द्धाल्पं तदा ग्रहो योगतारां छादयति। अत्र "यदाऽपममण्डलादेको दक्षिणदिशि विक्षिप्तो भवति द्वितीयश्चोत्तरविक्षिप्तस्तदा शङ्कैव नास्ति" इति वदतां मधुसूदनसुतचतुर्वेदाचार्यपृथूदकस्वामिनां भ्रान्तिरेवेति। मघातृतीयतारोत्तरशरः पृथूदकस्वामिमते चन्द्रपरमशरसमः, तेन चन्द्रस्यान्त्ये परमे विक्षेपे भेद उत्पद्यते। एवं शतभिषजोऽष्टादशकलाः शरः, तत्राविक्षिप्तश्चन्द्रः स्वल्पान्तरेण भेदमुत्पादयतीति सुधीभिर्भृशं विचिन्त्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विक्षेपेऽन्त्ये सौम्ये तृतीयतारां भिनत्ति पित्र्यस्य।
इन्दुर्भिनत्ति पुष्यं पौष्णं वारुणमविक्षिप्तः॥इति॥२८॥

शुक्र आश्लेषानक्षत्र में स्थित होता हुआ सर्पों के द्वारा लोगों को तीव्र पीड़ा प्रदान करता है। मघानक्षत्र का भेदन करता हुआ महामात्रों अर्थात् गजपतिओं के लिए दोषकारक होता है। कुछ लोग यहाँ महामात्य अर्थात् प्रधान (प्रधानमन्त्री) का पाठकर यह अर्थ ग्रहण करते हैं। यह बहुत वर्षाकारक भी होता है।

भेद का लक्षण गणित के विद्वानों ने कहा है :–

भिन्न दिशा में स्थित योग-तारा का दक्षिणोत्तर अन्तर जब मानार्ध से अल्प होता है, तब ग्रह योगतारा को आच्छादित कर लेता है। यदि नक्षत्रशर से मानार्धस्पष्टशर अधिक अथवा न्यून हो तथा एक दिशा हो, तब योगतारा का आच्छादन होता है। उत्तरशर होने पर परमशर से मघा का तृतीय नक्षत्र भेदित होता है। पुष्य, रेवती और शतभिषा नक्षत्र का चन्द्रमा अल्पशर होने पर भी भेदित करता है॥२८॥

टिप्पणी– आचार्य ब्रह्मगुप्त लिखित "ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त" के ताराग्रह समागम अधिकार में ये दोनों श्लोक हैं। भिन्न दिशाओं में ग्रह तथा नक्षत्रों के रहने पर भी जब दक्षिणोत्तर अन्तर ग्रहनक्षत्रों के बिम्बमान के आधे से कम हो, तब ग्रह योगतारा को आच्छादित करता है। यहाँ पर मधुसूदन चतुर्वेदाचार्य के पुत्र आचार्य पृथूदक स्वामी ने कहा है :– "यदि क्रान्तिवृत्त एक दक्षिण दिशा में तथा दूसरा उत्तरदिशा में विक्षिप्त होता है, तब आशङ्का ही नहीं है" (अर्थात् आच्छादन नहीं होगा)। यह कथन इनका नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है। मघा के तीसरे तारे का उत्तर शर पृथूदक स्वामी के अनुसार चन्द्रमा के परमशर के बराबर है, इस कारण से चन्द्रमा के परमशर पर भेदन होता है। इसी प्रकार शतभिषा का शर १८ कला है, इसमें उपस्थित चन्द्रमा अल्प अन्तर पर भेदन करता है, इस तथ्य पर विद्वज्जन अवश्य विचार करें।

अथ पूर्वोत्तरफल्गुन्योराह :–

भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय।
आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी॥२९॥

अब पूर्वा एवं उत्तरा फाल्गुनी का फल कहते हैं :–

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में शुक्र शबर-पुलिन्द प्रदेशों का विध्वंसक और जलाधिक्य प्रदान करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कुरु प्रदेश, वन प्रदेश और पाञ्चाल-प्रदेश का विघातक तथा जलदायक होता है॥२९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां शबरा जनाः पुलिन्दाश्च। एतेषां प्रध्वंसकरो विनाशकरः। अम्बुनिवहमोक्षाय। अम्बुनो जलस्य निवहं वेगं मुञ्चति। बहुजलं वर्षतीत्यर्थः। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां कुरून् जनान्। जाङ्गलं स्वल्पोदकस्थानम्। तत्र ये निवसन्ति प्राणिनः। पाञ्चालान् जनान्। एतान् हन्ति। सलिलं जलं ददातीति सलिलदायी। वर्षतीत्यर्थः॥२९॥

भाग्य अर्थात् पूर्वाफल्गुनी नक्षत्र में शुक्र शबरों (किरात) तथा पुलिन्दवासिओं के लिए विनाशकारक होता है। अम्बुनिवह अर्थात् जल का वेग बढ़ाता है, अधिक वर्षा करता है। आर्यम्ण अर्थात् उत्तराफाल्गुनी में कुरुप्रदेश और जाङ्गल अर्थात् कम जलवाले स्थान में रहनेवाले प्राणियों और पाञ्चाल क्षेत्र में रहनेवालों का विनाश करता है। साथ ही जलदायी (वर्षाकारक) होता है॥२९॥

अथ हस्तचित्रयोराह :—

कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः।
कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः॥३०॥

अब हस्त और चित्रा का फल कहते हैं :—

हस्तनक्षत्र में शुक्र हो, तब कौरवक्षेत्र (कुरुक्षेत्र) के लोगों, तथा चित्रकारों को कष्ट तथा जलवर्षा का अभाव होता है। चित्रा नक्षत्र में कूप-कर्मी (उत्खननकर्मी) तथा पक्षियों को कष्ट होता है, और वर्षा अच्छी तरह होती है॥३०॥

हस्ते स्थिते शुक्रे कौरवा जनाः। चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः। एषां पीडा भवति जलस्योदकस्य च निरोधोऽवर्षणम्। चित्रास्थे शुक्रे कूपकृतां कूपकराणां खे अण्डजानां पक्षिणां च पीडा भवति। वृष्टिश्च शोभना कालोपयोग्या भवति॥३०॥

हस्त नक्षत्र में शुक्र के स्थित होने पर कुरुक्षेत्र-वासिओं और शिल्पकारों को पीड़ा होती है। जल का निरोध अर्थात् अनावृष्टि रहती है। शुक्र चित्रा में स्थित हो, तब कूपकर्त्ता, तथा अण्डज (पक्षी) पीड़ित होते हैं। सुन्दर वर्षा अर्थात् समय पर उचित वर्षा होती है॥३०॥

अथ स्वातिविशाखयोराह :—

स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः।
ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात्॥३१॥

अब स्वाती और विशाखा का फल कहते हैं :—

स्वाती नक्षत्र में शुक्र के होने पर अधिक वर्षा तथा दूत, व्यापारी और नाविकों के लिए उपद्रव होता है। विशाखा नक्षत्र में भी अच्छी वर्षा और व्यापारियों के लिए भयकारक जानना चाहिए॥३१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वातौ स्थिते शुक्रे प्रभूता वह्नी वृष्टिर्भवति। दूता गमागमिनः। वणिजः क्रयविक्रयज्ञाः। नाविका नौकर्णधाराः। एताननयः स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थः। ऐन्द्राग्ने विशाखायां स्थिते सुवृष्टिः शोभना वृष्टिर्भवति। तथा वणिजां [1]किराटानां च भयं भीतिं विजानीयाद् विन्यात्॥३१॥

स्वाती नक्षत्र में शुक्र स्थित हो, तब बहुत वर्षा होती है, और गमन-आगमन करनेवाले दूत, क्रय-विक्रय के ज्ञाता व्यापारी, नौका के कर्णधार नाविक; ये सभी उपद्रवग्रस्त होते हैं। ऐन्द्राग्नि अर्थात् विशाखा नक्षत्र में स्थित होने पर वणिज अर्थात् किराटों (किरात व्यापारियों) को भय उपस्थित होता है॥३१॥

अथानुराधाज्येष्ठामूलेष्वाह :—

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः।
मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः॥३२॥

अब अनुराधा-ज्येष्ठा और मूल का फल कहते हैं :—

अनुराधानक्षत्र में क्षत्रियों का परस्पर विरोध तथा ज्येष्ठा में प्रमुख क्षत्रियों (क्षत्रपों) को कष्ट होता है। मूलनक्षत्र में मूलवस्तुओं के विक्रेता और वैद्य; इन सबको कष्ट होता है। इन तीनों नक्षत्रों में अनावृष्टि रहती है॥३२॥

मैत्रेऽनुराधायां क्षत्रविरोधः क्षत्रियाणामुपद्रवः। ज्येष्ठायां स्थिते शुक्रे क्षत्रमुख्यानां क्षत्रियप्रधानानां सन्ताप उपद्रवः। मूले मौलिकानां मूलद्रव्यविक्रयिणां भिषजां वैद्यानां च सन्तापः। एतेषु त्रिष्वप्यनुराधाज्येष्ठामूलेष्वनावृष्टिरवर्षणं भवति॥३२॥

मैत्र नक्षत्र अनुराधा में क्षत्रियों का उपद्रव और ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शुक्र क्षत्रिय-प्रधानों को सन्ताप (उपद्रव) कारक होता है। मूल नक्षत्र में मौलिक अर्थात् मूल द्रव्यों के विक्रेताओं और चिकित्सकों को सन्तापित करता है। इन तीनों ही अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूल-नक्षत्रों में अवर्षण होता है॥३२॥

अथ पूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठास्वाह :—

आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति।
श्रवणे श्रवणव्याधिः पाखण्डिभयं धनिष्ठासु॥३३॥

अब पूर्वाषाढा-उत्तराषाढा-श्रवण तथा धनिष्ठा का फल कहते हैं :—

पूर्वाषाढा नक्षत्र में जल-जन्तुओं से पीड़ा तथा उत्तराषाढा में रोगोपद्रव करता है। श्रवण नक्षत्र में कर्णरोग और धनिष्ठा में पाखण्डियों में भय होता है॥३३॥

---

१. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य २५० पृष्ठे १ टिप्पणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आप्ये पूर्वाषाढायां सलिलजैर्जलोद्भवैश्च प्राणिभिर्द्रव्यैश्च प्राणिनां पीडा भवति। सलिलजानां पीडा भवति इति केचित्[१] विश्वेशे उत्तराषाढायां स्थिते शुक्रे व्याधयो रोगाः प्रकुप्यन्ति बाहुल्येन भवन्ति। श्रवणे स्थिते श्रवणव्याधिः कर्णे रोगो भवति। धनिष्ठासु स्थिते पाखण्डिभयम्। पाखण्डिनो वेदबाह्याः तेषु भयं भवति॥३३॥

आप्य नक्षत्र अर्थात् पूर्वाषाढा में जलीय जन्तुओं तथा जलीय द्रव्यों से लोगों को पीड़ा होती है। कुछ के मतानुसार जलीयपदार्थों को पीड़ा होती है। विश्वेश अर्थात् उत्तराषाढा नक्षत्र में शुक्र के स्थित होने पर रोगों का प्रकोप होता है; इनका अधिक्य होता है। श्रवण नक्षत्र में कर्णरोग होता है। धनिष्ठानक्षत्र में पाखण्डियों में भय अर्थात् विधर्मियों में भय उत्पन्न होता है॥३३॥

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदयोराह :—

शतभिषजि शौण्डिकानामजैकभे द्यूतजीविनां पीडाम्।
कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलिलम्॥३४॥

अब शतभिषा और पूर्वभाद्रपदा का फल कहते हैं :—

शतभिषा में स्थित शुक्र मद्यपायी लोगों को तथा पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में जुवाड़ी लोगों को पीड़ित करता है। इसमें कुरु तथा पाञ्चाल जनपदों में वर्षा होती है॥३४॥

सितः शुक्रः शतभिषजि स्थितः शौण्डिकानां मद्यपानप्रसक्तानां पीडाकरः। अजैकभे पूर्वभाद्रपदायां स्थितो द्यूतजीविनां द्यूतेन ग्लहेन ये जीवन्ति तेषां पीडाकरः। कुरवः पाञ्चालाश्च जनास्तेषामपि पीडां करोति। अपिशब्दो वार्थे। अस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सितः शुक्रः सलिलं जलं करोति॥३४॥

शुक्र शतभिषा नक्षत्र में स्थित होकर शौण्डिक अर्थात् मद्यपान में आसक्त लोगों के लिए पीड़ाकारक होता है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में स्थित होकर जूआ के खेल से आजीविका चलाने वाले लोगों को पीड़ा देता है। कुरु और पाञ्चाल के लोगों को भी पीड़ित करता है। 'अपि' शब्द विकल्पार्थक है। इस नक्षत्र में स्थित शुक्र जल प्रदान करता है॥३४॥

अथोत्तरभद्रपदारेवत्यश्विनीभरणीष्वाह :—

आहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम्।
अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम्॥३५॥

अब उत्तरभाद्रपद-रेवती-अश्विनी और भरणी का फल कहते हैं :—

उत्तरभाद्रपदा में स्थित शुक्र फल-मूलों के लिये सन्तापकारक होता है। रेवती नक्षत्र में यात्रियों को तथा अश्विनी में अश्वपतिओं और भरणी में किरातों तथा यवनों को कष्ट देता है॥३५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां फलानां मूलकानां च तापकृत् पीडाकरः। रेवत्यां यायिनां पथिकानां च पीडाकरः। अश्विन्यां हयपानामश्वपतीनां तापकृत्। याम्ये भरण्यां किरातानां यवनानां च तापकृत् तापकरः। तथा च काश्यपः—

आहिर्बुध्न्य अर्थात् उत्तरभाद्रपद में स्थित शुक्र फलों और मूलों के लिए पीड़ाकारक होता है। रेवती में पथिकों को पीड़ित करता है। अश्विनी में अश्व-स्वामिओं को पीड़ित करता है। भरणी में किरात तथा यवन लोगों को संताप पहुँचाता है। जैसाकि आचार्य काश्यप ने कहा है :—

भेदयेत् कृत्तिकां शुक्रो बहुतोयं विमुञ्चति।
रोहिण्यां मरणं घोरं गृध्राकुलभयाकुलम्॥
मृगे तु सर्वसस्यानां क्षयं कुर्याद् भृगोः सुतः।
आर्द्रासु च कलिङ्गानां कोशलानां भयावहः॥
पुनर्वसौ विदर्भाणां पीडयत्युशनास्तथा।
पुष्ये पुष्टिं समायान्ति जनाः सस्यानि वृष्टयः॥
आश्लेषासूशना भेदात् पीडयेद् भुजगैः प्रजाः।
मघाभेदकरः शुक्रो महामात्रांश्च पीडयेत्॥
भाग्ये शबरविध्वंसं बहुवृष्टिं प्रमुञ्चति।
आर्यम्णे तु कुरुक्षेत्रं पाञ्चालांश्चोपतापयेत्॥
हस्ते चित्रकराणां तु पीडा वृष्टिक्षयो भवेत्।
सुवृष्टिं कूपकृत्पीडां चित्राभेदं यदा व्रजेत्॥
स्वास्तिभेदे सुवृष्टिं च वणिग्नाविकभीतिदः।
विशाखायां सुवृष्टिं च मैत्रे मित्रं विरुध्यति॥
ऐन्द्रे पौरविरोधः स्यान्मूले तु भिषजां भयम्।
आप्ये वैश्वे व्याधिभयं वैष्णवे कर्णविदना॥
धनिष्ठासु कुकर्मस्थान् वारुणे शौण्डिकक्षयम्।
प्रोष्ठपादे पूर्वसक्तानहिर्बुध्न्ये फलक्षयः॥
यायिनां सनृपाणां च पौष्णे ज्ञेयं महद्भयम्।
अश्विन्यां हयपीडाकृद् भरण्यां कृषिजीविनाम्॥ इति॥

शुक्र कृत्तिकानक्षत्र का भेदन कर अधिक जल देता है। रोहिणी में घोर मरण तथा गिद्धों की आकुलता से व्याकुलता और भय होता है। मृगशिरा में शुक्र सभी प्रकार के सस्यों (अन्नों) का विनाश करता है। आर्द्रानक्षत्र में कलिंग तथा कोशल प्रदेशों के लिए भयकारक होता है। पुनर्वसु में शुक्र विदर्भ प्रदेश के लोगों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को पीड़ित करता है। पुष्य में सस्योंत्पत्ति, वर्षा तथा लोगों में समृद्धि होती है। आश्लेषा नक्षत्र में शुक्र के भेदन से सर्वो द्वारा लोगों को पीड़ा होती है। मघा नक्षत्र का भेदन कर शुक्र महासत्त्वों हाथी आदि को पीड़ित करता है। पूर्वाफाल्गुनी में शबर जातिओं का विनाश और अतिवृष्टि करता है। उत्तरा फाल्गुनी में कुरुक्षेत्र तथा पाञ्चाल को उत्पीड़ित करता है। हस्त में चित्रकारों को कष्ट तथा वर्षा का विनाश होता है। जब चित्रा का भेदन करता है, तब अच्छी वर्षा और कूप-खनन करने वाले को कष्ट होता है। स्वातीनक्षत्र के भेदन से उत्तम वर्षा-कारक तथा व्यापारी और नाविक लोगों को भय देता है। विशाखानक्षत्र में सुन्दर वर्षा करता है, तथा अनुराधा में मित्रों से मतभेद उत्पन्न करता है। ज्येष्ठा में नगरवासिओं में विरोध तथा मूलनक्षत्र में कर्णरोग होता है। धनिष्ठा में कुकर्म में लगे रहने वालों का तथा शतभिषा में मद्यपायिओं का विनाश करता है। पूर्वभाद्रपदनक्षत्र में पूर्वोक्त (कुकर्मी, मद्यपायी) लोगों का क्षय करता है। और उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र में फलों की क्षति होती है। रेवती नक्षत्र में यात्रियों तथा राजाओं को भयंकर भय देता है। अश्विनी में अश्वों (घोड़े) को पीड़ित करता है, और भरणी नक्षत्र में कृषकों को कष्ट करता है।

तथा च पराशरः—

भाग्यार्यमानिलेन्द्राग्निप्रोष्ठपदरौद्रयाम्यतिष्यगतः स्निग्धो रश्मिवान् वर्षकरः। तत्र प्राजापत्यत्वाष्ट्रेन्द्राग्निमैत्राणामुदग्मध्यदक्षिणेन व्रजेत् क्षेमसस्यदृष्टीनां प्रकृष्टमध्यान्तफलो भवति। पित्र्याग्नेययोरुदग्मध्यगतः प्रजाहिताय। एवमेवाषाढादित्यरोहिणीषु मध्यगः पुररोधाय च॥३५॥

जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :—

पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा, आर्द्रा, भरणी तथा पुष्यनक्षत्र में गया हुआ स्वच्छ किरणों वाला शुक्र वर्षाकारक होता है। यहाँ पर रोहिणी, चित्रा, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों के उत्तर मध्य अथवा दक्षिण भाग से भेदन कर जाता हुआ शुक्र कल्याण, सस्य तथा वर्षा के लिए मध्य और अन्त में उत्तम फलकारक होता है। मघा तथा ज्येष्ठा के उत्तर एवं मध्य भाग से जाता हुआ शुक्र प्रजा का हितकारक होता है। इसी प्रकार आषाढा पुनर्वसु तथा रोहिणी नक्षत्र के मध्य से जाता हुआ पुरों (नगरों) का रोध अर्थात् इनका गमनागमन अवरुद्ध करता है॥३५॥

अथ शुक्रस्य तिथिष्वस्तमयोदयफलमाह—

चतुर्दशीं पञ्चदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिं भृगोः सुतः।
यदा व्रजेद् दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते॥३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथिवश शुक्र के उदयास्त समय का फल कहते हैं :–

कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या तिथि में यदि शुक्र का उदय अथवा अस्त हो, तब सम्पूर्ण पृथ्वी जलमयी दिखायी पड़ती है ॥३६॥

भृगोः सुतः शुक्रस्तमिस्रपक्षस्य कृष्णपक्षस्य चतुर्दशीं तिथिं पञ्चदशीममावस्यामष्टमीं वा समाश्रित्य यदा दर्शनमुदयं व्रजेत् सूर्यमण्डलादुद्गच्छति, अथवा अस्तमयमेति तत्रैवादर्शनमायाति तदा मही भूः, वारिमयीव जलमयीव लक्ष्यते दृश्यते। अतिवृष्टिर्भवतीत्यर्थः। तथा च काश्यपः–

भृगुपुत्र शुक्र कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि अथवा अमावस्या और अष्टमी को दृश्य (उदित) हो; अर्थात् सूर्यमण्डल से बहिर्गत हो, अथवा अस्तंगत (अदृष्ट) हो, तब भूमि जलमयी की तरह दिखायी पड़ती है। अर्थात् अतिवृष्टि होती है। जैसाकि आचार्य काश्यप ने कहा है :–

कृष्णपक्षे ह्यमावस्याचतुर्दश्यष्टमीषु च।
उदयं भार्गवः कुर्यात्तदा वृष्टिं प्रमुञ्चति॥

कृष्णपक्ष में अमावस्या, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियों में शुक्र उदय ले, तब वर्षा का कारक होता है।

पराशरश्चात्र विशेषमाह :–

कार्तिके तु यदा मासि कुरुतेऽस्तमयोदयौ।
तदाह्नां नवतिं पूर्णां देवो भुवि न वर्षति॥
वर्तमाने यदा शुक्रे कृत्तिकासु बृहस्पतिः।
उदेति तु तदा देवस्तां समां वर्षते समाम्॥
अस्तोदये तु शुक्रस्य यदि चन्द्रदिवाकरौ।
आवृत्तिमार्गं कुर्वाते तदा वर्षति भार्गवः॥
अवार्षके भे विचरन् यदि वर्षति भार्गवः।
वार्षकर्क्षगतो व्यक्तं षोडशार्चिर्न वर्षति॥इति॥३६॥

पराशर ने यहाँ पर विशेष कथन किया है :–

कार्तिक मास में जब शुक्र का उदय अथवा अस्त होता है, तब ९० दिनों (तीन मास) तक धरती पर वर्षा नहीं होती है। कृत्तिका नक्षत्र पर शुक्र के होने पर यदि गुरु का उदय हो, तो उस वर्ष समान रूप से सभी मासों में वर्षा होती है। शुक्र के उदय अथवा अस्त काल में यदि रवि-चन्द्र उसके मार्ग का अनुगमन करते हैं। तब शुक्र वर्षाकारक होता है। यदि शुक्र वर्षा के नक्षत्रों के विना वर्षा करता है, तब वर्षा के नक्षत्रों में आकर वह वर्षा नहीं करता है ॥३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ गुरुशुक्रयोरन्योन्यं सप्तमस्थयोः फलमाह :—

गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥ ३७॥

अब गुरु-शुक्र के परस्पर सप्तम होने का फल कहते हैं :—

गुरु और शुक्र परस्पर एक दूसरे से सप्तम राशि पर, एक पूरब तथा दूसरा पश्चिम दिशा में रहे; तब जनता रोग, भय और शोक से पीड़ित रहती है। मेघों से वर्षा का दर्शन भी नहीं हो पाता है, अर्थात् वर्षा का पूर्ण अभाव रहता है ॥३७॥

गुरुर्जीवः। भृगुः शुक्रः। एतावपरपूर्वकाष्ठयोः। अपरा पश्चिमा। पूर्वा प्राची। काष्ठा दिक्। पश्चिमपूर्वयोर्दिशोः परस्परमन्योन्यं यदि च सप्तमराशिगौ भवतः। कदाचित् पूर्वकाष्ठागतः शुक्रोऽपरकाष्ठागतो गुरुः। कदाचित् पूर्वकाष्ठागतो गुरुरपरकाष्ठगतः शुक्रः। नन्वत्रापरपूर्वकाष्ठयोरित्यनेनैव सिद्धे सप्तमराशिग्रहणं किमर्थम् ? उच्यते। यदि सप्तमराशिग्रहणं न क्रियते तदापरपूर्वस्थावन्येनापि प्रकारेण भवतः। एकः प्राक्कपाले स्थितोऽपरोऽपरकपालस्थः। तदापरपूर्वकाष्ठास्थौ भवत इत्यतः सप्तमराशिग्रहणं कृतम्। तेनैतज्ज्ञापयति :— यथोदयास्तयो रेखासक्तयोरयं योगो भवति नान्यथा। एवं परस्परं सप्तमराशिगौ यदा तस्मिन् काले प्रजा जनाः। रुग्भयशोकपीडिताः। रोगैर्भयेन शोकेन दुःखेन च पीडिता उपहताः। पुरन्दरोज्झितमिन्द्रोत्सृष्टं वारि जलं न पश्यन्ति नावलोकयन्ति। अवृष्टिर्भवतीत्यर्थः॥

नन्वत्र यथासंख्येनैवापरपूर्वकाष्ठागौ गुरुभृगू यदा भवतस्तदायं योगो भवति यथा, तथा भृगुर्गुरुश्चेत्यनया पाठविप्रतिपत्त्या वा। यथासंख्येनैव कस्माद्योगो न भवति कथमनियमेन भवति। तथा च पराशरेण गुरुभृगू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहतौ। तथा च :—

गुरु और शुक्र अपरा अर्थात् पश्चिम-पूर्वा अर्थात् प्राची, काष्ठा अर्थात् दिशा में अर्थात् परस्पर यदि एक दूसरे के सप्तम राशि में गये हुए होते हैं, कभी शुक्र पूर्व दिशा में और गुरु पश्चिम दिशा में, कभी शुक्र पश्चिम दिशा में और गुरु पूर्व दिशा में गया हुआ हो। यतः यहाँ पर पूर्व-पश्चिम दिशा से ही उद्देश्य सिद्ध हो जाता है, तब सप्तमराशि का कथन किस अभिप्राय से किया गया है ? इसका समाधान करते हैं :— यदि सप्तम राशि का कथन नहीं किया जाता तो, पूर्वापर में इनकी स्थिति अन्य प्रकार से भी होती है, जिसका ग्रहण करना होता है। एक पूर्व-कपाल में स्थित हो तथा दूसरा पश्चिम-कपाल (पूर्व गोलार्ध एवं पश्चिम-गोलार्ध) में, तब पूर्वापर दिशा में स्थित होते हैं। इस कारण ही सप्तम राशि का ग्रहण किया गया है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जब वे एक ही उदयास्त रेखा में संलग्न हो, तब ही यह योग होता है, अन्यथा नहीं होगा। इस प्रकार जब परस्पर एक दूसरे से सप्तमराशि में गये हुए होते हैं, तब लोग रोग से, भय से और दुःख से पीड़ित होते हैं। इन्द्र से छोड़े हुए जल को नहीं देखते हैं। अर्थात् अनावृष्टि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्या यहाँ पर क्रमशः पश्चिम और पूर्व दिशा में गुरु तथा शुक्र के रहने पर ही यह योग होता है, अथवा इस क्रम से भिन्न अर्थात् विपर्यय की स्थिति में रहने पर भी यह योग होगा ? किस प्रकार यह यथाक्रम से न होकर क्रमरहित होने पर भी हो जाता है ? जैसा कि पराशर ने गुरु-शुक्र के, पश्चिम-पूर्व दिशा का ही कथन किया है। यह इस प्रकार है :–

उदयास्तमयस्थौ तु यदा शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ स्यातां जनयेतां तदा भयम्॥

जब शुक्र और गुरु, पश्चिम तथा पूर्व दिशा में हों अर्थात् उदय तथा अस्त क्षितिज पर स्थित हों, तब भय उत्पन्न करते हैं।

ऋषिपुत्रेण च भृगुगुरू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहितौ। तथा चाह :–

पृष्ठतस्तूशना यत्र पुरस्ताच्च बृहस्पतिः।
न च कश्चिद् ग्रहो मध्ये बुधो वाप्यथ दृश्यते॥
एकमार्गसमापन्नौ प्रेक्षमाणौ परस्परम्।
ते दिशौ पीडिते विन्यात् त्रीन् पक्षानभियोजयेत्॥

ऋषिपुत्र ने भी शुक्र-गुरु का पश्चिम-पूर्व दिशा में स्थित होना कहा है, जैसा कि :–

जहाँ पर पीछे शुक्र और आगे गुरु हो, तथा मध्य में अन्य कोई ग्रह-बुध तक भी नहीं दीख पड़े, ये दोनों एक ही वृत्त में एक दूसरे को देखते हों, तब ये दोनों दिशाएँ तीन पक्षों तक (डेढ़ मास) पीड़ित रहती है।

अत उभयदर्शनान्निश्चीयते यथा ऋषीणामत्रैकवाक्यता नास्त्येवेति स्वयमेवमङ्गीकृतं तैरिति।

वयं त्वत्र ब्रूमः–

उभयदर्शनाद् गुरुभृगुभ्यामनियमोऽत्राऽऽचार्यस्याभिप्रेतस्तथा बृहज्जातकेऽपि प्रयोगः कृत इति।"शूरस्तब्धौ[1] विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुविज्ञौ चार्वङ्गिष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु" इत्यत्र च नियमव्याख्यैव यथा तथा कृतैव। अत्रापि यथा तथा गुरुभृग्वोरपरपूर्वकाष्ठास्थयोरित्यनियमव्याख्यैव ज्यायसी। सति वा नियमे पाठविप्रतिपत्तिचोदने नावतरतीति।

यहाँ पर दोनों के परस्पर देखने का उल्लेख होने के कारण यह निश्चित होता है, कि ऋषियों में इस विषय पर एकवाक्यता (एकमत) नहीं है। यह स्वयं ही इसके द्वारा स्वीकार कर ली गयी है।

---

१. बृहज्जातके २१ अध्यायस्य १० श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारा कथन यहाँ पर यह है :–

गुरु-शुक्र के द्वारा एक दूसरे को देखने के कारण, बिना किसी क्रम का होना ही आचार्य वराहमिहिर का अभिप्राय है। जैसा कि बृहज्जातक में भी यह प्रयोग किया गया है।

"शूरस्तब्धौ विषमवधकौ" इत्यादि बृहज्जातक (२१/१०) में (त्रिंशांश का क्रम प्रथम, पञ्चम और नवम के क्रम व्युत्क्रम से) फल निर्देश किया गया है। इसमें क्रम की व्याख्या जिस किसी भी क्रम में की गयी है। यहाँ भी जिस क्रम में भी गुरु और शुक्र हों, पूर्व अथवा पश्चिम, तब भी इस योग की व्याख्या करना समुचित है। क्रमानुसार नियम कर पाठ का विपरीतार्थ ग्रहण करना युक्ति-संगत नहीं है।

तथा च भद्रबाहौ पठ्यते :–

प्रत्यूषे प्राक्स्थितः शुक्रः पृष्ठतश्च बृहस्पतिः।
यदाऽन्योन्यं निरीक्षेते तदा चक्रं प्रवर्तते॥
धर्मार्थकामा लुप्यन्ते प्रस्तावा वार्णसङ्कराः।
नृपाणां च समुद्योगो यतः शुक्रस्ततो जयः॥
अवृष्टिश्च भयं रोगं दुर्भिक्षं च तदा भवेत्।
आढकेन तु धान्यस्य ग्राहकः स्यात्तदा प्रियः॥
यदा तु पृष्ठतः शुक्रः पुरतश्च बृहस्पतिः।
यदा वालोकयेतां तौ तावदेव फलं भवेत्॥

जैसाकि भद्रबाहु में पाठ किया गया है :–

उषाकाल में पूर्वदिशा में शुक्र स्थित हो तथा गुरु पृष्ठगत हो; और जब एक दूसरे को देखते हों, तब चक्र (योग) प्रवर्तित होता है। इस योग में धर्म, अर्थ और काम लुप्त हो जाते हैं; तथा वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं और राजाओं में उपद्रव होता है। जिस दिशा में शुक्र होता है, उस दिशा के राजा की जय होती है। इस समय अनावृष्टि, रोगभय और दुर्भिक्ष होता है, परिणामस्वरूप आढकमात्र धान्य के लोग प्रिय ग्राहक हो जाते हैं। जब आगे बृहस्पति हो और शुक्र उसका पृष्ठानुगामी हो, तथा जब तक वे दोनों एक दूसरे को देखते हों, तब तक ही यह फल घटित होता है।

तथा च गर्गः–

अन्योन्यमस्तसंस्थौ तु यदि शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ घोरं जनयेतां महद्भयम्॥
तस्मात् साधूक्तं गुरुः शुक्रः पृष्ठतः पुरतो वेति॥३७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

यदि शुक्र और गुरु एक दूसरे से सप्तम स्थान पर हों, तो पूर्व-पश्चिम दिशा में भय उपस्थित करते हैं।

इसलिए यह समीचीन ही कहा गया है, कि गुरु और शुक्र एक दूसरे के पृष्ठभाग में हों अथवा अग्रभाग में हों (पूर्वदिशा में अथवा पश्चिमदिशा में) तब यह योग बनता है ॥३७॥

अथ सर्वैर्ग्रहैः शुक्रस्याग्रवर्तिभिः फलमाह :–

यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः।
नृनागविद्याधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥ ३८॥

अब शुक्र से सभी ग्रहों के अग्रवर्ती होने का फल कहते हैं :–

जब गुरु, बुध, मङ्गल और शनि; ये सभी शुक्र के अग्रिम पथ (अग्रिम राशि) पर रहते हैं, तब मानव, नाग और विद्याधरों के सङ्ग्राम होते हैं। वायु मरणान्तक वेग से उठती है ॥३८॥

यदा यस्मिन् काले जीवबुधारसूर्यजाः। जीवो बृहस्पतिः। बुधः सौम्यः। आरो भौमः। सूर्यजः शनैश्चरः। एते सर्व एव सितस्य शुक्रस्याग्रपथानुवर्तिनः स्थिताः। पुरःसरा भवन्तीत्यर्थः। तदा तस्मिन् काले नृणां मनुष्याणां नागानां पन्नगानां विद्याधराणां देवयोनीनां सङ्गराः संग्रामा भवन्ति। तथा वाता वायवः समुच्छ्रितान्तकाः। समुच्छ्रितानां पर्वतानां वृक्षादीनामन्तकाः शृङ्गाग्रपातिनो भवन्तीति ॥ ३८॥

जिस समय गुरु, बुध मङ्गल और शनैश्चर; ये सभी शुक्र के अग्रपथ का अनुवर्तनकर स्थित हों, अर्थात् आगे हों; तब उस समय मनुष्यों का, सर्पों का, विद्याधरों का अर्थात् देव-योनियों का सङ्ग्राम होता है। वायु ऊँचे पर्वतों को, वृक्षादिकों को, शिखर के अग्रभागों को धराशायी करनेवाली होती है ॥३८॥

न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः क्रियासु सम्यग् न रता द्विजातयः।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम्॥ ३९॥

मित्रों में मैत्रीभाव अव्यवस्थित हो जाता है। द्विजातियों में समुचित क्रिया के प्रति आसक्ति नहीं होती है। इन्द्र थोड़ी भी वर्षा नहीं करता है, और वज्रपात से पर्वतों के शीर्षभाग को विदीर्ण कर देता है ॥३९॥

न मित्रभाव इति। सुहृदो मित्राणि न मित्रभावे सुहृद्भावे व्यवस्थिताः संस्थिता भवन्ति। मित्रतां न भजन्त इत्यर्थः। तथा द्विजातयो ब्राह्मणः सम्यग्यथावद्विहितासु क्रियास्वग्निहोत्राद्यासु न रताः सक्ता न भवन्ति। तथा वासव इन्द्रोऽल्पं स्तोकमप्यम्बु जलं न ददाति न प्रयच्छति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न किञ्चिद्वर्षतीत्यर्थः। भूभृतां पर्वतानां वज्रेणोल्कया शिरांसि मस्तकानि भिनत्ति विदारयतीत्यर्थः॥३९॥

मित्र मित्रभाव में स्थित नहीं होते हैं, अर्थात् मित्रता नहीं रखते हैं। द्विजातियाँ अर्थात् ब्राह्मण लोग उचित रीति से विहित अग्निहोत्र आदि क्रियाओं में आसक्त नहीं रहते हैं। इन्द्र थोड़ा जल भी नहीं देता है। अर्थात् किञ्चित् मात्र भी वर्षा नहीं होती हैं। पर्वतों के मस्तक को वज्र अर्थात् उल्कापात से विदीर्ण करता है॥३९॥

एवं सर्वेषूक्त्वाऽधुनैकैकस्याग्रगतस्य वक्तुकामः शनैश्चरस्य तावदाह :—

शनैश्चरे म्लेच्छविडालकुञ्जराः खरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः।
पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्गदोद्भवैः॥४०॥

सभी अग्रगामी ग्रहों का फल बतलाकर अब एक-एक ग्रह का फल कथन की इच्छा से शनि का फल बतलाते हैं :—

यदि शुक्र से शनि अग्रगामी हो तब म्लेच्छ लोग, बिलाव, हाथी, गर्दभ, भैंस, काले धान्य, शूकर, निषाद तथा शूद्र और दक्षिणा-पथ के निवासियों का नेत्ररोग तथा वायुविकार आदि से विनाश होता है॥४०॥

शनैश्चरे शुक्रस्याग्रतः स्थिते म्लेच्छा जनाः। विडाला मार्जाराः। कुञ्जरा गजाः। खरा गर्दभाः। महिष्यः प्रसिद्धाः। असितधान्यं कृष्णधान्यम्। शूकरा वराहाः। पुलिन्दा निषादजनाः। शूद्रा जनाः। ते च सदक्षिणापथा दक्षिणदिग्निवासिभिर्जनैः सहिताः। एते सर्व एव क्षयं विनाशं व्रजन्ति। कैः? अक्षिमरुद्गदोद्भवैः। अक्षिषु नेत्रेषु ये गदा रोगा मरुता वायुना च ये गदास्तदुद्भवैस्तदुत्पन्नैर्दोषैरिति॥४०॥

शुक्र से आगे की राशि पर शनि के रहने पर म्लेच्छजन, बिलाव, गज, गर्दभ, महिष और काला धान्य, शूकर, पुलिन्द अर्थात् निषाद जनजाति, शूद्र तथा दक्षिण-दिशा के निवासी लोगों के सहित; ये सभी विनाश को प्राप्त होते हैं। किसके द्वारा विनष्ट होते हैं? नेत्रों में होने वाले जो रोग तथा वायु से उत्पन्न होने वाले जो रोग हैं, उन रोगों से उत्पन्न दोषों के द्वारा विनाश प्राप्त करते हैं॥४०॥

अथ भौमेऽग्रतः स्थिते फलमाह :—

निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजां हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः।
चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत्॥४१॥

अब भौम के आगे रहने का फल कहते हैं :—

शुक्र से आगे भौम हो, तब जनता को अग्नि, शस्त्र, अकाल, अनावृष्टि और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चोरों के उत्पात से मारता है। सम्पूर्ण चराचर तथा उत्तरापथ को और अग्नि, तड़ित्पात एवं धूलि कणों से सभी दिशाओं को पीड़ित करता है ॥४१॥

शुक्रो भार्गवः क्षितिजे भौमे अग्रतः पुरतः स्थिते सत्येवं प्रजां निहन्ति नाशयति। कैः ? हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः। हुताशोऽग्निः। शस्त्रमायुधं संग्राम इत्यर्थः। क्षुद् दुर्भिक्षम्। अवृष्टिरवर्षणम्। तस्कराश्चौराः। एतैः। तथोत्तरां दिशम्। चराचरम्। चरं जङ्गमाख्यमचरं स्थावराख्यं व्यक्तं निःशेषं निहन्ति। तथा दिश आशाः। अग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत्। अग्निना हुतवहेन। विद्युता तडिता। रजसा पांशुना। एतैः पीडयेद् उपतापयेत् ॥४१॥

शुक्र से भौम के आगे होने पर प्रजा का विनाश करता है। किसके द्वारा ? हुताश अर्थात् अग्नि, शस्त्र अर्थात् युद्ध, क्षुद् अर्थात् दुर्भिक्ष, अवर्षण और चोरों द्वारा। उत्तर दिशा तथा चर (जङ्गम), स्थावर (अचर) का व्यक्त अर्थात् सम्पूर्ण रूप से हनन करता है। तथा दिशाओं को अग्नि अर्थात् हुतवह, विद्युत् अर्थात् तड़ित और धूलिकणों से; इन सभी को पीड़ा देता है ॥४१॥

अथ बृहस्पतावग्रतः स्थिते फलमाह :–

बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान्।
दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम् ॥४२॥

अब गुरु के आगे रहने का फल कहते है :–

शुक्र से आगे गुरु हो, तब समस्त श्वेत पदार्थों तथा ब्राह्मण, गौ और देव मन्दिरों का हनन करता है। पूर्वदिशा को विनष्ट करता है। ओला बरसाता है, गले का रोग अधिक करता है, और शरत्कालीन धान्य होता है ॥४२॥

सितः शुक्रो बृहस्पतौ पुरःस्थिते अग्रवर्तिनि सति समस्तं निःशेषं यत्किञ्चित्सितं शुक्लवर्णम्। तथा द्विजगोसुरालयान्। द्विजा ब्राह्मणाः। गावः। सुरा देवाः। एषामालयं स्थानं हन्ति नाशयति। तथा दिशमाशां च पूर्वामैन्द्रीं हन्ति। अम्बुदा मेघाः करकासृजः करकावृष्टिं सजन्ति मुञ्चन्ति। गले कण्ठे गदा रोगा लोकानां भवन्ति। शारदं च सस्यं भूरि बहु भवेत् ॥४२॥

शुक्र के आगें गुरु के होने पर (गुरु, शुक्र से अग्रवर्ती हो) जो कुछ भी उजला पदार्थ है, उन सबका तथा द्विज (ब्राह्मण), गौ, देवताओं का निवास मन्दिर; इन सबका विनाश करता है। पूर्व दिशा का हनन करता है। बादल करक-वर्षा (ओला वृष्टि) करते हैं। लोगों को कण्ठरोग होते हैं। शारद (शरत्कालिक) सस्य (धान्य) अधिक होते हैं ॥४२॥

अथ बुधे अग्रतः स्थिते फलमाह :–

सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्
रोगान् पित्तजकामलांश्च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकान्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान्
वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम् ॥४३॥

अब बुध के आगे रहने का फल कहते हैं :–

शुक्र से अग्रिम राशि पर बुध ग्रह उदित अथवा अस्त होकर स्थित हो, तब वह वर्षाकारक होता है। पित्त-रोग तथा कामला-रोग (पित्तज-पाण्डुरोग) को करता है, और ग्रीष्मकालीन धान्य का सम्वर्द्धन करता है। संन्यासी, अग्निहोत्री, चिकित्सक, नाट्यकर्मी (कलाकार), घोड़ा और वैश्य जातियों, गायों, अश्वादि वाहनसहित राजाओं, पीले पदार्थ और पश्चिम दिशा (में स्थित) का हनन (विनाश) करता है ॥४३॥

सौम्यो बुधो भृगुसुतस्य शुक्रस्य पुरोऽग्रतः। अस्तोदययोः। अस्तमितः सूर्यमण्डले स्थित उदितस्तन्निर्गतो वा यथा तथावस्थितस्तोयकृद्भवति, तोयं जलं करोति। तथा रोगान् ज्वरादीन् करोति। पित्तजकामलांश्च पितजै रोगैः सहिताः कामलाः पित्तजकामलास्तांश्च कुरुते। ग्रैष्मिकान् ग्रीष्मजातांश्च सस्यादीन् पुष्णाति पुष्टिं नयति। तथा प्रव्रजितान् वनस्थान्। आग्निहोत्रिकान् अग्निहोत्रे सक्तान्। भिषजो वैद्यान्। रङ्गोपजीव्यान् मल्लादीन्। हयानश्वान्। वैश्यान् वैश्यजातीयान्। गास्तथा वाहनैरश्वादिभिश्च सह नरपतीन् नृपान्। पीतानि पीतवर्णानि सर्वाणि द्रव्याणि। पश्चाद्दिशमपरां चाऽऽशां हन्यान्नाशयेत् ॥४३॥

सौम्य अर्थात् बुध शुक्र के आगे रहता हुआ, अस्त अर्थात् सूर्य-सान्निध्य, उदित अर्थात् रविमण्डल से निर्गत, इस प्रकार जैसा भी उदित अथवा अस्त स्थित होकर जल कारक होता है। ज्वरादि रोगों को करता है। पित्तज रोगों के साथ कामला रोग अर्थात् पित्तज कामला रोग को करता है। ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले सस्यों को सम्पुष्ट करता है। तथा च प्रव्रजित अर्थात् वन में स्थित लोगों, अग्निहोत्र कर्म में लगे हुए लोगों, वैद्यों, मल्ल (योद्धा) आदि रंगोपजीवी जनों, अश्वों तथा वैश्य जातिओं, गायों और अश्वादि वाहन सहित राजाओं, पीतवर्ण की सभी वस्तुओं, पश्चिम दिशा; इन सभी का नाश करता है ॥४३॥

अथ वर्णलक्षणमाह :–

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते
कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये।
हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः
पतति न सलिलं खाद् भस्मरूक्षासिताभे ॥४४॥

वर्ण-लक्षण कहते हैं :–

अग्निसदृश वर्ण (रंग) यदि शुक्र का हो तो अग्नि-प्रकोप से भय, रक्तवर्ण का हो तो युद्धभय, स्वर्णरेखा के समान गौर-वर्ण का हो तो रोगभय होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरे और भूरे रंग का हो, तब श्वास-रोग और कास (खाँसी) रोग का उपद्रव, भस्म तुल्य रूक्षवर्ण हो तथा काला वर्ण हो, तब वर्षा नहीं होती है ॥४४॥

दैत्यपूज्ये शुक्रे अनलाभे अग्निसदृशकान्तौ शिखिभयमग्निभीतिर्भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रकोपः संग्रामा भवन्ति। कनकस्य सुवर्णस्य याऽसौ निकषरेखा तद्वद् गौरवर्णे व्याधयो रोगा भवन्ति। हरितरूपे शुकाभे कपिलरूपे च पिशङ्गवर्णे श्वासकासप्रकोपो भवति। श्वासेन च कासेन च पीडा जनानां भवति। भस्माभे भस्मवर्णे। रूक्षाभे स्नेहरहिते। असिताभे कृष्णकान्तौ। खादाकाशात् सलिलं जलं न पतति। देवो न वर्षतीत्यर्थः॥४४॥

दैत्यपूज्य शुक्र अग्नि के समान वर्ण का हो, तब अग्नि का भय होता है। रक्त अर्थात् लोहित (लाल) वर्ण का हो, तो संग्राम होते हैं। सुवर्ण की जो रेखा के सदृश गौर वर्ण का हो, तब रोग होते हैं। शुकसदृश हरे रंग का (सुग्गे के समान) और भूरे रंग का हो तो लोगों को श्वास और कास रोग से पीड़ा होती है। भस्म का वर्ण, रूक्ष अर्थात् कर्कश वर्ण और कालावर्ण हो, तब आकाश से जल नहीं गिरता है, अर्थात् वर्षा नहीं होती है ॥४४॥

अन्यदप्याह :–

दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः॥४५॥

और भी वर्णफल कहते हैं :–

दधि तथा कुमुद-पुष्प के समान श्वेतवर्ण का, चन्द्रमा की कान्ति के समान स्पष्ट प्रसृत किरणोंवाला, विशाल बिम्बवाला, सुन्दर गति (मार्गी) वाला और विकार-रहित, जय से परिपूर्ण शुक्र सत्ययुग के समान रूप (वातावरण) करने वाला होता है ॥४५॥

ईदृग्रूपः सिताह्वयः सितनामा शुक्रः कृतयुगरूपकरः, कृतयुगस्य रूपं करोति, तद्धर्मानुप्रवृत्तेर्जना व्याधिदारिद्र्यशोकवर्जिता भवन्तीत्यर्थः। कीदृशः ? दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत्। दध्नः क्षीरविकारस्य। कुमुदस्य पुष्पविशेस्य। शशाङ्कस्य चन्द्रस्य सदृशीं कान्तिमाभां बिभर्ति धारयति। स्फुटविकसत्किरणः, स्फुटाः स्पष्टा विकसन्तो विस्तीर्णाः किरणा रश्मयो यस्य तथाभूतः। बृहत्तनुर्विस्तीर्णदेहः। सुगतिः शोभनगतिः। अवक्रो ग्रहर्क्षाणामुत्तरभागगतश्च। अविकृतो विकारवर्जित उत्पातरहितः। जयान्वितो जययुक्त इति। तथा च पराशरः–

हिमकनकरजतशङ्खस्फटिकवैदूर्यमुक्ताम्बुधृतमण्डकुमुदशशाङ्कच्छविस्निग्धदीप्तप्रकान्तिप्रकाशः प्रसन्नार्चिरवनिपतिहितकरः प्रशान्तवैरो दुर्भिक्षारोगवृष्टिकरश्च। श्यावनीलरूक्षकपिलरक्तध्वस्तदीनाल्पलोष्टसन्निभः शस्त्रवैरव्याधिवर्षान्नक्षयकरः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च :–

कूटाकारनिभः स्निग्धो मार्गस्थो रजतप्रभः।
भार्गवो विस्तृतार्चिश्च प्रजाभावकरः स्मृतः॥इति॥
प्रावृषि शुक्रः प्राच्यां दिशि स्थितोऽल्पं जलं सृजति नित्यम्।
धान्यं च भूरि कुरुते तृणं च बहु जायते तत्र॥
अपरां निषेव्यमाणः काष्ठां शुक्रो जलं सृजति भूरि।
धान्यं कुरुते चाल्पं तृणं न बहु जायते तत्र॥ इति॥४५॥

इस प्रकार का रूपवान् शुक्र सत्ययुग का रूप करता है। अर्थात् उस युग के समान धर्म में आसक्ति होने के कारण लोग रोग, शोक और दीनता से रहित होते हैं। किस प्रकार का रूप ? :– दही अर्थात् दुग्ध के विकार (दुग्ध-निर्मित) का वर्ण, कुमुद नामक पुष्प विशेष के समान, चन्द्रमा के समान आभा को धारण किया हुआ, स्पष्ट, विस्तीर्ण किरणोंवाला, विस्तृत पिण्डवाला, सुन्दर गतिवाला, वक्रतारहित, ग्रह-नक्षत्रों के उत्तरभाग से जाता हुआ, उत्पातादि विकारों से रहित तथा जय-युक्त हो। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

बर्फ, सुवर्ण, चाँदी, शंख, स्फटिकमणि, वैदूर्य (नीलाभ लहसुनिया रत्न) मणि, मोती, मधु, घी, मण्ड (चावल का माँड़), कुमुद पुष्प, चन्द्रमा के वर्ण का, चिकना, चमकते हुए प्रकाशवाला तथा प्रसन्न किरणोंवाला (शुक्र) राजाओं के लिए कल्याणकारक, शत्रुता समाप्त करानेवाला, दुर्भिक्ष, आरोग्य और वर्षा करनेवाला होता है। श्यामल, नीला, रुक्षवर्ण का, कपिल (भूरा), रक्त, विघटित, दीन (कृश), छोटे टुकड़े के समान वर्ण का हो; तो शस्त्र (युद्ध), वैर (शत्रुता), रोगदायक और वर्षा तथा अन्नों का विनाशक होता है।

जैसा कि :–

जब सुवर्ण के समान, चिकना, मार्गी गतिवाला, चाँदी के समान और फैली हुई किरणोंवाला शुक्र पूर्वदिशा में स्थित हो, तब थोड़ा-थोड़ा जल नित्य बरसता है। धान्य की अधिक उपज होती है, तथा तृण (घास) भी बहुत उत्पन्न होते हैं। पश्चिम-दिशा में स्थित शुक्र, अधिक जल का कारक होता है। अल्प मात्रा में धान्य होते हैं, तथा इसमें तृण भी कम ही होते हैं॥४५॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शुक्रचारो नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृति में शुक्रचार नामक नवम अध्याय॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ दशमोध्यायः

अथ शनैश्चरचारो व्याख्यायते तत्रादावेव शनैश्चरस्य नक्षत्रावस्थितिवशेन फलमाह :–

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्य।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः॥१॥
अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलम्।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये॥२॥

अब शनि-चार की व्याख्या की जाती है। यहाँ प्रारम्भ में शनि का नक्षत्रों पर स्थित होने का फल कहते हैं–

शनि जब श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रों पर स्वच्छ रूपवाला होता है; तब धरती को पर्याप्त जल से परिपूर्ण कर देता है॥१॥

आश्लेषा, शतभिषा, और ज्येष्ठा नक्षत्र में सुभिक्षकारक तथा अधिक जल नहीं देने वाला होता है। मूल नक्षत्र में क्षुधा (भुखमरी), युद्ध और अवर्षण करने वाला होता है। प्रत्येक नक्षत्र का फल आगे कहा जायेगा॥२॥

श्रवणानिलेति। श्रवणम्। अनिलः स्वातिः। हस्तः। आर्द्रा। भरणी। भाग्यं पूर्वफल्गुनी। एतेषु नक्षत्रेष्वर्कस्य सुतः शनैश्चर उपगः प्राप्तः स्थित इत्यर्थः। तत्र यदि स्निग्धो विमलमूर्तिर्भवति तदा धात्रीं भूमिं प्रचुरसलिलोपगूढां प्रचुरेण प्रभूतेन सलिलेन पानीयेन उपगूढां छन्नां करोति। तथा च गर्गः–

याम्यवायव्यसावित्ररौद्रश्रवणसंस्थितः।
भवेत् स्निग्धवपुः सौरो भाग्ये चैवातिवर्षदः॥इति॥१॥

श्रवण नक्षत्र, अनिल अर्थात् स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और भाग्य अर्थात् पूर्वा फाल्गुनी :– इन नक्षत्रों में रवि-पुत्र शनि स्थित हो। वहाँ पर यदि स्वच्छ मूर्ति शुक्र की हो, तब भूमि को प्रभूत जल से आच्छन्न करता है। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

भरणी, स्वाती, हस्त, आर्द्रा और श्रवण नक्षत्र तथा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनि सुन्दर बिम्बवाला होकर अधिक वर्षा देता है॥१॥

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेष्विति। अहिदैवतमाश्लेषा। वरुणदैवतं शतभिषक्। पुरन्दर इन्द्रस्तद्दैवतं ज्येष्ठा। एतेष्ववस्थितः सौरः सुक्षेमकृत् शोभनं क्षेमं करोति। न चाति जलम्, अति प्रभूतं जलमुदकं न करोति। क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले। मूले स्थितः क्षुद् दुर्भिक्षम्। शस्त्रं संग्रामः। अवृष्टिरवर्षणम्। एताः करोति। प्रत्येकमपि वक्ष्ये। एकमेकं प्रति प्रत्येकम्। इदानीं प्रत्येकं नक्षत्रमधिकृत्य वक्ष्ये कथयिष्ये। तथा च गर्गः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सार्पवारुणमाहेन्द्रनक्षत्रेषु च संस्थितः।
स्निग्धः सौरः क्षेमकरो नातिवृष्टिं प्रमुञ्चति॥
क्षुच्छस्त्रवृष्टिदो मूले सूर्यपुत्रः समास्थितः॥इति॥२॥

अहिदैवत अर्थात् आश्लेषा, पुरन्दर दैवत अर्थात् ज्येष्ठा, वरुणदैवत अर्थात् शतभिषा; इनमें स्थित शुक्र सुन्दर क्षेम करता है। अधिक प्रचुर जल नहीं करता है। मूलनक्षत्र में स्थित होकर क्षुद् अर्थात् दुर्भिक्ष, शस्त्र अर्थात् युद्ध और अनावृष्टि आदि; इन सबको करता है। अब प्रत्येक नक्षत्र को निर्दिष्ट कर फल कहूँगा। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

आश्लेषा, शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र में स्वच्छ शनि कल्याणकारक होकर अधिक वर्षा नहीं करता है। मूल नक्षत्र में स्थित शनि दुर्भिक्ष युद्ध और वर्षादायक होता है॥२॥

अथाऽश्विनीभरण्योः समवस्थितस्य सौरस्य फलमाह :–

तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः।
याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान्॥३॥

अश्विनी और भरणी-नक्षत्रगत शनि का फल :–

अश्विनी नक्षत्र में गया हुआ शनि अश्वों, अश्वरक्षकों, कविओं, वैद्यों तथा मन्त्रियों का हनन करता है। भरणी नक्षत्र में स्थित होकर नाचने, बजाने और गानेवालों का, क्षुद्र (दुष्ट) लोगों और निषादों का हनन करता है॥३॥

अर्कजः सौरः। अश्विन्यामवस्थितः। तुरगानश्वान्। तुरगाणां य उपचारकास्तान् तुरगोपचारकान्। तथा कवीन् काव्यकुशलान्। वैद्यान् कायचिकित्सकान्। अमात्यान् मन्त्रिणश्च। हन्ति नाशयति। याम्ये भरण्यां नर्तनं शिल्पमस्येति नर्तकः। वादनं शिल्पमस्येति वादकः। गेयं जानातीति गेयज्ञः। क्षुद्रोऽन्यायवती। नैकृतिको निषादः। एतान् हन्ति नाशयति॥३॥

अर्कज (रविपुत्र) शनि अश्विनी नक्षत्र पर स्थित होकर घोड़ों तथा घोड़ों के परिचारकों और काव्य रचना में कुशल कवियों, काय (शरीर) रोग के चिकित्सकों एवं मन्त्रिओं का विनाश करता है। भरणी नक्षत्र में नृत्य-शिल्पी अर्थात् नर्तकों, वादन-शिल्पी अर्थात् वादकों, गान-विद्या के ज्ञाता गायकों, अन्याय करने वाले क्षुद्र (नीच) जनों तथा नैकृतिक अर्थात् निषाद जातियों; इन सबका विनाश करता है॥३॥

अथ कृत्तिकारोहिण्योराह :–

बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च।
रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिकाः॥४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब कृत्तिका और रोहिणी का फल कहते हैं :–

रोहिणी नक्षत्र में शनि स्थित हो, तब अग्नि से आजीविकावाले और सेनापति को पीड़ा (कष्ट) होती है। रोहिणी नक्षत्र में कोशल, मद्र, काशी तथा पाञ्चाल प्रदेश के निवासिओं और गाड़ी चलाकर आजीविका चलानेवालों को पीड़ित करता है ॥४॥

सौरे शनैश्चरे बहुलासु कृत्तिकास्ववस्थिते अग्न्युपजीवनोऽग्निवार्ताः सुवर्णकारलोहकारा-[1]यस्कारप्रभृतयः। चमूपाः सेनापतयः। एते पीड्यन्ते। रोहिण्यां स्थिते सौरे कोशला जनाः। मद्राः। काशयः। पाञ्चालाः। एते जनाः। शाकटिकाः शकटोपजीविनः। एते पीड्यन्ते ॥४॥

सौर अर्थात् शनि, बहुला अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होकर अग्नि-उपजीवी अर्थात् अग्नि से व्यवहार करने वाले स्वर्णकार, लोहार, अयस्कार (विशिष्ट लोहा बनाने वाले लोहार) आदि एवं सेनापतियों को पीड़ित करता है। रोहिणी नक्षत्र में स्थित शनि कोशल प्रदेश, मद्रप्रदेश, काशी प्रदेश और पाञ्चाल (पंजाब) प्रदेश के लोगों को और शकटोपजीवी (गाड़ी चलानेवाले) लोगों को पीड़ा देता है ॥४॥

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह :–

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च।
रौद्रस्थे पारतरमठास्तैलिकरजकचौराश्च ॥५॥

अब मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्र का फल कहते हैं :–

मृगशिरा नक्षत्र में शनि के रहने पर वत्सराज्य के लोग, यज्ञ करनेवाले ऋत्विज, यजमान (यज्ञकर्ता), श्रेष्ठ पुरुष और मध्य प्रदेश के निवासी पीड़ित होते हैं। आर्द्रा में स्थित शनि सीमान्त-प्रदेश-जनों, मठों, तेली, धोबी और चोरों का विनाश करता है ॥५॥

मृगशिरसि स्थिते सौरे वत्सजनाः। याजकाः। यजन्तीति याजका ऋत्विजः। यजमाना याज्ञिकाः। आर्यजनाः प्रधानजनाः। मध्यदेशाः प्रसिद्धा। एते पीड्यन्ते। रौद्रस्थे आर्द्रास्थे जनाः। मठा जना एव। तैलिकाः प्रसिद्धाः। रजका वस्त्ररागकृतः। चौरास्तस्कराः। एते पीड्यन्ते ॥५॥

मृगशिरा नक्षत्र में शनि के होने पर वत्स (क्षेत्र के) लोग, यजन करनेवाले ऋत्विज, यज्ञकर्ता यजमान, श्रेष्ठ व्यक्ति, मध्यप्रदेश अर्थात् मध्य क्षेत्र की जनता; ये सभी पीड़ित होते हैं। आर्द्रा में होने पर पारतर लोग अर्थात् सुदूर सीमान्त

---

१. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य ३२४ पृष्ठस्था टिप्पणी।

39336
Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदेशों में रहनेवाले, मठों के लोग, तैलिक, वस्त्रों को स्वच्छ करने वाले तथा रंगनेवाले धोवी और चोर; ये सभी पीड़ित होते हैं ॥५॥

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह :—

आदित्ये पाञ्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीराः।
पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ६॥

अब पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र के फल कहते हैं :—

पुनर्वसु नक्षत्र में शनि हो, तब पाञ्चनदवासी, गुफाओं में रहनेवाले, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवीर प्रदेश के निवासी पीड़ित होते हैं। पुष्य नक्षत्र में शनि हो, तब घण्टी-वादक (निर्माता), उद्घोषक-जन, यवन-जाति, व्यापारी, जुआड़ी और पुष्पों को पीड़ा होती है ॥६॥

आदित्ये पुनर्वसौ स्थिते सौरे पाञ्चनदा जनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। सुराष्ट्रो देशः। सैन्धवाः। सौवीराः। एते पीड्यन्ते। पुष्ये स्थिते सौरे घाण्टिका घण्टावादनं शिल्पमस्येति घाण्टिकाः। घोषः शब्दोच्चारणं शिल्पमस्येति घौषिकाः श्रावका इत्यर्थः। अथवा घोषे गह्वरे निवसन्ति घौषिकाः। यवना जनाः। वणिजः [1]किराताः। कितवा द्यूतकराः। कुसुमानि पुष्पाणि। एतानि पीड्यन्ते ॥ ६॥

आदित्य अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्र में शनि के स्थित रहने पर पाञ्चनद (पंजाब) के लोग, प्रत्यन्त अर्थात् पहाड़ी गुफाओं में रहनेवाले, सौराष्ट्र प्रदेश, सिन्धु और सौवीर प्रदेश के लोग पीड़ित होते हैं। पुष्यनक्षत्र में शनि के स्थित होने पर घाण्टिका अर्थात् घण्टा वादन के शिल्पी, घौषिक अर्थात् घोष (ध्वनि); शब्दोच्चारण के विशेषज्ञ श्रावक अथवा घोष (गुफा) में रहनेवाले घौषिक लोग, यवन, वणिक् अर्थात् किरात, कितव अर्थात् द्यूतक्रीड़ा करनेवाले, कुसुम अर्थात् फूल; ये सभी पीड़ित होते हैं ॥६॥

आश्लेषामघयोराह :—

सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्लीकचीनगान्धाराः।
शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ ७॥

अब आश्लेषा और मघा के फल का कथन करते हैं :—

अश्लेषा नक्षत्र में जलोत्पन्न पदार्थ, और सर्पों का विनाश तथा मघानक्षत्र में शनि के होने से बाह्लीक, चीन और गान्धार प्रदेश के लोग एवं शूलिक तथा पारत (सीमान्त प्रदेश) के लोग, वैश्यजाति, भण्डारगृह तथा व्यापारी लोग पीड़ित होते हैं ॥७॥

---

१. द्रष्टव्याऽस्य ग्रन्थस्य २५० पृष्ठे १ टिप्पणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सार्पे आश्लेषायां जलरुहा जलोद्भवाः प्राणिनो द्रव्याणि वा। सर्पा उरगाश्च पीड्यन्ते। तथा च गर्गः–

भुजङ्गकच्छपग्राहनागमत्स्यसरीसृपान्।
हन्यादर्कसुतस्तिष्ठन्नक्षत्रे सर्पदैवते॥

आश्लेषा में जलोत्पन्न प्राणि अथवा द्रव्य और सर्प पीड़ित होते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है:–

शनि आश्लेषा नक्षत्र पर रहता हुआ सर्पों, कच्छपों, मगरमच्छों, नागों, मछलियों तथा अन्य रेंगनेवाले जीवों का हनन (विनाश) करता है।

पित्र्ये मघायां बाह्लीकाः। चीनाः। गान्धाराः। शूलिकाः। पारताः। सर्व एव जनाः। वैश्या वैश्यवर्णाः। कोष्ठागाराण्यविलयग्रामाः। वणिजश्च किराताः१ पीड्यन्त इति सर्वत्र योज्यम्॥७॥

मघा नक्षत्र में हो, तब बाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिक और पारत क्षेत्र के सभी लोग, वैश्य वर्ण, भण्डार भवन और वणिज अर्थात् किरात लोग पीड़ित होते हैं। ये सभी पीड़ित होते हैं:– "पीडयन्ते" शब्द सब के लिए प्रयोग करना चाहिए॥७॥

अथ पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुन्योराह:–

भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यस्त्रीकन्यकामहाराष्ट्राः।
आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला॥८॥

अब पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी का फल कहते हैं:–

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में शनि के रहने पर रस-विक्रेता, वेश्या स्त्री, कुमारी कन्या, तथा महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी पीड़ित होते हैं। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में शनि हो; तब राजागण, गुड़, नमक, संन्यासी, जल और तक्षशिला क्षेत्र के लोग पीड़ित होते हैं॥८॥

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां रसविक्रयिणः। रसाः षट् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः। एषां विक्रयकारिणः। पण्यस्त्रियो वेश्याः। कन्यकाः कुमार्यः। महाराष्ट्रा महाराष्ट्रदेशे ये जना निवसन्ति। एते सर्व एव पीड्यन्ते। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां नृपा राजानः। गुडभिक्षुविकारः। लवणं प्रसिद्धम्। भिक्षुका यतयः। अम्बु पानीयम्। एतानि। तक्षशिला नगरी। एते सर्व एव पीड्यन्ते॥८॥

पूर्वाफल्गुनी नक्षत्र में मधुर, आम्ल, लवण, तिल, कटु और कषाय इन छः रसों के विक्रेता, पण्यस्त्री अर्थात् वेश्या, कुमारी कन्यकाएँ तथा महाराष्ट्र देश में जो लोग निवास करते हैं; ये सभी पीड़ित होते हैं। आर्यम्ण अर्थात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तराफल्गुनी नक्षत्र में हो, तब राजागण, गुड़ अर्थात् ईख से निर्मित पदार्थ, नमक, भिक्षुक अर्थात् यती-संन्यासी, जल तथा तक्षशिला नगरी; ये सभी पीड़ित (कष्ट में) होते हैं ॥८॥

अथ हस्ते स्थितस्याह :–

हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिका द्विपग्राहाः।
बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥९॥

हस्तनक्षत्र में स्थित शनि का फल :–

जब हस्त नक्षत्र में शनि हो तब नापित (नाई), कुम्हार, चौर, चिकित्सक, सूचीकार शिल्पी, हाथी पकड़नेवाले, वेश्या स्त्री, माली और कोशलप्रदेश के निवासी; ये सभी लोग पीड़ित होते हैं ॥९॥

हस्तस्थे सौरे नापिताः श्मश्रुकर्मविदः। चाक्रिकाश्चक्रेण चरन्ति चाक्रिकाः, कुम्भकारतैलिकप्रभृतयः। चौरास्तस्कराः। भिषजो वैद्याः। सूचिकाः प्रसिद्धाः शिल्पिनः। द्विपा हस्तिनस्तेषां ग्राहा बन्धकाः। बन्धक्यो वेश्याः। कौशलका जनाः। मालाकाराः पुष्पप्रदायकाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते ॥९॥

जब हस्तनक्षत्र में शनि हो, तब दाढ़ी-मूँछ काटनेवाले नापित, कुम्हार तथा तेली आदि जो चक्र (चक्का) से आजीविका चलाने वाले हों, चोर अर्थात् तस्कर, वैद्य, सूचिका अर्थात् सूई से छिद्र कर पुष्पादि बनाने के विशेषज्ञ शिल्पी, हाथियों को पकड़कर बाँधनेवाले, बन्धकी अर्थात् वेश्या, कोशलप्रदेश के लोग और माला बनानेवाले, इन सभी लोगों को पीड़ा होती है ॥९॥

अथ चित्रास्वात्योराह :–

चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि।
स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ॥१०॥

अब चित्रा और स्वाती के फल का कथन करते हैं :–

चित्रा नक्षत्र में शनि के होने से स्त्रियों, लेखकों, चित्रकारों तथा कलात्मक रंगीन पात्रों (बर्तनों) को पीड़ा (क्षति) होती है। स्वातीनक्षत्र में मगध के निवासियों, गुप्तचरों, दूतों, सारथीजनों, समुद्री पोत के यात्रियों और नट-भट आदि लोगों को कष्ट होता है ॥१०॥

चित्रास्थे सौरे प्रमदाजनः स्त्रीलोकः। लेखका लिपिज्ञाः। चित्रज्ञाश्चित्रकर्मविदः। चित्रभाण्डानि नानावर्णानि भाण्डानि। बहुवर्णानीत्यर्थः। एतानि पीड्यन्ते। स्वातौ स्थिते सौरे मागधा नाम श्रावका जना वा मगधवासिनः। चरा गूढपुरुषाः। दूता गमागमकारिणः। सूताः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सारथयः कथाश्रावका वा। पोतप्लवाः पोतः समुद्रो येनोत्तीर्यते तत्र ये प्लवन्ते, पोतेन यान्तीत्यर्थः। नटा नृत्यज्ञाः। आदिग्रहणादन्येऽपि ये गीतवाद्यज्ञास्ते सर्व एव पीड्यन्ते॥१०॥

चित्रा नक्षत्र में शनि के स्थित होने पर महिला-समाज, लिपिज्ञाता लेखक, चित्रकला के ज्ञाता, नाना प्रकार के अनेक रंगों के पात्र; ये सभी पीड़ित होते हैं। जब स्वाती नक्षत्र में शनि स्थित हो, तब मागध नामक श्रावक लोग अथवा मगधराज्य के निवासी, गुप्तचर व्यक्ति, सन्देशवाहक दूत, सूत अर्थात् सारथी अथवा कथावाचक, जलपोत के द्वारा जो समुद्र के पार यात्रा करते हैं, अर्थात् समुद्र-यात्री, नट अर्थात् नृत्यशास्त्र के ज्ञाता, "आदि" शब्द के ग्रहण से अन्य भी गीत-वाद्य इत्यादि के ज्ञाता; ये सभी लोग पीड़ित होते हैं॥१०॥

अथ विशाखास्थिते आह :–

ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा।
सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च क्षयं याति॥११॥

अब विशाखा नक्षत्र में स्थित शनिका फल कहते हैं :–

विशाखा नक्षत्र में स्थित शनि त्रिगर्त (तिब्बत), चीन, कुलूत के निवासीजनों तथा लाक्षा (लाह पदार्थ), सस्य, माञ्जिष्ठ (मजीठा) और कुसुमों को विनष्ट करता है॥११॥

ऐन्द्राग्नाख्ये विशाखायां स्थिते शौरे त्रैगर्ता जनाः। चीनाः। कौलूताः कुलूतनिवासिनः। कुङ्कुमं काश्मीरम्। लाक्षा जतु। सस्यानि प्रसिद्धानि। अथ माञ्जिष्ठम्। अथशब्दः स्वार्थे। माञ्जिष्ठया रक्तं माञ्जिष्ठम्। कौसुम्भं च। एतत्सर्वं क्षयं याति नश्यतीत्यर्थः॥११॥

जब एन्द्राग्नि अर्थात् विशाखा नक्षत्र में शनि स्थित हो, तब त्रिगर्त के लोग, चीनी लोग, कुलूत के निवासी, काश्मीरी कुंकुम, लाक्षा, सस्य, माञ्जिष्ठ अर्थात् मजीठा के वर्ण का, कौसुम्भ अर्थात् पुष्पविशेष; ये सभी विनष्ट होते हैं॥११॥

अथाऽनुराधायामाह :–

मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः।
उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम्॥१२॥

अब अनुराधा नक्षत्र में स्थित शनि का फल कहते हैं :–

अनुराधा नक्षत्र में शनि के स्थित होने पर कुलूत, तङ्गण, खस और काश्मीर के निवासी तथा मन्त्री एवं चक्रचालकों सहित सबको संताप होता है। घाण्टिकों (घण्टी के व्यवसायी) को कष्ट तथा मित्रों में परस्पर विभेद उत्पन्न हो जाता है॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैत्रेऽनुराधायां कुलूतो देशस्तत्र ये जनाः। तङ्गणा जनाः। खसाः पर्वतवासिनः। काश्मीरा जनाः। किंभूताः ? समन्त्रिचक्रचराः, मन्त्रिभिः सचिवैश्चक्रचरैः कुम्भकारप्रभृतिभिः सहिताः। एते सर्वे उपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। तथा घाण्टिका घण्टावादिनः शिल्पिनस्तेऽप्युपतापं यान्ति। तथा मित्राणां सुहृदां च परस्परं विभेदो विश्लेषो भवति॥१२॥

जब मैत्र अर्थात् अनुराधा नक्षत्र में शनि हो, तब कुलूत देश में जो लोग रहते हैं, तङ्गण क्षेत्र के लोग, खस अर्थात् पर्वतीय-जन, काश्मीर प्रदेश के लोग, तथा मन्त्री (सचिवों) सहित कुम्भकार आदि चक्रजीवी; ये सभी उपद्रव को प्राप्त करते हैं। एवमेव घण्टावादक शिल्पकार, ये भी संताप (दुःख) पाते हैं। तथा मित्रों में परस्पर विभेद (अलगाव) होता है॥१२॥

अथ ज्येष्ठामूलयोराह :—

ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः।
मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः॥१३॥

अब ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रों में स्थित शनि का फल कहते हैं :—

जब ज्येष्ठा नक्षत्र में शनि स्थित हो, तब राजा, पुरोहित, राजा से सम्मानित, वीर, संघ, प्रधान कुल, जातीय संगठन; इन सबको कष्ट होता है। जब मूल नक्षत्र में हो तब काशी, कोशल, पाञ्चाल प्रदेशों तथा फल, औषधि और योद्धाओं को भी संताप होता है॥१३॥

ज्येष्ठासु स्थिते सौरे नृपा राजानः। पुरोहितास्तदाचार्याः। नृपसत्कृता राजपूजिताः। शूराः संग्रामवीराः। गणाः समूहा मठप्रायाः। कुलानि प्रधानकुलानि। श्रेणी बहूनां समानजातीयानां सङ्घाः। एते सर्व एवोपतापं यान्ति। मूले तु स्थिते सौरे काश्यो जनाः। कोशलाः। पाञ्चालाः। फलान्याम्रादीनि। ओषध्यः प्रसिद्धाः। योधाः संग्रामकुशलाः। एत एवोपतापं यान्ति॥१३॥

ज्येष्ठा में शनि के होने पर राजा, पुरोहित अर्थात् उनके आचार्य, राजपूजित (सम्मानित) लोग, संग्रामों में वीर, मठादि का समूह, प्रधान कुल, श्रेणी अर्थात् अनेक समान जातियों के संघ; ये सभी परिताप (कष्ट) को प्राप्त होते हैं। मूल नक्षत्र में शनि के होने पर काशी प्रदेश के लोग, कोशल तथा पाञ्चाल क्षेत्र के लोग, आम्रादि फल, औषधियाँ और युद्ध में कुशल योद्धा; ये सभी सन्ताप को प्राप्त करते हैं॥१३॥

अथ पूर्वाषाढायामाह :—

आप्येऽङ्गवङ्गकौशलगिरिव्रजा मगधपुण्ड्रमिथिलाश्च।
उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब पूर्वाषाढा नक्षत्र का फल कहते हैं :–

पूर्वाषाढा नक्षत्र में शनि हो, तब अङ्ग, बंग, कौशल, गिरिवासी, मगध, पुण्ड्र और मिथिला तथा ताम्रलिप्ती; इन प्रदेशों में निवास करनेवाले जो लोग हैं, वे संताप को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

आप्ये पूर्वाषाढायां स्थिते सौरे अङ्गा जनाः। वङ्गाः। कौशलाः। गिरिव्रजा जना एव। मगधाः। पुण्ड्राः। मिथिलाश्च। एते सर्व एवोपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। ये च जनास्ताम्रलिप्त्यां नगर्यां वसन्ति तेऽप्युपतापं यान्ति ॥१४॥

आप्य अर्थात् पूर्वाषाढा नक्षत्र, में स्थित शनि, अङ्गवासी, वङ्ग, कौशल, गिरिवासीजन, मगध, पुण्ड्र और मिथिला; इन सभी प्रदेशवासियों को संताप प्रदान करता है। जो लोग ताम्रलिप्ती नगरी में रहते हैं, वे भी सन्तप्त होते हैं ॥१४॥

अथोत्तराषाढायामाह :–

विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च।
उज्जयिनीं शबरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥१५॥

अब उत्तराषाढा नक्षत्र का फल कहते हैं :–

उत्तराषाढा नक्षत्र में सञ्चरण करता हुआ शनि, दशार्ण प्रदेश तथा यवनों को नष्ट करता है। साथ ही उज्जयिनी, शबर, पर्वतवासी और कुन्तिभोज राज्य को भी विनष्ट करता है ॥१५॥

विश्वेश्वरे उत्तराषाढायामर्कपुत्रः शनैश्चरश्चरस्तिष्ठन् जनान् यवनांश्च निहन्ति नाशयति। चशब्दः समुच्चये। उज्जयिनीं देशम्। शबरान् जनान्। पारियात्रिकान् पारियात्रे गिरौ ये निवसन्ति तान्। कुन्तिभोजांश्च जनानेतांश्च निहन्ति नाशयति ॥१५॥

विश्वेश्वर अर्थात् उत्तराषाढा नक्षत्र में अर्कपुत्र शनि रहता हुआ दशार्ण प्रदेशों के लोगों और यवन जातियों को नष्ट करता है। 'च' शब्द समुच्चय (सभी के लिए) वाचक है। उज्जयिनी देश, शबर-जन पारियात्रिक अर्थात् पर्वतों पर रहनेवाले लोगों को और कुन्तिभोजराज्य के लोगों को विनष्ट करता है ॥१५॥

अथ श्रवणधनिष्ठयोराह :–

श्रवणे राजाधिकृतान् विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान्।
वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम् ॥१६॥

अब श्रवण-धनिष्ठा नक्षत्रों में स्थित शनि का फल कहते हैं :–

श्रवण नक्षत्र में स्थित शनि राजा के अधिकारियों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, चिकित्सकों,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरोहितों और कलिंग राज्य के निवासियों को संतापित करता है। धनिष्ठा नक्षत्र में मगध-नरेश की विजय और धनाधिपतिओं का संवर्धन होता है ॥१६॥

श्रवणे स्थितः सौरो राजाधिकृतान्। राज्ञा नृपेणाधिकारे स्थापितान् नियोगिन इत्यर्थः। विप्राग्र्यान् ब्राह्मणप्रधानान्। भिषजो वैद्याः। पुरोहिता आचार्याः। कलिङ्गा जनाः। एतांश्च निहन्ति। वसुभे धनिष्ठायां स्थितः सौरो मगधेशस्य मगधाधिपतेर्जयः। तथा धनेष्वधिकृतानां वित्तरक्षणे विनियुक्तानां वृद्धिर्भवति ॥१६॥

श्रवण नक्षत्र में स्थित शनि, राजा के द्वारा अधिकारी पद पर नियुक्त लोगों, प्रधान ब्राह्मणों, वैद्य, पुरोहित आचार्य, और कलिंग-प्रदेश के लोगों का हनन करता है। वसु अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित शनि, मगध के राजा के लिए जयकारक तथा जय और वित्त-रक्षा में नियुक्त लोगों के लिए वृद्धिकारक होता है ॥१६॥

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदास्वाह :—

साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवृत्तीनाम्।
आहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकराः स्त्रीहिरण्यं च ॥१७॥

अब शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा में स्थित शनि का फल कहते हैं:—

शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रों में जब शनि स्थित हो; तब वैद्य, मद्यप, व्यापारी, नीतिनिर्धारक-वृत्ति के लोगों का विनाश होता है। उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र में नदी, वाहन-निर्माता, महिला, और स्वर्णधातु का क्षय होता है ॥१७॥

शतभिषजि साजे पूर्वभद्रपदासहिते स्थितः सौरो भिषजो वैद्याः। कवयः काव्यज्ञाः। शौण्डिका मद्यपानप्रसक्ताः। पण्यवृत्तयः क्रयविक्रयजीविनः। नीतिवृत्तयो नीतिशास्त्रज्ञाः। एतान् पीडयति। आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां नद्यः सरितः। नदीतीरे ये निवसन्ति। तथा यानकरा रथाधिकारकाः शिल्पिनस्तक्षकाः। स्त्रियो योषितः। हिरण्यं सुवर्णादि। एतान् निहन्ति ॥१७॥

साजे (स+अजे) अर्थात् जब पूर्व भाद्रपदा सहित शतभिषा नक्षत्र में शनि स्थित हो; तब वैद्य, काव्यशास्त्र के ज्ञाता, शौण्डिक अर्थात् मद्यपान में आसक्त लोग, पण्य जिनकी वृत्ति हो अर्थात् क्रय-विक्रय से जीविकावाले, नीतिशास्त्र के ज्ञाता; इन सबको पीड़ित करता है। अहिर्बुध्न्य अर्थात् उत्तरभाद्रपदा में स्थित शनि नदी के तीर के निवासियों, रथों के निर्माता अर्थात् तक्षक, महिलाएँ और स्वर्ण इत्यादि द्रव्यों का विनाश करता है ॥१७॥

अथ रेवत्यामाह :—

रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम्।
शबराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति ॥१८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेवती नक्षत्र में स्थित शनि का फल कहते हैं :–

रेवती नक्षत्र में शनि के सञ्चरण करने पर राजकीय कर्मचारी, क्रौंच-द्वीप पर रहनेवाले लोग, शरद् ऋतु की उपज, शबर और यवन लोग पीड़ित होते हैं ॥१८॥

रेवत्यां शनैश्चरे चरति स्थिते सति राजभृता राज्ञा नृपेण ये भृताः पोषिता धृता वा। तथा क्रौञ्चद्वीपे य आश्रिताः स्थिताः। शरत्सस्यं धान्यानि। शबरा जनाः। यवना म्लेच्छजातयः। एते पीड्यन्ते। तथा च पराशरः–

रेवती नक्षत्र में शनि जाये, तब राजकर्मचारी, क्रौञ्चद्वीप पर जो स्थित हों, शरत्काल के धान्य, शबर (किरात) लोग, यवन अर्थात् म्लेच्छ जातियाँ; ये सब पीड़ित होते हैं। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

आग्नेये प्रविचरन्नग्निस्थूलशूरसेनाहिताग्निलोहकारधातुकाराङ्गनाशौण्डिकाग्न्युपजीविन उपतापयति। प्राजापत्ये मद्रकपाञ्चालकाशिकोशलाङ्गशाकटिकाः कन्यकाश्चोपतप्यन्ते। सौम्ये यजमानयाजकार्यजनमध्यदेशवत्सजनपदाः। रौद्रे पारतरमठतैलिकरजकदस्यवः। आदित्ये सुराष्ट्रसिन्धुसौवीरपञ्चनदप्रत्यन्ता विधवाश्च। पुष्ये पुष्पमानकघाण्टिकघौषिकपोतयात्रिक-यवनवणिग्दूताः। आश्लेषासु सर्पाः सलिलजाश्च। मघासु शूलिकबाह्लिकतैलिकगान्धारवैद्य-पारतदरदशिल्पिकोष्ठागाराणि। भाग्ये रसविक्रयिपण्यस्त्रीकन्यामहाराष्ट्राः। आर्यम्णे नृपनृपपत्नीसुततिललवणगुडभिक्षुककूपकूर्चधरतक्षशिलादर्शनिवासिनः। हस्ते हस्तिहस्तिग्राह-कस्तेनभिषग्रजकसूचिकनापितमालाकारबन्धकीकोशलाः। त्वाष्ट्रे प्रमदालेखकचित्रकरचित्र-भाण्डानि। स्वातौ दूतचरसूतमागधप्लवकनटनर्तकगायकवादकपोतयात्रिकाः। ऐन्द्राग्ने त्रैगर्तचीनकौलूतलाक्षाकुङ्कुमकुसुम्भमाञ्जिष्ठपीतकुसुमसस्यानि विग्रहकामाश्च। अनुराधासु खसतङ्गणकुलूतकाश्मीरचक्रचरमन्त्रिघाण्टिकाः। अस्मिन् मित्रभेदं च विन्यात्।

कृत्तिका नक्षत्र में शनि सञ्चरण करता हुआ अग्निसम्बन्धी, स्थूल वस्तु, वीर, सेना, अग्निहोत्री, लोहार, स्वर्णकार, महिला, मद्यपायी और अग्नि-कर्म से जीने वाले; इन सभी को संतप्त (दुःखी) करता है। रोहिणी नक्षत्र में मद्रक, पाञ्चाल, काशी, कोशल और अङ्ग प्रदेश के निवासियों, वाहन चालकों, शकट निर्माताओं तथा कन्यायों को संतप्त रखता है। मृगशिरा में यजमान तथा यज्ञकर्म करनेवालों, मध्य प्रदेश तथा वत्सजनपद के लोगों को कष्ट देता है। आर्द्रा नक्षत्र में सुदूरतटवर्ती, मठ, तेली जाति, रजक (धोबी) जाति और डाकुओं को पीड़ित करता है। पुनर्वसु नक्षत्र में सौराष्ट्र, सिन्धु, सौवीर, पञ्चनद (पंजाब), सीमान्त प्रदेशों को तथा विधवाओं को पीड़ित करता है। पुष्यनक्षत्र में पुष्प, मानक अर्थात् नाप तौल करने वाले, घण्टी बनाने वालों, उद्घोषक, जलपोत से यात्रा करनेवाले, यवन, व्यापारी और दूतों को संपीडित करता है। आश्लेषा नक्षत्र में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्पों तथा जल से उत्पन्न पदार्थों को, मघा नक्षत्र में शूलिक, बाह्लीक (प्रदेशों), तैलिक जाति, गान्धारप्रदेश, वैद्य, तटवर्ती प्रदेश, दरद प्रदेश, शिल्पकार और भण्डारगृह को; पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में रसों के विक्रेता, वेश्या, स्त्री, कन्या और महाराष्ट्र के लोगों को; उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में राजा, राजपत्नी, राजकुमार, तिल, नमक, गुड़, भिखारी (संन्यासी), कूआँ, दाढ़ी रखनेवाले (साधु), तक्षशिला और आदर्श प्रदेश के निवासियों को; हस्तनक्षत्र में हाथी, हाथी पकड़नेवाले, चोर, वैद्य, धोबी, सूई से छेदने वाले, नाई, माली, बन्धकी और कोशल प्रदेश को; चित्रा नक्षत्र में नारी, लेखक, चित्रकार और अनेक वर्ण के चित्रित पात्रों को; स्वाती नक्षत्र में दूत, गुप्तचर, रथचालक, मगधवासी, तैरनेवाले, नट, नर्तक, गायक, वादक, जलपोत के यात्रिओं को; विशाखा नक्षत्र में त्रिगर्त, चीन, कौलूत (प्रदेश), लाह, कुङ्कुम, कुसुम्भ (पुष्प विशेष), मजीठा, पीले फूल और सस्य तथा विद्रोही लोगों को; अनुराधा नक्षत्र में खस, तङ्गण, कुलूत, काश्मीर, चक्र, गुप्तचर, मन्त्री तथा घण्टी से सम्बन्धित व्यवसायी लोगों को पीड़ित करता है। इस नक्षत्र में मित्रों में विद्रोह (विभेद) भी होता है।

ऐन्द्रे जातिगणकुलश्रेणीश्रेष्ठनृपनृपतिसत्कृतपुरोहितान्। मूले काशिकोशलपाञ्चालमूलफलौषधियोधान्। पूर्वाषाढास्वङ्गमगधवङ्गपुण्ड्रकौशलमिथिलागिरिव्रजताम्रलिप्तिनिवासिनः। उत्तराषाढास्ववन्तिशबरकुन्तिभोजदाशार्णेयपारियात्रिकान्। वैष्णवेऽग्निदेशकलिङ्गेशविद्वद्विप्राश्रमभिषग्राजाधिकृतपुरोहितान्। श्रविष्ठासु मगधाधिपतिविजयाय विविधवसुनिचयाय तदधिकृतानामर्थेशांश्च पीडयति। शतभिषजि भिषङ्मद्यसुरासवक्रयविक्रयवनितोपजीविदस्युपाखण्डिनिवासिनः। प्राक्प्रोष्ठपदायां द्रविडकर्णाटवर्तिचोलपाण्ड्यसिंहलमहेन्द्रनगरनिवासिनः। उत्तरभाद्रपदायां स्त्रीहिरण्यनिचयतक्षकशमीधान्यनदनदीपान् युग्यकरान्। रेवत्यां शरत्सस्यराजभृतशबरवनवासिक्रौञ्चद्वीपनिवासिनः। अश्विन्यामश्वारोहाश्वपालवैद्यामात्यकविनायकान्। भरणीषु वादकगायकनर्तकक्षुद्रनैकृतिकान् पीडयति॥१८॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्तम जाति-समूह, उत्तमकुल, जातिगत संगठन, राजा, राजपोषित तथा आचार्यों को; मूलनक्षत्र में काशी, कोशल, पाञ्चाल प्रदेशों तथा फल, मूल, औषधि और योद्धाओं को; पूर्वाषाढा नक्षत्र में अंग, बंग, मगध, पुण्ड्र, कौशल, मिथिला-प्रदेशों को तथा गिरिवासी, और ताम्रलिप्ता नगर के निवासियों को; उत्तराषाढा नक्षत्र में अवन्ती (उज्जैन), शबर, कुन्तिभोज, दशार्ण प्रदेशों तथा सामुद्रिक यात्रियों को; श्रवण नक्षत्र में अग्निदेश, कलिंगराज, विद्वान्, ब्राह्मण, आश्रमवासियों, वैद्य, राजकर्मचारी और आचार्य पुरोहितों को; धनिष्ठा नक्षत्र में मगधराजा के लिए विजयकारक, तथा अनेक सम्पत्तियों के संग्रह हेतु शुभ होता है, संग्राहक धनपतियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को शनि पीड़ित करता है। शतभिषा नक्षत्र में वैद्य, मद्य-सुरा-आसवों के क्रेता तथा विक्रेता, महिलाओं के द्वारा जीविका चलाने वाले, लुटेरे, पाखण्डी और सुस्थिर निवास करने वालों को; पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र में द्रविड़, कर्णाटकवर्ती, चोल, पाण्ड्य, सिंहल और महेन्द्र नगर के निवासिओं को; उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में महिला, सुवर्ण-भण्डार, तक्षक (सर्प), शमी वृक्ष, समुद्र और नदियों को तथा खेत जोतनेवाले कृषकों (पशुओं को जोतने वालों) को; रेवती नक्षत्र में शरत्कालीन धान्य, राजकर्मचारी, शबर, वनवासी और क्रौञ्चद्वीप के निवासियों को; अश्विनी नक्षत्र में अश्वारोही तथा अश्वपालकों, वैद्य, मन्त्री (सचिव), कवि और जन-नायकों (सेनापतियों) को; भरणी नक्षत्र में वाद्य बजानेवाले, गायक, नर्तक, क्षुद्र (नीच) लोगों और मिथ्याचारियों को पीड़ित करता है ॥१८॥

अथ विशाखास्थस्य गुरोः कृत्तिकास्थस्य सौरस्य तथानयोरेकर्क्षगतयोः फलमाह :–

यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः।
तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम् ॥ १९॥

अब विशाखा में गुरु, कृत्तिका में शनि तथा दोनों के एक नक्षत्र में स्थित रहने का फल कहते हैं :–

जब विशाखा नक्षत्र में गुरु तथा कृत्तिका नक्षत्र में शनि हो, तब जनता में भयंकर अत्याचार होता है। यदि ये दोनों एक ही नक्षत्र में स्थित हों, तो नगरों का विभाजन (राज्य-विखण्डन) होता है ॥१९॥

यदा यस्मिन् काले महेन्द्रमन्त्री बृहस्पतिर्विशाखासु यातः प्राप्तस्तथा भानोरादित्यस्य सुतः पुत्रः सौरो दहनर्क्षे कृत्तिकायां यातस्तदा तस्मिन् काले प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयोऽतिघोरो भयावहो भवति। तयोरेवगुरुसौरयोरेकं भमेकनक्षत्रं गतयोः पुरस्य नगरस्य प्रभेदो भवति। तथा च पराशरः–

कृत्तिकासु शनैश्चारी विशाखासु बृहस्पतिः।
तिष्ठेद्यदा तदा घोरः प्रजानामनयो भवेत् ॥
एकं नक्षत्रमासाद्य दृश्यते युगपद्यदि।
अन्योन्यभेदं जानीयात्तदा पुरनिवासिनाम् ॥

जिस समय महेन्द्र-मन्त्री गुरु विशाखानक्षत्र में जाता है, तथा भानुपुत्र शनि कृत्तिका नक्षत्र में जाता है, उस समय लोक में दुराचार भयावह होता है। ये दोनों ही ग्रह यदि एक नक्षत्र में चले जायें, तो नगर का विभेद (विखण्डन) होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृत्तिका में शनि तथा विशाखा में गुरु हो, तो प्रजा में घोर दुराचार (दुर्नीति) फैलती है। ये दोनों ग्रह यदि एक ही नक्षत्र में हों, तब नगरवासियों में परस्पर विद्रोह होता है।

गुरुसौरावेकस्थौ द्विस्वभावराशिस्थौ तदाप्यनिष्टफलमभिहितम्। तथा च देवलः—

मीने धनुषि कन्यायां मिथुने सगुरुः शनिः।
तिष्ठेद्यदा तदा घोरः प्रजानामनयो भवेत्॥ इति॥१९॥

जब गुरु और शनि एकत्र द्विस्वभावराशि में स्थित हों, तब भी अनिष्ट फल कहा गया है। जैसाकि आचार्य देवल ने कहा है:—

मीन, धनु, कन्या और मिथुन राशियों में गुरु के साथ शनि हो, तब लोक में घोर अनाचार होता है॥१९॥

अथ वर्णस्वरूपमाह :—

अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः।
शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च॥२०॥

वर्णों के स्वरूपानुसार शनि का फल :—

यदि शनि चित्रवर्ण (बहुरंगा) हो, तब अण्डज अर्थात् पक्षियों को विनष्ट करता है। पीत वर्ण (पीला) का दुर्भिक्ष करता है। लालरंग का युद्धकारक होता है, और भस्म के रंग का शत्रुता का बाहुल्य करता है॥२०॥

रविजः शनैश्चरो यदि चित्रश्चित्रवर्णो नानाकारो दृश्यते। तदा अण्डजहा अण्डजान् पक्षिणो हन्ति। यदि पीतमयूखः पीतरश्मिर्दृश्यते तदा क्षुद् दुर्भिक्षं करोति। रक्तसवर्णो रक्ताभः शस्त्रभयाय संग्रामाय भवति। भस्मनिभो भस्मसदृशकान्तिर्बहुवैरकरः प्रजानां भवति। तथा च पराशरः—

रविज अर्थात् शनि यदि विविध रंगों का दीख पड़े तो, अण्डजों अर्थात् पक्षिओं का हनन करता है। यदि पीले वर्ण का दिखायी पड़ता है, तब दुर्भिक्ष करता है। रक्त के समान रंग वाला प्रजा के लिए अधिक शत्रुता का कारक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है:—

नीलपीतः क्षुधे। रक्तभस्मचित्रवर्णः शस्त्रवैरकरोऽण्डजाभिहन्ता। यद्वर्णस्तद्वर्णविनाशी भवति।

यदि नीला-पीला (रंग) हो तो क्षुधाकारक है। रक्त (लाल), भस्म (भूरा) तथा विविध वर्ण का (चित्रवर्णी) हो, तो पक्षियों का विघातक होता है॥२०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यद्वर्णलक्षणमाह :–

वैदूर्यकान्तिविमलः शुभकृत् प्रजानां
बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः।
यं चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान्
सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः॥ २१॥

वर्णानुसार अन्य लक्षण कहते हैं :–

शनि वैदूर्यमणि (विडालाक्ष, लहसुनिया) की आभा के समान स्वच्छ हो, तब लोककल्याणकारक होता है। बाण और तीसी के फूल के समान वर्ण का प्रशस्त (शुभ) होता है। शनि जिस प्रकार के वर्ण का होता है, उस वर्ण के पदार्थों का विनाश करता है। ऐसा अन्य मुनियों (शास्त्रकारों) का वचन है॥२१॥

सूर्यात्मजः सौरो वैदूर्यकान्तिविमलो वैदूर्यस्य मणेरिव कान्तिः प्रभा विमला निर्मला यस्य स तथाभूतः प्रजानां लोकानां शुभकृत्। शुभं श्रेयः करोति। तथा बाणपुष्पाणामतिकृष्णवर्णानामतसीकुसुमानां चातिनीलवर्णानां वर्णनिभस्तत्सदृशकान्तिः शस्तः प्रशस्तः। यं चापि वर्णमुपगच्छतीति। यादृशं वर्णं सितं रक्तं पीतं कृष्णमुपगच्छति समाश्रयति तत्सवर्णांस्तत्समानवर्णान् द्विजादीन् क्षपयति नाशयति। तद्यथा :– श्वेतवर्णो ब्राह्मणान्नाशयति। रक्तः क्षत्रियान्। पीतो वैश्यान्। कृष्णः शूद्रानिति। इत्येवंप्रकारो मुनीनां गर्गादीनां प्रवादो वचनमित्यर्थः। तथा च गर्गः –

सूर्यपुत्र शनि वैदूर्यमणि के तुल्य निर्मल कान्तिमान हो तो लोक के लिए शुभकारक होता है। शुभ अर्थात् श्रेयस्कर होता है। जब बाणपुष्प के समान अति काला और अलसी (तीसी) के फूल के समान अत्यधिक नीले वर्ण के समान हो, तब प्रशस्त (शुभ) होता है। जिस प्रकार के वर्ण का, अर्थात् उजला, लाल, पीला, काला आदि वर्ण का होता है, उनके समान ब्राह्मण आदि वर्णों का विनाश करता है। उदाहरणार्थ– उजले वर्ण का ब्राह्मणों को विनष्ट करता है। रक्त वर्ण क्षत्रियों का, पीत वर्ण वैश्यों का और कालावर्ण शूद्रों का विनाशक होता है। इस प्रकार यह गर्गादि मुनियों (आचार्यों) के वचन हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

भवत्यर्कात्मजे रूक्षे श्यावपीतारुणप्रभे।
तदात्मकानां भावानां क्षुच्छस्त्राग्निकृतं भयम्॥

शनि रूक्ष (कर्कश), श्यामल, पीला और अरुण (लाल) वर्ण का होकर, इनके समान वर्णवाले जीवों के लिए दुर्भिक्ष, युद्ध और अग्नि प्रकोप से भयकारक होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा पराशरश्च :—

पाण्डुः स्निग्धोऽमलः श्यामो विस्तृतार्चिः शनैश्चरः।
मार्गस्थश्च प्रसव्यश्च नक्षत्राद्धित इष्यते॥इति॥२१॥

इसी प्रकार आचार्य पराशर ने कहा है :—

जब शनि पाण्डु वर्ण (पीला) का, चिकना, निर्मल, साँवला, फैली हुई किरणों वाला, मार्गी और नक्षत्रों के दक्षिण-भाग में हो, तब वह कल्याणकारक होता है॥२१॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शनैश्चरचारो
नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

इति श्री भट्टोत्पल द्वारा विरचित संहिताविवृतिमें शनिचार
नामक दशम अध्याय॥१०॥

अथ एकादशोध्यायः

अथ केतुचारो व्याख्यायते तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह :—

गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः॥१॥

प्रारम्भ में शास्त्रों का निदर्शन करते हैं। अब केतुचार की व्याख्या की जाती है :—

आचार्य गर्ग द्वारा कहे गये केतु-चार को और पाराशर, असित, देवल तथा अन्य अनेक आचार्यों के मतों को देखकर असन्दिग्ध भाव से इस केतुचार का वर्णन कर रहा हूँ॥१॥

गार्गीयं गर्गप्रोक्तम्। शिखिचारं केतुचारम्। तथा पाराशरं पराशरकृतम्। असितनामाचार्यस्तत्कृतम्। देवलकृतम् देवलविरचितं च। एतान् केतुचारान् दृष्ट्वा अवलोक्य। तथा अन्यानपि काश्यपऋषिपुत्रनारदवज्रादिविरचितान् बहून् प्रभूतान् दृष्ट्वा मया अयमनाकुलो निःसन्देहः केतुचारः क्रियते विरच्यत इति॥१॥

गार्गोक्त केतु-चार तथा पाराशर मुनि द्वारा कहा गया, असित नामक आचार्य द्वारा प्रतिपादित आचार्य देवल द्वारा विरचित, इन सभी के केतु-चार प्रकरण को देखकर तथा अन्य भी काश्यप, ऋषिपुत्र, नारद, वज्रादि बहुत से आचार्यों की रचना को देखकर सुस्थिर भाव (निःसन्देह भाव) से केतुचार प्रकरण विरचित किया जाता है॥१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथोदयास्तमयलक्षणमाह :–

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम् ।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ २॥

केतु के उदयास्त का विचार :–

केतु का उदय अथवा अस्तकाल गणितीय विधि से नहीं जाना जा सकता है। कारण यह है कि केतु दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम संज्ञक तीन प्रकार का होता है ॥२॥

अस्य केतोर्दर्शनमुदयोऽस्तमयोऽदर्शनं वा गणितविधिना गणितविधानेन न ज्ञातुं वेदितुं शक्यते। यस्मात् केतवस्त्रिविधास्त्रिप्रकारा दिव्यान्तरिक्षभौमाः। दिव्याकाशे भवा दिव्याः। अन्तरिक्षे भवा आन्तरिक्षाः। ग्रहनक्षत्रस्थानं विहायान्यत्राऽऽकाशे ये दृश्यन्ते ते आन्तरिक्षाः। भूमौ भवा भौमाः। इति हेतोरुत्पातरूपत्वादेषामुदयास्तमयौ न ज्ञायेते इति ॥२॥

इस केतु का दर्शन अर्थात् उदय, अथवा अस्तमय अर्थात् अदर्शन, गणित की विधियों से नहीं ज्ञात किया जा सकता है। क्योंकि केतु दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम नाम से तीन प्रकार के होते हैं। आकाश में उत्पन्न को दिव्य, अन्तरिक्ष में उत्पन्न को आन्तरिक्ष, ग्रहों और नक्षत्रों के स्थान (कक्षा) को छोड़कर जो अन्तरिक्ष में दिखाई पड़ते हैं– उनको आन्तरिक्ष कहा जाता है। भूमि पर उत्पन्न केतु को भौम कहा जाता है। इसी कारण उत्पात-स्वरूप होने के कारण, इन केतुओं का उदय और अस्त ज्ञात नहीं होते हैं ॥२॥

अथ केतूनां दिव्यवर्जितानामन्येषां स्वरूपमाह :–

अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत्केतुरूपमेवोक्तम् ।
खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥ ३॥

दिव्यता-रहित अन्य केतुओं का स्वरूप कहते हैं :–

बिना अग्नि के ही जहाँ पर अग्नि का रूप (ज्वाला) हो, वह ही केतु का स्वरूप कहा गया है। किन्तु खद्योत-इन्द्रगोपक नामक कीड़ा (जुगुनू), पिशाचों का निवास-स्थल, मणियों और रत्नों को छोड़ कर ही केतु समझना चाहिए (सभी प्रकाश पुञ्जों को नहीं) ॥३॥

अहुताशेऽग्निवर्जिते यस्मिन् देशेऽनलरूपमग्निरूपं दृश्यते तदेव केतुरूपमुक्तं कथितम्। किन्तु खद्योत इन्द्रगोपकः कृमिविशेषः। पिशाचालयो यक्षस्थानम्। मणयश्चन्द्रकान्तप्रभृतयः। रत्नानि मरकतप्रभृतीनि। आदिग्रहणादन्यान्यपि काचप्रभृतीनि तेजोरूपाणि। एतानि परित्यज्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्यक्त्वा। यत एषां स्वभावादेवानलरूपं दृश्यते। एतानि परित्यज्यान्यद्यदनलरूपमहुताशे दृश्यते तत्केतुरूपमिति ॥ ३॥

अग्नि-रहित जिस प्रदेश में अग्नि का रूप दिखायी पड़े, वही केतु-स्वरूप कहा गया है। किन्तु इन्द्रगोपक नामक कीट-विशेष खद्योत अथवा जुगुनू, पिशाच-गृह अर्थात् यक्षस्थान, चन्द्रकान्त आदि मणियाँ, मरकत (पन्ना) इत्यादि रत्न, 'आदि' शब्द से अन्य भी प्रकाश देनेवाले काँच आदि समाहित हैं– इनको छोड़कर केतु होते हैं। क्योंकि ये प्राकृतिक रूप से अग्नि के समान प्रकाशमान होते हैं। इन सभी को छोड़कर जो अन्य अग्नि-सदृश प्रकाश (ज्वाला) दिखायी पड़ता है। वह ही केतु का वास्तविक रूप है ॥३॥

अथ दिव्यान्तरिक्षभौमानां केतूनां लक्षणमाह :–

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते ।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥४॥

अब दिव्य-आन्तरिक्ष और भौम नामक केतुओं के लक्षण कहते हैं :–

ध्वज (पताका), शस्त्र, भवन, वृक्ष, अश्व, हाथी आदि के रूपवाले आन्तरिक्ष-केतु होते हैं। नक्षत्रों में स्थित केतु को दिव्य तथा इनसे भिन्न भूमि पर दीखनेवाले केतु को भौम कहा जाता है ॥४॥

ध्वजश्चिह्नम्। शस्त्रमायुधादि। भवनं गृहम्। तरुर्वृक्षः। तुरगोऽश्वः। कुञ्जरो हस्ती। आदिग्रहणादन्येषु चतुष्पदादिषु दृश्यन्तेऽनलरूपास्ते केतव आन्तरिक्षाः। तथा नक्षत्राणां तारकाणां च मध्ये ये केतवो दृश्यन्ते ते दिव्या नक्षत्रस्थाः अतोऽस्मादुक्ताद्येऽन्यथा अन्ये भूभौ दृश्यन्ते ते भौमाः शिखिनः केतव इति ॥४॥

यदि ध्वज के चिन्ह वाले, शस्त्र, गृह, वृक्ष, अश्व, हाथी तथा 'आदि' पद से अन्य चतुष्पद (पशु), इनके समान अग्निरूप दिखाई पड़ते हैं, तो वे आन्तरिक्ष-केतु होते हैं। नक्षत्रों अर्थात् तारों (आकाश) के बीच जो केतु दिखायी पड़ते हैं, वे दिव्य होते हैं। इन कहे गये दो प्रकार के केतुओं से भिन्न केतुओं को, जो भूमि पर दृश्य होते हैं, वे भौमकेतु कहलाते हैं ॥४॥

अथ केतूनां मतान्तरेण संख्यामाह :–

शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम्।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥५॥

अब मतान्तर से केतुओं की संख्या कहते हैं :–

कतिपय आचार्य केतुओं की संख्या एक सौ एक तथा दूसरे आचार्य एक हजार कहते हैं। महर्षि नारद एक ही केतु को अनेक रूपोंवाला कहते हैं ॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एके मुनयः पराशरादय एकाधिकं शतं केतूनां वदन्ति कथयन्ति। तथा च पराशरः –

आचार्य पराशर आदि कुछेक मुनि एक सौ एक केतुओं को कहते हैं। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

तद्यथा :– [1]शतमेकोत्तरं केतूनां भवति। तेषां षोडश मृत्युनिःश्वासजाः। द्वादशाऽऽदित्यसम्भवाः। दश दक्षमखविलयने रुद्रक्रोधजाः। सप्त पैतामहाः। पञ्चदश उद्दालकऋषेः पुत्राः। सप्तदश मरीचिकश्यपललाटजाः। पञ्च प्रजापतिहास्यजाः। त्रयो विभावसुजाः। धूमोद्भवश्चैकः। चतुर्दश मथ्यमानेऽमृते सोमेन सह सम्भूताः[2]। एकस्तु ब्रह्म कोपजः इति।

एक सौ एक केतुओं की संख्या होती है। इनमें से १६ मृत्यु के निःश्वास से उत्पन्न हैं। १२ सूर्य से उत्पन्न हैं। १० दक्ष प्रजापति के यज्ञ-ध्वंश के समय भगवान् रुद्र के क्रोध से उत्पन्न हुए। ७ ब्रह्मा के हैं तथा १५ उद्दालक ऋषि के पुत्र हैं। १७ केतु मरीचि कश्यप के ललाट से उत्पन्न हुए। ५ केतु प्रजापति के हास्य से उत्पन्न हैं। विभावसु से ३ केतु हुए। धूम से १ केतु हुआ तथा अमृत मन्थन के समय चन्द्रमा के साथ १४ केतु प्रकट हुए। ब्रह्मा के क्रोध से १ केतु उत्पन्न है।

सहस्रमपरे वदन्तीति। अपरे अन्ये गर्गादयः सहस्रं केतूनां वदन्ति। तथा च गर्गः–

अन्य गर्गादि आचार्य एक हजार केतुओं को कहते हैं। जैसाकि गर्गाचार्य ने कहा है :–

अतीतोदयचाराणामशुभानां च दर्शने।
आगन्तूनां सहस्रं स्याद् ग्रहाणां तन्निबोध मे॥

जिनका अतीत (समाप्ति), उदय और सञ्चरण अशुभकारक होता है, ऐसे एक सहस्र आगन्तुक ग्रह (आकस्मिक आने वाले) होते हैं। इन ग्रहों (केतुओं) के सम्बन्ध में मुझे बतलाएँ।

बहुरूपमेकमेवेति। नारदाख्यो मुनिरेकमेव केतुं प्राहोक्तवान्। तन्मते एक एव केतुस्तस्य च बहूनि रूपाणि। स एव दिव्यान्तरिक्षभौम इत्यर्थः। तथा च नारदः–

नारदमुनि ने एक ही केतु को कहा है। उनके मतानुसार एक ही केतु के अनेक रूप हैं। वह एक ही दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम कहा जाता है। जैसाकि नारद ने कहा है :–

---

१. १६+१२+१०+७+१५+१७+५+३+१+१४+१=१०१।
२. संजाताः इति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिव्यान्तरिक्षगो भौम एकः केतुः प्रकीर्तितः।
शुभाशुभफलं लोके ददात्यस्तमयोदयैः॥इति॥५॥

दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम नाम से एक ही केतु कहा गया है। अपने अस्त तथा उदय से यह लोक में शुभाशुभ फल देता है॥५॥

एवं मतान्तराण्युक्ता स्वसिद्धान्तमाह :–

यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम्।
उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः॥६॥

मतान्तरों के बाद अपना मत कहते हैं :–

केतु यदि एक हो तब भी अथवा यह यदि अनेक हो तब भी, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि इसका फलादेश तो उदय, अस्त, स्थान, स्पर्श, शिखा और वर्ण के आधार पर ही कहना होता है॥६॥

फलं शुभाशुभम्। वाच्यं वक्तव्यम्। उदयास्तमयौ यथा :– कस्यां दिशि उदितः कस्यामेवास्तमितः। स्थानं यथा :– कस्मिन्नाकाशभागे कस्य ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा समीपे उदितोऽस्तमितश्च। स्पर्शनकम्। तेन ग्रहो नक्षत्रं वा स्पृष्टम्। आधूमनः शिखयाऽभिधूमितः। वर्णः सितरक्तपीतकृष्णादिकः। एवमादिभिस्तस्य फलं वाच्यम्। तस्माद्यद्येको बहवो यदि वा भवन्तु किमनेन का नः क्षतिरिति॥६॥

फल अर्थात् शुभ-अशुभ वाच्य, अर्थात् कथनीय होता है। जैसाकि उदयास्तमय अर्थात् किस दिशा में उदय हुआ ? और किस दिशा में अस्त हुआ ? स्थान अर्थात् आकाश के किस भाग में ? किस ग्रह अथवा नक्षत्र के समीप उदित और अस्त हुआ ? स्पर्श अर्थात् उससे ग्रह अथवा नक्षत्र र्स्पश किया गया ? आधूमन अर्थात् शिखाग्र-भाग से धूमग्रस्तता तथा वर्ण अर्थात् शुक्ल, लाल, पीला काला आदि। इन वर्णों का सभी लक्षणों के द्वारा फलादेश कहना चाहिए। इसलिए वह एक हो अथवा अनेक हो, इससे हमारी कोई क्षति नहीं होती है॥६॥

अथ केतुचारे येषां केतूनां नाम निर्दिष्टं कियन्तं कालं यावत्फलपाको भविष्यति तेषामिति फलपाकनियमार्थमाह :–

केतुचार में जिन केतुओं के नाम बताए गये हैं, उनका कितने समय में फलपाक होता है। इसका नियम-निर्देश करते हैं :–

यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः।
मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः॥७॥

जितने दिनों तक केतु दिखायी पड़े, उतने ही मास तक उसका फल-पाक (फल का मिलना) होता है। जितने मासपर्यन्त दृश्य हो, उतनी वर्ष-संख्या तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलपाक की अवधि होती है। दृश्य होने के तीन पक्षों (४५ दिनों) के पश्चात् ही फलोपलब्धि होती है ॥७॥

यावन्त्यहानि यावन्ति दिनानि दृश्यो दर्शनपथं गतः। कः केतुरिति संबध्यते। फलपाकः। फलस्य पाकः फलपाकः। तस्य तावन्तो मासाः। तस्य केतोस्तावतो मासान् दृश्यदिनतुल्यांस्तावत्संख्यान् मासान् फलपाकं वदेद् ब्रूयात्। मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति। मासैः पुनरब्दान् संवत्सरान् वदेत्। माससंख्यादर्शने मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। यावत्संख्यान् मासान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि तस्य फलपाकं वदेत्। कस्मात् कालात् प्रभृति ? इत्यत आह :– प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। सर्वेषां केतूनां त्विदं सामान्यम्। यावन्ति दिनानि दृश्यः केतुस्तस्माद्दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि यावन्ति निष्फलानि। तस्मात् पक्षत्रयात् परतस्तावतो मासान् फलपाकः। अथ मासा दृश्यन्ते तदा तस्मादेव दर्शनात् परतः पक्षत्रयमतिक्रम्य मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति यदुक्तं तत्सर्वत्र फलपाके। दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं यावन्निष्फलं भवति।

जितने दिनों तक दृष्टिपथ पर दृश्य रहता है, कौन ? केतु। फल के पाक को फल-पाक कहते हैं। जो कि उस केतु के दृश्य होने के दिनों की संख्या के बराबर फलपाक के मासों की संख्या कहनी चाहिए। दृश्य मासों की संख्या के तुल्य फलपाक का वर्ष कहना चाहिए। दिखायी पड़ते रहने के मास-तुल्य वर्षों को कहना चाहिए। जितने मास तक दृश्य होता है, उतने ही वर्ष तक उसका फल-पाक होता है। किस काल से प्रारम्भ करें ? इसके सम्बन्ध में कहते हैं :– प्रथम तीन पक्ष के पश्चात्। सभी केतुओं के लिए यह सामान्य नियम है। जितने दिनों तक केतु दिखायी पड़ता है, उसके बाद प्रथम तीन पक्ष अर्थात् ४५ दिनों तक उसका कोई फल नहीं होता है। उस तीन पक्ष के बाद ही उतने मासों तक फलपाक होता है। यदि अनेक मासों तक दिखायी पड़ता है, तब उस दृश्य मास के पश्चात् तीन पक्ष बीत जाने पर मास-संख्या के बराबर वर्ष-संख्या तक फलपाक कहना चाहिए। प्रथम तीन पक्ष के पश्चात् जो कहा गया है, वह फलपाक के लिए सर्वत्र समझना चाहिए। दिखायी पड़ते रहने के पश्चात् प्रथम तीन पक्ष तक निष्फल होता है।

अत्र केचिद् व्याख्याविप्रतिपत्तिं प्रदर्शयन्ति। यदुक्तं मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। तत्र पक्षत्रयं यावद्दिनसंख्या गृह्यते। पक्षत्रयादूर्ध्वं यदा दृश्यते केतुस्तदा माससंख्यातुल्यानि वर्षाणि वदेत्।

यहाँ पर कुछ लोग इस व्याख्या से असहमति प्रकट करते हैं। "प्रथम तीन पक्ष के पश्चात् मास से वर्ष कहना चाहिए; यह जो कहा गया है," इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्बन्ध में मतभेद है। यहाँ पर तीन पक्ष तक दिन की ही संख्या ग्रहण की जाती है। तीन पक्ष के बाद यदि केतु दिखायी पड़ता है, तब मास-संख्या के बराबर वर्ष की संख्या कहनी चाहिए।

अत्र सन्देहव्युदासार्थं गर्गोक्तं नियामकमभिलिख्यते। तथा च गर्गः—

यावन्त्यहानि दृश्यः स्यात्तावन्मासान् फलं भवेत्।
मासांस्तु यावद् दृश्येत तावतोऽब्दांश्च वैकृतम्॥
त्रिपक्षात् परतः कर्म पच्यतेऽस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः॥

तथा च वृद्धगर्गः—

यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावन्मासान् विनिर्दिशेत्।
त्रिपक्षात् परतश्चापि कर्म केतोः प्रपच्यते॥
तस्मात् कालात् परं ब्रूयात् फलमस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः॥

इस विषय में सन्देह के निराकरण हेतु गर्गमुनि द्वारा कहे गये नियम-निर्धारण का उल्लेख किया जाता है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

जितने दिनों तक केतु दृश्य हो उतने मास तक फल होता है। जितने मासों तक दिखायी पड़ता है, उतने वर्षों तक विकृति (दोष) रहती है। इस केतु का शुभाशुभ फल तीन पक्ष के बाद ही परिपक्व (फलपाक) होता है। विद्वान् दैवज्ञ केतु के उदित होते ही तत्काल फल का निर्देश नहीं करें।

इस प्रकार वृद्धगर्ग ने कहा है :—

जितने दिनों तक केतु दिखायी पड़ता हुआ ठहरा रहे, उतने मास तक फलपाक का निर्देश करें। केतु इसके कर्म-फल का परिपाक तीन पक्ष के बाद होता है। इस काल के पश्चात् ही इसके शुभाशुभ फल कहने चाहिये। केतु के उदित होते ही तत्काल फल का आदेश पण्डितजन न करें।

यद्येवं तदा द्वितीयव्याख्यानं न घटते, प्रथमव्याख्यानमेव ज्याय इति। यथा प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। दर्शनादूर्ध्वं पक्षत्रयं यावन्निष्फलम्। पक्षत्रयात् परतः फलपाकस्य कालसंख्या प्रवर्तते। यस्मादुक्तं सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः इति।

यदि ऐसा है, तो द्वितीय व्याख्या घटित नहीं होती है, अपितु प्रथम व्याख्यान ही श्रेष्ठ है। जैसा कि प्रथम तीन पक्ष के पश्चात्। दिखायी पड़ते रहने के बाद तीन पक्ष तक निष्फल रहता है। तीन पक्ष के बाद फलपाक के समय की संख्या प्रारम्भ होती है। इसलिए कहा गया है :— "केतु के उदित होने के तत्काल बाद ही फल का आदेश विद्वज्जन न करें।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यच्चोक्तं मासैरब्दांश्च बदेत् तदेकदेशेनापि मासप्रतिमासमेकद्वित्र्यादिदिनस्पर्शनेनापि मासंख्या लभ्यत एव सर्वथा किमनेनास्माकमसद्विकल्पेन। दिवसैः पक्षत्रयात् परतो मासान् बदेत् मासैस्तस्मादेव पक्षत्रयात् परतोऽब्दान् वदेत्। मासात् परतो दिनाधिक्ये दृष्टेऽनुपातवशाद्वक्तव्यम्। यदि दिनत्रिंशता वर्षं लभ्यते तदेष्टदिनैः किमिति ?

जो यह कहा गया है कि मास-संख्या के तुल्य बोध हो जात, कि प्रतिमास एक-दो-तीन आदि दिनों तक स्पर्श (दृश्य) होने से मास-संख्या प्राप्त ही हो जाती; फिर हम लोगों का इस व्यर्थ विकल्प से क्या प्रयोजन? तीन पक्ष के बाद दिनों के तुल्य मास संख्या कह दें और मासों को उसी तीन पक्ष के बाद वर्ष कहें। मास से आगे अधिक दिनों तक दृश्य हो, तब अनुपात द्वारा कहना चाहिए। यदि तीस दिनों में एक वर्ष मिलता है, तो अभीष्ट दिनों में कितने वर्ष ? इससे अभीष्ट वर्ष की संख्या अनुपात से ज्ञात कर लिया जायेगा।

तथा च समाससंहितायाम् :–

केचित् केतुसहस्रं शतमेकसमन्वितं वदन्त्येके।
नारदमत एकोऽयं त्रिस्थानसमुद्भवो विविधरूपः॥
दिव्यग्रहर्क्षजातास्तीव्रफला मन्दफलकरा भौमाः।
प्राणिध्वजादितुङ्गेषु चान्तरिक्षा न चान्यशुभाः॥
उदयास्तमयाधूमनसंयोगाकारमार्गदिग्यातैः ।
फलनिर्देशो दिवसैर्मासा मासैस्तु वर्षाणि॥ इति॥७॥

समाससंहिता में इस प्रकार कहा गया है :–

कुछ आचार्य एक सहस्र केतुओं को तथा अन्य आचार्य एक सौ एक केतुओं को कहते हैं। नारदमुनि के मतानुसार एक ही केतु है, जो कि तीनों स्थानों (आकाश, अन्तरिक्ष, भूमि) पर विविध रूपों में दिखायी पड़ता है। ग्रह-नक्षत्रों से उत्पन्न दिव्य-केतु तीव्रफल (तेजी से प्रभाव डालनेवाला) कर्ता तथा भौम केतु मन्दफल अर्थात् सामान्य रूप से प्रभावी और प्राणी, ध्वज आदि दीर्घ रूपों में अन्य प्रकार का केतु आन्तरिक्ष है, ये सभी शुभ नहीं होते हैं। उदय, अस्त, अग्नि-शिखा सदृश, संयुक्त रूप से दिशा-पथ पर गमनशील दिखायी पड़ते है। इनके फल का निर्देश दृश्य-दिनों के बराबर मास का और मास के बराबर ही वर्ष का करना चाहिए॥७॥

अथ शुभस्य केतोर्लक्षणमाह :–

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वजुरचिरसंस्थितः शुक्लः।
उदितोऽथवाभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः॥८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुभफलदायक केतु के लक्षण :–

लघु आकार का, स्वच्छ, चिकना, स्पष्ट, अल्पकालिक दृश्य, श्वेत वर्ण का, तथा उदय के बाद वर्षा हो जाय; इन स्थितियों में केतु सुभिक्ष और सुखप्रदायक होता है ॥८॥

एवंविधः केतुर्दृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः सुभिक्षं सौख्यमावहति करोति। कीदृशः ? ह्रस्वोऽदीर्घः। तनुरस्थूलः। प्रसन्नो निर्मलः। स्निग्धः सुस्नेहः। ऋजुः स्पष्टः। अकुटिल इत्यर्थः। अचिरसंस्थितः शीघ्रमेवादर्शनं यातः। शुक्लः श्वेतवर्णः। अथवोदित एवाभिवृष्टस्तस्मिन्नुदितमात्रे यदि वृष्टिर्भवति ॥८॥

इस प्रकार का देखा गया केतु सुभिक्ष और सुख करता है। किस प्रकार का ? ह्रस्व अर्थात् लम्बा न हो, तनु अर्थात् मोटा न हो, प्रसन्न अर्थात् निर्मल (स्वच्छ), स्निग्ध अर्थात् स्नेहिल (चिकना), ऋजु अर्थात् स्पष्ट हो टेढ़ा-मेढ़ा न हो, अचिर संस्थित अर्थात् शीघ्र ही प्रकट होकर लुप्त हो जाय, शुक्ल अर्थात् श्वेत वर्ण का अथवा उसके उदित होते ही यदि वर्षा होने लगे, तब शुभ होता है ॥८॥

अथाशुभस्य केतोर्लक्षणमाह :–

उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः।
इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥९॥

अब अशुभ केतु के लक्षण कहते हैं :–

उपर्युक्त लक्षणों से भिन्न लक्षणोंवाला केतु उत्पन्न हो, तो वह शुभकर्ता नहीं है। इन्द्र धनुषाकार अथवा दो या तीन शिखाओं वाला विशेष रूप से शुभ नहीं होता है ॥९॥

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्न इत्यस्मादुक्ताद्यो विपरीतरूपः केतुरुत्पन्नः स धूमकेतुः। स च न शुभकरः शुभं फलं न करोति। पापं करोतीत्यर्थः। तथेन्द्रायुधानुकारी, इन्द्रायुधं शक्रचापं तत्सदृशो न शुभकर एव। तथा द्वित्रिचूलो द्विशिखस्त्रिशिखश्च विशेषतो न शुभकर एव। तथा च समाससंहितायाम् :–

लघुरूप का, स्वच्छ आदि जो कहा गया है, उससे विपरीत लक्षणोंवाला प्रकट केतु, धूमकेतु हो, तो वह शुभफल नहीं करता है अर्थात् अशुभ फल करता है। यदि वह इन्द्रायुध अर्थात् इन्द्रधनुष के समान हो, तो भी अशुभकारक ही होता है। तथा यदि वह दो-तीन शिखाओंवाला हो तो विशेषकर अशुभ फल करता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

अचिरस्थितोऽभिवृष्टस्त्वृजुः स्मितः स्निग्धमूर्तिरुदगुदितः।
ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः केतुर्लोकस्य भावाय ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न शुभो विपरीतोऽतो विशेषतः शक्रचापसङ्काशः।
द्वित्रिचतुश्चूलो वा दक्षिणसंस्थश्च मृत्युकरः॥इति॥९॥

थोड़े समय के लिए आया हुआ, आते ही वर्षा करनेवाला, सीधा, स्वच्छ, चिकना, उत्तर दिशा में प्रकट हुआ, छोटे आकार का और निर्मल कान्ति वाला केतु लोक के लिये कल्याणदायक होता है। इसके विपरीत तथा विशेष रूप से इन्द्रधनुष के आकार का शुभ नहीं होता है। दो तीन अथवा चार शिखाओंवाला और दक्षिण दिशा में स्थित केतु मृत्युकारक होता है॥९॥

अधुना केतुसहस्रस्य लक्षणं सफलं विवक्षुस्तत्रादावेव रविजाः पञ्चविंशतिः केतवो भवन्ति तेषां लक्षणमाह :–

हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः।
प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः॥१०॥

अब सहस्र केतुओं के लक्षण और फल कहने की इच्छा से आरम्भ में सूर्य-पुत्र २५ केतुओं के लक्षण कहते हैं :-

सूर्योत्पन्न २५ केतु माला, मणि और स्वर्ण के समान किरण संज्ञक हैं। ये शिखायुक्त होते हैं और पूर्व-पश्चिम दिशा में देखे जाते हैं, जो कि राजाओं के लिए विरोध (अनिष्ट) कारक रहते हैं॥१०॥

हारो मुक्ताहारः। मणयश्चन्द्रकान्तिप्रभृतयः। हेम सुवर्णम्। एतेषां सदृशरूपाः समानवर्णा ये केतवस्ते किरणाख्याः किरणसंज्ञाः। सशिखाः सचूलाः। ते च पञ्चविंशतिः। रविजाः सूर्यपुत्राः प्रागपरदिशोर्दृश्याः। प्राक् पूर्वस्यामपरस्यां पश्चिमायां दिशि दृश्यन्ते। एतेषां मध्य, एक एव दृश्यते न सर्वे युगपदिति सर्वत्रेयं परिभाषा। ते च नृपतिविरोधावहाः, नृपते राज्ञो विरोधावहा विरोधप्रदाः। अनिष्टा इत्यर्थः। तथा च गर्गः–

हार अर्थात् मोतिओं की माला, चन्द्रकान्त आदि मणियाँ, हेम अर्थात् सुवर्ण; इनके समान रूप-वर्णवाले केतु किरण-संज्ञक हैं। शिखाओं सहित इनकी संख्या २५ है। रवि के पुत्र ये केतु पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में देखे जाते हैं। इनमें से कोई एक ही (एक समय में) दिखायी पड़ता है, सभी एक साथ ही दृश्य नहीं होते हैं :– यह परिभाषा सर्वत्र के लिए है। वे केतु राजाओं के लिए विरोधदायक अर्थात् अनिष्टकारक होते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

शुद्धस्फटिकसङ्काशमृणालरजतप्रभाः।
मुक्ताहारसुवर्णाभाः सशिखाः पञ्चविंशतिः॥
किरणाख्या रवेः पुत्रा दृश्यन्ते प्राग्दिशि स्थिताः।
तथा चापरभागस्था नृपतेर्भयदाश्च ते॥इति॥१०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुद्ध स्फटिकमणि के समान उज्ज्वल, मृणाल (कमलतन्तु) तथा चाँदी के समान वर्णवाले, मोती के हार और सोना के सदृश आभावाले किरण-नामक, शिखायुक्त रविपुत्र केतु २५ प्रकार के होते हैं। ये पूरब दिशा तथा पश्चिम दिशा में स्थित रहते हैं, जो कि राजाओं के लिए भयदायक होते हैं॥१०॥

अथाग्निपुत्रांस्तावत आह :—

शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः।
आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः॥११॥

अब अग्निपुत्रों के फल कहते हैं :—

अग्निपुत्र के केतु भी २५ होते हैं, जो अग्निकोण में देखे जाते हैं। शुकवर्ण (सुग्गा पक्षी), अग्नि, बन्धुजीवक पुष्प, लाख तथा रक्त के सदृश लालवर्ण होते है, जो अग्निदाह का प्रकोप करते हैं॥११॥

शुकः पक्षिविशेषो नीलपीतवर्णः। दहनोऽग्निः। बन्धुजीवकः पुष्पविशेषोऽतिलोहितः। लाक्षा वृक्षनिर्यासः। क्षतजं रक्तम्। तदुपमास्ततुल्यवर्णाः। ते च तावन्तः पञ्चविंशतिः। हुताशसुता अग्निपुत्राः। आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। ते च दृष्टाः शिखिभयदा अग्निभयप्रदा इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

नीले-पीले वर्ण का पक्षी शुक (तोता), अग्नि, बन्धुजीवक नामक अत्यन्त रक्तवर्ण का पुष्पविशेष, लाक्षा (लाख) एक वृक्ष का रस, क्षतज अर्थात् रक्त; इनके समान वर्णवाले पूर्वोक्त संख्या पचीस अग्निपुत्र केतु, अग्निकोण अर्थात् दक्षिणपूर्व के कोण में दिखायी पड़ते हैं। ये दिखायी देने पर अग्नि-दाह का भय प्रदान करते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

नानावर्णाग्निसङ्काया दीप्तिमन्तो विचूलिनः।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशात् सर्वे ज्यौतिषनाशनाः॥
तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः।
आग्नेय्यां दिशि दृश्यन्ते [1]पञ्चविंशत्प्रकीर्तिताः॥इति॥११॥

अनेक वर्णोंवाले अग्नि के समान प्रकाशमान्, विशिष्ट शिखाओंवाले, आकाश से सभी प्रकाशपिण्डों का नाश करनेवाले अग्नि जैसा दाह उत्पन्न करते हैं। ये अग्निपुत्र ग्रह (केतु) लोक में अग्निभय के सूचक हैं। अग्निकोण की दिशा में दिखायी पड़नेवाले इन केतुओं की संख्या २५ है॥११॥

अथ मृत्युसुतांस्तावत एवाऽऽह :—

वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः।
दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकप्रवेदिनस्ते च॥१२॥

---

१. 'पञ्चविंशतिः' इत्यस्य स्थाने 'पञ्चविंशत्' इत्यार्षप्रयोगः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृत्यु-पुत्रों के फल :–

मृत्यु के पुत्रों अर्थात् केतुओं की २५ संख्या है। ये वक्र शिखाओंवाले, रूक्ष और काले रंग के दक्षिण-दिशा में देखे जाते हैं। ये प्रकट होकर लोक में मृत्यु की सूचना देते हैं ॥१२॥

वक्रशिखा अस्पष्टचूडास्ते च रूक्षा अस्निग्धाः। कृष्णाश्चासितास्तेऽपि तावन्तः पञ्चविंशतिरेव। ते च मृत्युसुता मृत्योः पुत्राः। याम्यायां दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते विलोक्यन्ते। ते च जनमरकावेदिनः। जनानां मरकमावेदयन्ति कथयन्ति। तथा च गर्गः–

वक्रशिखा अर्थात् अस्पष्ट शिखावाले, रूक्ष अर्थात् चिकनाहट रहित रूखे और काले रंग के मृत्यु-पुत्र २५ की संख्या में ही होते हैं। ये दक्षिण दिशा में देखे जाते हैं। ये लोगों की मृत्यु का सन्देश देते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

कृष्णा रूक्षा वक्रशिखा दृश्यन्ते याम्यदिक्स्थिताः।
पञ्चविंशा मृत्युसुताः प्रजाक्षयकराः स्मृताः॥इति॥१२॥

काले, रूखे, टेढ़ी शिखावाले, दक्षिण दिशा में स्थित मृत्युपुत्र नामक केतु २५ होते हैं, जो कि प्रजा-विनाशक कहे गये हैं ॥१२॥

अथ भूपुत्रा द्वाविंशतिस्तानाह :–

दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः।
क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः॥१३॥

अब बाइस भूमि-पुत्रों के फल कहते हैं :–

भूमिपुत्र केतु बाइस की संख्या में होते हैं, जो ईशानकोण में देखे जाते हैं। ये दर्पण के समान समतल-वृत्ताकार, विशेष शिखाओंवाले, प्रकाशकिरणों सहित होते हैं। जल तथा तेल के समान रंगवाले क्षुधा (दुर्भिक्ष) का भय देते हैं ॥१३॥

दर्पणवद् वृत्तः परिवर्तुल आकारो येषां ते दर्पणवृत्ताकाराः। विशिखा विचूलाः। किरणान्विता रश्मिसंयुक्ताः। धरातनया भूमिपुत्रास्ते च द्वाविंशतिरैशान्यां पूर्वोत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। अम्बुतैलनिभाः। अम्बु जलम्। तैलं प्रसिद्धम्। तन्निभाः। जलस्य तैलस्य वा सदृश्यः कान्तयः। एते दृष्टा क्षुद्भयदाः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददति। तथा च गर्गः –

समस्तवृत्ता विशिखा रश्मिभिः परिवारिताः।
अम्बुतैलप्रतीकाशा[1] द्वाविंशद् भूसूताः स्मृताः॥
ऐशान्यां दिशि दृश्यन्ते दुर्भिक्षभयदास्तु ते॥इति॥१३॥

---

१. 'द्वाविंशतिः' इत्यस्य स्थाने 'द्वाविंशत्' इत्यार्षप्रयोगः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारों तरफ से वृत्ताकार को दर्पण-वृत्ताकार कहा जाता है। विशिष्ट चूलवाले अर्थात् विशिखा, रश्मिसंयुक्त भूमिपुत्र २२ हैं, जो ईशान अर्थात् पूर्वोत्तर दिशा में देखे जाते हैं। जल और तैल के समान कान्तिवाले, ये केतु दृष्ट हों, तो दुर्भिक्ष देते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

सम्पूर्ण रूप से वृत्ताकार, विशेष शिखावाले, किरणों से युक्त, जल और तेल के समान वर्णवाले २२ भूमिपुत्र कहे गये हैं। वे ईशानदिशा में देखे जाते हैं, जो कि दुर्भिक्ष का भय देते हैं ॥१३॥

अथ चन्द्रसुतास्त्रयस्तानाह :–

शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः।
उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः॥१४॥

अब चन्द्रमा के तीन पुत्रों को कहते हैं :–

चन्द्र-किरण, चाँदी, हिम (बर्फ), कुमुद और कुन्द पुष्प; इनके समान वर्णवाले चन्द्रमा के तीन पुत्र उत्तरदिशा में देखे जाते हैं। ये केतु सुभिक्ष (खुशहाली) लानेवाले होते हैं ॥१४॥

शशिकिरणाश्चन्द्ररश्मयः। रजतं रूप्यम्। हिमं तुषारम्। कुमुदकुन्दकुसुमे पुष्पविशेषे अतिशुक्लवर्णे। तदुपमास्तत्तुल्यवर्णास्त्रयः शिखिनः केतवश्चन्द्रस्य सुताः पुत्राः। उत्तरतः सौम्यायां दिशि दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। ते च सुभिक्षावहाः सुभिक्षमावहन्ति दुर्भिक्षमित्यर्थः। तथा च गर्गः–

चन्द्ररश्मिसवर्णाभा हिमकुन्देन्दुसप्रभाः।
त्रयस्ते शशिनः पुत्राः सौम्याशास्थाः शुभावहाः॥इति॥१४॥

शशिकिरण अर्थात् चन्द्रमा की रश्मियाँ, रजत अर्थात् रूपा (चाँदी), हिम अर्थात् तुषार (ओस की बूँदें), कुमुद और कुन्द के पुष्प विशेष जो अत्यधिक श्वेतवर्ण के होते हैं; इनके समानवर्ण वाले तीन चन्द्रपुत्र केतु उत्तर दिशा में देखे जाते हैं। ये सुभिक्ष (सुकाल) करते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

चन्द्रमा की किरणों के समान, हिम, कुन्द और कुन्दपुष्प के समान (श्वेत) वर्णवाले चन्द्रपुत्र तीन केतु उत्तर दिशा में स्थित होते हैं, जो कि शुभ फल करते हैं ॥१४॥

अथ ब्रह्मदण्डाख्यस्य लक्षणमाह :–

ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः।
अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः॥१५॥

अब ब्रह्मदण्ड नामक केतु का फल कहते हैं :–

ब्रह्मा का पुत्र एक ही तीन शिखाओंवाला तथा तीनों वर्णों का, अनिश्चित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिशावाला ब्रह्मदण्ड नाम से जानना चाहिए। यह प्रलयकारी (सर्वविनाशी) होता है ॥१५॥

ब्रह्मसुतो ब्रह्मणः पुत्र एक एव। स च त्रिशिखस्त्रिचूडः। वर्णैः सितादिभिस्त्रिभिरुपलक्षितास्ताश्च शिखाः। स तु ब्रह्मदण्डाख्यो ब्रह्मदण्डसंज्ञो विज्ञेयो विज्ञातव्यः। अनियतदिक्सम्प्रभवः। अनियतायामनिश्चितायां दिशि सम्प्रभव उत्पत्तिर्यस्य। सर्वासु दिक्षु दृश्यत इत्यर्थः। स तु युगान्तकरो युगस्यान्तं करोति। सर्वत्र क्षयकर इत्यर्थः तथा च गर्गः—

ब्रह्मसुत अर्थात् ब्रह्म का पुत्र एक ही है और वह तीन शिखाओंवाला, श्वेतादि तीन वर्णों से संयुक्त शिखावाला है; जिसको ब्रह्मदण्ड संज्ञा से जानना चाहिए। इसकी उत्पत्ति की दिशा अनिश्चित है। अर्थात् किसी भी दिशा में यह प्रकट हो सकता है, सभी दिशाओं में दिखायी पड़ता है। वह युग का अन्त करनेवाला अर्थात् सभी जगह विनाश करनेवाला होता है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

एको ब्रह्मसुतः क्रूरस्त्रिवर्णस्त्रिशिखान्वितः।
सर्वास्वाशासु दृश्यः स्याद् ब्रह्मदण्डः क्षयावहः॥ इति॥ १५॥

ब्रह्मपुत्र केतु एक ही है, जो तीन रंगों वाला, तीन शिखाओं से युक्त सभी दिशाओं में दिखायी पड़ता है। इसका ब्रह्मदण्ड नाम है, जो कि लोक का क्षयकारक होता है ॥१५॥

एकाधिकं शतं कथितमन्यानि नवशतान्येकोनानि कथयामीत्याह :—

शतमभिहितमेकसमेतमेतदेकेन विरहितान्यस्मात्।
कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः॥ १६॥

एक सौ एक केतुओं के बाद एक कम नौ सौ के फल कहेंगे—

एक सौ एक केतुओं के फल को कहा जा चुका है। अब आगे एकाल्प नौ सौ केतुओं के स्पष्ट लक्षण कहेंगे ॥१६॥

एतदेकसमेतमेकेनाधिकं केतूनां शतमभिहितमुक्तम्। अस्मादेकाधिकाच्छतात् परत एकेन विरहितान्येकेनोनानि नव शतानि केतूनां स्पष्टैः स्फुटैर्लक्षणैश्चिह्नैः कथयिष्ये वक्ष्ये॥ १६॥

इस प्रकार (पूर्व में) एक सौ एक केतुओं को कहा गया। इसलिए अब एक सौ एक के बाद शेष एक न्यून नौ सौ अर्थात् ८९९ केतुओं के स्पष्ट लक्षण (चिह्न) कहेंगे ॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ शुक्रपुत्राश्चतुरशीतिसंख्यास्तांश्चाह :–

सौम्यैशान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः।
विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः॥१७॥

अब शुक्रपुत्रों की चौरासी संख्या है, इनके फल कहते हैं :–

उत्तर दिशा तथा ईशान कोण में उदित होने वाले शुक्र के पुत्र ८४ केतु होते हैं। वे विस्तृत तथा उजले और चिकने तारे तीव्र फल (अनिष्ट फल) देनेवाले होते हैं॥१७॥

शुक्रसुता भार्गवपुत्राश्चतुरशीत्याख्याः। चतुरशीतिसंज्ञाश्चतुरशीतिसंख्याश्च। सौम्यैशान्योरुदयं यान्ति। सौम्या उत्तरा। ऐशानी पूर्वोत्तरा। तत उदयं यान्ति गच्छन्ति। ते च विपुलसिततारका विपुला विस्तीर्णाः सिताः शुक्लास्तारका येषाम्। स्निग्धाः निर्मलदेहाः। ते तीव्रफला भवन्ति। अनिष्टफला इत्यर्थः। तथा च गर्गः–

शुक्रसुत अर्थात् भार्गव-पुत्र ८४ प्रकार के होते हैं। इनकी ८४ संख्या और ८४ नाम भी पृथक्-पृथक् होते हैं। वे सौम्य अर्थात् उत्तरदिशा और ईशान अर्थात् पूर्वोत्तर-कोण; इनमें ही उदित होते हैं। विस्तृत (बड़े), सित अर्थात् श्वेत वर्ण के, स्निग्ध अर्थात् निर्मल पिण्डवाले, तीव्रफल अर्थात् अनिष्ट फल करनेवाले होते हैं। जैसाकि गर्ग ने कहा है :–

स्थूलैकतारकाः श्वेताः स्नेहवन्तश्च सप्रभाः।
आर्चिष्मन्तः प्रसन्नाश्च तीव्रेण वपुषान्विताः॥
एते विसर्पका नाम शुक्रपुत्राः पुरोदयाः।
अशीतिश्चतुरश्चैव[1] लोकक्षयकराः स्मृताः॥इति॥१७॥

एक विस्तृत तारावाले, श्वेत, निर्मूल, प्रकाशयुक्त, किरणोंवाले, स्वच्छ, चमकते हुए आकारवाले शुक्रपुत्र 'विसर्प' नामक उदित होते हैं। चौरासी प्रकार के ये केतु लोकविनाशक कहे गये हैं॥१७॥

अथ षष्टिः शनैश्चरपुत्रास्तानाह :–

स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः।
अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः॥१८॥

अब साठ शनिपुत्रों को कहते हैं :–

निर्मल, प्रकाशसहित तथा दो शिखाओंवाले साठ प्रकार के केतु; शनि के अंगों से उत्पन्न कहे जाते हैं। इनका नाम 'कनक' है, जो कि दिखायी पड़ने पर सभी जगह अत्यधिक कष्टकारक फल देते हैं॥१८॥

---

१. 'चत्वारः' इत्यस्य स्थाने 'चतुरः' इत्यार्षप्रयोगः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्निग्धा निर्मलाः। प्रभासमेताः कान्त्यन्विता दीप्तिमन्तः। द्विशिखा द्विचूडास्ते च षष्टिसंख्याः शनैश्चराङ्गरुहाः शनैश्चरपुत्राः। एते कनकसंज्ञाः कनककेतवः। सर्वत्र सर्वासु दिक्षु दृश्याः। अतिकष्टफला अत्यशुभफलाश्च ते। तथा च गर्गः—

स्निग्ध अर्थात् निर्मल, प्रभासहित अर्थात् दीप्तवान्, दो शिखा (चोटी) वाले, साठ की संख्या में शनिपुत्र हैं। इनकी कनक संज्ञा है, अर्थात् ये कनक-केतु हैं। ये सभी दिशाओं में देखे जाते हैं तथा अत्यधिक अशुभ फल करते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

सुस्निग्धा रश्मिसंयुक्ता द्विशिखाः सप्ततारकाः।
षष्टिस्ते कनका घोराः शनैश्चरसुता ग्रहाः॥ इति॥ १८॥

स्वच्छ, किरणोंसहित, दो शिखावाले तथा सात तारों वाले ६० शनिपुत्र अर्थात् केतु कनक नामक हैं। जो पाप-फलप्रदायक ग्रह होते हैं॥१८॥

अथ गुरुसुताः पञ्चषष्टिस्तानाह :—

विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः।
षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः॥ १९॥

अब गुरु के पैंसठ पुत्रों के फल कहते है :—

श्वेतवर्ण के एक ही तारा वाले, शिखारहित विकच नामक गुरुपुत्र पैंसठ केतु हैं। ये दक्षिण दिशा में स्वच्छ-मूर्ति वाले पापफलदायक होते हैं॥१९॥

षष्टिः पञ्चभिरधिका पञ्चषष्टिः केतवो विकचा नाम विकचसंज्ञा गुरुसुता बृहस्पतिपुत्राः। ते च सितैकताराः। सितः श्वेत एकस्तारको येषाम्। शिखापरित्यक्ताश्चूडारहिताः। ते च स्निग्धा निर्मलदेहा याम्याश्रिता दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफला अनिष्टफला इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

पाँच अधिक साठ अर्थात् पैंसठ केतु विकच नामक गुरु के पुत्र हैं। वे श्वेत, एक तारावाले, शिखा-रहित, स्वच्छ रूपवाले दक्षिण-दिशा में देखे जाते हैं। ये पापफल अर्थात् अनिष्ट फल करते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

शुक्लाः स्निग्धाः प्रसन्नाश्च महारूपाः प्रभान्विताः।
एकतारा वपुष्मन्तो विशिखा रश्मिभिर्वृताः॥
एते बृहस्पतेः पुत्राः प्रायशो दक्षिणाश्रयाः।
नामतो विकचा घोराः पञ्चषष्टिर्भयावहाः॥ इति॥ १९॥

श्वेत, निर्मल, स्वच्छ, विशाल मूर्ति, प्रकाशयुक्त, एक तारावाले, शिखा-रहित, स्वरूपवान् और किरणों से संयुक्त; ये गुरुपुत्र केतु प्रायः दक्षिण दिशा में रहते हैं। ये 'विकच' नाम वाले पैंसठ केतु पापकारक और भय-कारक होते हैं॥१९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैकपञ्चाशद बुधपुत्रास्तानाह :–

नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः।
बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥२०॥

बुधं के ५१ पुत्रों को कहते हैं :–

थोड़ा-थोड़ा स्पष्ट, अतिलघु, दीर्घतासहित, श्वेत वर्ण का और किसी भी दिशा में दिखाई पड़ जाने वाले 'तस्कर' संज्ञक बुधपुत्र केतु ५१ प्रकार के होते हैं, जो पापफलकारक हैं ॥२०॥

तस्करसंज्ञास्तस्करनामान एकपञ्चाशत्केतवो बुधजाः सौम्यपुत्राः। नातिव्यक्ता नातिस्फुटाः। सूक्ष्मा अल्पदेहाः। दीर्घा आयामिनः। शुक्लाः श्वेतवर्णाः। यथेष्टदिक्प्रभवा यथेष्टायां दिशि प्रभव उत्पत्तिर्येषाम्। सर्वासु दिक्षु दृश्यन्त इत्यर्थः। ते च पापफला अनिष्टफलाः। तथा च गर्गः –

तस्कर नामक ५१ बुधपुत्र केतु न तो अधिक स्पष्ट, सूक्ष्म अर्थात् अल्प बिम्बवान्, दीर्घ अर्थात् चौड़ाई में बड़े श्वेतवर्ण के, मनोभिलषित दिशाओं में उत्पन्न होनेवाले अर्थात् सभी दिशाओं में देखे जाते हैं, वे पापफल अर्थात् अनिष्ट फल देते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

अरुन्धतिसमा रूक्षाः केचिदव्यक्ततारकाः।
सपाण्डुवर्णाः श्वेताभाः सूक्ष्मा रश्मिभिरावृताः॥
एते बुधात्मजा ज्ञेयास्तस्कराख्या भयावहाः।
एकाधिकास्ते पञ्चाशदथोत्पथचरा ग्रहाः॥इति॥२०॥

अरुन्धती नक्षत्र के समान, रूक्ष, कुछ अस्पष्ट तारों वाले, पीले और श्वेतवर्ण के, सूक्ष्म और किरणों से संयुक्त; ये बुध के पुत्र तस्कर नामक ५१ प्रकार के जाने जाते हैं। इनका सञ्चरण-पथ अनिश्चित होता है तथा ये भयदायक होते हैं ॥२०॥

अथ षष्टिर्भौमपुत्रास्तानाह :–

क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः।
नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिताः पापाः॥२१॥

अब भौम के साठ पुत्रों को कहते हैं :–

रक्तवर्ण के, अग्नि के समान और तीन तारे एवं तीन शिखाओंवाले ६० प्रकार के भौमपुत्र केतु होते हैं। वे कुङ्कुम नामक केतु हैं, जो उत्तर दिशा में रहते हैं और अनिष्ट फल करते हैं ॥२१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौङ्कुमनामानः षष्टिः केतवः कुजात्मजा अङ्गारकपुत्राः। क्षतजानलानुरूपाः। क्षतजं रक्तमनलोऽग्निस्तदनुरूपास्तत्सदृशाः। अतिलोहिता इत्यर्थः। त्रिचूलतारास्त्रिचूलास्त्रिशिखास्त्रितारका येषाम्। ते च सौम्याशासंस्थिता उत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफलाश्च तथा च गर्गः –

कौङ्कुम-संज्ञक ६० केतु भौम के पुत्र हैं। क्षतज अर्थात् रक्त और अग्नि के समान रूपवाले होते हैं। अर्थात् अत्यधिक लालवर्ण के होते हैं। ये त्रिचूल अर्थात् तीन शिखाओंवाले तथा त्रितारक अर्थात् तीन तारों वाले होते हैं। ये सौम्य-आशा अर्थात् उत्तरदिशा में दिखायी पड़ते हैं तथा पापफलदायी होते हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्ता लोहितरश्मयः।
प्रायशश्चोत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते॥
लोहिताङ्गात्मजा ज्ञेया ग्रहाः षष्टिः समासतः।
नामतः कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां संग्रामकारकाः॥ इति॥ २१॥

तीन शिखा तथा तीन तारों वाले, रक्त एवं लाल किरणोंवाले, प्रायशः उत्तरदिशा में नित्य ही रहते हैं। ये मङ्गल से उत्पन्न ६० प्रकार के केतु हैं। इनकी कौङ्कुम संज्ञा है, जिन्हें राजाओं के लिए युद्धकारक समझना चाहिए॥२१॥

अथ त्रयस्त्रिंशद्राहुपुत्रास्तानाह :–

त्रिंशत्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम्॥ २२॥

अब राहु के ३३ पुत्रों को कहते हैं :–

तामसकीलक नामक ३३ राहुपुत्र केतु प्रख्यात हैं। वे रविमण्डल तथा चन्द्रमण्डल में दिखाई पड़ते हैं, जिनका फल आदित्यचाराध्याय में कहा गया है॥२२॥

त्रिंशत्यधिकास्त्रयस्त्रिंशत्केतवो राहोः सुताः स्वर्भानुपुत्राः। ते च नामतस्तामसकीलका इति ख्याताः प्रसिद्धाः। ते च रविशशिगा अर्कचन्द्रमण्डलस्था दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। तेषां च फलं शुभाशुभमर्कचारोक्तं सूर्यचारे कथितम्– "[1]तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवः" इति।

तथा च गर्गः –

कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः सङ्कुलाः कृष्णरश्मयः।
राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत् कीलकाश्चातिदारुणाः॥
रविमण्डलगाश्चैते दृश्यन्ते चन्द्रगास्तथा॥

---

१. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य ३ अध्यायस्य ७ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीस अधिक तीन अर्थात् तैंतीस राहुपुत्र केतु होते हैं। वे तामसकीलक नाम से प्रसिद्ध हैं। वे रवि तथा चन्द्रमण्डलों में दृष्ट होते हैं। उनका शुभाशुभ फल रविचार (आदित्यचार) में कहा गया है। जैसाकि इस ग्रन्थ के अध्याय ३, श्लोक ७, "तामसकीलक संज्ञा" आदि।

जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :-

कृष्णावर्ण के, चारों ओर से काले और काली किरणोंवाले कीलक नामक ३३ राहुपुत्र केतु अति भयदायक हैं, जो कि रविमण्डल तथा चन्द्रमण्डल में गये हुए देखे जाते हैं।

तथा च पराशरः—

अपर्वण्येव दृश्यन्ते ह्यङ्गिरःकाककीलकाः।
रवेरेवाङ्गिरा मध्ये ह्युभयोः काककीलकौ॥
अङ्गिराः सरथो धन्वी दृश्यते पुरुषाकृतिः।
काकः कालाकृतिर्घोरस्त्रिकोणो वापि लक्ष्यते॥
मण्डलं कीलके मध्ये मण्डलस्यासितो ग्रहः।
महानृपविरोधाय यस्यर्क्षे तस्य मृत्यवे॥इति॥२२॥

आचार्य पराशर ने इस प्रकार कहा है :-

पर्वकाल (ग्रहण समय) के बिना ही अङ्गिरा, काक और कीलक नामक केतु दिखाई पड़ते हैं। सूर्यबिम्ब के मध्यभाग में अङ्गिरा तथा किनारे पर काक और कीलक होते हैं। अङ्गिरा रथ तथा धनुषसहित पुरुष के आकार का, काककेतु विकराल आकृति वाला भयंकर अथवा त्रिभुजाकार का दृश्य होता है। कीलक के मध्य में मण्डलाकार (वृत्त) काला ग्रह होता है, जो राजाओं के लिए विरोधकारक होता है। वह जिस नक्षत्र में दृश्य होता है, उस नक्षत्रवाले व्यक्ति के लिये मृत्युदायक होता है॥२२॥

अथ विंशत्याधिकं शतमग्निपुत्रास्तानाह :—

विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम्।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम्॥२३॥

अब एक सौ बीस अग्निपुत्रों को कहते हैं :-

विश्वरूप नामक १२० केतु अग्नि के पुत्र होते हैं। वे अग्नि-ज्वालाओं की माला से व्याप्त शरीरवाले हैं, जो प्रचण्ड अग्निदाह से भय उत्पन्न करते हैं॥२३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यदपरं शतं विंशत्यधिकं केतूनामग्नेरग्निपुत्राणां विश्वरूपसंज्ञानां विश्वरूपनाम्नाम्। कीदृशानाम् ? ज्वालामालाकुलतनूनां ज्वालामालाभिराकुला व्याप्तास्तनवो मूर्तयो येषाम्। तथा तीव्रानलभयदानां तीव्रं घोरमनलभयमग्निभीतिं ये ददति। तथा च गर्गः–

[1]नानावर्णा हुताशाभा दीप्तिमन्तो विचूलिनः।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशे सर्वे ज्योतिर्विनाशनाः॥
तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः।
विंशं ग्रहशतं घोरं विश्वरूपेति नामतः॥इति॥२३॥

अन्य केतु सौ अधिक बीस अर्थात् एक सौ बीस विश्वरूप नाम वाले होते हैं। किस प्रकार के ? ज्वाला की मालाओं से व्याप्त मूर्तिवाले तथा घोर अग्निभय देनेवाले हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

अनेक वर्णों के, अग्नि के समान, प्रकाशवान्, विशिष्ट शिखावाले; ये सभी प्रकाशों को नष्ट करनेवाले केतु आकाश में अग्नि के सदृश स्थिति उत्पन्न करते हैं। उन सभी को अग्निपुत्र ग्रह (केतु) जानना चाहिए, जो लोक में अग्निदाह का भय सूचित करते हैं। एक सौ बीस संख्या में क्रूर ग्रह विश्वरूप नाम से प्रसिद्ध हैं॥२३॥

अथ सप्तसप्ततिर्वायुपुत्रास्तानाह :–

श्यामारुणा विताराश्चामररूपा विकीर्णदीधितयः।
अरुणाख्या वायोः सप्तसप्ततिः पापदाः परुषाः॥२४॥

अब सतहत्तर वायुपुत्रों को कहते हैं :–

कृष्ण-रक्त मिश्रित वर्ण के, तारा-रहित, चाँवर के सामन फैली हुई किरणों वाले, अरुण-संज्ञक ७७ केतु वायुपुत्र हैं, जो कर्कश तथा पापपल देते हैं॥२४॥

अरुणाख्या अरुणसंज्ञाः सप्तसप्ततिः केतवो वायोः सुता अनिलपुत्राः। श्यामारुणाः श्यामलोहितवर्णाः। विताराास्तारकवर्जिताः। चामररूपा बालव्यजनाकृतयः। विकीर्णदीधितयो व्याक्षिप्तरश्मयः। परुषा रूक्षाः। ते च पापदा दुष्टफलदाः। अत्र येषां दिङ्नियमो नास्ति तेऽनियतदर्शनाः सर्वास्वपि दिक्षु दृश्यन्ते। तथा च गर्गः –

अतारूपप्रतिमा धूमरक्तसवर्णिनः।
वातरूपा इवाभान्ति शुष्कविस्तीर्णरश्मयः॥
सप्ततिः सप्त चैवान्ये वायुपुत्रान् प्रचक्षते।
लोकविध्वंसना रूक्षा नामतस्त्वरुणा ग्रहाः॥इति॥२४॥

---

१. अस्यैवाध्यायस्य ११ श्लोकटीकायां यौ गर्गश्लोकौ तदनुकल्पावेवैतौ श्लोकौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुण संज्ञक ७७ केतु वायुपुत्र हैं। श्याम लोहित (काला लाल मिला हुआ) वर्ण के, तारों से रहित, चामर अर्थात् चाँवर की आकृतिवाले, फैली हुई किरणोंवाले, कठोर; वे केतु अनिष्टफल देनेवाले होते हैं। इनके दृश्य होने की निश्चित दिशा नहीं है। ये सभी दिशाओं में देखे जाते हैं। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

बिना तारे के रूपवान, धूँयें तथा लाल वर्णवाले, वायु के समान ही रूप-वाले, सूखी तथा लम्बी किरणोंवाले ७७ की संख्या में वायु के पुत्र केतु कहे जाते हैं। ये लोकविध्वंसक तथा कठोर हैं, जो कि अरुण संज्ञक ग्रह होते हैं॥२४॥

अथाष्टौ प्रजापतिसुता द्वे च शते चतुरधिके ब्रह्मणः पुत्रास्तानाह :–

तारापुञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ।
द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्तानाः॥२५॥

अब आठ प्रजापति के तथा दौ सौ चार ब्रह्मपुत्रों के नाम कहते है :–

प्रजापति के गणक नामक आठ पुत्र तारासमूह के समान होते हैं। ब्रह्मसन्तान २०४ प्रकार के चतुष्कोण आकृतिवाले चतुरस्र-संज्ञक होते हैं॥२५॥

अष्टौ केतवो गणका नाम प्रजापतेः सुताः पुत्राः। ते च तारापुञ्जनिकाशास्ताराणां नक्षत्राणां पुञ्जाः समूहास्तदाकाराः। ते च पापफला अशुभफलदायिनः। तथा द्वे च शते चतुरधिके केतूनां च ते चतुरस्राश्चतुरस्रसंज्ञाश्चतुरस्राकारा आकृतयश्च। ते च ब्रह्मसन्ताना ब्रह्मणः पुत्राः पापफला एव ज्ञेयाः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः –

आठ केतु गणक नामवाले प्रजापति के पुत्र है। वे नक्षत्रों के समूह की भाँति की आकृतिवाले हैं। वे अशुभफल देने वाले होते हैं। दो सौ से अधिक चार, अर्थात् दो सौ चार केतु हैं, जो चौकोर अर्थात् चतुरस्र नामक होते हैं। वे ब्रह्मा की सन्तान अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र हैं, जो पापफलदायक ही होते हैं। वे अनिश्चित दिशाओं में उत्पन्न होनेवाले हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

तारापुञ्जप्रतीकाशास्तारामण्डलसंस्थिताः ।
प्राजापत्या ग्रहास्त्वष्टौ गणका भयवेदिनः॥
त्र्यस्रा वा चतुरस्रा वा सशिखाः श्वेतरश्मयः।
द्वे शते [1]चतुरश्चैव ब्रह्मजा भयदाश्च ते॥इति॥२५॥

तारा-गुच्छ के समान तारामण्डलों में स्थित प्रजापति के आठ पुत्र हैं, जिनकी गणक संज्ञा है और वे भय को संसूचित करते हैं। त्रिकोण अथवा

---

१. 'चत्वारः' इत्यस्य स्थाने 'चतुरः' इत्यार्षप्रयोगः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुष्कोण शिखायुक्त, श्वेत किरणोंवाले २०४ केतु ब्रह्म के पुत्र हैं, जो भयप्रदायक होते हैं ॥२५॥

अथ द्वात्रिंशद्वरुणपुत्रानाह :–

कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंशगुल्मसंस्थानाः।
शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥ २६॥

अब वरुण के बत्तीस पुत्रों को कहते हैं :–

वरुण से उत्पन्न कङ्क नामक ३२ केतु, वंश-गुल्म (बाँस की कोठ) के समान स्थित होते हैं। चन्द्रमा के समान प्रकाशयुक्त वे केतु कहे गये हैं, जो अनिष्ट फल देते हैं ॥२६॥

द्वात्रिंशत्केतवः कङ्कनामानः। ते च वरुणजा यादसाम्पतेः पुत्राः। वंशगुल्मसंस्थाना वंशगुल्मवत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। गुल्म एकमूलजो लतासमूहः। शशिवच्चन्द्रवत्प्रभया कान्त्या समेताः संयुक्ताः। ते च तीव्रफलाः कष्टफलाः। प्रोक्ताः कथिताः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः –

वंशगुल्मप्रतीकाशा महान्तः पूर्णरश्मयः।
काकतुण्डनिभैश्चापि रश्मिभिः केचिदावृताः॥
मयूखानुत्सृजन्तीव सुस्निग्धाः सौम्यदर्शनाः।
एते कष्टफलाः प्रोक्ता द्वात्रिंशद्वारुणा ग्रहाः॥ इति ॥ २६॥

कङ्क नामक ३२ केतु हैं। यादस्पति अर्थात् वरुण के वे पुत्र हैं। वंश-गुल्म के समान उनकी आकृति है। एक प्रकार के मूल से उत्पन्न लता-समूह को गुल्म कहते हैं। चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त, वे केतु कष्टदायक फल वाले कहे गये हैं। उनकी उत्पन्न होने की दिशा अनिश्चित है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

वंश-गुल्म के समान, बृहत् तथा पूर्ण रश्मियों वाले, काकतुण्ड (कौए की चोंच) के समान किरणों से घिरे हुए, किरणों का विकिरण करते हुए, स्वच्छ और सुन्दर दर्शनवाले ३२ प्रकार के केतु वरुण से उत्पन्न होते हैं, जो कष्टपूर्ण फल देने वाले कहे गये हैं ॥२६॥

अथ षण्णवतिकालपुत्रानाह :–

षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञाः कबन्धसंस्थानाः।
पुण्ड्राभयप्रदाः स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिनः॥ २७॥

अब छियानबे कालपुत्रों के फल कहते हैं :–

कालपुत्र केतु ९६ प्रकार के कबन्ध संज्ञक हैं, जो शिरविहीन पुरुष की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकृतिवाले हैं। अस्पष्ट तारों वाले वे केतु, पुण्ड्र जनपद के लिए अभयप्रदायक होते हैं ॥२७॥

कालसुताः कालपुत्राः कबन्धसंज्ञाः कबन्धनामानः। षण्णवतिः केतवः। ते च कबन्धसंस्थानाः। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषस्तद्वत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। ते च विरूपताराः। विरूपा अस्फुटास्तारका येषाम्। ते शिखिनः केतवः पुण्ड्राभयप्रदाः। पुण्ड्रा नाम जनपदास्तेषामभयप्रदाः श्रेयस्कराः। स्युर्भवेयुः। अन्यत्र पुनर्भयदाः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः –

तारापुञ्जविरूपाश्च कबन्धाकृतिसंस्थिताः।
पीतारुणसवर्णाश्च भस्मकर्पूररश्मयः॥
कालपुत्राः कबन्धाश्च नवतिः षट् च ते स्मृताः।
लोके मृत्युकरा घोराः पुण्ड्राणामभयप्रदाः॥ इति॥२७॥

कालपुत्र कबन्ध नामक ९६ केतु हैं। कबन्ध अर्थात् शिर विच्छिन्न पुरुष के समान इनकी आकृति होती है। वे विरूप अर्थात् अस्पष्ट तारों वाले हैं। वे केतु पुण्ड्र नामक जनपद के लिए अभय अर्थात् कल्याणदायक, श्रेयस्कर होते हैं। अन्य स्थानों के लिए भयदायक हैं। वे अनिश्चित दिशाओं में उत्पन्न होते हैं। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

अस्पष्ट तारा-समूहवाले, कबन्ध की आकृतिवाले, पीले और लालवर्ण से मिश्रित, भस्म तथा कपूर के समान श्वेत-किरणोंवाले, कबन्ध संज्ञक कालपुत्र ९६ प्रकार के होते हैं। लोक में मृत्युकारक, क्रूर तथा च पुण्ड्र जनपदों के लिए अभय (कल्याण) प्रदायक होते हैं ॥२७॥

अथ नव विदिक्पुत्रान् सर्वेषां च संख्यानमन्येषां विशेषं च वक्ष्यामीत्याह : –

शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः।
एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये॥२८॥

अब विदिशाओं के सभी नौ पुत्रों की संख्याओं तथा अन्य विशेषताओं को कहते हैं :–

उजले, बृहत् एक तारावाले विदिशाओं के पुत्र ९ केतु हैं। इस प्रकार एक हजार केतुओं का वर्णन किया गया, अब इनमें से कुछ विशेष केतुओं का फल आगे कहा जायेगा ॥२८॥

विदिशां दिगन्तरालानां नव समुत्पन्ना विदिक्पुत्रा इत्यर्थः। किंभूताः शुक्लविपुलैकताराः। शुक्लः श्वेतवर्णो विपुलो विस्तीर्ण एकस्तारको येषाम्। ते च विदिक्ष्वेव दृश्यन्ते। दृष्टाश्च पापफलाः। तथा च गर्गः–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विदिशा अर्थात् दिशाओं के कोण में विदिशाओं के नौ पुत्र (केतु) हैं। ये किस प्रकार के हैं ? श्वेत वर्ण वाले, विस्तृत एक तारा वाले। वे विदिशाओं में ही देखे जाते हैं। दृश्य होकर पापफलदायक हैं। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

शुक्लैकतारा विपुला विदिक्पुत्रा नव ग्रहाः।
विदिक्षु संस्थितास्ते च दृश्यन्ते भयदायकाः॥

उजले, एक तारा वाले, विस्तृत विदिशा के ९ पुत्र केतुग्रह हैं। विदिशाओं में ही दिखायी पड़नेवाले वे केतु भय-प्रदायक हैं।

एवं केतुसहस्रमिति। एवं केतूनां सहस्रं कथितमुक्तम्। अतोऽनन्तरमेतेषामेव केतूनां विशेषं विशेषलक्षणं वक्ष्ये कथयिष्ये॥२८॥

इस प्रकार एक सहस्र केतुओं को कहा गया। तत्पश्चात् इन केतुओं में ही जो विशिष्ट हैं, उनका लक्षण कहा जायेगा॥२८॥

एषां मध्यात् केचिद् दृश्यन्ते न सर्व एव। तत्र ये दृश्यन्ते तेषां लक्षणं वक्तुकामस्तत्रादावेव वसाकेतुलक्षणमाह :–

इन केतुओं में सभी नहीं दिखायी पड़ते, अपितु कुछ ही दिखायी पड़ते हैं। उनमें जो दिखायी पड़ते हैं, उनके लक्षणों को कहने के क्रम में सर्वप्रथम वसाकेतु का लक्षण कहते हैं :–

उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः।
सद्यः करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते॥२९॥

वसाकेतु उत्तरदिशा में लम्बा, बड़े आकार का, स्वच्छ रूपवाला, पश्चिम दिशा में उदित होने वाला है। यह तत्काल ही मरणकारक और उत्तम सुभिक्ष करनेवाला होता है॥२९॥

उदगायत उत्तरस्यां दिशि आयतो दीर्घः। महानतिस्थूलः। स्निग्धमूर्तिर्निर्मलतनुः। अपरोदयी पश्चिमायां दिशि उदयं याति। स च नाम्ना वसाकेतुर्दृष्टः सद्य एव तस्मिन्नेवाहनि मरकं करोति। उत्तममपि प्रधानं सुभिक्षं च कुरुते॥२९॥

उदगायत अर्थात् उत्तर दिशा में दीर्घाकार, महान् अर्थात् स्थूल (मोटा), निर्मल बिम्बवाला, पश्चिम दिशा में उदय होने वाला; इसका नाम वसा-केतु है। दिखायी पड़ने पर शीघ्र ही, उसी दिन मरण करता है। मुख्यरूप से सुभिक्ष (अच्छा उत्पादन) भी करता है॥२९॥

अथास्थिकेतोः शस्त्राख्यस्य च लक्षणमाह :–

तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रूक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः।
स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय॥३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब अस्थि-केतु और शस्त्राख्य के लक्षण –

पूर्वोक्त वसा-केतु के लक्षणोंवाला ही अस्थि केतु होता भी है। वह रूक्ष तथा क्षुधाभय, दुर्भिक्षकारक कहा गया है। शस्त्र संज्ञक केतु भी इन्हीं लक्षणोंवाला, पूर्वदिशा में उदित होता है, और शस्त्र-संग्राम से लोक का विनाश करता है ॥३०॥

तदित्यनेन वसाकेतोः परामर्शः। अस्थिकेतुर्नाम केतुः स तल्लक्षणः। तल्लक्षणैर्वसाकेतोः सदृशैर्युक्तः – "उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी" इति। किन्त्वयं विशेषः – स तु रूक्षो भवति स्नेहरहितः। दृष्टश्च क्षुद्भयावहो दुर्भिक्षभयप्रदः प्रोक्तः कथितः। स्निग्धस्तादृगिति। तादृग् वसाकेतुसदृशः स्निग्धो निर्मलदेहः प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि दृश्यते। स तु शस्त्राख्यः शस्त्रकेतुसंज्ञो दृष्टो डमरमरकाय भवति। डमरं शस्त्रकलहं मरकं च करोति। तथा च पराशरः –

'तद्' शब्द से वसाकेतु अभीष्ट है। अस्थिकेतु उस लक्षण से वसाकेतु के समान "उत्तरदिशा में आयत, महान्, स्निग्धमूर्ति, पश्चिम में उदित होनेवाला होता है। परन्तु इसकी यह विशेषता होती है; कि यह रूक्ष अर्थात् स्नेहरहित होता है। यह केतु दृष्ट होने पर दुर्भिक्ष का भय देनेवाला कहा गया है। उसी प्रकार वसाकेतु के समान स्निग्ध अर्थात् स्वच्छ बिम्बवाला पूर्वदिशा में दिखायी पड़ता है, वह शस्त्रसंज्ञक केतु प्रकट होने पर डमर-मरक अर्थात् शस्त्रकलह से लोक में मृत्यु करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

एते षड्विंशतिरुदयैः फलमावेदयन्ति। तान् नामतो रूपतः फलतः कालतोऽभिधास्यामः। तत्र भार्गवास्त्रय उदयं यान्ति। एकैकशो वसास्थिशस्त्रकेतवः। तत्र वसाकेतुः स्निग्धो महानुदगायतशिखस्त्रिंशद्वर्षशतं प्रोष्य संप्लवे युगे पश्चिमोदितः सद्यो मरकफलः सौभिक्षकरस्तु। रूक्षोऽस्थिकेतुरसौ भिक्षुकतुल्यप्रवासकालफलः। पूर्वेण स्निग्ध एव तु शस्त्रकेतुः। राजविरोधमरकफलः समो रूक्षः॥३०॥

ये २६ उदयोपरान्त फल की सूचना देते हैं। इनको रूप से, फल से और काल से वर्णित करेंगे। वहाँ पर तीन भार्गवकेतु उदित होते हैं। प्रत्येक वसा, अस्थि और शस्त्र नाम के केतु हैं। वहाँ पर वसाकेतु स्निग्ध महान्, उत्तर में आयत शिखाओं वाला, १३० वर्षों तक रहकर संप्लवयुग में पश्चिमदिशा में उदित होकर सद्यः मृत्युफल देनेवाला और सुभिक्षकारक होता है। अस्थिकेतु रूक्ष होता है तथा भिक्षुक के समान प्रवासकाल में फल देता है। शस्त्रकेतु पूर्व के ही समान स्निग्ध होता है, जो राजाओं में विरोध और मृत्युफलदायक, समतल तथा रूक्ष होता है ॥३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ कपालकेतोर्लक्षणमाह :–

दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः।
प्राङ्नभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः॥ ३१॥

कपालकेतु का लक्षण कहते हैं :–

कपालकेतु धूम्रवर्णी शिखाओंसहित पूर्वदिशा में अमावस्या तिथि को दृश्य होता है। यह आकाश के आधे भाग में विचरण करता है, और दुर्भिक्ष, मृत्यु, अनावृष्टि तथा रोगकारक होता है॥३१॥

कपालकेतुर्नाम केतुः स त्वमावास्यायां कृष्णपञ्चदश्यां प्राक् पूर्वस्यां दिशि दृश्य उदयं याति। किंभूतः ? सधूम्ररश्मिशिखः। सधूम्रा रश्मिशिखा यस्य। किरणकान्तिर्धूम्रवर्णेत्यर्थः। नभसोऽर्द्धविचारी। नभस आकाशस्यार्द्धं यावद्विचरति गच्छति। स च क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः। क्षुद् दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयम्। अवृष्टिं रोगांश्च करोति। तथा च पराशरः –

कपालकेतु नामक केतु अमावस्या में अर्थात् कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि में पूर्वदिशा में उदय लेता है। कैसा होकर ? धूम्रसहित रश्मिशिखा अर्थात् उसके किरणों की कान्ति धूम्रवर्ण की रहती है। आकाश के अर्धांश पर्यन्त गमन करता है। वह क्षुद् अर्थात् दुर्भिक्ष, मरक अर्थात् जनता का विनाश, अवृष्टि और रोगों को करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

अथादित्यजानां कपालकेतुरुदयतेऽमावस्यायां पूर्वस्यां दिशि सधूम्रार्चिशिखो नभसोऽर्द्धचरो दृश्यते। पञ्चविंशवर्षशतं प्रोष्य त्रींश्च पक्षानमृतजस्य कुमुदकेतोश्चारान्ते स दृष्ट एव दुर्भिक्षानावृष्टिव्याधिभयमरणोपद्रवान् सृजति। जगति यावतो दिवसान् दृश्यते तावन्मासान् मासैर्वत्सरान् पञ्चप्रस्थं च शारदधान्यार्घं कृत्वा प्रजानामपयुङ्क्ते॥ ३१॥

सूर्यपूत्रों में कपालकेतु उदित होकर अमावस्या के दिन पूर्वदिशा में धूम्र-सहित किरणों की शिखाओंवाला आकाश के आधे भाग में विचरण करता हुआ देखा जाता है। १२५ वर्ष और ३ पक्ष व्यतीत कर अमृतपुत्र कुमुदकेतु के चार के पश्चात् वह दृष्ट होकर दुर्भिक्ष, अवृष्टि, रोगभय, मरणादि उपद्रवों को उत्पन्न करता है। संसार में जितने दिनों तक दिखायी पड़ता है, उतने मास तथा जितने मास दृश्य रहता है उतने वर्ष पाँच-प्रस्थ शरद्ऋतु के धान्यों को महँगा कर लोगों को कष्ट देता है॥३१॥

तथा रौद्रकेतुमाह –

प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः।
नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः॥ ३२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब रौद्र-केतु को कहते हैं :–

पूर्वदिशा में तथा वैश्वानरमार्ग (दहनवीथी) में त्रिशूल के अग्रभाग के समान, श्यामल, रूक्ष और ताम्रसदृश किरणोंवाला, आकाश के तीन भागों में सञ्चरणशील रौद्र नामक केतु होता है। यह कपालकेतु के समान ही फल देता है ॥३२॥

रौद्रनामा केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि वैश्वानरमार्गे दहनवीथ्यां दृश्यते। वैश्वानरसंज्ञितमार्गे पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः समीप इत्यर्थः। कीदृशः ? शूलाग्रः। शूलाकृतिरग्रं यस्य केतोः स शूलाग्रः। त्रिशिख इत्यर्थः। तस्यैव विशेषणं श्यावरूक्षताम्रार्चिः। रूक्षमस्निग्धमर्चिस्तेजः, श्यावरूक्षं ताम्रं चार्चिस्तेजो यस्य स श्यावरूक्षताम्रार्चिः। नभसस्त्रिभागगामी नभस आकाशस्य त्रिभागगमनशीलः। स च कपालतुल्यफलः कपालकेतोः समानफलः। एतदुक्तं भवति :– क्षुन्मरकावृष्टिरोगकर इति। आचार्येण शुक्रचारे वैश्वानरमार्गः प्रदर्शित एव "अषाढाद्वयं दहना"[1] इति। तथा च पराशरः–

अथ दक्षयज्ञरुद्रक्रोधोद्भवः कलिकेतुस्त्रीणि वर्षशतानि नव च मासान् प्रोष्योदयते पूर्वेण वैश्वानरमार्गे ह्यमृतजस्य मणिकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षताम्रारुणां शूलाकारसदृशीं शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागचारी स शस्त्रभयरोगदुर्भिक्षाऽनावृष्टिमरकैर्यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि त्रिभागशेषां प्रजां कृत्वार्धं च शारदधान्यमाढकमस्तं व्रजति॥

रौद्र नामक केतु पूर्वदिशा में वैश्वानर-मार्ग अर्थात् दहनवीथी में दृश्य होता है। अभिप्राय यह है कि पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा नक्षत्रों के समीप जो वैश्वानरसंज्ञक मार्ग है, उस मार्ग में वह दृश्य होता है। किस प्रकार का ? शूलाग्र अर्थात् जिस केतु का अग्रभाग शूल के समान हो। अर्थात् तीन शिखाओं वाला उसके अन्य विशेषण रूक्ष अर्थात् कर्कश किरणोंवाला, श्याव, रूक्ष, ताम्रवर्णी किरणोंसहित आकाश के तीन भागों में गमनशील। वह कपालकेतु के समान फल करता है। इसका अभिप्राय यह है कि :– दुर्भिक्ष, मृत्यु, अनावृष्टि और रोगकारक होता है। आचार्य ने शुक्रचाराध्याय में (श्लोक ३) वैश्वानरमार्ग का प्रदर्शन "दोनों उत्तराषाढा" इत्यादि के द्वारा कहा है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

दक्ष-यज्ञ में भगवान् रुद्र के क्रोध से उत्पन्न कलिकेतु ३०० वर्ष ९ मास व्यतीत कर उदित होता है। पूर्वदिशा में वैश्वानर-मार्ग में अमृतपुत्र मणिकेतु के गमन के पश्चात् श्यामल, रूक्ष, ताम्र, अरुण, त्रिशूलाकार शिखावाला आकाश के

---

१. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य शुक्रचाराध्यायायः ३ श्लोकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन भागों में सञ्चरणशील केतु युद्ध, रोग, दुर्भिक्ष, अवर्षण तथा मृत्यु के द्वारा कष्ट देता है। वह जितने मास दृश्य रहता है, उतने वर्षों तक जनता का तृतीयांश ही अवशिष्ट रखता है और शरत्कालीन धान्यों को आढक प्रमाण महँगा करता है, तत्पश्चात् अस्त होता है।

तथा च वृद्धगर्ग आह :–

ज्येष्ठामूलमनूराधा या वीथी सम्प्रकीर्तिता।
तां च वीथीं समारुह्य केतुश्चेत् क्रीडते भृशम्॥
दक्षिणाभिनतां कृत्वा शिखां घोरां भयङ्करीम्।
शूलाग्रसदृशीं तीक्ष्णां श्यावताम्रारुणप्रभाम्॥
पूर्वेण चोदितश्चैष नक्षत्राण्युपधूमयेत्।
घोरं प्रजासु सृजति फलं मासे त्रयोदशे॥
त्रिभागं नभसो गत्वा ततो गच्छत्यदर्शनम्।
यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावद्वर्षाणि तद्भयम्॥
शस्त्राग्निभयरोगैश्च दुर्भिक्षमरणैर्हताः।
पूर्यमाणाः प्रजा सर्वा विद्रवन्ति दिशो दश इति॥ इति॥३२॥

जैसाकि वृद्धगर्ग ने कहा है :–

ज्येष्ठा, मूल और अनुराधा नक्षत्र की जो वीथी कही गयी है, उस वीथी पर स्थित केतु यदि अधिगमन करता है, दक्षिणदिशा में कठोर, भयङ्कर, नत शिखावाला त्रिशूल के अग्रभाग के सदृश तीक्ष्ण शिखाओंवाला, श्यामल, ताम्रवर्णी, अरुण प्रकाशसहित, पूर्वदिशा में उदित वह केतु नक्षत्रों को धूमिल करता है। वह तेरहवें मास में लोक में दुष्ट फल प्रदान करता है। वह केतु जितने दिनों तक स्थित रहता है, उतने वर्षों तक भय देता है। शस्त्र, अग्निभय, रोग और दुर्भिक्ष से मरण कराता है। इन विपत्तियों से प्रजाजन परिपूरित होकर सभी दसों दिशाओं में चीत्कार करते हैं॥३२॥

अथ चलकेतोर्लक्षणमाह :–

अपरस्यां चलकेतुः शिखया याम्याग्र्याङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथा यथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति॥३३॥
सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः।
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति॥३४॥
हन्यात् प्रयागकूलाद्यावदवन्तीं च पुष्करारण्यम्।
उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम्॥३५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यानपि च स देशान् क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः।
दश मासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः॥३६॥

अब चलकेतु का लक्षण कहते हैं :–

चलकेतु पश्चिमदिशा में उदित होकर दक्षिणाग्र अङ्गुल प्रमाण शिखावाला जैसे-जैसे उत्तरदिशा में जाता है, उसी प्रकार दीर्घ होता जाता है। सप्तर्षियों को स्पर्श करता हुआ ध्रुव नक्षत्र तथा अभिजित नक्षत्र से प्रत्यावर्तित होकर आकाश के आधे भाग में जाकर दक्षिणदिशा में अस्त हो जाता है। प्रयागतट से अवन्ति पर्यन्त क्षेत्र को पुष्करारण्य और उत्तर में देविकापर्यन्त तथा मध्यदेश को अत्यधिक हानि पहुँचाता है। अन्य देशों को भी रोग तथा दुर्भिक्ष द्वारा किञ्चित् कष्ट देता है। इसके फलपाक का समय दस मास का होता है और कुछ लोग १८ मास का समय कहते हैं॥३३-३६॥

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि चलकेतुर्नाम दृश्यते। स च कीदृशः ? शिखया याम्याग्रया अङ्गुलोच्छ्रितयोपलक्षितः। शिखा चूडा तया याम्याग्रया याम्यायां दक्षिणस्यां दिश्यग्रं यस्याः। तथा अङ्गुलोच्छ्रितया अङ्गुलप्रमाणोच्चया। यथा यथा येन येन प्रकारेणोदगुत्तरां दिशं गच्छेद्याति तथा तथा तेन तेन प्रकारेण दैर्घ्यं दीर्घतामायाति प्राप्नोति॥

पश्चिमदिशा में चलकेतु संज्ञक केतु दिखायी पड़ता है। वह किस प्रकार का होता है ? इसे बताते हैं। शिखा अर्थात् चूडा – जिसका अग्रभाग दक्षिण दिशा में हो तथा एक अङ्गुल प्रमाण ऊँचा हो। वह जैसे-जैसे उत्तरदिशा में जाता है, वैसे-वैसे दीर्घता को प्राप्त होता जाता है।

सप्तमुनीनिति। सप्तमुनीन् वसिष्ठादीन् संस्पृश्य तथा ध्रुवं ध्रुवतारकमभिजितं च नक्षत्रं संस्पृश्य ततः प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागतः। नभस आकाशस्यार्द्धमात्रमित्वा गत्वा प्राप्य याम्येन दक्षिणस्यां दिशि अस्तमदर्शनं समुपयाति गच्छति॥

सप्तमुनियों को अर्थात् वशिष्ठादि नक्षत्रों को स्पर्श करता हुआ ध्रुवतारा तथा अभिजितनक्षत्र से होता हुआ वापस आता है। आकाश के आधे भाग पर्यन्त जाकर दक्षिणदिशा में अस्त हो जाता है।

हन्यात् प्रयागकूलादिति। स एव चलकेतुः प्रयागकूलादारभ्य यावदवन्तीं चोज्जयिनीं तथा पुष्करारण्यं नाम स्थानं तावद्धन्यान्नाशयेत्। उदगपि चोत्तरस्यां दिश्यपि च यावद्देविकां नदीं तावद्धन्यात्। मध्यदेशाख्यं मध्यदेशं भूयिष्ठमतिशयेन हन्यात्॥

वह चलकेतु प्रयागकूल से आरम्भ होकर उज्जयिनी पर्यन्त तथा पुष्करारण्य नामक स्थान तक का विनाश करता है। उत्तरदिशा में भी देविका नदी पर्यन्त लोगों का हनन करता है। मध्यदेश को अत्यधिक विनष्ट करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यानपि च स देशानिति। स चलकेतुरन्यानपरान् देशानपि रोगदुर्भिक्षैः क्वचित् क्वचिद्धन्ति नाशयति न सर्वत्र। अस्य केतोर्दश मासान् यावत्फलपाकः। दर्शनात् त्रिपक्षात् परतो यावद्दशमासांस्तावदशुभं फलं ददाति। कैश्चिदन्यैर्गर्गादिभिरष्टादश मासान् यावत् फलपाकः प्रोक्तः कथितः। तथा च पराशरः—

अथ पैतामहश्चलकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्योदितः पश्चिमेनाङ्गुलिपर्वमात्रां शिखां दक्षिणाभिगतां कृत्वा जलकेतोश्चारान्ते नभसस्त्रिभागमनुचरन् यथा यथा चोत्तरेण व्रजति तथा तथा शूलाग्राकारां शिखां दर्शयन् ब्रह्मनक्षत्रमुपसृत्य मनाग् ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन् स्पृशन् नभसोऽर्द्धमात्रं दक्षिणमनुक्रम्यास्तं व्रजति। स स्वर्गे दारुणकर्मा। स्वर्गप्राप्तत्वादेव च कृत्स्नमभिहिनस्ति लोकम्। अपि च भूमिं कम्पयित्वा दश मासान्मध्यदेशे भूयिष्ठं जनपदमनवशेषं कुरुते। तेष्वपि क्वचित् क्वचिच्छस्त्रदुर्भिक्षव्याधिमरकभयैः क्लिश्नात्यष्टादश मासानिति॥

वह चलकेतु अन्य देशों को भी रोग तथा दुर्भिक्ष से कहीं-कहीं पर विनष्ट करता है, सभी जगह नहीं। इस केतु का फलपाक-काल १० मास का है। दृश्य होने के तीन पक्ष के पश्चात् दस मासों तक अशुभ फल देता है। किसी-किसी अन्य गर्गादि आचार्यों द्वारा अट्ठारह मास तक फलपाक कहा गया है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :—

पितामह से उत्पन्न चलकेतु १५०० वर्ष बिताकर पश्चिमदिशा में उदित होता है। अङ्गुली के पोर के बराबर दक्षिणाभिमुखी शिखा धारणकर जलकेतु के सञ्चरण के पश्चात् आकाश के तीन भागों में विचरण करता हुआ जैसे-जैसे उत्तरदिशा में जाता है, वैसे-वैसे त्रिशूल के अग्रभाग के सदृश शिखाओं को प्रकट करता हुआ, ब्रह्मनक्षत्र के पास जाकर कुछ काल तक ध्रुव, ब्रह्मराशि और सप्तर्षियों का स्पर्श करता हुआ आकाश के आधे भाग में जाकर अस्त होता है। वह स्वर्ग में दुष्ट कर्म करनेवाला कहा जाता है। वह स्वर्ग (द्युलोक) में पहुँचकर समस्त लोकों का संहार करता है। उनमें भी कहीं-कहीं पर शस्त्र, दुर्भिक्ष, रोग और मृत्यु के भय से १८ मासों तक दारुण दुःख देता है।

तथा च गर्गः—

क्षुच्छस्त्रमरकव्याधिभयैः सम्पीडयेत् प्रजाः।
मासान् दश तथाष्टौ च चलकेतुः सुदारुणः॥ इति॥ ३३-३६॥

जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :—

चलकेतु दुर्भिक्ष, युद्ध, मृत्यु, राग के भय से जनता को १८ मासों तक दारुण कष्ट देता है॥३३-३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ श्वेतकेतुलक्षणमाह –

प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यश्च।
क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥ ३७॥

अब श्वेत केतु का लक्षण कहते हैं :–

श्वेतकेतु दक्षिणाग्र होकर अर्धरात्रिकाल में पूर्वदिशा में उदित होता है। "क" संज्ञक केतु पश्चिमदिशा में उदित होता है। ये दोनों समान आकृतिवाले एक ही साथ सात दिनों तक दृश्य रहते हैं ॥३७॥

स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः।
दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥ ३८॥

ये दोनों केतु निर्मल दृश्य होने पर सुभिक्ष तथा कल्याणकारी होते हैं। "क" संज्ञक जो केतु है, वह यदि सात दिनों से अधिक दिखायी पड़े, तब दस वर्षों तक सशस्त्र सङ्ग्राम से लोगों को कष्ट देता है ॥३८॥

श्वेतकेतुर्नाम केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि अर्द्धरात्रदृश्यः अर्द्धरात्रकाले दृश्यते। याम्याग्रो दक्षिणदिक्शिखः। अन्यश्च द्वितीयः क इति कनामा केतुः। अपरे पश्चिमायां दृश्यते। तौ च द्वावपि युगपत्तुल्यकालं सप्तदिनदृश्यौ सप्तदिनानि दृश्येते॥

श्वेतकेतु नामक केतु पूर्वदिशा में अर्धरात्रिकाल में दृश्य होता है। याम्याग्र अर्थात् दक्षिणदिशा में शिखावाला, और दूसरा "क" नामक केतु पश्चिमदिशा में दिखायी पड़ता है। वे दोनों एक ही काल में सात दिनों तक दृश्य रहते हैं।

तौ च द्वावपि स्निग्धावतिनिर्मलौ दृष्टौ च सुभिक्षशिवदौ सुभिक्षं शिवं श्रेयश्च ददतः। अथ यः कनामा स च यदि सप्तभ्यो दिनेभ्योऽधिकं दृश्यते तदा दशवर्षाणि शस्त्रप्रकोपकृतं संग्रामजमुपतापमुपद्रवं जनयत्युत्पादयति। तथा च पराशरः–

अथौद्दालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्य भटकेतोश्चारान्ते पूर्वस्यां दिशि दक्षिणाभिनतशिखोऽर्द्धरात्रकाले दृश्यः। तेनैव सह द्वितीयः कः प्रजापतिपुत्रः पश्चिमेन ग्रहकेतोर्यूपसंस्थायी युगपद् दृश्यते। तावुभौ सप्तरात्रदृश्यौ दशवर्षाणि प्रजाः पीड्यन्ते। कः प्रजापतिपुत्रो यद्यधिकं दृश्यते तदा दारुणतरं प्रजानां शस्त्रकोपं कुर्यात्तथैव स्नेहवर्णयुक्तौ क्षेमारोग्यसुभिक्षदौ भवतः॥ ३७-३८॥

वे दोनों अति स्वच्छ दिखाई दें, तो सुभिक्ष और कल्याण देते हैं। जो 'क' नामक केतु है, वह यदि सात दिनों से अधिक दिखायी पड़े, तब दस वर्षों तक युद्ध से होने वाले उपद्रवों को उत्पन्न करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्दालक से उत्पन्न श्वेतकेतु ११० वर्ष बिता कर भटकेतु के सञ्चरण के पश्चात् पूर्वदिशा में दक्षिण की ओर नतशिखावाला अर्धरात्रिकाल में दृश्य होता है। उसके साथ ही दूसरा "क" संज्ञक केतु, जो प्रजापतिपुत्र है, पश्चिमदिशा में ग्रहकेतु के पार्श्व में स्थित एक साथ ही दिखायी पड़ता है। वे दोनों यदि सात रात्रि तक दीख पड़ें, तो दस वर्षों तक प्रजा पीड़ित होती है। प्रजापति-पुत्र "क" केतु यदि अधिक काल तक दृश्य होता है, तो जनता को युद्ध-संघर्ष द्वारा भयङ्कर कष्ट देता है। तथा वे दोनों यदि स्वच्छवर्ण के हों तो क्षेम (कल्याण), आरोग्य और सुभिक्षदायक होते हैं ॥३७-३८॥

अथ श्वेतलक्षणमाह :–

श्वेत इति जटाकारो रूक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः।
विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते ॥ ३९॥

अब श्वेत का लक्षण कहते हैं :–

श्वेत नामक केतु जटा के समान कर्कश और साँवले वर्ण का, आकाश के तीन भागों में गमनशील, वामभाग से विनिवृत्त होता है। वह जनता का मात्र तृतीयांश भाग शेष रखता है। अर्थात् कुल जनता का दो तिहाई भाग विनष्ट कर देता है ॥३९॥

श्वेतनामा केतुर्जटाकारो जटासदृशः। रूक्षः परुषः। श्यावः कृष्णवर्णः। वियत्त्रिभागगतो बियत्याकाशे त्रिभागं यावद् गच्छति ततोऽपसव्यमप्रदक्षिणं वामभागे विनिवर्तते विनिवृत्तिं करोति। त्रिभागशेषास्तृतीयांशावशेषाः प्रजाः कुरुते। द्वौ भागौ क्षयं नयतीत्यर्थः। तथा च पराशरः–

अथ काश्यपः श्वेतकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्यैन्द्रांशः सहजस्य पद्मकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षो नभसस्त्रिभागमाक्रम्याग्रसव्यं निवृत्योर्ध्वं प्रदक्षिणजटाकारशिखः। स यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि सुभिक्षमावहति। मध्यदेश आर्यगणानामौदीच्यैश्च भूयिष्ठं बहुशस्त्रिभागशेषां प्रजामवशेषयति ॥ ३९॥

श्वेत नाग का केतु जटा के समान, कठोर और श्याव अर्थात् काले रङ्ग का होता है। आकाश के तृतीयभाग पर्यन्त जाता है, पुनः अपसव्य अर्थात् वामभाग से परावर्तित होता है। तब जनता का तीन भाग ही शेष (जीवित) रहता है अर्थात् दो भाग का विनाश करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

काश्यप – श्वेतकेतु १५०० वर्ष परिपूर्ण कर इन्द्रांश सहज पद्मकेतु के चार के पश्चात् श्यामलवर्ण का, रूक्ष, आकाश के तीन भाग में गमन करता हुआ अपसव्यमार्ग से निवृत्त होता है। उसकी शिखा जटा के सदृश ऊर्ध्वमुखी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदक्षिणाक्रम से होती है। वह जितने मासों तक दिखायी पड़ता है, उतने वर्षों तक सुभिक्ष लाता है। मध्यदेश अर्थात् आर्यगण तथा औदिच्यभाग को सर्वाधिक पीड़ित करता हुआ लोगों का तृतीय भाग ही शेष रहने देता है॥३९॥

अथ रश्मिकेतोर्लक्षणमाह –

आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः।
ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते॥४०॥

अब रश्मिकेतु का लक्षण कहते हैं :–

पूर्णतः धूमिल शिखाओंवाला, कृत्तिकानक्षत्र के समीप स्थित दिखायी पड़ने वाले केतु को रश्मिकेतु जानना चाहिए। वह श्वेत केतु के समान ही फल देता है॥४०॥

आधूम्रवर्णया शिखयोपलक्षितस्तथा कृत्तिकासंस्थः समीपे दर्शनमुदयमायाति गच्छति स रश्मिकेतुर्नाम केतुर्ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च श्वेतसमानं श्वेतकेतुसदृशं फलं धत्ते ददाति। त्रिभागशेषा प्रजाः कुरुत इत्यर्थः। तथा च पाराशरः–

अथ रश्मिकेतुर्विभावसुजः प्रोष्य वर्षशतमावर्तकेतोश्चारान्ते उदितः कृत्तिकासु धूम्रशिखः श्वेतकेतोः सदृशफलः॥४०॥

धूम्रवर्ण की शिखा से युक्त तथा कृत्तिका में स्थित अर्थात् उसके समीप उदित होनेवाला केतु रश्मिकेतु जानना चाहिए। वह श्वेतकेतु के समान ही फल देता है। प्रजा का त्रिभाग ही शेष रखता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :–

विभावसु का पुत्र रश्मिकेतु सौ वर्ष व्यतीतकर आवर्तकेतु के सञ्चरण के पश्चात् उदित होकर कृत्तिकानक्षत्र में धूएँ के समान शिखावाला, श्वेतकेतु के सदृश फल देता है॥४०॥

अथ ध्रुवकेतोर्लक्षणमाह :–

ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक्[1]।
दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः॥४१॥
सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम्।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति॥४२॥

अब ध्रुवकेतु का लक्षण कहते हैं :–

ध्रुवकेतु अनिश्चित गतिवाला, सामान्य वर्ण, स्वरूपवान् तथा सभी दिशाओ में उदित होता है। यह दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम नाम से तीन प्रकार का होता

१. विश्वे नानाकारो भवत्ययमिति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यह स्वच्छ वर्ण का अनुकूल फलप्रदायक है। यह केतु सैन्य संसाधनों में दृश्य होकर तथा राजा, गृह, वृक्ष और पर्वतों पर दृश्य होकर देशों का, तथा गृह-सामग्रियों में दृश्य होकर गृहस्थों के विनाश के लिए ही प्रकट होता है ॥४१-४२॥

ध्रुवकेतुर्नाम केतुः स त्वनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिः। अनियता अनिश्चिता गतिर्गमनम्। प्रमाणं स्थूलसूक्ष्ममध्यभावम्। वर्णः शुक्लकृष्णादिः। आकृतिराकारो यस्य स तथाभूतः। स च विष्वक् समन्ततो भवति। सर्वासु दिक्ष्वित्यर्थः। स च दिव्यान्तरिक्षभौमस्त्रिप्रकारो भवति। केचिद्विश्वे नानाकारो भवतीतीच्छन्ति। स च स्निग्धो निर्मलशरीरः। इष्टफलः शुभफलो भवति॥

ध्रुवकेतु नामक केतु अनिश्चित गतिवाला, प्रमाण अर्थात् सामान्य (औसत) मध्यम, स्थूल तथा कृश, श्वेत-कृष्ण आदि वर्णोंसहित जिसका आकार हो, उस प्रकार का वह केतु विष्वक् अर्थात् चतुर्दिक् अर्थात् सभी दिशाओं में भ्रमण करता है। वह दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम नाम से तीन प्रकार का होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह विश्व में विविध आकृतियों वाला दृश्य होता है। वह निर्मल शरीर का शुभ फलदायक होता है।

एष चैवंविधानां विनाशानां मुमूर्षूणां दर्शनमुदयं याति गच्छति। नृपाणां राज्ञां विनाशिनां सेनाङ्गेषु अश्वोपकरणेषु खलीनपर्याणादिषु दर्शनं याति। देशानां विनाशिनां गृहतरुशैलेषु। गृहेषु वेश्मसु। तरुषु वृक्षेषु। शैलेषु पर्वतेषु च दृश्यते। तथा गृहिणां गृहस्थानामुपस्करेषु भाण्डेषु दर्वीशूर्पमार्जन्यादिषु विनाशिनामेव दर्शनं याति। तथा च पराशरः—

अथानियतदिक्कालरूपवर्णप्रमाणसंस्थानो ध्रुवकेतुः पराभवमिष्यतां देशानां राज्ञां जनपदानां च वृक्षपुरपर्वतवेश्मध्वजपताकाशस्त्रवर्मायुधावरणरथनागोष्ट्रपुरुषशयनासन-भाण्डेषु वा दृश्यते। स एव च स्निग्धो विमलः प्रदक्षिणशिखो गोगजाजनागवीथीश्चोत्तरेण व्रजन् सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चावहति। दशैकविंशतिद्वि[1]षष्टिशतधा वा दर्शनमिच्छन्ति मुनयो ध्रुवकेतोः। तस्य प्रागुदयनिमित्तानि—अवनिचलनम्। अग्नेः प्रभामान्द्यम्। प्रधूपनं दिशाम्। शीतोष्णविपर्ययः। अतिरूक्षवायुसम्भवश्च ॥४१-४२॥

वह इस प्रकार के विनाशशील पदार्थों के लिए उदित होता है। राजाओं के विनाश के लिए सेना के अङ्गों में अर्थात् अश्व के उपकरणों (वल्गु, आस्तरणादि) में दिखायी पड़ता है। देशो के विनाश के लिए भवनों पर, वृक्षों पर और पर्वतों पर दिखायी पड़ता है। गृहस्थों के विनाश के लिए गृहपात्रों करछुल, सूप और झाड़ू आदि में दिखायी पड़ता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :—

१. त्रिषष्टिरिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनिश्चित दिशा, काल, रूप, वर्ण, प्रमाण और संस्थानवाला ध्रुवकेतु पराभव प्राप्त होने वाले देशों, राजाओं और जनपदों के वृक्ष, नगर, पर्वत, गृह, ध्वज, पताका, शस्त्र, यन्त्र, आयुध, आवरण, रथ, नाग, उष्ट्र, पुरुषशयनासन अथवा पात्रों में दिखायी पड़ता है। वही केतु निर्मल प्रदक्षिण शिखावाला गो, गज, अज और नागवीथियों में उत्तरभाग से गमन करता हुआ सुभिक्ष, क्षेम और आरोग्य लाता है। इस ध्रुवकेतु को विद्वान् मुनिगण १०, २१, ६२ अथवा १०० प्रकार का दृष्ट बताते हैं। उसके पूर्वदिशा में उदित होने का फल भूचाल, अग्नि, किरणों में न्यूनता, दिशाओं में धूमशिखा, शीतोष्णकाल में परिवर्तन और अत्यन्त कर्कश वायु की उत्पत्ति होती है ॥४१-४२॥

अथ कुमुदकेतोर्लक्षणमाह :–

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखो निशामेकाम्।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥४३॥

अब कुमुद केतु का लक्षण कहते हैं :–

कुमुद नामक केतु कुमुदपुष्प-सदृश श्वेतवर्णवाला पश्चिमदिशा में पूर्वाग्र शिखासहित एक ही रात में प्रकट होता है। यह दृश्य होने पर दस वर्षों तक अतिशय सुभिक्ष करता है ॥४३॥

कुमुद इति कुमुदनामा केतुः। स तु कुमुदकान्तिः कुमुदाभः। श्वेतवर्ण इत्यर्थः। स तु वारुण्यां पश्चिमायां दिशि। प्राक्शिखः पूर्वाग्रो निशां रात्रिमेकामेव दृश्यते। किलेत्यागमसूचने। स तु दृष्टो दशवर्षाण्यतुलमसमं सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः –

अथामृतजः कुमुदो मणिः। जलोद्भवः पद्मः। आवर्तः। ऊर्मिः। शङ्खः। हिमः। रक्तः। कुक्षिः। कामः। विसर्पणः। शीतश्चेति।

कुमुद नामक केतु कुमुदपुष्प के समान आभावाला अर्थात् श्वेतवर्ण का वारुण अर्थात् पश्चिमदिशा में पूर्वाग्र शिखायुक्त एक ही रात्रि में दृश्य होता है। "किल" शब्द आगम (परम्परागत शास्त्र) सूचक है। वह केतु दिखायी देने पर असंयमित सुभिक्ष करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है–

अमृत से उत्पन्न कुमुदकेतु मणि, जल से उत्पन्न पद्म, आवर्त, ऊर्मि, शङ्ख, हिम, रक्त, कुक्षि, काम, विसर्पण और शीतसंज्ञक होते हैं।

तत्र कुमुदकेतुर्वसाकेतोश्चारसमाप्तौ वारुण्यां दर्शनमुपैति। गोक्षीरविमलस्निग्धप्रभां पूर्वेणाभिनतां शिखां कृत्वैकरात्रचरः। स दृष्ट एव सुभिक्षमुत्पादयति। दशवर्षाणि प्रजानामविरोधं च। प्रतीच्यानां च मुखरोगारोचकप्रतिश्यायपाण्डुरोगजननैः प्रजा बाधत इति ॥४३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ वसाकेतु की गति की समाप्ति के पश्चात् कुमुदकेतु पश्चिमदिशा में दिखाई पड़ता है। वह गोदुग्धसदृश श्वेत और स्वच्छप्रकाशवाला पूर्वाभिमुख नम्र शिखा कर एक रात्रि के लिए गतिशील होता है। वह दृश्य होते ही सुभिक्ष को उत्पन्न करता है, और दस वर्षों तक प्रजा में शान्ति रखता है। पश्चिमदिशा वाले लोगों को मुखरोग, अतिसार, प्रतिश्याय और पाण्डुरोग की उत्पत्ति से विघ्न देता है ॥४३॥

अथ मणिकेतोर्लक्षणमाह :–

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः।
ऋज्वी शिखास्य शुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥४४॥
उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान्।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥४५॥

अब मणिकेतु का लक्षण कहते हैं :–

मणिकेतु केवल एक बार ही किसी एक रात्रि में सूक्ष्म तारावाला पश्चिमदिशा में दृश्य होता है। इसकी शिखा सीधी होती है, जो कि स्तन से निकलने वाली दूध की धारा के समान श्वेतवर्ण की होती है। यह उदित होते ही साढ़े चार मासों तक सुभिक्ष करता है। यह प्रायः क्षुद्र जन्तुओं को उत्पन्न करता है ॥४४-४५॥

मणिकेतुर्नाम केतुः स त्वपरेण पश्चिमायां दिशि सुसूक्ष्मतारोऽत्यल्पतारकः। सकृदेकवारम्। एकयामदृश्यः। यामशब्देन रात्रिचतुर्भाग उच्यते। अस्य केतोः। ऋज्वी स्पष्टा। शिखा चूडा। शुक्ला श्वेतवर्णा दृश्यते। कीदृशी ? स्तनोद्गता क्षीरधारेव। स्तनात् कुचादुद्गता निस्सृता क्षीरधारा यथा दृश्यते तद्वच्छिखा॥

मणिकेतु नामक केतु अपर अर्थात् पश्चिमदिशा में सूक्ष्म तारा अर्थात् छोटा तारा होता है। यह एक बार और एक रात्रि में दिखायी पड़ता है। 'याम' शब्द से रात्रि का चतुर्थभाग ग्रहण किया जाता है। इस केतु की स्पष्ट सरल शिखा श्वेतवर्ण की दिखायी पड़ती है। किस प्रकार की शिखा ? स्तन से निःसृत दूध की धारा जिस प्रकार दिखायी पड़ती है, उसके समान ही वह शिखा होती है।

असौ केतुरुदयन्नेवोदितमात्र एव चतुरः सार्द्धान् अर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमं सुभिक्षमुत्पादयति करोति। प्रायो बाहुल्येन क्षुद्रजन्तूनां नकुलादीनां प्रादुर्भावमुत्पत्तिं करोति। तथा च पराशरः –

मणिकेतुरपि कपालकेतोश्चारावसाने प्रतीच्यामुदयमुपयाति। सूक्ष्मोऽरुन्धतीतारकामात्रः क्षीरप्रसेकक्रान्त्या पूर्वाभिनतया स्निग्धशिखया शर्वयमिकयामदृश्यः। स उदयात् प्रभृत्यर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमसुभिक्षमुत्पादयति। क्षुद्रजन्तूनां प्रादुर्भावं करोत्यतिमात्रकालदृष्टः॥४४-४५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह केतु उदित मात्र ही सार्ध चार मास अर्थात् साढ़े चार मास तक सुभिक्ष उत्पन्न करता है। प्रायशः नेवला आदि क्षुद्र जन्तुओं को उत्पन्न करता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :-

मणिकेतु भी कपालकेतु के चार (गमन) की समाप्ति पर पश्चिमदिशा में उदय लेता है। सूक्ष्म अरुन्धती तारा मात्र स्रवित दुग्ध के सदृश वर्णवान् पूर्वाभिनत स्वच्छ शिखा सहित रात्रि के एक याम (चतुर्थ याम) में दिखायी पड़ता है। वह उदय के पश्चात् साढ़े चार मासों तक कल्याणकारक और सुभिक्ष का उत्पादक होता है। क्षुद्र जन्तुओं को उत्पन्न करता है अर्थात् वे बहुत समय तक दिखायी पड़ते हैं ॥४४-४५॥

अथ जलकेतोर्लक्षणमाह :-

जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया।
नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ॥४६॥

अब जलकेतु का लक्षण कहते हैं :-

जलकेतु भी पश्चिमदिशा में पश्चिमोन्नत श्वेतवर्ण का उदित होता है। वह नौ मासों तक लोक का कल्याण तथा सुभिक्ष करता है ॥४६॥

जलकेतुर्नाम केतुः सोऽपि पश्चात् पश्चिमायां दिशि दृश्यते। स्निग्धो निर्मलदेहः। अपरेण पश्चिमेन। चोन्नतया उच्चया शिखया चूडया युक्तः। स च दृष्टो नव मासान् यावत् सुभिक्षं करोति। लोकस्य जनपदस्य च शान्तिं श्रेयः करोति। तथा च पराशरः -

अथ जलकेतुः पैतामहजस्य चलकेतोर्नवमासावशिष्टे कर्मणि कृतं प्रवर्तयति। पश्चिमेनोदितः स्निग्धः सुजातोऽनुपश्चिमाभिनतशिखः। स च नव मासान् क्षेमसुभिक्षारोग्याणि प्रजाभ्यो धत्ते। अन्यग्रहकृतानां चाशुभानां व्याघातायेति ॥४६॥

जलकेतु नामक जो केतु है, वह भी पश्चिमदिशा में दिखायी पड़ता है। स्निग्ध अर्थात् स्वच्छ बिम्बवाला, पश्चिमाग्रभाग में उन्नत शिखा सहित होता है। वह उदित होते ही नौ मास पर्यन्त सुभिक्ष करता है, और लोक में शान्ति लाता है। जैसाकि पराशर ने कहा है :-

जलकेतु ब्रह्मा से उत्पन्न चलकेतु के नौ मास शेष रहने पर प्रकट होता है। पश्चिमदिशा में उदित होता हुआ स्वच्छवर्ण का, पश्चिमभाग में अवनत शिखावाला होता है। वह नौ मास तक क्षेम, सुभिक्ष तथा आरोग्य का लाभ प्रजा को देता है। वह अन्य ग्रहों द्वारा उत्पन्न अशुभ फलों का विनाशक होता है ॥४६॥

अथ भवकेतोर्लक्षणमाह :-

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ॥४७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यावत एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान्।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान्॥४८॥

अब भवकेतु का लक्षण कहते हैं :–

भवकेतु एक रात्रि में दृश्य होने वाला श्वेतवर्ण का लघु तारा होता है। सिंह की पूँछ के समान दक्षिणावर्त शिखावाला होता है। जितने मुहूर्त तक वह दिखाई पड़ता है, उतने मासों तक अत्यधिक सुभिक्ष करता है। यदि वह रूखा दिखाई पड़े तो प्राणघातक रोगों को उत्पन्न करता है॥४७-४८॥

भवकेतुर्नाम केतुः स च प्राक् पूर्वस्यां दिशि एकरात्रमेकां निशां दृश्यः। सूक्ष्मतारकः सूक्ष्मोऽत्यल्पस्तारको यस्य। स्निग्धो निर्मलदेहः। अन्यत्र शिखयोपलक्षितः। कीदृश्या ? हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया। हरिः सिंहस्तस्य लाङ्गूलं पुच्छस्तदुपमया तदाकारया प्रदक्षिणेनावर्तो यस्यास्तथाभूतया॥

भवकेतु नामक केतु पूर्वदिशा में एक रात ही दृश्य होता है। सूक्ष्म तारावाला अर्थात् जिसका अल्प तारा हो वह, स्वच्छबिम्बवान् शिखासहित होता है। किस प्रकार की शिखा, इसका विचार करते हुए कहते हैं, कि सिंह की पूँछ के सदृश आकारवाला दक्षिणावर्ती शिखाओंवाला होता है।

स च यावत एव मुहूर्त्तान् यावत्संख्यान् क्षणान् दर्शनमायाति दृश्यते तावन्मासानतुलमसमं सुभिक्षं निर्दिशेद्वदेद्यदि स्निग्धः। रूक्षे तु पुनः प्राणान्तिकान् रोगान् गदान् वदेत्। तथा च पराशरः –

अथ जलकेतोः कर्मसमाप्तावूर्म्यादयः शीतान्ता अष्टौ प्रादुर्भवन्ति। ते त्रयोदशचतुर्दशाष्टादशवर्षान्तरिता दृश्यन्ते। स्निग्धाः सुभिक्षक्षेम्या विपर्यया विपरीताः। क्षुद्रजन्तूनां वधाय। तेषामष्टानां कर्मण्यतीते भवकेतुर्दृश्यते पूर्वेणैकरात्रम्। या कृत्तिकानामग्रतमा तारा तत्प्रमाणया स्निग्धयाऽरूक्षाभया सिंहलाङ्गूलसंस्थानया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षाय। रूक्षः प्राणहराणां रोगाणां प्रादुर्भावायेति॥४७-४८॥

वह जितने मुहूर्त पर्यन्त अर्थात् जितने क्षणों की संख्या तक दिखायी पड़ता है, उतने मास तक स्निग्ध रहने पर अतुलनीय सुभिक्ष करता है। यदि वह रूक्ष हो तो प्राणघातक रोगों को करनेवाला कहना चाहिए। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

जलकेतु की समाप्ति पर ऊर्मि आदि से प्रारम्भकर शीतपर्यन्त आठ केतु उत्पन्न होते हैं। वे केतु तेरह, चौदह और अट्ठारह वर्षों के अन्तर पर दिखायी पड़ते हैं। वे स्निग्ध (स्वच्छ) वर्ण के सुभिक्ष तथा क्षेम करते हैं, और इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विपरीत रूक्षवर्ण के होने पर विपरीत फलदायक होते हैं। क्षुद्र जन्तुओं के लिए विनाशकारक होते हैं। इन आठों के कर्म (उदय) के पश्चात् भवकेतु दिखायी पड़ता है। यह पूर्वदिशा में एक ही रात्रि में दृश्य होता है। जो कृत्तिका नामक अग्रिम तारा है, उसके प्रमाण का स्निग्ध अर्थात् स्वच्छ आभासहित सिंहपुच्छ के समान दक्षिणानत शिखासहित उदित होता है। वह जितने मुहूर्त तक दृश्य होता है, उतने मासों तक अत्यन्त सुभिक्षकारक होता है। रूक्षवर्ण का होने पर प्राणघातक रोगों का प्रादुर्भावकारक होता है ॥४७-४८॥

अथ पद्मकेतोर्लक्षणमाह :—

अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ॥४९॥

अब पद्मकेतु का लक्षण कहते हैं :—

पद्मकेतु मृणाल (कमलतन्तु) के समान गौरवर्ण का पश्चिमदिशा में एक रात दृश्य होता है। यह सात वर्षों तक अत्यन्त प्रसन्नतायुक्त सुभिक्ष करता है ॥४९॥

पद्मकेतुर्नाम केतुः। अपरेण पश्चिमायां दिशि निशां रात्रिमेकां दृश्यते। कीदृशः ? मृणालगौरः, मृणालवद् गौरो मृणालगौरः। मृणालं बिसतन्तु। तद्वद् गौरः। श्वेत इत्यर्थः। स तु दृष्टः सप्त वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः —

अथ पद्मकेतुः श्वेतकेतुफलसमाप्तौ पश्चिमेनाह्लादयन्निव मृणालकुमुदाभया शिखयैकरात्रचरः। सप्त वर्षाण्यभ्युच्छ्रितं[1] हर्षमावहति जगतः ॥४९॥

पद्मकेतु नाम का केतु पश्चिमदिशा में एक रात के लिए दिखायी पड़ता है। किस प्रकार का ? मृणाल अर्थात् कमलतन्तु (बिसतन्तु) के सदृश गोरा अर्थात् श्वेतवर्ण का। वह दिखायी पड़ने पर सात वर्षों तक आनन्दयुक्त सुभिक्ष करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :—

श्वेतकेतु के प्रभाव की समाप्ति पर पद्मकेतु पश्चिमदिशा में मृणाल एवं कुमुदपुष्प की कान्तिवाली शिखा से युक्त, प्रसन्नता देता हुआ एक रात्रि में दृश्य होता है। वह संसार के लिए सात वर्षों तक अति प्रसन्नता प्रदान करता है ॥४९॥

अथावर्तकेतोर्लक्षणमाह :—

आवर्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः।
यावत्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ॥५०॥

---

१. अभ्युत्थितं हर्षमिति अ० क० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब आवर्तकेतु का लक्षण कहते हैं :–

आवर्त केतु आधी रात को पश्चिमदिशा में दक्षिणशिखावाला लालरङ्ग का स्वच्छ दृश्य होता है। जितने क्षण वह दिखायी पड़ता है, उतने मास तक सुभिक्षकारक होता है॥५०॥

आवर्तनामेति यः केतुः स निशार्धे रात्र्यर्धे। अपरे पश्चिमायां दिशि। सव्यशिखो दक्षिणदिगाश्रितशिखः। अरुणनिभो रक्तवर्णः। स्निग्धो निर्मलवपुर्दृश्यते। स तु यावत्क्षणान् यावत्संख्यान् मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः –

अथावर्तकेतुः श्वेतकेतोः कर्मण्यतीतेऽपरस्यामर्द्धरात्रे शङ्खावदातोऽरुणाभया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षं नित्ययज्ञोत्सवं जगत्॥५०॥

आवर्त नामक जो केतु है, वह आधी रात के समय दक्षिणदिशा में झुकी हुई शिखावाला, रक्तवर्ण का, स्वच्छ बिम्बवाला दिखायी पड़ता है, वह जितने क्षणों तक दिखायी पड़ता है, उतने मास पर्यन्त सुभिक्ष करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है :–

श्वेतकेतु के निर्वृत्त हो जाने के पश्चात् आवर्तकेतु पश्चिमदिशा में अर्धरात्रि में शङ्ख के सदृश स्वच्छ तथा लालवर्णवाली दक्षिणभाग में अवनत शिखा सहित उदित होता है। वह जितने मुहूर्त दिखायी पड़ता है, उतने मासों तक सुभिक्ष होता है, और संसार नित्य ही यज्ञादि उत्सवों में लिप्त रहता है॥५०॥

अथ संवर्तकेतोर्लक्षणमाह :–

पश्चात् सन्ध्याकाले संवर्तो नाम धूम्रताम्रशिखः।
आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः॥५१॥
यावत एव मुहूर्तान् दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति।
भूपान् शस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति॥५२॥

अब संवर्तकेतु का लक्षण कहते हैं :–

संवर्त नामक केतु सन्ध्याकाल में पश्चिमदिशा में धूम्रवर्ण तथा ताम्रवर्ण की शिखाओंवाला दिखायी पड़ता है। वह आकाश के तीन भागों को व्याप्तकर त्रिशूल के समान अग्रगामी भयावह आकृति का दृश्य होता है। वह जितने मुहूर्त दृश्य रहता है, उतने वर्षों तक सशस्त्र सङ्ग्राम से राजाओं का विनाश करता है। वह जिस नक्षत्र में उदित होता है, उस नक्षत्र को भी पीड़ित करता है॥५१-५२॥

पश्चात् पश्चिमायां दिशि। सन्ध्याकाले सन्ध्यासमये। संवर्तो नाम केतुः। कीदृशः? धूम्रताम्रशिखः। धूम्राताम्रवर्णा च शिखा चूडा यस्य। वियत आकाशस्य त्र्यंशं तृतीयभागमाक्रम्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्य दृश्यते। शूलाग्रावस्थितः। शूलमग्रे शिरस्यवस्थितं यस्य। त्रिचूड इत्यर्थः। स च रौद्रो भयावहः॥५१॥

पश्चिमदिशा में तथा सन्ध्या समय में संवर्त नाम का केतु होता है। किस प्रकार का ? धूम्र और ताम्रवर्ण की शिखावाला। आकाश के तृतीय भाग को परिव्याप्तकर दृश्य होता है। शीर्षाग्र पर जिसके शूल हो, अर्थात् तीन शिखाओंवाला। वह रौद्र अर्थात् भयकारक होता है॥५१॥

स च केतुर्यावतो मुहूर्तान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि हन्ति नाशयति। अशुभफलप्रदो भवतीत्यर्थः। तथा भूपान् नृपान्। शस्त्रनिपातैः संग्रामैर्हन्ति नाशयति। तथोदयर्क्षम्। यस्मिन्नक्षत्रे उदितो दृश्यते तच्च पीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः –

अथ संवर्तो [1]वर्षसहस्रमष्टोत्तरं प्रोष्य पश्चिमेनास्तं गते सवितरि सन्ध्यायां दृश्यते तन्वीं ताम्ररूक्षां शूलाभां धूम्रं विमुञ्चन्तीं दारुणां शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागमाक्रम्य। स यावन्मुहूर्तान् निशि तिष्ठति तावद्वर्षाणि परस्परं शस्त्रैर्घ्नन्ति पार्थिवाः। यानि नक्षत्राणि धूपयति यत्र चोदेति तानि दारुणतरं पीडयति। तदाश्रितांश्च देशानिति॥

तथा च[2] :–

येषां नक्षत्रविषये रूक्षः सज्वाललोहितः।
दृश्यते बहुमूर्तिश्च तेषां विन्द्यान्महाभयम्॥
अवर्षं शस्त्रकोपं च व्याधिं दुर्भिक्षमेव च।
कुर्यान्नृपतिपीडाश्च स्वचक्रपरचक्रतः॥
यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे प्रवासं यत्र गच्छति।
धूपयेद्वा स्पृशेद्वापि हन्याद्देशांस्तदाश्रितान्॥
यस्याभिषेकनक्षत्रं जन्मभं कर्मभं तथा।
देशर्क्षं पीडयेद्वापि स शान्त्युपरमो भवेत्॥
स्निग्धः प्रसन्नो विमलः प्रदक्षिणशिखस्तथा।
दृश्यते येषु देशेषु शिवं तेषु विनिर्दिशेत्॥
[3]गगनार्द्धचरः सद्यः प्रधानदेशान् विनाशयेदचिरात्।
निखिलगगनानुचारी त्रैलोक्यविनाशकः केतुः॥इति॥५२॥

---

१. वर्षसहस्रं प्रोष्य इति अ० क० पु० पाठः।
२. तथा च गर्ग इति ग० घ० पु० पाठः।
३. इदं पद्यं नान्येषु पुस्तकेषु।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह केतु जितने मुहूर्त तक दृश्य होता है, तत्सङ्ख्यक वर्षों तक नाश करता है। वह राजाओं को सङ्ग्रामों के द्वारा नष्ट करता है। तथा जिस नक्षत्र में उदित देखा जाता है, उस नक्षत्र को संतप्त करता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है:–

संवर्तकेतु १००८ वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् पश्चिमदिशा में भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर सन्ध्याकाल में पतली ताम्रवर्ण की रूक्ष, त्रिशूल के समान धूएँ को छोड़ती हुई भयङ्कर शिखाओं से युक्त आकाश के तीन भागों को व्याप्त कर जितने मासों तक उदित रहता है, उतने वर्षों तक परस्पर शस्त्रसंहार से राजाओं को विनष्ट करता है। जिस नक्षत्र को आक्रान्त करता है तथा जिस नक्षत्र में उदित होता है, उन नक्षत्रों को पीड़ित करता है। अर्थात् उन नक्षत्रों के आश्रित देशों को पीड़ित करता है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

जिन नक्षत्रों का रूक्ष, ज्वालासहित, रक्तवर्ण का और अनेक रूपोंसहित प्रकट होना देखा जाये, उनके द्वारा अत्यधिक भय प्राप्त होता है। अनावृष्टि, शस्त्र-सङ्ग्राम, रोग और दुर्भिक्ष के साथ ही स्वपक्ष तथा शत्रुपक्ष से राजाओं को पीड़ित करता है। जिस नक्षत्र पर स्थित होता है, जिस नक्षत्र पर प्रयाण करता है और जिस नक्षत्र को प्रभावित अथवा स्पर्श करता है, उस देश के आश्रित जनों का हनन करता है। जिस राजा का अभिषेकनक्षत्र, जन्मनक्षत्र, कर्मनक्षत्र तथा देशनक्षत्र हो, उसको पीड़ित करता है। केतु के अवसान के पश्चात् पुनः शान्ति स्थापित होती है। वह स्वच्छ, प्रसन्न, श्वेत, दक्षिणावर्ती शिखावाला जिन देशों में दिखाई पड़ता है, उन देशों में कल्याण कहना चाहिए। आकाश के आधे भाग में विचरण करनेवाला केतु प्रमुख देशों का शीघ्र ही विनाश करता है। सम्पूर्ण आकाश में विचरण करनेवाला केतु तीनों लोकों का विनाशक होता है॥५२॥

अथ शुभान् केतून् वर्जयित्वाऽशुभानां नक्षत्रस्पर्शधूपनाद् दुष्टफलं वक्ष्यामीत्याह :–

ये शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूपितेऽथवा स्पृष्टे।
नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान्॥५३॥

अब शुभ केतुओं को छोड़कर अशुभ केतुओं के द्वारा नक्षत्रों के स्पर्श और धूपन का दुष्टफल कहते हैं :–

जो केतु प्रशस्त अनुकूल फलदायक हैं, उनको छोड़कर जिन नक्षत्रों के स्पर्श अथवा धूपित होने पर राजाओं का वध होता है, उनका फल आगे कहा जायेगा॥५३॥

ये केतवः शस्ताः प्रशस्तफलाः। तान् हित्वा त्यक्त्वा। अन्यैः केतुभिः शिखिभिर्नक्षत्रे यस्मिन्नाधूपितेऽथवा स्पृष्टे येषां राज्ञां नृपाणां वधो मरणं भवति तान्नृपान् वक्ष्ये कथयिष्ये॥५३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो केतु प्रशस्त फल देते हैं, उनको छोड़कर अन्य केतुओं द्वारा नक्षत्रों के धूपित अथवा स्पृष्ट होने पर जिन राजाओं का मरण होता है, उनके सम्बन्ध में कहूँगा ॥५३॥

तांश्चाधुनाऽऽह :—

अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात्।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम् ॥५४॥

अब उन केतुओं के फल कहते हैं :—

अश्विनी नक्षत्र का केतु स्पर्श अथवा धूपन करता है, तब अश्मकराज्य का, भरणीनक्षत्र का होने पर किरातराज्य के राजा का हनन करता है। कृत्तिकानक्षत्र का होने पर कलिङ्गदेश के और रोहिणीनक्षत्र में शूरसेन के राजा का हनन करता है ॥५४॥

अश्विन्यामभिधूपितायां स्पृष्टायां वा केतुना। अश्मकपमश्मकानां जनानामधिपतिं राजानं हन्यान्नाशयेत्। एवं भरणीषु किरातपार्थिवं किराताधिपतिं हन्यात्। बहुलासु कृत्तिकासु कलिङ्गेशं कलिङ्गाधिपतिम्। रोहिण्यां शूरसेनपतिं शूरसेना जनास्तेषां पतिम् ॥५४॥

केतु के द्वारा अश्विनीनक्षत्र के अभिधूपित अथवा स्पृष्ट होने पर अश्मकजनपद के राजा का विनाश होता है। इसी प्रकार भरणी नक्षत्र में किरात राज्य के राजा का हनन करता है। बहुला अर्थात् कृत्तिकानक्षत्र में कलिङ्गराज्य के राजा का और रोहिणी नक्षत्र में शूरसेन के लोगों के अधिपति का विनाश करता है ॥५४॥

अन्येष्वाह :—

औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥५५॥

अन्य नक्षत्रों का फल कहते हैं :—

मृगशिरानक्षत्र में केतु के स्पर्श से उशीनर राज्य के लोगों का, आर्द्रानक्षत्र में जलीय पदार्थों से आजीविकावालों का, पुनर्वसुनक्षत्र में अश्मकराजाओं और पुष्यनक्षत्र में मगधराज्य के राजा का हनन करता है ॥५५॥

सौम्ये मृगशिरसि केतुनाभिधूपिते स्पृष्टे वा, औशीनरमुशीनराधिपतिं हन्यात्। तथा आर्द्रासु जलजाजीवाधिपं जलजा मत्स्यादयस्तैर्ये आजीवन्ति ते च जलजाजीवाः। ग्रामदेशवासिन इत्यर्थः। तेषामधिपं नृपं हन्यात्। आदित्ये पुनर्वसावश्मकनाथानश्मकाधिपतीन्। पुष्ये मगधाधिपं मागधं नृपं हन्ति ॥५५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केतु के द्वारा मृगशिरा नक्षत्र का स्पर्श अथवा अभिधूपन होने पर वह उशीनरराज्य के राजा को मारता है, तथा आर्द्रानक्षत्र में जलोत्पन्न जीव मछली आदि ही जिसकी आजीविका हो, ऐसे लोगों के प्रमुख स्वामी का हनन करता है। अर्थात् ग्राम्य देशों में रहने वाले लोगों का हनन करता है। पुनर्वसुनक्षत्र में अश्मकराजाओं का तथा पुष्यनक्षत्र में मगध-राज्यपति को मारता है ॥५५॥

अन्येष्वाह :–

असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥५६॥

अन्य नक्षत्रों के फल कहते हैं :–

आश्लेषानक्षत्र में केतु के होने पर असिकेशराज्य के राजा का, मघानक्षत्र में अङ्ग प्रदेश के राजा का, पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्र में पाण्ड्यनरेश का, उत्तराफाल्गुनीनक्षत्र में उज्जयिनी के राजा का तथा हस्तनक्षत्र में दण्डकारण्य के नृपति का हनन करता है ॥५६॥

भौजङ्गे आश्लेषायामसिकेशम्। असिका जनास्तेषामीशं पतिं हन्ति। पित्र्ये मघायामङ्गाधिपतिम्। भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां पाण्ड्यनाथम्। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यामौज्जयिनिकमुज्जयिनीपतिम्। सावित्रे हस्ते दण्डकाधिपतिं दण्डकारण्यनाथं हन्ति ॥५६॥

भुजङ्ग अर्थात् आश्लेषानक्षत्र में असिक लोगों के राजा का हनन करता है। मघानक्षत्र में अङ्गराज्य के राजा का, पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्र में पाण्ड्यदेश के राजा का, उत्तरफाल्गुनीनक्षत्र में उज्जयिनी के राजा का और हस्त नक्षत्र में दण्डकारण्य के अधिपति का हनन करता है ॥५६॥

अन्येष्वाह :–

चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥५७॥

अब अन्य नक्षत्रों के फल कहते हैं :–

चित्रानक्षत्र में केतु के द्वारा स्पर्श होने पर कुरुक्षेत्र के राजा की मृत्यु का आदेश दैवज्ञ द्वारा दिया जाना चाहिए। स्वातीनक्षत्र में काश्मीर और कम्बोज के राजा नहीं रहते हैं, अर्थात् इनका विनाश हो जाता है ॥५७॥

चित्रासु केतुनाभिधूपितासु स्पृष्टासु वा कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं वधम्। तज्ज्ञः केतूपघातज्ञः। समादिशेद्वदेत्। प्राभञ्जने स्वातौ काश्मीरककाम्बोजौ नृपती राजानौ न स्तो न भवतः ॥५७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केतु के द्वारा चित्रानक्षत्र में अभिधूपित अथवा स्पर्श किये जाने पर कुरुक्षेत्र के राजा का वध, केतु के उपघातों का फल जाननेवाले दैवज्ञ को कहना चाहिए। प्रभञ्जन अर्थात् स्वातीनक्षत्र में काश्मीर तथा कम्बोज के राजा नहीं होते हैं, अर्थात् वे विनष्ट हो जाते हैं ॥५७॥

अन्येष्वाह :—

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः॥५८॥

अन्य नक्षत्रों का फल कहते हैं :—

विशाखानक्षत्र में केतु के होने पर इक्ष्वाकुनरेश तथा अलकाराज्य का राजा मारा जाता है। अनुराधानक्षत्र में पुण्ड्रदेश का राजा और ज्येष्ठानक्षत्र में सार्वभौम (कन्नौज) राज्य के स्वामी का मरण होता है ॥५८॥

विशाखासु यदि केतूपघातो भवेत्तदा इक्ष्वाकुनाथोऽलकनाथश्च हन्यते। इक्ष्वाकवो जनाः। अलका नाम नगरी। तन्नाथो राजा। मैत्रेऽनुराधायां पुण्ड्राधिपतिर्हन्यते। ज्येष्ठासु च सार्वभौमस्य राज्ञः कान्यकुब्जाधिपतेर्वधो मरणं भवति॥५८॥

विशाखा नक्षत्र में यदि केतु का उपघात (स्पर्शादि) हो, तब इक्ष्वाकुपति एवं अलकानाथ मारे जाते हैं। इक्ष्वाकु राज्य के लोग और अलका नामक नगर के राजा से यहाँ तात्पर्य है। अनुराधा नक्षत्र में पुण्ड्रदेश के राजा से यहाँ तात्पर्य है। अर्थात् अनुराधा नक्षत्र में पुण्ड्रदेश के राजा का हनन करता है। ज्येष्ठानक्षत्र में सार्वभौम-राजा अर्थात् कान्यकुब्ज राज्य के राजा का मरण होता है ॥५८॥

अन्येष्वाह :—.

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति।
यौधेयकार्जुनायनशिविचैद्यान् वैश्वदेवे च॥५९॥

अब अन्य नक्षत्रों के फल कहते हैं :—

मूलनक्षत्र में आन्ध्र तथा मद्र (तमिलनाडु) के राजा की मृत्यु करता है। पूर्वाषाढा में काशिराज का मरण करता है। उत्तराषाढा नक्षत्र में यौधेयक, अर्जुनायन, शिवि तथा चैद्य नामक राज्यों के अधिपों का मरण करता है ॥५९॥

मूले केतूनाभिधूपिते हते वा अन्ध्रपतिं मद्रकपतिं च हन्ति। जलदेवे पूर्वाषाढायां काशिपः काश्यधिपतिर्मरणमेति प्राप्नोति। वैश्वदेवे उत्तराषाढायां यौधेयकः। अर्जुनायनः। शिविः। चैद्यः। एतान्नृपतीन् हन्ति॥५९॥

केतु के द्वारा मूलनक्षत्र के धूपित होने पर अथवा आहत होने पर, वह आन्ध्रराज्य के राजा और भद्र राज्य (मद्रास) के राजा को मारता है। जलदेव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् पूर्वाषाढानक्षत्र में काशी राज्य का राजा मृत्यु को प्राप्त करता है। उत्तराषाढा नक्षत्र में यौधेयक, अर्जुनायन, शिवि तथा चैद्य राज्य के राजाओं का वध करता है ॥५९॥

अथान्येष्वाह :–

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम्।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः॥ ६०॥

अन्य नक्षत्रों के फल कहते हैं :–

श्रवणादि छः नक्षत्रों में केतु का स्पर्श हो, तब क्रमशः कैकय, पाञ्चनद (पंजाब), सिंहल (श्रीलङ्का), बङ्ग, नैमिषारण्य और किरात प्रदेश के राजाओं का मरण करता है ॥६०॥

षट्सु श्रवणादिषु नक्षत्रेषु हतेषु षडिमान्नृपान् क्रमशः क्रमेण हन्यात्। तद्यथा :– श्रवणे हते कैकयनाथं केकयजनाधिपं हन्यात्। धनिष्ठासु पाञ्चनदं पञ्चनदाधिपतिम्। शतभिषजि सिंहलाधिपतिम्। पूर्वभद्रपदायां वाङ्गं वङ्गाधिपतिम्। उत्तरभद्रपदायां नैमिषनृपं नैमिषारण्याधिपतिम्। रेवत्यां किरातं किराताधिपतिं हन्यात्॥ ६०॥

श्रवणादि छः नक्षत्रों के आहत होने पर इन राजाओं का क्रमशः हनन करता है। यथा :– श्रवण नक्षत्र के आहत होने पर केकयजनों के राजा को मारता है। धनिष्ठा में पञ्चनद के राजा का, शतभिषा में सिंहलराज्य के स्वामी का, पूर्वभाद्रपदा में वङ्गप्रदेश (बंगाल) के राजा का, उत्तरभाद्रपदनक्षत्र में नैमिषारण्य के अधिपति का, और रेवती नक्षत्र में होने पर किरात प्रदेश के स्वामी का हनन करता है ॥६०॥

अथ केतोर्विशेषमाह :–

उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽतिदृष्टो यः।
अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम्॥ ६१॥

अब केतु का विशेष-फल कहते हैं :–

जिस केतु की शिखा उल्कापतन से ध्वस्त हो जाय, वह कल्याणकारक होता है। अल्पकाल के लिए ही दृष्ट केतु अतिकल्याणकारी होता है। परन्तु वह ही केतु चोल, आवगण, सित, हूण और चीन के लोगों के लिए अशुभ फलदायक होता है ॥६१॥

यः शिखी केतुः। उल्काभिताडितशिखः। उल्कया अभिमुख्येन ताडिता हता शिखा चूडा यस्य। स शिवः श्रेयस्करः। योऽतिदृष्ट उदितमात्र एव दृष्टः स शिवतरोऽतिशयेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुभप्रदः। स एव केतुरेवंविधश्चोलानामावगाणानां सितानां हूणानां चीनानां चाशुभोऽश्रेयस्करः। चोलाद्याः सर्व एव जनाः॥६१॥

जिस केतु की शिखा उल्का के द्वारा विशेषतया आहत हो, वह श्रेयस्कर होता है। जो अतिदृष्ट अर्थात् उदयमात्र दिखायी पड़े, वह अतिशय शुभदायक होता है। इस प्रकार का वह ही केतु चोलों, आवगाणों, सितों, हूणों और चीनियों के लिए अश्रेयस्कर (अशुभ) होता है। चोलादि सभी लोगों के लिए यह फल जानना चाहिए॥६१॥

अन्यद्विशेषमाह :—

नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा
ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान्।
दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान्॥६२॥

केतु की अन्य भी विशेषता कहते हैं :—

केतु की शिखा जिस दिशा में अवनत हो, अथवा जिस दिशा में वह गमनशील हो, अथवा जिस नक्षत्र का स्पर्श कर रहा हो; उस दिशा के राज्यों तथा उस नक्षत्र से सम्बन्धित देशों में कामना से गया हुआ राजा शत्रु के भोगों का उसी प्रकार से भोग करता है, जिस प्रकार कि गरुडदेव अपने दैवी प्रभाव से मारे गये सर्पों का भोग करते हैं॥६२॥

यतो यस्यां दिशि। शिखिशिखा केतुशिखा। नम्रा वक्रा। शिखिनः शिखा शिखिशिखा। अभिसृता यतो वा। यस्यां दिशि। अभिसृता गन्तुं प्रवृत्ता। अथवा यदृक्षं नक्षत्रं स्पृशति स्पर्शयति। तत्कथितांश्च देशान्। यस्यां दिशि शिखा नम्रा तत्र ये देशाः। यस्यां वा गन्तुं प्रवृत्ता तत्र ये देशा यन्नक्षत्रं स्पृशन्ति तस्य च नक्षत्रस्य ये देशा वक्ष्यमाणास्तान् कथितांस्तदुक्तान् देशान् नरपती राजा गतो भुङ्क्ते स्वीकरोति। कीदृशान् देशान्? दिव्यप्रभावनिहतान्। दिव्येनाप्रतिहतेन प्रभावेण विक्रमेण निहतान् निर्जितान्। कीदृशान्? परभोगिभोगान्। परैरन्यैर्भोगिभिर्भुज्यन्ते ये भोगा ग्रामास्तान्। कथं स राजा भुङ्क्ते? यथा गरुत्मान् गरुडो दिव्यप्रभावनिहतान् परभोगिभोगान् भुङ्क्ते? परा उत्कृष्टा ये भोगिनः सर्पास्तेषां भोगाः शरीराण्यङ्गानि वा तान्। यथा येन प्रकारेण। तथा तेन प्रकारेणेति। तथा च पराशरः —

यस्यां दिशि समुत्तिष्ठेत्तां दिशं नाभियोजयेत्।
यतः शिखा यतो धूमस्ततो यायान्नराधिपः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिलोमे यतः केतोर्जयार्थी याति पार्थिवः।
सामात्यबाहनबलः स नाशमधिगच्छति[1] ॥
[2]दृष्ट्वा षोडश वासरान्न शुभदः कैश्चित् प्रदिष्टः शिखी
सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रेऽथवा माधवे।
ऋक्षं यत्परिभुक्तपीडितहतं यच्चाऽऽशिखाभेदितं
तत्सर्वं परिवर्ज्य शुद्धमपरं पाणिग्रहे वास्तुषु॥ इति॥६२॥

जिस दिशा में केतु की शिखा नम्र अर्थात् वक्र (टेढ़ी) हो, जहाँ से अभिसृत अर्थात् जिस दिशा में जाने के लिए प्रवृत्त हो, अथवा जिस नक्षत्र का स्पर्श करता हो, उनके बतलाए गये देशों को। अर्थात् जिस दिशा में वह शिखा झुकी हुई टेढ़ी हो, उस दिशा के देशों को तथा जिस दिशा में जानेवाला हो, उस दिशा के प्रदेश को और जिस नक्षत्र का स्पर्श करता हो, उस नक्षत्र के देश जो आगे कहे जायेंगे; उन देशों को गया हुआ राजा उनका भोग प्राप्त करता है। किस प्रकार के देशों का ? दिव्य अर्थात् निर्बाध दैवी पराक्रम से विजित देशों का। किस प्रकार के भोगों का ? अन्य राजाओं द्वारा भोगे हुए जो ग्राम (जनपद) हैं, उनका। किस प्रकार वह राजा भोग करता है ? जिस प्रकार गरुड अपने दिव्य प्रभाव से मारे गये श्रेष्ठ

---

१. केतूदयं शुक्रफलं संक्रान्त्या वृष्टिलक्षणम्। कथयामि समासेन लोकानां हितकाम्यया॥
वरुणस्य दशपुत्राश्चतुर्विंशा रवेः स्मृताः। अष्टादश कुवेरस्य यमस्य नव कीर्तिताः॥
अग्निपुत्राश्चतुर्विंशद्वायोर्विंशतिरेव राट्। एवं संख्या च केतूनां शतं पञ्चोत्तरं स्मृतम्॥
श्रावणे भाद्रपदे च वरुणस्य सुतोदयः। आवाहयेन्महामेघांस्तोयपूर्णा वसुन्धरा॥
उन्मार्गे सरितो यान्ति जलवेगसमाहताः। समर्घाण्यपि धान्यानि वरुणस्य सुतोदये॥
आश्विने कार्तिके चैव सूर्यपुत्रं विनिर्दिशेत्। नदीकूपतडागानि सर्वाणि परिशोषयेत्॥
म्रियन्ते च तदा गावस्तथान्ये च चतुष्पदाः। देवो न वर्षते तत्र दुर्भिक्षं च महाभयम्॥
मार्गशीर्षे च पौषे च अग्निपुत्रान् विनिर्दिशेत्। अग्निदग्धानि राष्ट्राणि हारितानि धनानि च॥
विद्रवन्ति तथा देशाः समस्ता भयपीडिताः। अग्निचौरभयं तत्र प्रजानां व्याधयस्तथा॥
माघफाल्गुनयोर्मध्ये यमपुत्रं विनिर्दिशेत्। दुर्भिक्षं जायते घोरं सर्वधान्यानि संक्षयेत्॥
चैत्रवैशाखयोर्मासे कुवेरसुतमादिशेत्। यादृशा उदिता मेघा जलं पतति तादृशम्॥
हविर्धुभाकुलं सर्वं नन्दते च मुहुर्मुहुः। वसुन्धरा शुभाभ्राढ्या धनधान्यसमाकुला॥
ज्येष्ठाषाढयोर्मध्ये वायुपुत्रोदयो भवेत्। उच्चा मेघाः प्रदृश्यन्ते वायुना सह प्रेरिताः॥
तरुप्रासादशिखराः पतन्ति पवनाहताः। विरोधे च महीपाला भवन्ति च समन्ततः॥
अ० क० पुस्तकयोरेतानि केतुचारसम्बन्धीनि भ्रष्टपद्यान्यगस्त्यचारस्य प्रथमश्लोकटीकायां केनचित् संहितानभिज्ञेनाधिकानि प्रक्षिप्तानीति।

२. अ० क० ग० घ० पुस्तकेष्विदं पद्यं नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोगियों अर्थात् सर्पों के अङ्गों का भोग करता है। अर्थात् जिस प्रकार से सरलतापूर्वक गरुड सर्पों का भोग करता है, उसी प्रकार वह यायी राजा शत्रु-राजाओं का भोग करता है। इसी प्रकार आचार्य पराशर ने कहा है :–

केतु जिस दिशा से निकले उस दिशा में युद्ध-यात्रा न करें। जिस दिशा में उसकी शिखा हो, तथा जिधर धूआँ निकले, उस दिशा में राजा विजययात्रा करे। विजयाभिलाषी राजा यदि केतु की दिशा के विपरीत दिशा में जाता है, तब वह अपने मंत्री, वाहन और सेनासहित विनाश को प्राप्त करता है। कुछ विद्वानों के अनुसार १६ दिनों तक दिखायी पड़नेवाला केतु शुभदायक नहीं होता है। चैत्र अथवा वैशाख मास में प्रकट-केतु सभी कार्यों को सफलता देता है। जो नक्षत्र केतु से युक्त, पीड़ित अथवा आहत (विद्ध) अथवा शिखा से भेदित होता हो, इस प्रकार के सभी नक्षत्रों का विवाह, वास्तु आदि शुभ कार्यों में परित्याग करना चाहिए। शेष नक्षत्र शुभ होते हैं ॥६२॥

विशेष टिप्पणी :–

केतुचार से सम्बन्धित कुछ श्लोक दो प्राचीन प्रतियों में प्राप्त होते हैं, जिनको अज्ञानता वश किसी ने अगस्त्यचार के प्रथम श्लोक की टीका में लिख दिया था, उन श्लोकों को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :–

मैं लोक-कल्याण की कामना से संक्षेप में केतु का उदय, शुक्रफल और संक्रान्ति द्वारा वृष्टि का लक्षण कहता हूँ। वरुण के १० पुत्र, सूर्य के २४ पुत्र तथा कुबेर के १८ पुत्र और यमराज के ९ पुत्र कहे गये हैं। अग्नि के २४ पुत्र तथा वायु के २० पुत्र, इस प्रकार कुल १०५ संख्या केतुओं की कही गयी है।

श्रावण तथा भाद्रपद मास में वरुण-पुत्र का उदय होता है। इसमें प्रबल मेघों का आगमन तथा धरती जलमयी हो जाती है। नदियों के जल-प्रवाह से ऊर्ध्वजल अर्थात् बाढ़ हो जाती है, तथा धान्य-उत्पादन से मूल्य में न्यूनता आ जाती है। आश्विन एवं कार्तिकमास में रवि-पुत्र का उदय कहना चाहिए। इसमें नदी, कूआँ, तालाब आदि सूख जाते हैं। उस समय गायें तथा अन्य चौपाये पशु मरते हैं। वर्षा नहीं होती है महान् अकाल का भय होता है। अगहन और पौष मास में अग्निपुत्र का उदय होता है। देश में अग्निदाह तथा धन का विनाश होता है। सम्पूर्ण देश भय से पीड़ित होकर रुदन करने लगता है, तथा आगजनी और चोरी के भय के साथ ही जनता में रोगों का उपद्रव बढ़ जाता है। माघ और फाल्गुन मासों में यम-पुत्र उदित होते हैं। इसमें दुर्भिक्ष, घोर अकाल होने के साथ ही सभी अन्न-उत्पादनों का विनाश हो जाता है। चैत्र-वैशाख मास में कुवेर-पुत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का उदय कहना चाहिए। इसमें जिस प्रकार के बादल उत्पन्न होते हैं, उसी के समान जल की वर्षा होती है। यज्ञ-धूम के प्रभाव से जनता आनन्दित हो जाती है। सुन्दर बादलों से परिपूर्ण धरती धन-धान्य से व्याप्त होती है। ज्येष्ठ-आषाढ मास में वायु-पुत्र का उदय होता है। वायु से प्रेरित होकर बादल दूर-दूर ऊँचे चले जाते हैं। वृक्षों और भवनों के शिखर वायुवेग से गिर पड़ते हैं। सभी राजा-गण परस्पर विरोध करने लगते हैं ॥६२॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ केतुचारो नाम एकादशोऽध्यायः॥११॥

इति श्री भट्टोत्पलद्वाराविरचित संहिताविवृति में केतुचार नामक एकादश अध्याय ॥११॥

●

अथ द्वादशोध्यायः

अथागस्त्यचारो व्याख्यायते। तत्रादावेवागस्त्यस्य मुनेः प्राधान्यद्वारेण समुद्रशोभामुपवर्णयितुमाह—

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्या सपदि सुतरां येन रुचिरः।
पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा॥१॥

अब अगस्त्यचार की व्याख्या की जाती है। यहाँ पर आरम्भ में अगस्त्यमुनि की प्रमुखता ख्यापित करने के अभिप्राय से समुद्र की शोभा का वर्णन करते हैं :—

जिस अगस्त्यमुनि ने पूर्व समय में समुद्र के जल को शोषित कर तत्काल ही समुद्र के अन्तःभाग को पर्वतों के उन शिखरों से अत्यधिक सुन्दर बना दिया, जिन शिखरों पर तीक्ष्ण नखवाले मकर आरूढ़ हो गये थे। मोतियों से मिश्रित श्रेष्ठ मणि-रत्नोंसहित प्रवाहित जल की धारा से सीमित रत्नों से युक्त देवों को आकर्षित करने (अथवा चिढ़ाने) के लिए ही वह शोभा थी ॥१॥

येन भगवतागस्त्यमुनिना। पुरा पूर्वम्। तोयोच्छित्या जलापहरणेन। सपदि तत्क्षणमेव। समुद्रः सागरः। सुतरामतिशयेन। रुचिरो रम्यः। कृतः सम्पादितः। तस्य मुनेरुदयः श्रूयतामिति वक्ष्यमाणेन संबन्धः। रम्यः कैः कृतः? अन्तः शैलैः। अन्तर्मध्ये ये स्थिता मैनाकप्रभृतयः शैलाः पर्वतास्तैः। ते किलेन्द्रभयात्तत्र पूर्वं प्रविष्टाः। कीदृशैः? मकरनख-रोत्खातशिखरैः। मकरा जलप्राणिविशेषाः। तेषां ये नखाः कठिनत्वात् त एव नखराः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैर्मकरनखरैरुत्खातानि शिखराणि येषां तैः। ते किल कण्डूमपनेतुं परुषत्वात्तान्युत्खनन्ति। तथा यः समुद्रः सुरान् देवान्। प्रत्यादेष्टुं प्रत्याख्यातुमभिभवितुमिव दृष्टान्तीकर्तुमिव। कीदृशान् सुरान् ? मितमुकुटरत्नान्। मितानि परिमितानि मुकुटेषु मौलिषु रत्नानि येषां तान्। तथाभूतान्। कैः प्रत्यादेष्टुमिव ? पतन्मुक्ताभिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः। अम्बुनिवहैः पानीयौघैः। कीदृशैः ? पतन्मुक्ताभिश्रैः पतन्तीभिर्मुक्ताभिर्मिश्रास्तैः। तथा प्रवराणि विकचानि च तानि मणिरत्नानि प्रधानरत्नानि। प्रवरमणिरत्नानि चाम्बुनिवहाश्च प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहास्तैः ॥१॥

जिस भगवान् अगस्त्यमुनि के द्वारा पूर्व समय में जल को पी जाने के कारण तत्काल ही सागर अत्यधिक रमणीय कर दिया गया। उस अगस्त्यमुनि के उदय का श्रवण करें, यह आगे के वर्ण्यविषय से सम्बन्धित है। रमणीय किसके द्वारा किया गया ? समुद्र के अन्तः अर्थात् मध्य में जो मैनाक आदि पर्वत थे, उनके द्वारा। वे इन्द्र के भय से पहले ही वहाँ प्रविष्ट हो गये थे। किस प्रकार से ? मकर जो पानी का विशिष्ट जीव है, उनके नखों के कठोर होने के कारण वे नखर कहे जाते हैं। उन मकरों के तीक्ष्ण नखों से शिखरों के अग्रभाग उत्खनित किये जाते हैं। वे अपने खुजलाहट दूर करने के लिए कठोर शिखरों को खनते हैं, तथा जो समुद्र देवताओं को पराजित करने की तरह उनको प्रदर्शित करता है, किस प्रकार के देवताओं को ? मुकुटों में सीमित रत्न लगे हुए हैं, उस प्रकार के देवताओं को। किसके द्वारा पराभूत करने के लिए ? गिरते हुए मोती मिश्रित श्रेष्ठ रत्नोंसहित जल के द्वारा। श्रेष्ठ खुले हुए प्रमुख रत्नों के साथ जलप्रवाह के द्वारा, यह अभिप्राय है ॥१॥

अन्यदप्याह :–

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः ॥२॥

और भी कहते हैं :–

जिस अगस्त्यमुनि के द्वारा जल का आहरण (पान) कर लिये जाने पर भी वृक्षरहित पर्वतों से, प्रवाल आदि श्रेष्ठ रत्नों से तथा बाहर निकले हुए उनके सर्पों से समुद्र अत्यधिक सुशोभित हुआ ॥२॥

येनागस्त्यमुनिना। अम्बुहरणे जलापहरणे कृतेऽपि सति सागरः समुद्रः। अधिकतरमतिशयेन विराजितः शोभितः। कैः ? भूधरैः पर्वतैः। कीदृशैः ? विद्रुमैः। विगता द्रुमा वृक्षा येभ्यस्तैः। वृक्षरहितैः। जलमध्यगतत्वात्तेषु वृक्षाः क्लिन्ना यतः। तथा समणिरत्नविद्रुमैः। मणिरत्नैः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधानरत्नैर्विद्रुमेण प्रवालेन सह वर्तन्ते ये तैः। निर्गतैस्तदुरगैश्च। तदिति भूधराणां परामर्शः। तदुरगैः। तेभ्यः पर्वतेभ्यो ये उरगाः सर्पा निर्गता निष्क्रान्तास्तैः। कथं च ते निर्गताः ? राजितः पङ्क्तितस्तैस्तथाभूतैः॥२॥

जिस अगस्त्यमुनि के द्वारा जलापहरण कर लेने पर भी समुद्र अत्यधिक सुशोभित हुआ। किसके द्वारा ? पर्वतों के द्वारा। किस प्रकार के पर्वतों द्वारा ? जिसके वृक्ष नष्ट हो चुके थे, अर्थात् वृक्षों के बिना। क्योंकि बीच में जल चले जाने से वृक्ष आर्द्र हो गये तथा विद्रुम अर्थात् प्रवाह के साथ श्रेष्ठ रत्न विराजमान हैं, उन पर्वतों से जो उरग अर्थात् सर्प बाहर निकल चुके हैं, उनके द्वारा। किस प्रकार वे निकले हैं ? पंक्तिबद्ध होकर सुशोभित हो रहे हैं, उनके द्वारा॥२॥

अन्यदाह :–

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम्॥३॥

और भी कहते हैं :–

स्फुरणशील, चञ्चल मछलियों के द्वारा, जलीय हाथियों के द्वारा, वक्रगामी सर्पों के द्वारा तथा बिखरे हुए रत्नसमूहों से पूर्ण यह सागर; जिसके जल को पी लिये जाने पर जो विपरीत अवस्था को प्राप्तकर चुका है, उसने देवताओं के वैभव को प्राप्त किया॥३॥

येन महोदधिः समुद्रः। आपदां पदगतोऽपि विपदां स्थानं प्राप्तोऽपि। पीतसलिलः पीतजलोऽपि। अमरश्रियं सुरलक्ष्मीम्। यापितः प्रापितः। कीदृशः ? प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तस्तिमयश्चलन्तो मत्स्याः। जलेभा जलहस्तिनः। जिह्मगाः सर्पा यस्मिन्। जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः। एते जलप्राणिनो जलाभावात् प्रस्फुरन्ति। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः क्षिप्तः परिक्षिप्तो रत्नानां मणीनां निकरः समूहो यस्मिन्। तथा सुरलोकः प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तश्चलन्तो ये सुरास्तिमिजलेभजिह्मगाः। तिमिगा मत्स्यवाहनाः केचित्। यथा वितस्ता नदी। केचिज्जलगाः पानीयस्थाः। यथा समुद्रे भगवान्नारायणः। केचिदिभगा हस्तिनो गताः। यथेन्द्र ऐरावतस्थः। केचिज्जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः कुटिलगतयः। यथा भौमादयस्ताराग्रहा वक्रिताः। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः सोऽपि॥३॥

जिसके द्वारा समुद्र विपत्ति के स्थान को प्राप्त होकर भी, जल पी लिये जाने पर भी देवश्री को प्राप्त कर लिया। किस प्रकार ? प्रस्फुरणशील अर्थात् चलायमान मछलियों, समुद्री हाथियों, जिह्म अर्थात् वक्राकार चलनेवाले सर्प; ये जलजीव जल के अभाव में स्फुरित अर्थात् चञ्चल होते हैं; तथा प्रक्षिप्त रत्नों,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मणियों के समूह जिसमें हों। देवलोक में चलते हुये वे देव जो कुछ मत्स्यवाहन जैसे वितस्तानदी में, कुछ जल में स्थित देव जैसे समुद्र में भगवान् विष्णु। कुछ हाथियों पर गमनशील जैसे ऐरावत पर बैठनेवाले, कुछ देव जिह्म गतिशील अर्थात् वक्रगतिवाले जैसे कि भौमादि ताराग्रह, तथा जो वक्रित होते हैं और प्रक्षिप्त रत्नसमूहोंवाले जो देवता हैं, वे भी ॥३॥

अथान्यदाह :–

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम्।
सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम्॥४॥

और भी कहते हैं :–

जल का अपहरण हो जाने के पश्चात् भी नदियों का स्वामी समुद्र सञ्चरणशील मछलियों, सीपियों तथा शङ्खों से भरा हुआ और तरङ्गायमान श्वेत कमल के समान हंसों से सुशोभित शरत्कालीन तडाग की शोभा को धारण करता है ॥४॥

सरितां नदीनाम्। पतिः प्रभुः समुद्रः। सलिले जलेऽपहृतेऽपि सति। शरदि शरत्काले। सरसो महोदकाधारस्य संबन्धिनीं रुचिं दीप्तिं। बिभर्ति धारयति इव। कीदृशस्य सरसः? सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः। सतरङ्गाणि तरङ्गेण वीचिसमूहेन सहितानि सितोत्पलानि श्वेतकुवलयानि पुष्पविशेषान् हंसान् पक्षिविशेषांश्च बिभर्ति धारयति यत् तस्य। समुद्रः कीदृशः? प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः। प्रचलद्भिस्तिमिभिर्मत्स्यैः। शुक्तिजैः प्राणिभिः शङ्खैश्च चितो व्याप्तः। प्रचलन्तो मत्स्यास्त एव तरङ्गाः। शुक्तिजाः सितोत्पलानि। शङ्खा हंसा इति॥४॥

नदियों के स्वामी समुद्र; जल का अपहरण हो जाने पर भी शरद्ऋतु में सजल महासमुद्र की कान्ति को धारण करता है। किस प्रकार के सरस (तडाग) का? तरङ्गसहित, श्वेतकमल के पुष्प विशेष और हंस नामक पक्षी विशेष को धारण करता है, उसके समान। किस प्रकार का समुद्र? चलती हुई मछलियों के द्वारा, सीपी आदि प्राणियों तथा शङ्खों से परिव्याप्त। चलती हुई मछलियाँ ही तरङ्ग के रूप में, शुक्ति-समूह श्वेत कमल के सदृश और शङ्ख हंसों की भाँति विद्यमान् हैं ॥४॥

अथान्यत् :–

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युतिः।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः॥५॥

अन्य भी कहते हैं :–

तिमि अर्थात् मछलियाँ श्वेत बादलों के समान, तारों के समान मणियाँ, चन्द्रमा के सदृश स्फटिकमणि तथा शरत्कालीन सुषमा की भाँति जलरहित चमकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ प्रदेश और सर्पों से निकलने वाली मणियों के द्वारा राहु आदि ग्रहों के सादृश्य को प्राप्तकर वह समुद्र आकाश की शोभा को प्राप्तकर लिया था ॥५॥

यः कुटिलगेशं समुद्रम्। वियदाकाशम्। चकार कृतवान्। कुटिलमस्पष्टं गच्छन्तीति कुटिलगा नद्यः। तासामीशं स्वामिनम्। तिमयो मत्स्याः। त एव सिताः शुक्ला अम्बुधरा मेघा यस्मिन् तत्तथाभूतम्। मणयो रत्नानि तान्येव दीप्तिमत्त्वात्तारका यस्मिन्। स्फटिको मणिविशेषः। स एव स्थूलत्वाच्चन्द्रः शशी यस्मिन्। अनम्बु जलाभावः। तदेव शरद्द्युतिः शरत्कान्तिः। अभिव्यक्तत्वाद्यस्मिन्। फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहम्। फणिनः सर्पाः। तेषां फणासु मूर्धसु यान्युपला रत्नानि चन्द्रकान्तसूर्यकान्तप्रभृतीनि। तेषु ये रश्मयः। त एव तत्सदृशत्वाच्छिखिग्रहाः केतवो यस्मिन्। यत आकाश एत एव सम्भवन्तीति ॥५॥

जो कुटिलगेश अर्थात् समुद्र आकाश का रूप धारण कर लिया। कुटिल अर्थात् अस्पष्ट गमन करने वाली नदियाँ, उनका स्वामी। तिमि अर्थात् मछलियाँ श्वेत बादलों के सदृश जिसमें हैं। मणियाँ अर्थात् रत्न दीप्तिमान् तारों की भाँति जिसमें स्थित हैं, स्फटिक नामक विशेष प्रकार की मणि चन्द्रमा के रूप जिसमें विद्यमान है, जलशून्य स्थिति शरत्-प्रकाश के सदृश है। जलाभाव के कारण जिसमें सभी पदार्थ प्रकट रूप से दृश्य हो रहे हैं। फणि अर्थात् सर्पों, उनके फनों अर्थात् शीर्षभाग पर चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि रत्नों की किरणें, उन्हीं शिखिग्रहों अर्थात् केतुओं का जिसमें सन्निवेश है। क्योंकि आकाश में ये ही (ऊपर वर्णित) पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥५॥

अथ समुद्रवर्णनानन्तरं विन्ध्यवर्णनामाह :—

[1]दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्गमुद्भ्रान्तविद्याधरांसावसक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहावलम्बाम्बरा-त्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितम्।

करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारिद्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान् बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान् धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम्।

गगनतलमिवोल्लिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुमत्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीहृष्टमन्द्रस्वनैः शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः।

रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्यासितोद्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहारविप्रान्वितं विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम् ॥६॥

समुद्र-वर्णन के पश्चात् विन्ध्यपर्वत का वर्णन करते हैं —

सूर्य के रथ के मार्ग को अवरुद्ध करने को उद्यत जो गतिशील शिखर, उससे स्तब्ध विद्याधरों के कन्धों पर संलग्न प्रियाओं की व्याकुलता से गोद में

१. सप्तदशरगणविशिष्टं समुद्रदण्डकनाम वृत्तमेतत्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाहितकर अपने शरीर पर लटकते हुए वस्त्रों के उड़ने से लहराते हुए ध्वज के समान सुशोभित हुआ। हाथियों के गण्डस्थल से स्रवित मदमिश्रित रक्त को चाटने की अभिलाषा से भ्रमरों की पंक्तियाँ हाथियों के शीर्षभाग को वाणपुष्प के समान घेरकर धारण किये हुए, गुफाओं के भीतर से बहनेवाले झरनों पर सिंहों से युक्त हैं। आकाश में उत्कीर्ण हाथियों से आकृष्ट, पुष्पित वृक्षों पर भयभीत चकित मतवाली भ्रमरपंक्तियों की प्रमुदित मधुर-ध्वनियों से समृद्ध, जङ्गली श्वान, भालू, सिंह, वानर आदि शैलकूट से सुसेवित हैं।

एकान्त में कामासक्त रेवानदी के द्वारा पति के साथ लिपटी हुई-सी, देवताओं से युक्त उद्यान-तडागसहित, निराहार फल-मूल तथा वायु का आहार करने वाले ब्राह्मणों से युक्त विन्ध्यपर्वत को जिसने स्तम्भित (अवरुद्ध) कर दिया; उस अगस्त्यमुनि के उदय के वर्णन का श्रवण करें॥६॥

एवंविधं विन्ध्यं विन्ध्यपर्वतम्। योऽगस्त्यमुनिरस्तम्भयत् स्तम्भितवान् तस्योदयो दर्शनम्। श्रूयतामाकर्ण्यताम्। कीदृशं विन्ध्यम् ? दिनकरस्यादित्यस्य। योऽसौ रथः स्यन्दनम्, तस्य मार्गः पन्थाः। तद्विच्छित्तये तन्निवारणाय। अभ्युद्यतमाभिमुख्येनोद्यतं यत्। अत एवाभ्युद्यतत्वाच्चलच्छृङ्गम्। चलिता न कम्पमानानि शृङ्गाणि शिखराणि यस्य तम्। उद्भ्रान्ता भ्रान्तिमापन्नाः। तेषु च शृङ्गेषु ये स्थिता विद्याधरा देवयोनयः स्तेषां येऽसाः स्कन्धाः। तेष्वंसेषु या अवसक्ता अवलग्नाः प्रिया वल्लभाः स्त्रियः। ताभिर्व्यग्राभिः सोद्यमाभिः। दत्ता विन्यस्ताः। अङ्गेषूत्सङ्गेषु विद्याधराणां ये देहाः शरीराणि। तेषु यान्यवलम्बन्ते अम्बराणि वस्त्राणि। तान्यतिशयेनोच्छ्रितान्युच्चतराणि। तानि चोद्धूयमानानि कम्पमानानि। तान्येव ध्वजाः सादृश्याद् ध्वजरूपाणि। तैः शोभितं भूषितम्।

करिकटेति। मृगेन्द्रैः सिंहैः सनाथीकृतमधिष्ठितम्। अन्तर्मध्ये या दर्यो गुहाः, तासु यन्निर्झरम्। जलं नियतं झरति स्रवतीति निर्झरम्। गुहाप्रदेशे प्रपातपानीयम्। यस्मिन् विन्ध्ये तं तथाभूतम्। कीदृशैः सिंहैः ? करिणो हस्तिनः। तेषां ये कटाः कुम्भाः, तेषु यो मदो दानाम्बु, तेन मिश्रं संयुक्तम्। यद्रक्तमसृक् तस्य योऽवलेह आस्वादः, तेन योऽनुवासः सौरभ्यम्। तदनुसारिणस्तदन्वेषणपरा ये द्विरेफा भ्रमराः। ते अवलीनाः संलग्ना उत्तमाङ्गेषु शिरःसु येषां तैः सिंहै। बाणपुष्पैर्वाणकुसुमैः कृतान् रचितान्। उत्तंसकान् शिरोमाला धारयद्भिरिव।

गगनतलमिति। शैलकूटैः पर्वतशृङ्गैः। गगनतलमाकाशतलम्। उल्लिखन्तमिव। कीदृशैः शैलकूटैः ? प्रवृद्धैर्वृद्धिमुपपन्नैः। गजैर्हस्तिभिः। आकृष्टा आकर्षिताः फुल्लाः कुसुमिता ये द्रुमा वृक्षास्तैर्यस्त्रासः कम्पः, तस्माद्ये विभ्रान्ता भ्रान्तिमापन्ना मत्तद्विरेफा भ्रमराः, तेषामावली पङ्क्तिः। तस्या हृष्टाया ये मन्द्रा मधुराः स्वनाः शब्दाः। ते विद्यन्ते येषां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैस्तथाभूतैः शैलकूटैः। अत्र भ्रमरपङ्क्तिर्वर्णपङ्क्तिरिव। तथा तरक्षैर्वनश्वभिः। ऋक्षैर्वानरैः प्राणिविशेषैर्वा। शार्दूलैः सिंहजातिभिः। शाखामृगैर्मर्कटैः। अध्यासिताः सेविता ये शैलकूटास्तैः।

रहसीति। कीदृशं विन्ध्यम् ? रहसि निर्जने। रेवया मदनसक्तया कान्तया वल्लभया कामिन्येवोपगूढं परिष्वक्तम्। रेवा नर्मदा। यतः सा तत्रैव बहुशो गता। सा च मदनसक्ता। मदनवृक्षावृतत्वादिति। सुरैर्देवैरध्यासितानि निषेवितानि, उद्यानानि उपवनानि यस्मिन्। तथाम्भोऽशनैर्जलाहारैः। अनन्नैर्निराहारैः। मूलाहारैर्मूलभक्षैः। अनिलाहारैर्वायुभक्षैश्च। विप्रैर्ब्राह्मणैर्मुनिभिरन्वितं संयुक्तं विन्ध्यम्॥ ६॥

विन्ध्यपर्वत इस प्रकार है; जिसको अगस्त्यमुनि ने स्तम्भित कर दिया, उसके उदय अर्थात् दर्शन को सुनें। किस प्रकार का विन्ध्यपर्वत ? सूर्य का जो रथ है; उसके पथ को रोकने के उद्देश्य से प्रमुखता से तत्पर (विन्ध्यपर्वत) था। इस कारण उसके समुद्यत होने से चलायमान शिखर थे। उसके शिखर चलायमान थे, कम्पित नहीं थे, यह अभिप्राय है। उनके शिखरों पर जो विद्याधर अर्थात् देवयोनियाँ स्थित थीं, उनके कन्धे उद्भ्रान्त अर्थात् चकित हो गये। उन कन्धों के आश्रय से अवस्थित स्त्रियाँ जो विकल होकर उन (विद्याधरों) पर अवलम्बित हो गयी थीं। विद्याधरों के शरीर पर जो वस्त्र अवलम्बित थे, वे अत्यधिक ऊँचे होकर कम्पायमान लहरा रहे थे। वे ध्वज के समान थे, जिनके द्वारा वह पर्वतराज सुशोभित हो रहा था।

सिहों के द्वारा वह अधिष्ठित था। बीच में जो गुफाएँ थीं, उनके झरनों में अनवरत रूप से स्रवित जल को निर्झर कहते हैं। गुफा में जल का प्रपात जिस विन्ध्यपर्वत पर विद्यमान् है, इस प्रकार का यह पर्वत। किस प्रकार के सिंहों के द्वारा ? हाथियों के जो कुम्भ (गण्डस्थल), उनमें जो मद-जल, उनसे मिश्रित जो रक्त, उसके सुगन्ध के आस्वादन हेतु अन्वेषण में संलग्न जो भ्रमर, वे सिंहों के शिर पर संयुक्त हो गये। फिर ऐसा लगता था, मानो वे वाण-पुष्प की माला को अपने शिर पर धारण किये हुए हैं।

पर्वत शिखरों से आकाश में उल्लिखित जैसा। किस प्रकार के पर्वतशिखरों से ? बढ़े हुए गजों के द्वारा आकृष्ट पुष्पित-वृक्षों से कम्पन उत्पन्न होने पर भ्रान्त-भ्रमरों की पंक्तियों से प्रसन्नता के साथ की गई मधुर गुंजनों से गुंजित, वह विन्ध्य-पर्वत था। यहाँ पर भ्रमरों की पंक्ति अक्षरों की पंक्ति की तरह है। तथा तरक्ष अर्थात् जंगली कुत्तों द्वारा अथवा प्राणिविशेष ऋक्ष (भालू) के द्वारा, सिंह-जातियों और वानरों से सेवित वह शैलकूट (पर्वत शिखर) था।

विन्ध्य कैसा है ? एकान्त में कामासक्ता की भाँति, मदन वृक्षों से सम्पृक्त कामिनी के सदृश रेवा नदी तल्लीन है। क्योंकि वह उस प्रदेश में अधिकांशतया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयी हुई है, और वह नदी मदन-वृक्षों से ढकी हुई रहती है। जिस पर्वत में उद्यान देवों के द्वारा सुसेवित रहते हैं। तथा जलाहार के द्वारा, बिना अन्न के निराहार रखने वाले, मूल (कन्द) का आहार करनेवाले, वायु मात्र पीने वाले ब्राह्मणों, मुनियों से संयुक्त वह विन्ध्य-पर्वत है ॥६॥

तथाऽगस्त्योदयप्रभावमाह :—

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥७॥

अगस्त्य के उदय का प्रभाव कहते हैं :—

अगस्त्य नामक मुनि के (तारे के) उदित होने पर मिट्टी-पङ्क से प्रदूषित जल फिर से स्वच्छ हो जाते हैं, जिस प्रकार सज्जनों के हृदय स्वभाव से ही स्वच्छ होते हैं ॥७॥

अगस्त्यनाम्नो मुनेरुदये उद्गमे। पुनर्भूयः। अम्बूनि पानीयानि। स्वभावात् प्रकृत्यैव। निर्मलानि प्रसन्नानि भवन्ति। कीदृशानि ? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कोर्भूम्याः समायोगः संश्लेषः कुसमायोगः। तस्मात् कुसमायोगाद्यन्मलं पङ्कः। तेन प्रदूषितानि दुष्टानि यानि तान्यगस्त्यदर्शनान्निर्मलानि भवन्ति। वर्षासु कुसमायोगस्तेषाम्। यथा सतां साधूनां उदये दर्शने हृदयानि पुनर्निर्मलानि भवन्ति। कीदृशानि ? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कुत्सितैर्जनैर्योऽसौ समायोगस्तस्माद्यन्मलं पापं तेन प्रदूषितानि दुष्टानि। पुनः स्वभावादेव निर्मलानि भवन्ति। साधुदर्शनात् पापक्षय उत्पद्यते यावत् ॥७॥

अगस्त्य नामक मुनि का उदय हो जाने पर पुनः जल प्राकृतिक रूप से निर्मल अर्थात् स्वच्छ हो जाते हैं। किस प्रकार से ? कु अर्थात् भूमि (मिट्टी) का संयोग होने से मल अर्थात् पंक (कीचड़) के द्वारा जो प्रदूषित हो जाते हैं, वे जल अगस्त्य के दर्शन से निर्मल (शुद्ध) हो जाते हैं। किस प्रकार से ? कु अर्थात् कुत्सित (दुष्ट) लोगों के संसर्ग से जो मल अर्थात् पाप होते हैं, उनसे दुष्ट भाव को प्राप्त व्यक्ति साधुजनों के दर्शन से स्वाभाविक रूप से निर्मल अर्थात् पापरहित हो जाते हैं ॥७॥

अथ विन्ध्यवर्णनानन्तरं शरद्वर्णनमाह :—

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत् सहासा ॥८॥

अब विन्ध्यवर्णन के पश्चात् शरद्-वर्णन करते हैं :—

दोनों पार्श्व में चक्रवाक पक्षियों से युक्त, कलरव करते हुए हंस पंक्तियों का पोषण करती हुई नदियों से परिपूर्ण, जिसकी आगे की दन्तपंक्ति ताम्बूल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की लालिमा से लाल है, ऐसी हास्ययुक्ता स्त्री के समान शरद् ऋतु सुशोभित हो रही है ॥८॥

शरत् सहासा हासयुक्ता योषा स्त्रीव विभाति शोभते। कीदृशी योषा? ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती। ताम्बूलेन रक्ता रञ्जिता ये दन्ता रदाः। तेभ्योऽग्रदन्ताः पुरोवर्तिनो रदा उत्कषिता उद्घृष्टा यया सा तथाभूता स्त्री। शरत्कीदृशी? पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्। पार्श्वद्वयमधिष्ठितं संयुक्तम्। चक्रवाकैः पक्षिविशेषैर्लोहितवर्णैर्यस्याः सस्वनायाः शब्दयुक्ताया हंसपङ्क्तेस्तामापुष्णती आपोषयमाणा। नदीनां प्रत्यहं जलाल्पत्वात् पुलिनानि व्यक्तानि भवन्ति। तानि च हंसैः सेव्यन्ते। अत एवोत्प्रेक्ष्यते :– [1]ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती योषा सहासेव ॥८॥

शरत् ऋतु हासयुक्ता स्त्री की भाँति शोभित हो रही है। किस प्रकार की स्त्री? ताम्बूल से रञ्जित जो दाँत, इस प्रकार के उभरे हुए अग्रदन्तोंवाली स्त्री। शरद् ऋतु किस प्रकार की? दोनों पार्श्व (बगल) में रक्तवर्ण के चक्रवाक नामक पक्षी विशेष से संयुक्त, शब्दायमान हंसपंक्तियों का पोषण (सम्बर्धन) करती हुई नदी वाली। न्यून जल होने से नदी के तट स्पष्टतया प्रतिदिन दिखाई पड़ने लगते हैं, और उन पर हंस विराजमान होते हैं। इस लिए ताम्बूलरंजित दाँतोंवाली स्त्री के साथ उत्प्रेक्षा की गयी है ॥८॥

अन्यदप्याह :–

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ॥९॥

और भी कहते हैं :–

नील कमल तथा श्वेत कमल; इन दोनों से युक्त, भ्रमणशील भ्रमरों से विभूषित शरद् ऋतु, आक्षेपसहित भौंह से तिरछी दृष्टि के द्वारा देखती हुई कामासक्ता प्रौढा स्त्री के सदृश प्रतीत होती है ॥९॥

शरत् सस्मरा सकामा विदग्धयोषा प्रौढाङ्गनेव विभाति शोभते। कीदृशी विदग्धयोषा? सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा। भ्रूलतयोर्योऽसावाक्षेपश्चलनम्। तेन यः कटाक्षो नयनविभ्रमः। तेन सहितं वीक्षणमवलोकनं यस्याः। शरत् कीदृशी? इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता। इन्दीवरं नीलोत्पलम्। तस्यासन्ने उभयपार्श्वस्थे ये सितोत्पले। तथाभूतेनेन्दीवरेणान्विता संयुक्ता। अनेन नेत्रस्थ सादृश्यमुक्तम्। यतो नेत्रमपि मध्यभागात् कृष्णमुभयपार्श्वयोः सितं भवति। तथा भ्रमन्तश्चलन्तः। ये षट्पदा भ्रमराः। तेषां या पङ्क्तिरवलिः। तया भूषिता संयुक्ता। अनेन

---

१. शरदि हंसपङ्क्तिर्दन्तपङ्क्तिस्तत्र चक्रवाकास्ताम्बूलरक्तोपमा इति भावः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्रूसादृश्यमुक्तम्। यतो नयनस्योर्ध्वभागस्था भ्रूलता भवति। अत एवोत्प्रेक्ष्यते :– सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषा सस्मरेव ॥ ९॥

शरत् ऋतु कामासक्ता प्रौढा स्त्री के समान शोभित होती है। कैसी वह प्रौढा स्त्री ? भ्रूलताओं के चलन से कटाक्ष करती हुई जिसकी दृष्टि हो। शरत् ऋतु किस प्रकार की ? इन्दीवर अर्थात् नील कमल, उसके समीप दोनों तरफ स्थित श्वेत-कमल, इस प्रकार के नील कमल से संयुक्त। इस उपमा से नेत्र का सादृश्य कहा गया है। क्योंकि नेत्र का भी मध्य-भाग काला और दोनों तरफ ऊजला होता है। तथा चलते हुए षट्पद अर्थात् भ्रमरों की जो पंक्ति उससे सुशोभित। इससे भौंहों का सादृश्य कहा गया है। क्योंकि नेत्रों के ऊर्ध्वभाग में भौंह होती है। इस लिए भौहों सहित नेत्रों से कटाक्षपूर्ण कामासक्ता प्रौढा स्त्री की उत्प्रेक्षा की गयी है ॥९॥

अथान्यदाह :–

इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं
द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म
वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥ १०॥

और भी कहते हैं :–

बादलों के हट जाने से रात्रि में चन्द्रमा के ऐश्वर्य (सौन्दर्य) को देखने की इच्छा से वापी (बावली) रूपी नायिका तरङ्गों की कंगनवाली, भ्रमर से युक्त कुमुद पुष्पवाले पलकों को खोलती है, जिस प्रकार काली-काली आँखों के तारेवाली नायिका के नेत्र अपने प्रियतम के लिए खुलते हैं ॥१०॥

इन्दोश्चन्द्रमसः। पयोदानां मेघानाम्। विगमाद्विशेषोपगमात्। उपहिता वृता व्याप्ता या विभूतिः कान्तिः। तां द्रष्टुमवलोकयितुम्। वापी नलिनी। निशासु रात्रिषु। कुमुदं कैरवम्। विलोचनं नेत्रमिवोन्मूलयति विकाशयति। कीदृशी वापी ? तरङ्गवलया। तरङ्गा ऊर्मिसमूहाः। त एव वलयः प्रकोष्ठभूषणं यस्याः। कीदृक् कुमुदम् ? अलिनिलीनदलम्। अलिर्भ्रमरः स निलीनः संलग्नो दलेषु पत्रेषु यस्मिन्। सुपक्ष्म शोभनं पत्रम्। तदेवासितं कृष्णम्। तारकमन्तर्मध्ये यस्मिन्। अत एवोत्प्रेक्ष्यते :– नयनमिव। यतो नयनं सुपक्ष्म भवति। शोभनानि पक्ष्माणि अक्षिलोमानि यस्य तत्तथा। असिततारकान्तं कृष्णतारकामध्यम्। नायिका चिरदर्शनाद्वल्लभास्यं सोत्कण्ठा समुद्वीक्षत इति ॥ १०॥

इन्दु अर्थात् चन्द्रमा, पयोद अर्थात् बादल, विगम अर्थात् विलोप, इनसे प्राप्त कान्ति (शोभा) को देखने के लिए तडाग रात्रि में कुमुद नामक जल के फूल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूपी नेत्र को खोलती है। वापी (तडाग) किस प्रकार की ? जिसकी तरङ्गे कर-आभूषण कंगन के सदृश है। कुमुद पुष्प किस प्रकार का ? जिसके पत्तों (पुष्पदलों) पर भ्रमर संलग्न है। जिसके पुष्पदल के मध्य में काले तारे की भाँति सुन्दर पलक के समान पत्र हैं। इसलिए यहाँ उत्प्रेक्षा की जाती है कि नेत्र के समान। नेत्र सुन्दर पलक (नेत्ररोम) सहित है। बीच में काले तारे (कनीनिका) हैं। इस प्रकार कोई नायिका बहुत समय के बाद प्राप्त अपने प्रियतम के मुख को उत्कण्ठा से निरखती है ॥१०॥

अथ भूमेः शोभामुपवर्णयितुमाह :–

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने ॥ ११॥

अब भूमि की शोभा के वर्णन में कहते हैं :–

विविध प्रकार के कमल-दलों एवं हंस, कोक, कारण्डव नामक पक्षियों से भरे हुए, रत्नों तथा पर्याप्त फल-फूलों से सुसज्जित तडाग रूपी हाथों से, मानो यह भूमि अगस्त्य नामक मुनि के लिए अर्घ प्रदान करती है ॥११॥

भूर्भूमिः। अगस्त्यनाम्ने अर्घं यच्छतीव ददाति इव। कीदृशी भूः ? नानाविचित्राम्बुज-हंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता। नानाप्रकारा विचित्रा ये अम्बुजाः पद्मादयः। तथा हंसकोककारण्डवाः पक्षिविशेषाः। तैर्यान्यापूर्णानि तडागानि। तान्येव हस्ता यस्याः। कैरर्घं यच्छतीव ? रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्चेति। त एवाम्बुजादयो हस्तस्थिता रत्नादीन्युपलक्ष्यन्ते। तै रत्नैः। प्रभूतैर्बहुभिः। तथा कुसुमैः पुष्पैः फलैश्चेति। यतो भगवते रत्नादिभिरर्घो दीयत इति ॥११॥

यह भूमि अगस्त्य नामक मुनि को अर्घ देती हुई की तरह है। भूमि किस प्रकार की है ? विविध प्रकार के जो बहुवर्णी कमलादि पुष्प तथा हंस, कोक, कारण्डव पक्षी विशेष, इनसे परिपूर्ण तडाग (तालाब) ही जिसके हाथ हैं, ऐसी भूमि। किन पदार्थों से अर्घ देती है ? प्रचुर रत्नों तथा पुष्पों और फलों से। वह कमल आदि फूल ही हाथ में रखे हुए रत्नों के समान उपलक्षित होती हुई अर्घ्य देती है। क्योंकि भगवान् को रत्नादि पदार्थों से अर्घ दिया जाता है ॥११॥

अथ भगवतः प्राधान्यमाह :–

सलिलममरपाङ्गयोज्झितं यद् घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ॥ १२॥

अब भगवान् अगस्त्य का महत्त्व बताते हैं :–

इन्द्र के कहने पर जिस जल का त्याग (मुख से छोड़ा) किया गया, जो बादलों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से लिपटे हुए सर्पों के फणों से निःसृत विष के द्वारा प्रदूषित हो गया, वह अगस्त्य मुनि के दर्शन से कल्याणकारी हो जाता है ॥१२॥

अमरप इन्द्रः। तदाज्ञया यत्सलिलं जलम्। उज्झितमुत्सृष्टम्। भुजङ्गैः सर्पैः। कीदृशैः? घनपरिवेष्टितमूर्तिभिः। घनैर्मेघैः। परिवेष्टिता मूर्तयो देहा येषां तैः। कीदृशं जलम्? फणिजनित-विषाग्निसम्प्रदुष्टम्। फणिनः सर्पाः। तेभ्यो जनितमुत्पादितं यद्विषम्। तदेवाग्निर्वह्निः। तेन सम्प्रदुष्टं सम्यग् दूषितम्। तदगस्त्यदर्शनेन शिवं श्रेयस्करं भवति॥१२॥

अमरप अर्थात् इन्द्र की आज्ञा से जो जल छोड़ा गया। सर्पों के द्वारा, किस प्रकार के सर्पो के द्वारा। जल किस प्रकार का? सर्पोत्पन्न विषाग्नि से प्रदूषित। फणी अर्थात् सर्प, इनके द्वारा सम्पूर्ण रूप से जल प्रदूषित हो गया। वह अगस्त्य के दर्शन से कल्याण करनेवाला हो जाता है॥१२॥

अथान्यदप्याह :—

स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः।
मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्घविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम्॥१३॥

अन्य भी कहते हैं :—

स्मरण मात्र से जो पापों को दूर कर देता है, इस प्रकार के वरुणपुत्र अगस्त्य की स्तुतियों का क्या कहना? मुनियों ने इनके अर्घ की जो विधि बतलायी है, उसको मैं राजाओं की हितकामना से कहता हूँ॥१३॥

वरुणस्याङ्गरुहः पुत्रोऽगस्त्यमुनिः स्मरणादपि स्मरणमात्रादपि नामसङ्कीर्तनमात्रात्पाप-मेनोऽपाकुरुते निवर्तयतीति। किमुत किं पुनः स्तुतिभिः स्तोत्रैः। मुनिभिर्गर्गादिभिर्यथा येन प्रकारेणास्यार्घविधिः कथित उक्तः। तथा तेनैव प्रकारेण नरेन्द्रस्य राज्ञो हितं कथयामि वच्मि। तथा च समाससंहितायाम् :—

भानोर्वर्त्म विघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलस्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभृत् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयश्च्युतिकृतश्चारः समासादयम्॥ इति॥१३॥

वरुण से उत्पन्न अगस्त्यमुनि का नाम स्मरणमात्र से पाप को दूर करता है। पुनः स्तुति के द्वारा क्या कहना? गर्गादि मुनियों द्वारा जिस प्रकार से इनके अर्घ की विधि कही गयी है, उसे उसी प्रकार से राजाओं के हित में कहता हूँ। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :—

सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए विन्ध्याचल के विवर्धित शिखरों को जिसने रोक दिया, वातापी असुर को जिस मुनि ने उदरस्थ कर लिया,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिनके द्वारा देवताओं के शत्रु असुर पचा लिये गये, जिस तपोधन मुनि के द्वारा समुद्र पी लिया गया और जो दक्षिण दिशा को विभूषित करते हैं, उस अगस्त्यमुनि का हम गुणगान करते हैं, जिन्होंने पुनः जल को सञ्चरण हेतु छोड़ दिया ॥१३॥

अथास्योदयलक्षणमाह :–

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥ १४॥

अब अगस्त्यमुनि के उदय का लक्षण कहते हैं :–

प्रत्येक प्रदेश की स्थिति को गणितीय-क्रिया के द्वारा जानकर दैवज्ञ अगस्त्य-दर्शनकाल का निर्देश करें। उज्जयिनी नगरी में कन्याराशि के पूर्व सूर्य के सात अंश (सिंह के २३ अंश) पर अगस्त्य का दर्शन होता है॥१४॥

अस्यागस्त्यमुनेः संख्याविधानाद् गणितविधानात् प्रतिदेशं देशं देशं प्रति सन्दर्शनमुदयं विज्ञाय ज्ञात्वा ज्ञः पण्डित आदिशेद् वदेत्। तच्च दर्शनमुज्जयिन्यां स्फुटभास्करस्य स्फुटादित्यस्य कन्यां कुमारीं स्वराख्यैर्भागः सप्तभिरंशैरगतस्याप्राप्तस्य भवति। सिंहस्य भागत्रयोविंशतिं भुक्त्वेत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम् :–

सप्तभिरंशैः कन्यामप्राप्ते रोमके तु दिवसकरे।
दृश्योऽगस्त्योऽवन्त्यां तत्समपूर्वापरेऽप्यवम् ॥ इति ॥ १४॥

अगस्त्यमुनि का सङ्खयाविधान अर्थात् गणितविधान से प्रत्येक देश का उदय जानकर विद्वान् आदेश करें। वह दर्शन उज्जयिनी में स्पष्ट सूर्य के कन्याराशि के प्राप्त होने के सात अंश पूर्व ही होता है। अर्थात् सिंहराशि के २३ अंश के भोग होने पर दर्शन होता है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है :–

सूर्य के कन्याराशि के सात अंश पूर्व होने पर रोमकनगर में तथा अवन्तिनगरी में तथा तत्तुल्य पूर्वापर प्रदेशों में अगस्त्य दृश्य होता है ॥१४॥

अथार्घदानलक्षणमाह :–

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ १५॥

अब अर्घदान का विधान कहते हैं :–

किञ्चित् अरुण किरणों सहित रात्रि के अन्धकार में दक्षिण दिशा में दैवज्ञ द्वारा निर्देशित दिशाभाग में भूमि प्रयत्नपूर्वक राजा अगस्त्य को अर्घ दे ॥१५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूपो राजा प्रयतः संयत उर्व्यां भूम्यामर्घं प्रयच्छेद् दद्यात्। कस्मिन् काले ? अरुणरश्मिजालैररुणकरनिकरैर्नैशे रात्रिभवेऽन्धकारे तमसि ईषत् किञ्चित् प्रभिन्ने नष्टे। कस्यां दिश्यर्घं दद्यात् ? दक्षिणस्यां याम्यायां दिशि। कीदृशो राजा ? सांवत्सरावेदितदिग्भागः। सांवत्सरेण कालविदा आवेदितः प्रदर्शितो दिग्विभागो यस्य स तथाभूतः। यथेयं दक्षिणदिगस्यां भगवतो दर्शनमिति ॥१५॥

राजा संयत होकर भूमि पर अर्घ दे। किस समय ? अरुणकिरणों सहित रात्रि के अन्धकार में। अर्थात् अन्धकार कुछ-कुछ नष्ट हो चुका हो। किस दिशा में अर्घ दे ? दक्षिणदिशा में। किस प्रकार का राजा ? दैवज्ञ द्वारा निर्देशित दिशा में स्थित होकर। जैसाकि यह दक्षिणदिशा है, इस दिशा में भगवान् अगस्त्य का दर्शन करे ॥१५॥

कैरर्घं प्रयच्छेदित्याह :–

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च
रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यै-
र्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥१६॥

किन पदार्थों से अर्घ देना चाहिए; इसे कहते हैं :–

समयानुकूल उत्पन्न सुगन्धित पुष्पों, फलों तथा समुद्रोत्पन्न रत्न, सुवर्ण तथा वस्त्रों से, धेनु, वृषभ, पायस सहित पक्वान्नों से, दधि, अक्षत और सुगन्धित धूप, लेप से अगस्त्य को अर्घ देना चाहिए ॥१६॥

कालोद्भवैः सुकालजातैः। सुरभिभिः सुगन्धैः। कुसुमैः पुष्पैः। फलैश्च जातीफलादिभिः। तथा रत्नैर्मणिभिः। सागरभवैः समुद्रजातैः। कनकेन सुवर्णेनाम्बरैर्वस्त्रैः। तथा धेन्वा पयस्विन्या गवा वृषेण दान्तेन। परमान्नेन पायसेन युतैश्च भक्ष्यैरपूपादिभिस्तथा दध्ना क्षीरविकारेण। अक्षतैर्यवैः। सुरभिधूपैः सुगन्धधूपैर्विलेपनैरनुलेपनैः सुगन्धिभिश्च ॥१६॥

सुन्दर काल में उत्पन्न सुगन्धों, पुष्पों और जातीफल (जायफल) आदि फलों से, समुद्र में होने वाले रत्नों से, सुवर्ण और वस्त्रों से, दुधारू गाय, नियन्त्रित वृषभ, परमान्न अर्थात् खीर सहित पूआ इत्यादि भोज्य पदार्थ तथा दही, अक्षत, सुगन्धित धूप और सुगन्धि लेपन से अर्घ देना चाहिए ॥१६॥

अथार्घं दातुर्नृपस्य फलमाह :–

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः
प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः।
भवति यदि च दद्यात् सप्त वर्षाणि सम्यग्
जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥१७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब अर्घ-दाता राजा का फल कहते हैं :–

यदि राजा इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अर्घ देता है, तब वह रोगादि दोषरहित होकर प्रतिपक्षी को विजित कर लेता है। इसी प्रकार यदि सात वर्षों तक ठीक प्रकार से अर्घ दे तो वह समुद्र पर्यन्त भूमि का स्वामी हो जाता है ॥१७॥

नरपति राजा श्रद्दधानः श्रद्धावानिममर्घं दधानः प्रयच्छमाणः। प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षो भवति। प्रविगताः प्रनष्टा गदा रोगा दोषाश्च यस्य। तथा निर्जितोऽरातिपक्षः शत्रुपक्षो येन। यदि चानेन विधिना सम्यगविच्छिन्नं सप्त वर्षाणि दद्यात्तदा जलनिधिरशनाया भूमेः समुद्रमेखलाया उर्व्याः स्वामितां प्रभुतां याति गच्छति ॥१७॥

राजा श्रद्धापूर्वक इस अर्घ को देता हुआ रोगरहित तथा शत्रुपक्ष का विजेता होता है। प्रविगत अर्थात् विनष्ट, गद अर्थात् रोग, दोष और विजित कर लेता है शत्रुपक्ष को जो, वह राजा। यदि इस विधि से अनवरत सात वर्षों तक अर्घ दे, तो वह समुद्र रूपी मेखलावाली पृथ्वी का स्वामित्व प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

अथ ब्राह्मणविट्शूद्राणां फलमाह :–

द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान्।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१८॥

अब ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों का फल कहते हैं :–

ब्राह्मण यथाशक्ति प्रदत्त अर्घ के द्वारा वेदों, स्त्रियों और पुत्रों को प्राप्त करता है। वैश्य गोधन और शूद्र प्रचुर धन प्राप्त करता है, तथा वे सभी लोग रोगविनाश तथा धर्म के फल को प्राप्त करते हैं ॥१८॥

द्विजो ब्राह्मणो यथालाभं यथासम्भवमुपाहृतार्घो दत्तार्घः प्राप्नोति लभते वेदान्। प्रमदाः स्त्रीः। पुत्रानपत्यानि च। तथा वैश्यो यथालाभमुपहृतार्घो गां लभते। शूद्रो भूरि बहु धनं वित्तं प्राप्नोति। सर्वे ब्राह्मणवैश्यशूद्रा रोगक्षयं गदोपशमं धर्मफलं च प्राप्नुवन्ति ॥१८॥

ब्राह्मण यथासम्भव अर्घ देकर वेदों, स्त्री तथा पुत्रों को प्राप्त करता है। वैश्य यथासम्भव अर्घ देकर गोसम्पत्ति पाता है। शूद्र अधिक धन को पाता है। सभी ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र रोगशमन तथा धर्मफल को प्राप्त करते हैं ॥१८॥

अथोदितस्य लक्षणमाह :–

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं
धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो[1] भयाय।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च
कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥१९॥

---

१. अत्र कर्तरि ल्युट् न तु भावे ल्युडिति बोध्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अगस्त्योदय का लक्षण :–

अगस्त्य रूक्ष हो तो रोगों को करता है। कपिलवर्ण का अनावृष्टि तथा धूम्रवर्ण का गायों के लिए अशुभकारक, स्फुरित हो तो भयदायक होता है। मजीठ वर्ण का हो, तो क्षुधा और युद्ध को तथा सूक्ष्म दृश्य हो, तो नगर का अवरोध होता है॥१९॥

अगस्त्यनामा अगस्त्यमुनिः परुषो रूक्षो रोगान् करोति। कपिलः कपिलवर्णोऽवृष्टिमवर्षणं करोति। धूम्रो धूम्रवर्णो गवामशुभकृदनिष्टफलं करोति। स्फुरणः चलनो भयाय भवति। माञ्जिष्ठरागसदृशो लोहितवर्णः क्षुधं दुर्भिक्षं करोति। आहवान् संग्रामांश्च करोति। अणुः सूक्ष्मः पुररोधं नगरवेष्ठनं करोति॥१९॥

अगस्त्य नामक मुनि परुष अर्थात् रूक्ष (कर्कश) होकर रोगों को उत्पन्न करता है। कपिलवर्ण का अवर्षण करता है। धूम्रवर्ण का गायों के लिए अनिष्टफल करता है। स्फुरण अर्थात सञ्चरणशील हो, तो भयकारक होता है। माञ्जिष्ठवर्ण का, रक्तवर्ण का हो तो दुर्भिक्ष तथा अति लघु दृष्ट होने पर नगर का अवरोध (घेराव) करता है॥१९॥

अथ वर्णलक्षणमाह :–

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं [1]किरणाग्रैः।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या॥२०॥

वर्ण का लक्षण कहते हैं :–

रजतकलश के समान अथवा स्फटिक के सदृश भूमि को अपनी किरणों से तृप्त करते हुए की भाँति यदि अगस्त्य दृष्टिगोचर हो, तो पर्याप्त अन्नसहित रोगरहित लोगों से पृथ्वी परिपूर्ण होती है॥२०॥

यदि शातकुम्भसदृशो रूप्यसदृशाभो दृश्यते। शातकुम्भशब्दः सुवर्णरजतयोर्द्वयोरपि वाचकः। अथवा स्फटिकाभः स्फटिककान्तिः। महीं भूमिं किरणाग्रै रश्मिप्रान्तैस्तर्पयन्निव दृश्यते। केचित् किरणौघैरिति पठन्ति। किरणौघै रश्मिसमूहैः। तदा भूर्मही प्रचुरान्ना प्रभूतसस्या। तथा अभयरोगजनाढ्या अभयैर्भयरहितैररोगैर्विगतगदैर्जनैर्जन्तुभिराढ्या बहुला भवति। तथा च गर्गः–

शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः।
दृश्यते यद्यगस्त्यः स्यात् सुभिक्षक्षेमकारकः॥
वैश्वानरार्चिप्रतिमैर्मांसशोणितकर्दमैः।
रणैर्भयैश्च विविधैः किञ्चिच्छेषायते प्रजा॥इति॥२०॥

---

१. किरणौघैरिति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि शातकुम्भ सदृश अर्थात् रजतसदृश प्रकाशवान् दिखायी पड़ता है, शातकुम्भ शब्द सुवर्ण और रजत (चाँदी); इन दोनों का वाचक है। अथवा स्फटिकमणि के समान कान्ति से वसुधा को अपने किरणाग्रभाग से तृप्त करता हुआ दिखाई पड़ता है। कुछ विद्वान् किरणौघ शब्द का पाठ करते हैं। किरणौध का अर्थ किरणों का समूह है। उस समय भूमि पर्याप्त अन्नसम्पदा तथा भयरहित, रोग-रहित प्राणियों से संयुक्त होती हुई अत्यन्त लाभकारी होती है। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है :–

शङ्ख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, गोदुग्ध, मृणाल और रजतवर्ण का यदि अगस्त्य दिखाई पड़ता है, तो सुभिक्ष और कल्याण करता है। अग्नि की लपटों के समान मांस, रक्त और पङ्क के सदृश हो तो वह युद्धभय तथा विविध प्रकार से स्वल्प प्रजा को ही शेष रखता है। अर्थात् अधिकांश का विनाश हो जाता है ॥२०॥

अथोदयास्तमयलक्षणं शुभाशुभं चाह :–

उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मरकमेव विधत्ते।
दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥ २१॥

अब उदयास्त के शुभाशुभ फल का लक्षण कहते हैं :–

उल्का-पिण्ड अथवा केतु से आहत होकर (अगस्त्य) दुर्भिक्ष तथा मरण करता है। वह हस्त नक्षत्र में सूर्य के जाने पर दृश्य होता है, तथा रोहिणी नक्षत्र को प्राप्त करने पर अस्त हो जाता है ॥२१॥

उल्कया विनिहतोऽभिताडितः शिखिना केतुना वा विनिहतः। तदा क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयं च विधत्ते ददाति। किलेत्यागमसूचने। सोऽगस्त्यमुनिः हस्तगतेऽर्के हस्तस्थे सूर्ये दृश्यते उदयं याति। तथा रोहिणीमुपगते रोहिण्यां संस्थितेऽर्केऽस्तमुपैति अदर्शनमायाति। यद्यप्यत्र गणितसाम्यं न भवति, तथाप्याऽऽचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम् :–

विषुवच्छायाद्वगुणा [1]पञ्चकृतिस्तत्कलास्ततश्चापम्।
छायात्रिसप्तकयुतं दशभिर्गुणितं विनाड्यस्ताः॥
ताभिः कर्कटकाद्यद्यल्लग्नं तादृशे सहस्रांशौ।
याम्याशावनितामुखविशेषतिलको मुनिरगस्त्यः॥

एवं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वादाचार्येणात्रोक्तम्। तथा च पराशरः –

हस्तस्थे सवितयुदेति रोहिणीसंस्थे प्रविशति।

---

१. पञ्चकृतिस्तिथियुतं ततश्चापमिति पाठः साधुर्विभाति। द्रष्टव्यौ पञ्चसिद्धान्तिकायां चतुर्दशाध्यायस्य ३९-४० श्लोकौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उल्का के द्वारा ताडित अथवा केतु के द्वारा ताडित हो, तब दुर्भिक्ष एवं जन-विनाश करता है। 'किल' शब्द शास्त्रान्तर का सूचक है। वह अगस्त्य मुनि सूर्य के हस्त नक्षत्र में जाने पर उदित होता है। तथा रोहिणी नक्षत्र में सूर्य के स्थित होने पर अस्त (अदृश्य) होता है। यद्यपि इस कथन में गणितीय-संगति नहीं होती है, तथापि आचार्य ने पूर्वशास्त्रों द्वारा प्राप्त इस विषय को देखकर उल्लिखित किया है। जैसाकि पञ्चसिद्धान्तिका में कहा गया है :–

पलभा के आधे को २५ से गुणाकर गुणनफल कला का चाप बनाकर उसमें पलभा का मान एवं ७३ जोड़ कर १० से गुणा करने पर विनाड़ी होती है। इससे कर्कादि जो लग्न प्राप्त हो, तत्तुल्य रवि के होने पर दक्षिण दिशारूपी कामिनी के मुखमण्डल पर तिलक के सदृश अगस्त्यमुनि उदित होते हैं।

(टिप्पणी – पञ्चसिद्धान्तिका के अध्याय १४, श्लोक ३९-४० को देखना चाहिए। यहाँ पर "पञ्चकृतिस्तिथियुतं ततश्चापम्" अर्थात् ५ के वर्ग में १५ जोड़कर तब चापात्मक मान-ग्रहण करना चाहिए। यह पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है)।

इस प्रकार प्राचीन शास्त्रों के पूर्वोक्त कथन को ही आचार्य ने यहाँ कहा है। जैसा कि पराशर का कथन है :–

हस्तनक्षत्र में सूर्य के होने पर अगस्त्य उदित होता है, और उसके रोहिणी में स्थित होने पर अस्त हो जाता है।

अथास्य त्रिविधश्चारोदयकालो दृष्टः – आश्वयुग्बहुलाष्टमीपञ्चदश्योः कार्तिकाष्टम्यां वा। तत्राश्वयुग्बहुलोदितः सुवृष्टिक्षेमान्नसम्पत्करः। वर्णैश्चावेदयति। अग्निपरुषरूक्षाभो रोगाय कपिलो वृष्टिनिग्रहाय। धूमाभो गवामभावाय। माञ्जिष्ठः कुङ्कुमच्छविः क्षुच्छस्त्रदः। नीलोऽतिवर्षाय। संवृतः पुररोधाय। स्पन्दनो भयाय।

इस अगस्त्य की उदय-गति तीन प्रकार की देखी गयी है। १. आश्विन मास की अष्टमी, २. कार्तिक मास की पूर्णिमा, ३. कार्तिक मास की अष्टमी तिथि। वहाँ पर यदि आश्विन मास अथवा कार्तिक मास में उदित हो, तब सुन्दर वर्षा, सुभिक्ष तथा अन्न-सम्पदा करता है। वर्ण (रंग) से भी फल कहते हैं। अग्निवर्ण का, कठोर प्रकाश वाला रोगदायक; कपिल (भूरा) वर्ण का अवर्षण-कारक; धूएँ के रंग का गायों के लिए भयकारक; मजीठा और कुंकुम के वर्ण का दुर्भिक्ष तथा युद्धकारक; नीलवर्ण का अत्यधिक वर्षाकारक; ढका हुआ-सा (छोटा) नगर का अवरोधक और स्पन्दन (कम्पन) शील हो तो भयप्रदायक होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपि च :–

हन्यादुल्का यदागस्त्यं केतुर्वाप्युपधूपयेत्।
दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते॥
सुस्निग्धवर्णः श्वेतश्च शातकुम्भंसमप्रभः।
मुनिः क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च॥इति॥२१॥

और भी :–

जब अगस्त्य को उल्का आहत करे अथवा केतु उसे अवधूमित करले, तब संसार में दुर्भिक्ष और जन-विनाश होता है। सुन्दर स्वच्छ वर्ण का, श्वेत, रजतकलश के समान आभा वाले अगस्त्यमुनि प्रजा के लिए कल्याण, सुभिक्ष और अभयकारक होते हैं॥२१॥

इति श्री भट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावऽगस्त्यचारो
नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

इति श्री भट्टोत्पल द्वारा विरचित संहिताविवृति में अगस्त्यचार
नामक द्वादश अध्याय॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बृहत्संहितायाः प्रथमभागस्य-मूलश्लोकानाम्

अकारादिवर्णानुक्रमणिका

(अ)			पृष्ठाङ्कः
अकलुषांशु जटिलः पृथुमूर्तिः	–	–	३६०
अण्डजहा रविजो यदि	–	–	४११
अत्युत्तमोत्तमोनं	–	–	३७०
अत्राक्रान्ते मृत्युः	–	–	३७३
अत्रारोहेच्छूलिक	–	–	३७५
अत्रारोहेद् द्रविडा	–	–	३७४
अत्रोदितमारोहेद्	–	–	३७१
अथ तु भुजगेन्द्ररूपः	–	–	२१३
अनलभयमनलवर्णे	–	–	३३३
अनियतचारः खलु चेद्	–	–	२१२
अन्तर्वेदीं सरयूं	–	–	२६६
अन्यानपि च सदेशान्	–	–	४४१
अन्येनात्राक्रान्ते	–	–	३७२
अपरस्यां चलकेतुः	–	–	४४०
अपरस्यां स्वात्याद्यं	–	–	३७६
अपरेण पद्मकेतुः	–	–	४५१
अप्यर्णवस्य पुरुषः	–	–	१२४
अप्रदीपा यथा रात्रिः	–	–	१४१
अप्राप्यमकरमर्को	–	–	१५३
अभ्युच्छ्रायादेकं यदि	–	–	१९१
अमलवपुरवक्रमण्डलः	–	–	१७७
अमृतास्वादविशेषात्	–	–	२०८
अरुणकिरणानुरूपे	–	–	२६१
अर्कग्रहात्तु शशिनो	–	–	
अर्द्धोदितोपरक्तो	–	–	२४१
अर्द्धोन्नते च लाङ्गल	–	–	१८७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्यम्णं हौतभुजं	–	–	
अवनत्याऽर्के ग्रासो	–	–	२२६
अवमर्दनमिति निःशेष	–	–	२५६
अविकृतसलिल निपातैः	–	–	
अविदित्वैव यच्छास्त्रं	–	–	१४५
अव्युच्छिन्ना रेखा	–	–	१९२
अश्मकवैदर्भाणां	–	–	३८०
अश्विन्यामश्मकपं	–	–	४५५
असिकेशं भौजङ्गे	–	–	४५६
असिमुशलं सप्तदशात्	–	–	२९१
अहिवरुणपुरन्दर	–	–	३९८
अहिवरुणपुरन्दर	–	–	३९८
अहुताशेऽनलरूपं	–	–	४१४
(आ)			
आग्नेय्यामपगमनं	–	–	२७७
आदित्ये पाञ्चनद	–	–	४०१
आद्यं द्वितीयं च शुभे	–	–	३४८
आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो	–	–	३४४
आद्यः प्लवङ्गो नवमे	–	–	३५४
आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभाव	–	–	३४७
आधूम्रया तु शिखया	–	–	४४५
आप्येऽङ्गवङ्गकौशल	–	–	४०५
आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे	–	–	३८४
आब्रह्मादिविनिःसृतम्	–	–	८
आभीराञ्छबरान् सपह्लवान्	–	–	२४९
आर्यम्णं हौतभुजं	–	–	३०१
आवन्तिका जनपदाः	–	–	२६६
आवरणं महदिन्दोः	–	–	२१८
आवर्त इति निशार्धे	–	–	४५१
आश्लेषार्द्धाद्दक्षिण	–	–	१५०
आश्लेषासु भुजङ्गम	–	–	३८१
आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं	–	–	३३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्विनवारुणमूलानि – – ३०१
आषाढपर्वण्युदपानवप्र – – २७३
आषाढे जायन्ते – – २९
आसीत्तमः किलेदं – – ९
आहिर्बुध्न्ये फलमूल – – ३८५

(इ)

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च – – ४५७
इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं – – ३५५
इन्द्वर्कमण्डलाकृतिः – – २०९
इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता – – ४७०
इन्दोः पयोदविगमोपहितां – – ४७१

(ई)

ईतिप्राया प्रचुरपवना – – ३५२
ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैः – – ४७४

(उ)

उक्तविपरीतरूपः – – ४२१
उत्तरमयनेमतीत्य – – १५४
उत्तरमार्गो याम्यादि – – ३६७
उत्तररवीथिषु शुक्रः – – ३६८
उदगायतो महान् – – ४३६
उदयन्नेव सुभिक्षं – – ४४८
उदयप्रवासदिवसैः – – ३०६
उदये च मुनेरगस्त्य – – ४६९
उद्गारोग्य सुभिक्ष – – ३३२
उद्युक्तान् सह वाहनै – – २०१
उन्नतमीषच्छृङ्गं – – १८७
उल्कया यदा शशी – – २०४
उल्कया विनिहतः शिखिना – – ४७८
उल्काभिताडित शिखः – – ४५८
उल्का मन्त्रविनाशं – – १६४

(ऊ)

ऊर्ध्वकरो दिवसकरः – –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ऋ)

ऋज्वी हिता प्रजानाम् – – ३११
ऋज्व्यतिवक्रा वक्रा – – ३०९
ऋतुविपरीतास्तरवो – – १५८

(ए)

एकादशे पिङ्गलकालयुक्त – – ३५६
एकैकमब्देषु नवाहतेषु – – ३३८
एको दुर्भिक्षकरो – – १६३
एते सर्वे मोक्षा – –
एवमुपरागकारणम् – – २१९

(ऐ)

ऐन्द्रस्य शीतकिरणो – – १८२
ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्त – – ४०४
ऐन्द्रे भूपविरोधः – – २३१

(औ)

औशीनरमपि सौम्ये – – ४५५

(क)

कङ्का नाम वरुणजा – – ४३४
कपिलः प्रधानमाह – – ११
कम्बोजचीनयवनान् सह – – २७५
कर्षकपाखण्डिवणिक् – – २४१
कलिङ्गवङ्गान् मगधान् – – २७४
कष्टः प्लवङ्गो बहुशः – – ३५४
कापोतारुणकपिल – – २६१
कालोद्भवैः सुरभिभिः – – ४७५
कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि – – ३१३
कार्तिक्यामनलोपजीविमगधान् – – २६८
कार्मुकरूपे युद्धानि – – १८९
काश्मीरकान् कौशलकान् – – २६९
काश्मीरान् सपुलिन्दचीन – – २७४
कुमुद इति कुमुदकान्तिः – – ४४७
कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिम – – २५२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुहुकावेशपिहितैः – – १४४
कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं – – १३९
कौरवचित्रकराणाम् – – ३८३
क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्नि – – ३४६
क्षतजानलानुरूपाः – – ४२९
क्षामा जुगुप्समानाः – – १६०
क्षयमिति युगस्यान्त्य – – ३५९
क्षितितनयदिवसवारः – – ७
क्षुत्प्रम्लानशरीरा – – १६०
क्षुन्मारकृद्घटनिभः – – १७०
क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी – – २०३

(ग)

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला – – ३३६
गर्भेष्वपि निष्पन्ना – – १६०
गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान् – – २०१
गार्गीयं शिखिचारम् – – ४१३
गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः – – ३८९
गोपाः पशवोऽथ गोमिनो – – २४८
ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत् – – १४३
ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं – – १२२
ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः – – २५६
ग्रस्तावुदितास्तमितौ – – २३९
ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः – – २६५
ग्रहणोपगते जीवे – – २६७
ग्रीष्मे रक्तो भयकृद् – – १६८

(च)

चतुर्णां च मानानां (गद्यम्) – – ४६
चतुर्दशीं पञ्चदशीं – – ३८७
चत्वारिंशत् ४० त्रिंशद् ३० – – ३०६
चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषा – – ३४३
चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति – – २१६
चारोदयाः प्रशस्ताः – – २९६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित्रासु कुरुक्षेत्रा	–	–	४५६
चित्रास्थे प्रमदाजनलेखक	–	–	४०३
चित्रोऽथवापि धूम्रो	–	–	१६४
चैत्रे मन्दा वृष्टिः	–	–	३२७
चैत्र्यां तु चित्रकरलेखक	–	–	२७१
(ज)			
जगति प्रसारितमिव	–	–	१३२
जयति जगतः प्रसूतिः	–	–	४
जलकेतुरपि च पश्चात्	–	–	४४९
जारद्गव्यां श्रवणात्	–	–	३६२
जिह्वोपलेढि परितः	–	–	२५५
ज्ञेयो विशालमूर्तिः	–	–	१९८
ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षम्	–	–	३७४
ज्येष्ठासु नृपपुरोहित	–	–	४०५
ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराज	–	–	२७३
ज्यैष्ठे जातिकुलधन	–	–	३२८
ज्योतिःशास्त्रमनेकभेद	–	–	१८
ज्यौतिषमागमशास्त्रं	–	–	३६८
(त)			
तत्र गुणाः शुचिर्दक्षः (गद्यम्)	–	–	३८
तत्र ग्रहगणिते (गद्यम्)	–	–	४१
तत्र सांवत्सरोऽभिजातः (गद्यम्)	–	–	१९
तदलमतिविस्तरेण	–	–	१७
तन्त्रे सुपरिज्ञाते	–	–	१२४
तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः	–	–	४३६
तस्करविलुप्तवित्ता	–	–	१६०
तस्माद् द्वितीयो विभवः	–	–	३४६
तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो	–	–	१४२
तस्मिन् काले सान्निध्य	–	–	२२१
तामसकीलकसंज्ञा	–	–	१५६
ताम्रः कपिलो वार्कः	–	–	१६५
तारणं तदनु भूरिवारिदं		–	३४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तारापुञ्जनिकाशा गणका – – ४३३
तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं – – ४६५
तिस्रस्तिस्रस्तासां – – ३६३
तुरगतुरुगोपचारककवि – – ३९९
तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् – – २५०
ते चार्कमण्डलगताः – – १५७
तेषामुदये रूपाण्यम्भः – – १५८
त्यजतोऽर्कतलं शशिनः – – १८०
त्रिंशत्यधिका राहोस्ते – – ४३०
त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी – – ३४७
त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः – – ३५०

(द)

दक्षिणकुक्षिविभेदो – – २७८
दक्षिणतो रोहिण्याः – – २९५
दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी – – १८३
दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं – – १८८
दण्डे नरेन्द्रमृत्युः – – १६२
दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् – – ३९६
दर्पण इवैकदेशे – – २५७
दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः – – ४२४
दर्शनमस्तमयो वा न – – ४१४
दिनकरकराभितापादृ – – १७४
दिनकरमुदयास्तसंस्थितम् – – १७३
दिनकरादीनां ग्रहाणां – – १३३
दिवसकृतः प्रतिसूर्यो – – १७५
दुःस्वप्नदुर्विचिन्तित – – १४९
दूरस्थचिह्नवेधादुदये – – १५१
दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे – – २६१
दृश्यन्ते च यतस्ते – – १६३
दृश्योऽमावास्यायां – – ४३८
दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के – – ३७८
द्वादशदशमैकादश – – २८८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विजनृपतीनुदगयने – – २४४
द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः – – ४७६

(ध)

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेह – – २५१
धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ – – ३३४
ध्रुवकेतुरनियतगति – – ४४५
ध्वजचापनिभे युद्धानि – – १७१
ध्वजशस्त्रभवनतरु – – ४१५

(न)

न कथञ्चिदपि निमित्तैः – – २२३
नक्षत्रेण सहोदयम् – – ३१६
नगरद्वारलोष्ठस्य – – १४६
न तत् सहस्रं करिणां – – १४७
न तथेच्छति भूपतेः पिता – – १४९
नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा – – ३५१
न पृथक् फलानि तेषां – – १५९
न मित्रभावे सुहृदो – – ३९२
नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता – – ४५९
नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानः – – ४७५
न सांवत्सरपाठी – – १४२
नागराजैरावतवृषभगो – – ३६१
नागा तु पवनयाम्यानलानि – – ३६२
नातिव्यक्ताः सूक्ष्माः – – ४२९
नानाचोद्यप्रश्नभेदो (गद्यम्) – – ११९
नानाविचित्राम्बुज – – ४७२
नासांवत्सरिके देशे – – १४२
नित्यमधःस्थस्येन्दोः – – १७८
निर्घातः सुरचापं दण्डश्च – –
निष्पन्नशालीक्षुयवादीसस्यां – – ३४६
निहन्ति शुक्रः क्षितिजे – – ३९३
नैर्ऋतवायव्यस्थौ – – २७९
नोत्पातपरित्यक्तः कदाचित् – – २९८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(प)

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल – – २२४
परिधाविनि मध्यदेशनाशा – – ३५५
परिवेषो रुकपीडां दिग्दाहो – –
पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये – – २५६
पर्यन्तेषु विमलताबहुलं – –
पर्य्यन्तेष्वतिबहुलं – – २५८
पश्चात् सन्ध्याकाले – – ४५२
पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो – – २६३
पांशुविलोहितरूपः – – २६१
पाञ्चालकलिंङ्गशूरसेनाः – – २४७
पापाख्या सावित्रं – – ३०४
पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाका – – ४६९
पितृपूजापरिवृद्धिर्माधे – – ३२६
पित्र्याद्येऽवष्टब्धो – – ३७२
पीडाकरं फाल्गुनमासि – – २७१
पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकमपीन्दोः – – ३०३
पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानां – – ३५३
पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा – –
पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति – – २४४
पूर्वोत्तरेण वामो – – २७८
पौषाषाढ श्रावणवैशाखेषु – – ३१२
पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः – – २७०
प्रकृतविमिश्रसंक्षिप्त – – ३०३
प्रचलित्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः – – ४६५
प्रतिदिवसमहिमकिरणः – – १७३
प्रतिदिवसमेवमर्कात् – – १८१
प्रत्यन्तात् कुनृपांश्च – – १९९
प्रत्येकग्रहभ्रमण – – ८७
प्रथममुनिकथितमवितथ – – ५
प्रश्नप्रतिप्रश्नकथा – – २१
प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्ग – – ४६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रहरणसदृशैर्जलदैः – – १७४
प्राकृतगत्यामारोग्य – – ३०८
प्राकृतसंज्ञा वायव्य – – ३०४
प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् – – २८१
प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः – – ४४३
प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः – – ४३८
प्राजापत्ये शकटे भिन्ने – – ३७९
प्राजापत्ये श्रवणे मूले – – २९५
प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो – – २०५
प्रोक्तस्थानाभावादु – – १९६

(फ)

फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् – – ३२६

(ब)

बहुलास्थे पीड्यन्ते – – ३९९
बृहस्पतो हन्ति पुरः स्थिते – – ३९४
ब्रह्मसुत एक एव – – ४२५
ब्राह्मो द्विजपशुवृद्धिः – – २३०

(भ)

भचतुष्टयमार्द्राद्यं – – ३७१
भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं – – ३७१
भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः – – ४४९
भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः – – २०५
भाग्यार्थमोदितो यदि – – २९२
भाग्ये रसविक्रयिणः – – ४०२
भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं – – ३५७
भाग्ये शबरपुलिन्द – – ३८२
भाद्रपदे वल्लीजं – – ३३०
भित्त्वा मघा विशाखां – – २९४
भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं – – ३७८
भिन्नः सितेन मगधान् – – २००
भूच्छायां स्वग्रहणे – – २१४
भूभगण भ्रमण (गद्यम्) – – १०२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भृगुतनये राहुगते	–	–	२६७
(म)			
मगधान् मथुरां च	–	–	२०३
मध्यतनुर्वज्राख्यः	–	–	१९८
मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा	–	–	२४१
मध्ये तमः प्रविष्टं	–	–	२५८
मध्ये न यदि मघानां	–	–	२९४
मध्ये यदि प्रकाशः	–	–	
माघे तु मातृपितृ भक्त	–	–	२७०
मिथुने प्रवराङ्गना नृपा	–	–	२४८
मुक्ते सप्ताहान्तः	–	–	
मुखपुच्छविभक्ताङ्गं	–	–	२१०
मुनिविरचितमिदं	–	–	६
मुहूर्ततिथिनक्षत्रं	–	–	१४१
मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे	–	–	४५७
मृगशिरसि वत्सयाजक	–	–	४००
मैत्रे कुलूततङ्गणखस	–	–	४०४
मैत्रे क्षत्रविरोधो	–	–	३८४
म्लेच्छान् विदिक्स्थितो	–	–	२४४
म्लेच्छा हि यवनास्तेषु	–	–	१४३
(य)			
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं	–	–	३५६
यत्रैते संहितापदार्थाः	–	–	१३३
यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं	–	–	२६४
यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री	–	–	४१०
यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः	–	–	३९२
यदि कुमुदमृणालहारगौर	–	–	२०७
यदि मूर्तो भविचारी	–	–	२११
यद्युदतर्क्षाद्वकं करोति	–	–	
यद्येकस्मिन् मासेग्रहणं	–	–	२३६
यद्येको यदि बहवः	–	–	४१७
यस्तु सम्यग्विजानाति	–	–	१४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्मिन् यस्मिन् देशे	–	–	१६०
यात्रायां तु तिथिदिवस	–	–	१२९-१३०
याम्यं करोत्यवृष्टिं	–	–	२३१
यावत एव मुहूर्तान्	–	–	४५०-४५२
यावन्त्यहानि दृश्यो	–	–	४१७
युगमेव याम्यकोट्यां	–	–	१९०
येन चाम्बुहरणेऽपि	–	–	४६३
ये शस्तास्तान् हित्वा	–	–	४५४
योगान्तिकेति मूलं द्वे	–	–	३०४
योऽसावसुरो राहुस्तस्य	–	–	२२१
योधेयान् सचिवान्	–	–	२०२
(र)			
रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं	–	–	३५७
राजोपकरणरूपैः	–	–	१६२
राहुद्वयं यदि स्यात्	–	–	२१३
रुद्धानि सौम्येऽस्तगते	–	–	३१४
रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो	–	–	१७६
रुधिराननमिति वक्त्रं	–	–	२९०
रूक्षः श्वेतो विप्रान्	–	–	१६७
रेवत्यां राजभृताः	–	–	४०७
रोगान् करोति परुषः	–	–	४७६
रोहिण्योऽनलभं च	–	–	३३५
रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते	–	–	३००
(ल)			
लब्धेन युक्तं शकभूपकालं	–	–	३३६
(व)			
वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः	–	–	४२३
वक्रानुवक्रास्तमयो	–	–	२०
वनं समाश्रिता येऽपि	–	–	१४०
वर्षाकाले वृष्टिं करोति	–	–	१६८
वर्षाणि कार्तिकादीनि	–	–	३२०
वामस्तु कुक्षिभेदो	–	–	२७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वारुणमवनीशाशुभ – – २३१
विंशत्याधिकमन्यच्छतं – – ४३१
विकचा नाम गुरुसुताः – – ४२८
विक्रमः सकल लोकनन्दनो – – ३५५
विचरन् भद्रयमिष्टः – – ३३३
विचरन् मघादिपञ्चकं – – ३७२
विचरन् श्रवणधनिष्ठा – – २९९
विपुलविमलमूर्तिः – – २९६
विमलकमणिपीताभो – – २६१
विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् – – ४०६
विष्णुः सुरेज्यो बलभित् – – ३४१
वीथीमार्गानपरे कथयन्ति – – ३६६
वृक्षस्य स्वच्छाया – – २१५
वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत् – – २५७
वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे – – ३४३
वेलाहीने पर्वणि – – २३३
वैदूर्यकान्तिविमल; – – ४१२
वैशाखमासे ग्रहणे विनाश – – २७२
वैशाखे धर्मरता – – ३२८
वैश्वे युगे शोकहृदित्यथाद्यः – – ३५३
व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद् – – २८९

(श)

शकटानलोपजीवक – – ३२४
शतभिषजि शौण्डिकानां – – ३८५
शतमभिहितमेक – – ४२६
शतमेकाधिकमेके – – ४१५
शनैश्चरे म्लेच्छविडाल – – ३९३
शरदि कमलोदराभो – – १६५
शशरुधिरनिभे भानौ – – १६९
शशिकिरणरजतहिम – – ४२५
शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं – – ३४८
शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभः – – ४७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च	–	–	३९५
शुकदहनबन्धुजीव	–	–	४२३
शुक्रः सस्यविमर्दं	–	–	२६३
शुक्लविपुलैकतारा	–	–	४३५
शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे	–	–	२०६
शुभकृज्जगतः पौषो	–	–	३२५
श्यामारुणा विताराश्चामर	–	–	४३२
श्यामेऽर्के कीटभयं	–	–	१६९
श्रवणानिलहस्तार्द्रा	–	–	३९८
श्रवणे राजाधिकृतान्	–	–	४०६
श्रवणोदितस्य वक्रं	–	–	२९३
श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक्	–	–	३३०
शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीन	–	–	१९७
श्रेष्ठ चतुर्थस्य युगस्य	–	–	३४९
श्वेत इति जटाकारो	–	–	४४४
श्वेते क्षेमसुभिक्षं	–	–	२६०
(ष)			
षडनागतानि पौष्णाद्	–	–	१८४
षण्णवतिः कालसुताः	–	–	४३४
षण्मासोत्तरवृद्धया	–	–	२२९
षष्ट्यब्दयुगवर्षमास (गद्यम्)	–	–	५७
षष्टं षण्नक्षत्रं	–	–	३७५
(स)			
संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः	–	–	३०४
संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य	–	–	४७४
संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क	–	–	३४२
संस्थानविधिः कथितो	–	–	१९७
संहितापारगश्च	–	–	१३३
सकृदेकयामदृश्यः	–	–	४४८
सतमस्कं पर्व विना	–	–	१५६
सप्तमुनीन् संस्पृश्य	–	–	४४०
समशशिनि सुभिक्षक्षेम	–	–	१८८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकर – – ४६२
सम्पत्त्या योजितादेशस् – – १४६
सलिलममरपाज्ञयोज्झितं – – ४७२
सलिलमये शशिनि – – १७९
सव्यगते तमसि – – २५५
सव्यापसव्यलेहग्रसन – – २५४
साजे शतभिषजि भिषक् – – ४०७
साम्प्रतमयनं सवितुः – – १५१
सार्पे जलरुहसर्पाः – – ४०१
सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्व – – २४९
सिद्धान्तभेदेऽप्ययन (गद्यम्) – – ७५
सुरचापाटिततनु – – १६८
सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे (गद्यम्) – – ८५
सूर्यात् सप्तमराशौ – – २१५
सूर्यादीनां च ग्रहाणां (गद्यम्) – – ८०
सेनाङ्गेषु नृपाणां – – ४४५
सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते – –
सौम्येऽब्देनावृष्टि – – ३२४
सौम्येशान्योरुदयं – – ४२७
सौम्योपगतो रससस्य – – ३८०
सौम्योऽस्तोदययोः पुरो – – ३९४
सौरादीनां च मानानाम – – ६६
सौरे मरुभवपुष्कर – – २६८
स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे – – २४१
स्निग्धाः प्रभासमेता – – ४२७
स्निग्धौ सुभिक्षशिवदा – – ४४३
स्मरणादपि पापमपाकुरुते – – ४७३
स्वातौ प्रभूतवृष्टिर् – – ३८३
स्वात्याद्यं भत्रितयं – – ३७३

(ह)

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः – – २७६
हन्यात् कैकयनाथं – – ४५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हन्यात् प्रयागकूलाद्या	–	–	४४०
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं	–	–	२६८
हरिते रोगोल्बणता	–	–	२६०
हस्तादीनि चरन्	–	–	३०१
हस्ते नापितचाक्रिक	–	–	४०३
हारमणिहेमरूपाः	–	-	४२२
हीनातिरिक्तकाले	–	–	२३५
हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः	–	–	३१५
हेमलम्ब इति सप्तमे युगे	–	–	३५१
ह्रस्वस्तनु प्रसन्नः	–	–	४२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

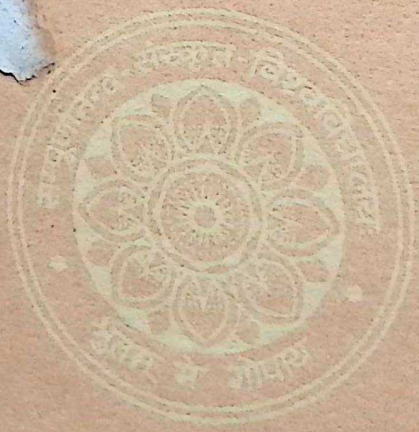

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu